MAPA-103

तुलनात्मक लोक प्रशासन

COMPRATIVE PUBLIC ADMINISTRATION

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी- 263139
फोन नं0- 05946- 261122, 261123
टॉल फ्री नं0- 18001804025
ई0 मेल- info@uou.ac.in
वैबसाईट- http://uou.ac.in

पाठयक्रम समिति

प्रो0 गिरिजा प्रसाद पाण्डे निदेशक- समाज विज्ञान विद्याशाखा उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	प्रो0 अजय सिंह रावत उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड
प्रो0 एम0एम0 सेमवाल, राजनीति विज्ञान विभाग केन्द्रीय विश्वविद्यालय, गढवाल, उत्तराखण्ड	प्रो0 मधुरेन्द्र कुमार (विशेष आमंत्रित सदस्य) राजनीति विज्ञान विभाग, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल, उत्तराखण्ड
डॉ0 ए0के0 रुस्तगी, रीडर राजनीति विज्ञान विभाग जे0एस0पी0जी0 कॉलेज, अमरोहा, उत्तर प्रदेश	डॉ0 सूर्य भान सिंह, असिस्टेन्ट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड
डॉ0 घनश्याम जोशी उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	
पाठ्यक्रम संयोजन और सम्पादक- 2017	
डॉ0 घनश्याम जोशी लोक प्रशासन विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	

इकाई लेखक	**इकाई संख्या**
डॉ0 मनीषा माथुर, लोक प्रशासन विभाग कनोरिया राजकीय स्नातकोत्तर महिला महाविद्यालय, जयपुर, राजस्थान	1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8, 9
डॉ0 जाकिर हुसैन, सेवानिवृत प्रोफेसर, बरेली, उत्तर प्रदेश	10, 11, 12, 13, 14, 15
डॉ 0अन्जु पारीक, लोक प्रशासन विभाग एस0एस0जी0 पारीक पी0जी0 कालेज, जयपुर, राजस्थान	18, 19, 20
डॉ0 इम्तियाज अहमद लोक प्रशासन विभाग, डॉ0 शकुन्तला मिश्रा विश्वविद्यालय, लखनऊ, उत्तर प्रदेश	16, 21, 22, 23
डॉ0 शशि सौरभ, राजनीति विज्ञान विभाग डॉ0 शकुन्तला मिश्रा विश्वविद्यालय, लखनऊ, उत्तर प्रदेश	17

प्रकाशन वर्ष- 2018

कापीराइट @ उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

संस्करण- 2018, सीमित वितरण हेतु पूर्व प्रकाशन की प्रति।

प्रकाशक निदेशालय :, अध्ययन एवं प्रकाशन, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

mail: studies@uou.ac.in

अनुक्रम

तुलनात्मक लोक प्रशासन(MAPA-103) **पृष्ठ संख्या**

खण्ड- 1 तुलनात्मक लोक प्रशासन- अर्थ, दृष्टिकोण, पर्यावरण	
1.तुलनात्मक लोक प्रशासनः अवधारणा, अर्थ, क्षेत्र एवं महत्व	1 – 13
2. तुलनात्मक लोक प्रशासन: अध्ययन के दृष्टिकोण - परम्परागत, दृष्टिकोण, अर्वाचीन दृष्टिकोण- व्यवहारवादी दृष्टिकोण	14 – 33
3. प्रशासन का सांस्कृतिक परिवेश, प्रशासन का सामाजिक परिवेश, राजनीतिक पारवेश, आर्थिक परिवेश	34 – 46
खण्ड- 2 प्रशासन की विशेषताएं	
4. विकसित देशों की प्रशासनिक विशेषताएं	47 – 57
5. विकासशील देशों की प्रशासनिक विशेषताएं	58 – 72
6. भारतीय प्रशासन की विशेषताएं	73 – 90
खण्ड- 3 प्रशासन पर नियंत्रण	
7. प्रशासन पर कार्य पालिका का नियंत्रण,	91 – 99
8. प्रशासन पर संसदीय(विधायी) नियंत्रण	100 – 115
9. प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण	116 – 124
खण्ड- 4 तुलनात्मक लोक प्रशासन के **प्रतिमान- 1**	
10. तुलनात्मक लोक प्रशासन के प्रतिमान (मॉडल)- मैक्स बेबर का नौकरशाही मॉडल	125 – 135
11. परिस्थितिकीय दृष्टिकोण, संरचनात्मक कार्यात्मक दृष्टिकोण	136 – 149
12. विकास मॉडल, डाउन्स मॉडल	150 – 168
खण्ड- 5 तुलनात्मक लोक प्रशासन के **प्रतिमान- 2**	
13. नौकरशाही का आदर्श प्रारूप, मैक्स बेबर की आदर्शवादी नौकरशाही प्रणाली, मैक्स बेबर के नौकरशाही के आदर्शवादी प्रतिमान की विशेषताएं , आलोचना	169 – 181
14. मैक्स बेबर का सत्ता प्रतिमान, तृतीय विश्व की प्रशासनिक व्यवस्था और बेबर का ’सत्ता’ प्रतिमान	182 – 195
15. एफ0 डब्ल्यू0 रिग्स का सामाजिक प्रारूप- प्रिज्मैटिक समाज, साला मॉडल	196 – 210
खण्ड- 6 राजनीति और प्रशासन	
16. राजनीति एवं प्रशासन में संबंध	211 – 217
17. राजनीति और नीति निर्माण संस्थाओं का तुलनात्मक अध्ययन	218 – 233
18. प्रशासनिक ढ़ाँचा तुलनात्मक अध्ययनः सहायक अभिकरण, स्टाफ अभिकरण	234 – 245
खण्ड- 7 सेवी-वर्ग प्रशासन	
19. सेवी-वर्ग प्रशासनः तुलनात्मक अध्ययनः ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, अमेरिका, फ्रान्स के प्रशासन की विशेषता	246 – 268

20. पदोन्नति, सेवानिवृत्ति लाभ	269 – 286
21. लोक सेवाओं का तुलनात्मक अध्ययन	287 – 304
खण्ड- 8 नागरिकों का शिकायत निवारण यन्त्र	
22. ओम्बुड्समैन का अर्थ- स्वीडन में ओम्बुड्समैन, अमेरिका में जन-शिकायत	305 – 316
23. भारत में लोकपाल एवं लोकायुक्त	317 – 327
24. बजट निर्माण प्रक्रिया- भारत, अमेरिका	328 – 339

इकाई-1 तुलनात्मक लोक प्रशासन अवधारणा, अर्थ, क्षेत्र एवं महत्व

इकाई की संरचना

1.0 प्रस्तावना
1.1 उद्देश्य
1.2 तुलनात्मक लोक प्रशासन की अवधारणा
    1.2.1 तुलनात्मक लोक प्रशासन की मान्यताऐं
    1.2.2 तुलनात्मक लोक प्रशासन के विकास के कारण
1.3 तुलनात्मक लोक प्रशासन
    1.3.1 तुलनात्मक लोक प्रशासन विशेषताऐं
    1.3.2 तुलनात्मक लोक प्रशासन की प्रकृति
    1.3.3 तुलनात्मक लोक प्रशासन के उद्देश्य
1.4 तुलनात्मक लोक प्रशासन का क्षेत्र
1.5 तुलनात्मक लोक प्रशासन का महत्व
1.6 सारांश
1.7 शब्दावली
1.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.10 सहायक/उपयोग पाठ्य सामग्री
1.11 निबंधात्मक प्रश्न

1.0 प्रस्तावना

तुलनात्मक लोक प्रशासन परम्परागत लोक प्रशासन से सर्वथा भिन्न है। इसमें लोक प्रशासन के अध्ययन को नवीन और महत्व पूर्ण आयाम प्रदान किया गया है। तुलनात्मक लोक प्रशासन से तात्पर्य है दो या दो से अधिक देशों, प्रान्तों, क्षेत्रों या स्थानों की लोक प्रशासनिक व्यवस्थाओं का अध्ययन तुलनात्मक रूप से किया जाये। यद्यपि तुलनात्मक लोक प्रशासन में पश्चिमी व्यवस्थाओं का अधिक अध्ययन किया गया है किन्तु इसकी, वर्तमान प्रवृति विकासशील देशों की प्रशासनिक, सामाजिक, आर्थिक व्यवस्थाओं का अध्ययन करना है। प्रस्तुत इकाई तुलनात्मक लोक प्रशासन की अवधारणा को विस्तार रूप से प्रस्तुत करेगी साथ ही इसके क्षेत्र एवं महत्व पर भी प्रकाश डालेगी।

1.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- तुलनात्मक लोक प्रशासन क्या है इसकी अवधारणा को जानेंगे।
- तुलनात्मक लोक प्रशासन का अर्थ, क्षेत्र एवं महत्व के विषय में भी जान पायेंगे।

1.2 तुलनात्मक लोक प्रशासन की अवधारणा

अवधारणा किसी विचार या वस्तु के सार सम्बन्धित सिद्धान्त को कहते है। तुलनात्मक लोक प्रशासन की अवधारणा लोक प्रशासन के अध्ययन क्षेत्र में एक नवीन अवधारणा है। इसका उदय कुछ वर्ष पूर्व द्वितीय विश्व युद्ध के समय हुआ था। द्वितीय विश्व युद्ध तक तुलनात्मक लोक प्रशासन को एक स्वतन्त्र विषय के रूप में नहीं जाना जाता था, लेकिन इस विश्व युद्ध के बाद सम्पूर्ण विश्व के समक्ष कुछ ऐसी नयी समस्याऐं सामने आयीं

जिनके लिये अध्ययन का प्राचीन एवं परम्परागत दृष्टिकोण अपर्याप्त सिद्ध हुआ और नवीन दृष्टिकोण की खोज की जाने लगी, फलस्वरूप लोक प्रशासन को तुलनात्मक रूप देकर उसके अध्ययन को विकसित किया गया। तुलनात्मक लोक प्रशासन में विश्व में उपस्थित विभिन्न संस्कृतियों में कार्यरत विभिन्न देशों की प्रशासनिक व्यवस्थाओं का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है। इसमें लोक प्रशासन के अध्ययन के कुछ ऐसे नियम, सिद्धान्त एवं मान्यताऐं प्रतिपादित की जाती हैं, जिन्हें सभी देशों में लागू किया जा सके। अर्थात् विभिन्न सांस्कृतिक परिस्थितियों एवं राजनीतिक पर्यावरण में लागू होने वाले सिद्धान्तों का निर्माण इस तुलनात्मक लोक प्रशासन के कारण ही सम्भव हो पाता है।

द्वितीय विश्व युद्ध के समय उत्पन्न समस्त समस्याओं के निराकरण में पारम्परिक दृष्टिकोणों की अपर्याप्तता के कारण उसके बाद के वर्षों में विभिन्न सामाजिक विद्वानों ने तुलनात्मक अध्ययन तथा विश्लेषण को विशेष महत्व देना शुरू कर दिया। एडविन स्टीन, साइमन तथा वाल्डो जैसे विद्वानों ने लोक प्रशासन को ओर अधिक वैज्ञानिक बनाने हेतु वैज्ञानिक साहित्यों की व्याख्या पर बल देना प्रारम्भ किया। परन्तु राबर्ट डहाल ने कहा कि ''जब तक लोक प्रशासन का अध्ययन तुलनात्मक नहीं होता है, तब तक विज्ञान होने का इसका दावा खोखला है।'' किसी भी अन्य वैज्ञानिक अनुशासन की तरह लोक प्रशासन में भी तुलनात्मक विश्लेषण की विधि का सुनिश्चित महत्व है। अतः इस बात को ध्यान में रखकर लोक प्रशासन के विद्वानों ने तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन-साहित्य तथा प्रशासकों के तुलनात्मक विश्लेषण पर बल देना प्रारम्भ किया। अतः अब लोक प्रशासन को वैज्ञानिक बनाने हेतु किसी भी अन्य वैज्ञानिक अनुसंधान की तरह आजकल लोक प्रशासन के अध्ययन में तुलनात्मक अध्ययन को अधिक महत्व दिया जा रहा है। इस विषय के विकास के प्रारम्भिक चरणों में वाल्डो, फैरेल, हैडी आदि विद्वानों ने महत्व पूर्ण भूमिका निभायी और इसके बाद में तुलनात्मक लोक प्रशासन की अवधारणा को अधिक समृद्ध बनाने में फ्रेड रिग्स, फ्रेडरिक क्लीवलैण्ड, रिचर्ड गेबल, फैरेल हैडी आदि विद्वानों ने महत्व पूर्ण योगदान दिया।

1.2.1 तुलनात्मक लोक प्रशासन की मान्यताऐं

तुलनात्मक लोक प्रशासन का विकास अभी शैशव-अवस्था में है। अभी भी इस विषय पर प्रचुर मात्रा में साहित्य उपलब्ध नहीं हो सका है। अतः तुलनात्मक लोक प्रशासन की मान्यताओं के सम्बन्ध में रॉबर्ट जैक्सन द्वारा व्यक्त मान्यताओं को भी प्रश्रय दिया जाता है। रॉबर्ट जैक्सन ने तुलनात्मक लोक प्रशासन की चार मान्यताओं का उल्लेख किया है-

1. प्रशासनिक व्यवहार में कुछ ऐसी परिस्थितियाँ हैं, जिनका व्यवस्थित विश्लेषण किया जा सकता है।
2. प्रशासन के क्षेत्र के अर्न्तगत जो पद्धतियाँ अपनायी गयी हैं, उनका अध्ययन विभिन्न संस्कृतियों और राष्ट्रों के सन्दर्भ में किया जा सकता है।
3. तुलनात्मक अध्ययन के फलस्वरूप प्राप्त निष्कर्षों की परीक्षा की जा सकती है।
4. ऐसी आशा की जाती है कि इस प्रकार का तुलनात्मक विश्लेषण प्रायोगिकता और सार्वभैमिकता की भिन्न-भिन्न मात्राओं के लिए सामान्यीकरण के विविध स्तरों पर प्रशासनिक प्रतिरूपों से सम्बन्धित परिकल्पनाओं के निर्माण में सहायक सिद्ध होगा। अन्ततः इस प्रकार की प्रतिज्ञप्तियों को लोक प्रशासन के सामान्य सिद्धान्तों में स्वीकृत किया जा सकेगा।

तुलनात्मक लोक प्रशासन की मान्यताओं के सन्दर्भ में जो प्रारम्भिक अध्ययन किये गये थे, उनमें वुडरो विल्सन ने अमेरिकी प्रशासन को पढ़ने, समझने तथा सुधारने के लिए यूरोपीय अनुभव पर जोर दिया था। जो प्रारम्भिक अध्ययन किये गये थे, उनमें अध्ययन का मुख्य केन्द्र स्थानीय समस्याएँ ही थीं, जिनका सम्बन्ध यूरोपीय प्रशासनिक व्यवस्थाओं तक ही सीमित था। मात्र प्रसंगवश ही अन्य व्यवस्थाओं के नामों का उल्लेख किया गया था। लेकिन रॉबर्ट जैक्सन ने जो मान्यताएँ प्रकट की हैं, वह लगभग समस्त देशों में लागू होती हैं।

1.2.2 तुलनात्मक लोक प्रशासन के विकास के कारण

द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान और उसके बाद के काल को पुराने और नये लोक प्रशासन के साहित्य के मध्य एक विभाजक रेखा माना जाता है। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद विश्व के विकासशील देशों को ज्यों-ज्यों नयी चुनौतियों का सामना करना पड़ा, त्यों-त्यों लगभग इसी रफ्तार में लोक प्रशासन का साहित्य समृद्ध और सबल होने लगा। इस काल में उठने वाली समस्याओं के समाधान में लोक प्रशासन अत्यधिक संघर्षशील बन गया। तत्पश्चात उसके स्वरूप और प्रकृति में अनेक बदलाव आये। इस दौरान अमेरिकी विद्वानों ने अनेक तुलनात्मक अध्ययन किये तथा धीरे-धीरे उनकी तुलना का केन्द्र सिर्फ यूरोपीय देश ही न होकर समस्त विश्व की प्रशासकीय व्यवस्थाएँ बनने लगीं। जिन प्रमुख कारणों ने तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन के विकास में अपना योगदान दिया, वे निम्नलिखित हैं-

1. **परम्परागत दृष्टिकोण की अपर्याप्तता-** समय की बदलती हुई परिस्थितियों में ऐसा महसूस किया जाने लगा था कि नवीन चुनौतियों के सन्दर्भ में परम्परागत दृष्टिकोण अपर्याप्त है। इसी सम्बन्ध में वाल्डो का एक कथन उल्लेखनीय है जिसमें उन्होंने ये कहा कि, यह (परम्परागत) दृष्टिकोण संस्कृति अवरोधी था तथा मुख्यतः पश्चिमी यूरोप के देशों तथा वैधानिक और औपचारिक लेखों तक ही सीमित था। उनका मानना था कि यह दृष्टिकोण मुख्यतः वर्णनात्मक था विश्लेषणात्मक या समस्या-समाधानकारी नहीं था। इसमें विद्यार्थी केवल एक देश के प्रशासन की जानकारी प्राप्त कर सकता था, लेकिन दूसरे देशों से उसकी समानता या अन्तर देखने में असमर्थ था।
   परम्परागत दृष्टिकोण की इन्हीं सब कमियों के कारण लोक प्रशासन के विद्वानों के द्वारा तुलनातमक अध्ययन प्रणाली का प्रचलन और प्रसार किया गया। तुलनात्मक लोक प्रशासन की प्रवृति लोक प्रशासन के अध्ययन को संकीर्णता के दायरे से निकालकर व्यापक आधार भूमि पर ला खड़ा करना है।
2. **अनुसंधान के नवीन उपकरणों तथा धारणाओं का उदय-** लोक प्रशासन के विद्वानों के द्वारा ये प्रयास किया गया कि लोक प्रशासन को परम्परागत दृष्टिकोण के संकुचित आवरण से बाहर निकाला जाये और उसे वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रदान करने का प्रयास किया जाये। उनका मानना था कि यदि लोक प्रशासन को प्रभावशाली बनाना है तो उसे तुलनात्मक रूप देना होगा। तुलनात्मक लोक प्रशासन ही यथार्थ की खोज करता है और इसका लक्ष्य कानून और औपचारिक संस्थाओं के अध्ययन से आगे बढ़कर, उन सब संरचनाओं और यथार्थ प्रशासनिक प्रक्रियाओं का परीक्षण करना होता है, जो लोक प्रशासन और नीतियों के निर्धारण में एक प्रभावशाली भूमिका अदा करती है। अतः ये कहा जा सकता है कि लोक प्रशासन के अध्ययन को वैज्ञानिक बनाने हेतु भी तुलनात्मक अध्ययन का प्रयोग किया जाने लगा।
3. **अन्तर्राष्ट्रीय निर्भरता-** तुलनात्मक लोक प्रशासन की अवधारणा के विकास के कारणों में से एक प्रमुख कारण ये भी था कि अब बदलते परिवेश में विभिन्न राष्ट्रों के बीच पारस्परिक निर्भरता भी बढ़ने लगी थी। अब ये महसूस किया जाने लगा था कि यदि देशों में प्रशासनिक सुधार किया जाना है, तो उसके लिये विभिन्न राष्ट्रों की प्रशासनिक व्यवस्थाओं को जान कर और उनके मध्य तुलना स्थापित कर के ही किया जा सकता है। दूसरे देशों में किये जाने वाले विभिन्न प्रशासनिक प्रयोगों का लाभ प्राप्त करने के लिये अन्य देश अपनी सुविधा, वातावरण और परिस्थितियों के अनुसार उचित कदम उठा सकते हैं और वे सब तुलनात्मक अध्ययन से ही संभव है।
4. **सामाजिक सन्दर्भ का महत्व-** लोक प्रशासन तथा सामाजिक संरचना आपस में घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित होते हैं। यह घनिष्ठता भी तुलनात्मक लोक प्रशासन के विकास में एक महत्व पूर्ण कारक मानी जाती है। तुलनात्मक लोक प्रशासन ही वो माध्यम है, जिसके आधार पर ये ज्ञात होता है कि एक ही प्रकार की प्रशासनिक संस्थाऐं दो देशों में अलग-अलग व्यवहार करती हैं और उनके परिणाम भी अलग-

अलग होते हैं। इन सब का कारण हर देश की सामाजिक रूप रचना का वहाँ के प्रशासनिक संगठन के रूप तथा प्रक्रिया को प्रभावित करना है।

5. **विकासशील राष्ट्रों का सम्पर्क में आना-** युद्ध के समय पश्चिमी और विशेषतया अमेरीकी विद्वानों का बहुत से विकासशील राष्ट्रों के लोक प्रशासन के साथ सम्पर्क स्थापित हुआ, जिनमें इन्होंने कुछ नई विशेषताऐं देखीं और जिसमें उसकी रुचि पैदा हुई।
6. **नई घटनाओं का प्रशासनिक ढ़ाँचों पर प्रभाव-** वैज्ञानिक, सैद्धान्तिक तथा तकनीकी क्षेत्रों में होने वाली नई घटनाओं का प्रशासनों के ढ़ाँचों के स्वरूप पर प्रभाव पड़ा, जिसमें तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन में रुचि को प्रोत्साहन मिला।
7. **विशेषताओं और मौलिकताओं को भली-भाँति जानने हेतु-** द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान अमेरिका, ब्रिटेन तथा यूरोप के अन्य विकसित देशों के प्रशासकों और विद्वानों का विकासशील देशों सहित अन्य देशों के लोक प्रशासन के सिद्धान्त तथा व्यवहार से परिचय हुआ। उन्हें विदेशी प्रशासनिक व्यवस्थाओं में अनेक नवीनताएँ और विशेषताएँ नजर आयीं। इन विशेषताओं और मौलिकताओं को भली प्रकार जानने के उद्देश्य से उनमें तुलनात्मक दृष्टिकोण(Comparative Approach) के प्रति रुचि जागृत होने लगी।
8. **लोक प्रशासन को वैज्ञानिकता की कसौटी पर परखना-** द्वितीय विश्व युद्ध के बाद विभिन्न सामाजिक शास्त्रों ने अपने विषय का अधिकाधिक वैज्ञानिक होने का दावा प्रस्तुत किया। लोक प्रशासन उन शास्त्रों से अधिक वैज्ञानिक होते हुए भी तुलनात्मक अध्ययन के अभाव में वैज्ञानिक होने का खोखला दावा नहीं पेश कर सका। 1947 में रॉबर्ट ए0 डॉल ने भी अपने एक निबन्ध में कहा है कि ''जब तक लोक प्रशासन का अध्ययन तुलनात्मक नहीं होगा तब तक वह विज्ञान नहीं माना जा सकता है।'' अतः लोक प्रशासन को वैज्ञानिकता की कसौटी पर खरा उतारने के लिए लोक प्रशासन के तुलनात्मक अध्ययन को पर्याप्त महत्व दिया जाने लगा।
9. **प्रशासन की विषय-वस्तु के व्यवस्थित स्पष्टीकरण हेतु-** प्रारम्भिक काल में लोक प्रशासन में विषय-वस्तु के व्यवस्थित स्पष्टीकरण का अभाव था। किसी भी विषय के लिए उसकी विषय-वस्तु का व्यवस्थित ढंग से स्पष्ट न होना हानिकारक माना जाता है। एडवर्ड शिल्स की यह मान्यता है कि ''विभिन्न समाजों की व्यवस्थित तुलना करके उनकी समरूपता एवं विलक्षणताओं को इंगित और स्पष्ट किया जा सकता है।'' अतः लोक प्रशासन की विषय-वस्तु के व्यवस्थित स्पष्टीकरण हेतु भी तुलनात्मक दृष्टिकोण का विकास उपयोगी था।

इस प्रकार परम्परागत दृष्टिकोणों की अपर्याप्तता, नये राष्ट्रों के सम्पर्क में आना आदि कई ऐसे कारण रहे जो तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन के विकास हेतु उत्तर दायी रहे।

1.3 तुलनात्मक लोक प्रशासन

अब तक आप जान गये होंगे कि तुलनात्मक प्रशासन को यदि सामान्य शब्दों में परिभाषित किया जाये तो कहा जा सकता है कि इसका आशय दो या दो से अधिक प्रशासनिक इकाईयों की संरचना और कार्यात्मकता की तुलना से है। यदि इसके अर्थ को और व्यापक रूप से समझना चाहें तो कुछ विद्वानों द्वारा दी गयी परिभाषाओं को देखने पर ये अर्थ और भी स्पष्ट हो जायेगा।

रिग्स के अनुसार, ''तुलनात्मक अध्ययन वह है जो मिश्रित रूप से अनुभवमूलक(Nomothetic) तथा परिस्थितिकीय (Ecological) हो।''

निमरोद रफाली ने लिखा है कि, ''तुलनात्मक लोक प्रशासन तुलनात्मक आधार पर लोक प्रशासन का अध्ययन है।''

फैरेल हैडी के अनुसार, ''तुलनात्मक लोक प्रशासन का सम्बन्ध मुख्य रूप से सिद्धान्त निर्माण प्रक्रिया से है।''
रूमकी वासु के अनुसार, ''तुलनात्मक लोक प्रशासन के द्वारा हमें विभिन्न देशों में अपनाये जाने वाले उन प्रशासनिक व्यवहारों की जानकारी मिलती है, जिन्हें अपने राष्ट्र की प्रणाली में अपनाया जा सकता है।''

..... ''वस्तुतः तुलनात्मक लोक प्रशासन विभिन्न प्रशासनिक व्यवस्थाओं का एक ऐसा तुलनात्मक अध्ययन है, जिसके निष्कर्षों के आधार पर लोक प्रशासन को अधिकाधिक वैज्ञानिक बनाने का प्रयास किया जाता है।''

1.3.1 तुलनात्मक लोक प्रशासन की विशेषताऐं

उपर्युक्त परिभाषाओं के विश्लेषण के आधार पर तुलनात्मक लोक प्रशासन की कुछ विशेषताऐं उभर के सामने आती हैं, जिनको निम्न बिन्दुओं के आधार पर देखा जा सकता है-

1. सर्वप्रथम तुलनात्मक लोक प्रशासन, लोक प्रशासन की एक अलग शाखा के रूप में विकसित हो रहा है।
2. यह लोक प्रशासन के अध्ययन के क्षेत्र में एक नई अवधारणा है।
3. इसके द्वारा दो या दो से ज्यादा देशों की व्यवस्थाओं या प्रशासनिक संगठनों के बीच तुलनात्मक अध्ययन व विश्लेषण किया जाता है।
4. तुलनात्मक लोक प्रशासन के माध्यम से विभिन्न देशों, राज्यों और संगठनों के बीच की दूरी को समाप्त करके उनके अनुभवों का लाभ उठाने का प्रयास किया जाता है।
5. इसमें परम्परागत सिद्धान्तों के स्थान पर वैज्ञानिक विधि पर ज्यादा बल दिया जाता है।
6. इसमें विशिष्टता के स्थान पर सामान्यीकरण की ओर जाने के प्रयास किये जाते हैं।
7. तुलनात्मक लोक प्रशासन पर्यावरणीय अध्ययन पर बल देता है और ऐसा मानता है कि लोक प्रशासन न केवल पर्यावरण से प्रभावित होता है बल्कि स्वयं भी पर्यावरण के घटकों को प्रभावित करता है।
8. पर्यावरणीय अध्ययन पर बल देने वाली अपनी प्रकृति के कारण ही तुलनात्मक लोक प्रशासन की एक और विशेषता उभर कर सामने आती है कि यह अन्य सामाजिक विज्ञानों से समन्वय स्थापित करने का प्रयास करता है। अर्थात् साधारण शब्दों में तुलनात्मक लोक प्रशासन अन्तरविषयी दृष्टिकोण अपनाने पर जोर देता है।

1.3.2 तुलनात्मक लोक प्रशासन की प्रकृति

तुलनात्मक लोक प्रशासन की प्रकृति, लोक प्रशासन विषय से भी अधिक वैज्ञानिक एवं तर्कसम्मत मानी जाती है। इस सम्बन्ध में रॉबर्ट डहाल का मानना है- ''जब तक लोक प्रशासन का अध्ययन तुलनात्मक नहीं बनाया जाता, तब तक लोक प्रशासन को विज्ञान मानने का दावा खोखला ही बना रहेगा।''

फैरेल हैडी ने तुलनात्मक लोक प्रशासन की प्रकृति को चार रूपों में विभक्त किया है- सुधरी हुई पारम्परिक प्रकृति, विकासमान प्रकृति, सामान्य प्रकृति का प्रारूप और मध्यवर्ती सिद्धान्तों का प्रारूप।

इस प्रकार तुलनात्मक लोक प्रशासन विभिन्न प्रशासनिक संस्थाओं तथा संगठनों के बीच परस्पर तुलना करने तथा विश्लेषित कर निष्कर्ष प्राप्त करने की प्रकृति रखता है। इसमें उन तथ्यों तथा समंकों को सर्वाधिक महत्व या प्राथमिकता प्रदान की जाती है जो सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए उत्तरदायी हैं अथवा वे समस्याएँ हैं जो सामाजिक-आर्थिक विकास के प्रतिफल स्वरूप उत्पन्न हुई हैं। सामान्य प्रणाली के प्रारूप से तात्पर्य है कि सामाजिक परिवेश के अनुरूप ही प्रशासन तंत्र संचालित होता है, अतः एक ऐसा मॉडल या प्रारूप निर्मित किया जाता है जो सामान्य रूप से समाज एवं प्रशासन पर लागू किया जा सके। मध्यवर्ती सिद्धान्तों के प्रारूप से तात्पर्य उन सिद्धान्तों के पालन से है, जो सभी पक्षों पर व्यावहारिक रूप से लागू किए जा सकते हैं तथा जिनका तुलनात्मक एवं विश्लेषण परीक्षण किया जा सकता है।

तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन के विकास के कारक जानने के बाद आइये अब इसके अर्थ को विस्तृत रूप में जानते हैं। सामान्य शब्दों में तुलनात्मक लोक प्रशासन से तात्पर्य ऐसे विषय से है, जिसके अन्तर्गत दो या दो से

अधिक प्रशासनिक इकाईयों की संरचना एवं कार्यात्मकता की तुलना की जाती है। ये तुलना विभिन्न प्रकार से की जा सकती है या यूँ कहें कि तुलना के प्रकार कुछ इस प्रकार से हो सकते हैं-

- संकर सांस्कृति अध्ययन- भिन्न-भिन्न संस्कृतियों में कार्यरत प्रशासनिक संगठनों का अध्ययन।
- अन्तरा-सांस्कृतिक एवं संकर राष्ट्रीय जब एक जैसी सांस्कृतिक व्यवस्था के दो देशों की प्रशासनिक व्यवस्थाओं का अध्ययन किया जाता है।
- अन्तर्देशीय अध्ययन- इसके अन्तर्गत एक ही देश के दो राज्यों के मध्य प्रशासनिक संस्थाओं का अध्ययन किया जाता है। जैसे- महाराष्ट्र और गुजरात के सचिवालयों का अध्ययन।
- संकर सामयिक- दो अलग-अलग कालों की प्रशासनिक व्यवस्था का तुलनात्मक अध्ययन करना संकर सामयिक अध्ययन कहलाता है। जैसे- मौर्यकालीन प्रशासन का मुगलकालीन प्रशासन से तुलनात्मक अध्ययन।
- संकर सांगठनिक- एक ही देश के मध्य नगरीय प्रशासन, वित्तीय प्रशासन, जिला प्रशासन आदि का अध्ययन।

इस प्रकार तुलना के विभिन्न स्वरूप स्पष्ट करते हैं कि, आधुनिक तुलनात्मक लोक प्रशासन का कार्यक्षेत्र बहुत विस्तृत हो गया है। लोक प्रशासन में तुलनात्मक सम्बन्धी दृष्टिकोणों को दो वर्गों में रखा जा सकता है-

व्यापक दृष्टिकोण, इसमें विभिन्न संस्थाओं के परिवेशों में सरकारी अभिकरणों, व्यापारिक निगमों आदि का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है।

संकुचित दृष्टिकोण, यह दृष्टिकोण रिग्स से सम्बन्धित है। रिग्स तुलनात्मक शब्द को थोड़ा प्रतिबन्धित करते हुए उसे केवल आनुभाविक तथा सिद्धान्तपरक अध्ययनों तक सीमित रखना चाहते हैं। रिग्स ने लोक प्रशासन के तुलनात्मक अध्ययन के रूप में तीन प्रकार की प्रवृतियों का वर्णन किया है- आदर्शात्मक से अनुभव सम्बन्धी उन्मुखता (Normative to Empirical), विशिष्टता से सामान्यपरकता अभिगम की ओर उन्मुखता (Ideographic to Nomothetic) और गैर-परिस्थितिकीय से परिस्थितिकीय (Non-Ecological to Ecological)।

1. **आदर्शात्मक से अनुभवमूलक उन्मुखता(Normative to Empirical)-** आदर्शात्मक अध्ययनों से तात्पर्य उन अध्ययनों से होता है, जिसमें प्रशासन द्वारा कुछ निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने की आवश्यकता पर बल दिया जाता है। अर्थात् केवल सैद्धान्तिक नियमों की व्याख्या करने या केवल सैद्वान्तिक नियमों की व्याख्या करने या केवल आदर्शों की चर्चा करने के बजाय उन सब परिस्थितियों को महत्व दिया जाना चाहिये जो वास्तव में हमारे सामने हैं तथा प्रशासन को प्रभावित करती है। ये विश्लेषण ''क्या होना चाहिये'' के स्थान पर ''क्या है'' पर अधिक ध्यान देता है। अनुभवमूलक अध्ययनों में तथ्यों के संकलन पर अधिक बल दिया जाता है इसी कारण ''इसमें क्या है'' यह आधारित वाक्य होता है।

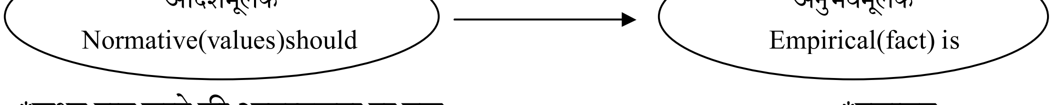

*लक्ष्य प्राप्त करने की आवश्यकता पर बल *प्रशासन

*पारम्परिक एवं निर्देशात्मक

2. **विशिष्टता से सामान्यपरकता अभिगम की ओर उन्मुखकता(Ideographic to Nomothetic)-** ''इडियोग्राफिक'' तथा ''नोमोथेटिक'' शब्द विशेष रूप से रिग्स द्वारा रचित शब्द है। ''इडियोग्राफिक'' अध्ययन किसी एक विशेष ऐतिहासिक घटना, एक विशेष प्रशासनिक समस्या, एक विशेष संस्था, एक

विशेष राष्ट्र, एक विशेष सांस्कृतिक-क्षेत्र अथवा एक विशेष जीवनी से सम्बन्धित होते हैं या यूँ कहा जा सकता है कि इन अध्ययनों में प्रशासनिक विश्लेषण की विषय-वस्तु कोई एक विशेष इकाई होती है। जबकि दूसरी ओर ''नोमोथेटिक'' अभिगम की विषय वस्तु गहन तुलनात्मक विश्लेषण पर आधारित होती है, और इसमें सदैव विशिष्टता की बजाय सामान्यता पर बल दिया जाता है या दूसरे शब्दों में यदि इस बात को समझना चाहें तो हम ये कह सकते हैं कि नोमोथेटिक (सामान्यपरकता) अध्ययन में उन तथ्यों को अधिक महत्व दिया जाता है जो सामान्यपरकता या व्यापकता लिये होते हैं। विशिष्टता की जगह सामान्यपरकता तभी आ सकती है, जब तुलनात्मक अध्ययन पर बल दिया जाये। इसके अध्ययन में गहन तुलनात्मक विश्लेषण पर आधारित सिद्धान्त निर्माण की प्रक्रिया पर बल दिया जाता है। रिग्स का मानना था कि अब तुलनात्मक लोक प्रशासन अपने पारम्परिक ''इडियोग्राफिक'' रूप को छोड़कर ''नोमोथेटिक'' रूप धारण कर रहा है।

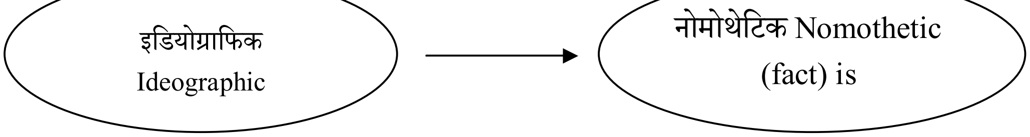

*इसमें अध्ययन मुख्यतः एक विशेष संस्था, एक विशेष राष्ट्र एवं विशेष सांस्कृतिक क्षेत्र, एक विशेष ऐतिहासिक घटना होता है।

*यह सामान्यीकरण तथा परिकल्पनाओं के निर्माण का प्रयास करता है।

गैर-परिस्थितिकीय अध्ययन से परिस्थितिकीय अध्ययन की ओर उन्मुखकता (Non-Ecological to Ecological)- रिग्स के अनुसार तीसरी प्रवृति परिस्थितिकीय परिप्रेक्ष्य से सम्बन्धित है। रिग्स का मानना था कि पारम्परिक अध्ययनों में प्रशासनिक संस्थाओं का विश्लेषण उनके आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक आदि पर्यावरणों के सन्दर्भों में कम किया जाता था, अतः उनके अनुसार पर्यावरण के प्रशासन तथा प्रशासन के पर्यावरण पर पड़ने पर प्रभाव का विश्लेषण बहुत कम होता था। लेकिन अब धीरे-धीरे इस बात को स्वीकार किया जाने लगा है कि गतिशील पर्यावरणों में काम करने वाली प्रशासनिक संस्थाओं का वास्तविक व्यवहार उनकी परिस्थितिकी के सन्दर्भ के बिना नहीं समझा जा सकता। इसी कारण आधुनिक तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययनों में प्रशासन और उसके पर्यावरण के बीच होने वाली आपसी क्रियाओं का गहन विश्लेषण करने का प्रयास किया जाता है, या यूँ कहा जाये कि तुलनात्मक अध्ययनों में प्रशासनिक संगठनों का अध्ययन उसके बाहरी वातावरण एवं परिस्थितिकीय स्थितियों को ध्यान में रख कर किया जाता है तो कुछ गलत नहीं होगा।

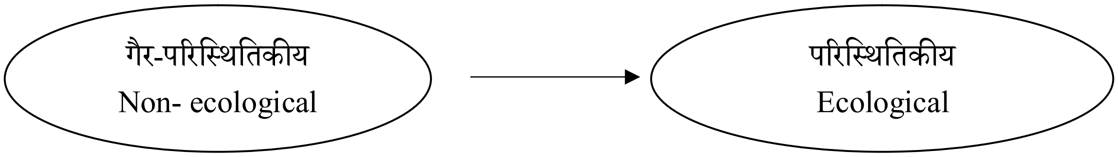

*प्रारम्भिक अध्ययन वाली स्थिति।
*प्रशासनिक संस्थाओं का विश्लेषण विभिन्न पर्यावरणों (आर्थिक, सामाजिक राजनीतिक, सांस्कृतिक आदि) के अन्तर्गत नहीं किया जाता था।
या
पर्यावरणीय कारकों का प्रशासनिक

*प्रशासनिक संस्थाओं का वास्तविक व्यवहार परिस्थिति के संदर्भ के बिना नहीं समझा जा सकता है।
*आधुनिक तुलनात्मक प्रशासन में प्रशासन तथा उसके पर्यावरण के बीच होने वाली अन्तःक्रियाओं का विश्लेषण किया जाता है।

संस्थाओं पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन
अनुपस्थित।

1.3.3 तुलनात्मक लोक प्रशासन के उद्देश्य

जैसा कि आपने अब तक तुलनात्मक लोक प्रशासन का अर्थ विभिन्न परिभाषाओं एवं विशेषताओं के आधार पर जाना, आप इस बात को भली भांति समझ गये होंगे कि तुलनात्मक प्रशासन विभिन्न प्रशासनिक संगठनों, संस्थाओं, अभिकरणों एवं विभागों की संरचनाओं तथा प्रक्रियाओं को समझता है ताकि विश्व स्तर पर या राष्ट्रीय स्तर पर कुछ ऐसे नियम बनाये जा सके जो पूरे प्रशासन को न केवल वैज्ञानिक आधार प्रदान करें बल्कि प्रशासन की समस्याओं के समाधान में भी सहायक हो सकें।

तुलनात्मक लोक प्रशासन के विभिन्न उद्देश्य हैं-

1. सभी प्रकार की प्रशासनिक समस्याओं, संरचना कार्यप्रणाली आदि का अध्ययन करके कुछ सामान्य नियमों और सिद्धान्तों की व्याख्या करना।
2. विभिन्न प्रशासनिक प्रणालियों की तुलनात्मक परिस्थिति को पहचानना एवं उनकी सफलताओं व असफलताओं के कारणों की जांच-पड़ताल करना।
3. लोक प्रशासन के अध्ययन से क्षितिज को व्यापक व्यवहारिक और वैज्ञानिक बनाना।
4. प्रशासनिक व्यवहारों में विभिन्न राष्ट्रों, संस्कृतियों, व्यवस्थाओं तथा पर्यावरण का विश्लेषण एवं व्याख्या करना।
5. प्रशासनिक सुधारों की कार्य नीति को समझना।

अतः यह कहा जा सकता है कि लोक प्रशासन को समृद्ध, व्यापक और वैज्ञानिक बनाना ही तुलनात्मक लोक प्रशासन का उद्देश्य है।

1.4 तुलनात्मक लोक प्रशासन का क्षेत्र

तुलनात्मक लोक प्रशासन का अर्थ समझने के बाद एक स्वभाविक सा प्रश्न ये उठता है कि तुलनात्मक लोक प्रशासन का अध्ययन किन-किन क्षेत्रों में किया जा सकता है? सामान्यतः लोक प्रशासन के अध्ययन का क्षेत्र विश्व के समस्त देशों की प्रशासनिक व्यवस्थाऐं मानी जाती हैं, या यूँ कह सकते है कि, तुलनात्मक लोक प्रशासन एक विश्वव्यापी लक्षण बन चुका है। विश्व के हर देश में तुलनात्मक-क्षेत्र पर बल दिया जाने लगा है। तुलनात्मक लोक प्रशासन का क्षेत्र उसकी तुलना करने की प्रकृति पर निर्भर करता है और तुलना का आधार उसके क्षेत्र को निश्चित करता है। इसके अध्ययन में निम्नलिखित बातों को सम्मिलित किया जा सकता है-

3. **सार्वजनिक तथा व्यक्तिगत प्रशासन का अध्ययन-** तुलनात्मक लोक प्रशासन के क्षेत्र के अन्तर्गत सार्वजनिक तथा व्यक्तिगत प्रशासन की निम्नलिखित बातों का अध्ययन किया जाता है- एक देश या संस्कृतिक की संरचनाओं का तुलनात्मक अध्ययन, अन्तर्राष्ट्रीय और अन्तः संस्कृति की संरचनाओं का तुलनात्मक अध्ययन और विभिन्न राष्ट्र और संस्कृतियों की घटनाओं का तुलनात्मक अध्ययन।
4. **प्रजातांत्रिक संस्थाओं का तुलनात्मक अध्ययन-** विभिन्न देशों की प्रजातांत्रिक संस्थाओं का तुलनात्मक अध्ययन भी तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन के क्षेत्र के अन्तर्गत आता है। इसमें इन संस्थाओं के कार्यों, गुण एवं महत्व आदि का अध्ययन किया जाता है जैसे उदाहरण के तौर पर भारत की प्रजातांत्रिक संस्थाओं की संयुक्त राज्य अमरीका या इंग्लैण्डकी ऐसी ही संस्थाओं के साथ तुलना किया जाना।
5. **प्रशासनिक नियंत्रण के विभिन्न साधनों का तुलनात्मक अध्ययन-** जिस प्रकार विभिन्न देशों की प्रजातांत्रिक संस्थाओं के गठन, कार्यों आदि का तुलनात्मक अध्ययन तुलनात्मक लोक प्रशासन के क्षेत्र

के अन्तर्गत माना है, उसी प्रकार विभिन्न देशों की कार्यपालिका, व्यवस्थापिक एवं न्यायपालिका प्रशासन पर नियंत्रण के किन साधनों का प्रयोग किया जाता है उन साधनों का तुलनात्मक अध्ययन भी इस विषय के क्षेत्र के अन्तर्गत आता है।

6. **कार्मिक-वर्ग की समस्याओं का तुलनात्मक अध्ययन-** तुलनात्मक लोक प्रशासन अपने क्षेत्र के अन्तर्गत विभिन्न देशों के कार्मिक-वर्ग के प्रशासन और उनकी विभिन्न समस्याओं के तुलनात्मक अध्ययन को भी समाहित करके रखता है। उदाहरण के लिये भारत एवं अमरीका के कार्मिक वर्ग के प्रशासन का तुलनात्मक अध्ययन।
7. **कार्यात्मक प्रशासन का तुलनात्मक अध्ययन-** तुलनात्मक लोक प्रशासन के क्षेत्र में शिक्षा, समाज तथा आर्थिक प्रशासन आदि विभिन्न प्रकार के कार्यात्मक प्रशासनों का भी तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है। उदाहरणर के तौर पर भारत व ब्रिटेन के शिक्षा प्रशासन का तुलनात्मक अध्ययन।
8. **अन्य प्रशासनों की तुलना-** तुलनात्मक लोक प्रशासन का क्षेत्र ना केवल उपरोक्त वर्णित पक्षों का तुलनात्मक अध्ययन समाहित करता है, बल्कि इसके अध्ययन में विदेशी प्रसाधन, अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं का प्रशासन, तुलनात्मक स्थानीय प्रशासन तथा मानव व्यवहार का भी तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है।

उपर्युक्त वर्णित तथ्य, तुलनात्मक लोक प्रशासन के क्षेत्र को समझने के लिये पर्याप्त प्रतीत होते हैं, परन्तु फिर भी यदि हम कुछ अन्य विद्वानों द्वारा तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन क्षेत्र को देखें, तो पाते हैं कि उन्होंने इसे तीन स्तरों में विभाजित किया- वृहत्स्तरीय अध्ययन, मध्यवर्ती अध्ययन और लघुस्तरीय अध्ययन।

1. **वृहत्स्तरीय अध्ययन-** सर्वप्रथम तुलनात्मक लोक प्रशासन का वृहत्स्तरीय अध्ययन आता है। इस अध्ययन में किसी एक देश की सम्पूर्ण प्रशासकीय व्यवस्था का दूसरे देश की सम्पूर्ण प्रशासकीय व्यवस्था के साथ तुलनात्मक अध्ययन का क्षेत्र शामिल किया जाता है। उदाहरण के तौर पर भारत की प्रशासनिक व्यवस्था का इंलैण्ड, जर्मनी आदि देशों की प्रशासनिक व्यवस्था से किया जाता है। इस अध्ययन में जब ''सम्पूर्ण'' क्षेत्र का तुलनात्मक अध्ययन करने की बात कही जाती है तो उसका अभिप्राय है कि तुलना किये जाने वाले राष्ट्रों के सभी प्रकार के पर्यावरण अर्थात् आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक पर्यावरणों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है।
2. **मध्यवर्ती अध्ययन-** मध्यवर्ती तुलनात्मक अध्ययन क्षेत्र में दो देशों की सम्पूर्ण प्रशासनिक व्यवस्था में से किसी एक बड़े अंग का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है, जैसे भारत और ब्रिटेन में नौकरशाही की तुलना, या भारत और अमरीका की स्थानीय सरकार का अध्ययन किया जाना। इस प्रकार के अध्ययन को मध्यवर्ती तुलनात्मक अध्ययन इसीलिये कहा जाता है, क्योंकि इसमें तुलना किये जाने वाले देशों की पूरी प्रशासनिक व्यवस्था का अध्ययन नहीं किया जाता है और ना ही उन देशों के किसी सूक्ष्म अंग की तुलना की जाती है बल्कि प्रशासन के एक बहुत बड़े भाग की तुलना दूसरे देश की उसी सतर की प्रशासनिक व्यवस्था से की जाती है।
3. **लघुस्तरीय अध्ययन-** सभी सामाजिक विज्ञानों में आजकल उपरोक्त दोनों अध्ययनों की अपेक्षा लघुस्तरीय अध्ययन अधिक प्रचलित होने लगा है और लोक प्रशासन इससे अछूता नहीं है। लघुस्तरीय अध्ययनों में किसी एक संगठन की दूसरे संगठन से तुलना की जाती है। सूक्ष्म अध्ययन प्रशासनिक प्रणाली के किसी छोटे (लघु) भाग का विश्लेषण होता है, अर्थात् इसमें अध्ययन का क्षेत्र छोटा और गहन होता है। उदाहरण के तौर पर भारत का दूसरे देशों के प्रशासनिक संगठनों की भर्ती या प्रशिक्षण प्रणाली का अध्ययन किया जाये। आजकल ऐसे अध्ययन अधिक प्रचलित भी हैं और इनको और उपयोगी भी माना जाता है।

1.5 तुलनात्मक लोक प्रशासन का महत्व

अब तक आपने पढ़ा कि किस प्रकार तुलनात्मक लोक प्रशासन की अवधारणाऐं समय की बदली परिस्थितियों में पारम्परिक दृष्टिकोण की अपर्याप्तता के कारण उभर कर सामने आयी और लोक प्रशासन के विद्वानों ने लोक प्रशासन को परम्परागत दृष्टिकोण के संकुचित आवरण से निकाल कर वैज्ञानिक दृष्टिकोण देने का प्रयास किया। आज तुलनात्मक लोक प्रशासन का महत्व व्यापक तौर पर स्वीकार कर लिया गया है। पिछले कुछ वर्षों में सामाजिक विज्ञानों में भी तुलनात्मक अध्ययन पर बल दिया जाने लगा है। विशेष तौर पर लोक प्रशासन को अधिकाधिक तौर पर वैज्ञानिक तथा उद्देश्यपूर्ण बनाने के लिये तुलनात्मक लोक प्रशासन प्रभावशाली रूप से बहुत प्रयत्नशील रहा है। आज संयुक्त राज्य अमेरिका, ब्रिटेन, भारत, जापान आदि देशों के महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन को शामिल कर लिया गया है। सबसे पहले 1948 में तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन को स्वतंत्र रूप से कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय में प्रारम्भ किया गया था और इसका श्रेय प्रो0 वाल्डो को जाता है।

तुलनात्मक लोक प्रशासन का महत्व इस बात से और भी ज्यादा बढ़ गया कि तुलना के बाद जो निष्कर्ष निकले उन्होंने तुलनात्मक लोक प्रशासन को और ज्यादा वैज्ञानिक बना दिया। विज्ञान के समान इसके सिद्धान्त विकसित हो गये हैं। अब तुलनात्मक लोक प्रशासन के कारण लोक प्रशासन में तुलना की जाती है, विश्लेषण किया जाता है और निष्कर्ष निकाले जाते हैं। दूसरा कारण टेलर का वैज्ञानिक प्रबन्ध रहा जिसकी अवधारणा ने इसे और अधिक वैज्ञानिक बना दिया है। इस प्रकार यदि हम ये कहते हैं कि तुलनात्मक लोक प्रशासन का महत्व लोक प्रशासन के वैज्ञानिक एवं सुव्यवस्थित अध्ययन के अर्थ में, शैक्षिक उपयोगिता के लिये तथा ऐसी अन्य प्रशासकीय प्रणालियों की जानकारी के लिये जो अन्य राष्ट्रों में होने वाले प्रशासनिक सुधारों व अन्य परिवर्तनों को उजागर करती है, के लिये है।

तुलनात्मक लोक प्रशासन के महत्व के सन्दर्भ में एक और तथ्य है, जिस पर इस सन्दर्भ में गौर किया जाना चाहिये वो है- प्रशासकीय राज्य की अवधारणा। आज के आधुनिक राज्य जिनका स्वरूप लोक कल्याणकारी है, उसमें राज्य के एक ऐसे स्वरूप ने जन्म लिया है। जिसमें प्रशासन का मानव जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में प्रवेश इस हद तक बढ़ गया है कि प्रशासन के असफल होते ही हमारी सभ्यता भी असफल हो सकती है। तुलनात्मक लोक प्रशासन के अन्तर्गत अब ये बात ज्यादा आसान हो गया है कि किसी भी विकासशील अथवा विकसित देश की प्रशासनिक प्रणाली का अध्ययन करके उसकी विशेषताओं को जाना जाये और ये देखा जाये कि क्या वे विशेषताऐं अपने देश के लिये उपयोगी हैं या नहीं, यदि हैं, तो उन्हें स्वीकार कर लिया जाये अन्यथा अस्वीकार।

विभिन्न देशों की सामाजिक, आर्थिक और भौगोलिक स्थितियों में भी बहुत अन्तर होता है और इसी कारण उनकी प्रशासनिक व्यवस्था में भी अन्तर पाया जाता है। प्रशासकीय सच्चाई का पता लगाने के लिये किसी भी देश के अन्दरूनी कारकों और उनके तुलनात्मक प्रभाव को समझना आवश्यक होता है। इन तुलनाओं के माध्यम से विभिन्न संस्कृतियों एवं विभिन्न पर्यावरणों के विषय में जानकारी प्राप्त की जाती है और ये जानने का प्रयास किया जाता है कि किस कारक का किसी प्रशासनिक व्यवस्था के किस अंग पर क्या प्रभाव पड़ रहा है। इस प्रकार तुलनात्मक लोक प्रशासन इस दृष्टि से भी बहुत महत्वपूर्ण है कि इस आधार पर यदि प्रशासन की तुलना की जाती है तो इससे प्रशासनिक ज्ञान में वृद्धि होती है और साथ ही समस्याओं को सुलझाने में सहायता मिलती है।

विकासात्मक लोक प्रशासन के लिये भी तुलनात्मक लोक प्रशासन बहुत महत्वपूर्ण है। इसका कारण ये है कि दोनों का ही उदय लगभग द्वितीय विश्व युद्ध के बाद हुआ। इसको इस प्रकार से समझा जा सकता है कि अब विकासात्मक प्रशासन को अनेक नये विकास कार्यक्रमों एवं योजनाओं के सन्दर्भ में नयी-नयी चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। इसके लिये प्रशासनिक सुधार और विकास दोनों आवश्यक हो जाते हैं। तुलनात्मक लोक

प्रशासन के विद्वान विभिन्न देशों की प्रशासनिक व्यवस्थाओं का सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक विवेचन करके ये बताने का प्रयास करते हैं कि विकास प्रशासन के लिये किस प्रशासकीय तकनीक को लागू किया जाये तथा कुशलता बढ़ाने के लिये प्रशासकीय संरचना में किस प्रकार के परिवर्तन किये जाये। तुलना के द्वारा प्राप्त निष्कर्ष विकास प्रशासन का मार्गदर्शन करते हैं।

लोक प्रशासन के विद्वानों द्वारा प्रशासनिक व्यवस्थाओं का वैज्ञानिक विश्लेषण करके प्रशासकीय व्यवहार के सम्बन्ध में सामान्य सिद्धान्त प्रस्तुत करने जैसे विशेष उत्तर दायित्व को निभाने में भी तुलनात्मक लोक प्रशासन मदद करता है और महत्व पूर्ण बन जाता है। साधारण शब्दों में कहें तो लोक प्रशरासन के विद्वानों का ये विशेष उत्तर दायित्व होता है कि वे प्रशासनिक व्यवस्थाओं का वैज्ञानिक विश्लेषण कर प्रशासकीय व्यवहार के सम्बन्ध में सामान्य सिद्धान्त प्रस्तुत करें। परन्तु ये विद्वान अपना ये उत्तरदायित्व तभी निभा सकते हैं जबकि वे प्रशासनिक संस्थाओं, व्यवस्थाओं व प्रक्रियाओं में जो विविधता या भिन्नता है इसका तुलनात्मक विश्लेषण करके न केवल स्वयं समझने का प्रयत्न करें बल्कि उस सम्बन्धित देश के प्रशासकों के लिये भी कुछ सुझाव प्रस्तुत करें। इसीलिये तुलना केन्द्र-बिन्दु बन गया है जो तुलनात्मक लोक प्रशासन को महत्वपूर्ण बनाता है।

इस प्रकार तुलनात्मक लोक प्रशासन के महत्व को उपरोक्त वर्णन से समझने के पश्चात हम कुछ विद्वानों द्वारा तुलनात्मक लोक प्रशासन के महत्व के सम्बन्ध में दी गयी परिभाषाओं को भी देखते हैं, जिनसे तुलनात्मक लोक प्रशासन की महत्ता भली-भांति समझी जा सकती है।

विलियम ऐ0 सिफिन(W.A. Siffin)ने अपनी पुस्तक, "Towards the Comparative Study of Public Administration" में कहा गया है कि ‘‘यदि विज्ञान मूलतः प्राविधि की बात है तो तुलनात्मक लोक प्रशासन का प्रमुख मूल्य यह है कि इसने वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रदान किया है।’’

रॉबार्ट उसाल ने अपने निबन्ध, "The Science of Public Administration 1947" में तुलनात्मक लोक प्रशासन के महत्व को दर्शाते हुए कहा कि ‘‘जब तक लोक प्रशासन के अध्ययन को तुलनात्मक नहीं बनाया जायेगा, तब तक वह विज्ञान नहीं बन सकता है।’’

एडबर्ड शिल्स कहते हैं कि ‘‘विभिन्न समाजों की व्यवस्थित तुलना करके उनकी समरूपता विलक्षणताओं को इंगित और स्पष्ट किया जा सकता है।’’

तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन की इस अवधारणा में राजनीति विज्ञान तथा लोक प्रशासन की दूरियों को कम किया है जो प्रशासन एवं नीति विज्ञान के कार्यानवयन के लिए आवश्यक भी है।

इस प्रकार तुलनात्मक लोक प्रशासन के गुण/लाभ/महत्व को निम्न बिन्दुओं में सरलता से प्रदर्शित किया जा सकता है-

1. तुलनात्मक लोक प्रशासन ने लोक प्रशासन के अध्ययन को अन्तर्विषयक बनाया।
2. तुलनात्मक लोक प्रशासन के द्वारा ही लोक प्रशासन के सार्वभौमिक सिद्धान्तों की रचना करना संभव हो सकी है या दूसरे शब्दों में प्रशासन के क्षेत्र में सामान्यीकरण को बढ़ावा दिया है।
3. इसके कारण सामाजिक अनुसंधान का क्षेत्र जो पूर्व में बहुत सीमित, संकीर्ण तथा स्थूल प्रकृति का था वो बहुत व्यापक तथा गहन हुआ है।
4. तुलनात्मक लोक प्रशासन के द्वारा अध्ययन पद्धति में वैज्ञानिक दृष्टिकोण को अपनाया जाता है, जिसके कारण अध्ययन का एक व्यापक दृष्टिकोण उभर कर सामने आया है।
5. तुलनात्मक लोक प्रशासन ने ही विश्व के विभिन्न देशों की प्रशासनिक व्यवस्थाओं के मध्य तुलना आदि विश्लेषण को बढ़ावा दिया है, जिसमें एक-दूसरे के अनुभव से सीखा जा सकता है तथा कुछ सार्थक निष्कर्ष भी निकाला जा सकता है।

6. इसके द्वारा विभिन्न देशों के मध्य प्रशासनिक विचार संस्थाऐं प्रशिक्षण की तकनीकी, नियम एवं प्रक्रियाओं का आदान-प्रदान होने लगा।
7. तुलनात्मक लोक प्रशासन के द्वारा विकास के लिये उत्तरदायी तत्वों की पहचान करना संभव हो सका, जो कि विकासशील देशों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।
8. तुलना के आधार पर प्रशासनिक संगठनों के आदर्श रूप और उपयोगी तरीकों की खोज सम्भव हो सकी है, जिन्होंने प्रशासन को अधिक कार्यकुशल, मितव्ययी और प्रभावशाली बनाने में योगदान दिया है।
9. तुलनात्मक लोक प्रशासन के द्वारा लोक प्रशासन के क्षेत्र को बहुत विस्तृत कर दिया गया है, क्योंकि इससे विभिन्न देशों की प्रशासनिक व्यवस्थाओं का उर्ध्वाधर एवं सामानान्तर अध्ययन किया जाने लगा है। इससे लोक प्रशासन के क्षेत्र को एक संगठन एक देश एवं एक संस्कृति से निकाल कर संकर(Hybrid) सांस्कृतिक, संकर राष्ट्रीय एवं संकर कालिक बनाया है।
10. विभिन्न देशों की संस्थाओं/संगठनों से प्राप्त ज्ञान का प्रयोग कर, प्रशासनिक व्यवस्थाओं की कार्यकुशलताओं में वृद्धि की जा सकती है।
11. उस पद्धति के कारण लोक प्रशासन के विद्यार्थियों, वैज्ञानिकों तथा प्रशासकों को दूसरे देशों की व्यवस्था को समझने में मदद मिलती है तथा ज्ञान का क्षेत्र भी व्यापक हुआ है।

इस प्रकार तुलनात्मक लोक प्रशासन एक वैज्ञानिक प्रवृति की विश्वव्यापी अवधारणा है जो कुछ सामान्यीकृत सिद्धान्त विकसित करने को उत्सुक है।

अभ्यास प्रश्न-

1. तुलनात्मक लोक प्रशासन का सम्बन्ध किससे है?
2. किस विद्वान तुलनात्मक लोक प्रशासन से सम्बन्धित नहीं है?
3. तुलनात्मक लोक प्रशासन किस बात पर बल देता है?
4. ''द इकोलॉजी ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन'' के लेखक कौन हैं?

1.6 सारांश

प्रस्तुत अध्याय से आप ये जान गये होंगे कि तुलनात्मक लोक प्रशासन, लोक प्रशासन के ज्ञान की एक नयी शाखा है तथा परम्परागत लोक प्रशासन से सर्वथा भिन्न है। तुलनात्मक लोक प्रशासन एक नवीन अवधारणा है जो दो या अधिक प्रशासनों के अध्ययन पर बल देती हैं। तुलनात्मक लोक प्रशासन के द्वारा विभिन्न देशों तथा स्तरों पर प्रवर्तित प्रशासनिक सुधारों की कार्यनीति को समझने तथा लोक प्रशासन के क्षितिज को अधिक व्यापक, वैज्ञानिक और व्यवहारिक बनाने का प्रयास किया जाता है। एफ0 डब्ल्यू0 रिग्स ने लोक प्रशासन के तुलनात्मक अध्ययन के क्रम में तीन प्रकार की प्रवृत्तियों का वर्णन किया जो ''क्या होना चाहिये'' के स्थान पर ''क्या है'' पर बल देती है तथा विशिष्टता अर्थात् किसी एक संगठन व्यक्ति या समाज के अध्ययन के स्थान पर इन तथ्यों को अधिक महत्व देती हैं जो सामान्यपरकता या व्यापकता लिये होते हैं। साथ ही रिग्स ने तीसरी प्रवृत्ति के रूप में बल दिया कि, लोक प्रशासन को प्रभावित करने वाले सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक तथा भौगोलिक पर्यावरण का भी गहनता से अध्ययन किया जाना चाहिये।

तुलनात्मक लोक प्रशासन का क्षेत्र विश्वव्यापी है। ये दो या अधिक देशों के सम्पूर्ण प्रशासकीय ढाँचे का वृहद स्तर या किसी एक देश के प्रशासनिक-तन्त्र के किसी एक भाग का दूसरे देश के उसी भाग से मध्य स्तरीय या लघु अर्थात् किसी एक इकाई की एक समस्या, कार्यप्रणाली, प्रक्रिया आदि का सूक्ष्म अध्ययन करता है। इस दृष्टि से आज के युग में तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययनों ने प्रशासन के क्षेत्र में सिद्धान्त निर्माण तथा सामान्यीकरण को बढ़ावा दिया है तथा इस पद्धति के कारण न केवल विभिन्न देशों के मध्य तुलना व विश्लेषण कर उनके

अनुभव से सीखने में मदद मिली, बल्कि इस अध्ययन पद्धति में वैज्ञानिक दृष्टिकोण को अपनाये जाने के कारण विषय का क्षितिज विस्तृत हुआ है।

1.7 शब्दावली

मान्यताऐं- स्वीकृत बात; तथ्य, अवरोधी- रोकने वाला, संकुचित- संकीर्ण, तंग, सँकरा, यथार्थ- सत्य जैसा होना चाहिए, परिवेश- वातावरण, माहौल, सामयिक- समायानुसार, वर्तमान समय का, आनुभविक- अनुभव, प्रयोग आदि के आधार पर प्राप्त होने वाला, सिद्धान्तपरक- वह सिद्धान्त तथा कार्य जिसमें परम्पराबद्ध सिद्धान्त या मत को सार्थक माना जाता है, गतिशील- उन्नतिशील, चलने वाला, क्रियाशील, घटक- किसी घटना, रचना या किसी परिणाम में अहम् भूमिका निभाने वाला आधार-तत्व, समाहित - एकत्र किया हुआ, संग्रहित।

1.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. प्रशासनिक व्यवस्थाओं, प्रशासनिक नियमों व प्रशासनिक संस्कृति की तुलना से, **2.** वुडरो विल्सन, **3.** परिस्थिति कारकों, सामान्यीकरण व अनुभवमुलता पर, **4.** फ्रेड रिग्स

1.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ0 सुरेन्द्र कटारिया, तुलनात्मक लोक प्रशासन, आर0बी0एस0ए0 पब्लिशर्स, जयपुर- 2013
2. डॉ0 आनन्द अवस्थी, तुलनात्मक लोक प्रशासन, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा- 2004
3. टी0 एन0 चतुर्वेदी, तुलनात्मक लोक प्रशासन, रिसर्च पब्लिकेशन- 1995

1.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. रमेश के0 अरोड़ा, तुलनात्मक लोक प्रशासन, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी।
2. एम0 पी0 शर्मा, बी0एल0 सदाना, हरप्रीत कौर, लोक प्रशासन-सिद्धान्त एवं व्यवहार, किताब महल, इलाहाबाद-2015
3. अनिल गुप्ता, महिपाल चारण हिलोडी, तुलनात्मक लोक प्रशासन, यूनिवर्सिटी बुक हाउस, जयपुर- 2005

1.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. तुलनात्मक लोक प्रशासन की परिभाषा दीजिये तथा आधुनिक समय में इसकी प्रकृति एवं क्षेत्र की व्याख्या कीजिये।
2. तुलनात्मक लोक प्रशासन के क्षेत्र एवं महत्व की विवेचना कीजिये।
3. उन तत्वों की विवेचना कीजिए जिनके फलस्वरूप द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात तुलनात्मक लोक प्रशासन का विकास हुआ।

इकाई- 2 तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन के दृष्टिकोण

इकाई की संरचना

2.0 प्रस्तावना
2.1 उद्देश्य
2.2 दृष्टिकोण का अभिप्राय एवं उपयोगिता
2.3 तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन का परम्परागत दृष्टिकोण
2.3.1 कानूनी दृष्टिकोण
2.3.2 ऐतिहासिक दृष्टिकोण
2.3.3 विषय-वस्तु दृष्टिकोण
2.3.4 राजनीतिक दृष्टिकोण
2.3.5 वैज्ञानिक दृष्टिकोण
2.3.6 संस्मरणात्मक दृष्टिकोण
2.4 तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन का अर्वाचीन दृष्टिकोण
2.4.1 संरचनात्मक-कार्यात्मक दृष्टिकोण
2.4.1.1 प्रकार्य एवं संरचनाऐं
2.4.1.2 संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण की विशेषताऐं
2.4.1.3 संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण के प्रमुख तत्व
2.4.1.4 संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण की आलोचनाऐं एवं सीमाऐं
2.4.2 परिस्थितिकीय दृष्टिकोण
2.4.2.1 परिस्थितिकीय दृष्टिकोण की विशेषताऐं
2.4.2.2 परिस्थितिकी उपागम की आलोचना या सीमाऐं
2.5 तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन का व्यवहारवादी दृष्टिकोण
2.5.1 व्यवहारवाद का विकास
2.5.2 व्यवहारवाद की विशेषताऐं
2.5.3 व्यवहारवादी दृष्टिकोण के लोक प्रशासन पर प्रभाव
2.5.4 व्यवहारवादी दृष्टिकोण की आलोचना
2.6 सारांश
2.7 शब्दावली
2.8 अभ्यास के प्रश्नों के उत्तर
2.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
2.11 निबंधात्मक प्रश्न

2.0 प्रस्तावना

ज्ञान के अध्ययन की विभिन्न शाखाओं का अध्ययन किस प्रकार से किया जाये ये उस विषय की प्रकृति पर निर्भर करता है। विज्ञान व सामाजिक विज्ञान दोनों में ही अध्ययन की विभिन्न पद्धतियों का अध्ययन किया जाता है। विज्ञान का अभिप्राय ही तथ्यों पर आधारित क्रमबद्ध अध्ययन होता है अर्थात् विज्ञान सामान्य बातों को भी बिना तर्कों तथा सत्यों के आधार पर परीक्षण किये बिना स्वीकार्य नहीं करता है और सिद्धान्त का निर्माण भी नहीं कर

सकता है। वहीं दूसरी ओर हम सामाजिक विज्ञान की बात करें तो हम पाते हैं कि सामाजिक विज्ञान मानव व्यवहार से जुड़े होते हैं अतः इनके अध्ययन के लिये कोई एक दृष्टिकोण पर्याप्त नहीं हो सकता है, उन्हें सभी सम्भव दृष्टिकोणों का अध्ययन करके ये देखना होता है कि वे किस दिशा में और किस परिणाम की ओर ले जाते हैं। लोक प्रशासन भी सामाजिक विज्ञान का एक ऐसा ही विषय है जिसके सिद्धान्त पूरी तरह से प्राकृतिक विज्ञानों जैसे नहीं होते हैं जिनका परीक्षण किया जा सकता है। लोक प्रशासन को विज्ञान की तरह विकसित करने, इनके सिद्धान्तों तथा मान्यताओं का परीक्षण करने एवं इस विषय का विधिवत् अध्ययन करने के लिये कुछ दृष्टिकोण अपनाये गये हैं। इस अध्याय में हम तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन के लिये प्रचलित सभी दृष्टिकोणों या उपागमों का विस्तृत अध्ययन करेंगे।

2.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- लोक प्रशासन के अध्ययन में प्रचलित विभिन्न प्रकार के दृष्टिकोणों को जान पायेंगे।
- विभिन्न दृष्टिकोणों की विशेषताऐं व विषय में उनके अध्ययन की प्रासंगिकता को भी भली-भाँति समझ पायेंगे।

2.2 दृष्टिकोण का अभिप्राय एवं उपयोगिता

जैसा कि इस इकाई की प्रस्तावना में आपने पढ़ा कि लोक प्रशासन एक सामाजिक विज्ञान है और यह मानव व्यवहार तथा समाज से जुड़ा है। मानव व्यवहार एवं समाज से जुड़े व्यवहारों के सिद्धान्त पूर्णतया प्राकृतिक विज्ञानों जैसे नहीं होते हैं और इनका परीक्षण, प्राकृतिक विज्ञानों की भांति प्रयोगशालाओं में नहीं किया जा सकता है। अब प्रश्न यह उठता है कि क्या सामाजिक विज्ञानों के लिये कोई नियम विकसित किये जा सकते हैं या नहीं? इस प्रश्न का उत्तर है कि, चूँकि मानव की बौद्धिक समस्याऐं बहुत विकसित जटिल और अस्थिर प्रकृति की होती हैं तो ऐसे में सिद्धान्त व नियम निर्धारण में बाधाऐं तो आती हैं, लेकिन फिर भी कुछ नियम ऐसे होते हैं जो समाज विज्ञानों में भी विकसित किये जाते हैं। सामाजिक विज्ञानों के अध्ययन के लिये कुछ विशेष प्रकार की अध्ययन पद्धति या दृष्टिकोण(Approach) या उपागम अपनाये जाते हैं।

दृष्टिकोण का अर्थ होता है मानकों का एक ऐसा समूह जिसके आधार पर सैद्धान्तिक विचार-विमर्श के लिये प्रश्न और आधार सामग्री लेने या छोड़ने का निर्णय लिया जाता है। इसी बात को यदि सरल भाषा में समझना चाहें तो ये कहा जा सकता है कि दृष्टिकोण या उपागम या वैचारिक प्रतिमान से तात्पर्य उस मार्ग या विधि-प्रणाली से है जो किसी लक्ष्य तक पहुँचाने में सहायक सिद्ध होती है। ये उपागम भी आसानी से तैयार नहीं होते बल्कि बहुत लम्बे अध्ययनों, शोधों तथा विश्लेषणों के बाद ही निर्मित हो पाते हैं।

एलवुड ने समाज विज्ञानों के लिये वैज्ञानिक पद्धति का महत्व बताते हुए कहा था कि ''जीव विज्ञान के लिये जो महत्व सूक्ष्मदर्शी का, खगोल विज्ञान के लिये जो उपयोग दूबीन का है; वही उपयोग और महत्व समाज विज्ञानों के लिये 'वैज्ञानिक पद्धति' का है।''

यही वैज्ञानिक पद्धतियां, उपागम या अभिगम या दृष्टिकोण कहलाती है। इस सम्पूर्ण वर्णन के बाद उपागम या दृष्टिकोण शब्द की कुछ सामान्य सी विशेषताऐं इंगित की जा सकती हैं-

1. उपागम या दृष्टिकोण अध्ययन विधि को सरल और नियंत्रित बनाते हैं।
2. ये किसी भी अध्ययन को दिशा से भटकने व उसके मार्ग में आने वाली बाधाओं से बचाते हैं।
3. उपागमों के आधार पर ही ना केवल पुराने सिद्धान्तों का परीक्षण सम्भव हो पाता है, बल्कि नये-नये सिद्धान्तों का निर्माण भी किया जा सकता है।
4. उपागम ही विषय को वैज्ञानिक आधार प्रदान करते हैं।

5. ये उपागम या दृष्टिकोण ही किसी भी विषय को प्रमाणिकता और विश्वसनीयता प्रदान करते हैं।

इस प्रकार अब तक के सम्पूर्ण विवरण के बाद आप ये समझ ही गये होंगे कि समाज विज्ञान के विभिन्न विषयों जिसमें लोक प्रशासन भी शामिल है, में किसी एक लक्ष्य तक पहुँचाने में जो प्रणाली या मार्ग या विधि सहायक सिद्ध होती है वो उपागम या दृष्टिकोण कहलाता है। इन दृष्टिकोणों के माध्यम से ही उस विषय का विद्यार्थी अनुसंधान की दृष्टि से विषय को समझ सकता है और उस विषय की व्याख्या भी उसी दृष्टिकोण से कर सकता है।

दृष्टिकोण का अगला चरण सिद्धान्त कहलाता है। जब दृष्टिकोण का कार्य विचाराधीन विषय के बारे में समस्याओं और आधार सामग्री के चुनाव से आगे निकल जाता है, तब दृष्टिकोण सिद्धान्त का रूप धारण कर लेता है। सिद्धान्त वे प्रस्थापनाऐं हैं, जिनसे किसी वस्तु की व्याख्या करने का प्रयास किया जाता है। अर्थात् सिद्धान्त का मुख्य कार्य व्याख्या करना है।

दृष्टिकोण या उपागम शब्द का अभिप्राय समझने के पश्चात, आइये अब तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन के लिये दृष्टिकोणों की आवश्यकता, उपयोगिता और प्रकार आदि पर विस्तृत चर्चा करते हैं।

जैसा कि आप जानते हैं कि, लोक प्रशासन का अध्ययन एक पृथक विषय के रूप में सर्वप्रथम संयुक्त राज्य अमरीका में प्रारम्भ हुआ था। सन् 1887 में वुडरो विल्सन द्वारा, ''प्रशासन का अध्ययन''(A Study of Administration) पर लिखा गया एक निबन्ध प्रकाशित हुआ, जिसे इस अध्ययन क्षेत्र की प्रथम युग प्रवर्तक घटना माना जाता है। इस समय तक लोक प्रशासन से सम्बन्धित अवधारणाऐं व व्याख्याऐं राजनीति विज्ञान विषय के साथ पढ़ाई जाती थी। विल्सन के इस निबन्ध की विषय-वस्तु का उद्देश्य प्रशासन को राजनीति से अलग एक स्वतंत्र विषय के रूप में प्रतिष्ठित करना था। प्रो0 वाल्डो ने भी वुडरो विल्सन को एक विधा के रूप में लोक प्रशासन का जनक माना और यह नितान्त सही है। लोक प्रशासन को राजनीति विज्ञान से पृथक अध्ययन के रूप में प्रतिष्ठित करने में एल0 डी0 व्हाइट की रचना 'Introduction to the study of Public Administration' का महत्वपूर्ण योगदान है। इस पुस्तक में एल0 डी0 व्हाईट ने लोक प्रशासन की कार्यविधियों, अवधारणाओं, नियमों तथा सिद्धान्तों को सशक्त रूप से प्रस्तुत किया। अर्थात् प्रारम्भिक काल में शासन और प्रशासन के मध्य गहन सम्बन्ध को पृथक करके नहीं देखा गया था, लेकिन कालान्तर में प्रशासनिक सिद्धान्तों, प्रक्रियाओं तथा कार्यप्रणाली को राजनीति विज्ञान से पृथक करके देखा जाने लगा और इस विषय को एक सैद्धान्तिक मान्यता मिलने में सहायता प्राप्त हुई। चूँकि लोक प्रशासन एक सामाजिक विज्ञान है और लोक सेवक सामाजिक व्यवहार से प्रभावित होते हैं। अतः लोक प्रशासन के अध्ययन से सम्बन्धित उपागम भी अन्य सामाजिक विज्ञानों, जैसे राजनीति विज्ञान तथा समाजशास्त्र इत्यादि में प्रचलित उपागमों से प्रभावित है।

तुलनात्मक लोक प्रशासन अपेक्षाकृत एक नवीन विषय है और प्रारम्भ में हर नये विषय और स्वतंत्र विषय के सामने महत्वपूर्ण समस्या यह उत्पन्न होती है कि, तुलना का क्षेत्र क्या होना चाहिये? तथा अध्ययन के प्रति क्या दृष्टिकोण अपनाया जाये? ज्ञान की विभिन्न शाखाओं के अध्ययन के लिये दो पद्धतियों का प्रयोग किया जाता है- आगमनात्मक (Inductive) निगमनात्मक(Deductive) पद्धति।

आगमनात्मक पद्धति के अन्तर्गत हम विशेष वस्तु का विश्लेषण, पर्यवेक्षण तथा परीक्षण करने के बाद सामान्य सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हैं। अर्थात् विशेष से सामान्य की ओर अग्रसर होते हैं तथा निगमनात्मक पद्धति में हम सामान्य से विशेष की ओर अग्रसर होते हैं।

सामान्यतया सामाजिक विज्ञानों के अध्ययन के लिये कोई भी एक दृष्टिकोण पर्याप्त नहीं हो सकता। उन्हें सभी सम्भव दृष्टिकोणों का अध्ययन करके ये देखना होता है कि, वे उसे किस दिशा में और किस परिणाम की ओर ले जाते हैं। तुलनात्मक लोक प्रशासन की विचारधारा आगमनात्मक(Inductive) प्रकृति की है, जिसमें विशेष से सामान्य की ओर बढ़ने का प्रयास किया जाता है। तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन के लिये अनेक उपागम प्रचलित है, लेकिन इसके साथ भी, यही समस्या उत्पन्न होती है कि, अध्ययन के प्रति क्या दृष्टिकोण अपनाया

जाये? प्रारम्भ में तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन के लिये उन परम्परागत दृष्टिकोणों को अपनाने का प्रयास किया गया जो लोक प्रशासन के अध्ययन में अपनाये जा रहे थे। किन्तु शीघ्र ही इन दृष्टिकोणों की अपर्याप्तता स्पष्ट हो गयी। और अब विषय को अधिक प्रयोगात्मक अनुभवपूरक और व्यवहारिक बनाने के लिये ऐसे दृष्टिकोणों की खोज प्रारम्भ हुई जो व्यापक और गहन हो, जिनमें विशेषीकरण के साथ-साथ व्यवस्था की समग्रता का ज्ञान हो सके तथा अध्ययन विषय की विभिन्नताओं के सन्दर्भ में आँका जा सके। तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन के दृष्टिकोणों को मूल रूप से दो भागों में बांटा जा सकता है-

- परम्परागत दृष्टिकोण(Traditional Approach)
- अर्वाचीन दृष्टिकोण(Contemporary Approach)

इन दोनों दृष्टिकोणों के बारे में विस्तार से विवेचन करने से पहले आइये एक आरेख के द्वारा इन पर एक दृष्टि डाल ली जाये-

तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन के दृष्टिकोण

परम्परागत दृष्टिकोण	अर्वाचीन दृष्टिकोण
कानूनी दृष्टिकोण	संरचनात्मक कार्यात्मक दृष्टिकोण
ऐतिहासिक दृष्टिकोण	परिस्थितिकीय दृष्टिकोण
विषय-वस्तु दृष्टिकोण	व्यवहारवादी दृष्टिकोण
राजनीतिक दृष्टिकोण	
वैज्ञानिक दृष्टिकोण	
जीवन-वृत्तात्मक दृष्टिकोण	

*इनका विस्तृत अध्ययन आगे के पृष्ठों में किया जा रहा है।

2.3 तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन का परम्परागत दृष्टिकोण

तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन के विभिन्न उपागमों के बारे में दर्शाये गये आरेख के आधार पर हम सबसे पहले परम्परागत दृष्टिकोण को विस्तार से जानेंगे।

जैसा कि इस दृष्टिकोण के नाम से ही परिलक्षित होता है कि, ये प्रारम्भिक रूप में उपस्थित लोक प्रशासन के विचारकों का दृष्टिकोण है, इसीलिये ये परम्परागत(Traditional) दृष्टिकोण कहलाता है। इस दृष्टिकोण को परम्परागत दृष्टिकोण के अतिरिक्त अन्य कई नामों से भी जाना जाता है जैसे- संगठनात्मक, वैधानिक, ऐतिहासिक, औपचारिक, विशुद्ध, विचारात्मक और वर्णनात्मक दृष्टिकोण(structural, legal, historical, formal, normative, descriptive and perspective approach)। इस दृष्टिकोण का समर्थन करने वाले प्रमुख समर्थक हैं- व्हाइट, विलोबी एवं एण्डरसन आदि।

परम्परागत दृष्टिकोण की मान्यता है कि लोक प्रशासन की मूल समस्याऐं संगठन के कानूनी ढ़ाँचे से जन्म लेती हैं, जो संगठन के अन्तर्सम्बन्धों को, औपचारिकता से प्रस्तुत कर उसकी समस्याओं को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करती हैं। इस दृष्टिकोण के समर्थक संगठन के सिद्धान्त, संगठनों की विविधताऐं एवं ''संगठन को क्या चाहिये'' आदि प्रश्नों को आधार बनाकर चले हैं। परम्परावादी दृष्टिकोण की कुछ विशेषताऐं हैं, जिसमें कार्यकुशलता के मूल्य पर आधारित वर्णन प्रधान दृष्टिकोण, कानूनी दृष्टिकोण, राजनीतिक दृष्टिकोण, ऐतिहासिक

दृष्टिकोण, प्रबन्धात्मक दृष्टिकोण, संस्थागत दृष्टिकोण आदि के आधार पर अध्ययन किया जाता था। इस प्रकार परम्परावादी दृष्टिकोण की ये विशेषताऐं बताती हैं कि यह दृष्टिकोण कानूनी, संरचनात्मक, औपचारिक, विचारात्मक और वर्णनात्मक था। अर्थात् इसका पूरा अध्ययन संस्थाओं के ईद-गिर्द घूमता है और संस्थाओं के बाहर देखने का प्रयास नहीं किया जाता है। इस दृष्टिकोण के लेखकों ने प्रत्यायोजन, पर्यवेक्षण, नियन्त्रण के क्षेत्र, नौकरशाही आदि का इस प्रकार विवेचन किया है, जैसे कि वे ही संरचना के ढ़ाँचे के सब कुछ हैं और उनमें परिवर्तन करके संगठन तथा प्रशासन को सर्वश्रेष्ठ बनाया जा सकता है। गुलिक, उर्विक, फेयोल आदि लेखकों ने अपने संगठनों के ग्राफ व मानचित्र प्रस्तुत किये हैं, जिनकी आलोचना भी हुई है।

परम्परागत दृष्टिकोण के अनुसार लोक प्रशासन के अध्ययन के लिये जो दृष्टिकोण अपनाये जाते रहे है उनमें से कुछ प्रमुख इस प्रकार है-

2.3.1 कानूनी दृष्टिकोण(Law Approach)

लोक प्रशासन के अध्ययन के सम्बन्ध में कानूनी दृष्टिकोण का प्रयोग जर्मनी, बेल्जियम, फ्रांस आदि देशों में हुआ। इस दृष्टि के अनुसार प्रशासनिक संस्थाओं का अध्ययन कानूनी दृष्टि से किया जाता है। अर्थात् ये जानने का प्रयास किया जाता है कि इस संस्था के सम्बन्ध में कानून में क्या व्यवस्था है, कानून द्वारा इसे क्या शक्तियां प्राप्त हैं तथा इसकी क्या सीमाऐं हैं? और ऐसे ही कुछ और प्रश्नों का उत्तर ढूंढने का प्रयास किया जाता है। परम्परावादी दृष्टिकोण मुख्य रूप से कानूनी ही है जिसमें ये देखने पर बल दिया जाता है कि, कानून व्यक्ति के व्यवहार को किस प्रकार और किस सीमा तक प्रभावित करते हैं। वुडरो विल्सन ने भी कहा कि लोक प्रशासन विधि का ही क्रमबद्ध अध्ययन है। कानून के दो भाग होते हैं- संवैधानिक कानून एवं प्रशासनिक कानून। संवैधानिक कानून का उद्देश्य मौलिक रूप से सरकार के तीनों अंगों का पृथक-पृथक रूप से अध्ययन करना तथा उनके सम्बन्धों की व्यापक व्याख्या करना होता है। सरल शब्दों में संवैधानिक कानून में राजनीति के अध्ययन के साथ-साथ सरकार और उस के अंगों का अध्ययन भी किया जाता है, वहीं दूसरी ओर प्रशासकीय कानून में राज्य , जिले, स्थानीय शासन की संस्थाओं, सार्वजनिक निगमों, सत्ता तथा दायित्वों आदि का वर्णन किया जाता है। अमरीका तथा इंग्लैण्ड में भी अब इस दृष्टिकोण या पद्धति का उपयोग बढ़ रहा है। लोक प्रशासन को देश-काल के कानूनी ढ़ाँचे में काम करना होता है अतः उस ढ़ाँचे पर प्रकाश डालने के लिये कानूनी दृष्टिकोण उपयोगी साबित होता है। फिर भी इस दृष्टिकोण का सबसे बड़ा दोष यह है कि इसमें सामाजिक, मनौवैज्ञानिक और वैज्ञानिक दृष्टिकोण की उपेक्षा कर दी गयी है। एफ0जे0 गुडनाऊ इस दृष्टिकोण के प्रमुख समर्थक थे।

2.3.2 ऐतिहासिक दृष्टिकोण(Historical Approach)

ये दृष्टिकोण समाजशास्त्रों के अध्ययन की एक बड़ी ही परम्परागत विधि है। इसमें अध्ययन के क्षेत्र विशेष की संस्थाओं के ऐतिहासिक विकास का अध्ययन किया जाता है। पोलक के अनुसार ऐतिहासिक प्रणाली 'संस्थाऐं क्या हैं' और 'क्या रूप ले रही हैं' जैसे प्रश्नों की व्याख्या इस दृष्टि से करती हैं कि 'वे क्या थीं' और 'क्या बन गयी हैं' और वे ऐसी 'कैसे बनी'? अर्थात् इस प्रणाली में हमें ना केवल भूतकाल की व्याख्या प्राप्त होती है बल्कि हमें भविष्य के विवेचन के लिये भी कुछ बुनियादी सिद्धान्त प्राप्त हो जाते हैं। इसका सबसे बड़ा सकारात्मक पक्ष ये है कि, मनुष्य पिछले अनुभवों से लाभ भी उठा सकते हैं और चूँकि हर देश का प्रशासन प्राचीन मान्यताओं, व्यवस्थाओं और परम्पराओं से प्रभावित रहता है, अतः वे इसके व्यवस्थित तथा तुलनात्मक अध्ययन का प्रयास भी कर सकते हैं। अतीत एवं वर्तमान की योजनाओं तथा प्रक्रियाओं में तुलनात्मक खोज के आधार पर निकाले गये निष्कर्ष हमें अनेक दोषों से बचा सकते हैं। इस प्रकार इसका लाभ यह है कि मनुष्य पिछले अनुभव से लाभ उठा सकता है। इतिहास हमारी सभी उपलब्धियों और सफलताओं का लेखा-जोखा है, हमें प्रेरणा देता है, हमारा मार्गदर्शन करता है और हमें सजग और सावधान बनाता है। शैक्षिक स्तर पर राजनीतिक और प्रशासनिक अध्ययनों का ऐतिहासिक होना और भी आवश्यक है, क्योंकि इसके बिना वो शिक्षा अधूरी है।

2.3.3 विषय-वस्तु दृष्टिकोण(Subjective Approach)

यह दृष्टिकोण लोक प्रशासन की किन्हीं सामान्य तकनीकों का अध्ययन करने की बजाय उसकी विशेष सेवाओं तथा उसके कार्यक्रमों के व्यक्तिशः अध्ययन पर बल देती है। उदाहरण के तौर पर शिक्षा, प्रतिरक्षा, पुलिस, राजस्व निर्धारण एवं संग्रह आदि विशिष्ट विभाग पृथक-पृथक रूप से अध्ययन की विषय-वस्तु बनते हैं। भारत और इंग्लैण्ड में इस पद्धति का प्रयोग इन विशेष सेवाओं के अध्ययन के लिये काफी समय से किया जा रहा है। इस अध्ययन दृष्टिकोण में निहित दर्शन यह है कि, संगठन और प्रशासन ऐसे माध्यम हैं जिनसे किसी लक्ष्य की प्राप्ति की जा सकती है। इस प्रकार इस दृष्टिकोण के अन्तर्गत हम ये पाते हैं कि लोक प्रशासन की समस्याओं पर आंशिक दृष्टि से विचार किया जाता है तथा विषय-वस्तु एवं 'पोस्डकॉर्ब' का सामंजस्यपूर्ण अध्ययन होता है। परम्परागत दृष्टिकोण में कार्यकुशलता तथा वर्णन प्रधान को प्राथमिकता दी जाती है।

2.3.4 राजनीतिक दृष्टिकोण(Political Approach)

प्रशासन एक प्रशासकीय प्रक्रिया है। प्रशासन राजनीतिक संरचना में ही काम करता है। प्रशासन स्वयं कोई साधन नहीं है बल्कि एक साध्य मात्र है। अतः अच्छे प्रशासन की आवश्यकताओं को राजनीतिक व्यवस्था में ही ढूंढना उचित होगा। प्रशासकीय समस्याऐं सदैव से ही राजनीतिक समस्याओं का अंग होती है। अतः ये आवश्यक है कि प्रशासनिक समस्याओं का राजनीतिक दृष्टि से अध्ययन करा जाये। इस प्रकार राजनीति और प्रशासन का आपस में घनिष्ठ सम्बन्ध है। आज प्रत्येक वस्तु-विषय और घटना का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सम्बन्ध राजनीति से है, अतः लोक प्रशासन को भी इस विषय के अनुसार ही देखने की आवश्यकता है। विधि-निर्माण के कार्य में लोक प्रशासन और राजनीति दोनों समीप दिखायी देते हैं और इस बात को भी स्वीकार करना होना कि सरकार या प्रशासन के कार्य राजनीतिक परिस्थितियों और मान्यताओं से अनुप्रेरित होते हैं। संक्षेप में कहा जा सकता है कि प्रशासनिक विषय के विवेचन में राजनीतिक पृष्ठभूमि और सन्दर्भ के आधार पर अध्ययन किया जाता है।

2.3.5 वैज्ञानिक दृष्टिकोण(Scientific Approach)

यह एक बहुत ही आधुनिक एवं महत्वपूर्ण दृष्टिकोण है। अमरीका में वैज्ञानिक व्यवस्थापन आन्दोलन के फलस्वरूप प्रशासन के अध्ययन में भी वैज्ञानिक पद्धति का उपयोग विगत कई वर्षों से किया जा रहा है। इस दृष्टिकोण में ऐसा माना जाता है कि जिस प्रकार भौतिक-विज्ञान का प्रयोग द्वारा अध्ययन किया जाता है, ठीक उसी प्रकार प्रशासन की समस्याओं का अध्ययन भी वैज्ञानिक पद्धतियों और मान्यताओं के अनुसार किया जाना चाहिये। लोक प्रशासन के सम्बन्ध में वैज्ञानिक प्रबन्ध पद्धति के प्रयोग का अर्थ होता है कि हम किस सीमा तक पर्यवेक्षण, प्रयोग व विश्लेषण को अपनाकर कुछ सामान्य सिद्धान्तों का निरूपण कर सकते हैं कि जिनका सामान्य रूप से उसी प्रकार की स्थिति में प्रयोग किया जा सके। लोक प्रशासन में इस पद्धति को लोकप्रिय बनाने का श्रेय फ्रेडरिक टेलर को हैं। टेलर ने प्रशासकीय समस्याओं के अध्ययन के लिये भी समयपरक कार्य तथा माप-सारणी का उपयोग करके इसे एक नवीन मोड़ दिया। तकनीकी दृष्टिकोण के फलस्वरूप प्रशासन को एक स्वतंत्र प्रक्रिया समझा जाने लगा, जिसका उद्देश्य कार्यकुशलता तथा मितव्ययता है। ये प्रक्रिया लोक तथा निजी प्रशासन में समान रूप से निहित है। टेलर ने यही कहा कि निजी उद्योग के क्षेत्र और लोक प्रशासन के क्षेत्र में कार्यकुशलता सम्बन्धी समस्याऐं एक जैसी हैं। उनमें कोई मौलिक भिन्नताऐं नहीं पायी जाती है। अतः इन दोनों ही क्षेत्रों (निजी एवं लोक) में समान सर्वोतम तरीके खोजे जा सकते हैं। इस प्रकार प्रत्येक प्रकार के कार्यक्रम के प्रबन्ध के लिये सर्वोत्तम मार्ग वैज्ञानिक आधार पर खोजे जा सकते हैं। अमरीका में यह विचार बड़ी तेजी के साथ समर्थन प्राप्त करता जा रहा है कि लोक प्रशासन में कर्मचारियों की कार्यकुशलता बढ़ाने के लिये, निजी प्रशासन की भांति, वैज्ञानिक प्रबन्ध विचारधारा का प्रयोग किया जा सकता है।

वैज्ञानिक प्रबन्ध पद्धति का पर्याप्त महत्व होते हुए भी, इस आधार पर इसकी आलोचना की गयी है कि इसमें मानवीन तत्व के महत्व की उपेक्षा कर दी गयी है।

2.3.6 संस्मरणात्मक दृष्टिकोण(Memorable Approach)

प्रशासन के ऐतिहासिक दृष्टिकोण से मिलता-जुलता ही संस्मरणात्मक दृष्टिकोण है। इसका अर्थ है प्रसिद्ध अथवा वरिष्ठ प्रशासकों के अनुभवों तथा उनके कार्यों के अभिलेख के अध्ययन की प्रणाली। अर्थात् प्रसिद्ध अथवा वरिष्ठ प्रशासकों ने अपने अनुभव, संस्मरण या कार्यों के अभिलेख चाहे स्वयं लिखे हों अथवा दूसरों ने, उनके अध्ययन की प्रणाली ही जीवन-वत्तात्मक दृष्टिकोण कहलाता है। ये संस्मरण हर स्थिति में ऐसे होते हैं, जिन्हें पढ़कर प्रशासकीय समस्याओं तथा निर्णय की प्रक्रिया का वास्तविक और व्यवहारिक ज्ञान प्राप्त होता है। हमारे देश में जीवन-वृत्त या संस्मरण लिखने की परम्परा इतनी विकसित नहीं है, जितनी की ये इंग्लैण्ड या अमरीका में है। अभी कुछ वर्षों में बनर्जी की, ''Under the Two Masters'' धर्मवीर की ''The Memories of a Civil Servant'' कौल की ''The Untold Story'' गाडानिल की ''Government From Inside'' आदि इस श्रेणी की कई पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं, जिनसे अनेक प्रशासकीय समस्याओं को समझने में सहायता मिलती है।

परन्तु इसमें भी एक कठिनाई यह रही है कि, ये जो सार्वजनिक कार्यकर्ताओं की जीवन-गाथाऐं होती हैं, इनमें प्रशासकीय कार्यों की अपेक्षा राजनीतिक महत्व की बातों पर ज्यादा बल दिया जा रहा है। यद्यपि इस दिशा में एक प्रयास ये किया जा रहा है कि वे अपने अनुभवों को या तो स्वयं लिखें या दूसरों को यह अवसर प्रदान करें, ताकि लोक प्रशासन के विज्ञान की प्रगति में सहायता मिल सके।

2.4 तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन का अर्वाचीन दृष्टिकोण(Contemporary Approach)

वर्ष 1940 को वाल्डो ने लोक प्रशासन के अध्ययन के परम्परागत और अर्वाचीन दृष्टिकोणों के बीच विभाजन वर्ष के तौर पर माना। ये विभाजन या परिवर्तन अकस्मात नहीं हुआ। इसके लिये कुछ कारक या तत्व विशेष रूप से उत्तरदायी रहें हैं। इनमें से सबसे पहला कारक था कुछ नवीन प्रवृतियां। जैसे- 1. राजनीति और प्रशासन के बीच कठोर तथा सैद्धान्तिक पृथक्करण स्वीकार नहीं किया जाता है। 2. कार्यकुशलता और मितव्ययता को लोक प्रशासन का अपूर्ण एवं अपर्याप्त ध्येय माना जाने लगा और उसके स्थान पर सामाजिक क्षमता को ध्येय स्वीकारर किया जाने लगा। 3. पोस्डकॉर्ब दृष्टिकोणों में से कुछ का अर्थ बदल गया है और कुछ अब रूपान्तरित हो गये हैं। दूसरा कारक था कि अब लोक प्रशासन के अध्ययन पर प्रचलित दार्शनिक विचारधारा का भी प्रभाव पड़ा है। अर्वाचीन दृष्टिकोण के विकास में तीसरे और चौथे कारक के तौर पर परम्परागत दृष्टिकोण की दुर्बलताओं तथा लोक प्रशासन के वैज्ञानिक दृष्टिकोण ने भी उल्लेखनीय कार्य किया। इस प्रकार अर्वाचीन दृष्टिकोण के विकास में अनेक कारकों की भूमिका महत्वपूर्ण रही। आइये अब, परम्परागत दृष्टिकोण की भाँति ही अर्वाचीन दृष्टिकोण में सम्मिलित दृष्टिकोणों का विस्तार से अध्ययन करते हैं। इस दृष्टिकोण के अन्तर्गत हम निम्न दृष्टिकोणों के सन्दर्भ में अध्ययन करेंगे-

- संरचनात्मक-कार्यात्मक दृष्टिकोण(Structural-Functional Approach)
- परिस्थितिकीय दृष्टिकोण(Ecological Approach)
- व्यवहारवादी दृष्टिकोण(Behavioural Approach)

2.4.1 संरचनात्मक-कार्यात्मक दृष्टिकोण(Structural-Functional Approach)

सामाजिक विषयों के विश्लेषण में इस दृष्टिकोण का प्रयोग काफी समय से होता आ रहा है। लोक-प्रशासन में संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम का सिद्धान्त समाजशास्त्र से आया है। टॉलकट पारसन्स, राबर्ट मर्टन, मेरियन लेबी, गेबरियल आमण्ड आदि विचारक इस दृष्टिकोण के समर्थक थे। संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक विश्लेषण वह है, जो अध्ययन की विधियों में ढ़ाँचे या संरचना के गठन और उसके कार्यों की प्रक्रियाओं के बीच तालमेल के कारणों और परिणामों को पहचानने का प्रयत्न करता है। इसी बात को और स्पष्ट रूप से समझने के लिये राजनीतिक व्यवस्था को शारीरिक व्यवस्था के उदाहरण के आधार पर समझने का प्रयास करते हैं।

राजनीतिक व्यवस्था भी ठीक शारीरिक व्यवस्था की भाँति ही कार्य करती है। हालांकि ये सत्य है कि राजनीतिक व्यवस्था को व्यक्तियों के अनुसार विभाजित नहीं किया जा सकता है परन्तु, फिर भी वातावरण से उठने वाली मांगे तथा वातावरण से प्राप्त होने वाला समर्थन ही निवेशों(Input) का कार्य सम्पन्न करते हैं। राजनीतिक क्रियाओं में लिप्त संरचनाऐं इन्हें विशेष प्रक्रिया के द्वारा परिवर्तित करके नीति तथा नियमों को निर्गत कार्यों(Output) के रूप में समाज को प्रदान करती हैं। यह प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है। इसके अलावा इस व्यवस्था में अनेक विशिष्टीकृत इकाइयां या व्यवस्थाऐं(sub-system) होती हैं। ये हमेशा कार्यरत रहती हैं। इनका सबका अपना-अपना अलग-अलग कार्य और अस्तित्व होता है, फिर भी सम्पूर्ण व्यवस्था को चलाने में इनका पूर्ण योगदान होता है। ये इकाइयाँ या उप व्यवस्थाऐं कुछ इस प्रकार काम करती है कि अलग-अलग होते हुए भी एक दूसरे पर निर्भर होती हैं तथा इनमें से एक का आउटपुट(Output) दूसरे का इनपुट(Input) हो सकता है। ये इस प्रकार से अन्तःनिर्भर होती हैं। आधुनिक विचारक एवं वैज्ञानिक इन्हीं ''इनपुट'' और ''आउटपुट'' के सम्बन्धों और प्रक्रियाओं को पहचानना चाहते हैं और इसी काम के लिये वे जिन विधियों को अपना रहे हैं उनमें से एक विधि ''संरचनात्मक प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण'' कहलाती है।

लोक प्रशासन में इस दृष्टिकोण का उल्लेख सर्वप्रथम 1955 में ड्वाइट वाल्डो ने किया और इसकी उपयोगिता पर भी प्रकाश डाला। उन्होंने बताया कि लोक प्रशासन को सामाजिक व्यवस्था के एक भाग के रूप में विश्लेषित करने के क्रम में संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण एक महत्वपूर्ण माध्यम हैं। प्रो0 रिग्स को वाल्डो का विचार अच्छा लगा और उन्होंने दो वर्ष बाद ही 1957 में इस दृष्टिकोण के आधार पर अपना एक अलग मॉडल ''कृषक औद्योगिकी मॉडल'' प्रस्तुत किया। उसके बाद प्रो0 रिग्स तुलनात्मक लोक प्रशासन के क्षेत्र में इस दृष्टिकोण के प्रमुख प्रयोगकर्ता बन गये। इस दृष्टिकोण की ये मान्यता होती है कि प्रत्येक प्रशासनिक व्यवस्था की संरचना होती है, जो गतिशील मशीन के समान होता है। इस संरचना और इसके विभिन्न अंगों के द्वारा अपनी क्षमतानुसार कार्य किये जाते हैं। निर्धारित कार्यों को सम्पादित करने वाली विभिन्न संरचनाओं का तुलनात्मक विवेचन और विश्लेषण ही दृष्टिकोण का केन्द्र-बिन्दु है। इस दृष्टिकोण के समर्थकों ने माना कि लोक प्रशासन एक सुनियोजित एवं गतिशील मशीन के समान है। जिस प्रकार एक साईकिल का अध्ययन किया जाता है, ठीक उसी प्रकार लोक प्रशासन का अध्ययन किया जाता है। साईकिल पैडल, हैंडल, चेन, पहिये से मिल कर बनती है, इन का सब का अपना अलग-अलग काम होता है। ये सभी भाग अन्तर्निभरता एवं सामूहिकता से कार्य करते हैं, उसी प्रकार हर प्रशासनिक संरचना के विभिन्न अंग होते हैं जो मिलकर काम करते हैंऔर ये ही संगठनात्मक कार्य कहलाता है। इन सबका सम्पूर्ण विश्लेषण करना ही संगठनात्मक कार्यात्मक दृष्टिकोण है। इसमें माना जाता है कि, प्रत्येक व्यवस्था की अपनी कुछ विशेषताऐं होती हैं तथा विशेष लक्ष्य होता है। इसी के अनुरूप वो व्यवस्था अपने संगठन का निर्माण करती है। इसके अतिरिक्त व्यवस्था का हर अंग अपना विशेष कार्य करते हैं और साथ ही वे व्यवस्था को गति भी देते हैं और उसे उसके उद्देश्य तक पहुँचने में भी सहायता करते हैं तथा हर अंग में कार्यात्मक विशेषीकरण रहते हुए भी उनमें अन्तर्निभरता रहती है।

2.4.1.1 प्रकार्य और संरचनाऐं (Functions and Structures)

संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण के अनुसार प्रमुख संरचनाओं को देखा जाता है और फिर उसके कार्यो को देखा जाता है। या यों भी हो सकता है कि पहले प्रकार्यों को देखा जाये और फिर संरचनाओं की खोज की जाये कि कौनसी संरचना ये काम कर रही है। आशय ये होता है कि कभी ये धारणा बना कर नहीं चलना चाहिये कि अमुक संरचना के अमुक कार्य हैं। इसेउदाहरण के तौर पर यूँ समझा जा सकता है कि, हमें ये मान कर नहीं चलना चाहिये कि व्यवस्थापिका का कार्य नीति-निर्माण है या कार्यपालिका का कार्य केवल क्रियान्वयन है, बल्कि ये देखना चाहिये कि कौन सी संरचना किन प्रकार्यों को सम्पन्न कर रही है या उस संरचना का अस्तित्व क्यों है? उसकी

कितनी उपयोगिता है? क्योंकि कोई भी संरचना तभी तक जीवित रह सकती है जब तक की उसकी उपयोगिता रहेगी।

इस प्रकार संरचनात्मक कार्यात्मक दृष्टिकोण या उपागम का मूल ईकाई व्यवस्था का अध्ययन है। आज ये बात सर्वसम्मत है कि किसी भी व्यवस्था में उस व्यवस्था की संरचना और प्रकार्यों में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है तथा ये एक-दूसरे को प्रभावित भी करते हैं और सन्तुलित भी करते हैं। यही नहीं एक व्यवस्था के प्रकार्य एवं संरचना दूसरी व्यवस्था के प्रकार्यों व संरचना को भी प्रभावित करते हैं। उनमें क्रिया-प्रतिक्रिया चलती रहती है, इसलिये यह आवश्यक है कि व्यवस्था के अध्ययन में सम्पूर्ण व्यवस्था का अध्ययन किया जाये। इसमें आपस में अन्तर्निभरता होती है और एक व्यवस्था के घटकों की संरचना तथा प्रकार्यों से सम्पूर्ण व्यवस्था प्रभावित होती है।

2.4.1.2 संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण की विशेषताऐं

जैसा कि आप अब तक जान गये होंगे कि इस उपागम द्वारा सामाजिक प्रक्रियाओं को समझने के लिये संरचना एवं प्रक्रिया दोनों पर बल दिया जाता है। इस उपागम के अनुसार प्रकार्य (विशिष्ट प्रकृति के कार्य) संरचना के परिणाम होते हैं। परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं होता है कि केवल एक प्रकार के कार्य एक संरचना द्वारा ही किये जाते हैं या एक संरचना केवल एक ही प्रकार के कार्य करती हो। अर्थात् एक प्रकार के कार्य बहुत सी संरचनाओं द्वारा या एक ही संरचना द्वारा बहुत से प्रकार्य एक साथ किये जा सकते हैं। अतः तुलनात्मक लोकप्रशासन में संरचना एवं उसके द्वारा किये जाने वाले कार्यों का ही तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है। प्रो0 एम0 पी0 शर्मा के द्वारा संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम के सम्बन्ध में तीन मान्यताओं का वर्णन किया गया है। उनका मानना है कि इस उपागम का अध्ययन करते समय इन बातों का ध्यान रखा जाना चाहिये- संस्था द्वारा किये जाने वाले प्रकार्यों(functions) की जानकारी। प्रकार्यों को पूरा करने वाली संरचनाओं की जानकारी और प्रकार्यों को किन परिस्थितियों में पूरा किया जाता है।

उपर्युक्त तीनों बातों की पूरी जानकारी प्राप्त करना ही इस उपागम का प्रमुख उद्देश्य होता है।

संक्षेप में, संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम की विशेषताओं को यदि बिन्दुवार देखना चाहें तो निम्न बिन्दुओं में देख सकते हैं-

- यह दृष्टिकोण लोक प्रशासन को सुनियोजित एवं गतिशील तंत्र मानता है।
- इस दृष्टिकोण की मान्यता होती है कि प्रत्येक संस्था की एक निश्चित व्यवस्था होती है।
- हर संरचना द्वारा किये जाने वाले कार्य दूसरी संरचना के कार्यों को प्रभावित भी करते हैं और परस्पर लक्ष्यों की पूर्ति को भी प्रभावित करती है।
- संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण की मान्यतानुसार प्रत्येक प्रशासनिक व्यवस्था कुछ 'इनपुट' ग्रहण करती है और 'आउटपुट' के रूप में कुछ परिणाम उत्पन्न करती है। इनपुट के अन्तर्गत हितों का समाजीकरण तथा राजनीतिक संचार आदि तत्वों को सम्मिलित किया जाता है। एवं आउटपुट के रूप में प्रशासनिक व्यवस्था कुछ परिणाम उत्पन्न करती है, यथा- नियम निर्माण, नियम क्रियान्वयन, जन कल्याण आदि।
- कुछ विद्धानों द्वारा ऐसा माना जाता है कि हर समाज के अस्तित्व के लिए कुछ संरचनाऐं एवं कुछ कार्य मूलभूत होते हैं एवं एक ही संरचना के द्वारा भिन्नभिन्न वातावरण में भिन्न-भिन्न कार्य किये जाते हैं। प्रो0 रिग्स ने प्रत्येक समाज के पांच कार्य मूलभूत माने हैं। ये हैं- आर्थिक, सामाजिक, संरचनात्मक, प्रतीकात्मक तथा राजनीतिक। किसी भी प्रशासनिक व्यवस्था के लिये ये ही कार्य मूलभूत माने जाते हैं।
- यह उपागम एक मूल्य-निरपेक्ष (स्वतंत्र) उपागम है।

- अन्य- कार्य संचालन से व्यवस्था पर प्रभाव पड़ता है, इन प्रभावों का अध्ययन किया जा सकता है, संस्था पर पड़ने वाले प्रभाव लाभदायक या हानिकारक हो सकते हैं और इन्हें संस्था में कार्य कहा जाता है। यदि ये कार्य अच्छी दशा में है तो सुकार्य कहलाते है और यदि विपरीत दिशा में है तो विकार्य (अपकार्य) कहलाते हैं।

2.4.1.3 संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण के प्रमुख तत्व

ये उपागम बहुत महत्वपूर्ण उपागम के तौर पर अनेक बार उपयोग में लाया गया। आमण्ड तथा कोलमैन ने विकासशील देशों के अध्ययन के लिये इस दृष्टिकोण का उपयोग किया है। इसके अतिरिक्त इस दृष्टिकोण के अनुसार लूसियन पाई ने दक्षिण-पूर्व एशिया का, माइनर वीनर ने दक्षिण एशिया का, कोलमैन ने सहारा क्षेत्र का, ब्लैक स्टोन ने लैटिन अमरीका का तथा डेकार्ट एवस्टोव ने दक्षिण-पूर्वी यूरोप का अध्ययन किया है। आमण्ड तथा कोलमैन का विचार है कि तुलनात्मक राजनीतिक अध्ययन के लिये यह एक अच्छा दृष्टिकोण है। उन्होंने संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण को दो रूपों में ग्रहण किया है- अपने पहले किये गये अध्ययन में इन्होंने प्रकार्यों पर अधिक बल दिया है और अपने बाद के अध्ययनों में आमण्ड तथा कोलमैन ने संरचनाओं को भी पर्याप्त महत्व दिया है।

पहले किये गये अध्ययनों में जब आमण्ड तथा कोलमैन ने प्रकार्यों(Functions) पर अधिक बल देते हुये माना कि सभी राजनीतिक व्यवस्थाऐं सात प्रकार के कार्य करती है। इन सात कार्यों में चार 'इनपुट'(Input) कार्य व तीन 'आउटपुट'(Output) कार्य हैं। इन 'इनपुट' व 'आउटपुट' कार्यों को ही संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण का प्रमुख तत्व माना जाता है। आमण्ड तथा कोलमैन के अनुसार ये 'इनपुट' तथा 'आउटपुट' कार्य निम्नलिखित हैं-

इनपुट कार्य	**आउटपुट कार्य**
राजनीतिक समाजीकरण तथा नियुक्ति। हितों का समाजीकरण तथा रूचि उत्पन्न करना। हितों का समूहीकरण या रूचि का संग्रहण। राजनीतिक संचार या राजनीतिक सम्प्रेषण।	नियम बनाना। नियम लागू करना। नियम अधिनियम तथ जनकल्याण।

इस प्रकार कार्यों का 'इनपुट' और 'आउटपुट' कार्यों के रूप में विभेदीकरण करने के बाद आमण्ड तथा कोलमैन ने विकासशील देशों के सन्दर्भ में निवेश(इनपुट) कार्यों को अधिक महत्वपूर्ण माना है। चूंकि ये विद्वान व्यवहारवादी हैं, इसलिये इन्होंने प्रक्रियाओं के अध्ययन पर अधिक बल दिया है, संरचनाओं पर कम। वे असल में कार्यों के आधार पर संरचनाओं को समझना चाहते हैं। आमण्ड का मानना था कि प्रत्येक राजनीतिक संरचना कुछ ना कुछ कार्य करती है। राजनीतिक व्यवस्था में उन कार्यों को करने के लिये कितनी विशेषीकृत संरचनाऐं हैं तथा इन कार्यों को कितनी कुशलतापूर्वक किया जाता है, सम्पूर्ण राजनीतिक विकास इसी पर निर्भर करता है। अपने बाद के अध्ययनों में आमण्ड ने संरचनाओं को भी पर्याप्त महत्व दिया है।

राबर्ट मर्टन ने भी प्रकार्यों पर अधिक बल दिया है, जबकि मेरियन जे0 ब्लेबी संरचनाओं के अध्ययन को अधिक महत्व देते हैं। वहीं फ्रेड रिग्स का कहना है कि हमें संरचनाओं तथा प्रकार्यों दोनों के अध्ययन को बराबर महत्व देना चाहिये, तभी अध्ययन वास्तविक हो सकेगा।

2.4.1.4 संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण की आलोचनाऐं अथवा सीमाऐं

यद्यपि तुलनात्मक राजनीति के क्षेत्र में संरचनात्मक दृष्टिकोण का अत्याधिक महत्व है, फिर भी इस दृष्टिकोण में अनेक कमियाँ है। संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण की निम्नलिखित आधारों पर आलोचनाऐं की जाती हैं। इन्हें इस दृष्टिकोण की सीमाऐं भी कहा जा सकता है-

1. **वास्तविक अध्ययन सम्भव नहीं-** यद्यपि विकासिशील देशों के अध्ययन के लिये इस उपागम को उपयुक्त माना गया है। परन्तु इस आधार पर इसकी आलोचना की गई कि, वास्तव में इस उपागम के आधार पर वास्तविक अध्ययन सम्भव नहीं है। विकासशील देशों की अनेक समस्याऐं जैसे- धर्म, जाति, गरीबी, भाषावाद आदि राजनीतिक व्यवस्थाओं पर अपने प्रभाव डालती हैं। ऐसा माना गया है कि प्रकार्यात्मक आधार पर इस प्रकार का अध्ययन सम्भव नहीं हो सकता है।
2. **परिवर्तन विरोधी-** यह दृष्टिकोण व्यवस्था की उपयोगिता तथा उनके रख-रखाव से सम्बन्धित समस्याओं से अधिक सम्बन्धित दिखायी देता है। अतः यह परिवर्तन विरोधी है।
3. **सुधारवादी नहीं-** संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण द्वारा किया जाने वाला अध्ययन अत्यन्त वास्तविक हैं, यह केवल वर्तमान का अध्ययन करता है, भविष्योन्मुखता की इस उपागम में अत्यन्त कमी है। यह राजनीतिक व्यवस्था के वर्तमान स्वरूप तथा कार्यों का अध्ययन समाज की उप व्यवस्था के रूप में करता है तथा परिवर्तन की ओर दिशा-निर्देश नहीं करता।
4. **यथास्थितिवाद-** यह दृष्टिकोण यथास्थितिवाद का समर्थन करता है। इसका मुख्य उद्देश्य राजनीतिक व्यवस्था को साम्यवाद से बचाना है। ये हमेशा धीमी गति से राजनीतिक व्यवस्थाओं को पश्चिमी ढर्रे पर ढालना चाहता है। यही कारण है कि मार्क्सवादियों के द्वारा कभी भी इस दृष्टिकोण का समर्थन नहीं किया गया। यह दृष्टिकोण 'परिवर्तन कैसे हो?' इसका विश्लेषण नहीं करता। यह विकासशील देशों के सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक व्यवस्थाओं के अध्ययन में सहायक नहीं है, इसलिये कुछ विचारकों द्वारा इसे 'ढीला-ढाला' तथा 'अपूर्ण' दृष्टिकोण भी कहा जाता है।
5. **संरचना की उपयुक्तता बताने में असमर्थ-** यह उपागम इस आधार पर भी आलोचना की जाती है कि ये परिस्थितियों के अनुसार कौनसी संचना उपयुक्त होगी, इस बात को बताने में भी असमर्थ है।
6. रूढ़िवादिता- इस उपागम की आलोचना का एक आधार यह भी है कि ये रूढ़िवादी है। इसे रूढ़िवादी मानते हुए परिवर्तन का विरोधी कहा जाता है, इसके पीछे ये भी तर्क दिया जाता है कि इसमें पर्यावरणीय परिवर्तनों के प्रति उदासीनता मिलती है।
7. **प्राकृतिक संरचनाओं का पक्ष-** इस उपागम के द्वारा कृत्रिम संरचनाओं के स्थान पर प्राकृतिक संरचनाओं का पक्ष लिया जाता है, जो इसकी आलोचना का एक अन्य कारण माना जाता है।
8. **संरचना एवं प्रकार्यों के मध्य सम्बन्ध-** इस उपागम की मान्यता कि प्रत्येक संरचना एवं व्यवस्था द्वारा किये जाने वाले प्रकार्यों के मध्य सदैव सम्बन्ध की व्याख्या की जा सकती है, भी आलोचना का शिकार हुई है, क्योंकि वास्तव में ऐसी व्याख्या सदैव कर पाना कठिन होता है।

अन्त में ये कहा जा सकता है कि संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण ने तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन को अधिक मूल्य-निरपेक्ष बनाने में सहायता प्रदान की है एवं पश्चिमी देशों की प्रशासनिक प्रणालियों के वैज्ञानिक अध्ययन को सरल बनाया है। इस दृष्टिकोण के आधार पर विभिन्न प्रशासनिक संस्थाओं का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है। इस अध्ययन पद्धति के आधार पर यथार्थवादी विश्लेषण भी संभव है। वस्तुतः संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक अभिगम का तुलनात्मक लोक प्रशासन में अभी सीमित उपयोग ही किया गया है। रिग्स के प्रतिमानों के अतिरिक्त इस दृष्टिकोण का उपयोग नहीं के बराबर है।

2.4.2 पारिस्थितिकीय दृष्टिकोण(Ecological Approach)

प्रशासन और संगठन के अध्ययन हेतु इस दृष्क्रिोण का प्रारम्भ द्वितीय विश्व युद्ध के बाद हुआ। आधुनिक युग में तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन में इस दृष्टिकोण का बहुत महत्व पूर्ण स्थान है। इसे तुलनात्मक अध्ययन के नाम से भी जाना जाता है। पारिस्थितिकीय(Ecology) शब्द की उत्पत्ति ग्रीक शब्द 'Oikos' से हुई है, जिसका अर्थ है, घर या रहने का स्थान। यह उपागम जीव विज्ञान के परिस्थितिकीय दृष्टिकोण पर आधारित है, जिसके

अनुसार जिस प्रकार एक पौधे के विकास के लिये विशेष प्रकार की जलवायु, मिट्टी, तापमान तथा नमी आदि की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार प्रत्येक समाज का विकास उसके अपने इतिहास, आर्थिक-सामाजिक संरचनाओं, मूल्यों, परिस्थितियों, राजनीतिक व्यवस्था आदि से जुड़ा होता है। यद्यपि लोक प्रशासन की संस्थाऐं तथा संगठन सावयवी नहीं हैं, तथापि इन संस्थानों की कार्यप्रणाली अवश्य ही पर्यावरणीय कारकों से प्रभावित होती है। अतः लोक प्रशासन अपने परिवेश से अलग रहकर कार्य नहीं करता। परिवेश और वातावरण प्रशासन को प्रभावित करता है।

जे0एम0 गॉस, राबार्ट ए0 डहल, मार्टिन, व प्रो0 रिग्स लोक प्रशासन के अध्यन के परिस्थितिकीय दृष्टिकोण के समर्थक विद्वान माने जाते हैं। इन सब विद्वानों में से भी रिग्स वो पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने इस दृष्टिकोण के प्रति महत्वपूर्ण योगदान दिया। रिग्स ने विकासशील देशों की प्रशासनिक व्यवस्थाओं के अपने अध्ययन में प्रशासनिक, आर्थिक, तकनीकी, राजनीतिक तथा संचार कारकों के बीच सम्बन्धों का विस्तृत परिप्रेक्ष्य में विश्लेषण किया है।

परिस्थितिकीय उपागम की मूल मान्यता यह है कि प्रशासनिक व्यवहार, ब्राह्य पर्यावरण जैसे- संस्कृति, समाज, मूल्य, परम्पराओं तथा समस्याओं आदि का परिणाम है। सरल अर्थ में प्रशासनिक प्रक्रिया एक ऐसी व्यवस्था है, जिसकी अपनी एक विशिष्ट संस्कृति होती है और जो निस्सन्देह बाह्य सामाजिक संस्कृति का ही विस्तार है। लोक प्रशासन में परिस्थितिकी उपागम की शुरूआत 1947 में जॉन एम0 गॉस ने की। उन्होंने कहा ''सरकारी कार्यों पर जनता, स्थान, भौतिक सुविधाओं, मूल्यों, परम्पराओं तथा व्यक्तित्व इत्यादि का पर्याप्त पड़ता है। अर्थात पर्यावरण तथा प्रशासन आपस में क्रिया-प्रतिक्रिया करते हैं।'' अतः लोक प्रशासन के अध्ययन में परिस्थितिकीय कारकों को सम्मिलित किया जाना चाहिए। प्रशासनिक संगठन अपने आप में एक स्वतंत्र चर के रूप में कार्य नहीं कर सकते हैं, बल्कि वे अपने आस-पास के सामाजिक संगठनों आदि से भी प्रभावित होते हैं। अतः लोक प्रशासन में केवल संगठनों की आन्तरिक संरचना, कार्य, प्रक्रिया तथा व्यवस्था को जानना ही पर्याप्त नहीं है बल्कि संगठन किस माहौल में कार्यरत है, यह जानना अधिक उपयोगी है।

इसी प्रकार इस दृष्टिकोण के एक अन्य समर्थक रॉबर्ट डहाल के अनुसार ''एक स्थान पर लोक प्रशासन के अध्ययन में यदि कुछ निष्कर्ष प्राप्त हों तो उनका दूसरे स्थान पर स्थित प्रशासनिक संस्थाओं पर परीक्षण करके ही कुछ सिद्धान्त विकसित किये जा सकते हैं, क्योंकि प्रत्येक स्थान पर परिस्थितिकी एक समान नहीं होती है। अतः इससे प्रशासनिक सिद्धान्तों का भली-भाँति परीक्षण हो जाता है। लोक प्रशासन में सामान्यीकृत नियम प्रतिपादित करने के लिये इसकी प्रविधियों तथा प्रक्रियाओं के सम्बन्ध में ज्ञान का दायरा विस्तृत करना होगा। अतः प्रशासन के ऐतिहासिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक सन्दर्भों को विश्लेषित किया जाना चाहिए।''

2.4.2.1 परिस्थितिकीय दृष्टिकोण की विशेषताऐं

इस प्रकार विभिन्न विद्वानों द्वारा परिस्थितिकीय उपागम के सन्दर्भ में दिये गये विवरणों के आधार पर इसकी कुछ मान्याताओं या विशेषताओं को बिन्दुओं में देखते हैं -

1. लोक प्रशासन भी मानव समाज का एक अंग होता है।
2. जिस प्रकार जीव-जन्तु, वनस्पतियां तथा मानव अपने आस-पास के वातावरण से प्रभावित होते हैं, ठीक उसी प्रकार प्रशासनिक संगठन भी सम्बन्धित सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक, सभी प्रकार के कारकों से प्रभावित होते हैं।
3. प्रत्येक प्रशासनिक व्यवहार, प्रशासनिक संगठनों के बाहरी वातावरण एवं भिन्न-भिन्न प्रकार के कारकों का एक मिश्रित परिणाम है।
4. प्रत्येक प्रशासनिक व्यवस्था अपने बाहरी वातावरण या परिस्थितिकी से निरन्तर क्रिया-प्रतिक्रिया करती रहती है।

5. प्रशासन ना केवल बाहरी वातावरण से प्रभावित होता है, बल्कि वह पर्यावरण को भी प्रभावित करता रहता है।
6. किसी भी संगठन की आन्तरिक प्रशासनिक कार्य-संस्कृति उस देश या समाज के मूल्यों तथा परम्पराओं से बहुत प्रभावित रहती है।
7. तुलनात्मक लोक-प्रशासन के सार्वभौमिक नियम प्रतिपादित करने के लिये उनका तुलनात्मक परिस्थितिकीय अध्ययन किया जाना आवश्यक होता है।

समाज की कुछ आवश्यकताऐं ऐसी होती हैं जो कि परम्परागत, आधुनिक तथा संक्रमणशील सभी प्रकार के समाजों में उपस्थित होती हैं। रिग्स ने भी कहा कि समाज की कुछ आवश्यकताऐं ऐसी होती है जो परम्परागत, आधुनिक तथा संक्रमणशील सभी प्रकार के समाजों में समान रूप से पायी जाती है। इसी प्रकार कुछ ऐसी प्रशासनिक आवश्यकताऐं भी हो सकती हैं। लुई ममफोर्ड ने कहा कि ''किसी भी प्रकार का जीवन दूसरे से अलग होकर नहीं रह सकता, क्योंकि पर्यावरण के बिना किसी भी प्रकार का जीवन सम्भव नहीं है।''

2.4.2.2 परिस्थितिकी उपागम की आलोचना या सीमाऐं

परिस्थितिकी उपागम तुलनात्मक लोक प्रशासन का मुख्य उपागम बन चुका है। ये उपागम प्रयोग में लाने में तो सरल होता है, किन्तु इसको प्रयोग करते समय कुछ समस्याऐं आती है-

1. प्रत्येक शोधकर्ता सामाजिक, सांस्कृतिक तथा ऐतिहासिक मूल्यों को अपनी दृष्टि से देखता है। अतः दूसरे देश की सांस्कृतिक विरासत को समझना एक जटिल कार्य होता है।
2. मानव व्यवहार तथा समाज दोनों ही जटिल संरचनाऐं हैं। अतः यह अनुमान लगाना कठिन है कि सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन, प्रशासन के द्वारा आ रहे हैं या इसके कारक कुछ और हैं?
3. विश्व के सभी देशों में सामाजिक व्यवस्था तथा प्रशासनिक संस्कृति में बहुत विविधता पायी जाती है। ऐसे में इसका विश्लेषण बहुत जटिल हो जाता है और सामान्यीकरण की ओर जाना या सामान्यीकृत आधार पर सिद्धान्तों का निर्माण करना मुश्किल हो जाता है। इसे भारत के उदाहरण से समझा जा सकता है, जहाँ थोड़े मील पर ही बोली, खान-पान, पहनावा सब बदल जाता है।

इस प्रकार उपरोक्त सभी सीमाओं या कमियों को देखने के बाद से स्पष्ट हो जाता है कि ये कमियाँ उपागम से ज्यादा उसको उपयोग में लाने वालों से सम्बन्धित है। अतः इन कमियों के उपरान्त भी ये उपागम उपयोगी परिणाम देने वाला हो सकता है।

2.5 तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन का व्यवहारवादी उपागम(Behavioural Approach)

व्यवहारवादी दृष्टिकोण या उपागम का अध्ययन निम्नलिखित विन्दुओं के माध्यम से करते हैं-

2.5.1 व्यवहारवाद का विकास

व्यवहारवादी उपागम को जानने से पूर्व आइये हम व्यवहारवाद को भली-भाँति जानें और देखें कि ये किस प्रकार से विकसित हुआ। व्यवहारवाद ने तुलनात्मक लोक प्रशासन को बहुत प्रोत्साहन प्रदान किया है। यह अक्सर 'व्यवहारिक क्रांति' का नाम दिया जाता है। यह बीसवीं शताब्दी के चौथे और पांचवें दशक में मानवीय सम्बन्धों के आन्दोलन के साथ-साथ प्रारम्भ हुआ। किन्तु द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात प्रभुत्वशाली दृष्टि बन गया। इसका विकास चेस्टर बर्नार्ड व हरबर्ट साइमन ने किया। इसके उपरान्त इसके समर्थकों में पीटर एम0 बलाऊ, मर्टन, वीडनर, सायर्स, फ्रेड0 डब्ल्यू0 रिग्स, इलाऊ आदि थे। अनिवार्य रूप से व्यवहारवाद का सम्बन्ध विभिन्न वातावरण में मानवीय व्यवहार का वैज्ञानिक अध्ययन करना है। इस प्रकार लोक प्रशासन में व्यवहारवाद की प्रारम्भिक जड़ें सन् 1930 के मानव सम्बन्ध आन्दोलन से जुड़ी हैं। लोक प्रशासन के अध्ययन के प्रति व्यवहारवादी दृष्टिकोण में 'सिद्धान्तों' के आधार पर गुलिक, उरविक तथा अन्य लेखकों के विचारों को चुनौती दी।

इन विचारों को प्रायः शास्त्रीय, पारम्परिक अथवा रूढ़िवादी (Orthodox) दृष्टिकोण कहा जाता था। इस वाद को जन्म देने वालों में हरबर्ट साइमन का नाम विशेष रूप से लिया जाता है। साइमन ने 1946 में 'लोक प्रशासन में लोकोक्तियां'(Proverbs in Public Administration) नामक लेख में यह बताया कि, अब तक लोक प्रशासन में अनेक बातें केवल लोकोक्तियों की तरह स्वयंसिद्ध मान कर ही दोहरायी जा रही हैं। इनको सिद्ध करने के लिये किसी प्रमाण, तथ्य, विवेचन या तर्क की कोई आवश्यकता नहीं समझी जाती है। लेकिन व्यवहारिक दृष्टि से ये कथन असत्य सिद्ध होते हैं। यदि लोक प्रशासन को विज्ञान की श्रेणी में लाना है तो इसके लिये इसके सिद्धान्तों और मान्यताओं को व्यवहार की कसौटी पर खरा उतरना चाहिये। इसी प्रकार सन् 1947 में हरबर्ट साइमन ने अपनी पुस्तक, "Administrative Behaviour: A Study of Decision-Making Process in Administrative Organization" में लोक प्रशासन के अध्ययन के पारम्परिक दृष्टिकोण का खण्डन किया। साइमन ने कहा कि यदि हम संगठन का सही और वैज्ञानिक विवेचना करना चाहते हैं तो वह अध्ययन व्यवहार पर आधारित होना चाहिये।

व्यवहारवादी दृष्टिकोण तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन का नवीनतम दृष्टिकोण माना जाता है। ये दृष्टिकोण मनोविज्ञान व समाजशास्त्र के सिद्धान्तों व व्यवहारों से प्रभावित माना जाता है। राजनीतिशास्त्र के अध्ययन के लिये जिन विचारकों ने व्यवहारवादी दृष्टिकोण का समर्थन किया उन्होंने ही तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन में इस उपागम के उपयोग की प्रेरणा दी। इस दृष्टिकोण को विकसित करने का श्रेय अमरीकी राजनीतिक वैज्ञानिकों को जाता है। आज यह दृष्टिकोण सर्वाधिक महत्व पूर्ण दृष्टिकोण माना जाता है।

ये दृष्टिकोण परम्परागत अध्ययन, प्रणालियों तथा सिद्धान्तों के विद्रोह स्वरूप प्रारम्भ हुआ। यह एक अन्तरविषयी उपागम है, जो वैज्ञानिक पद्धति तथा मूल्य निरपेक्ष दृष्टिकोण का समर्थन करता है। व्यवहारवादी दृष्टिकोण प्रशासनिक व्यवहार पर अपना ध्यान केन्द्रित करता है और इसकी विवेचना करके समग्र प्रशासन उनकी संरचनाओं तथा प्रक्रियाओं आदि के बारे में अध्ययन करना चाहता है। व्यवहारवाद का अभिप्राय प्रशासनिक तथ्यों की व्याख्या और विश्लेषण का एक विशिष्ट तरीका होता है। व्यवहारवाद अनुभवात्मक तथा प्रविधियों के निरन्तर सुधार में विश्वास करता है तथा इसमें कल्पना और व्यक्तिनिष्ठ मूल्यों तथा मानवीय विवरणों आदि का कोई स्थान नहीं है। इसका उद्देश्य लोक प्रशासन को अधिकाधिक वैज्ञानिक बनाना ही होता है। यदि व्यवहारवाद के अर्थ के बारे में विचार किया जाता है तो कह सकते है कि इसके अर्थ के विषय में कोई समान दृष्टिकोण नहीं पाया जाता है। उदाहरण के तौर पर कुछ व्यवहारवादी इसे केवल एक मनोदशा अथवा मनोवृति मानते हैं और कुछ ऐसा मानते हें कि इस दृष्टिकोण के अपने कुछ निश्चित विचार एवं सिद्धान्त एवं इसकी अपनी कुछ कार्यविधियां है। जैसा कि आपने अभी जाना कि, व्यवहारवादी दृष्टिकोण को विकसित करने में डेविड ईस्टन, वाइडनर ब्याऊमर्टन, हैडी, रिग्स, माइकल क्रोजियर, सायर्स आदि ने महत्व पूर्ण योगदान दिया। इन सभी विद्वानों ने अपने अध्ययन का मूल आधार व्यवहारवाद की मूल मान्याताओं को माना है। डेविड ईस्टन ने जिन्हें व्यवहारवादी क्रान्ति का उद्-घोषक कहा जाता है, इस दृष्टिकोण को 'वैज्ञानिक मनोदशा का प्रतिबिम्ब' कहा है। उनके अनुसार यह एक 'बौद्धिक प्रवृति' और 'तथ्यात्मक शैक्षणिक आन्दोलन' है। व्यवहारवादी एक दृष्टि ही नहीं बल्कि इसे एक समग्र क्रान्ति के तौर पर देखा जाता है। इसकी चार मूल मान्यताऐं हैं-

1. व्यवहारवादियों की ये मान्यता है कि अध्ययन की इकाई जब तक बहुत बड़ी(Macro) है, तब तक अध्ययन गहन नहीं बन सकेंगे। अतः उनका मानना है कि इस विशालता को विशेषीकरण की दृष्टि से तोड़कर लघुता (Micro) की इकाइयों में परिवर्तित कर दिया जाये। अर्थात् ये दृष्टिकोण छोटे-छोटे विषयों पर गहन और गम्भीर अध्ययन और विश्लेषण को प्राथमिकता देता है।
2. व्यवहारवादी दृष्टिकोण अध्ययन की वैज्ञानिकता का बड़ा पक्षधर है। अर्थात् यह निरीक्षणवादी, अनुभववाद, तुलनात्मक एवं प्रयोगवादी शोधकर्ता है।

3. तीसरी मान्यता ये है कि ज्ञान की समग्रता एवं सच्चाई इस बात पर निर्भर करती है कि वह ज्ञान के अन्य पहलुओं से कितना सम्बन्धित है।
4. यह दृष्टिकोण एक अनुभवमूलक सिद्धान्त का प्रणयन करना चाहता है। व्यवहारवादी अनुभव, निरीक्षण, प्रयोग, सन्दर्भ ज्ञान, परिस्थिति विवेचन आदि के आधार पर सम्पूर्णता का गहनता से विश्लेषण करते हैं और ये मानकर चलते हैं कि तुलनात्मक लोक प्रशासन अध्ययन विज्ञान के रूप में अपनी स्वतंत्र विचारधाराओं का आविष्कार कर सकता है।

व्यवहारवादी दृष्टिकोण के ध्यान का केन्द्र मानवीय व्यवहार है जिसमें मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा मानव विज्ञान भी सम्मिलित है। यह प्रशासनिक प्रक्रियाओं का, जो कई प्रकार के संगठनों में सामान्य है, विवरण देने का दावा करता है। संक्षेप में व्यवहारवाद का सम्बन्ध व्यक्ति के केवल बाहरी कार्यों से नहीं है, बल्कि उसकी भावनात्मक, ज्ञानात्मक और मूल्यांकनात्मक प्रक्रियाओं से भी है।

2.5.2 व्यवहारवाद की विशेषताऐं

डेविड ईस्टन, कैटालिन, राबर्ट डहाल आदि व्यवहारवादी विचारकों के द्वारा व्यवहारवादी उपागम की कुछ प्रमुख विशेषताओं का वर्णन किया गया है-

1. **वैज्ञानिकता के प्रति झुकाव-** व्यवहारवादी विचारक सदैव अपने अध्ययन को वैज्ञानिक बनाने का प्रयास करते हैं। हरबर्ट साइमन जो इस दृष्टिकोण के एक प्रमुख विचारक माने जाते हैं, ने लोक प्रशासन का अध्ययन करते समय क्या होना चाहिये के स्थान पर, जो है उसका विवेचन किया। व्यवहारवादियों का ये मत है कि, लोक प्रशासन एक वैज्ञानिक अध्ययन विषय है, इसको केवल मूल्यों सम्बन्धी विवेचन करने की अपेक्षा तथ्यसंगत, वास्तविक और व्यवहारिक बनाया जाना चाहिए। इसके निष्कर्ष स्थायी और सर्वव्यापी होने चाहिये। इसके लिये वैज्ञानिक अध्ययन प्रणाली को अपनाया जाना चाहिये। ऐसा होने पर ही लोक प्रशासन का अध्ययन सत्य, निष्पक्ष, गहन एवं विश्वसनीय बन पायेगा। यही कारण रहा कि सभी व्यवहारवादी विचारक निरीक्षणवादी, अनुभववादी एवं प्रयोगवादी शोधकर्ता बन गये।
2. **व्यष्टि(Micro) अध्ययन का समर्थन-** व्यवहारवादी विचारक ऐसा मानते हैं कि, अध्ययन की इकाई जब समष्टि (Macro) अर्थात् बड़ी होती है तो अध्ययन गहन नहीं हो पाता है। अतः उन्होंने माना कि अध्ययन को गहन और विशिष्टकृत बनाने के लिये अध्ययन को व्यष्टि(Micro) अर्थात् छोटी-छोटी इकाइयों में बाँटना चाहिये। अर्थात् व्यापकता की अपेक्षा गहनता की ओर बढ़ना चाहिये या यूँ कहें कि समष्टि से व्यष्टि(Macro to Micro) की ओर बढ़ना चाहिये। व्यवहारवादी दृष्टिकोण ने छोटे-छोटे विषयों के गम्भीर अध्ययन और विश्लेषण को प्राथमिकता दी है। व्यवहारविदो के मतानुसार किसी बड़े संगठन का अध्ययन करने के लिये हमें उस संगठन में पर्यवेक्षण की प्रक्रिया, आदेश की एकता, नियंत्रण प्रक्रिया, प्रत्यायोजन व्यवस्था आदि पहलुओं में से किसी एक पहलू का गहन अध्ययन करना चाहिये। इसका कारण यह है कि मानव मस्तिष्क की शक्तियों, ध्यान, अनुभव और रूचि आदि सीमित होते हैं।
3. **अनुभवमूलक सिद्धान्त-** व्यवहारवादी विचार अनुभववाद से अत्यधिक प्रभावित है। इसका कारण है कि व्यवहारवादी विचारक, अनुभव, निरीक्षण, प्रयोग, सन्दर्भ ज्ञान और परिस्थिति के विवेचन के आधार पर समस्याओं का विवेचन करते हैं। इन विचारकों ने ये भी माना कि लोक प्रशासन भी एक स्वतंत्र विज्ञान के रूप में अपनी स्वतंत्र विचारधाराओं का निर्माण कर सकने में समर्थ है।
4. **सन्दर्भ विशेष का महत्व-** लोक प्रशासन की समस्याओं की विवेचना वैज्ञानिक विधि के सन्दर्भ में ही किया जाना चाहिये, ऐसी व्यवहारवादी विचारकों की मान्यता है। अर्थात् यह ज्ञान की पूर्णता या निरपेक्षता में विश्वास नहीं करता। इस दृष्टिकोण की मान्यता है कि ज्ञान की सत्यता और उपयोगिता उसके

सन्दर्भ विशेष पर ही निर्भर करती है। ज्ञान के दूसरे अन्य विषयों के साथ उनके अन्तर्सम्बन्ध महत्व रखते हैं।

5. **अनौपचारिक सम्बन्धों का अध्ययन-** ये उपागम मनुष्यों के बीच के अनौपचारिक सम्बन्धों के अध्ययन पर बल देता है, क्योंकि यदि प्रशासनिक संगठनों में केवल औपरचारिकतापूर्ण व्यवहार रखा जाये तो ये कभी-कभी बहुत अव्यवहारिक एवं अमानवीय भी हो सकता है। ऐसा माना गया है कि प्रशासन में भी इस प्रकार की अनेक समस्याऐं आती हैं, जिनमें मानवीय दृष्टिकोण को महत्व दिया जाना आवश्यक होता है। इसके अतिरिक्त एक और तर्क ये भी दिया जाता है कि, लोक प्रशासन में मानव ही कार्यरत होते हैं। अतः उसमें उनके अनौपचारिक सम्बन्धों का महत्व और अधिक बढ़ जाता है।
6. **नेतृत्व का गुण-** ये दृष्टिकोण इस बात पर भी बल देता है कि लोक प्रशासन में व्यक्तियों में नेतृत्व के ऐसे गुण होने चाहिये, जिसके द्वारा अपने अधीनस्थों से अपने कार्य में सहयोग प्राप्त कर सके और साथ ही उनका कुशलतापूर्वक नेतृत्व भी कर सके।
7. **व्यक्ति और प्रशासन का सिद्धान्त-** व्यवहारवादी उपागम व्यक्ति के प्रशासनिक संगठन के साथ सम्बन्ध पर विशेष बल देता है। इसमें प्रशासन व व्यक्ति के कार्य करने के उद्देश्य, निर्णय लेने की प्रक्रिया व अधिकार के स्वरूप पर विशेष विचार किया जाता है।
8. **अन्तर्निभरता और अन्र्तअध्ययन सम्बन्धी ज्ञान की समन्वित पुष्टि-** व्यवहारवादी उपागम अन्तर्निभरता और अन्र्तअध्ययन सम्बन्धी ज्ञान की एक समन्वित दृष्टि माना जाता है। एक ओर तो यह उपागम लोक प्रशासन के अन्तर्राष्ट्रीय अध्ययन पर बल देता है, वहीं दूसरी ओर ये लोक प्रशसन को एक स्वतंत्र विज्ञान मानता है।

2.5.3 व्यवहारवादी दृष्टिकोण के लोक प्रशासन पर प्रभाव

आप अब तक यह जान गये होंगे कि, लोक प्रशासन के अध्ययन को वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान करने में व्यवहारवादी उपागम का विशेष योगदान रहा। 1960 के दशक के करीब ये दृष्टिकोण शिखर पर था। इस दृष्टिकोण में लोक प्रशासन पर बहुत प्रभाव डाला। इसे निम्न बिन्दुओं में देखा जा सकता है -

1. **वैज्ञानिक अनुभववाद-** व्यवहारवाद ने वैज्ञानिक अनुभववाद के माध्यम से लोक प्रशासन को नवीन दृष्टि व नवीन क्षेत्र प्रदान किया। व्यवहारवादियों ने औपचारिक दृष्टिकोण के साथ व्यवहारवादी मान्याताओं को जोड़कर उसे पूर्ण बनाने का प्रयास किया।
2. **विश्लेषणात्मक एवं व्याख्यात्मक सिद्धान्त के समारम्भ का सूचक-** ये दृष्टिकोण अभी समाज विज्ञानों में विश्लेषणात्मक एवं व्याख्यात्मक सिद्धान्त के आरम्भ का सूचक है। इस दृष्टिकोण से लोक प्रशासन के अध्ययन को एक नवीन दृष्टि, नवीन सोच दिशा-बोध एवं नया स्वरूप प्राप्त हुआ है।
3. **सन्दर्भ के महत्व का प्रतिपादन-** इस दृष्टिकोण के द्वारा लोक प्रशासन के विद्वानों को सन्दर्भ का महत्व पता चला। इस दृष्टिकोण के कारण ही लोक प्रशासन का अध्ययन समाजशास्त्र, दर्शनशासत्र, मनोविज्ञान, अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र के सिद्धान्तों, पद्धतियों, उपलब्धियों तथा दृष्टिकोणों के समीप आया है।
4. **प्रविधियों एवं तकनीकों का प्रयोग-** व्यवहारवाद ने लोक प्रशासन में भी नवीन तकनीकों और प्रविधियों के प्रयोग को समभव बनाया।
5. **शोध का विषय बनाना-** इस दृष्टिकोण के द्वारा सैद्धान्तिक प्रस्थापनाओं को यथार्थ के सन्दर्भ में शोध का विषय बनाया जा सकता है।
6. **लोक प्रशासन का सम्बन्ध 'क्या लेना याहिये' के स्थान पर 'क्या है' से स्थापित करना-** इस दृष्टिकोण ने लोक प्रशासन के मूल्यों को स्वतंत्र बनाने का प्रयास किया है। लोक प्रशासन के मूल्यों को

आधुनिकता और एकता प्रदान करने के लिए इसका सम्बन्ध 'क्या होना चाहिये' के स्थान पर 'क्या है' से स्थापित किया है।

7. **नवीन दृष्टि प्रदान करना-** व्यवहारवादी दृष्टिकोण ने अपने निष्कर्षों के माध्यम से लोक प्रशासन को एक नवीन दृष्टि, नवीन पद्धति, नये मापन और नवीन विषय-क्षेत्र प्रस्तुत किये है।
8. **लोक प्रशासन को व्यवहारिक विषय बनाना-** व्यवहारवादी दृष्टिकोण ने लोक प्रशासन को एक वैचारिक अध्ययन के विषय के स्थान पर व्यवहारिक अध्ययन का विषय बनाया है तथा इसे केवल वर्णनात्मक विषय की बजाय एक विश्लेषणात्मक विषय की ओर उन्मुख किया।
9. इस प्रकार व्यवहारवादी उपागम क्षेत्रीय दृष्टिकोण के विपरीत सर्वव्यापी होने पर बल देता है। इसने लोक प्रशासन में वैज्ञानिक अनुसंधान तथा व्यवस्थित सिद्धान्त-निर्माण को प्रेरणा दी। अब परिकल्पनाओं का अन्तः सांस्कृति सन्दर्भ में परीक्षण करने से तुलनात्मक लोक प्रशासन का अध्ययन एक आवश्यकता बन गया है। विभिन्न प्रशासनिक व्यवस्थाओं के भिन्न-भिन्न पर्यावरणों का अध्ययन करने के लिये तुलनात्मक लोक प्रशासन ने कई सामाजिक विज्ञानों से धारणाऐं, उपकरण तथा जांच-परिणाम उधार लिये हैं और इस प्रकार अन्तर्विषयक(Interdisciplinary) दिशा विकसित की है, स्वयं व्यवहारवाद में एक छाते(umbrella) का काम किया है। जिसके अधीन तुलनात्मक लोक प्रशासन जो न केवल लोक प्रशासन के साथ अपितु अन्य कई विषयों के साथ विभिन्न रीतियों की अन्तर्क्रिया प्राप्त हुई है।

2.5.4 व्यवहारवादी दृष्टिकोण की आलोचना

उपरोक्त बिन्दुओं के आधार पर आप भली-भाँति जान गये होंगे कि व्यवहारवादी उपागम ने लोक प्रशासन के अध्ययन को एक नया दृष्टिकोण, नई दिशा दी और अपनी उपयोगिता भी साबित की। हींज यूलाउ के अनुसार, अवसर पूर्ण धारणाऐं, भय, समय, संकीर्ण दृष्टि, कार्य प्रविधियों तथा पद्धतियों की अपूर्णता, आदि कुछ ऐसी सीमाऐं हैं जो व्यवहार की सफलता पर अंकुश भी रखती हैं और उसे सीमित भी रखती हैं। 1960 के दशक के करीब व्यवहारवादी दृष्टिकोण अपने चरमोत्कर्ष पर था। अमरीकी राजनीति संस्कृति जीवन प्रणाली तथा विज्ञान बनाने के सम्मान ने इसे विकसित होने में सहायता प्रदान की। परन्तु जैसे-जैसे इस दृष्टिकोण की मान्यता बढ़ने लगी, इसकी कमियां भी सामने आने लगी। हींज यूलाउ के अनुसार, अवसर के पूर्ण धारणाऐं, भय, समय, संकीर्ण दृष्टि, कार्य प्रविधियों तथा पद्धतियों की अपूर्णता, आदि कुछ ऐसी सीमाऐं हैं जो व्यवहार की सफलता पर अंकुश भी रखती हैं और उसे सीमित भी रखती हैं। मलफोर्ड सिबले ने व्यवहारवाद की कुछ और सीमाओं को विस्तार से वर्णन किया है, जो इस प्रकार हैं-

1. **लोक प्रशासन को विज्ञान मानते की बात अनिश्चयपूर्ण-** व्यवहारवादी विचारकों के द्वारा मानव व्यवहार का विज्ञान प्रस्तुत नहीं किया जा सका। इतने समय बाद भी लोक प्रशासन को विज्ञान मानने की बात अभी अनिश्चयपूर्ण ही बनी हुई है।
2. **लोक प्रशासन को प्राकृतिक या भौतिक विज्ञानों के समकक्ष बनाने का दुराग्रह-** व्यवहारवादी विचारक इस बात को भूल जाते हैं कि, प्राकृतिक विज्ञानों तथा लोक प्रशासन के तथ्यों में बहुत अन्तर है। वास्तव में लोक प्रशासन को प्राकृतिक या भौतिक विज्ञानों के समकक्ष बनाने का प्रयास करना अत्यधिक कठिन है।
3. **अध्ययन की पद्धति पर अत्यधिक बल-** व्यवहारवादी विचारक अध्ययन की पद्धति पर अधिक बल देते हैं। अनेक बार ये भी देखा गया है कि व्यवहारवादी विचारकों ने महत्वपूर्ण विषयों को छोड़कर महत्वहीन विषयों के सम्बन्ध में तथ्यों और आंकड़ों को एकत्रित करने में ही अपने आपको बहुत व्यस्त रखा है।

4. **अपने सिद्धान्तों के प्रतिपादन में कट्टरपंथी-** व्यवहारवादी विचारक एक ओर जहाँ अपने निष्कर्षों तथा मान्यताओं को सापेक्ष मानते हैं, वहीं दूसरी ओर वे उस समय तक किसी के अस्तित्व को महत्व नहीं देते जब तक कि उसे गिना, तोला या मापा नहीं जाता। इस दृष्टि से ये भी धार्मिक कट्टरपंथियों के समकक्ष बन जाते हैं।
5. **अन्तिम मूल्यों के सम्बन्ध में स्पष्ट नहीं-** कुछ आलोचक विद्वानों का मानना है कि व्यवहारवादी विचारकों ने अन्तिम मूल्यों के विवेचन के बारे में कुछ नहीं कहा, जो कि एक असन्तोषजनक स्थिति है। अतः ये कहा गया है कि कोई भी उद्देश्यहीन कार्य प्रशासनिक कार्य की कोटि में कैसे हो सकता है?
6. **रूढ़िवादी-** व्यवहारवादी विचारक अपने आपको मूल्य निरपेक्ष मानते हैं परन्तु वास्तव में स्थायित्व के पक्षधर हैं इस प्रकार वे रूढ़िवादी बन गये हैं।
7. **इतिहासोत्तर प्रकृति-** व्यवहारवादी विचारकों की प्रकृति इतिहासोत्तर मानी जाती है, क्योंकि उनकी पद्धति में अब तक जो हो चुका है उसकी अवहेलना की गयी है।
8. **लघु-स्तरीय एवं अति महत्वपूर्ण घटनाओं पर अधिक ध्यान-** एक आलोचना ये भी की जाती है कि व्यवहारवादियों ने अपनी समस्त शक्ति लघु-स्तरीय एवं महत्व पूर्ण घटनाओं के अध्ययन में लगायी है और ऐसा माना गया कि इन्होंने व्यष्टि और समष्टि दोनों स्तरों पर अनेक महत्वपूर्ण पक्षों को उपेक्षित किया है।
9. **उपयोगितावाद पर प्रश्न चिन्ह-** व्यवहारवादी विचारकों ने वैज्ञानिकता की आड़ में जिस तरह से कल्पना शक्ति का सहारा लिया है, उसके कारण इस वाद की उपयोगिता पर ही प्रश्न-चिन्ह लग गया है।
10. **मात्र एक मनोवृत्ति-** कुछ वैज्ञानिक इस दृष्टिकोण या उपागम को एक सिद्धान्त या अध्ययन का उपागम मानने की अपेक्षा मात्र एक मनोवृत्ति ही करार देते हैं, जो एक विशेष सोच से प्रेरित थी।
11. **नीति-निर्माण में सीमित उपयोग-** नीति-निर्माण के क्षेत्र में भी व्यवहारवाद का उपयोग सीमित है। इस क्षेत्र में व्यवहारवाद से प्राप्त निष्कर्ष के अतिरिक्त कई अन्य कारक भी महत्वपूर्ण होते हैं।
12. **मानव-व्यवहार का सटीक विश्लेषण करने में समर्थ-** व्यवहारवादी उपागम से अभी तक मानव व्यवहार का सटीक विश्लेषण नहीं हो सका है क्योंकि, विश्व की सबसे जटिल अवधारणा, आश्चर्य तथा समस्या 'मानव व्यवहार' ही है। व्यवहारवादी भी मानव व्यवहार की व्याख्या करने में असमर्थ हैं।

व्यवहारवादी उपागम की उपरोक्त कमियों या आलोचनाओं के कारण ही सन् 1920 के आस-पास उत्तर-व्यवहारवादी आन्दोलन का आरम्भ हुआ। राजनीतिशास्त्री डेविड ईस्टन में व्यवहारवाद को पर्याप्त मात्रा में विकसित किया तथा उन्होंने ही उत्तर-व्यवहारवाद की शुरूआत की। उत्तर -व्यवहारवाद में वास्तविकताओं को समझने, मानव कल्याण को गति देने, पूर्ण मूल्य -निरपेक्षता से बचने तथा विचारों की संगतता को महत्व दिया गया है। अतः कहा जाता है कि परम्परावादी अध्ययन प्रणालीवाद(Thesis) थी, व्यवहारवादी आन्दोलन प्रतिवाद(Antithesis) बना, उत्तर-व्यवहारवादी संश्लेषण या संवाद(Synthesis) का पर्याय है।

अभ्यास के प्रश्न-

1. 'इडियोग्राफिक' तथा 'नोमोथेटिक' शब्द किसके द्वारा रचित है?
2. व्यवहारवादी उपागम के बारे में कौन सा वाक्यांश सही है?
3. कौन विद्वान लोक प्रशासन की परिस्थितिकी अथवा पर्यावरणात्मक अध्ययन से नहीं जुड़ा है?
4. लोक प्रशासन के अध्ययन में व्यवहारवादी दृष्टिकोण की उत्पत्ति किस विद्वान ने की?

2.6 सारांश

प्रस्तुत अध्याय में आपने जाना कि सामान्यतया लोक प्रशासन के अध्ययन की सुविधा हेतु मुख्यतया दो प्रकार के दृष्टिकोण प्रचलित हैं- परम्परागत एवं अर्वाचीन। परम्परागत दृष्टिकोण को मानने वाले विचारक संगठन के सिद्धान्त, विशेषताओं, आवश्यकताओं आदि पक्षों को केन्द्रीय विषय मानते हैं। इन विचारकों ने लोक प्रशासन की सम्पूर्ण समस्याओं को कानूनी दृष्टिकोण से देखा और लोक प्रशासन की व्याख्या में औपचारिकता , ऐतिहासिकता, वर्णनात्मकता एवं वैचारिकता को प्राथमिकता दी। इस दृष्टिकोण के प्रमुख समर्थक व्हाइट, विलोबी और एण्डरसन हैं। परम्परागत दृष्टिकोण के अन्तर्गत कानूनी, ऐतिहासिक, विषय-वस्तु, राजनीतिक, वैज्ञानिक एवं जीवन-वृत्तात्मक(संस्मरणात्मक) पद्धतियाँ प्रयोग में लायी जाती हैं। इन पद्धतियों में क्रमशः ऐतिहासिक पद्धति के आधार पर ही प्रशासकीय विकास का अध्ययन, संवैधानिक और प्रशासकीय कानून के माध्यम से सरकार के तीनों अंगों (व्यवस्थापिका, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका) आदि का तथा विभिन्न विभागों के संगठन, स्थानीय इकाइयों का गठन कैसे किया जाता है तथा ये कार्य कैसी करती हैं आदि का अध्ययन किया जाता है। साथ ही प्रशासकीय योजनाओं तथा सेवाओं का अध्ययन, निरीक्षण और पर्यवेक्षण के आधार पर विशिष्ट घटनाओं से सामान्य नियम बनाने की आवश्यक सामग्री का संग्रह करके उसे विभिन्न वर्गों में विभाजित करने की तथा इनके सम्बन्ध में विभिन्न कल्पनाऐं करके उनकी सत्यता परखने की पद्धति का अनुसरण किया जाता है। राजनीतिक दृष्टिकोण के आधार पर प्रशासकीय समस्याओं को राजनीतिक समस्याओं का अंग ही माना गया तथा आवश्यकता जाहिर की गयी कि प्रशासनिक समस्याओं को समझने के लिये राजनीतिक दृष्टिकोण अपनाना होगा। वरिष्ठ प्रशासकों के कार्यों तथा अनुभवों के अभिलेखों तथा संस्मरणों का अध्ययन करके प्रशासन की समस्याओं तथा निर्णय की प्रक्रिया का वास्तविक एवं व्यवहारिक ज्ञान प्राप्त करने की बात जीवन-वृत्तात्मक पद्धति में मानी गयी।

आधुनिक अथवा अर्वाचीन दृष्टिकोण के अन्तर्गत-संरचनात्मक-कार्यात्मक दृष्टिकोण, परिस्थितिकी दृष्टिकोण तथा व्यवहारवादी दृष्टिकोण को सम्मिलित किया जाता है। संरचनात्मक-कार्यात्मक दृष्टिकोण के प्रमुख समर्थक आमण्ड, ईस्टन एवं एप्टर माने जाते हैं। इस दृष्टिकोण का उपयोग किसी व्यवस्था का वर्णन करने के लिए एक पद्धति के रूप में किया जाता है। वाल्डो ने माना था कि यह पद्धति उपागम समाजशास्त्रीय उद्देश्यों और पद्धतियों की प्रतिबद्धता से प्रेरित है, लेकिन यह मानविकी की परम्परागत संवेदनशीलता तथा शोध की अपेक्षा शिक्षा की व्यवहारिक रूचि से प्रभावित है। परिस्थितिकी दृष्टिकोण का सर्वप्रथम प्रयोग आई0 एम0 गॉस ने किया। रिग्स तथा डहल ने भी इस दृष्टिकोण के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। परिस्थितिकी दृष्टिकोण के अन्तर्गत प्रशासनिक समस्याओं का अध्ययन लोगों और उनके वातावरण के समर्थन में उनकी नागरिक मनोवृत्तियों और कुछ विशेष समस्याओं को दृष्टि में रख कर किया जाता है। रिग्स ने भी इस मामले में व्यापक चर्चा करते हुए कहा कि वातावरण का भले ही संगठन और प्रशासन पर प्रभाव पड़ता है, किन्तु संगठन और प्रशासन का वातावरण पर प्रभाव नहीं पड़ता है।

लोक प्रशासन के अध्ययन क्षेत्र में व्यवहारवादी दृष्टिकोण का प्रचलन द्वितीय विश्व युद्ध के बाद हुआ। साइमन, वीडनर, रिग्स आदि विचारकों ने लोक प्रशासन के अध्ययन के लिये व्यवहारवादी दृष्टिकोण को अपनाया अर्थात् इन्होंने प्रशासनिक संगठन में मानवीय व्यवहार का स्वरूप कैसा होता है? और विभिन्न प्रकार के संगठन किस तरह अन्य गतिविधियों को संचालित करते हैं? के अध्ययन पर बल दिया है। व्यवहारवादी दृष्टिकोण के अन्तर्गत मनोवैज्ञानिक तथा परिमाणात्मक पद्धतियों को प्रयोग में लिया जाता है। मनोवैज्ञानिक पद्धति ने अपनी मान्यताओं से ये सिद्ध करने का प्रयास किया कि मनुष्य या समूहों की इच्छाऐं तथा उनके व्यवहार प्रशासन को प्रभावित करते हैं इसलिये कानून बनने से पहले मानवीय तत्व का अध्ययन कर लेना आवश्यक है।

2.7 शब्दावली

प्रमाणिकता- किसी वस्तु आदि के संदर्भ में अनुभव के आधार पर निष्कर्ष प्रस्तुत न करने अपितु उसे परीक्षण के उपरान्त स्वीकार करने की अवस्था, प्रस्थापनाऐं- विशिष्ट रूप से संस्थापित करना, आगमनात्मक- तर्क की जिस प्रक्रिया में एकाकी प्रेक्षणों के ज्ञात तथ्यों को जोड़कर अधिक व्यापक कथन निर्मित किया जाता है, परिलक्षित- अच्छी तरह से देखा भाला हुआ, अनुप्रेरित- जो किसी प्रेरणा से प्रेरित हो, अभिलेख- महत्वपूर्ण लेख, दस्तावेज, मितव्ययता- कम खर्चा, चर- परिचायक या गतियान, विश्लेषित- अलग किया हुआ, गतिशील- उन्नतिशील, क्रियाशील जिसमें गति हो, समाजीकरण- वह प्रक्रिया जिसमें मनुष्य दूसरों से अन्तःक्रिया करता हुआ समाज के रीति रिवाजों, विश्वासों को सीखता है, मूल्य-निरपेक्ष- जो किसी के पक्ष में न हो, संक्रमणशील- जिसमें निरन्तर बदलाव हो रहा हो, यथार्थवादी- जो वस्तु, विचार या सिद्धान्त जिस रूप में हो उसे उसी रूप में स्वीकार करना, मनोवृत्ति- मन की स्वभाविक स्थिति जिसके कारण व्यक्ति किसी ओर प्रवृत होता या हटता है, संगतता- संगत होने की अवस्था या भाव, प्रतिवाद (Antithesis)- विरोध, खण्डन, किसी कथन को मानने से इन्कार करना, दुराग्रह- अनुचित, सापेक्ष- जो दूसरों पर आधारित तथा आश्रित हो, संवाद/संश्लेषण- सहमति या स्वीकृति।

2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. रिग्स, **2.** अपनी प्रकृति में अनुभविक, **3.** डवाईट वाल्डो, **4.** चेस्टर बर्नाड और हरबर्ट साइमन

2.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ0 अवस्थी, तुलनात्मक लोक प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा-2004
2. डॉ0 सुरेन्द्र कटारिया, तुलनात्मक लोक प्रशासन, आर0बी0एस0ए0 पब्लिशर्स, जयपुर-2013
3. टी0एन0 चतुर्वेदी, तुलनात्मक लोक प्रशासन, रिसर्च पब्लिकेशन-1978

2.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य समग्री

1. अनिल गुप्ता, महिपाल चारण हिलोडी, तुलनात्मक लोक प्रशासन, यूनिवर्सिटी बुब हाउस, जयपुर-2005
2. एम0पी0 शर्मा, बी0एल0 सदाना, हरप्रीत कौर, लोक प्रशासन सिद्धान्त एवं व्यवहार, किताब महल, इलाहाबाद-2015

2.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. लोक प्रशासन के अध्ययन की प्रमुख पद्धतियों का वर्णन कीजिए। इसमें से आप किस पद्धति को क्षेयस्कर समझते हैं और क्यों?
2. लोक प्रशासन के अध्ययन की विभिन्न प्रणालियों का वर्णन कीजिए।
3. लोक प्रशासन के अध्ययन में विभिन्न उपागमों की विवेचना कीजिए।
4. लोक प्रशासन के अध्ययन में संरचनात्मक-कार्यात्मक उपागम की व्याख्या कीजिए।

इकाई- 3 प्रशासन का सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक परिवेश

इकाई की संरचना

3.0 प्रस्तावना
3.1 उद्देश्य
3.2 पर्यावरण तथा लोक प्रशासन
3.3 प्रशासन का सांस्कृतिक परिवेश
3.4 प्रशासन का सामाजिक परिवेश
3.5 प्रशासन का राजनीतिक परिवेश
3.6 प्रशासन का आर्थिक परिवेश
3.7 सारांश
3.8 शब्दावली
3.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
3.12 निबंधात्मक प्रश्न

3.0 प्रस्तावना

लोक प्रशासन में पर्यावरण, परिवेश अथवा परिस्थितिकी के अध्ययन का विचार वनस्पति विज्ञान से ग्रहण किया गया है। ऐसा माना गया है कि जिस प्रकार से एक पौधे के लिये उपयुक्त जलवायु, प्रकाश और बाहरी वातावरण की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार से एक सामाजिक संस्था के विकास और प्रशासन के लिये भी एक विशेष वातावरण आवश्यक है। मार्क्स के समय से ही यह माना जाता है कि व्यक्ति, समाज एवं प्रशासन के समस्त क्रियाकलापों का स्वरूप उसकी बाहरी परिस्थितियों के द्वारा निर्धारित होता है। आज जब सम्पूर्ण राज्य का स्वरूप ही प्रशासनिक हो गया है तो किसी भी संस्था या संगठन के विस्तृत विवेचन हेतु पर्यावरण का अध्ययन एवं विवेचन आवश्यक हो गया है। यह एक निर्विवाद सत्य है कि लोक प्रशासन कई तत्वों से प्रभावित होता है जैसे. पर्यावरण, संस्कृति, राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक. परिवेश। लोक प्रशासन समाज विज्ञान का एक विषय है। इसे समझने के लिये देश में चारों ओर होने वाली घटनाओं का अध्ययन आवश्यक है।

3.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- पर्यावरण और लोक प्रशासन की अन्तर्सम्बद्धता को समझ पायेंगे।
- भली-भाँति समझ पायेंगे कि विभिन्न प्रकार का पर्यावरण लोक प्रशासन को किस प्रकार प्रभावित करता है?

3.2 पर्यावरण तथा लोक प्रशासन

मनुष्य तथा उसके सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा अन्य संस्थान पर्यावरण की देन है। पर्यावरण (Ecology) का शब्द जीवशास्त्र से लिया गया है। जहाँ इसका अभिप्राय होता है, पशु जाति तथा इसके प्राकृतिक वातावरण में परस्पर निर्भरता। किसी सामाजिक व्यवस्था में, वातावरण या पर्यावरण का अर्थ है- संस्थान, इतिहास, विधि, आचारशास्त्र, धर्म, शिक्षा, परम्परा, विश्वास, मूल प्रतीक, पौराणिक गाथाऐं आदि, जिनको भौतिक तथा अभौतिक संस्कृति का नाम दिया जाता है। लोक प्रशासन सहित सभी संस्थानों पर समाज के पर्यावरण और

संस्कृति का प्रभाव पड़ता है। जिस प्रकार लोक प्रशासन अपने पर्यावरण से प्रभावित होता है, ठीक उसी प्रकार वह स्वयं भी पर्यावरण को प्रभावित करता है। एक ही प्रकार की संस्थाऐं अलग-अलग वातावरणों में विभिन्न प्रकार से कार्य करती है। अतः यदि हम किसी संस्था के संगठन और उसके कार्यों का समुचित ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं तो तत्सम्बन्धी वातावरण का विवेचन करना आवश्यक होगा। चूंकि लोक प्रशासन एक उप-व्यवस्था है, इसकी सामाजिक व्यवस्था के साथ परस्पर क्रिया होती है, सामाजिक व्यवस्था इसके आकार को ढालती है और यह सामाजिक व्यवस्था को प्रभावित करता है। लोक प्रशासन के सम्बन्ध में ये बात पूर्ण रूप से सत्य है, क्योंकि जो प्रशासनिक संस्थाऐं एक देश में सफलतापूर्वक कार्य करती है, उनको दूसरे देश भी अपनाने का प्रयास करते हैं। इनकी सफलता के लिये आवश्यक होता है कि उसके लिये उपर्युक्त पर्यावरण की व्यवस्था की जाये। अतः उस देश विशेष की समस्या परिस्थितियों का सूक्ष्म अध्ययन या विवेचन किया जाना आवश्यक हो जाता है। इसके साथ ही एक ही देश में वहाँ की प्रशासनिक संस्थाओं के संगठन और कार्य को सही रूप से समझने के लिये ये आवश्यक है कि उस देश की सामाजिक व्यवस्था और सरकार के रूप में भी अध्ययन किया जाये। तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन में पर्यावरण का विशेष महत्व है। प्रशासन के कुछ विशेषताऐं एक विशेष वातावरण में ही उपलब्ध होती हैं। अतः तुलनात्मक दृष्टि से यह अध्ययन किया जाना चाहिये कि कौन सा वातावरण किस संस्था के लिये उपयुक्त होता है, ताकि किसी देश में नयी प्रशासनिक संस्थाओं की शुरूआत करते समय उपयुक्त परिवेश की व्यवस्था की जा सके। अर्थात् लोक प्रशासन तथा पर्यावरण का सम्बन्ध द्विपक्षीय है। जिस प्रकार लोक प्रशासन अपने पर्यावरण से प्रभावित होता है, ठीक उसी प्रकार वह स्वयं भी पर्यावरण को प्रभावित करता है। इस सन्दर्भ में वी0पी0 सिंह कहते हैं ‘‘किसी भी समय प्रशासन पर सांस्कृतिक वातावरण का अचूक प्रभाव होता है।’’ 1947 में जॉन एम0 गॉस ने, लोक नौकरशाही और इसके पर्यावरण की अनिवार्य परस्पर निर्भरता का अध्ययन करने के लिये पर्यावरण की धारणा को लागू करने की आवश्यकता पर बल दिया। उसी वर्ष राबर्ट डहल ने अंतः सांस्कृतिक अध्ययनों की बात कही और प्रशासनिक ढाँचों और व्यवहार पर पर्यावरण के प्रभाव पर बल दिया। उन्होंने कहा कि लोक प्रशासन, ‘राष्ट्रीय. मनोविज्ञान’ तथा राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक पर्यावरण जिसमें वह विकसित होता है, के प्रभाव से बच नहीं सकता। 1950 के उपरान्त ही पर्यावरण की लोक प्रशासन के साथ संगति (Relevance) के अध्ययन में वास्तविक और विस्तृत रूचि देखी गयी। लोक प्रशासन के पर्यावरणात्मक अध्ययन के अर्थ और महत्व को रमेश के0 अरोड़ा तथा अगस्टो फेरेरोस ने बताया कि लोक नौकरशाही को समाज के कई बुनियादी संस्थानों में से एक समझा जाना चाहिये। अतः इसके ढाँचे और कार्य को समझने के लिये इसका अध्ययन दूसरे संस्थानों के साथ पारस्परिक सम्बन्धों के सन्दर्भ में ही किया जाना चाहिये। अतः उस देश विशेष की समस्या. परिस्थितियों का सूक्ष्म अध्ययन या विवेचन किया जाना आवश्यक हो जाता है। इसके साथ ही एक ही देश में वहाँ की प्रशासनिक संस्थानों के संगठन और कार्य को सही रूप से समझने के लिये ये आवश्यक है कि उस देश की सामाजिक. व्यवस्था और सरकार के रूप के सन्दर्भ में भी अध्ययन किया जाये।

तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन में पर्यावरण का विशेष महत्व होता है। प्रशासन की कुछ विशेषताऐं एक विशेष वातावरण में ही उपलब्ध होती हैं। अतः तुलनात्मक दृष्टि से यह अध्ययन किया जाना चाहिये कि कौन सा वातावरण किस संस्था के लिये उपयुक्त होता है? ताकि किसी देश में नयी प्रशासनिक संस्थाओं की शुरुआत करते समय उपयुक्त परिवेश की व्यवस्था की जा सके। डॉ0 आर0 के0 दुबे ने पर्यावरण या परिवेश के अध्ययन की इसी महत्ता को बताते हुए कहा कि ‘‘लोक प्रशासन के आधुनिक विचारकों की ये मान्यता है कि किसी भी प्रशासनिक समस्या की जानकारी हेतु सम्बन्धित प्रशासन के बाह्य. परिवेश का अध्ययन करना आवश्यक हो जाता है।’’

सन् 1961 में एफ0 डब्ल्यू0 रिग्स की पुस्तक, "The Ecology of Public Administration" प्रकाशित हुई। इस पुस्तक में लोक प्रशासन तथा पर्यावरण जिसमें वह विकसित होता है, के बीच परस्पर क्रिया को तुलनात्मक

ढंग से समझने का प्रयास किया गया था। रिग्स का कहना है कि ‘‘किसी भी प्रशासनिक संरचना का महत्व उसकी परिस्थितिकी के अन्तर्गत ही समझा जा सकता है।’’ रिग्स के अतिरिक्त जॉन एम0 गौस, रॉबर्ट डल, रास्को मार्टिन आदि विद्वानों ने भी लोक प्रशासन में पर्यावरण के अध्यन को व्यापक, विस्तृत एवं समृद्ध बनाया है। लोक प्रशासन की परिस्थितिकी का अध्ययन करने एवं तद्अनुसार प्रशासनिक कार्यकलापों का विश्लेषण करने से प्रशासनिक सुधारों को एक सार्थक दिशा मिल सकती है एवं परिवर्तित परिस्थितियों के अनुरूप प्रशासनिक प्रक्रियाऐं तथा व्यवहार परिवर्धित किया जा सकता है।

अतः यह स्वीकार कर लिया गया है कि विभिन्न स्थितियों में लोक प्रशासन के पर्यावरणात्मक आयामों का ज्ञान लोक प्रशासन के अध्ययन के वैज्ञानिक विकास में सहायता दे सकता है। इसका व्यवहारिक महत्व इस बात में है कि, यह तकनीकी सहायता तथा प्रशासनिक विकास के क्षेत्रों में नीति-निर्माण प्रक्रिया का व्यवहारिक ज्ञान प्रदान करता है।

3.3 प्रशासन का सांस्कृतिक परिवेश

जैसा कि आपने अभी जाना कि लोक प्रशासन सहित सभी संस्थानों पर समाज के पर्यावरण और संस्कृति का भी प्रभाव पड़ता है। सामान्यतः सभ्यता तथा संस्कृति में वही अन्तर माना जाता है जो शरीर तथा आत्मा में होता है। सभ्यता बाह्य, भौतिकवादी तथा शीघ्र परिवर्तित होने वाले सामाजिक सन्दर्भो की व्याख्या करती है, जबकि संस्कृति आन्तरिक, आध्यात्मिक तथा मानव व्यवहार के पक्षों से जुड़ी है। ‘संस्कृति’ शब्द की उचित व्याख्या करना बहुत कठिन है, फिर भी यह कहा जा सकता है कि संस्कृति का अर्थ किसी समुदाय की जीवनशैली है, जिसका समुदाय के रहन-सहन, खान-पान, पहनावा एवं जीवनशैली पर विशेष प्रभाव पड़ा है एवं समाज की संस्कृति अपने नागरिकों को अनेक आदर्शात्मक मूल्य प्रदान करती है। इन मूल्यों सेलोक प्रशासन का संगठन एवं व्यवहार भी अछूता नहीं रहता है। प्रशासन के संगठन में विभिन्न कर्मचारियों के आपसी सम्बन्धों, उच्च अधिकारियों के निम्न अधिकारियों के प्रति दृष्टिकोण आदि पर इस बात का विशेष प्रभाव पड़ता है कि उस समाज विशेष की संस्कृति और मूल्य क्या हैं? एक-दूसरे को सम्मान देना, शिष्ट भाषा में विरोध करना तथा किसी भी कार्य के प्रति सहयोग, सहानुभूति और मानवीय दृष्टिकोण अपनाना, अन्तः संस्कार और संस्कृति की ही अमूल्य देन होते हैं। संस्कार, संस्कृति और मान्यताओं को ध्यान में रखकर ही प्रशासनिक व संवैधानिक कानूनों का निर्माण किया जाता है और यही कारण है कि एक देश की प्रशासनिक व्यवस्था तथा कानून दूसरे देश की प्रशासनिक व्यवस्था तथा कानून से एकदम भिन्न और विपरीत होते हैं। जी0ई0 ग्लेडन ने भी अपनी पुस्तक, "Dynamics of Public Administration" में लोक प्रशासन और सांस्कृतिक परिवेश के सम्बन्धों पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि ‘‘यदि प्रशासनिक संस्कृति रूपान्तरण के कारण हुई प्रगति से सामजंस्य स्थापित्त नहीं करती, तो सामाजिक असन्तोष और हिंसा से ढांचा अन्ततः ध्वस्त ही हो जायेगा। सामाजिक संस्कृति की अनुकूलन क्षमता ही प्रशासन में लोक सामांजस्य और व्यवस्था बनाये रखने में प्रमुख भूमिका निभाती है।’

यदि भारतीय संस्कृति पर नजर डालें तो, भारतीय संस्कृति की धारा अनेकों बार अवरूद्ध भी हुई, परन्तु समय-समय पर भारतीय महापुरूषों ने उसे पुनः एकीकृत किया। साथ ही आधुनिक स्वरूप प्रदान करके उसे शाश्वत भी बना दिया। सामाजिक मूल्य, सम्प्रदाय, रूढ़ियां, भाषा, संचार, रहन-सहन, खान-पान, बोली तथा धर्म आदि संस्कृति के अंग माने जाते हैं। लोक प्रशासन को प्रभावित करने वाले प्रमुख सांस्कृतिक पर्यावरणीय कारकों में धर्म एवं साम्प्रदायिक आस्थाऐं, भाषा एवं बोली, शिक्षा तथा मूल्य, पहनावा, परम्पराऐं, रीति-रिवाज, लिपि, संचार के साधन आदि आते हैं।

सभ्यता व संस्कृति निरन्तर परिवर्तित होती रहती है और इसे कई कारकों ने परिवर्तित किया है। परिवर्तन की यह प्रक्रिया कभी बहुत तीव्र और कभी धीमी भी रही है। व्यक्ति के व्यवहार तथा प्रशासन के कार्यकरण को प्रभावित

करने में सम्बन्धित समाज की सांस्कृतिक विशेषताऐं बहुत प्रभाव डालती है। यदि धर्म के सन्दर्भ में देखा जाये तो भारत जैसे देश में अनेक धर्म को मानने वाले लोग रहते हैं। धर्म का अभिप्राय सामान्य शब्दों में होता है। वे तत्व जिनके रहने से ये समाज रहता है और जिनके ना रहने से यह समाज बिखर कर नष्ट हो जाता है। जैसे- धैर्य, क्षमा, उदारता, सन्तोष, ईमानदारी, पवित्रता, ज्ञान, सत्य, प्रेम, अहिंसा, परोपकार, सहयोग, अपनी ही भांति दूसरों की चिंता करना आदि और धर्म के इन तत्वों को नैतिक मूल्य या श्रेष्ठ जीवन-पद्धति के तत्व भी कहा जा सकता है। साथ ही ये कर्तव्य भी कहला सकते हैं और मानवीय सद्-गुण भी। ये तत्व दुनिया में सर्वत्र और सभी के लिये कल्याणकारी होते हैं और मानव-मात्र के लिये हितकर भी होते हैं। इनकी हितकारिता को हिन्दू, मुसलमान, ईसाई कोई भी नहीं नकार सकता। धर्म को जीवन और आचरण में पूर्णतः उतार लेने के लिये और व्यक्ति के आत्मिक विकास के लिये भारत में विभिन्न दर्शनों एवं सम्प्रदायों का विकास हुआ है जैसे- अद्वैत, वैष्णव, शैव, शाक्त, जैन, बौद्ध तथा सिक्ख आदि। धर्म साध्य होता है और सम्प्रदाय उसकी प्राप्ति का साधन। भाषा, विचार-अभिव्यक्ति का एक अनिवार्य साधन है। जिन देशों की राष्ट्रीय भाषा होती है, वहाँ प्रशासन का कार्य सुविधाजनक बन जाता है।

उपरोक्त सभी सांस्कृतिक तत्वों के बारे में जानने के बाद ये स्पष्ट हो जाता है कि लोक प्रशासन संस्कृति में बांधा है, क्योंकि इसकी स्थिति या पर्यावरण इसको ढालता है तथा यह विभिन्न सांस्कृतिक क्षेत्रों या पर्यावरणों में निजी विशेषताओं का विकास करता है। विभिन्न देशों में लोक प्रशासन के ढ़ाँचों और कार्यों को देखने से पता चलता है कि औपचारिक संगठनों में बाहरी एकरूपता है, फिर भी उनके अनौपचारिक तथा व्यवहारिक नमूनों में बहुत अधिक विभिन्नताऐं हैं। इसका कारण भी यही है कि, प्रत्येक का रूप उसके समाज की संस्कृति ही प्रदान करती है। इन विभिन्नताओं के कारण ही एफ0 डब्ल्यू रिग्स सामाजिक ढ़ाँचों का वर्गीकरण तीन श्रेणियों में करते हैं- संयोजित (Fused), प्रिजमीय(Prismatic) तथा निवर्तित(Diffracted) और उन्होंने इन तीनों श्रेणियों में प्रशासन की निजी विशेषताओं का उल्लेख किया है। प्रिजमीय समाज के विश्लेषण में प्रशासनिक ढ़ाँचों पर पड़ने वाला पर्यावरण का प्रभाव ही ध्यान का मुख्य केन्द्र है।

यह अवश्य कहना होगा कि किसी भी समाज के सांस्कृतिक मूल्य अपरिवर्तनीय नहीं होते। संस्कृति परिवर्तनशीन है और संस्कृति तथा प्रशासन में निरन्तर परस्पर क्रिया होती रहती है। यही परस्पर क्रिया लोक प्रशासन तथा सरकार की भूमिका की पुनर्व्याख्या करती है। ये पारस्परिक क्रिया एकपक्षीय अथवा एक दिशोन्मुखी नहीं है अर्थात् केवल संस्कृति तथा पर्यावरण ही प्रशासन को प्रभावित नहीं करता अपितु यह द्विपक्षीय या द्वि-दिशोन्मुखी है। लोक प्रशासन भी समाज की संस्कृति और पर्यावरण पर समान रूप से प्रभाव डालता है। भारत में संस्कृति तथा प्रशासन के बीच परस्पर क्रिया के एक अध्ययन में बी0 पी0 सिंह लिखते है कि ‘‘भारत में एक नया प्रशासनिक लोकाचार अधिकाधिक देखने में आ रहा है जो सामान्य इच्छा को प्रतिबिम्बित करने का प्रयास करता है और नई चुनौतियों का मुकाबला करने के लिये वह अपनी संगठनात्मक योग्यता तथा आदान(Inputs) को विकसित कर रहा है। इस सन्दर्भ में प्रशासन निरन्तर हमारे समाज की राजनैतिक, आर्थिक तथा सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों की व्यवस्था के साथ परस्पर क्रिया में लगा है। यह इन व्यवस्थाओं को परिवर्तित करने वाले प्रभाव का कार्य करता है और साथ ही स्वयं भी इन सम्बन्धित व्यवस्थाओं की क्रियाओं से प्रभावित होता है। चूँकि लोक प्रशासन संस्कृति से बंधा है अत: इसका परिणाम यह है कि एक पर्यावरणात्मक स्थिति का लोक प्रशासन किसी भिन्न सांस्कृतिक. पर्यावरण से प्रतिरोपित(transplanted) नहीं किया जा सकता। रॉल्फ ब्रायबंटी(Ralph Braibanti) भी इस निष्कर्ष की पुष्टि करते हैं। उनका कथन है ‘‘जब संस्थानों को एक पर्यावरण से दूसरे वातावरण में प्रतिरोपित या स्थानान्तरित किया जाता है तो उनका विकास पूर्वकल्पित मार्गों पर नहीं होता और हो सकता है कि वे ऐसी आवश्यकताओं को पूरा करें जो उनकी उत्पत्ति के स्थान की आवश्यकताओं से भिन्न हो।’’ एक समाज से लाये गये विचारों और ढ़ाँचों को प्राप्तकर्ता समाज में पूर्व स्थित विचार और ढांचा परिवर्तिन ही एक बहुत ही गतिशील प्रक्रिया के द्वारा ढाल देते हैं। जिस प्रक्रिया को विभिन्न नाम दिये जाते हैं जैसे- संस्कृति प्रसारण तथा

अभिग्रहण(culture radiation and reciption) और स्वदेशीकरण का सर्पिल गति से बढ़ना (spiralling indegenization)।

निष्कर्ष के तौर पर ये कहा जा सकता है कि प्रशासनिक व्यवहार को भली-भाँति समझने एवं उसका आर्थिक विश्लेषण करने के लिये प्रशासन के राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा सामाजिक पर्यावरण को समझना आवश्यक होता है। गाई पीटर्स तथा माइकल क्रोजियर, लोक प्रशासन की आन्तरिक संस्कृति या प्रशासनिक संस्कृति(Administrative culture) के अध्ययन की भी आवश्यकता प्रतिपादित करते हैं। प्रशासनिक संस्कृति वे पारम्परिक तरीके या ढंग हैं, जिसमें धार्मिक सोच और कार्य करते हैं। प्रत्येक देश में लोक प्रशासन की आन्तरिक संस्कृति बाह्य कारकों से अत्यधिक प्रभावित रहती है। भारत में बाबूराज, फाईलराज, नेता-संस्कृति, स्पीड मनी (कार्य शीघ्र करने के लिये पैसा देना) तथा नियमों के चक्रव्यूह प्रशासनिक संस्कृति के पर्याय हैं।

यह स्वयं-सिद्ध है कि अन्य संस्थानों की भाँति नौकरशाही भी समाज, जिसका की वह भाग है, को प्रतिबिम्बित करती है। औपचारिक नियमों एवं विवेकपूर्ण आचार का अध्यय न विशाल सामाजिक तथा सांस्कृतिक पर्यावरण जिसका कि नौकरशाही एक भाग है, के सन्दर्भ में किया जाना चाहिये। उदाहरण के तौर पर, भारत में अंग्रेजों ने असैनिक सेवाओं का विकास सामान्य योग्यता, ईमानदारी, निष्पक्षता तथा राजनीतिक तटस्थता के सिद्धान्तों के आधार पर किया था। भारत की नौकरशाही की भूमिका इन आदर्श नियमों की भाषा में नहीं समझी जा सकती, अपितु इसका अध्ययन तो इनकी सामाजिक और सांस्कृतिक परम्पराओं तथा दिशाओं के सन्दर्भ में होना चाहिए।

अतः अनुभवमूलक अध्ययनों के आधार पर इस दृष्टिकोण को समर्थन मिलता है कि संस्कृति और प्रशासनिक उप-व्यवस्था के बीच निकट का सम्बन्ध है। गाई पीटर्स ने इस सम्बन्ध में ठीक ही कहा है कि ‘‘कई बार नौकरशाही का चित्रण ऐसे किया जाता है, जैसे कि वे अपने समाजों को कुचलती चली जाती है। किन्तु वे अपने समाज तथा उनके मूल्यों के साथ कई पतले, परन्तु सशक्त बन्धनों से बंधी होती है।’’

3.4 प्रशासन का सामाजिक परिवेश

किसी भी समुदाय का सामाजिक पर्यावरण जो उसके संस्थानों, संस्थात्मक नमूनों, वर्ग अथवा जाति सम्बन्धों, ऐतिहासिक वसीयत संपदा(legacy), परम्पराओं, धर्म, मूल्यों की व्यवस्था, विश्वास तथा आदर्श, लोकाचार आदि पर आधारित होता है, उस के प्रशासन पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ता है, इसका कारण ये है कि लोक प्रशासन के भीतर का मानवीय तल अपने समाज की उपज होता है। विभिन्न सामाजिक व्यवस्थाऐं और संस्थाऐं लोक कर्मचारियों के चरित्र की रचना करती है। लोक सेवा में सम्मिलित होने से पूर्व ही वे समाज के मूल्यों, लोकाचार तथा परम्पराओं को अपना लेता है। सामाजिक वातावरण में वह जिस दृष्टिकोण और रवैये का विकास कर लेता है, वे लोक सेवा में उसके निर्णयों को बहुत हद तक प्रभावित करते हैं। विभिन्न सामाजिक व्यवस्थाऐं व संस्थाऐं लोक कर्मचारियों के चरित्र की रचना करती है। किसी भी प्रशासन की अनुक्रियाशीलता(Responsiveness) उसकी सामाजिक पृष्ठभूमि, मूल्यों और व्यवहारों से अलग करके नहीं देखी जा सकती, यही उसकी निर्णय क्रिया तथा समाज में जिस प्रकार के लोगों से वह अपने आप को जोड़ता है उन पर जबरदस्त प्रभाव डालते हैं। रिग्स के द्वारा किये गये अध्ययनों के अनुसार किसी भी समुदाय का सामाजिक पर्यावरण जो उसके संस्थानों, समूहों, वर्ग (या जाति) सम्बन्धों, ऐतिहासिक विरासत, परम्पराओं, धर्म, मूल्य, आस्था, विश्वास, आदर्श तथा लोकाचार आदि पर आधारित होता है, उसके प्रशासन पर गहरा प्रभाव डालता है।

भारतीय समाज की विशेषता यह कि वह बहुलवादी समाज है, सभी सामाजिक प्राणी लोक सेवकों की भूमिका निभाते हैं। संक्षेप में, सामाजिक पर्यावरण से सम्बन्धित निम्नलिखित कारक महत्वपूर्ण एवं निर्णायक भूमिका निभाते हैं- वर्ग तथा जाति, सामाजिक परम्पराऐं एवं मूल्य, सामाजिक न्याय एवं समानता, सामाजिक सम्बन्ध,

पारिवारिक संस्कार, शिक्षा संस्थानों की भूमिका, सामाजिक परिवर्तनशीलता की दर, संचार के साधन, स्वैच्छिक संगठन और जनसंख्या तथा स्वास्थ्य।

भारत में आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक आधारों पर अनेक वर्ग बन जाते हैं। समाज के इन वर्गो को पहचानना तथा उनमें जो वर्ग या जाति पिछड़ी और कमजोर है, उसे विशेष सुविधाऐं देकर ऊपर उठाना, प्रशासन का महत्वपूर्ण दायित्व बन जाता है। इसी प्रकार भारतीय समाज की संरचना के आधार जाति (वर्ग) और उप-जाति है। प्रारम्भ से ही भारतीय समाज जाति प्रधान रहा है और स्वतंत्रता के बाद समस्त राजनीतिक गतिविधियां, चुनाव, नियुक्तियां, दलों आदि में जाति का प्रभाव बढ़ा है और यह एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहा है। प्रो0 जैन ने लिखा है कि, ''जनजातीय, भाषार्थी, धार्मिक, क्षेत्रीय और जातिगत निष्ठा भारतीय समाज की आधार रचना की मूल विशेषता है। इसने यहाँ की राजनीतिक और प्रशासनिक प्रणाली पर गहरी छाप डाली है और विकास की प्रक्रियाओं को भी प्रभावित किया है।'' इन सबके अतिरिक्त एक और तथ्य जो प्रशासनिक दृष्टि से महत्वपूर्ण माना जाता है कि, प्रशासन को अब केवल कानूनी न्याय के आधार पर नहीं चलाया जा सकता, बल्कि प्रशासन के संचालन के लिये आज सामाजिक न्याय अधिक आवश्यक बन गया है। इसके साथ-साथ सामाजिक संस्थाओं का लोक प्रशासन की नौकरशाही से घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है। सामाजिक संस्थाओं का प्रशासन पर निरन्तर दबाव बना रहता है। इस सामाजिक दबाव के कारण लोक प्रशासन सतर्क एवं उत्तरदायी बना रहता है। दूसरी ओर, सामाजिक जागरूकता भी प्रशासनिक व्यवहार को जनोपयोगी बनाने में सहायता करती है। इससे ये बात और स्पष्ट हो जाती है कि प्रशासन को सामाजिक परिवेश के अनुसार संचालित करना पड़ता है। समाज, प्रशासन के अनुसार नहीं बल्कि प्रशासन, समाज के अनुसार संचालित होता है।

सामाजिक पर्यावरण के अन्य तत्व जैसे- रूढ़ियां(mores), परिवर्तन अथवा सुधार की ओर समाज का रवैया, धर्म, भाषा, परिवार या कबीले जैसे रक्त सम्बन्धी समूह, संघटन के तत्व जैसे संचार और यातायात के साधन आदि भी लोक प्रशासन को प्रभावित करते हैं। रिग्स ने परिवारों सम्प्रदायों, सामाजिक वर्गो तथा सभाओं जैसे समूहों आदि सामाजिक ढ़ाँचों का लोक प्रशासन पर सम्भावित प्रभाव देखा था। इनका लोक सेवाओं की भर्ती, समाजीकरण, पदोन्नति तथा गतिशीलता पर महत्वपूर्ण प्रभाव है। इसके अतिरिक्त, सामान्य सहमति तथा समानता जैसे प्रशासनिक मूल्यों को ढालने के लिये प्रशासन में संस्कृति और प्रतीकों की बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। समाज में जो तनाव और संघर्ष प्रचिलत होते हैं, नौकरशाही उसका प्रतिनिधित्व करती है। यदि हमारा समाज गुटों में बँटा है और प्रान्त या क्षेत्रों की ओर झुकता है तो निश्चित रूप से यह संकीर्ण दृष्टिकोण सरकारी कर्मचारियों का भी प्रतिनिधित्व करता है। उदाहरण के तौर पर, नाइजीरिया में विस्तृत परिवार का प्रभाव बहुत महत्व रखता है, राजनीतिक संरक्षण की अपेक्षा भाई-भतीजावाद की समस्या बहुत बड़ी है, अतः राजनीतिज्ञ तथा असैनिक कर्मचारी दोनों ही पर रिश्तेदारों के एक दायरे को सहायता या समर्थन करने के लिए उग्र तथा निरन्तर दबाव रहता है। भाई-भतीजावाद, पक्षपात तथा भ्रष्टाचार केवल नाइजीरिया की ही विशेषता नहीं है। वास्तव में यह अधिकतर विकासशील देशों के लोक प्रशासन के बहुत सामान्य लक्षण हैं। इसका कारण यह है कि इन देशों में पारिवारिक या रक्त-सम्बन्ध अभी भी बहुत सशक्त हैं, जबकि पश्चिमी देशों में बहुत हद तक कम हो गये हैं। इसके अतिरिक्त विकासशील समाजों में यद्यपि भाई-भतीजावाद तथा भ्रष्टाचार की औपचारिक रूप से आलोचना की जाती है, फिर भी ये काफी प्रचलित हैं और इनको समाज की अदृश्य मान्यता प्राप्त है। प्रिजमीय (Prismatic) समाजों की व्याख्या करते हुए रिग्स कहते हैं कि ये रिवाज लोक प्रशासन में औपचारिकतावाद का कारण है। माइकल क्रोजियर ने फ्रांस की नौकरशाही के व्यवहार में वहाँ के सामाजिक, सांस्कृतिक नियमों की भूमिका महत्वपूर्ण मानी है। रूस के प्रशासन का आधुनिकीकरण करने के प्रयासों में पीटर महान(Peter the Great) को कड़े विरोध का सामना करना पड़ा था, क्योंकि परम्परागत सामाजिक मान्यताऐं शीघ्रता से परिवर्तित नहीं होती है। परिवार, वंश, मूल निवास स्थान, सामुदायिक मान्यताऐं तथा सामाजिक मूल्य व्यक्ति के संस्कारों के भीतर तक समाहित होते हैं। यही

कारण है कि पश्चिमी देशों में भाई-भतीजावाद का प्रचलन कम है, क्योंकि वहाँ व्यक्ति तथा परिवार (रक्त सम्बन्धी) की घनिष्ठता एवं आत्मीयता उस प्रकार की नहीं है, जैसे कि भारत या अन्य विकासशील देशों में पायी जाती है। शहरी बनाम ग्रामीण समाज की जीवनशैली तथा उनकी महत्वपूर्ण प्रकृति के पदों पर शहरी एवं अंग्रेजी पृष्ठभूमि के व्यक्तियों का विशेषाधिकार एवं सेना में जवानों के पदों पर ग्रामीण युवाओं का चयन सम्पूर्ण सामाजिक ढ़ाँचे की स्वतः व्याख्या करते हैं।

3.5 प्रशासन का राजनीतिक परिवेश

लोक प्रशासन की जड़ें राजनीति में होती हैं। राजनीति का सम्बन्ध किसी देश के शासन से होता है और शासन का क्रियात्मक रूप प्रशासन में दिखता है। प्रशासन और राजनीति का सम्बन्ध बहुत घनिष्ठ होता है। दोनों ही एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं। राजनीतिक पर्यावरण, सामाजिक पर्यावरण से पूर्णतया अलग नहीं होता है। यह दोनों मिल कर वह स्थिति या वातावरण बनाते हैं, जिनमें लोक प्रशासन को यदि अधिक नहीं तो उतना अवश्य प्रभावित करता है जितना कि सामाजिक पर्यावरण। राजनीति परिवेश में जब बदलाव आता है, तब प्रशासनिक संस्थाओं में परिवर्तन होना स्वाभाविक है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि किसी भी देश के लोक प्रशासन तथा उसकी संरचनाओं पर वहाँ के राजनीतिक परिवेश का गम्भीर प्रभाव पड़ता है। शासन तथा राजनीतिक पर्यावरण एक-दूसरे के पर्याय बनते जा रहे हैं। राजनीतिक पर्यावरण के कुछ कारक जैसे- संवैधानिक पर्यावरण, शासन प्रणाली, शक्तियों का बंटवारा, राजनीतिक दलों की मान्यताऐं, राजनीतिज्ञ व लोक सेवक सम्बन्ध आदि लोक प्रशासन की परिस्थितिकी को प्रभावित करते हैं।

भारतीय सन्दर्भ में प्रशासन एवं राजनीतिक पर्यावरण की विवेचना करने के लिये हमें इसको विकासशील और विकसित देशों के सन्दर्भ में समझना होगा। विकसित तथा विकासशील राष्ट्रों में राजनीतिक पर्यावरण सर्वथा भिन्न प्रकृति का पाया जाता है एवं दोनों स्थानों में लोक प्रशासन में अन्तर दिखाई पड़ता है। विकसित देशों की प्रशासनिक व्यवस्था भिन्न होती है, क्योंकि वहाँ की सेवाऐं थोड़ी परिपक्वता प्राप्त होती है तथा वहाँ आधुनिकता भी देखने को मिलती है। आधुनिकीकृत राजनीति में कई प्रकार के लक्षण देखने को मिलते हैं, जैसे- नौकरशाही का विशेषीकरण, उच्चस्तरीय व्यवसायिक पुट, कार्यक्षेत्र विस्तार, आपसी सामंजस्य, जनसहयोग, सच्चरित्रता आदि। नियंत्रण एवं आपसी समन्वय सहित अधिकार क्षेत्र की भी स्पष्टता रहती है, अतः विकसित राष्ट्रों की राजनीति एवं लोक प्रशासन दोनों मिलकर राष्ट्रीय विकास में योगदान देते हैं। वहीं दूसरी ओर यदि विकासशील राष्ट्रों की ओर देखें तो वहाँ राजनीतिक व्यवहार बहुत ही अस्पष्ट एवं अपरिपक्व दिखाई देता है। इन राष्ट्रों की राजनीतिक प्रक्रियाऐं तथा संस्थाऐं एक संक्रमणकाल से गुजरती हैं जहाँ विकासवादी विचारधाराऐं, सरकारों की अस्थिरता, शासक तथा शासकों के मध्य खाई, राजनीतिक संस्थाओं में असन्तुलन तथा विदेशी शक्तियों का प्रभाव दिखाई देता है। इसके अतिरिक्त विकासशील राष्ट्रों में राष्ट्रीय समस्याओं तथा विवादित विषयों पर सर्वसम्मति का अभाव पाया जाता है परिणामस्वरूप सत्तारूढ़ शासक दल द्वारा पूर्ववर्ती राजनीतिक दल द्वारा बनायी गयी नीतियों तथा कार्यक्रमों को परिवर्तित कर दिया जाता है। राजनीतिक दलों की संविधान, कानून तथा राष्ट्रीय विकास के प्रति कटिबद्धता नहीं होती है, बल्कि वो वोटों की राजनीति में ज्यादा विश्वास करते हैं। फैरेल हैडी, आमण्ड, राबर्ट टूकर तथा शोल्स आदि ने विकसित एवं विकासशील देशों में शासन, राजनीति एवं नौकरशाही को वर्गीकृत करने का प्रयास किया, उनके अनुसार प्रशासन की कुछ विशेषताऐं इस प्रकार से हैं-

1. **आधुनिकीकृत प्रशासन(Mordernizing Administration)-** जापान आधुनिकीकृत प्रशासन का उदाहरण माना जाता है। जापान के संविधान के अनुसार लोक सेवक किसी विशेष समूह के नहीं बल्कि समाज के प्रतिनिधि माने जाते हैं। यहाँ लोक सेवक राजनीतिक निर्णयों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

2. **परम्परागत स्वेच्छाचारी व्यवस्था(Traditional-AutocraticSystem)-** ऐसी व्यवस्था में यमन, पेरू, मोरक्को आदि शामिल किये गये हैं, जहाँ जनाधिक्य की समस्या भी है। यहाँ परम्परागत राजतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था पायी जाती है। अर्थात् दलों या दबाव समूहों का अस्तित्व न के बराबर है, प्रशासनिक तंत्र एवं सेना स्वेच्छाचार्य शासकों की इच्छाओं को पूरा करने में व्यक्त होती है। समाज के विकास को शासकों द्वारा प्राथमिकता नहीं दी जाती है, केवल प्रयास भर किये जाते हैं।
3. **नागरिक संस्कृति(Civic Culture)-** नागरिक संस्कृति का प्रचलन संयुक्त राज्य अमेरिका तथा ब्रिटेन में पाया जाता है। यहाँ राजनीतिक, सामाजिक तथा प्रशासनिक संस्कृति में समानता है तथा लोकसेवक राजनीति के साथ मिलकर काम करते हैं। सामाजिक शक्तियाँ अर्थात् नागरिक भी इन देशों में लोक प्रशासन में विशेष भूमिका निभाती हैं।
4. **शास्त्रीय प्रशासन(Classic Administration)-** फ्रान्स तथा जर्मनी जैसे देशों में शास्त्रीय प्रशासन प्रवर्तित है, जहाँ कितनी भी राजनीतिक उथल-पुथल क्यों न मचे, लोक प्रशासन यथावत कार्य करता रहता है। अधिकार सम्पन्न लोक सेवक बहुत शक्तिशाली भूमिका निभाते हैं तथा राजनीतिक क्रियाकलापों में भी रूचि लेते हैं।
5. **नौकरशाही अभिजन व्यवस्था(Bureaucratic Elite System)-** इस प्रकार की व्यवस्था के उदाहरण में म्यांमार (बर्मा), इण्डोनेशिया, इराक, सूडान एवं कई अफ्रीकी देशों को शामिल क्यिा जाता है। इन देशों में शासक वर्ग तथा लोक सेवक वर्ग में समाज के उच्च वर्ग, धनी किसान, उद्योगपति और प्रभुत्व सम्पन्न शामिल होते हैं। इन लोगों की वास्तव में सामाजिक न्याय एवं विकास में कोई आस्था नहीं होती, वहीं दूसरी तरफ जनता का भी इन पर ज्यादा विश्वास नहीं होता। लोक सेवकों की अपेक्षा सैनिक अधिकारी शासन सत्ता और राजनीति के ज्यादा समीप होते हैं।
6. **प्रभावशाली दल: गतिशील व्यवस्था(Dominant Party : Mobilization System)-** मिस्त्र, घाना, अल्जीरिया, बोलिविया एवं अन्य पश्चिमी अफ्रीकी देशों में प्रवर्तित है। इन देशों की राजनीति में दमन एवं निरंकुशता अधिक मात्रा में पायी जाती है। इन देशों में केवल एक ही राजनीतिक दल अग्रणी रहता है, बाकी दलों को आगे नहीं आने दिया जाता है। विशिष्ट समूह, शिक्षित युवा, नौकरशाही तथा अभिजन आदि सत्ता के प्रति अपनी स्वामिभक्ति प्रदर्शित करते हैं।
7. **प्रभावशाली दल: अर्द्ध प्रतिस्पर्द्धात्मक व्यवस्था(Dominant Party: Semi Competitive System)-** इस के अन्तर्गत ऐसे देश आते हैं, जहाँ एक ही राजनीतिज्ञ वर्षों तक अपना प्रभुत्व बनाये रखता है। हालांकि यहाँ अन्य दल भी मौजूद होते हैं, परन्तु वे कड़ी प्रतिस्पर्द्धा में नहीं होते हैं। भारत की कांग्रेस पार्टी और मैक्सिको की पी0आर0आई0 इसके उदाहरणों में शामिल हैं। डेविड एप्टर इसे गतिशील व्यवस्था मानते हैं, जिसका उद्देश्य समाज परिवर्तन, पंथ निरपेक्षता तथा समानता स्थापित करना है। यहाँ नौकरशाही की स्थिति मध्यम होते हुए पूर्णतया प्रभावी नहीं कहीं जा सकती है।
8. **बहुलवादी प्रतिस्पर्द्धात्मक व्यवस्था(PolyarchialCompetitveSystem)-** इस व्यवस्था में फिलीपीन्स, मलेशिया, लेबनान, ब्राजील, तुर्की, श्रीलंका जैसे विकासशील देशों को शामिल किया जाता है। इन देशों में अनेक राजनीतिक दल, समूह या संगठन कार्य करते हैं। ये सभी संगठन भी प्रतिस्पर्द्धा की दौड़ में चलते हैं और नीति निर्माण एवं अनेक महत्वपूर्ण मुद्दों पर इनकी सहमति रहती है। राबर्ट डाल ने बहुलवाद के सिद्धान्त के अन्तर्गत बताया है कि प्रत्येक संगठन किसी ना किसी स्तर पर अपनी भूमिका अवश्य निभाता है। जनसाधारण के बीच सक्रिय रहकर राजनीतिक दल न केवल जनमत का निर्माण करते हैं, बल्कि शासन सत्ता की प्राप्ति के लिये सदैव संघर्ष करते हैं। इस संघर्ष में वे नौकरशाही से भी उलझते रहते हैं।

9. **साम्यवादी सर्वाधिकारवादी व्यवस्था(Communist Totalitarian System)-** इस व्यवस्था के अन्तर्गत वे विकासशील देश आ जाते हैं, जहाँ साम्यवाद का प्रचलन है। जैसे- रोमानिया, पोलैण्ड, हंगरी, बुल्गारिया आदि। लेकिन बीसवीं सदी के अन्तिम दशक में साम्यवाद का मोह हटने लगा था। साम्यवाद का तात्पर्य उस शासन व्यवस्था से है, जिसमें जनता के कल्याण एवं विकास की सम्पूर्ण जिम्मेदारी सरकार स्वयं उठाती है और उत्पादन के समस्त साधनों पर राज्य का नियंत्रण रहता है। दूसरी ओर सर्वाधिकारवाद वह व्यवस्था है, जब व्यक्ति के जीवन की समस्त गतिविधियां सरकार के नियंत्रण में आ जाती हैं तथा व्यक्तिगत स्वतंत्रता का कोई महत्व नहीं रहता है। साम्यवादी सर्वाधिकारवादी व्यवस्था अब उपरोक्त वर्णित सभी देशों में दम तोड़ चुकी है।

उपरोक्त वर्णित राजनीतिक, संवैधानिक वर्गीकरण, समय के साथ परिवर्तित होता रहता है, क्योंकि स्वयं राजनीति भी समसामायिक परिस्थितियों से प्रभावित होती रहती है।

इस प्रकार इन सभी विशेषताओं को देखने के बाद भारतीय सन्दर्भ में राजनीतिक पर्यावरण को समझना अधिक आसान हो जाता है। राजनीतिक अस्थिरता के सन्दर्भ में यदि भारत की स्थिति की विवेचना की जाये तो भारत में वर्ष 1989 से 1998 के मध्य हुए चार आम चुनावों के समय केन्द्र में त्रिशंकु विधायिका(Hung Parliament) की स्थिति उत्पन्न होने पर अस्थिर सरकारों द्वारा शासन संचालित किया गया। इस प्रक्रिया में राजनीतिक कार्यपालिका सुदृढ़ नहीं कहीं जा सकती है, क्योंकि गठबन्धन या साँझा सरकारें बिना किसी सहारे के नहीं चल सकती हैं। इस राजनीतिक अस्थिरता का दुष्परिणाम यह हुआ है कि परम्परागत नौकरशाही अर्थात् स्थायी कार्यपालिका की निरंकुशता नियन्त्रित होने के स्थान पर और अधिक बढ़ी तथा विकास की प्रक्रिया नकारात्मक रूप से प्रभावित हुई है। इसी प्रकार यदि राजनीतिक परिदृश्य में व्याप्त निराशा, संघर्ष, अस्थिरता और अवसरवादिता के समग्र सामाजिक ढ़ाँचे और लोक प्रशासन की कार्यप्रणाली को प्रभावित करने का प्रश्न है, तो भारत में भी ये स्थिति पायी जाती है। सैद्धान्तिक रूप से कोई भी लोक सेवक राजनीतिक कार्यकलापों में भाग नहीं ले सकता है, फिर भी प्रशासनिक अधिकारियों में पर्याप्त मात्रा में राजनीतिक भेदभाव पाया जाता है। सरकारी कर्मचारियों के स्थानान्तरण तथा पदस्थापन में दिखाई देने वाली राजनीतिक संकीर्णताऐं लोक प्रशासन को व्यापक रूप से प्रभावित करती है। नीति-निर्माण का कार्य राजनीतिक मंत्री द्वारा किया जाता है एवं निष्पादन का कार्य लोक सेवकों का होता है। ऐसी स्थिति में राजनीतिक मान्यताओं का प्रशासन पर प्रभाव पड़ना स्वभाविक है। 'नवीन लोक प्रशासन' की विचारधारा भी यह मानती है कि राजनीति तथा लोक प्रशासन का पृथक्करण ना तो सम्भव है और ना ही व्यवहारिक।

3.6 प्रशासन का आर्थिक परिवेश

आधुनिक युग में आर्थिक विकास का अत्यधिक महत्व हो गया है। कुछ समय पूर्व तक राजनीतिक परिस्थितियों को ही अधिक महत्व दिया जाता था, परन्तु पिछले कुछ वर्षों से आर्थिक विकास के अनुसार ही नवीन इकाईयों का गठन किया जाता है। आर्थिक पर्यावरण ऐसा तत्व है जो लोक प्रशासन के साथ परस्पर क्रिया में लगा होता है। किसी भी राजनीतिक व्यवस्था की आर्थिक स्थिति का वहाँ के लोक प्रशासन के स्वरूप, संगठनों और कार्यों पर प्रभाव पड़ता है। किसी भी देश का लोक प्रशासन वैसा ही होता है, जैसा कि वहाँ का आर्थिक पर्यावरण होता है। उच्च स्तरीय संसाधनों से सम्पन्न देश का प्रशासनिक-तंत्र विकसित होता है तो दूसरी ओर आर्थिक विपन्नताओं से जूझते विकासशील राष्ट्रों का प्रशासनिक तंत्र व्याधिग्रस्त होता है। प्रायः सभी विकासशील देशों में तीव्र आर्थिक विकास एवं आधुनिकीकरण के लिये प्रशासनिक सुधारों को आवश्यक समझा जाता है। सामान्यतः अर्थव्यवस्था की प्रकृति तथा नीतियां राजनीति एवं प्रशासन द्वारा निर्धारित की जाती हैं। प्रशासन को आर्थिक विकास की आवश्यकताओं के अनुरूप ढाला जाता है और इनके लिये समय-समय पर प्रशासनिक सुधार किये

जाते हैं। किसी भी देश की योजना को लागू करने का दायित्व भी प्रशासन का ही होता है, अतः देश की प्रशासनिक प्रणाली वहाँ के आर्थिक जीवन को नियंत्रित करती है। आज की प्रशासनिक व्यवस्था का स्वरूप मात्र कानून व्यवस्था तक ही सीमित न होकर, व्यक्ति के जीवन के हर पहलू को सवारने के लिये लोक कल्याणकारी बन गया है। डॉ0 आर0 के0 दुबे लिखते हैं ''लोक कल्याणकारी राज्य में आर्थिक विकास और सामाजिक विकास की अनेकों नवीन योजनाऐं संचालित की जाती है। प्रत्येक आर्थिक योजना पर्यावरण की परिस्थितियों से ही प्रभावित होती है, लेकिन इन योजनाओं को लागू करना लोक प्रशासन का दायित्व बन जाता है। आर्थिक विकास कार्यक्रमों को पूरा करने की लोक प्रशासन की क्षमता उत्पादन का महत्वपूर्ण निर्णायक तत्व होती है। आर्थिक विकास के उद्देश्यों को प्राप्त करने तथा अपनी योग्यता को बढ़ाने हेतु लोक प्रशासन को आमतौर पर नये मूल्यों को भी अपनाना पड़ता है। अतः आर्थिक वातावरण तथा लोक प्रशासन दोनों एक-दूसरे के साथ क्रिया-प्रतिक्रया करते हैं तथा एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं।'' लोक प्रशासन और पर्यावरण के आर्थिक पहलू को कुछ तथ्यों का अध्ययन करके और स्पष्टता से समझा जा सकता है।

1. आधुनिक काल में यह माना जाता है कि सामाजिक, आर्थिक विकास की प्रक्रिया मूलतः लोक प्रशासन की कार्यकुशलता पर निर्भर करती है।
2. आर्थिक विकास की प्रक्रिया में लोक प्रशासन की भूमिका महतवपूर्ण है। प्रशासन को सदा आर्थिक विकास की आवश्यकताओं के अनुरूप ढालने के लिये समय-समय पर प्रशासनिक सुधार किये जाते हैं।
3. किसी भी देश की आर्थिक दशाओं में प्रगति या अवनति प्रशासन की नीतियों पर निर्भर करती है।
4. आर्थिक व्यवहार का प्रशासन पर भी प्रभाव पड़ता है। कोई भी देश जब अपना आर्थिक विकास करना चाहता है, तब उसे तदनुसार संस्थागत परिवर्तन करने होते हैं। ऐसी व्यवस्था की जाती है कि अधिक काम करने का प्रोत्साहन प्राप्त हो।
5. अर्थव्यवस्था की समस्त गतिविधियों पर राज्य एवं समाज के हित में नियंत्रण करने का दायित्व भी प्रशासन का होता है।
6. अर्थ या वित्त, प्रशासन का जीवन-रक्त कहा जाता है। जिस प्रकार रक्त का नियमित प्रवाह शरीर के संचालन के लिये आवश्यक होता है। ठीक उसी प्रकार लोक प्रशासन को व्यवस्थित रूप से चलाने के लिये भी पर्याप्त साधन, कर्मचारियों का सन्तोष, कार्य की उचित दशाऐं आदि की व्यवस्था वित्त के द्वारा ही की जाती है।
7. विकासशील देशों का प्रशासन जो विकास प्रशासन का पर्याय बन चुका है, का प्रमुख उद्देश्य भी सामाजिक, आर्थिक विकास को सुनिश्चित करना होता है।
8. इसके अतिरिक्त तीव्र आर्थिक विकास किसी भी देश में नियोजित तरीके से ही प्राप्त किया जा सकता है। नियोजन का उद्देश्य सीमित साधनों के द्वारा कम समय में अधिक लक्ष्यों की प्राप्ति होता है। इनकी प्रगति के लिये प्रशासन का स्वरूप लोक कल्याणकारी हो जाता है और विकासशील प्रशासन का जन्म होता है। इस प्रकार लोक प्रशासन नियोजन तन्त्र का चालक और प्रेरक होता है।
9. लोक प्रशासन की सबसे महत्वपूर्ण कमी या समस्या भ्रष्टाचार के अनेक कारण हैं, जिनमें से प्रमुख आर्थिक ही है। अतः प्रशासन को भ्रष्टाचार रहित रखने के लिए आर्थिक उपाय ही खोजने होंगे।

अतः निष्कर्ष के तौर पर कहा जा सकता है कि ना केवल प्रशासन आन्तरिक जीवन को नियंत्रित करता है, बल्कि देश की आर्थिक स्थिति का प्रभाव भी प्रशासन पर पड़ता है। लोक प्रशासन की समस्याऐं वास्तविक होती हैं तथा पूर्ण अर्थव्यवस्था का ही एक अंग होती है। लोक प्रशासन का सम्बन्ध, कार्य एवं प्रकृति देश के आर्थिक जीवन का एक निर्णायक तत्व मानी जाती है।

विकासशील देशों में लोक अधिकारियों का कम वेतन तथा सरकारी भ्रष्टाचार भी उनके आर्थिक विकास के निम्न स्तर, तथा तकनीकी और मानवीय साधनों की कमी से जुड़े हुए हैं। विकासशील देशों की अर्थव्यवस्था भी पिछड़ी हुई मानी जाती है, क्योंकि उसमें जनाधिक्य, परम्परागत देशों की भरमार, कम औद्योगिकीकरण, तकनीकी पिछड़ापन, गरीबी, बेरोजगारी, संसाधनों की कमी या निम्न गुणवत्ता, कृषि पर बहुत अधिक निर्भरता आदि की समस्याऐं भी जुड़ी रहती हैं। अर्थव्यवस्था की इस शोचनीय स्थिति के कारण ही लोक प्रशासन के सम्मुख नित नई चुनौतियां उत्पन्न होती रहती हैं इसी कारण यह कहा जाता है कि, किसी भी देश के आर्थिक पर्यावरण को समझे बिना प्रशासन का विश्लेषण करना जटिल एवं अव्यवहारिक है। भारत सहित विश्व के अधिकांश विकासशील देशों में एक ओर पर्याप्त भूमि अनुपयोगी पड़ी है, वहीं दूसरी ओर बेरोजगारी बढ़ रही है। वास्तव में विकासशील देशों में आर्थिक संसाधनों तथा नीतियों में समन्वय एवं व्यवहारिकता का पर्याप्त अन्तर रहने के कारण अर्थव्यवस्था का संचालन बिखरा हुआ है और कमजोर दिखाई पड़ता है। अमेरीकी प्रशासन का अध्ययन करने के पश्चात एफ0डब्ल्यू0 रिग्स का निष्कर्ष था कि अमेरीकी प्रशासन की बहुत सी विशेषताऐं उसकी अर्थव्यवस्था के नमूने पर ढली हुई है, यही बात विकासशील देशों के प्रशासन के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। संयुक्त राज्य अमरीका में आर्थिक उत्पादकता बहुत ऊँची है और इसका प्रशासन से सम्बन्ध है। अमरीका के आर्थिक संख्यात्मक प्रबन्धों में कमी वाले साधनों का उपयोगी तथा विवेकपूर्ण प्रयोग होता है। इससे सेवाओं और उत्पादन में बहुत वृद्धि होती है, इससे कई सामाजिक मूल्यों को ऐसा समझा जाता है, जैसे कि वे कोई वस्तु हो और बाजार में खरीदी या बेची जाती हो। भूमि, मनुष्य की मजदूरी, धन, समय, सभी बिकाऊ समझे जाते हैं और समाज बाजार को केन्द्रीय संस्थान मानकर कार्य करता है। रिग्स का कहना है कि अमरीकन समाज का बाजार के प्रति उन्मुख होने में हमारी प्रशासन व्यवस्था पर प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों प्रकार का प्रभाव है। अमरीका के लोक कार्मिक प्रशासन के कई नियम, जैसे- 'समान कार्य के लिये समान वेतन' (नौकरशाही मजदूरी के लिये कीमतों को बराबर करना), किसी सरकारी कर्मचारी को उसका कार्य सन्तोषजनक ना होने पर पद से हटा देना (''पद के लिये योग्यतम व्यक्ति'' का सिद्धान्त), नौकरशाह तथा नियुक्त करने वाले अभिकरण के बीच सम्बन्धों का निश्चित होना तथा समझौते की शर्तों पर आधारित होना (समझौता करने का अधिकार) आदि अमरीका की आर्थिक व्यवस्था से प्रभावित है। इसी प्रकार अमरीका के लोक वित्तीय प्रशासन ने भी मार्केट सिद्धान्त से संकेत प्राप्त किया है। वहाँ कर(Tax) की दर राज्य द्वारा दी जाने वाली सेवाओं से सम्बन्धित है तथा निष्पादन बजटिंग प्रणाली(Performance Budget System) इसी के उदाहरण माने जाते हैं। रिग्स का मानना है कि ''अमरीका का मार्केट समाज प्रशासनिक क्षेत्र में भी वहीं भौतिक मूल्य लागू करना चाहता है, जो वह मार्केट में लागू करता है।'' रिग्स आगे चलकर फिर कहते है, ''अधिकतर अमरीका के लोक प्रशासन के सार का निर्धारण उसके मार्केट समाज की आर्थिक आवश्यकताऐं करती हैं। जो बात सामान्य तौर पर किसी भी औद्योगिक दृष्टि से विकसित समाज के लिए सत्य हो सकती है, वह यह है कि वह अपनी अर्थव्यवस्था के समर्थन के लिये उपयोगी तथा विवेकपूर्ण संस्थानों पर आधारित होता है। मार्केट तथा ब्यूरो (सरकारी विभाग) दोनों ही औद्योगिक समाज के अनिवार्य ढ़ाँचे हैं। अतः मेरा निष्कर्ष यह है कि यह इतना अधिक स्वयं मार्केट नहीं है, अपितु औद्योगीकरण है, जिसके परिणामस्वरूप एक विवेकपूर्ण(achievement oriented) लोक प्रशासन व्यवस्था की स्थापना सम्भव तथा अनिवार्य दोनों है।''

बाजारीकरण(marketization) लोक प्रशासन के अन्य पक्षों, जैसे- नियोजन, संचार लोक सम्बन्ध, प्रबन्ध, व्यवसायिक तथा स्टॉफ संगठन आदि को भी प्रभावित करता है। विद्वान प्रशासनिक ब्यूरो अर्थात् सरकारी विभाग को एक प्रकार का बाजार ही मानते हैं, जिसमें भाग लेने वाले निश्चित उद्देश्यों को प्राप्त करने का अधिक से अधिक प्रयास करते हैं। इसके बदले में लोक प्रशासन अर्थव्यवस्था को प्रभावित करता है। विकसित हो या विकासशील

सभी प्रकार के देशों में लोक प्रशासन लाइसेंसों आदि कुछ परिस्थितियों में वस्तुओं के मूल्यों को निर्धारित करके एकाधिकारों को रोकने, आयात-निर्यात को नियन्त्रित करने आदि तरीकों से अर्थव्यवस्था को नियंत्रित करता है। आजकल अर्थव्यवस्था, प्रशासन तथा समाज के अन्तर्सम्बन्धों के क्रम में सकल राष्ट्रीय मुख की नई अवधारणा भी जन्म ले रही है। यह अवधारणा यह मान कर चलती है कि विकासशील राष्ट्र विश्व की प्रतिस्पर्द्धा के कारण अपनी सांस्कृतिक पहचान तथा आर्थिक सुख खोते जा रहे हैं। अतः राष्ट्रीय आर्थिक विकास, की प्रक्रिया में उन आध्यात्मिक मूल्यों का लोप न हो, जो मानव सभ्यता के अभिन्न तत्व है। पिछले दशकों से यह प्रश्न भी महत्वपूर्ण रूप से उठ रहा है कि पश्चिमी मॉडल पर आधारित विकास कार्यक्रम विकासशील राष्ट्रों की परिस्थितियों के अनुकूल नहीं है। अतः इन देशों की अर्थव्यवस्था को स्थानीय कारकों एवं विशेषताओं के आधार पर पुर्नसंचित किया जाना चाहिये।

अभ्यास प्रश्न-

1. तुलनात्मक लोक प्रशासन का सम्बन्ध किससे है?
2. लोक प्रशासन किस प्रकार का विज्ञान है?
3. ''लोक प्रशासन पर बाह्य वातावरण का प्रभाव पड़ता है'' यह मान्यता किस उपागम से सम्बन्धित है?

3.7 सारांश

इस अध्याय के द्वारा आप ये अवश्य समझ गये होंगे कि लोक प्रशासन एक मानवीय क्रिया है, इसलिये इस पर पर्यावरण का व्यापक और गहरा प्रभाव पड़ता है। व्यक्ति, समाज एवं प्रशासन के समस्त क्रियाकलापों का निर्धारण बाह्य परिस्थितियों द्वारा होता है। लोक प्रशासन के आधुनिक विचारकों की यह मान्यता है कि किसी भी प्रशासनिक अवस्था की सम्पूर्ण जानकारी हेतु सम्बन्धित प्रशासन के बाह्य परिवेश का अध्ययन करना आवश्यक हो जाता है। जो प्रशासनिक संस्थाऐं किसी एक देश में सफलतापूर्वक काम करती हैं, उन्हें दूसरे देशों में अपनाने के प्रयास किये जाते हैं, लेकिन उस प्रशासनिक व्यवस्था को दूसरे देशों में अपनाये जाने के पूर्व दोनों के पर्यावरण का सूक्ष्म अध्ययन एवं विवेचन आवश्यक हो जाता है। परिवेश सम्बन्धी तत्व न सिर्फ समाजमें प्रभावशाली परिवर्तन लाते हैं, बल्कि पर्यावरण सम्बन्धी तत्व प्रशासन और उसके कार्यक्रमों को भी व्यापक रूप से प्रभावित करते हैं। 1961 में एफ0 डब्ल्यू0 रिग्स की पुस्तक "The Ecology of Public Administration" में लोक प्रशासन और पर्यावरण के मध्य परस्पर क्रिया को तुलनात्मक ढंग से समझने का प्रयत्न किया था। प्रशासन और पर्यावरण एक-दूसरे पर प्रभाव डालते हैं और इस प्रक्रिया की गतिशीलता की समझ प्रशासन को समझने के लिये आवश्यक हैं। इस समझ को परिस्थितिकी दृष्टिकोण का नाम दिया गया। रिग्स ने ही अपने 'साला मॉडल' में बताया था कि लोक प्रशासन पर सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तत्वों का भी प्रभाव पड़ता है। प्रशासन के संगठन में विभिन्न कर्मचारियों के आपसी सम्बन्धों, उच्च अधिकारियों के प्रति निम्न अधिकारियों के दृष्टिकोण आदि पर समाज की संस्कृति और मूल्यों का व्यापक प्रभाव पड़ता है। रिग्स ने ही ये भी कहा कि किसी समुदाय का सामाजिक परिवेश उसके संस्थानों, संस्थागत नमूनों, वर्ग, जाति सम्बन्धों, ऐतिहासिक विरासत, परम्पराओं, धर्म, मूल्यों की व्यवस्था, विश्वास, आदर्श आदि पर आधारित होता है। वर्तमान प्रशासन का संचालन केवल कानूनी न्याय के आधार पर नहीं, सामाजिक न्याय के आधार पर होता है।

प्रशासन और राजनीतिक परिवेश का पारस्परिक सम्बन्ध अत्यन्त घनिष्ठ होता है। चूँकि लोक प्रशासन की जड़े राजनीति में निहित होती है। अतः राजनीतिक परिवेश में किसी तरह के परिवर्तन का प्रभाव प्रशासनिक संरचनाओं पर पड़ता है।

लोक प्रशासन पर आर्थिक परिवेश के प्रभाव के सम्बन्ध में भी ये सत्य है कि, किसी भी राजनीतिक व्यवस्था की आर्थिक स्थिति वहाँ के प्रशासनिक स्वरूप, संगठन और कार्यों को प्रभावित करती है। किसी भी देश के आर्थिक

विकास के लिये प्रशासन में सुधार आवश्यक होता है। इसलिये प्रशासनिक प्रक्रिया को आर्थिक विकास की आवश्यकता होती है।

3.8 शब्दावली

परिवेश- परिधि, घेरा, परिवर्धित- जो अच्छी तरह बढ़ा हुआ हो या बढ़ाया गया हो, सामन्जस्य- तालमेल, अनुकूलता, मेल, प्रतिरोपित- जो (फिर से) रोपा गया हो, जो पुनः लगाया गया हो, संकीर्णताऐं- अनुदारता, व्याधिग्रस्त- बुराईयों से ग्रस्त।

3.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. प्रशासनिक व्यवस्थाओं, प्रशासनिक नियमों व प्रशासनिक संस्कृति से है, **2.** सामाजिक विज्ञान, **3.** परिस्थितिकी उपागम

3.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ0 अवस्थी, तुलनात्मक लोक प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा- 2004
2. डॉ0 सुरेन्द्र कटारिया, तुलनात्मक लोक प्रशासन, आर0बी0एस0ए0, पब्लिशर्स, जयपुर- 2013

3.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. एम0पी0शर्मा, बी0एल0 सदाना, हरप्रीत कौर, लोक प्रशासन सिद्धान्त एवं व्यवहार, किताब महल, इलाहाबाद- 2015
2. आर0 के0 दुबे, आधुनिक लोक प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा- 2004
3. अवस्थी एवं अवस्थी, भारतीय प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा- 2002, 2003
4. टी0एन0 चतुर्वेदी, तुलनात्मक लोक प्रशासन, रिसर्च प्रकाशन, सामाजिक विज्ञान, दिल्ली- 1978

3.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. लोक प्रशासन के अन्तर्गत पर्यावरण का क्या महत्व है? लोक प्रशासन और पर्यावरण के सम्बन्धों की विवेचना कीजिये।
2. सामाजिक, आर्थिक पर्यावरण, प्रशासनिक प्रणाली को किस प्रकार प्रभावित करता है? व्याख्या कीजिये।
3. लोक प्रशासन को सामाजिक, सांस्कृतिक पर्यावरण कैसे प्रभावित करता है? विवेचना कीजिये।

इकाई- 4 विकसित देशों की प्रशासनिक विशेषताऐं

इकाई की संरचना

4.0 प्रस्तावना
4.1 उद्देश्य
4.2 विकास की अवधारणा
    4.2.1 विकास का अर्थ एवं परिभाषा
    4.2.2 विकास का लक्ष्य और उद्देश्य
    4.2.3 विकास में शासन(सरकार) की भूमिका
    4.2.4 विकास की समस्याऐं
    4.2.5 विकास हेतु आवश्यक पूर्व शर्तें
4.3 विकसित देशों की प्रशासनिक विशेषताऐं
4.4 सारांश
4.5 शब्दावली
4.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
4.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
4.9 निबंधात्मक प्रश्न

4.0 प्रस्तावना

आधुनिक युग में राज्यों को उनके विकास के आधार पर दो श्रेणियों में बांटा जाता है- 'विकसित' तथा 'विकासशील।' जैसा कि आपने पिछले अध्यायों में पढ़ा कि किसी देश के प्रशासन की प्रकृति उसके पर्यावरण से प्रभावित होती है। पर्यावरण का एक तत्व विकास भी है। अतः विकास के स्तर का सम्बन्ध उस देश के प्रशासन की प्रकृति के साथ होता है। इसका अर्थ यह हुआ, कि 'विकसित' और 'विकासशील' देशों की प्रशासनिक उप-व्यवस्थाऐं उनकी अपनी विचित्रता के अनुकूल होगी। प्रस्तुत अध्याय में हम ये जानने का प्रयास करेंगे कि विकसित देशों का प्रशासन कैसा होता है या उनकी विशेषताऐं क्या होती हैं।

4.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- विकास के अर्थ एवं अवधारणा आदि को विस्तृत रूप में जान पायेंगे।
- विकसित देशों की प्रशासनिक विशेषताओं के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त कर पायेंगे।

4.2 विकास की अवधारणा

विकास आधुनिकीकरण या आधुनिकता शब्द सापेक्षिक है। जिनका प्रयोग जटिल सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिवर्तनों के लिये किया जाता है। अर्थात् विकास एवं सार्वभौमिक प्रक्रिया एवं एक व्यापक अवधारणा है, जिसको विभिन्न संदर्भों में विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त किया जाता है। ब्रांट आयोग ने टिप्पणी करते हुए ठीक ही कहा है कि ''विकास की सार्वभौमिक परिभाषा ना तो दी जायेगी और ना ही कोई दे सकता है।'' कुछ विद्वानों के अनुसार, विकास का अर्थ है- राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में संवृद्धि, दूसरे विचारकों के लिये इसका आशय है, सामाजिक विकास और अन्य के लिये आधुनिकीकरण ही विकास है। जे0जे0 स्पेंगलर के शब्दों में, ''विकास तब माना जाता है जबकि वांछनीय एवं प्राथमिक मानी जाने वाली चीजों का सूचकांक बढ़ जाये।' किसी प्रकार

के आर्थिक-राजनीतिक, संचार एवं सांस्कृतिक क्षेत्रों में परिवर्तन को एवं व्यवस्थित प्रक्रिया को आधुनिकीकरण कहा जाता है। गैवरियल ऑमण्ड (Gabriel Almond) ने परिवर्तन शब्द का प्रयोग विकास के समानार्थक के रूप में किया है। उनका मत है कि जब राजनीतिक व्यवस्थाऐं, सामाजिक और अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण के आधार पर नई क्षमताऐं प्राप्त कर लेती हैं तो उनमें परिवर्तन आ जाता है। विकास आधुनिकता और आधुनिक शब्दों का जिस अर्थ में प्रयोग किया जाता है, उस दृष्टि से पश्चिमी यूरोप के देशों जैसे अमेरिका आदि को विकसित राज्य माना जाता है। इन देशों का वर्तमान प्रशासन एक लम्बे विकास का परिणाम है।

वर्तमान समय में, विकास की अवधारणा ने सभी विकासशील देशों में प्रशासन की व्यवस्था को प्रभावित कर लिया है। विकास को सामाजिक, आर्थिक परिवर्तन लाने वाला अभिकर्ता माना जाता है। इसका प्रभाव समाज के प्रत्येक क्षेत्र में देखा जा सकता है। सभी विकासशील देशों के द्वारा स्वयं के विकास एवं उन्नति हेतु विकास की अवधारणा को अपनाया गया है। सन् 1960 से यह अवधारणा ज्यादा महत्वपूर्ण बन गई है।

4.2.1 विकास का अर्थ एवं परिभाषाऐं

विकास एक ऐसी अवधारणा है जिसे वास्तविक रूप में परिभाषित करना कठिन है। इसका अर्थ एवं प्रयोग अधिक स्पष्ट नहीं है। यह अनिश्चितता का रूप लिये होता है। जेराल्ड, इ0 काइडन के अनुसार, विकास शब्द का कोई विशिष्ट अर्थ नहीं है, अर्थशास्त्री इसे आर्थिक-उत्पादकता से परिभाषित करते हैं; समाजशास्त्री इस शब्द का प्रयोग सामाजिक परिवर्तन के रूप में करते हैं; राजनीतिक विचारक इसे जनतंत्रकरण, राजनीतिक क्षमता अथवा विस्तारशील सरकार के रूप में करते हैं; प्रशासक इसे अधिकारी तंत्र, प्रशासनिक कुशलता एवं क्षमता के रूप में मानते हैं। विकास की अवधारणा के साथ जुड़ी हुई एक सीमा है इसलिये इसकी परिभाषा करनरा कठिन है। शब्द कोषों ने विकास शब्द को उद्देश्यमूलक माना है, क्योंकि वे इसका उल्लेख प्रायः उच्चतर, पूर्णतः और अधिकतर परिपक्वतापूर्ण स्थिति के रूप में करते हैं।

विकास की संकल्पना की बहुत-सी परिभाषाऐं हैं। भिन्न-भिन्न होते हुए भी ये परिभाषाऐं एक दूसरे से जुड़ी हुई हैं। ईस्मन का मत है ‘‘विकास सोच समझ कर बनाये कार्यक्रमों व परियोजनाओं को संगठित एवं लागू करने की तर्कपूर्ण प्रक्रिया है, ठीक उसी प्रकार से जैसे हमारे सैनिक या इंजीनियरिंग कार्यक्रम संगठित व लागू किये जाते हैं।’’

कोलम और गीगर(Colm and Geiger) वृद्धि वाले परिवर्तन को विकास समझते हैं। कोलम और गेजर के अनुसार, विकास का अर्थ परिवर्तन के साथ-साथ प्रगति होना भी है। यह मात्रात्मक और गुणात्मक दोनों प्रकार का होता है।

वीडनर यह मानते हैं कि जब किसी प्रक्रिया के द्वारा राष्ट्र निर्माण और सामाजिक-आर्थिक उन्नति होती है, तो उस वृद्धि की प्रक्रिया को ‘विकास’ कहा जाता है। हॉन बीन ली के लिए विकास का अर्थ प्रक्रिया और उद्देश्य दोनों हैं। इसलिए वे व्यवस्था की क्षमता के अनुकूल लगातार वृद्धि को विकास कहते हैं, जो राजनैतिक, आर्थिक एवं सामाजिक उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए होने वाले लगातार परिवर्तनों को अंगीकार कर सकी हैं। चतुर्वेदी के अनुसार, विकास ‘सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया है।’ विकास का मुख्य उद्देश्य है- एक प्राचीन एवं पिछड़ी हुई व्यवस्था को आधुनिक व्यवस्था में बदलना। रिग्स विकास की विस्तृत परिभाषा देते हुए कहते हैं, विकास का संबंध उत्पाद को बढ़ाने, प्रति व्यक्ति आय को बढ़ाने या न बढ़ाने के निर्णय की क्षमता से है। अथवा अपनी शक्ति से तय लक्ष्यों को प्राप्त करने या उपलब्ध सामग्री के आर्थिक न्यायपूर्ण वितरण में, सौन्दर्य संबंधी या फिर आध्यात्मिक मूल्यों में या भिन्न-भिन्न उत्पादों की गुणवत्ता को बढ़ाने में अपनी शक्ति को लगाना विकास है। इस प्रकार विकास एक बहुपक्षीय प्रक्रिया है, जिसमें ढाँचों में, दृष्टिकोणों और संस्थाओं में परिवर्तन, आर्थिक सम्पदा में बढ़ोतरी, असमानताओं में कमी और निर्धनता का उन्मूलन शामिल है। परम्परागत समाज में आधुनिक विकसित समाज में परिवर्तन करने की प्रक्रिया को ‘विकास’ कहते हैं। विकास के कई पक्ष हैं- राजनीतिक विकास में

विवेकशीलता धर्मनिरपेक्षीकरण, व्यापक जन-सहभागिता आदि शामिल किए जा सकते हैं, सामाजिक विकास में सामाजिक बुराइयों का अंत, मानवीय भेदभाव को खत्म करना, स्तर की समानता, सामाजिक गतिशीलता में वृद्धि आदि शामिल हैं। इसके आर्थिक पक्ष का अर्थ है सामाजिक सुरक्षा के लिए व्यवस्था करना, शोषण का अभाव, निरंतर आर्थिक वृद्धि, प्रचुरता और खुशहाली की प्राप्ति। अतः विकास के अनेक पहलू होते हैं और एक-दूसरे से इतने जुड़े होते हैं कि इनको अलग नहीं किया जा सकता, एक पहलू में परिवर्तन, दूसरे पहलू को प्रभावित करता है और स्वयं प्रभावित होता है।

विकास की अवधारणा से संबंधित उपर्युक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए इसमें निहित कुछ लक्षणों को निम्नलिखित बताया जा सकता है-

1. विकास एक गतिशील अवधारणा है। यह गतिशील और हमेशा परिवर्तनशील और विकसित होने वाली संकल्पना है। 'हम किसी विकसित रूप' को नहीं मान सकते, क्योंकि हर विकसित रूप में सुधार किया जा सकता है। इसलिए विकास एक निरंतर गतिशील अवधारणा है।
2. विकास एकपक्षीय नहीं है, बल्कि बहुपक्षीय प्रक्रिया है। इसका अभिप्राय यह है कि विकास में न केवल आर्थिक बल्कि सामाजिक विकास, राजनीतिक या अन्य प्रकार का विकास भी शामिल होता है। इसके उद्देश्य केवल अर्थव्यवस्था तक सीमित नहीं होते। वे मानवीय और सामाजिक जीवन के प्रत्येक पहलू को छूते हैं जैसे आर्थिक वृद्धि, सामजिक प्रगति, राजनैतिक विकास, राष्ट्रीय निर्माण आदि।
3. विकास का अर्थ वृद्धि होता है। हर समाज में वृद्धि, बढ़ोतरी और उन्नति होती है और इसलिए उसमें हमेशा परिवर्तन होते हैं। एक देश का वर्तमान समाज, दूसरे देश के समाज से पृथक होता है। आज का समाज बीते हुए कल के समाज के समान नहीं है। इसी प्रकार, भविष्य के समाज, वर्तमान समाज से बिल्कुल अलग होंगे।
4. विकास का प्रौद्योगिकी से निकट का संबंध होता है। तकनीकीरूप से एक उन्नत समाज विकसित समाज कहलाता है। प्रौद्योगिकी ने हमारे जीवन के हर पहलू को बदल दिया है और वास्तव में यह सारे जीवन में आज भी परिवर्तन कर रही है। इसने संसार को बहुत छोटा बना दिया है।
5. विवेकशीलता विकास का एक अंग है। इसका आशय है कि विकसित समाज परम्पराओं या धर्म पर आधारित नहीं होता अर्थात् अंधविश्वासी नहीं होता, बल्कि यह तर्क और विवेक बुद्धिवाद पर खड़ा हुआ बताया जाता है।
6. विकास के अन्य लक्षण व्यवस्था, स्थिरता, सुरक्षा आदि निरंतर विकास के आवश्यक कारक है। राष्ट्रों ने केवल शांति काल में ही उन्नति की है न कि युद्ध काल में। विकास का अर्थ वृद्धि सहित परिवर्तन है, इसका अभिप्राय यह है कि सड़कों, रेलवे, बैंक, टेलिफोन आदि आधारभूत ढाँचें में भी विकास बिना विकसित बैकिंग व्यवस्था के हम आयात-निर्यात का व्यापार नहीं कर सकते।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि विकास परिवर्तन की वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा हम परम्परागत पूर्ण स्थिति से आधुनिक स्थिति पर आते हैं। यह समाज में रहने वालों से प्रभावित होती है। गतिविधि जो विकास से सम्बन्धित होती है, वह हमेशा राष्ट्रीय निर्माण और सामाजिक आर्थिक प्रगति की ओर निर्देशित होती है।

4.2.2 विकास का लक्ष्य और उद्देश्य

विकासशील देशों में विकास का लक्ष्य और उद्देश्य निम्नलिखित गतिविधियों से सम्बन्धित हैं- राष्ट्रीय निर्माण, राष्ट्रीय आय में वृद्धि, जनता का उच्चतर जीवन स्तर बनाना, आत्मनिर्भरता प्रदान करना, रोजगार उपलब्ध कराना, प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि, न्याय एवं सुरक्षा प्रदान करना, सामाजिक-आर्थिक प्रगति, सहभागिता, विशिष्टीकरण, नीतियों, योजनाओं आदि का व्यापन और एकीकरण आदि।

4.2.3 विकास में शासन(सरकार) की भूमिका

विकास के लक्ष्य और उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु विकासशील देशों की सरकार की प्रमुख भूमिका होती है। ईस्सेन के अनुसार सरकार के प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं- 1. आन्तरिक सुरक्षा को बनाये रखना तथा बाहरी आक्रमणों से रक्षा। 2. राज्यतंत्र की औचित्यपूर्णता की स्थापना।3. विभिन्न तत्वों को एक राष्ट्रीय व राजनैतिक समुदाय बनाना। 4. मनोवैज्ञानिक एवं भौतिक सुरक्षा का वर्धन। 5. वित्तीय तथा बचत संसाधनों का संघठन। 6. विभिन्न स्तरों पर शासनिक शक्तियों का वितरण व संगठन, तथा सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्रों में एकता लाना और उनका सीमा-निर्धारण करना। 7. परम्परागत सामाजिक तथा आर्थिक निहित स्वार्थों को हटाना। 8. आधुनिक कुशलताओं तथा संस्थाओं का विकास। 9. सेवाओं और सुविधाओं का कुशल प्रबन्ध। 10. अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय में एक सुरक्षित स्थान पाना। 11. निर्णयन जैसे क्षेत्रों में सहभाग को प्रोत्साहन, तथा 12. निवेशन का विवेकपूर्ण कार्यक्रमीकरण।
सभी विकासशील देशों की सरकार विभिन्न कार्यक्रमों के माध्यम से विकास के लक्ष्यों को पूरा कर रही हैं। जैसे- भारत सरकार द्वारा लागू किये गये 'बीस-सूत्री कार्यक्रम' आदि।

4.2.4 विकास की समस्याएँ

विकासशील देशों हेतु विकास आवश्यक है किन्तु इसकी कुछ विशेषताऐं भी हैं। विकास की प्रमुख समस्याएँ निम्नलिखित हैं- 1. जनसहभागिता का अभाव। 2. राजनीतिक अस्थिरता। 3. प्रशासनिक व्यवस्था की अनिश्चयात्मकता। 4. असन्तुलित विकास। 5. वित्त का अभाव। 6. शिक्षा का अभाव। 7. परम्परागत समाज। 8. तकनीकी का अभाव आदि।
सामान्यतः सभी विकासशील देशों में विकास के सामने आने वाली प्रमुख समस्याऐं एक ही तरह की हैं।

4.2.5 विकास हेतु आवश्यक पूर्व शर्तें

विकास एक अनवरत प्रक्रिया है जिसके लिये कुछ आवश्यक पूर्व शर्तें भी हैं- 1. स्थिर राजनैतिक व्यवस्था। 2. स्थिर प्रशासनिक व्यवस्था। 3. नियोजन व्यवस्था। 4. उपयुक्त सांस्कृतिक व्यवस्था तथा5. जन सहभागिता आदि।
विकासशील देशों की प्रमुख समस्याऐं चार हैं, जो चार अंग्रेजी शब्दों में अभिव्यक्त होती हैं। वे सभी रोमन वर्णमाला के अक्षर 'पी' से आरम्भ होती हैं, इसलिए आजकल इनका उल्लेख अकसर 'चार पी' के नाम से होता है। ये समस्याऐं हैं- प्रालिफरेशन(Proliferation) अर्थात् शस्त्रास्त्रों की होड़ और विस्तार तथा तज्जनित दबाब और तनाव। पॉवर्टी(Poverty) अर्थात् गरीबी तथा उससे संबद्ध शोषण, व्यापारिक असंतुलन, भुखमरी, बेकारी ओर कर्जदारी की समस्याऐं। पोल्यूशन(Pollution) अर्थात् पर्यावरण अथवा प्रदूषण एवं प्राकृतिक संतुलन के निरंतर ह्रास की समस्या। पाप्यूलेशन(Population) अर्थात् जनसंख्या वृद्धि तथा उससे जुड़ी उद्योगीकरण, मशीनीकरण और शहरीकरण जैसी समस्याऐं आदि।

4.3 विकसित देशों की प्रशासनिक विशेषताऐं

जैसा कि अब तक जाना विकास एक बड़ी जटिल धारणा है। इसका अभिप्राय आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तन के तत्वों का समूह है जिनमें से प्रत्येक तत्व कम विकसित से अधिक विकसित अविच्छिन्नक(continuum) पर फैला होता है। एक देश में एक ही समय में ऐसे चिह्न भी दृष्टिगोचर होते हैं, जो विकसित हैं, और कुछ ऐसी विशेषताऐं भी दिखायी देती हैं जो कम विकसित है। इसी प्रकार लोक प्रशासन के कुछ चिह्न विकसित प्रतीत होते हैं, जबकि उसी देश में ही कुछ अन्य चिह्न ऐसे होते हैं, जो किसी कम विकसित देश में मिलते जुलते होते हैं। ''विकास अविच्छिन्नक(continuum) के प्रत्येक सिरे पर लोक प्रशासन में भिन्नताऐं होती है, जो विकास अवस्था को उतना प्रतिबिम्बित नहीं करतीं, जितना कि वे, विशेष ऐतिहासिक अनुभवों अथवा सांस्कृतिक लक्षणों को प्रतिबिम्बित करती हैं। उदाहरण के तौर पर ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी और संयुक्त राज्य अमरीका विकास की लगभग एक जैसी विकसित अवस्था में है, लेकिन इनमें से प्रत्येक राष्ट्र अपने लोक प्रशासन में ऐसे

विशिष्ट लक्षणों का प्रदर्शन करता है, जो उसके अपने विकास(evolution) को प्रतिबिम्बित करते हैं। वहीं दूसरी ओर तृतीय विश्व के अन्तर्गत आने वाले अफ्रीका, एशिया और लेटिन अमेरिका जैसे दैश हैं जिनको विकासशील देशों के नाम से जाना जाता हैं, क्योंकि ये देश अभी भी विकास में लगे हुए हैं, जिनका प्रमुख विकासात्मक कार्य ‘राष्ट्र-निर्माण’ एवं सामाजिक-आर्थिक प्रगति है। विकास प्रशासन एक नया उपागम है जो विकासशील देशों की सरकार के प्रशासन से सम्बन्धित है। यद्यपि इन देशों में विभिन्न परम्परायें, रीति-रिवाज, सभ्यताऐं, राजनीतिक व्यवस्थाऐं, भाषाऐं, सामाजिक मूल्य, धर्म आदि आर्थिक विकास के विभिन्न स्तर हैं, यद्यपि इनमें काफी समानतायें हैं। इनकी तीन प्रमुख समानतायें हैं जिनमें से प्रथम है कि इनको एक ही तरह की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और प्रशासनिक विकास समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है, द्वितीय इन सभी देशों को आधुनिकीरकरण की ओर बढ़ना है, अपनी राष्ट्रीय आय प्रति व्यक्ति आय और लोगों के जीवन स्तर में सुधार लाना है और तृतीय इन सभी देशों ने विकास प्रशासन के महत्व को जान लिया है, जिसके माध्यम से इनको सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक परिवर्तन लाते हुए राष्ट्रीय निर्माण और सामाजिक आर्थिक प्रगति के लक्ष्यों को प्राप्त करना है। अतः विकासशील देश विकास प्रशासन के द्वारा स्वयं का विकास, प्रगति और उन्नति कर रहे हैं। विकसित देश इनको सहयोग और सहायता प्रदान करते हैं।

विकास के युग में विकसित और विकासशील देशों के सम्बन्ध में अनेक प्रकार से चर्चा की जाती रहती है। पूर्व विवरण से ये बात तो स्पष्ट रूप से आप समझ गये होंगे कि विकास एक बहुमुखी अवधारणा है। इसमें केवल आर्थिक पक्ष पर बल देना ही पर्याप्त नहीं है। बल्कि सामाजिक एवं राजनीतिक परिवर्तन एवं प्रगति के लक्ष्य को प्राप्त करना भी है।

यदि हम विकसित देशों की प्रशासनिक विशेषताओं को देखना चाहते हैं तो सबसे पहले हम विश्व में देशों की प्रकृति और उनके विकास की स्थिति के आधार पर उनका अध्ययन करेंगे। इस आधार पर सम्पूर्ण विश्व के देशों को तीन समूहों में विभाजित किया गया है। पहला, विकासशील देश- एशिया के देश (जापान के अलावा, अफ्रीका, दक्षिण अफ्रीका को छोड़कर), लेटिन अमरीका, कैरेबियन क्षेत्र, साइप्रस आदि। ये देश तृतीय देश के नाम से जाने जाते हैं। सामान्यतः विकासशील देशों को अर्द्ध-विकसित राष्ट्र या तीसरी दुनिया के देश के नाम से भी जाना जाता है। दूसरा, विकसित आर्थिक बाजार देश- दक्षिण और पश्चिम यूरोप के देश (साइप्रस, माल्टा और यूगोस्लाविया को छोड़कर) उत्तरी अमरीका, दक्षिण अफ्रीका, आस्ट्रलिया, जापान और न्यूजीलैण्ड। तीसरा, पहले वाले साम्यवादी आर्थिक स्थिति वाले देश- पहले के सोवियत यूनियन में सम्मिलित यूरोप के देश और पहले के पूर्वी एवं मध्य यूरोप के साम्यवादी देश चीन और रूस संघ।

इस प्रकार सम्पूर्ण विश्व के देशों को मोटे तौर पर इन तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है। विकासशील देशों में जहाँ प्रशासन को विकासशील समझा जाता है, सामाजिक व्यवस्था को बनाये रखने को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जाती है। वहीं दूसरी ओर, विकसित पश्चिमी समाजों में, जो उथल-पुथल के दौर से गुजर रहे हैं, प्रशासन को निरन्तर सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक विकास की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। अतः विकासशील और विकसित प्रशासन में भेद उन परिस्थितियों की पृष्ठभूमि में है जिनमें प्रशासन कार्य करता है। विकसित देश सम्पन्न, उन्नत और समृद्ध है। विकास, परिवर्तन और आधुनिकीकरण इनकी विशेषताऐं हैं। विकसित राष्ट्रों में आधुनिकता का आशय भौतिकतावाद से नहीं बल्कि विचारों की उत्कृष्टता से लिया गया है। विकसित देशों में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक परिवर्तनों की एक सुनिश्चित दिशा है। इन राष्ट्रों की राजनीतिक संस्थाऐं अत्यन्त परिपक्व, विकसित तथा प्रतिबद्ध प्रकृति की हैं। अतः लोक प्रशासन का स्वरूप भी विकसित हो चुका है। ये देश लोकतंत्र के प्रतीक बन गये हैं, तथा राजनीतिक स्थिरता के उदाहरण भी इस प्रकार विकास की समस्त पृष्ठभूमि तैयार है और परिवर्तन और विकास का क्रम सुव्यवस्थित है। विधि के शासन की अवधारणा ने सम्पूर्ण प्रशासनिक तंत्र को

जवाबदेय तथा विकासोन्मुख बना दिया। सामाजिक तथा आर्थिक समृद्धता ने यूरोपीय राष्ट्रों में लोक प्रशासन को अधिक विकसित बनाने में भरपूर योगदान दिया है।

विकसित एवं विकासशील देशों में प्रशासन की विशेषताऐं कुछ भिन्न होती है। अगले अध्याय में हम विकासशील प्रशासन एवं उसकी विशेषताओं के बारे में विस्तृत अध्ययन करेंगे। इस अध्याय में हम विकसित देशों की प्रशासनिक व्यवस्था पर प्रकाश डालेंगे। विकसित देशों की विशेषताओं की चर्चा हम अग्रलिखित बिन्दुओं से वर्णित करेंगे-

1. **लोक उत्तरदायित्व स्वरूप-** विकसित देशों की प्रशासनिक व्यवस्था की एवं सबसे प्रमुख विशेषता, उसका लोक उत्तरदायित्व स्वरूप माना जाता है। लोक प्रशासन पर जनता का नियंत्रण रहता है, और प्रशासन अपने समस्त कार्यों के लिये, जनता के प्रति उत्तरदायी होता है। इस उत्तरदायित्व की अभिव्यक्ति मंत्रिमण्डल का संसद के प्रति सामूहिक उत्तरदायित्व है।
2. **प्रशासनिक संगठन-** विकसित देशों की प्रशासनिक संरचना विकासशील देशों की तुलना में अधिक व्यवसायिक होती है। ब्रिटेन में विभागीय संरचना विद्यमान है, जबकि अमरीका में प्रशासनिक संरचना दो भागों में विभाजित है- विभागीय संगठन तथा स्वतंत्र आयोग, मण्डल तथा निगम। फ्रांसीसी प्रशासन के प्रमुख अंग मंत्रालय-प्रोजेक्ट और सरकारी उद्यम माने जाते हैं।
3. **उत्तरदायी एवं कुशल लोक सेवाऐं-** विकसित देशों में प्रशासनिक उत्तरदायित्वों का निर्वहन कुशलतापूर्वक सम्पन्न किया जाता है। प्रशासन जनता का कार्य बिना असुविधा के सम्पन्न करता है। ऐसे राष्ट्रों में जनता की हानि या असुविधा की क्षतिपूर्ति करना भी एक सामान्य परम्परा मानी जाती है। इन देशों में प्रशासनिक कार्यकुशलता बढ़ाने, उन्हें ज्यादा संवेदनशील बनाने, लोकप्रियता बढ़ाने तथा उपादेयता के क्रम में निरन्तर शोध किये जाते हैं। विकेन्द्रीकरण को इन देशों में पर्याप्त महत्व दिया जाता है।
4. **राजनीतिक तटस्थता-** तटस्थता लोक सेवा का एक ऐसा गुण है जो सदा से उपस्थित रहा है। मूल रूप से तटस्थता ब्रिटिश प्रशासन का गुण रहा है। इस तटस्थता की अवधारणा में जनता, व्यक्तियों तथा कर्मचारी वर्ग का विश्वास शामिल होता है। जनता को विश्वास इस बात का, कि चाहे कोई भी दल सत्तारूढ़ हो, लोक सेवा सभी प्रकार के राजनीतिक पक्षपात से मुक्त होगी, मंत्रियों का विश्वास इस बात का कि हर सत्तारूढ़ दल को लोक सेवा की निष्ठा प्राप्त होगी। कर्मचारी वर्ग को विश्वास इस बात का, कि पदोन्नति तथा अन्य पुरस्कार राजनीतिक दृष्टिकोण या पक्षपातपूर्ण कार्यों पर निर्भर नहीं करते बल्कि उनके गुणमात्र पर निर्भर करते हैं।

   इग्लैण्ड में लोक सेवक राजनीतिक दलों की गतिविधियों में भाग नहीं लेते हैं। सरकार की किसी भी नीति को लागू करने में राजनीतिक विचारधारा आड़े नहीं आती है। इसके विपरीत अमरीका के लोकसेवकों के राजनीतिक कार्यों पर कठोर प्रतिबन्ध लगाये गये हैं। वे चुनाव अभियान की सभाओं में केवल दर्शकों की भाँति ही भाग ले सकते हैं, उनके राजनीतिक प्रबन्ध या अभियानों में सक्रिय रूप से भाग लेने पर भी पाबन्दी है। फ्रांस में काफी उदारता के साथ कर्मचारियों को राजनीतिक अधिकार दिये गये हैं। यहाँ पर लोक सेवक सक्रिय रूप से राजनीति में भाग लेकर मंत्री पद भी प्राप्त कर सकते हैं जो पुनः लोक सेवा में लौट सकते हैं।
5. **लोक सेवाओं का लोकतांत्रिक स्वरूप-** विकसित समाजों में प्रजातंत्र की आधुनिक अवधारणा यथार्थ एवं व्यापक रूप से लागू होती है। प्रशासन का स्वरूप न केवल सैद्धान्तिक बल्कि व्यवहारिक रूप से भी प्रजातांत्रिक होता है। लोक सेवकों का व्यवहार 'जनता के सेवक' जैसा होता है ना कि 'जनता के स्वामी' जैसा। क्योंकि लोकतंत्र में पूरी सत्ता जनता में ही निहित होती है। लोक सेवाओं में समानता,

न्याय तथा स्वतंत्रता का अधिकार सभी के लिए समान रूप से उपलब्ध है। कार्मिकों को संघ बनाने तथा हितों के लिए संघर्ष करने की छूट दी गई है।

6. **योग्यता को महत्व-** विकसित देशों में लोक सेवाओं में भर्ती के लिये योग्यता को व्यापक रूप से महत्व दिया जाता हैं। ज्यादातर सामान्य प्रशासकीय एवं विशेषज्ञ पदों पर नियुक्ति या चयन प्रतियोगिता परीक्षाओं के आधार पर होता है। योग्यता निर्धारण की ये प्रतियोगिता परीक्षाऐं बहुत विश्वसनीय प्रकृति की मानी जाती है। अमेरिका सहित विश्व के कुछ और विकसित देशों में अन्य पद राष्ट्रपति की इच्छा से भरे जाते हैं, किन्तु इन पदों पर नियुक्ति विधायिका द्वारा अनुमोदित होती है।
7. **स्थायित्व का गुण-** विकसित देशों की लोक सेवाओं में स्थायित्व का भाव पाया जाता है। शासक परिवर्तित होते रहते हैं लेकिन नौकरशाही सदैव विधमान रहती हैं। भर्ती तथा सेवानिवृत्ति की आयु की व्यवस्था के कारण लोक सेवा का कार्यकाल निश्चित रहता है। ये ही एक ऐसा तत्व होता है जिसके कारण लोक सेवक पूर्णरूप से निर्भीक और निष्पक्ष होकर कार्य सम्पादित करते हैं।
8. **कार्य विशेषीकरण-** कुछ अधिक विकसित देशों, जैसे- पश्चिम यूरोप के देश- उत्तरी अमरीका, न्यूजीलैण्ड, जापान, रूस की प्रशासनिक विशेषताओं में उच्च दर्जे का कार्य-विशेषीकरण होता है। यहाँ बड़ी संख्या में विशिष्ट प्रशासनिक ढाँचे होते हैं, जिनमें से प्रत्येक किसी एक का निश्चित उद्देश्य के लिए विशेषीकरण होता है, जैसे- कृषि, यातायात-संचालन, प्रतिरक्षा, जन-सम्पर्क आदि। इसके अतिरिक्त कुछ अलग प्रकार के राजनीतिक ढाँचे, राजनीतिक दल, चुनाव, संसद, कार्यकारी अध्यक्ष, मंत्रीमण्डल नियमों का निर्माण और लक्ष्यों को निर्धारित करने के लिए स्थापित किये जाते हैं। जिसके पश्चात प्रशासनिक ढाँचे उनको लागू करते हैं। विकास की दृष्टि में यह एक बहुत ही विभेदीकरण पर आधारित राजनीतिक व्यवस्था है।
9. **औपचारिक राजनीतिक ढाँचे-** विकसित राजनीतिक व्यवस्था में औपचारिक राजनीतिक ढाँचे होते हैं जिनमें पहले से निर्धारित किये गये नियम अथवा नमूने के अनुकूल नियन्त्रण रखा जाता है। राजनीतिक निर्णय करना राजनीतिज्ञों का कर्तव्य बन जाता है, और प्रशासनिक निर्णय करना प्रशासकों का कर्तव्य होता है। सभी राजनीतिक निर्णय और कानून फैसले, चिरकालिक, तर्कसंगत मानकों के आधार पर किये जाते हैं। परम्परागत विशिष्ट वर्ग चाहे वे किसी धर्म अथवा कबीले से सम्बन्ध रखने वाले क्यों न हो, सरकार के निर्णयों को प्रभावित करने की वास्तविक सत्ता खो बैठते हैं।
10. **सार्वजनिक कार्यों में जनता की रूचि-** सार्वजनिक कार्यो में जनता की रूचि तथा उलझाव बहुत अधिक होता है। राजनीतिक चेतना बहुत उच्च मात्रा तक पहुँच चुकी होती है। अतः निर्णय करने और उनको लागू करने की प्रक्रियाओं में सक्रिय भाग लेने के लिये जनता का संघटन किया जाता है।
11. **गतिशीलता की प्रवृत्ति-** विकसित देशों का सामाजिक, आर्थिक तथा प्रशासनिक ढाँचा गतिशील प्रवृत्ति का परिचायक होता है। इन देशों में परिवर्तन को सहजता से स्वीकार किया जाता है। प्रशासनिक व्यवस्था का ये गुण होता है कि वो देश के राजनीतिक परिदृश्य, अर्थव्यवस्था, सामाजिक संरचना तथा तकनीकी विकास के सन्दर्भ में आये सभी परिवर्तनों के अनुरूप शीघ्रता से परिवर्तित हो जाती है। उदहारण के तौर पर पिछले दशकों में ब्रिटेन की लोक सेवाओं का घटता आकार तथा निजीकरण समय की माँग के अनुरूप एक गतिशील परिवर्तन के तौर पर ही देखा जा सकता है। इसी प्रकार 'प्रशासनिक सुधारों' के प्रयास भी पूर्ण मनोयोग एवं इच्छा से ही क्रियान्वित होते हैं।
12. **व्यापक कार्यक्षेत्र-** विकसित देशों का एक महत्वपूर्ण लक्षण यह है कि यहाँ सरकार की क्रिया अथवा कार्यों का क्षेत्र सार्वजनिक तथा व्यक्तिगत मामलों के बहुत बड़े दायरों तक फैला होता है। राज्य के लोक कल्याणकारी स्वरूप ने प्रशासन के कार्यक्षेत्र को न केवल व्यापक बनाया है, बल्कि अत्यन्त महत्वपूर्ण

दायित्वों से युक्त कर दिया है। अनेक जनोपयोगी कार्यों जैसे- कृषि, उद्योग, संचार, शिक्षा, स्वास्थ्य, पर्यावरण संरक्षण से लेकर न्याय व्यवस्था तक प्रत्येक कार्य लोक प्रशासन के क्षेत्र में सम्मिलित है। राज्य की सुरक्षा, वैदेशिक सम्बन्ध, आन्तरिक शान्ति एवं व्यवस्था, अर्थव्यवस्था पर नियन्त्रण तथा सामाजिक सेवाओं का संचालन इत्यादि सभी कार्य प्रशासन की सूची में सम्मिलित होते हैं।

13. **विशेषज्ञों का महत्व-** विकासशील राष्ट्रों में सामान्यज्ञ अधिकारियों का वर्चस्व रहता है, जबकि विकसित राष्ट्रों में डॉक्टर, इंजीनियर, वैज्ञानिक आदि विशेषज्ञ अधिकारियों को उच्च दर्जा प्रदान किया जाता है। अमेरिका, जापान एवं जर्मनी में विशेषज्ञ अधिक सम्मानित हैं, वहीं ब्रिटेन तथा फ्रांस में भी इन्हें सामान्यज्ञों की अधीनरूपता में नहीं रखा गया है। अतः तकनीकी विकास की जटिलताओं तथा ज्ञान के बढ़ते क्षितिज ने विशेषज्ञों की प्रशासन में भूमिका महत्वपूर्ण बना दी हैं।
14. **प्रशासन पर राजनीतिक दलों का प्रभाव-** विकासशील देशों के विपरीत, विकसित देशों के लोक प्रशासन पर राजनीतिक दलों का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है। ब्रिटेन के विपरीत अमेरिका में लोक सेवाओं पर दलीय प्रभाव पाया जाता हैं। यहाँ राष्ट्रपति को ये अधिकार होता है, कि वो अपने विश्वस्तों या मित्रों आदि को उच्च प्रशासनिक पदों पर नियुक्त कर सकता है। फिर ये ही सब लोग नीति निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। फ्रांस की लोक सेवायें भी दलीय प्रभाव से अछूती नहीं हैं। वहाँ के लोक सेवकों को दलीय गतिविधियों में भाग लेने का अधिकार होता है। परन्तु ब्रिटेन की स्थिति इस सम्बन्ध में थोड़ी भिन्न होती हैं। वहाँ पर लोक सेवकों के लिये राजनीतिक तटस्थता का पालन तो करना होता है, परन्तु, इसके साथ ही उन्हें बदलते राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में अपनी भूमिका में परिवर्तन करते हुए सामन्जस्य भी बिठाना पड़ता है। ऐसी परिवर्तित परिस्थिति में पहले की सरकार से जो लोग घनिष्ठ रूप से जुड़े होते हैं उनका स्थानान्तरण कम महत्वपूर्ण विभागों में कर दिया जाता हैं। अनेकों बार पूर्व में उनके द्वारा सम्पादित कार्यकलापों के लिये कुछ विभागीय जाँच समितियाँ भी स्थापित कर दी जाती हैं। भारत इससे अछूता नहीं है, भारत में भी इस प्रकार की स्थिति देखने को मिलती है फिर भी वे अपेक्षाकृत ब्रिटेन की लोक सेवा पर दलीय प्रभाव अपेक्षाकृत कम पाया जाता हैं।
15. **लोक सेवकों की स्थिति-** विकसित देशों में लोक सेवकों की स्थिति बहुत महत्वपूर्ण होती हैं। इनकी भर्ती योग्यता के आधार पर होती हैं। विकसित देशों में आरक्षण तथा भाई-भतीजावाद देखने को नहीं मिलता है। लोक-सेवकों का स्वरूप लोकतांत्रिक होता है, तथा वे स्थायी वेतनभोगी कर्मचारी होते हैं, सरकार के परिवर्तन का उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता हैं, वे तटस्थ होकर अपने कार्य करते हैं। उनके वेतन तथा सेवा शर्तें सभी आकर्षित होती हैं। लोक सेवक राष्ट्र निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। समाज में लोक सेवकों को प्रतिष्ठा प्राप्त होती हैं। राज्य के बढ़ते हुए कार्यों के साथ-साथ लोक सवकों की स्थिति व प्रभाव में भी वृद्धि होती जाती हैं।
16. **उच्च स्तरीय समन्वय-** समन्वय समस्त प्रशासनिक संरचनाओं की एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया होती है, जो संगठन में संघर्ष तथा अतिराव को रोकती हैं। विकसित देशों में एक कार्य को कई सरकारी, अर्द्धसरकारी तथा निजी संगठनों के द्वारा सम्पादित किया जाता है। परन्तु ऐसे प्रशासन की ये विशेषता होती है, कि इन सभी संगठनों के मध्य एक ही प्रकार के कार्यों के सम्पादन करने के उपरान्त भी इन संगठनों के मध्य टकराव, प्रथम तो कम उत्पन्न होते हैं, एवं यदि उत्पन्न भी होते हैं तो बहुत लम्बे समय तक अनिर्णित नहीं रहते हैं, बल्कि समय रहते राजनीतिज्ञों एवं शीर्ष कार्यपालक अधिकारियों द्वारा सुलझा लिये जाते हैं। विकसित देशों में लोक प्रशासन तथा निजी प्रशासन दोनों क्षेत्रों के संगठन परस्पर विचार-विमर्श करते रहते हैं।

17. **समितियों का महत्वपूर्ण स्थान-** अमेरिका तथा ब्रिटेन जैसे विकसित देशों में लोक प्रशासन में समिति व्यवस्था का महत्वपूर्ण स्थान है। विविध समितियाँ प्रशासनिक कार्यों को समन्वित करने में प्रयत्नशील रहती हैं। इन देशों में मंत्रिमण्डल एवं संसद की विभिन्न समितियाँ होती हैं जो प्रशासन को सुचारू रूप से चलाने में सहयोग प्रदान करती हैं साथ ही नियन्त्रण भी रखती हैं।
18. **राष्ट्र एवं संविधान के प्रति प्रतिबद्धता-** विकसित देशों को प्रशासन की तथा अन्य विशषताओं के साथ वहाँ के नागरिकों को भी अपने देश के संविधान, राष्ट्रगान, राष्ट्रध्वज, राष्ट्रीय कानून आदि के प्रति अगाध प्रेम होता हैं। यही कारण है, कि इन देशों के नागरिकों तथा प्रशासन के मध्य सदैव सामन्जस्यता एवं सहयोग का भाव दिखाई देता हैं। नागरिक संविधान एवं देश के कानून के प्रति अगाध आस्था रखते हैं। राजनेता तथा लोक सेवक भी इसी कारण से राष्ट्रीय समस्याओं के प्रति संवेदनशील होते हैं। हर नागरिक तथा सरकारी कार्मिक सदैव ये प्रयास करता है, कि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर उनके देश की छवि धूमिल न हो पाये और उनका देश सबसे आगे एवं सबसे अलग दिखाई दे।
19. **अभिजात्य वर्ग का प्रभुत्व-** शासन सत्ता में उच्च परिवारों, धनिकों, प्रभावशाली जातियों तथा परम्परागत रूप से साधन सम्पन्न लोगों का प्रभुत्व, यूँ तो सभी देशों में समान सा ही है परन्तु फिर भी, फ्रांस, अमेरिका तथा ब्रिटेन में यह सर्वाधिक दिखाई देता है।
20. **सशक्त अर्थव्यवस्था-** विकसित राष्ट्रों की आर्थिक एवं वित्तीय व्यवस्था सुदृढ़ है। अतः प्रशासनिक व्यय को सरलता से वहन किया जा सकता है। राज्य के द्वारा प्रवर्तित सभी कल्याणकारी सेवाऐं सरलता एवं कुशलतापूर्वक वहन की जाती हैं क्योंकि आधुनिक प्रशासन तथा इसके कार्य पूर्णतया वित्त पर आधारित होते हैं। विकसित राष्ट्रों की एक और विशेषता होती है, कि चूँकि यहाँ प्रति व्यक्ति आय अधिक होती है अतः प्रत्येक व्यक्ति के पास जीवन की मूलभूत या न्यूनतम आवश्यकताओं की समस्या नहीं होती हैं। ऐसी परिस्थिति में प्रशासन अपना ध्यान नागरिकों की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति में नहीं लगाता है, बल्कि मानव जीवन को सुखमय बनाने हेतु अन्य पहलुओं पर भी विचार करती हैं।
21. **महिलाओं को उचित प्रतिनिधित्व-** विकासशील देशों के विपरीत विकसित देशों में प्रशासन में महिलाओं को समुचित प्रतिनिधित्व प्रदान किया जाता है। ब्रिटेन, फ्रांस और अमरीका जैसे देशों में ये देखने को मिलता है, कि महिलाओं को सभी क्षेत्रों में पुरुषों के बराबर के अधिकार प्रदान किये जाते हैं और वे पुरुषों के समान ही कार्य करती हैं। फ्रांस की समस्त लोक सेवाओं में पुरुषों की तुलना में महिलाओं की संख्या अधिक देखने को मिलती हैं। लोक सेवाओं में महिलाओं के उचित प्रतिनिधित्व से लोक सेवा में शालीनता तथा संजीदगी की भावना का प्रादुर्भाव होता है।
22. **राजनीति एवं प्रशासन के कार्यों का विस्तृत क्षेत्र-** राजनीति और प्रशासन के कार्यों का क्षेत्र विकसित राष्ट्रों में काफी विस्तृत होता है। इसमें सामाजिक जीवन के भी सभी पहलू समाविष्ट हो जाते हैं। यह क्षेत्र निरन्तर बढ़ता रहता है।
23. राजनीतिक निर्णय लेने की प्रक्रिया बुद्धिपूर्ण, तर्क संगत एवं धर्मनिरपेक्ष होती है। परम्परावादी श्रेष्ठवर्ग की शक्तियाँ घट जाती हैं तथा परम्परागत मूल्यों का प्रभाव भी कम हो जाता है। फलतः धर्मनिरपेक्ष तथा निवैयक्तिक कानून व्यवस्था जन्म लेती है।
24. प्रबन्धकों एवं अधीनस्थ कर्मचारियों के मध्य पर्याप्त सम्पर्क।
25. सत्ता और नियंत्रण का अत्यधिक विकेन्द्रीकरण।
26. आन्तरिक प्रशिक्षण गतिविधियों की पर्याप्तता।

अभ्यास के प्रश्न-

1. विकास प्रशासन का लक्षण क्या नहीं है?

2. विकास प्रशासन का घनिष्ठ सम्बन्ध किससे है?
3. भारत में विकास प्रशासन की प्रमुख समस्या क्या है?
4. विकास प्रशासन की क्या विशेषता नहीं है?
5. विकास प्रशासन में किसकी भागीदारी आवश्यक है?

4.4 सारांश

इस अध्याय में हमने ये जानने का प्रयास किया, कि विकसित देशों की प्रशासनिक व्यवस्थाओं के लक्षण क्या होते हैं? व वहां प्रशासन व नौकरशाही किन-किन विशेषताओं व दृष्टिकोणों के साथ कार्य करती हैं। प्रस्तुत वर्णन से इस बात को समझाने का प्रयास किया गया है कि राज्यों को उनके विकास के आधार पर दो प्रमुख श्रेणियों में बांटा जाता है-विकसित एवं विकासशील। किसी भी देश का विकसित या विकासशील कहे जाने के पीछे उस देश के प्रशासन की प्रकृति और विकास के स्तर के सम्बन्ध को जाँचना होता हैं।

विकास का अभिप्राय आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तन के तत्वों के समूह से हैं जिनमें से प्रत्येक तत्व कम विकसित से अधिक विकसित अविच्छिन्नक पर फैला होता है। एक देश में एक ही समय में कुछ ऐसी विशेषतायें भी दिखाई देती हैं जो कम विकसित होती हैं। साथ ही विकसित देशों के लोक प्रशासन में भी कुछ ऐसे तत्व देखने को मिलते हैं जो विकसित देशों के लक्षण हाते हैं और कुछ लक्षण ऐसे होते हैं जो विकासशील देशों या कम विकसित देशों से मिलते-जुलते होते हैं। इन राष्ट्रों की राजनीतिक संस्थाऐं, अत्यन्त परिपक्व, विकसित तथा प्रतिबद्ध प्रकृति की होती हैं अतः लोक प्रशासन का स्वरूप भी विकसित हो चुका होता है। फ्रांस, अमेरिका, जापान तथा ब्रिटेन आदि विकसित देशों की न केवल प्रशासनिक व्यवस्था बल्कि सामाजिक स्तर पर भी परिपक्वता दिखाई देती हैं। इसके अतिरिक्त सभी विकसित देशों के लोक प्रशासन में वैधानिकता, तार्किकता, विशेषज्ञता को पर्याप्त महत्व दिया जाता है। यहाँ प्रायः राजनेताओं तथा प्रशासकों के मध्य मधुर सम्बन्ध रहते हैं, तथा प्रशासन संविधान, राष्ट्रीय कानूनों तथा आदर्शों के प्रति प्रतिबद्ध होता है। लोक-प्रशासन में विकेन्द्रीकरण का व्यवहारिक स्वरूप देखने को मिलता है और प्रशासनिक नीतियाँ लोकमत से प्रभावित होती हैं तथा प्रशासन में जनता पर्याप्त रूचि एवं सहभागिता प्रकट करती है।

इसी प्रकार विकसित देशों में विशेष तौर पर देश की कार्यशील जनसंख्या का बहुत बड़ा भाग लोक सेवकों के रूप में कार्यरत रहता है तथा नौकरशाही की कार्यप्रणाली कठोर होने की अपेक्षा सहयोगी एवं संवेदनशील प्रवृत्ति की होती है। ईरा शारकैन्सकी(Ira Sharkansky) ने भी विकसित देशों में नौकरशाही की तीन प्रमुख विशेषताऐं बतायी-

1. नौकरशाही का आकार बड़ा होता है, तथा इसमें कर्मचारी विशेषज्ञ होते हैं, जो कार्यों के विशेषीकरण एवं सरकार की क्रियाओं के विस्तृत दायरे को प्रदर्शित करते हैं।
2. नौकरशाही सरकार की अन्य विधिसंगत शाखाओं से आदेश प्राप्त करती है।
3. नौकरशाही को पेशेवर समझा जाता है।

अतः अधिक विकसित देशों में नौकरशाही की अधिक विधिसंगत, कार्यकुशलता तथा राजनीतिक दृष्टि से अधिक उत्तरदायी समझा जाता है, वे विभिन्न प्रकार की बड़ी संख्या में कार्य करती है। यही कारण है कि समाज में उनका प्रवेश बहुत अधिक विस्तृत होता है। ग्राहकों अथवा नागरिकों के साथ उनकी परस्पर क्रिया वैयक्तिक होती है। फ्रांस और जर्मनी में समाज के अन्य व्यवसायिक समूहों से नौकरशाही ने, विशेषतया इसके उच्च स्तरों में अपनी एक अलग स्थिति बना ली है, किन्तु ब्रिटेन और अमेरिका में ऐसा नहीं हुआ है। फ्रांस और जर्मनी दोनों देशों में प्रशासनिक न्यायालयों की व्यवस्था है जो अमेरिका तथा ब्रिटेन के सिविल न्यायालयों के देशों की लोकसेवाओं में राजनीतिक चेतनता के स्तर, व राजनीति में भाग लेने की सीमा में भी बहुत भिन्नता है। किन्तु अधिकतर विकसित

देशों के सम्मुख बहुत अधिक लोक सेवा तथा नियामक उपक्रमों के पारस्परिक असंगत सम्बन्धों की समस्या अब भी बनी हुई है।

4.5 शब्दावली

अविच्छिन्नक- सातत्य, अबाध-क्रम, प्रतिबिम्बित- जो स्पष्ट रूप से व्यक्त होता हो, उत्कृष्टता- श्रेष्ठता, भौतिकतावाद- यथार्थवाद, क्षतिपूर्ति- क्षति/हानि की पूर्ति होना, संवेदनशील- संवेदना से युक्त, तटस्थता- किसी का पक्ष ना लेना, सत्तारूढ़- जिसे सत्ता प्राप्त हो या सत्तासीन, प्रतिबन्ध- रोक या निषेध, सामान्यज्ञ- जिसको सब विषय के बारे में ज्ञान हो, विशेषज्ञ- किसी विषय का विशेष ज्ञान रखने वाला, अनुमोदित- समर्थित या सम्मति प्राप्त, चिरकालिक- बहुत दिनों तक बना रहने वाला, तर्कसंगत- जो तर्क के आधार पर ठीक हो, मानक- पैमाना या कसौटी या गुणवत्ता का आधार या स्तर, गतिशीलता- चलने-बढ़ने का भाव या गतियुक्तता, परिचायक- सूचक या सूचित कराने वाला, परिदृश्य-चारों ओर दिखने वाला दृश्य, मनोयोग- मन को किसी कार्य या विषय में एकाग्र करके लगाना, परिप्रेक्ष्य- उन परिस्थितियों का समाहार जिसमें घटना घटी हो; किसी विषय, घटना या बात के विभिन्न पक्ष,भाई-भतीजावाद- नौकरी, आर्थिक सहायता आदि दिलाने में या सगे-सम्बन्धियों के हित हेतु किया गया पक्षपात, स्वजन पक्षपात, अतिएव- अविच्छादन करना, परस्पर व्याप्त करना, एक ही समय होना, अनिर्णित- जिस पर निर्णय न हुआ हो; अनिश्चित, अगाध- जिसकी गहनता या गंभीरता का पता न चल सके, सामंजस्यता- तालमेल; मेल; संगति; एकरसता, अभिजात्य- कुलीन, अविच्छिन्नक- सातत्यपूर्ण।

4.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. नियमों की कठोरता, **2.** तुलनात्मक लोक प्रशासन, **3.** समन्वय, सम्प्रेषण का अभाव, **4.** नौकरशाही मनोवृत्ति, **5.** राजनीतिक प्रतिनिधि, सामाजिक संगठन और हित समूह।

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ0 ए0 पी0 अवस्थी, तुलनात्मक लोक प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2004
2. डॉ0 सुरेन्द्र कटारिया, तुलनात्मक लोक प्रशासन, आर0बी0एस0ए0 पब्लिशर्स, जयपुर, 2013
3. डॉ0 एम0 पी0 शर्मा, बी0एल0 सढाना, हरप्रीत कौर, लोक प्रशासन: सिद्धान्त एवं व्यवहार, किताब महल, इलाहाबाद, 2015

4.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. आर0 के0 दुबे, आधुनिक लोक प्रशासन, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा, 1992
2. अमरेश्वर अवस्थी एवं श्रीराम माहेश्वरी, लोक प्रशासन, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल पुस्तक प्रकाशक, आगरा, 1974
3. रमेश के0 अरोड़ा, तुलनात्मक लोक प्रशासन, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 1995
4. प्रीता जोशी, विकास प्रशासन, आर0बी0एस0ए0 पब्लिशर्स, जयपुर, 2003

4.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. विकास एवं विकास-प्रशासन की अवधारणा की व्याख्या कीजिये।
2. विकसित देशों में लोक प्रशासन के प्रमुख लक्षणों की विस्तार से विवेचना कीजिये।

इकाई- 5 विकासशील देशों की विशेषताऐं

इकाई की संरचना

5.0 प्रस्तावना
5.1 उद्देश्य
5.2 विकाशील देशों का अर्थ
5.3 विकासशील राष्ट्रों में लोक प्रशासन
5.4 विकासशील राष्ट्रों में नौकरशाही
    5.4.1 उपनिवेशिक विकासशील राष्ट्रों में नौकरशाही
    5.4.2 गैर-उपनिवेशिक विकासशील राष्ट्रों में नौकरशाही
5.5 विकासशील देशों की प्रशासनिक विशेषताऐं
5.6 विकासशील देशों के प्रशासन की समस्याऐं
5.7 विकासशील देशों के प्रशासन के समक्ष चुनौतियां
5.8 विकसित व विकासशील देशों के लोक-प्रशासन व नौकरशाही में अन्तर
5.9 सारांश
5.10 शब्दावली
5.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
5.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
5.14 निबंधात्मक प्रश्न

5.0 प्रस्तावना

विकासशील देश जैसे शब्द का प्रयोग किसी ऐसे देश के लिये किया जाता है जिसके भौतिक सुखों का स्तर निम्न होता है। विकास के ये स्तर सभी विकासशील देशों में पृथक-पृथक हो सकते हैं। कुछ विकासशील देशों में, औसत रहन-सहन का स्तर का मानक भी उच्च होता है। विकासत तथा विकासशील राष्ट्रों के रूप में यह विभाजन प्रत्येक दृष्टि से परिभाषित नहीं किया जा सकता है। सामान्यतः विकासशील देशों को अर्द्ध-विकसित राष्ट्र या तीसरी दुनिया के देश भी कहा जाता है। विगत अध्याय में आपने विकसित राष्ट्रों की विशेषताओं के बारे में जाना। प्रस्तुत अध्याय में विकासशील राष्ट्रों के बारे में सम्पूर्ण अध्ययन करेंगे व अन्त में विकसित और विकासशील देशों के मध्य अन्तर स्थापित करते हुए उन्हें भली-भाँति जानने का प्रयास करेंगे।

5.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- परिभाषाओं के आधार पर विकासशील देशों के अर्थ को जान पायेंगे।
- विकासशील देशों की विभिन्न प्रकार की विशेषताओं से अवगत हो जायेंगे।
- विकसित एवं विकासशील देशों के मध्य अन्तर को समझ जायेंगे।

5.2 विकासशील देशों का अर्थ

जैसा कि आपने जाना कि विकासशील राष्ट्र नामक शब्द का प्रयोग सामान्य अर्थों में ऐसे राष्ट्रों के लिये किया जाता है, जिसमें भौतिक सुखों का स्तर निम्न होता हैं। चूँकि विकसित देश नामक शब्द की कोई भी एक परिभाषा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मान्यता प्राप्त नहीं है, अतः विकास के स्तर इन तथाकथित विकासशील देशों में भिन्न हो

सकते हैं। विकासशील देशों को कई नाम दिये गये हैं। जैसे- कम विकसित, उद्-गामी, अन्तर्कालीन और अविकसित आदि। किन्तु 'विकासशील' शब्द अधिक लोकप्रिय हुआ, क्योंकि इसका अभिप्राय यह है कि वर्तमान अधूरे विकास की स्थिति स्थायी नहीं है और वे विकास के एक उच्च स्तर की ओर चल रहे हैं। इस श्रेणी में अधिकतर अफ्रीका, एशिया (जापान एवं दक्षिण कोरिया को छोड़कर) तथा दक्षिण अमरीका के देश व कुछ द्वितीय राष्ट्र आते हैं, यद्यपि यूरोप के कुछ देशों को भी इस श्रेणी में लाया जा सकता हैं। सन् 1961 में अल्जीयर्स लेखक, फ्रेण्ट्ज फेनॉन ने अपनी पुस्तक "Les Dammes Da La Terres" में सर्वप्रथम तीसरी दुनिया नामक शब्द का प्रयोग अर्द्ध-विकसित या विकासशील देशों के लिये प्रयुक्त किया था। अपनी इस पुस्तक में फेनॉन ने अमेरिका तथा अन्य पूँजीवादी देशों को 'पहली दुनिया' रूस तथा अन्य समाजवादी राष्ट्रों को 'दूसरी दुनिया ' तथा विकासशील राष्ट्रों को 'तीसरी दुनिया' कहा था। वास्तव में अब दूसरी दुनिया नामक शब्द की प्रासंगकिता नहीं रही है, क्योंकि सन् 1991 में सोवियत समाजवादी गणराज्य का विघटन हो चुका है तथा अमेरिका एवं उसके मित्र राष्ट्र महाशक्ति के रूप में बचे हैं। आजकल 'चौथी दुनिया' शब्द का प्रयोग भी किया जाने लगा है। अति निर्धन देशों (सूड़ान, इथियोपिया तथा बांग्लादेश) को इस नाम से पुकारा जाता है।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद विश्व का सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक परिदृश्य बहुत तेजी के साथ परिवर्तित हुआ है। पहली दुनिया में संयुक्त राज्य अमेरिका, पश्चिम यूरोप, कनाडा, आस्ट्रेलिया तथा न्यूजीलैण्ड की चर्चा होती थी, जबकि दूसरी दुनिया में सोवियत संघ तथा उसके मित्र राष्ट्र (पूर्वी यूरोपीय देश) शामिल थे। तीसरी दुनिया में एशिया, अफ्रीका तथा लेटिन अमेरिका के वे देश शामिल हैं जो उपनिवेश काल से स्वतंत्र होकर विकास की राह पर चल रहे हैं। ये देश आर्थिक रूप से पिछड़े हुए, सामाजिक रूप से विषमताग्रस्त तथा उपनिवेश काल की विरासत को ढोने वाले माने जाते हैं। विकासशील देशों में आधुनिकता का अभाव पाया जाता है।

विश्व बैंक सभी निम्न और मध्यम आय वाले देशों को विकासशील देशों की श्रेणी में रखता है परन्तु साथ ही ये स्वीकार करता है कि, ''इस शब्द का प्रयोग सुविधा के लिये किया जा रहा है, हमारा आशय यह नहीं है कि इस समूह की सभी अर्थव्यवस्थाऐं एक समान विकास की प्रक्रिया से गुजर रही है अथवा अन्य अर्थव्यवस्थाऐं विकास की पसंदीदा अथवा अंतिम अवस्था पर पहुँच गयी हैं। आय द्वारा वर्गीकरण आवश्यक रूप से विकास की स्थिति को नहीं दर्शाता है।'' इस प्रकार तीसरी दुनिया के अधिकांश देश राष्ट्र-निर्माण तथा तीव्र गति से सामाजिक-आर्थिक विकास की प्रक्रिया में लगे हुए हैं।

उपरोक्त सम्पूर्ण वर्णन के पश्चात यदि विकासशील देश के अर्थ को कुछ बिन्दुओं में समझना चाहें तो कह सकते हैं कि-

1. विकासशील राष्ट्र वो होते हैं, जिनका औद्योगिक दृष्टि से विकसित देशों की तुलना में राजनीतिक एवं आर्थिक विकास का स्तर थोड़ा कम होता हैं।
2. वे राष्ट्र जो पूँजीवादी गुट अर्थात् अमेरिका तथा पश्चिमी यूरोप तथा साम्यवादी गुट अर्थात् सोवियत रूस तथा पूर्वी यूरोप से स्वयं को पृथक रखते आये हैं, विकासशील राष्ट्र हैं।
3. विकासशील देश वे होते हैं, जिनकी अर्थव्यवस्था कृषि पर आधारित होती हैं।
4. वे राष्ट्र जिनका समाज बहु विविधताओं से युक्त तथा पिछड़ा हुआ होता हैं।
5. ऐसे राष्ट्र जो अब भी अशिक्षा, कुपोषण, गरीबी, रूढ़िवादिता आदि समस्याओं से जूझ रहे हैं, विकासशील राष्ट्र की श्रेणी में आते हैं।
6. सामान्यतः विकासशील देश उपनिवेश रह चुके हैं व भौगोलिक दृष्टि से गरम जलवायु के देश हैं।

इन सब विशेषताओं के अलावा यदि संयुक्त राष्ट्र के विशेषज्ञों के अनुसार देखें तो जिन देशों की प्रति व्यक्ति आय अमेरिका, कनाडा, आस्ट्रेलिया तथा यूरोप के देशों की तुलना में कम होती हैं वे अल्पविकसित अर्थव्यवस्था वाले देश कहलाते हैं। परन्तु फिर भी अभी तक ऐसी कोई सर्वव्यापी परिभाषा विकसित नहीं हुई है जो सभी विकासशील

राष्ट्रों के सम्पूर्ण रेखाचित्र को स्पष्ट कर सके। विकासशील देशों की सम्पूर्ण प्रशासनिक व्यवस्था को समग्र रूप में देखने से पूर्व आइये हम इन देशों में प्रशासन तथा नौकरशाही के स्वरूप को पृथक रूप से जानें ताकि इनकी प्रशासनिक व्यवस्थाओं को समझने में आसानी रहे।

5.3 विकासशील राष्ट्रों में लोक प्रशासन

विकासशील देशों के बारे में उपरोक्त वर्णन से आप अब तक ये तो जान ही गये होंगे कि ये देश जनाधिक्य, सामाजिक शोषण, गरीबी, बेरोगजारी, परम्परागत समाज तथा अन्धविश्वास से ग्रस्त हैं। एशिया और अफ्रीका के देश ब्रिटिश शासकों के शोषण के शिकार रहे तथा लम्बे समय तक राजशाही व्यवस्थाओं से त्रस्त रहे। ये देश उपनिवेशवाद के दौरान मिली प्रशासनिक व्यवस्था को विरासत में लेकर विकास की राह पर आगे बढ़े। उपनिवेशवाद के दौरान प्रशासन तन्त्र का स्वरूप केवल नियामकीय था जो केवल शान्ति व्यवस्था बनाये रखने का ही काम करता था जबकि नवस्वतन्त्र राष्ट्रों की मुख्य आवश्यकता विकास प्रशासन की थी। विकासशील राष्ट्रों के साथ सबसे बड़ी समस्या संसाधनों की कमी की रही व साथ ही तकनीकी ज्ञान का अभाव भी रहा। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद जब विकासशील देश उपनिवेशवाद से आजाद हुए तब तक शेष विश्व (विकसित) इनसे कहीं आगे निकल चुके थे। आज, यद्यपि विकासशील राष्ट्रों की राजनीतिक परिस्थितियाँ परिवर्तित हो चुकी हैं, तब भी इनका प्रशासन काफी हद तक कठोर, निष्ठुर और असंवेदनशील बना हुआ है। परिणामस्वरूप न तो विकास के लक्ष्य प्राप्त किये जा सके हैं और ना ही लोक कल्याणकारी राज्य या लोकतंत्र के सपने पूरे हुए हैं।

विकासशील राष्ट्रों में राजनीतिक दुराभिसन्धियाँ तथा संकीर्णताऐं अपने चरम पर होती हैं। रिग्स के अनुसार, 'विकासशील देशों के विभिन्न कार्यात्मक क्षेत्रों में परिवर्तन की गति एक समान नहीं होती हैं।' उदहारणस्वरूप भारत में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के विकास की तुलना में सामाजिक मानसिकता परिवर्तित नहीं हुई है। विकासशील राष्ट्रों में राष्ट्रीय भावना, नैतिकता तथा सच्चरित्रताकी स्थापना एक दुष्कर कार्य बना रहता है, क्योंकि नवतंत्र राष्ट्रों में स्वतंत्रता का आशय स्वच्छंदता से लिया जाता हैं। लोकतंत्र का तात्पर्य केवल अधिकारों की प्राप्ति से ही समझा जाता है, अतः इन देशों के नागरिकों में कर्तव्यों एवं उत्तरदायित्व की भावना का अभाव पाया जाता हैं। विकासशील राष्ट्रों का समाज परम्परागत, अशिक्षित, अल्प जागरूक, विषमतायुक्त तथा ग्रामीण जनसंस्कृति से युक्त होता है। अतः यहाँ पर सामाजिक न्याय की स्थापना एक महत्वपूर्ण बिन्दु बन जाता है जो प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप में लोक प्रशासन के कार्यकरण को प्रभावित करता हैं। विकसित राष्ट्रों में विकास के एकमात्र रूप में केवल सरकार ही प्रयत्नशील नहीं रहती है बल्कि अन्य संगठनों का भी इसमें योगदान रहता हैं। जबकि दूसरी तरफ विकासशील राष्ट्रों की योजनाऐं एवं विकास कार्यक्रम पूरी तरह से राज्य द्वारा नियंत्रित एवं निर्धारित होते हैं। गरीबी, निरक्षरता, भुखमरी, आतंकवाद, भ्रष्टाचार, महिला अत्याचार, बाल-अपराध, औद्योगीकरण का अभाव आदि कई ऐसी समस्याऐं हैं, जिनके समाधान में इन देशों का प्रशासन सैदव कार्यरत रहता हैं।

5.4 विकासशील राष्ट्रों में नौकरशाही

रिग्स ने माना कि विकासशील देशों के विभिन्न कार्यात्मक क्षेत्रों में परिवर्तन की गति एकसार नहीं होती हैं। लोक प्रशासन (प्राविशिकता) में विकास जितनी तेजी से हो पाता है, उतनी तेजी से राजनीतिक संस्थानों जैसे-राजनीतिक कार्यकारिणी, विधानमण्डल, चुनाव प्रणालियों (प्रक्रिया) आदि में नहीं हो पाता है। इसका परिणाम यह होता है कि विकासशील समाजों में नौकरशाही अधिक प्रभुत्वशाली बन जाती हैं और यह बेमेल प्रभाव का प्रयोग करती हैं जिसके बहुत गम्भीर परिणाम होते हैं।

एस0एन0 ईसनतेंत(S.N. Eisentadt) उपनिवेशिक और गैर-उपनिवेशिक दो प्रकार के विकासशील राष्ट्रों में नौकरशाही के विकास का वर्णन संरचनात्मक-कार्यात्मक(Structural-functional) दृष्टि से करते हैं।

5.4.1 उपनिवेशिक विकासशील राष्ट्र

ऐसे विकासशील देश जो उपनिवेशी शासन के अधीन रहे उनके सन्दर्भ में ईसनतेंत ने कहा कि इनको अपनी प्रशासनिक संरचना उपनिवेशिक युग से विरासत के रूप में प्राप्त हुई हैं। इनमें सदा से केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति अधिक मात्रा में देखने को मिलती हैं। इनका कार्य मूल प्रशासनिक सेवाओं जैसे- राजस्व तथा कानून और व्यवस्था बनाये रखने तक ही सीमित थे। इन्होंने आधुनिक कानूनी और प्रशासनिक व्यवहारों के ढाँचों से स्थापित करने में सहायता की। ये राजनीतिक रूप से निष्पक्ष थे। ये उपनिवेशिक शासकों की सेवा करते थे जिन पर किसी प्रकार का राजनीतिक उत्तरदायित्व नहीं था। जब उपनिवेशी शासक चले गये तो इन देशों को यह उपनिवेशिक प्रशासन या नौकरशाही दोनों विरासत के रूप में मिले। इन देशों में नौकरशाही की दूसरी परत भी है जिसमें वे विभाग तथा ढाँचें सम्मिलित किये जाते हैं, जो स्वतंत्रता की प्राप्ति के पश्चात स्थापित किये गये। यहाँ एक नयी लोक सेवा का विकास किया गया- जो कार्मिक, लक्ष्यों, विभागों तथा क्रियाओं की दृष्टि से नयी थी। इनमें नये अधिकारियों की भर्ती की गई, ये सब ऐसे व्यक्ति रखे गये जिनको भूतपूर्व उपनिवेशिक लोक सेवा की अपेक्षा राजनीतिक उत्तरदायित्व की भावना तथा राजनीतिक दिशा का कहीं स्पष्ट और उच्च स्तरीय ज्ञान था।

5.4.2 गैर-उपनिवेशिक विकासशील राष्ट्र

ईसनतेत ने विकासशील देशों की दूसरी श्रेणी में उन राष्ट्रों को रखा जो उपनिवेशिक शासन के अधीन नहीं रहे। ऐसे देशों में नौकरशाही कुछ भिन्न नमूने का प्रदर्शन करती है। उनमें एक परम्परागत नौकरशाही विधमान थी, चाहे वह मध्यपूर्व के देशों की भाँति राजशाही हो या अल्पतंत्रीय-गणतंत्रात्मक, जैसी कि दक्षिण अमरीका के देशों में देखी जाती है, बढ़ते हुए आधुनिकीकरण के प्रभाव, आन्तरिक लोकतन्त्रीकरण तथा नये सामाजिक, राजनीतिक लक्ष्यों के विकास के कारण इन नौकरशाहियों को अपनी क्रियाओं के क्षेत्र को विस्तृत करना पड़ा और नये कार्मिकों को भर्ती करना पड़ा। फेरेल हेडी ने विकासशील देशों में प्रशासनिक प्रारूपों की कई श्रेणियों का उल्लेख किया है-

1. **परम्परागत तानाशाही(Traditional Autocratic)-** जैसा कि सऊदी अरब, मोरक्को, पैरागुए आदि में है। इनका शासन का ढंग परम्परागत है। सत्ताधारी राजनीतिक अभिजन ऐसे परिवारों से आते हैं, जिनकी स्थिति राजतांत्रिक अथवा कुलीनतांत्रिक होती है और नीतियों में परिवर्तन करने के लिये वे सैनिक तथा असैनिक नौकरशाही पर आश्रित होते हैं। राजनैतिक अभिजन आर्थिक प्रगति और विकास के प्रति वचनबद्ध नहीं होते (सिवाय तेल का उत्पादन करने वाले देशों के)।
2. **नौकरशाही अभिजन(Bureaucratic Elite)-** जैसे कि थाईलैंड, पाकिस्तान, ब्राजील, सूडान, पेरू, इंडोनेशिया आदि में है। परम्परागत अभिजनों को प्रभावी सत्ता से हटा दिया गया है, यद्यपि उनकी उपस्थिति अभी भी कुछ-कुछ है। जनता का राजनीति में बहुत कम सहयोग होता है। राजनीतिक सत्ता अधिकतर सैनिक व असैनिक नौकरशाही के हाथ में होती है।
3. **बहुतंत्रात्मक प्रतिस्पर्धात्मक(Polyarchal Competitive)-** जैसे कि फिलिपीन्स, मलेशिया, कोस्टारिका, यूनान आदि में है। जहाँ तक जनता की भागीदारी स्वतंत्र चुनाव हितानुकूलित राजनीतिक दल और सरकार के प्रतिनिधि ढाँचे पश्चिमी योरोप और संयुक्त राज्य अमरीका से मिलते-जुलते है। कभी-कभी इनमें सैनिक हस्तक्षेप से रुकावट आती है, यद्यपि यह दावा किया जाता है। यह स्थिति अस्थायी है। कई परम्परागत समाजों की अपेक्षा यहाँ सामाजिक गतिशीलता अधिक होती है। यहाँ कई राजनैतिक अभिजन होते हैं जिनकी सत्ता का आधार नगरों के मध्य वर्ग, भूमिपतियों, सैनिक अधिकारियों, मजदूर नेताओं और पेशेवर लोगों में होता है। सरकार की नीतियाँ प्रायः फलमूलक होती हैं।
4. **प्रभुत्वदारी-दलीय संग्रहण(Dominant-Party Mobilization)-** जैसा कि अल्जीरिया, बोलविया, मिस्त्र, तंजानिया, ट्यूनीशिया, माली आदि देशों में है। यहाँ राजनीति में बहुत कम छूट दी जाती है। प्रभुत्वशाली दल ही एक मात्र वैध दल होता है जो बलपूर्वक तरीकों से अपनी स्थिति बनाये रखता है।

सरकार एक निश्चित सिद्धान्त का अनुकरण करती है और सरकार के प्रति वफादारी के लोक-प्रदर्शन किये जाते हैं। सत्ताधारी अभिजन प्रायः युवक नगरों में रहने वाले, अच्छे, शिक्षित और धर्मनिरपेक्ष होते हैं, किन्तु आम तौर पर उनका नेतृत्व कोई चमत्कारिक नेता करता है। राष्ट्रवाद और विकास के कार्यक्रमों पर विशेष बल दिया जाता है।

5.5 विकासशील राष्ट्रों की प्रशासनिक विशेषताऐं

शासन के संचालन तथा विकास एवं प्रगति की दिशा में प्रशासन की भूमिका सुविदित है। लाम्पालोम्बरा ने विकासशील देशों में होने वाले सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक परिवर्तनों में नौकरशाही को एक महत्वपूर्ण स्वतंत्रचर माना है। यह सही है कि समाज सरकार के माध्यम से बोलता है और सरकार की नीति, योजना, परियोजना, कार्यक्रम आदि प्रशासन के माध्यम से क्रियान्वित होते हैं। विकासशील देशों में प्रशासन की स्थिति बड़ी शोचनीय है। तृतीय विश्व के अध्येयता इस बात पर पूरी तरह से एक मत हैं कि, नवीन देशों के सामाजिक, आर्थिक विकास तथा राष्ट्रीय एकता के क्षेत्र में प्रशासन की अधिक महत्वपूर्ण भूमिका होती है। अतएव प्रशासन के विकास पर पूरी तरह ध्यान दिया जाना चाहिये। विकासशील देशों में प्रशासनिक विकास के अभाव में समाज व्यवस्थाओं का भी आगे बढ़ना संभव नहीं है। अतः तीसरी दुनिया के अधिकांश देश जिन्हें हम विकासशील देश भी कहते हैं, राष्ट्र-निर्माण तथा तीव्र गति से सामाजिक-आर्थिक विकास की प्रक्रिया में लगे हुए हैं। जैसा कि सर्वविदित है कि ये समस्त कार्य प्रशासन के द्वारा सम्पन्न किये जाते हैं, इसलिये विकासशील देशों की प्रशासनिक व्यवस्थाओं के मुख्य लक्षणों का विश्लेषण करते हुए उन सब बातों को भी ध्यान रखना आवश्यक है। विकासशील देशों की प्रशासनिक विशेषताओं को बिन्दुओं में कुछ इस प्रकार देखा जा सकता है -

1. **प्रशासन का उपनिवेश और पश्चिमी प्रतिमान-** विकासशील देशों के प्रशासन की एक विशेषता पश्चिमी देशों एवं उपनिवेश के प्रशासन का प्रतिरूप हैं। इन देशों का लोक प्रशासन स्वदेशी नहीं होता वरन् पाश्चात्य देशों की नकल मात्र होती हैं। एशिया, लेटिन अमरीका, अफ्रीका तथा मध्य पूर्व के देश ब्रिटेन, हालैण्ड, फ्रान्स, पुर्तगाल तथा स्पेन इत्यादि देशों के उपनिवेश रह चुके हैं अतः इन विकासशील देशों की अपनी कोई देशी शासन पद्धति नहीं है। ये देश साम्राज्यवादी देशों जैसा प्रशासन अपनाने लगे। किसी प्रशासनिक कार्यालय का संगठन, नागरिक सेवकों की स्थिति और समग्र प्रशासनिक रूप-रचना करते समय प्रायः उपनिवेशवादी शक्ति के व्यवहार को आदर्श माना जाता है। अर्थात् प्रशासन का स्वरूप देशी ना होकर अनुकरणात्मक है। परिवर्तन सिर्फ इतना है कि नौकरशाही अपने आप को समय और परिस्थिति के अनुसार बदलने के लिये और विकास की प्रक्रिया के अनुरूप नवीन चिन्तन और कार्यशैली अपनाने की दिशा में अग्रसर हो रही है। फिर भी यह सुधार सन्तोषप्रद नहीं कहा जा सकता है।
2. **कार्यकुशल मानव शक्ति का अभाव-** विकासशील देशों में विकास कार्यक्रमों और परियोजनाओं का प्रबन्ध करने वाले कार्यकुशल एवं निपुण कार्मिकों और प्रशासनिक स्टाफ की कमी होती है। इन देशों में कुशल जन शक्ति की कमी है ना कि कार्मिकों की। अर्थात् निम्न स्तर पर काम करने वाले कार्मिकों की तो कमी नहीं है, बल्कि कमी है प्रशिक्षित और निपुण प्रशासकों की। उदाहरणस्वरूप भारत जैसे विकासशील देश के सम्बन्ध में देखें तो यहाँ शिक्षित नवयुवक बेरोजगार तो बहुत मिल जायेंगे लेकिन प्रशिक्षित प्रबन्धकों की यहाँ कमी है। आजकल प्रबन्धकीय कौशल का विकास किया गया है, और वित्तीय प्रबन्ध, कर्मचारी प्रबन्ध, सामान्य-सूची(Inventory) प्रबन्ध आदि के लिये विशेषज्ञों की आवश्यकता है। परन्तु विकासशील देशों में कुशल जनशक्ति अब भी विद्यमान है, जिसके तीन कारण माने जाते हैं, पहला- मानव संसाधन की कमी, विकास नियोजन और शिक्षण व्यवस्था में कमी। दूसरा- भर्ती और प्रशिक्षण की अनुचित नीतियाँ और तीसरा- बुद्धिजीवी अपवाह(Brain Drain) संक्षेप में, विकासशील कार्यक्रम के

लिये इन देशों का प्रशासन आवश्यक मानव शक्ति से रहित है, पर इसमें प्रबन्ध क्षमता, विकासात्मक कौशल और तकनीकी दक्षता रखने वाले प्रशिक्षित प्रशासकों की कमी है।

3. **नौकरीशाही का उत्पादन कार्यों पर कम जोर-** विकासशील देशों की नौकरशाही उत्पादन कार्यों पर कम एवं अन्य विषयों पर अधिक जोर देती है। प्रो0 रिग्स ने इस तथ्य पर प्रकाश डाला है। इन देशों में नौकरशाही पर अतीत के मूल्य तथा व्यवहारों का प्रभाव रहता है। आज भी गैर-परम्परावादी सामाजिक रूप रचना में भी ये मूल्य यथावत् हैं। यहाँ के प्रशासक लक्ष्य के प्रति सफलता की अपेक्षा प्रशासनिक प्रक्रिया के स्तर को अधिक महत्व देते हैं, जबकि समय की माँग विपरीत दिशा में है। स्तर के साथ-साथ कार्य सम्पन्नता को भी महत्व दिया जाना चाहिये।
4. **केन्द्रीकृत अधिकारी-तन्त्र ढाँचा-** नवस्वतन्त्र विकासशील देशों में लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण तथा सत्ता के प्रत्यायोजन के क्रम में सैद्धान्तिक रूप से तो स्थिति सन्तोषप्रद दिखायी देती है। परन्तु सदियों तक गुलामी सह चुके इन राष्ट्रों के नागरिक एवं राजनेता सहजता से विकेन्द्रीकरण को स्वीकार नहीं कर पाते। अर्थात् विकासशील देशों में लोक-सेवाऐं सत्ता और नियंत्रण में केन्द्रीकृत होती हैं। यह अतिकेन्द्रीकरण शासकीय विभागों एवं मन्त्रालयों में देखने को मिलता हैं, जहाँ निर्णय लेने में लोक-सेवकों, विशेषकर मध्य और निम्न स्तर के लोगों को कम अवसर मिलता है। भारत सहित अधिकांश विकासशील देशों में सत्ता का प्रवाह ऊपर से नीचे की ओर उस मात्रा एवं गति से नहीं होता है, जो कि प्रशासनिक कुशलता के लिये आवश्यक है। प्रत्येक स्तर पर सत्ताधारी यही सोचता है कि, अधीनस्थ संस्था या व्यक्ति को अधिकार सौंपना आत्मघाती हो सकता है। इस भय के कारण एक ही स्थान या अधिकारी के पास कार्य का बोझ बढ़ता है जो अन्ततः भ्रष्टाचार, लाल-फीताशाही तथा अकर्मण्यता को जन्म देता हैं।
5. **आकार और वास्तविकता में अन्तर-** इन देशों में प्रशासन के आकार और वास्तविकता में अन्तर होता है। इस अन्तर को रिग्स ने ‘आकारवाद’ की संज्ञा दी है। इसमें वस्तुओं को ऐसे रूप में प्रस्तुत किया जाता है, जैसा उन्हें होना चाहिए किन्तु वास्तव में वे वैसी नहीं होती हैं। सरकारी प्रस्तावों और उनके कार्यान्वयन में पर्याप्त अन्तर होता है और बहुत से कार्य बिलकुल ही लागू नहीं होते हैं।
6. **प्रशासनिक सामंजस्य-** विकासशील देशों में प्रशासनिक पद्धति में विकसित देशों की तुलना में सामंजस्य का अभाव देखने को मिलता है। भारत जैसे संघीय राज्य में प्रशासनिक सामंजस्य प्रशासन के सुचारु संचालन के लिए बड़ा महत्वपूर्ण है। वास्तव में राज्य की नीतियों तथा कार्यक्रमों को लागू करना तब तक सम्भव नहीं है जब तक उनमें सहयोग और सामंजस्य न हो। सामंजस्य एक ऐसी प्रक्रिया है जिसका तात्पर्य है कि समस्त इकाइयों, विभागों एवं वित्तीय अभिकरणों, जो देश के एक कोने से दूसरे कोने तक फैले हुए हैं, उनके कार्यों में एकता और सहयोग होना चाहिए। प्रशासन की कुशलता के लिए सामंजस्य आवश्यक तथा प्रशासनिक क्षेत्र में यह एक महत्वपूर्ण तत्व है, परन्तु विकासशील देशों में इस पर गम्भीरतापूर्वक विचार नहीं हो रहा है।
7. **प्रशासन की नवीन चुनौतियाँ एवं दायित्व-** विकासशील देशों में सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा भौगोलिक दृष्टि से नित्य नयी चुनौतियाँ उत्पन्न होती रहती हैं। इन चुनौतियों का सामना करना प्रशासन का दायित्व माना जाता है। अधिकांश विकासशील देशों में देश की अखण्डता व एकता को बनाये रखना तो एक महत्वपूर्ण चुनौती है ही, परन्तु इसके साथ-साथ आर्थिक, सामाजिक और तकनीकी विकास की प्रक्रिया को आगे बढ़ाना भी इनके लिये किसी चुनौती से कम नहीं होता। विकासशील देश के समक्ष प्रस्तुत विभिन्न चुनौतियों को कुछ इस प्रकार देख सकते हैं-

विकासशील देशों के सम्मुख चुनौतियाँ		
सामाजिक	आर्थिक	प्राकृतिक आपदाऐं
• सामाजिक रूढ़िया। • आधुनिकीकरण करने वाले कार्यों और परम्परागत विशिष्ट या अभिजन वर्गों के बीच की दूरी। • हिंसात्मक झगड़े। • विभिन्न कबीलों की भाषाओं और जातीय समूहों में भेदभाव की भावना स्त्रियों तथा निम्न जाति के लोगों को ऊपर उठाना। • समाज का पुराना ढाँचा विघटित हो रहा है और नया ढाँचा इसका स्थान लेने का प्रयत्न कर रहा हैयह अन्तर्कालीन स्थिति एक अभूतपूर्व राज्य को जन्म देती है। • भाग्यवादिता, कर्मकाण्डता। • क्षेत्रवाद। • जनाधिक्य। • मानवाधिकारों का हनन। • अन्धविश्वास। • आतंकवाद। • साम्प्रदायकिता। • भाषावाद	• बढ़त पूँजीवाद। • विकास के चरणों को कम से कम समय में पूरा करने का दबाव। • आर्थिक अस्थिरता। • संसाधनों की कमी। • गरीबी। • बेरोजगारी। • अर्थव्यवस्था मूलतः कृषि पर आधारित। • कमजोर अर्थव्यवस्था। • व्यापार घाटे। • खाद्यान्न की कमी। • मुद्रास्फिति। • महंगाई।	• बाढ़। • सूखा। • महामारी। • तूफान। • भूकम्प। • आगजनी। • स्वास्थ्य का निम्न स्तर। • संक्रामक रोगों का व्यापक प्रसार। • कुपोषण।

अर्थात् उपरोक्त वर्णित गम्भीर एवं जटिल सामाजिक, आर्थिक एवं प्राकृतिक समस्याओं का सामना करना प्रशासन का उत्तरदायित्व है और इनका समाधान करके ही विकास के लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सकता है परन्तु, विकासशील देशों की प्रशासनिक तन्त्र व्यवस्था इन सबका सामना व समाधान करने के

लिये ना तो सक्षम होती हैं और ना ही तैयार, क्योंकि वो विरासत में मिली प्रशासनिक तन्त्र व्यवस्था पर काम करते हैं जो इस सब के लिये पर्याप्त नहीं है। इस दिशा में इन देशों को कुछ साहसिक और सामायिक कदम उठाने की आवश्यकता है।

8. **सेवीवर्ग का सत्तात्मक और गुणात्मक पक्ष-** स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद विकासशील देशों में राज्य के कार्यों में वृद्धि होने तथा नवीन विभागों, मन्त्रालयों आदि संगठनों की स्थापना के कारण लोक-सेवकों की संख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही है। भारत जैसे विकासशील देश में लोक-सेवकों की संख्या में मात्रात्मक दृष्टि से बहुत अधिक वृद्धि हुई है। हमारे यहाँ केन्द्रीय सरकार के कर्मचारियों की संख्या 1948 में 14,45,000 थी, से बढ़ कर पंचम वेतन आयोग के अनुसार 38.76 लाख हो गयी थी। मात्रात्मक वृद्धि के साथ गुणात्मक दृष्टि से लोक-सेवकों की सेवा के स्तर में गिरावट आयी है। आज प्रशासन बेईमानी और भ्रष्टाचार का प्रतीक बन गया है। इस प्रकार मात्रात्मक वृद्धि के अनुपात में गुणात्मक वृद्धि नहीं हुई है। यह हमारे प्रशासन का सबसे गम्भीर और शोचनीय विषय है।
9. **सामान्यज्ञों का वर्चस्व-** विकासशील देशों में औपनिवेशिक काल की विरासत आज भी सम्मानपूर्वक प्रवर्तित है। सामान्यज्ञ या प्रशासनिक सेवाओं के अधिकारी लोक प्रशासन के उच्च पदों पर आसीन रहते हैं तथा राजनीतिज्ञों (मंत्रियों) को परामर्श देने का कार्य करते हैं। राजनीतिज्ञ एवं सामान्यज्ञ अधिकारी मिलकर लोक-नीति, कानून तथा विकास कार्यक्रमों का निर्माण करते हैं जिनका क्रियान्वयन विशेषज्ञ सेवाओं के अधिकारियों को करना होता है। अधिक तकनीकी क्षमता एवं कौशल से युक्त विशेषज्ञ अधिकारी, सामान्यज्ञों के अधीन रहते हुए प्रायः कुंठा एवं निराशा के शिकार हो जाते हैं। यही कारण है कि भारत में सामान्यज्ञ-विशेषज्ञ विवाद वर्षों से जारी है। तकनीकी विकास एवं सामाजिक-परिवर्तन के वर्तमान दौर में जहाँ विकास प्रशासन की अवधारणा तेजी से जड़ें जमा रही है, विशेषज्ञों की उपेक्षा राष्ट्रहित में नहीं है।
10. **प्रशासन का राजनीतिकरण-** यह विकासशील देशों की एक विशिष्ट और रोचक विशेषता है और प्रशासन राजनीतिक शिकंजे से पीड़ित है। भारत के प्रशासन में बढ़ता हुआ राजनीतिक हस्तक्षेप एक चिन्ता का विषय है। हमारे मन्त्री, विधायक और सांसद सेवीवर्ग की भर्ती, पदोन्नति, स्थानान्तरण, अनुशासन आदि पर अनुचित प्रभाव डालते हैं। इसका प्रशासन की कार्य-प्रणाली पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। योग्य, कुशल प्रत्याशियों के स्थान पर कम योग्यता वाले लोग सरकारी पदों पर आ जाते हैं। अयोग्य या कम योग्य कार्यकर्ताओं के कारण प्रशासनिक कार्यकुशलता घट जाती है। पदोन्नति के विषयों में राजनीतिक हस्तक्षेप कर्मचारियों के मनोबल को गिरा देता है। वे अपने कार्य की ओर विशेष ध्यान देने की अपेक्षा राजनीतिक जोड़-तोड़ में लगे रहते हैं, क्योंकि उन्नति और अच्छे एवं महत्वपूर्ण पदों पर स्थानान्तरण का यही सरल रास्ता शेष रह जाता है। राजनीतिक स्वार्थ प्रशासनिक नियमों को बदल देते हैं। वे ऐसे अनेक पदों का आविष्कार करते हैं जिनकी आवश्यकता एवं उपयोगिता नगण्य है, किन्तु केवल अपने समर्थकों एवं स्वजनों के भरण-पोषण की व्यवस्था के लिए करदाताओं पर यह अनावश्यक भार डाला जाता है। फलतः संगठन में अनुशासन की गम्भीर समस्या उठ खड़ी होती है।
11. **नियन्त्रण की व्यवस्था-** विकासशील देशों में प्रशासन पर विविध तरीकों से नियन्त्रण स्थापित करके उत्तरदायी बनाये जाने की व्यवस्था है। यह नियन्त्रण तीन प्रकार का होता है: जनता का नियन्त्रण, विधायिका का नियन्त्रण और न्यायिक नियन्त्रण। इन देशों में लोक प्रशासन कानून पर आधारित होने से उसका कानूनी आधार है। प्रशासन अपने समस्त कार्यों को कानून की परिधि के आधार और उसके अन्तर्गत ही करता है।

12. **परम्परागत एवं रूढ़िवादी समाज का प्रभाव-** विभिन्न जाति, वंशों, नस्लों, वर्गों, धर्मों तथ सम्प्रदायों से युक्त विकासशील देशों का समाज परम्परागत एवं रूढ़िवादी समाज कहलाता है। इन समाजों में आज भी रूढ़ियों, आडम्बरों तथा परम्पराओं को सामाजिक कानूनों से अधिक महत्व प्रदान किया जाता है। विकास प्रशासन के रूप में कार्यरत यहाँ की प्रशासनिक व्यवस्था 'सामाजिक परिवर्तन' के नियोजित प्रयास सफलतापूर्वक नहीं कर पाती है। लोक प्रशासन द्वारा संचालित विकास एवं कल्याण कार्यक्रम प्रायः जन सहभागिता के अभाव में निष्फल सिद्ध होते हैं।
13. यद्यपि विकासशील समाजों में 'आधुनिकीकरण' की ओर रूझान पाया जाता है किन्तु यह तार्किकता, ज्ञान के प्रसार तथा मानव कल्याण पर आधारित न होकर केवल पश्चिमी फैशन के अनुसरण तथा भौतिक संस्कृति से लगाव का उदाहरण भर होता है। यद्यपि प्रशासन तंत्र को इन देशों में 'परिवर्तन का वाहक' माना जाता है, किन्तु उसे पूर्ण सफलता नहीं मिलती है।
14. **प्रशासनिक सामंजस्य-** विकासशील देशों में प्रशासनिक पद्धति में विकसित देशों की तुलना में सामंजस्य का अभाव देखने को मिलता है। भारत जैसे संघीय राज्य में प्रशासनिक सामंजस्य प्रशासन के सुचारू संचालन के लिए बड़ा महत्वपूर्ण है। वास्तव में राज्य की नीतियों तथा कार्यक्रमों को लागू करना तब तक सम्भव नहीं है जब तक उनमें सहयोग और सामंजस्य न हो। सामंजस्य एक ऐसी प्रक्रिया है जिसका तात्पर्य है कि समस्त इकाइयों, विभागों एवं वित्तीय अभिकरणों, जो देश के एक कोने से दूसरे कोने तक फैले हुए हैं, उनके कार्यों में एकता और सहयोग होना चाहिए। प्रशासन की कुशलता के लिए सामंजस्य आवश्यक तथा प्रशासनिक क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण तत्व है, परन्तु विकासशील देशों में इस पर गम्भीरतापूर्वक विचार नहीं हो रहा है।
15. **भ्रष्ट तथा अकुशल प्रशासन-** विदेशी शासकों के चंगुल से मुक्त हुए इन देशों की प्रशासनिक व्यवस्था भ्रष्टाचार तथा अकार्यकुशलता के कीचड़ में आकंठ(गले तक) डूबी हुई नजर आती है। राष्ट्रीय संसाधनों, राष्ट्रीय कानूनों तथा सत्ता का दुरुपयोग यहाँ आम बात है, क्योंकि इन देशों की सामाजिक व्यवस्था में राष्ट्रप्रेम का छद्म स्वरूप होता है। वस्तुतः न्यूनाधिक मात्रा में प्रत्येक नागरिक स्वयं को राष्ट्र से पृथक् समझता है। स्वतंत्रता का अर्थ स्वच्छंदता से लगाया जाता है। यही कारण है कि विकासशील देशों के लोक सेवक जिस मात्रा में अपने अधिकारों के लिए सचेत पाए जाते हैं, उसी मात्रा में कर्तव्यों के प्रति लापरवाह भी होते हैं। विकासशील देशों में भ्रष्टाचार समाप्ति के यदा-कदा प्रयास होते रहते हैं। सामाजिक स्तर पर सभी चाहते हैं कि यह व्यवस्था सुधरे।
16. **परिवर्तन से परहेज-** विकासशील देशों में सामाजिक तथा प्रशासनिक, दोनों ही स्तरों पर यथास्थिति को बनाए रखने के प्रयास होते रहते हैं। जब कभी राज्य एवं अन्य संस्थाओं द्वारा सुधार कार्यक्रम संचालित किए जाते हैं, तब उन कार्यक्रमों का प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से विरोध किया जाता है। यही कारण है कि विकासशील देशों की प्रशासनिक संरचनाऐं आज भी उपनिवेशवाद की विरासत को ढो रही हैं। परिवर्तन की कल्पनामात्र से समाज तथा लोकसेवक नकारात्मक रुख धारण कर लेते हैं। यद्यपि इन देशों में प्रशासनिक सुधार एवं नवाचार के प्रयास होते हैं किन्तु वे केवल कागजी अभ्यास सिद्ध होते हैं।
17. **जनसहयोग का अभाव-** विकासशील देशों का प्रशासन सामान्यतः विकास प्रशासन का पर्याय माना जाता है जो नियोजित सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन हेतु अनेक प्रकार के कल्याणकारी एवं विकासपरक कार्यक्रम संचालित करता है। स्पष्ट है विकास प्रशासन की सफलता जन सहभागिता पर निर्भर करती है किन्तु दुर्भाग्य का विषय है कि इन देशों में वे व्यक्ति प्रशासनिक कार्यों या विकास कार्यों में सहयोग नहीं करते हैं जिनके लिए विकास कार्य संचालित किए जाते हैं। वस्तुतः निरक्षरता, गरीबी, सामाजिक

पिछड़ापन, नौकरशाही का अहं, स्वार्थ भावनाएँ तथा कामचोरी की प्रवृत्ति विकास कार्यक्रमों में जन सहभागिता में कमी लाती है।

18. **नौकरशाही तथा उनके स्वार्थ-** विकासशील देशों की प्रशासनिक व्यवस्था की एक विशिष्ट विशेषता यह है कि नौकरशाही के कर्मचारी संस्था के उद्देश्यों की अपेक्षा अपने निजी स्वार्थों की पूर्ति को अधिक महत्व देते हैं। विकसित देशों में भी ऐसी इच्छाएँ होती हैं, परन्तु वे संस्था के लक्ष्यों को सर्वोपरि महत्व देते हैं। विकासशील देशों के अधिकारी-तन्त्र उत्पादनविमुख न होकर कुछ अन्य हैं। यहाँ पद के साथ जो महिमा, प्रतिष्ठा जुड़ी हुई है वह उपलब्धि पर नहीं बल्कि पद पर आरोपित गरिमा के कारण है और इसी से उनके व्यवहार को समझा जा सकता है। अयोग्य व्यक्तियों को योग्यता का विचार न करके पदोन्नति मिल जाती है। इससे कार्मिक प्रथाएँ, अनुशासन एवं पदोन्नतियाँ प्रभावित होती हैं। वहाँ भ्रष्टाचार व्यापक रूप से फैला है। अधिकारी न केवल अपने स्वार्थों की रक्षा करते हैं बल्कि अपनी बिरादरी के लोगों के स्वार्थों की भी रक्षा करते हैं। संक्षेप में विकासशील देशों में पक्षपात, भाई-भतीजावाद प्रशासनिक पद्धति का एक भाग है और यह बुराई समाज का एक अंग बन गयी है।
19. **लोक-प्रशासन का स्वरूप-** लोक प्रशासन का स्वरूप विकासोन्मुख दिखाई देता है। लेकिन भीतर ही भीतर इसमें काम करने वाली नौकरशाही की कार्यशैली कठोर, अहंकारग्रस्त तथा असंवेदनशील होती है।
20. **सेवीवर्ग, प्रशासन पर विकास कार्यों का भार-** विकासशील देशों में देश के विकास का सम्पूर्ण भार प्रशासन अर्थात् सेवी वर्ग पर ही होता है क्योंकि वे ही विकास की नीतियों को क्रियान्वित करते हैं।
21. **जन आकांक्षाओं के प्रति सजग दृष्टिकोण-** इन देशों में प्रशासन अथवा नौकरशाही जन आकांक्षाओं के प्रति एक सजग दृष्टिकोण रखती है।
22. **उत्प्रेरणा का अभाव-** विकासशील देशों में लोक प्रशासन या सेवीवर्ग में उत्प्रेरणा का अभाव पाया जाता है जिसके परिणामस्वरूप वे पूर्ण सक्रियता के साथ अपने उत्तरदायित्वों का निर्वहन नहीं कर पाते हैं।

5.6 विकासशील देशों के प्रशासन की समस्याऐं

इन सब विशेषताओं के अतिरिक्त भी विकासशील देशों के प्रशासन में कुछ समस्याऐं ऐसी होती हैं जो इन देशों के प्रशासन की विशेषताओं के तौर पर ही देखी जा सकती हैं जो कुछ इस प्रकार हैं-

1. सामान्यतः उपनिवेशवाद के शिकार रहे इन देशों का प्रशासन तंत्र विदेशी शासक राष्ट्र के प्रतिमानों पर आधारित माना जाता है, अतः उसमें स्थानीय मूल्यों, संस्कृति तथा अपनत्व का अभाव रहता है।
2. इन देशों में प्रशासनिक तंत्र में जड़ता व्याप्त रहती है। समयानुकूल सुधारों तथा परिवर्तनों का विरोध होता है, अतः प्रशासनिक पिछड़ापन व्याप्त रहता है।
3. राजनैतिक मंत्री तथा प्रशासनिक सचिव के मध्य अहं तथा अधिकार क्षेत्र का संघर्ष पाया जाता है।
4. प्रशासनिक विभागों, संगठनों तथा कार्मिकों की संख्या का निरन्तर विस्तार होता रहता है अतः अनुपयोगी प्रशासन तंत्र का बढ़ता आकार राष्ट्रीय व्यय में वृद्धि करती है।
5. लोककल्याणकारी राज्य के लक्ष्यों की सम्पूर्ति हेतु सरकार द्वारा नित्य नए विकास एवं कल्याण कार्यक्रम निरूपित किए जाते हैं, किन्तु इनका निष्पादन बहुत शोचनीय रहता है क्योंकि उत्तरदायित्व एवं प्रतिबद्धता की भावना का अभाव है।
6. विदेशी सहायता(अनुदान या ऋण) कार्यक्रम पर आधारित इन देशों की विकास परियोजनाएँ तथा प्रशासन बहुधा विदेशी अभिकरणों की शर्तों का पालन करने को विवश रहते हैं। अतः न चाहते हुए भी अप्रिय स्थितियों का सामना करना पड़ता है।

7. हड़ताल, अकर्मण्यता, भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद, जातिवाद, लापरवाही तथा रिश्वतखोरी इन देशों की प्रमुख समस्याऐं बनी हुई हैं।
8. लोक प्रशासन में होने वाला व्यय अनुत्पादक अधिक होता है। सामान्यतः आधा बजट तो कार्मिकों के वेतन-भत्तों पर ही व्यय हो जाता है।
9. नौकरशाही की निरंकुश कार्यप्रणाली इन देशों के समाज की आवश्यकताओं से मेल नहीं खाती है। अतः लॉर्ड हीवर्ट के शब्दों में नौकरशाही 'नवीन निरंकुशता' के रूप में इन देशों का शासन संचालित करती है।
10. समाज वैज्ञानिकों तथा मनोविश्लेषकों का निष्कर्ष है कि विकासशील राष्ट्रों का भाग्यवादी एवं पिछड़ा हुआ समाज अपने अधिकारों के प्रति सचेत नहीं होता है। अतः प्रशासनिक शोषण भी जारी रहता है।
11. प्रशासनिक कुशलता तथा राष्ट्रीय विकास के लिये बने कानून बहुत शिथिल तथा अपूर्ण हैं। अतः न्यायपालिका भी मुकदमों के बोझ से पीड़ित रहती है।
12. राजनैतिक अस्थिरता तथा जन असन्तोष के कारण प्रशासनिक कार्यकुशलता निम्न स्तरीय बनी रहती है।
13. प्रशासनिक नियंत्रण की व्यवस्था पूर्ण प्रभावी नहीं होती है। अतः संसाधनों का दुरुपयोग यथावत् जारी रहता है।
14. मानव संसाधन की तकनीकी तथा व्यावहारिक योग्यताएँ निम्न स्तरीय पाई जाती हैं।
15. विशेषज्ञों को नीति-निर्माण एवं निर्णयन में कम महत्व मिलने के कारण सामान्यज्ञ-विशेषज्ञ विवाद बना रहता है।
16. प्रशासनिक संगठनों तथा प्रक्रियाओं में अनावश्यक रूप से औपचारिकताओं की भरमार रहती है।
17. लोक प्रशासन की कार्यशैली में लैंगिक भेद, जातीय वैमनस्य तथा वर्गीय असमानता का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है।
18. लोक प्रशासन नित्य नए कानून, नीति, संगठन तथा समितियाँ बनाता है, किन्तु उनकी प्रभावशीलता शून्य रहती है।
19. लोक सेवाओं में संविधान, कानून तथ जनता के प्रति प्रतिबद्धता का अभाव पाया जाता है।
20. नौकरशाही या लोक सेवाओं का आकार निरन्तर बढ़ता रहता है, किन्तु कुशलता उसी अनुपात में वृद्धि नहीं करती है।
21. भर्ती, प्रशिक्षण, पदोन्नति, वेतन-भत्ते तथा पेन्शन इत्यादि कार्मिक प्रकरण सदैव विवादग्रस्त बने रहते हैं।
22. स्वयं लोक सेवक तथा आम जनता प्रशासनिक निर्णयों के विरूद्ध बड़ी संख्या में वाद दायर करती है।
23. सेमिनार, संगोष्ठी, कार्यशाला तथा प्रशिक्षण इत्यादि की महज औपचारिकताएँ पूरी की जाती हैं। अन्तिम निष्कर्ष अत्यन्त निराशाजनक होता है।
24. राष्ट्रीय संसाधनों का दुरुपयोग आम जनता से कहीं अधिक नौकरशाह करते हैं। प्रशासनिक विभागों का आधे से अधिक बजट केवल वेतन-भत्तों पर व्यय होता है।
25. प्रत्येक कार्यों में नियम, कानूनों तथा प्रक्रियाओं की अनावश्यक औपचारिकताएँ पूर्ण की जाती हैं, चाहे कार्य कितना ही छोटा या आपातकालीन परिस्थिति से सम्बद्ध क्यों न हो।
26. प्रशासनिक संगठनों के आन्तरिक कार्यकरण में जाति, वर्ग, भाषा, धर्म, लिंग तथा नस्ल इत्यादि पर आधारित भेदभाव एवं संघर्ष स्पष्ट दिखाई देता है।
27. अनुसंधान, नवाचार तथा प्रशासनिक सुधारों के नाम पर महज खानापूर्ति की जाती है। किसी भी स्तर पर पहल क्षमता तथा नेतृत्व का अभाव स्पष्ट दिखाई देता है।
28. अति महत्वाकांक्षी, कर्मठ, योग्य तथा प्रतिबद्ध कार्मिकों को प्रायः निराशा के दौर से गुजरना पड़ता है। अतः इन देशों की प्रतिभाएँ विकसित राष्ट्रों की ओर पलायन कर जाती हैं।

29. प्रशासनिक गोपनीयता के कारण पारदर्शिता, सूचना का अधिकार तथा लोक जवाबदेयता सुनिश्चित नहीं हो पाती है।
30. शिकायत निवारण व्यवस्था प्रायः निष्क्रिय तथा स्वार्थी तत्वों से युक्त होने के कारण उपहास एवं अविश्वास की शिकार रहती है।
31. प्रत्येक कार्य को उलझाने तथा दूसरों पर टालने के लिए 'समिति व्यवस्था' के दुरुपयोग की यहाँ सामान्य परम्परा होती है।
32. आन्तरिक और बाहरी आक्रमण से सुरक्षा और व्यवस्था की स्थापना॥
33. विभिन्नता में राष्ट्रीय एकता बनाये रखना।

5.7 विकासशील देशों के प्रशासन के समक्ष चुनौतियाँ

इन समस्याओं के अतिरिक्त प्रशासन के समक्ष कुछ ऐसी चुनौतियाँ विद्यमान होती हैं, जिसके लिये प्रशासन को निरन्तर प्रयासरत रहना होता है-

1. केन्द्रीय, राज्यीय और स्थानीय सरकारों के विभिन्न इकाइयों के बीच सामंजस्य बनाये रखना;
2. परम्परागत सामाजिक-आर्थिक निहित स्वार्थों को समाप्त करना;
3. मनोवैज्ञानिक तथा भौतिक सुरक्षा को प्रोत्साहन देना;
4. राष्ट्रीय बचत एवं अन्य वित्तीय संसाधनों को गतिशील बनाना;
5. विनियोग का बुद्धिपूर्ण आवंटन तथा सुविधाओं एवं सेवाओं का कुशल प्रबन्ध;
6. विकास प्रक्रिया में जन-सहभागिता को सक्रिय बनाना;
7. अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय में सम्मानजनक स्थिति सुनिश्चित करना;
8. आधुनिक तकनीक और ज्ञान को प्राप्त करना तथा विकास करने की प्रक्रिया को सक्रिय बनाना; आदि।

इस प्रकार पिछले अध्याय व इस अध्याय को पढ़ने के बाद आप विकसित व विकासशील दोनों प्रकार के देशों की विशेषताओं को समझ गये होंगे। इन दोनों अवधारणाओं को और स्पष्ट करने के लिये आइये इनके बीच अन्तर करके इनको और अधिक स्पष्टता से जाना जाये।

5.8 विकसित व विकासशील देशों के लोक प्रशासन और नौकरशाही में अन्तर

विकसित राष्ट्र	विकासशील राष्ट्र
इन राष्ट्रों का लोक प्रशासन स्थायित्व प्राप्त, प्रतिबद्ध एवं सुचारू है।	इन राष्ट्रों का लोक प्रशासन यहाँ के समाज और राजनीति की भाँति संक्रमण काल से गुजर रहा है तथा कम प्रतिबद्ध है।
यह विकसित राष्ट्रों के स्वयं के इतिहास, जनाकांक्षा तथा परिपक्वता का परिचायक है।	उपनिवेशवाद नहीं का शिकार है तथा जनाकांक्षाओं के अनुरूप है।
सांस्कृतिक भिन्नताएँ कम हैं अतः एकता प्रयासों में बांधा नहीं आती है।	विकासशील देशों में सांस्कृतिक भिन्नताऐं अधिक हैं तथा संघर्ष बना रहता है।
तकनीकी दृष्टि से सक्षम तथा औद्योगिक अर्थव्यवस्था है।	कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था है तथा तकनीकी क्षमताएँ अपूर्ण हैं।
मानवीय, प्राकृतिक तथा मशीनी संसाधनों के मध्य सामंजस्य होता है।	सभी प्रकार के संसाधन होते हुए भी उनका एकीकृत सदुपयोग नहीं हो पाता है।
नीति एवं क्रियान्वयन में पर्याप्त समन्वय होता है।	नीति, कार्यक्रम तथा योजना के निर्माण में जितने कुशल हैं उतने ही अकुशल इनके क्रियान्वयन में हैं।

प्रशासन स्वयं को समाज का एक भाग मानता है।	प्रशासन स्वयं को समाज से उच्च मानता है।
जनसहभागिता एवं सहयोग मिलता है।	विकास कार्यों में जनसहयोग नहीं मिलता है।
राष्ट्रीय मुद्दों पर विभिन्न राजनीतिक दलों में सहमति होती है।	दलगत राजनीतिक स्वार्थों के आगे राष्ट्र के मुद्दे गौण हो जाते हैं।
लोक प्रशासन की दैनिक गतिविधियों में राजनीतिक हस्तक्षेप नहीं होता है।	प्रत्येक स्तर पर राजनीतिक दबाव एवं स्वार्थ अभिभावी रहते हैं।
सत्ता का विकेन्द्रीकरण प्रायः आवश्यकतानुसार होता है।	सत्ता का विकेन्द्रीकरण सैद्धान्तिक रूप से दिखता है, वास्तव में होता नहीं है।
कानूनों का पालन यहाँ का राष्ट्रीय चरित्र है।	यहाँ कानूनों की भरमार होते हुए भी उनका पालन करवाना दुष्कर है।
मंत्रालयों तथा प्रशासनिक संस्थाओं इत्यादि का विस्तार नियंत्रित रहता है।	विकासशील देशों में अनियंत्रित ढंग से प्रशासनिक संस्थाएँ गठित होती रहती हैं।
नियोजन में सरकारी भूमि केवल निदेशात्मक (Indicative) रहती है।	सम्पूर्ण नियोजन एवं विकास कार्यों में सरकार की भूमिका पूर्णरूपेण रहती है।
प्रशासन पर नियन्त्रणकारी संस्थाएँ प्रभावी सिद्ध होती हैं।	नियंत्रणकारी संस्थाएँ अल्पप्रभावी या निष्प्रभावी सिद्ध होती हैं।
लोक प्रशासन में 'कार्य की संस्कृति' पायी जाती है।	'प्रशासनिक कार्य संस्कृति' का सर्वथा अभाव रहता है।
आवश्यकतानुसार सुधार एवं परिवर्तन किए जा सकते हैं।	सुधारों तथा परिवर्तनों के विरोध का माहौल बना रहता है।
यहाँ की लोक सेवाऐं मुख्यतः सम्बन्धित देश की ऐतिहासिक सांस्कृतिक विचारधारा से सम्बद्ध हैं।	यहाँ की लोक सेवाऐं अधिकांशतः 15वीं सदी के पश्चात के उपनिवेशवाद का परिणाम हैं।
परम्परा, जाति, नस्ल, बहुभाषा तथा रूढ़ियों का प्रभाव यहाँ की लोक सेवा पर न के बराबर है।	विकासशील देशों का समाज रूढ़िवादी, शिक्षित तथा कृषकों का है अतः लोक सेवा पर जाति, भाषा, परम्परा का प्रभाव है।
लोक सेवकों में उत्तरदायित्व की भावना है।	लोक सेवक प्रायः कामचोर तथा अहं भावना से पीड़ित होते हैं।
लोक सेवाओं का वर्गीकरण स्पष्ट तथा सरल होता है जिसमें वेतनमानों की संख्या कम होती है।	वर्गीकरण बहुत उलझा हुआ होता है। वेतनमानों की संख्या अधिक तथा कार्मिकों में वर्गभेद रहता है।
लोक सेवाओं में विशेषज्ञ सेवाओं को महत्व दिया जाता है।	सामान्यज्ञ अधिकारियों का प्रभुत्व रहता है।
लोक सेवाओं के कार्य निष्पादन मूल्यांकन व्यवस्था सुदृढ़ होती है।	कार्य निष्पादन मूल्यांकन या तो होता नहीं अथवा केवल औपचारिकता की पूर्ति भी होता है।
लोक सेवकों से अधिक वेतनभत्ते-, निजी क्षेत्र में होते हैं अतः लोक सेवाओं की ओर अधिक झुकाव नहीं होता है।	लोक सेवाओं में अधिक वेतन होने से निजी क्षेत्र भत्ते- को दोयम स्थान दिया जाता है।

पदोन्नति प्रायः योग्यता एवं वरिष्ठता पर आधारित है।	अधिकांशतः वरिष्ठता को ही पदोन्नति का आधार माना जाता है।
देश की कुल कार्यशील जनसंख्या का 07 से 10 प्रतिशत हिस्सा लोक सेवाओं में कार्यरत है।	कार्यशील जनसंख्या का अधिकांश भाग कृषि करता है। लोक सेवाओं में मात्र 02 से 04 प्रतिशत व्यक्ति (कार्यशील नागरिक) रोजगार प्राप्त है।
लोक सेवकों को अनेक प्रकार की अभिप्रेरणाएँ तथा वृत्तिका विकास के अवसर उपलब्ध हैं।	वेतन की अधिकता तथा पदोन्नति ही मुख्य अभिप्रेरणाएँ हैं।
अनुसंधान तथा नवाचारों को स्थान दिया जाता है।	कार्मिक प्रशासन में अनुसंधान, परिवर्तन तथा नवाचार को महत्व नहीं दिया जाता है।

अभ्यास प्रश्न-

1. विकासशील देशों के कई नामों में से एक नाम है?
2. तीसरी दुनिया नाम शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम कब किया गया था?
3. चौथी दुनिया शब्द का प्रयोग किन देशों के लिए किया जाता है?

5.9 सारांश

इस अध्याय को पढ़ने के बाद आप ये जान गये होंगे कि राजनीतिक दृष्टि से सम्पूर्ण मानव समाज या दुनिया के राष्ट्र दो ध्रुवों में विभक्त है- विकसित एवं विकासशील। विकासशील राष्ट्रों की राजनीतिक प्रवृत्तियाँ सामान्यतः तटस्थ या गुटनिरपेक्ष प्रकृति की रही हैं। औद्योगिक दृष्टि से विश्व के विकसित देशों की तुलना में इनका आर्थिक एवं राजनीतिक विकास निम्न स्तरीय होता है। इन देशों का समाज भी बहुत सी विविधताओं से युक्त होता है। अधिकांश विकासशील देश उपनिवेश रह चुके हैं एवं विकसित देशों की प्रशासनिक प्रणालियों की विशेषताओं का विकासशील देशों में अभाव है। लेकिन विकसित देशों की सभी विशेषताऐं विकासशील देशों में समाहित करना व्यर्थ एवं असम्भव है। परन्तु विकासशील देशों को ये प्रयास जरूर करना चाहिये कि विकसित देशों की कुछ आवश्यक एवं उपयोगी पद्धतियों को लकर अपनी परिस्थितियों की आवश्यकतानुसार उन्हें अपना ले। विकासशील देशों को अपनी स्वयं की प्रशासन की पद्धति को विकसति करने की आवश्यकता है जिसमें बेईमानी, लालफीताशाही, पक्षपात आदि बुराइयाँ ना हो एवं प्रशासन अपने निर्णय लेने में निष्पक्ष व सक्षम हो।

5.10 शब्दावली

प्रासंगिकता- उपयुक्तता या अनुकूलता, परिदृश्य- चारों ओर दिखने वाला दृश्य, साम्यवादी- साम्यवाद का पक्षधर या समर्थक, उपनिवेश- अन्य स्थान से आये हुए लोगों की बस्ती, प्राविधिकता- किसी कार्य की विशिष्ट प्रायोगिक तथा व्यवहारिक।

5.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. उद्-गामी, **2.** 1961, **3.** अति-निर्धन देशों के लिए

5.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ0 अवस्थी, तुलनात्मक लोक प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2004
2. डॉ0 सुरेन्द्र कटारिया, तुलनात्मक लोक प्रशासन, आर0बी0एस0ए0 पब्लिशर्स, जयपुर, 2013

5.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. प्रीता जोशी, विकास प्रशासन, आर0बी0एस0ए0, पब्लिशर्स, जयपुर, 2003

2. एम0पी0 शर्मा, बी0एल0 सदाना, हरप्रीत कौर, लोक प्रशासन सिद्धान्त एवं व्यवहार, किताब मण्डल, इलाहाबाद, 2015

5.14 निबंधात्मक प्रश्न

1. विकासशील देशों में लोक प्रशासन की प्रमुख समस्याऐं क्या हैं? वर्णन कीजिये।
2. विकासशील देशों से आपका क्या अभिप्राय है? विकासशील देशों की विशेषताओं का विस्तार से वर्णन कीजिए।

इकाई- 6 भारतीय प्रशासन की विशेषताऐं

इकाई की संरचना

6.0 प्रस्तावना
6.1 उद्देश्य
6.2 भारतीय प्रशासन की एतिहासिक पृष्ठभूमि
6.3 ब्रिटिश काल में प्रशासन का विकास
6.4 भारतीय प्रशासन के स्वरूप और ढ़ाँचे के लिए उत्तरदायी कारक
6.5 भारतीय प्रशासनकी विशेषताऐं
6.6 सारांश
6.5 शब्दावली
6.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
6.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
6.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
6.11 निबंधात्मक प्रश्न

6.0 प्रस्तावना

किसी भी देश की प्रशासनिक व्यवस्था पर उस देश की संवैधानिक व्यवस्था का प्रभाव निश्चित रूप से पड़ता है। भारतीय प्रशासन पर भी यह बात लागू होती है। गणतांत्रिक एवं प्रजातान्त्रिक शासन व्यवस्था, संसदीय एवं संघीय व्यवस्थाओं का मिश्रण, कल्याणकारी राज्य की स्थापना, व्यक्तिगत एवं सामाजिक न्याय के मध्य समन्वय, स्वतन्त्र एवं निष्पक्ष न्यायिक व्यवस्था, धर्म निरपेक्षता, योग्यता के आधार पर व्यवस्था आदि विशेषताएँ भारत की सांविधानिक व्यवस्था के स्वरूप को प्रकट करती है। इनमें उन सामान्य सिद्धान्तों का भी आभास मिलता है, जिनके अन्तर्गत भारतीय प्रशासन को अपना कार्य संचालन करना होता है। भारतीय संविधानिक व्यवस्था में देश के प्रशासन की संगठनात्मक संरचना ने उसके उद्देश्यों कार्यों वातावरण आदि को व्यापक रूप से निर्धारित एवं प्रभावित किया है। संविधान के अन्तर्गत लोक प्रशासन के तीनों स्तरों पर देश के सामाजिक एवं आर्थिक विकास का भार डाला गया है। ये तीनों स्तर केन्द्र, राज्य एवं स्थानीय हैं। संविधान द्वारा भारत में लोक कल्याणकारी राज्य की स्थापना की गई है। इसलिए भारत के सम्पूर्ण प्रशासनिक यन्त्र का सर्वोपरि लक्ष्य लोककल्याण है।

6.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- भारतीय प्रशासन की एतिहासिक पृष्ठभूमि को जानेंगे।
- ब्रिटिश काल में भारतीय प्रशासन के विकास से अवगत हो पाओगे।
- भारतीय प्रशासन की विशेषताओं को जान पायेंगे।

6.2 भारतीय प्रशासन की एतिहासिक पृष्ठभूमि

लोक प्रशासन उतना ही प्राचीन है जितनी प्राचीन हमारी सभ्यता है। यद्यपि स्वतन्त्र शास्त्र के रूप में इसका विकास 127 वर्षों का है, लेकिन प्राचीन काल से ही राजतन्त्रीय व्यवस्थाओं में सरकारी कार्यो के संचालन में इसका प्रयोग होता रहा है। प्राचीन भारत की शासन-पद्धति का इतिहास वैदिक काल से प्रारम्भ होकर सामान्यजतः मुगल शासन की स्थापना तक फैला हुआ है। भारतीय लोक-प्रशासन के विकास की लम्बी यात्रा में जहाँ अनेक प्रशासनिक संगठन बने और बिगड़े वहीं इसकी दो विशेषताऐं निरन्तर कायम रहीं - प्रथम, प्रशासनिक संगठन की संरचना में

प्रारम्भिक इकाई के रूप में ग्राम का महत्व; और द्वितीय, प्रशासनिक संगठन में केन्द्रीकरण तथा विकेन्द्रीकरण की प्रवृत्तियाँ। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि भारत का वर्तमान प्रशासन अपने अतीत की प्रशासनिक व्यवस्थाओं का विकसित प्रतिरूप है। अतः परम्परागत लोक-प्रशासन की नींव पर आज के प्रशासन का महल खड़ा हुआ है। बहुत पहले से एवं निरन्तर रूप से यह सिलसिला चलता आ रहा है। प्रशासनिक प्रक्रिया के इस सिलसिले को संस्थागत रूप अंग्रेजों ने दिया। भारतीय प्रशासन की विशेषताओं को जानने से पहले आइये इसके विकास के विभिन्न चरणों अर्थात् विभिन्न कालों का विस्तार से अध्ययन कर लें जिससे इसकी विशेषताओं को समझने में सहायता मिले।

प्रशासनिक संस्थाऐं प्राचीन भारत से किसी ना किसी रूप में विद्यमान रहीं। इसका प्रमाण इस बात से मिलता है कि ईसा से लगभग 5,000 वर्ष पूर्व की सिन्धु घाटी सभ्यता अत्यन्त विकसित थी एवं वहाँ प्रशासन का रूप अवश्य ही सुविकसित रहा होगा। मोहनजोदड़ो एवं हड़प्पा के अवशेषों से भी ज्ञात होता है कि उस समय अनेक स्वतन्त्र समुदायों की अपेक्षा एक केन्द्रीयकृत राज्य था। 3000 ई0 पूर्व में यहाँ नगरपालिकाएँ सुस्थापित हो चुकी थीं। इस तरह यह कहा जा सकता है कि भारत में लोक प्रशासन का विकास अनेक शताब्दियों के विकास का परिणाम है, चाहे इसका सुव्यवस्थित एवं निश्चित स्वरूप एवं विवरण उपलब्ध न हो। भारत में केन्द्रीय प्रशासन के विकास को ऐतिहासिक कालक्रम की दृष्टि से निम्नलिखित कारणों में विभक्त किया जा सकता है- प्राचीन कालीन प्रशासन (Ancient Period Administration), कौटिल्य युगीन प्रशासन (Kautilya Period Administration), गुप्तकालीन प्रशासन (Guptas Period Administration), राजपूत कालीन प्रशासन (Rajputs Period Administration), सल्तनत कालीन प्रशासन (Sulthants Period Administration), मुगल कालीन प्रशासन(Mughal Period Administration), ब्रिटिश कालीन प्रशासन(British PeriodAdministration)।

ऐतिहासिक कालक्रम की दृष्टि से भारतीय प्रशासन का पहला काल प्राचीन कालीन प्रशासन कहा जा सकता है। खुदाई में प्राप्त अवशेषों से विद्वानों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि मोहनजोदड़ों एवं हड़प्पा के साम्राज्य व्यवस्थित थे। इस समय शासन की बागडोर पुरोहितों के हाथों में थी वे सुमेर एवं अकाल के पुरोहित राजाओं के समान थे। राज्य का स्वरूप केन्द्रीयकृत था एवं नगरपालिका शासन से लोग परिचित थे। इस काल के शासन व्यवस्था को हण्टर(Hunter) ने लोकतन्त्रात्मक बताया।

ऋग्वेदिक काल में भारतीय प्रशासन का स्वरूप राजतन्त्रात्मक था। राज्य एवं राजा को जन-कल्याण-साधक माना जाता था। प्रजा धर्म के विरूद्ध कार्य करने वाले राजा एवं पदाधिकारी पद्च्युत किए जा सकते थे। विभिन्न मन्त्रियों के परामर्श से राजा शासन चलाता था। मन्त्रियों में सबसे मुख्य स्थान पुरोहित का था। राजदरबार में गाँव वासियों का प्रतिनिधित्व होता था। ग्रामीण नामक पदाधिकारी गाँव का प्रतिनिधित्व करते थे। सभा एवं समिति नामक जनसंस्थाएँ भी विद्यमान थीं। समिति सम्पूर्ण प्रजा की संस्था थी जो राजा का निर्वाचन करती थी। सभा समिति से छोटी संस्था थी जिसकी सहायता से राजा दैनिक राज्य कार्य करता था। इस संस्था के माध्यम से ही वह अभियोगों का नियन्त्रण करता था। इन दोनों संस्थाओं का राजा के ऊपर नियन्त्रण था जो आगे चल कर शिथिल हो गया।

उत्तर-वैदिक काल में राजा का पद वंशानुगत हो गया। इस काल में राजा निरंकुश नहीं था। हालाँकि वह स्वच्छन्द होता था। इस काल में राजा का निर्वाचन होता था उसके उत्तराधिकारी पर राष्ट्र के प्रमुख व्यक्तियों का प्रभाव एवं नियन्त्रण रहता था। राजा शासन के संचालन प्रतिष्ठित मन्त्रियों की परिषद् की सहायता लेता था।

महाकाव्य काल में दो तरह की शासन व्यवस्थाएँ पाई जाती थीं। इस समय अधिकांश राज्य राजतन्त्रात्मक थे। लेकिन कुछ गणतन्त्रात्मक राज्य भी पाए जाते थे। राजा पर सामन्तों, सैनिकों, नेताओं, उच्च कुलीनों एवं नेताओं आदि का नियन्त्रण एवं प्रभाव होता था। फलतः राजा निरंकुश होने का प्रयास नहीं करता था। राजा की सहायता एवं पथ-प्रदर्शन के हेतु केन्द्रीय प्रशासन में दो संस्थाएँ थीं।

ऐतिहासिक कालक्रम की दृष्टि से भारतीय प्रशासन का दूसरा काल कौटिल्य युगीन प्रशासन कहा जा सकता है। मौर्य काल में राजा ही साम्राज्य का प्रमुख होता था। राजा के हाथों में कार्यकारी, न्यायिक एवं विधायी शक्तियाँ निहित होती थीं। इस काल के प्रमुख राजाओं में चन्द्रगुप्त मौर्य का नाम लिया जा सकता है।

ऐतिहासिक कालक्रम की दृष्टिसे भारतीय प्रशासन का तीसरा स्वरूप काल गुप्तकालीन प्रशासन कहा जाता था। इस समय का साम्राज्य एवं प्रशासन मौर्यकाल के समान केन्द्रीयकृत एवं संगठित नहीं था। गुप्त साम्राज्य का स्वरूप बहुत हद तक मण्डल व्यवस्था पर आधारित था। इस समय बहुत से सामान्त एवं राजा गुप्त शासकों की अधीनता में साम्राज्य के विभिन्न भागों में शासन करते थे। गुप्तकाल में एकतन्त्रीय शासन प्रणाली प्रचलित थी। राजा राज्य का सर्वोच्च होता था एवं राज्य की अन्तिम सत्ता उसके हाथ में होती थी। मौर्यकाल की भाँति इस काल में भी मन्त्रिपरिषद् की प्रथा थी, लेकिन उसकी रचना एवं कार्य के बारे में कोई उल्लेख नहीं मिलता है।

एतिहासिक कालक्रम की दृष्टि से भारतीय प्रशासन का चौथा काल राजपूतकालीन प्रशासन कहा जा सकता है। इस काल में गणतन्त्रों के समाप्त होने से राजतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था का बोल-बाला था। राजा को मन्त्रिमण्डल द्वारा परामर्श दिया जाता था। मन्त्री अपने-अपने विभागों का प्रबन्ध करते थे। मन्त्री का पद वंशानुगत था। केन्द्रीय शासन सुगठित नहीं था क्योंकि प्रान्तीय शासन पर उन सामन्तों का ही अधिकार होता था जो प्रायः स्वतन्त्र रूप से शासन करते थे। जागीर प्रथा का प्रचलन हो जाने से सामन्तों के अधिकारों में बहुत वृद्धि हो गई।

एतिहासिक कालक्रम की दृष्टि से भारतीय प्रशासन का पाँचवा काल सल्तनत कालीन प्रशासन कहा जा सकता है। सल्तनत काल (1206-1526 ई0) का प्रशासन मूलतः सैनिक प्रशासन था। दिल्ली के सुल्तान निरंकुश स्वेच्छाचारी शासक थे, लेकिन फिर भी शासन का सम्पूर्ण कार्य वे अकेले नहीं कर सकते थे। इसलिए उन्हें अमीरों एवं सरदारों के सक्रिय समर्थन पर निर्भर रहना पड़ता था। दिल्ली के सुल्तानों को अपने शासन के प्रारम्भ से ही अधिकारियों की संगठित एवं व्यवस्थित श्रृंखलायुक्त एक शासनतन्त्र की व्यवस्था करनी पड़ी। ये अधिकारी किसी प्रकार से भी सुल्तानों के अधिकारों को प्रतिबन्धित नहीं करते थे, बल्कि सुल्तानों की आज्ञानुसार अपने-अपने कर्तव्यों का निर्वाह करते थे। सुल्तान अपने इस अनुभवों एवं योग्य अधिकारियों के परामर्श से कुछ-न-कुछ मार्ग-दर्शन प्राप्त करते थे। नीतियों का निर्धारण करते समय भी उनके परामर्श को ध्यान में रखा जाता था। सुल्तानों के मन्त्रियों की संख्या निश्चित नहीं थी। एक मन्त्री के अधीन प्रायः एक से अधिक विभाग होते थे। सबसे बड़े मन्त्री को वजीर कहा जाता था। उसका पद प्रधानमन्त्री के समान होता था एवं उसकी स्थिति राजा एवं प्रजा के बीच सम्पर्क कड़ी सी थी। वह सरकार की सम्पूर्ण मशीनरी का अध्यक्ष होता था।

ऐतिहासिक कालक्रम की दृष्टि से भारतीय प्रशासन का छठा काल मुगलकालीन प्रशासन कहा जा सकता है। भारतीय प्रशासन में नए क्षितिज का आगमन इस शासन की स्थापना के साथ हुआ। मुगल शासकों ने अपने साम्राज्यों की सुदृढ़ता के लिए प्रशासन को सुव्यवस्थित बनाते हुए उसे केन्द्रीकृत स्वरूप प्रदान किया। इस काल में शासन व्यवस्था का प्रधान या सर्वेसर्वा सम्राट ही होता था। वह सम्पूर्ण शासन एवं राज्य का एक धम्म स्वामी होता था। शासन पूर्णतः केन्द्रीभूत था, लेकिन प्रशासनिक सुविधा की दृष्टि से प्रान्तीय एवं स्थानीय शासन व्यवस्था भी प्रचलित थी। केन्द्रीय शासन में सम्राट एवं मन्त्रीगणों का समावेश होता था। अक्सर ही मुगल सम्राट निरंकुश होते थे। फलतः मन्त्रियों का महत्व कुछ भी नहीं होता था। प्रजा के हितों की चिन्ता करना, न करना राजा की इच्छा पर निर्भर करता था। मुगल सम्राटों में अकबर ने प्रजा के हितों को महत्व प्रदान की लेकिन औरंगजेब ने प्रजा के हितों की उपेक्षा की। मुगल सम्राट सर्वोच्च सेनापति एवं न्यायाधीश होते थे। उनके शब्दों को कानून माना जाता था। उन पर केवल विद्रोह की आशंका ही अंकुश लगाती थी। सम्राटों की शक्ति का आधार सेना होती थी। अतः वे अपने प्रभावशाली सरदारों एवं सेनापतियों के विचारों का ही आदर करते थे। वे अनमत से भी डरते थे। प्रशासन में सहायता के लिए मुगल सम्राट एक मन्त्री भी नियुक्त करते थे। मन्त्री केवल सलाहकार होते थे। उनकी सलाह

मानना या न मानना सम्राटों की अपनी इच्छा पर निर्भर करता था। मन्त्री का यह कर्तव्य होता था कि सम्राट के आदेशों का पालन हो एवं उनके अनुसार शासन चलाया जाए। अर्थात् उनकी इच्छा की कोई महत्वनहीं थी।

भारतीय प्रशासन का ऐतिहासिक कालक्रम की दृष्टि से सातवाँ काल ब्रिटिश कालीन प्रशासन(British Period Administration) कहा जा सकता है। इस काल में भारतीय प्रशासन के विकास को निम्नलिखित चरणों में विभक्त कर देखा जा सकता है- 1600 से 1765 ई0 तक(अंग्रेजों का भारत आगमन), 1765 से 1858 ई0 तक (ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना), 1858 से 1919 ई0 तक (कम्पनी शासन का अन्त), 1919 से 1947 ई0 तक (स्वशासन के बढ़ते चरण)।

1. **1600 से 1765 तक(अंग्रेजों का भारत आगमन)-** ब्रिटिश शासन का इतिहास काल भारत में सन् 1600 ई0 से प्रारम्भ होता है। उस समय भारत की अपार सम्पदा की चर्चा भारत में हाती थी। धन प्राप्त करने एवं समुद्री यात्राओं की उमंग ने अंग्रेजों को भारत की ओर आकृष्ट किया। सन्1600 में एक राजलेख (चार्टर) द्वारा महारानी एलिजाबेथ ने एक कम्पनी की स्थापना की जो ईस्ट इण्डिया कम्पनी कहलाई। इस राजलेख द्वारा कम्पनी को विदेशों में व्यापार करने की स्वीकृति प्रदान की गई। भारत में मुगल बादशाह जहाँगीर से अनुमति प्राप्त करके ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने सूरत में अपना प्रधान व्यापारिक केन्द्र स्थापित किया। सन् 1725 ई0 के राजलेख द्वारा कलकत्ता-बम्बई-मद्रास प्रेसीडेन्सियों के राज्यपाल एवं उसकी परिषद् को कानून बनाने का अधिकार प्रदान किया गया। साथ ही इस राजलेख ने भारत स्थित कम्पनी की सरकार सपरिषद् गर्वनर जनरल को नियम, उपनियम एवं अध्यादेश पारित करने का अधिकार प्रदान किया। 1757 ई0 में अंग्रेज मुगल देशज के अन्तिम नवाब सिराजुद्दौला को प्लासी के युद्ध में हराकर बंगाल प्रान्त के वास्तविक शासन बन गये। प्लासी की जीत से ही वास्तविकता में भारत में अंग्रेजी साम्राज्य की नींव पड़ी। सन् 1765 ई0 में मुगल बादशाह आजम ने कम्पनी को बंगाल, बिहार वं उड़ीसा का दीवान बना दिया। इसके परिणामस्वरूप इन क्षेत्रों की माल गुजारी वसूलने से लेकर दीवानी न्याय प्रशासन तक का उत्तरदायित्व कम्पनी पर आ गया।
2. **1765 से 1858 तक (ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना)-** 1765 ई0 से 1858 ई0 तक ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना हुई। बंगाल, बिहार एवं उड़ीसा का वास्तविक प्रशासन कम्पनी के हाथों में आ जाने से कम्पनी के अधिकारी स्वच्छन्द हो गए। कम्पनी के कर्मचारियों को बहुत कम वेतन मिलता था जिसके कारण वे अनैतिक कारणों से धन एकत्रित करने लगते। ब्रिटिश सरकार एवं राजनीतिज्ञों को कम्पनी के कुप्रशासन का आभास हो गया। ब्रिटिश संसद में सन्1773 ई0 में रेग्यूलेटिंग एक्ट पारित करके कम्पनी ने प्रशासन में अनेक परिवर्तन किए। इस एक्ट के द्वारा समस्त ब्रिटिश भारत के लिये एक अखिल भारतीय सरकार की स्थापना की गई। इस व्यवस्था में भारत सरकार के प्रधान के रूप में गर्वनर जनरल एवं चार सदस्यीय परिषद् की स्थापना की गई। कम्पनी के प्रबन्ध में सुधार न होने पर ब्रिटिश संसद ने कम्पनी पर प्रभावी नियन्त्रण के लिए सन् 1784 में पिट्स इडिया एक्ट पारित किया। इस एक्ट द्वारा कम्पनी के व्यापारिक एवं राजनीतिक कार्यों को पृथक् कर दिया गया। सन् 1793 में चार्टर एक्ट द्वारा कम्पनी के व्यापार को 20 वर्ष के अवधि के लिए बढ़ा दिया गया। सन् 1813 ई0 में चार्टर एक्ट द्वारा कम्पनी के सर्वाधिकार को समाप्त करके समस्त ब्रिटिश लोगों के लिये भारत में व्यापार के द्वार खोल दिये गये। सन् 1833 के चार्टर द्वारा बंगाल के गर्वनर जनरल को सम्पूर्ण भारत का गर्वनर जनरल बना दिया गया। सन् 1853 में चार्टर का निर्माण करके इसके तहत भारत के लिये कानून बनना था। भारतीय विधान परिषद् में क्षेत्रीय प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त को अपनाया गया। इस परिषद् को कानून बनाने का अधिकार दिया गया। लेकिन इसमें अन्तिम स्वीकृति गर्वनर की थी।

3. **1858 से 1919 तक (कम्पनी शासन का अन्त)-** सन् 1958 ई0से 1919 ई0के दौरान कम्पनी शासन का अन्त हुआ। सन् 1857 का प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम आन्दोलन एवं कम्पनी की अप्रभावी एवं अकुशल कार्य पद्धति के कारण सन् 1858 में एक्ट को 'दी बेटर गर्वनमेन्ट ऑफ इण्डिया' नाम से पारित करके भारत में शासन को कम्पनी से हस्तान्तरित करके ब्रिटिश सम्राट को सौंप दिया गया। गर्वनर जनरल को अब वायसराय के नाम से जाना जाने लगा। भारतीयों की देख-रेख के लिए राज्य सचिव की नियुक्ति की गई जो ब्रिटिश मंत्रिमण्डल का सदस्य होता था। राज्य सचिव के कार्यों में सहायता करके एवं उसके नियन्त्रण रखने के लिए 15 सदस्यीय 'भारत परिषद्' की स्थापना की गई। इस परिषद् में भारतीयों को प्रतिनिधित्व नहीं दिया गया। यह राज्य सचिव ब्रिटिश संसद के प्रति उत्तरदायी था। सन् 1861 में इस एक्ट की कमियों को दूर करने के लिए भारत परिषद् अधिनियम पारित किया गया। इस अधिनियम के द्वारा अल्प संख्या में लोक प्रतिनिधित्व का श्रीगणेश हुआ। सन् 1885 ई0में सर ए0ओ0 ह्यूम द्वारा 'अखिल भारतीय कांग्रेस' का गठन किया गया। इसका उद्देश्य भारतीयों को प्रशासन एवं विधि निर्माण में अधिक प्रतिनिधित्व दिया जाना था। सन् 1892 में स्थिति में सुधार के लिए भारतीय अधिनियम पारित किया गया। इस अधिनियम द्वारा भारतीय विधान परिषद् में शासकीय सदस्यों का बहुमत रखा गया लेकिन गैर-सरकारी सदस्य बंगाल चैम्बर ऑफ कॉमर्स एवं प्रान्तीय परिषद्द्वारा नाम निर्देशित होने लगा। नवम्बर, 1906 में लार्ड मिन्टो को भारत का वायसराय बनाया गया। जॉन मार्ले को भारत का राज्य सचिव नियुक्त किया गया। मार्ले उदारवादी विचारों के थे एवं भारतीय प्रशासन में सुधारों के समर्थक थे। मिन्टों भी मार्ले के विचारों से सहमत थे। इनके द्वारा किए गए सुधारों को मार्ले-मिन्टो सुधार के नाम से जाना जाता है। मार्ले-मिन्टो सुधार भारतीय परिषद् अधिनियम, 1909 में लागू किये गये। केन्द्र की विधान परिषद् में निर्वाचन का समावेश हुआ, लेकिन शासकीय बहुमत बरकरार रहा। प्रान्तीय विधान परिषद् के आकार में वृद्धि की गई एवं उसमें कुछ गैर-सरकारी सदस्यों को शामिल किया गया जिससे शासकीय बहुमत समाप्त हो गया। इस अधिनियम द्वारा विधान परिषद् के विचार-विमर्श सम्बन्धी कार्यों में वृद्धि की गई। प्रथम बार मुस्लिम समुदाय के लिये पृथक् प्रतिनिधित्व का उपबन्ध किया गया। इसी से भारत में पृथक्तावाद का बीजारोपण हुआ। हालाँकि मार्ले-मिन्टो सुधार उपयोगी था, लेकिन वह भारतीयों की आकांक्षाओं को पूर्ण न कर सका।

4. **1919 से 1947 तक (स्वशासन के बढ़ते चरण)-** सन् 1919 से ई0 तक के काल को स्वशासन के बढ़ते चरण का काल कहा जा सकता है। सन् 1917 ई0में भारत के नए सचिव मोंटेग्यू ने भारत में अधिक सुधारों का समर्थन किया। इसके लिए मोंटेग्यू ने ब्रिटिश सरकार के प्रतिनिधि लॉर्ड चेम्सफोर्ड के साथ भारत का भ्रमण किया एवं भारत की प्रशासनिक एवं राजनीतिक समस्याओं का अध्ययन किया। सन् 1918 ई0 में एक प्रतिवेदन प्रस्तुत किया गया जो मॉटफोर्ड योजना के नाम से जानी जाती है। इसमें भावी सुधारों की योजना थी। इस प्रतिवेदन पर आधारित 'गर्वमेन्ट ऑफ एक्ट, 1919' पारित किया गया जो भारत सरकार अधिनियम, 1919 के नाम से जाना जाता है। इस अधिनियम की कुछ विशेषताऐं थीं, जो निम्नलिखित हैं-

- प्रान्तों में दोहरे शासन को स्थापित करके एक आंशिक उत्तरदायी सरकार की स्थापना की गई। प्रशासन के विषयों को दो भागों में बाँटा गया- केन्द्रीय विषय एवं प्रान्तीय विषय।
- केन्द्रीय विधानमण्डल को पहली बार द्वि-सदनीय बनाया गया। उच्च सदन को राज्य परिषद् एवं निम्न सदन को विधान सभा का नाम दिया गया।
- केन्द्रीय विधानमण्डल की अपेक्षा गर्वनर जनरल का वर्चस्व बनाए रखा गया।

- केन्द्रीय सरकार ब्रिटिश संसद के प्रति उत्तरदायी थी न कि केन्द्रीय विधान परिषद् के प्रति। लेकिन कुछ सीमा तक प्रान्तीय सरकारों को प्रान्तीय विधान मण्डलों के प्रति उत्तरदायी बनाया गया। गर्वनर जनरल की परिषद् की सदस्य सीमा समाप्त कर दी गई एवं भारतीय सदस्यों की संख्या तीन कर दी गई। यह कार्यपालिका शक्तियाँ गर्वनर जनरल में निहित थी।

सन् 1919 ई0का अधिनियम भारतीयों की आकांक्षाओं पर खरा नहीं उतरा जिससे भारतवासियों ने क्रुद्ध होकर गाँधी जी के नेतृत्व में असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ किया। फलतः साईमन कमीशन का गठन हुआ जिसमें एक भी भारतीय न था। सन् 1930 में इस आयोग ने अपना प्रतिवेदन दिया। भारत शासन अधिनियम, 1935 ई0में पारित किया गया। इस अधिनियम की विशेषताऐं कुछ इस प्रकार थी-

- संघात्मक सरकार की स्थापना करना।
- केन्द्र एवं प्रान्तों के बीच शक्तियों का विभाजन तीन सूचियों को बनाकर किया गया जो इस प्रकार हैं- केन्द्रीय सूची, प्रान्तीय सूची, समवर्ती सूची।
- प्रान्तों में द्वैध शासन को हटाकर केन्द्र में लागू किया गया।
- प्रान्तों में स्वायत्त शासन स्थापित किया गया, आदि।

1935 ई0 के अधिनियम की सभी दलों ने आलोचना की, लेकिन सन् 1937 के चुनावों में सभी दलों ने भाग लिया। 1938 में द्वितीय विश्व युद्ध प्रारम्भ हुआ। भारतीयों को खुश करने एवं उनका सहयोग लेने के लिए भारत में क्रिटस मिशन भेजा गया। सन् 1942 ई0 में कांग्रेस ने 'भारत छोड़ो' आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया। इस स्थिति से निपटने के लिये 1946 में ब्रिटिश सरकार ने 1946 में संविधान निर्माण के लिए भारतीय नेताओं से बातचीत करने हेतु कैपिनेट मिशन भेजा।

कैबिनेट मिशन की कार्य योजना सभी भारतीयों को स्वीकार्य थी। इस मिशन के प्रस्ताव पर जुलाई, 1946 को संविधान सभा का गठन किया गया। 2 सितम्बर, 1946 को एक अन्तरिम सरकार भी गठित की गई। 1947 में भारतीय स्वतन्त्रता अधिनियम पारित किया गया। 15 अगस्त, 1947 को इस अधिनियम के प्रभावी होने से भारत एक स्वतन्त्र राष्ट्र बना एवं 26 जनवरी, 1950 को भारत में नया एवं स्वतन्त्र संविधान लागू हुआ जिसमें भारत को लोकतान्त्रिक गणराज्य घोषित किया गया।

6.3 ब्रिटिश काल में प्रशासन का विकास

उपरोक्त वर्णन से आपको ज्ञात हो गया होगा कि भारतीय प्रशासन का विकास अचानक नहीं हुआ, बल्कि हर काल का इसमें योगदान रहा। परन्तु आधुनिक भारतीय प्रशासन के विकास में ब्रिटिश काल का विशेष महत्व है। भारत में ब्रिटिश प्रशासन का बीजरूप में प्रारम्भ 1600 ई0 में ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना के साथ हुआ। तत्पश्चात 1853 से भारत में प्रत्यक्ष ब्रिटिश शासन की शुरूआत हो गयी। सन् 1947 तक भारत का शासन ब्रिटिश क्राउन के द्वारा चलाया गया। भारतीय प्रशासन की विशेषताओं को जानने से पहले ये जानना आवश्यक हो जाता है कि ब्रिटिश काल जो कि करीब 200 वर्षो का रहा, उसमें लोक प्रशासन का विकास किस प्रकार हुआ। भारत में लोक प्रशासन के विकास को निम्नलिखित शीर्षकों से विभक्त करके बता सकते हैं-

1. **केन्द्रीय कार्यकारिणी परिषद् का विकास-** केन्द्रीय कार्यकारिणी परिषद् की स्थापना 1773 के रेग्यूलेंटिग एक्ट द्वारा की गयी थी। ऐक्ट के अनुसार बंगाल के गवर्नर को कम्पनी के भारतीय प्रदेशों का गवर्नर जनरल बनाया गया और उसकी सहायता के लिए 04 सदस्यों की एक परिषद् की स्थापना की गयी। परिषद् के सदस्य अपने-अपने अधीन केन्द्रीय प्रशासन के विभागों के अध्यक्ष होते थे। उनके साधारण कर्तव्य परामर्शदाताओं की अपेक्षा प्रशासकों जैसे अधिक थे। प्रत्येक सदस्य अपने विभाग के

मन्त्री के समान राजनीतिक अध्यक्ष होता था और उसके विभाग में स्थायी कर्मचारियों की एक बड़ी संख्या होती थी, जिसका सर्वोच्च पदाधिकारी स्थायी सचिव होता था। विभागीय सचिव का कर्तव्य होता था कि वह प्रत्येक मामले को विभागीय अध्यक्ष के सम्मुख निर्णय के लिए रखे। इसके साथ वह अपनी सम्मति भी देता था। साधारण मामलों में परिषद् का सदस्य अन्तिम निर्णय करता और आदेश निकालता था। यदि मामला महत्वपूर्ण होता, तो उसे गवर्नर जनरल की स्वीकृति के लिये भेजा जाता था। यदि गवर्नर जनरल सदस्य के निर्णय को अस्वीकार करता, तो सम्बन्धित सदस्य ऐसे मामले को पूरी परिषद् के सम्मुख पेश कर सकता था। एक से अधिक विभागों से सम्बन्धित मामले पर यदि सम्बन्धित विभाग सहमत न हो पाते, तो उसे गवर्नर जनरल के पास भेजा जाता था।

2. **केन्द्रीय सचिवालय का विकास-** कम्पनी शासन में बंगाल के गवर्नर जनरल के अधीन केन्द्रीय सरकार का सचिवालय गठित किया गया, जिसमें 1833 के चार्टर अधिनियम के अन्तर्गत प्रशासनिक मितव्ययिता की दृष्टि से कुछ परिवर्तन किये गये। सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तन यह था कि राजस्व और वित्त विभागों को मिलाकर एक मिश्रित विभाग बना दिया गया। 1843, 1855 और 1862 से 1919 तक सचिवालय में विभागों का गठन-पुनर्गठन होता रहा। सन् 1919 से 1947 तक का युग केन्द्रीय सचिवालय में विभिन्न सुधारों के लिए सबसे अधिक महत्वपूर्ण है।
3. **वित्तीय प्रशासन-** भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी का शासन स्थापित होने के बाद प्रान्तों को वित्त के सम्बन्ध में बहुत अधिक सीमा तक स्वतन्त्रता दी गई, किन्तु 1833 के चार्टर अधिनियम के द्वारा वित्त का केन्द्रीकरण कर दिया गया। 1833 से 1870 ई0 तक प्रान्तीय सरकारें केन्द्रीय सरकार के अभिकर्ता के रूप में ही काम करती रही। उन्हें कर लगाने अथवा उसे खर्च करने का कोई अधिकार नहीं था। सर्वप्रथम 1870 में वित्तीय विकेन्द्रीकरण की दिशा में लॉर्ड मेयो की सरकार द्वारा एक निश्चित योजना को अपनाया गया। इस प्रस्ताव के आधार पर निम्नलिखित व्यवस्थाऐं की गई- पहला, जेलें, रजिस्ट्रेशन, पुलिस, शिक्षा, चिकित्सा सेवाऐं, सड़के, छपाई, आदि के व्ययों की मदों तथा उनसे प्राप्त होने वाले राजस्व को प्रान्तीय सरकारों के नियन्त्रण में हस्तान्तरित कर दिया गया। दूसरा, प्रान्तों को कुछ निश्चित वार्षिक अनुदान देने की व्यवस्था की गई। वित्तीय मामलों में प्रान्तीय सरकारों की और अधिक उत्तरदायित्व प्रदान करने के लिये 1882 में एक नई योजना प्रस्तावित की गयी। इसके अनुसार राजस्व के समस्त साधनों को तीन भागों में विभक्त किया गया- केन्द्रीय, प्रान्तीय तथा विभाजित। 1919 के ऐक्ट द्वारा प्रान्तीय प्रशासन में उत्तदायित्व के तत्व का प्रवेश हुआ और प्रान्तों के बजट केन्द्रीय सरकार से बिल्कुल पृथक् कर दिये गये और प्रान्तीय सरकारों को अपने बजटों के निर्माण का पूर्ण अधिकार दिया गया। 1935 के एक्ट द्वारा प्रान्तीय स्वायत्ता की व्यवस्था की गयी थी। अतः इस अधिनियम के द्वारा संघीय सरकार द्वारा प्रान्तों में 3 सूचियों के आधार पर न केवल कार्यों का वर्गीकरण किया गया, अपितु वित्तीय साधनों का भी विभाजन किया गया।
4. **स्थानीय शासन का विकास-** भारत में वर्तमान स्थानीय शासन संस्थाओं की रचना और विकास अंग्रेजी शासन की देन है। इनकी रचना ब्रिटिश संस्थाओं के नमूने पर अंग्रेजों ने की और उन्हीं के शासन काल में इनका विकास हुआ। स्थानीय शासन का प्रारम्भ प्रेसीडेन्सी नगरों में रहते हुये 1687 ई0 में मद्रास के लिये एक निगम की स्थापना के साथ हुआ। लॉर्ड रिपन के शासनकाल मं स्थानीय संस्थाओं को काफी बढ़ावा मिला। उनके स्वरूप को लोकतान्त्रिक बनाया गया तथा उनके कार्यों एवं शक्तियों में वृद्धि की गयी। मॉण्टेग्यू घोषणा के पश्चात भी स्थानीय स्वशासन संस्थाओं के विकास को काफी प्रोत्साहन मिला। सन् 1937 में प्रान्तों में उत्तरदायी मन्त्रिमण्डलों के निर्माण के फलस्वरूप स्थानीय संस्थाओं के, प्रजातन्त्रीकरण के कार्य में काफी प्रोत्साहन मिला।

5. **क्षेत्रीय प्रशासन-** अंग्रेजी शासन काल में क्षेत्रीय शासन का विकास हुआ। प्रान्त जिलों में विभक्त थे। कुछ प्रान्तों में जिलों का समूहीकरण कर संभाग का निर्माण किया गया था। संभाग का अधिकार आयुक्त(कमिश्नर) तथा जिले का अधिकारी 'कलक्टर' कहलाता था। आयुक्त व कलक्टर आई0सी0एस0 के वरिष्ठ अधिकार होते थे। कलक्टर जिला प्रशासन की धुरी होता था। वह जिले में प्रशासनिक यन्त्र को गतिमान रखता था। जिले में शान्ति और व्यवस्था बनाये रखना उसका कर्तव्य था। जिला मजिस्ट्रेट के रूप में वह न्यायिक एवं कार्यकारिणी कार्यो का सम्पादन करता था।
6. **न्याय प्रशासन-** ब्रिटिश शासन में न्याय व्यवस्था अच्छी थी। न्याय का कार्य संघीय न्यायालय, उच्च न्यायालय एवं अधीनस्थ न्यायालयों के हाथों में था। सन् 1935 के भारत शासन अधिनियम के आधार पर संघीय न्यायालय की स्थापना की गई। प्रान्तों में उच्च न्यायालय का गठन सन् 1961 के भारतीय उच्च न्यायालय अधिनियम के अन्तर्गत किया गया था। इन न्यायालयों को दीवानी, आपराधिक, वसीयती, गैर-वसीयती और वैवाहिक क्षेत्राधिकार मौलिक एवं अपील दोनों प्रकार के प्राप्त थे। जिलों में अधीनस्थ न्यायालय थे। ये न्यायालय दो प्रकार के थे, अधीनस्थ दीवानी न्यायालय और अधीनस्थ आपराधिक न्यायालय।
7. **लोक सेवा का विकास-** सन् 1858 में कम्पनी शासन के अन्त और उसके स्थान पर ब्रिटिश क्राउन की सरकार की स्थापना से 'प्रशासन तन्त्र' को 'सरकार' बना दिया। उच्च भारतीय प्रशासनिकारी वास्तव में भारत के मालिक (Owner) बन बैठे। किसी सत्ता के प्रति उत्तरदायी होने के स्थान पर वे अपने को आपस में एक-दूसरे के प्रति उत्तरदायी समझने लगे। सन् 1886 से 1923 तक जिन तीन शाही आयोगों की नियुक्ति हुई वे भारतीय लोक सेवाओं के विकास इतिहास में तीन महत्वपूर्ण चरण कहे जा सकते हैं। प्रथम आयोग ने, जिसे एचीसन आयोग (1886) भी कहा जाता है, भारत सरकार को यह सलाह दी कि वह 'स्टेट्यूटरी सिविल सर्विस' व्यवस्था को समाप्त कर प्रान्तीय लोक सेवा का गठन करे। दूसरा आयोग जो इस्लिगटन आयोग के नाम से अधिक जाना जाता है सन् 1917 में गठित हुआ। इस आयोग ने इंलैण्ड और भारत में साथ-साथ ली जाने वाली प्रतियोगिता-भर्ती परीक्षाओं की राष्ट्रीय मांग को स्वीकृति दी। इसने यह भी अनुशंसा की कि भारतीय उच्च लोक सेवाओं में 25 प्रतिशत पद भारतीयों के लिये सुरक्षित रखे जाये और इन सुरक्षित पदों पर चुने जाने वाले भारतीय प्रत्यक्ष भर्ती व्यवस्था द्वारा लिए जाऐ और शेष को प्रान्तीय लोक सेवाओं में से पदोन्नत किया जाए। तीसरा आयोग, जिसे ली आयोग के नाम से जाना जाता है, सन् 1923 में गठित किया गया। इस आयोग के अध्यक्ष ली ऑफ फर्नहाम की यह निश्चित मान्यता थी कि द्वैध शासन व्यवस्था के अन्तर्गत जो विषय हस्तान्तरित प्रान्तीय विषय है, उनके प्रशासन को चलाने वाली लोक सेवाओं पर राजनीतिक नियन्त्रण को कठोर बनाया जाये। इस शाही आयोग की सिफारिशों के फलस्वरूप ही भारतीय लोक सेवाओं में भारतीयकरण की प्रक्रिया के दो भिन्न-भिन्न रूप सामने आये- एक आई0सी0एस0 में भारतीयकरण और दूसरे केन्द्रीय सेवाओं में भारतीयकरण। सन् 1919 का भारतीय शासन अधिनियम वह पहला दस्तावेज था जिसने ब्रिटिश क्राउन की इन शाही सेवाओं का एक निश्चित एवं सुस्पष्ट वर्गीकरण प्रस्तुत किया। इस अधिनियम के अनुसार जिन सेवाओं और विभागों के सदस्य स्थायी तथा प्रत्यक्ष रूप से सुप्रीम गवर्नमेण्ट' के अधीन थे, उन्हें वहाँ से आगे 'सेण्ट्रल सर्विसेज' या केन्द्रीय सेवाऐं कहा गया। इस प्रकार की सेवाऐं थीं- रेलवे, कस्टम आदि। ऑडिट तथा अकाउण्ट्स तथा मिलिट्री अकाउण्ट्स। इसी प्रकार इस श्रेणी के विभागों में डाक-तार विभाग के कर्मचारी आते हैं, जिन्हें इम्पीरियल सर्विस का स्तर नहीं दिया गया। अन्य इम्पीरियल सेवाओं का फिर से नामकरण किया गया और उन्हें अखिल भारतीय सेवाओं की संज्ञा दी गयी। ये ऑल इण्डिया सर्विसेज थीं- इण्डियन सिविल सर्विस(I..C.S.), इण्डियन पुलिस सर्विस (I.P.S.), इण्डियन सर्विस ऑफ

इन्जीनियर्स तथा इण्डियन एज्यूकेशनल सर्विस। ये सभी अखिल भारतीय सेवाऐं भारत सचिव की देख-रेख में अपना कार्य करती थीं। प्रान्तीय सेवाओं के नाम उनके अपने प्रान्तों के नाम पर रखे गये, जैसे- बम्बई सिविल सर्विस, मद्रास सिविल सर्विस, आदि। साइमन कमीशन योजना के अनुसार प्रस्तावित इन संघीय और प्रान्तीय सेवाओं के अधिकारों और विशेषाधिकारों को सन् 1935 के भारत अधिनियम में कानूनी रूप दिया गया और इन सेवाओं के कर्मियों की पदोन्नति, वेतनमान, अवकाश, सेवानिवृत्ति शर्तों, इत्यादि की व्यवस्था को सुरक्षित बनाया गया। इसी अधिनियम ने संघीय तथा प्रान्तीय लोक सेवा आयोगों का गठन किया जिनका कार्य तीन प्रकार की लोक सेवाओं के विभिन्न क्षेत्रों में अभिकरणों के रूप में कार्य करते रहना था।

इस प्रकार आपने देखा कि किस प्रकार भारतीय प्रशासन में ब्रिटिश काल में महत्वपूर्ण परिवर्तन भी हुए व संस्थागत विकास भी हुआ। इस काल में प्रशासन में हुआ विकास स्वातन्योत्तर प्रशासन का आधार बना एवं इन्हीं विशेषताओं को भारत में ब्रिटिश प्रशासन की विरासतों के तौर पर देखा जाता है।

भारतीय प्रशासन की पूरी पृष्ठभूमि जान लेने के बाद आइये अब हम विस्तार से भारतीय प्रशासन की विशेषताओं का अध्ययन करते हैं।

6.4 भारतीय प्रशासन के स्वरूप और ढ़ाँचे के लिए उत्तरदायी कारक

स्वतन्त्रता के पश्चात भारतीय प्रशासन के स्वरूप और ढ़ाँचे में आकस्मिक और मौलिक परिवर्तन आए हैं। सन् 1935 का अधिनियम, जिसके अन्तर्गत सीमित संसदीय लोकतन्त्र और केन्द्रीकृत संघवाद भारत को दिए गए थे, मूल रूप से हमारी प्रशासनिक व्यवस्था का आधार बने।

स्वतन्त्रता के बाद भारतीय प्रशासन के स्वरूप और ढ़ाँचे में नव-परिवर्तन के लिए मुख्यतः चार कारण उत्तरदायी हैं-

1. **संसदीय शासन व्यवस्था का सूत्रपात-** ब्रिटिश शासन काल में कार्यपालिका विधायिका के प्रति उत्तरदायी नहीं थी। वह केवल ब्रिटिश सम्प्रभुओं के प्रति ही उत्तरदायी थी। इसलिए ब्रिटिश हितों का संरक्षण ही उसका प्रमुख दायित्व था। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत में संसदीय शासन व्यवस्था की शुरुआत की गयी और कार्यपालिका को संसद के प्रति उत्तरदायी बना दिया गया। निर्वाचित मन्त्रिमण्डल के माध्यम से लोक प्रशासन की अन्ततोगत्वा संसद के प्रति जिम्मेदारी होती है। संसद द्वारा प्रशासनिक उत्तरदायित्व का बोध उसके जनहितकारी दायित्वों के सम्पादन के परिप्रेक्ष्य में किया जाता है।
2. **प्रशासन के लक्ष्य और उद्देश्यों में परिवर्तन-** स्वतन्त्रता के बाद प्रशासन का लक्ष्य मात्र कानून और व्यवस्था बनाए रखना मात्र नहीं है। संविधान की प्रस्तावना(Preamble) तथा नीति निदेशक सिद्धान्तों के अध्याय में प्रशासन के लक्ष्यों और दायित्वों का निर्धारण कर दिया गया है। अब प्रशासन को नौकरशाही प्रवृत्ति छोड़कर लोककल्याणकारी राज्य की स्थापना के लिए प्रतिबद्ध होना है।
3. **संघात्मक शासन व्यवस्था की स्थापना-** स्वतन्त्रता के साथ ही एक महत्वपूर्ण परिवर्तन यह हुआ कि एकात्मक सरकार को संघात्मक शासन में परिवर्तित कर दिया गया। राज्य सरकारों को स्वायत्ता प्रदान की गयी और इस प्रकार राज्यों के क्षेत्रों में केन्द्रीय नियन्त्रण कम हुआ।
4. **जन-प्रतिनिधियों की प्रशासन में भागीदारी-** स्वतन्त्रता के बाद प्रशासनिक निर्णय प्रक्रिया में जन-प्रतिनिधियों की भागीदारी में वृद्धि हुई। ब्रिटिश शासन काल में विभागों के अध्यक्ष मन्त्री न होकर आई0सी0एस0 के सदस्य होते थे जिनके कोई राजनीतिक कार्य नहीं थे। उनका उत्तरदायित्व केवल गवर्नर जनरल के प्रति था। गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी परिषद् के सदस्यों की राजनीतिक प्रतिबद्धता नहीं थी, वे अपना सम्पूर्ण समय प्रशासन में लगाते थे जबकि मन्त्रियों की अब राजनीतिक प्रतिबद्धता

होती है, उन्हें प्रशासन का बहुत कम अनुभव होता है, वे अपना अधिकांश समय राजनीतिक दायित्वों में लगाते हैं। वे प्रशासनिक विभागों के अध्यक्ष के रूप में निर्णय प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं। अब प्रशासक और राजनीतिज्ञों को व्यवस्था में भागीदार बना दिया गया है। समाजवादी और धर्म निरपेक्ष राज्य-संविधान के 42वें संशोधन अधिनियम, 1976 के द्वारा प्रस्तावना 'समाजवादी राज्य' और 'धर्म निरपेक्ष' राज्य घोषित किया गया है।

वस्तुतः स्वतन्त्रता के बाद भारत में प्रशासन के दर्शन(Philosophy), परिवेश(Ecology) तथा उसके तत्व (Contents) में परिवर्तन आया है। कल्याणकारी राज्य, सामाजिक न्याय, समाजवाद और संविधान के प्रति प्रतिबद्धता ने उसके ढ़ाँचे और स्वरूप को नया मोड़ दिया है।

स्वतत्रन्ता के बाद भारत में लोक प्रशासन के दृष्टिकोण और मनोवृत्ति को व्यापक सरकार के विचार दर्शन और जनतान्त्रिक शासन के आदर्शों ने सबसे अधिक प्रभावित किया है। प्रशासन-तन्त्र पर विकास की जिम्मेदारी भी सौंपी गयी। विकास का अर्थ था- 'समूचे देश का आर्थिक विकास।' 'सामाजिक न्याय' के लक्ष्य ने सारी स्थिति में गुणात्मक परिवर्तन ला दिया। केवल समूचे देश का विकास अब लक्ष्य नहीं रह गया। साथ में जुड़ गये गरीबी दूर करने, गरीबी और अमीर का अन्तर मिटाने का लक्ष्य। प्रशासन-तन्त्र अब तक विद्यमान व्यवस्था को बनाए रखने के लिए था।

6.5 भारतीय लोक प्रशासन की विशेषताऐं

भारत में लोक प्रशासन संविधान में उल्लेखित उद्देश्यों और आदर्शों की प्राप्ति के लिये कार्यरत है। परम्परागत दायित्वों के साथ-साथ आज प्रशासन सामाजिक सेवा, राज्य व्यापार एवं नागरिक आपूर्ति, औद्योगिक एवं श्रमिक प्रबन्ध जैसे कार्यों का भी सम्पादन कर रहा है। नए आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक सन्दर्भ में लोक प्रशासन नया परिवेश ग्रहण कर रहा है। नए-नए प्रशासनिक अभिकरण एवं संस्थाएँ अस्तित्व में आई हैं। पुरानी संस्थाओं और प्रवृत्तियों का स्थान नयी संस्थाएँ और दृष्टिकोण ग्रहण करते जा रहे हैं। वर्तमान में भारतीय लोक प्रशासन की निम्नलिखित विशेषताऐं हैं-

1. **ब्रिटिश विरासत-** चूँकि सन् 1947 में सत्ता का हस्तान्तरण ब्रिटिश हाथों से भारत एवं पाकिस्तान नामक दो राष्ट्रों को किया गया था अतः स्वभाविक रूप से पूर्ववर्ती विशेषताऐं आज भी विद्यमान हैं। जिस प्रकार मुगलकालीन फारसी भाषा का आज भी राजस्व तथा न्याय प्रशासन में प्रभाव दिखायी पड़ता है उसी प्रकार अंग्रेजो द्वारा विकसित कानून, नियम, प्रक्रियाऐं तथा परम्पराऐं भारतीय लोक प्रशासन में दृष्टिगत होती है। अखिल भारतीय एवं अन्य लोक सेवाऐं सचिवालय व्यवस्था, नौकरशाही की कठोर प्रणाली, जिला प्रशासन, राजस्व प्रशासन, पुलिस प्रशासन तथा स्थानीय प्रशासन इत्यादि ब्रिटिश शासन के प्रमुख प्रभाव हैं जो आज भी भारतीय प्रशासन में दिखाई देते हैं।
2. **संघीय ढाँचे का प्रभाव-** ''भारत के संविधान के अनुसार भारत राज्यों का एक संघ है'' अतः संघीय स्तर पर केन्द्र (भारत) सरकार तथा राज्यों से प्रान्तीय सरकारें कार्य करती हैं। संविधान की सातवीं अनुसूची (अनुच्छेद-246) में शासन के कार्यों को संघीय, प्रान्तीय तथा समवर्ती सूचियों में विभक्त किया गया है। अतः आवष्टित कार्यों के अनुसार लोक-प्रशासन का संगठन तथा कार्यकरण निर्धारित किया हुआ है। रेलवे, डाक- तार, दूरसंचार तथा विदेश नीति इत्यादि केन्द्र सरकार के कार्यक्षेत्र में है जबकि पुलिस, सिंचाई, स्वास्थ्य तथा स्थानीय स्वशासन इत्यादि राज्य सरकारों के अधीन हैं। यही कारण है कि भारत में प्रत्येक प्रान्त में राज्य प्रशासन पूर्णतया एक समान नहीं है। राज्यों में अपनी लोक-सेवाऐं तथा प्रशासनिक संस्थाऐं कार्यरत हैं जो राज्य विधान मण्ड़लों द्वारा पारित अधिनियमों के अनुसार कार्य करती हैं।

3. **गतिशील एवं परिवर्तनशील प्रशासन-** भारत का प्रशासन प्रगतिशील, गतिशील एवं परिवर्तनशील गुणों से युक्त है। मौर्य काल और गुप्त काल में जो प्रशासन था उसमें मुगल शासकों ने समयानुकूल परिवर्तन किए। ब्रिटिश काल का प्रशासन दमन, अनुशासन, दक्षता और शोषण की विशेषताओं से युक्त था। स्वतन्त्रता के बाद संसदीय प्रजातन्त्र की परम्पराओं के अनुरूप प्रशासन के संगठन और मूल्यों में व्यापक परिवर्तन आये। अब लोक प्रशासन जनता के स्वामी के बजाय जनसेवक की भूमिका का निर्वाह करने लगा। संसद, न्यायपालिका, समाचार-पत्र और यहाँ तक कि राजनैतिक दलों के माध्यम से भारतीय प्रशासन जनता के सीधे नियन्त्रण का विषय बन गया है।
4. **उत्तरदायी प्रशासन-** भारत में संसदीय प्रणाली की स्थापना की गयी है। संसद के सदस्य जनता द्वारा निर्वाचित होते हैं और मन्त्रिमण्डल संसद के प्रति उत्तरदायी होता है। मन्त्रिमण्डल के सदस्य विभिन्न प्रशासनिक विभागों के अध्यक्ष होते हैं। संसद में उनसे प्रश्न पूछे जाते हैं और उनके विभागों की आलोचना तक की जाती है। मन्त्रियों के माध्यम से संसद प्रशासन पर नियन्त्रण रखती है। संसद में प्रश्नकाल प्रशासनिक अधिकारियों को चौकन्ना रखता है। यह उसे सजग रहने के लिए बाध्य करता है। प्रशासन की किसी असफलता, अकार्यकुशलता, विलम्ब, त्रुटि अथवा अनियमितता के बारे में लगाये गये आरोप को अन्ततोगत्वा मन्त्रिमण्डल को अपने ऊपर लेना पड़ता है, जिसका दण्ड साधारण भी हो सकता है, जैसे अप्रसन्नता व्यक्त करना अथवा कठोर भी हो सकता है, जिसमें मन्त्रिपरिषद् को हटाया जा सकता है। अतः प्रशासन पर सावधान, सचेत, जागरूक, ईमानदार और कार्यकुशल रहने का भारी दायित्व तथा मन्त्रिपरिषद् पर प्रशासन की प्रत्येक गतिविधि की निगरानी रखने तथा संसद के प्रति सत्यनिष्ठा रखने का भारी दायित्व होता है, क्योंकि घटनाएँ घटने के पश्चात संसद द्वारा इन दोनों के कार्यों का परीक्षण किया जाता है।
5. **विधि का शासन-** भारत में लोक प्रशासन विधि पर आधारित है। समस्त कार्य कानून की अधिकार-सीमा के अन्तर्गत ही होते हैं। न्यायालय इस बात को देखता है कि प्रशासन कहीं कानूनों का उल्लंघन तो नहीं कर रहा है। उल्लंघन करने पर न्यायालय उन्हें अवैध घोषित कर सकता है। इसके साथ-साथ संविधान की प्रस्तावना में प्रशासन के समक्ष पाँच स्पष्ट उद्देश्य निर्धारित किये गये हैं- न्याय, स्वतन्त्रता, समानता, बन्धुत्व एवं राष्ट्रीय एकता की स्थापना।
6. **कल्याणकारी प्रशासन-** आज के युग में राज्य को एक बुराई के रूप में नहीं बल्कि अनिवार्यता के रूप में देखा जाता है। यही कारण है कि आम व्यक्ति की समस्त मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु प्रशासनिक संगठन कार्यरत हैं। कहा जाता है कि आज का लोक-प्रशासन जन्म से पूर्व (गर्भवती माता का टीकाकरण) से लेकर मृत्यु के उपरान्त (बीमा तथा सम्पत्ति निपटारा) तक व्यक्ति के सर्वांगीण विकास एवं कल्याण हेतु कार्य करता है। भारतीय लोक प्रशासन भी भोजन, वस्त्र तथा आवास जैसी मूलभूत (न्यूनतम) आवश्यकताओं सहित शिक्षा, स्वास्थ्य, सुरक्षा, परिवहन, संचार, पेयजल, रोजगार तथा न्याय इत्यादि सेवाओं की व्यवस्था एवं संचालन करता है। राज्य के कल्याणकारी दायित्वों में हो रही आशातीत वृद्धि के कारण ही प्रशासनिक संगठनों एवं कार्यों का विस्तार हुआ है। संवैधानिक लक्ष्यों की पूर्ति हेतु पिछड़े वर्गों को लोक सेवाओं में आरक्षण प्रदान किया गया है।
7. **प्रशासन का कानूनी रूप-** वर्तमान भारतीय लोक-प्रशासन राजशाही, तानाशाही या चमत्कारिक सत्ताओं पर आधारित नहीं है, बल्कि संविधान के प्रावधानों के अनुसार संचालित है। राष्ट्र के समस्त नागरिकों की भावनाओं तथा इच्छाओं का पर्याय संविधान, प्रशासन-तन्त्र को वैध तार्किक सत्ता प्रदान करता है। संविधान के अनुसार भारत में 'विधि का शासन' है, अर्थात् कानून से बढ़कर कोई नहीं है। पूर्व प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी के अनुसार भारतीय लोक प्रशासन के प्रत्येक कृत्य का मूल आधार वे

कानून होते हैं जो जनकल्याण, विकास, सुरक्षा, समानता तथा न्याय के मूलभूत सिद्धान्तों एवं तथ्यों की पूर्ति हेतु बनाये जाते हैं। राज्य के समस्त कार्यों की पूर्ति का दायित्व आज के प्रशासन के कन्धों पर है अतः भारत में भी प्रशासकीय राज्य है।

8. **सामान्यज्ञ तथा विशेषज्ञों से युक्त प्रशासन-** भारतीय प्रशासन सामान्यज्ञ प्रधान रहा है। एक समय आई0सी0एस0 का वर्चस्व रहा और आज आई0ए0एस0 की प्रधानता है जो कि एक सामान्यज्ञ लोक सेवा है। सरकार के कार्यों की प्रकृति में परिवर्तन होने के साथ ही लोक सेवा में अधिकाधिक विशेषज्ञों, प्रविधिज्ञों तथा दक्षों की नियुक्ति होने लगी। फलस्वरूप प्रशासन में अनेकरूपता देखने में आ रही है। सरकार अब केवल लिपिकों तथा सामान्यवादियों (Generalists) को ही नियुक्त नहीं करती है। अब अधिकाधिक वैज्ञानिकों, डॉक्टरों, इन्जीनियरों, मनोवैज्ञानिकों, मानसिक चिकित्सकों, कृषिशास्त्रियों, ऋतुविज्ञों, विधिवेत्ताओं, सांख्यिकों आदि को नियुक्त किया जाता है।
9. **नियामकीय और विकास कार्यों का मिश्रण-** भारतीय प्रशासन में नियमाकीय एवं विकास कार्यों को मिश्रित कर दिया गया है। दोनों प्रकार के कार्य समान स्तरों पर समान अधिकारियों द्वारा किये जाते हैं। यद्यपि विकास कार्य अलग अधिकारियों द्वारा किया जाता है, किन्तु ये अधिकारी नियामकीय अधिकारियों की देख-रेख में कार्य करते हैं जो सरकार के प्रति दोनों प्रकार के कार्यों के लिए जिम्मेदार हैं। उदहारण के लिए, कलक्टर एक ओर तो कानून और व्यवस्था बनाए रखने तथा राजस्व, आदि के कार्य करता है और दूसरी ओर वह पंचायती राज्य का निरीक्षक एवं पथ-प्रदर्शक, विकास कार्यों का समन्वयकर्ता एवं सामुदायिक योजना का अभिकर्ता भी है। इसी प्रकार उपखण्ड, तहसील और ग्राम स्तर पर ये दोनों विरोधी प्रकृति के कार्य एक ही प्रकार के अधिकारियों को सौंपे गये हैं।
10. **प्रशासन की राजनीतिक तटस्थता-** यह भारतीय प्रशासन की अन्य विशेषता है। तटस्थता का अर्थ यह है कि लोक-सेवक अपने सार्वजनिक जीवन में राजनीतिक विचारों या अवधारणाओं से पूर्ण मुक्त रहता है। भारत में लोक सम्बन्धी आचरण के नियमों के अनुसार सरकारी कर्मचारियों पर राजनीतिक कार्यों में क्रियात्मक रूप से भाग लेने पर प्रतिबन्ध है। फलस्वरूप प्रशासन-तन्त्र के सदस्य सरकार की नीतियों को बिना किसी दलीय आसक्ति या स्वयं के आग्रह के पूर्ण निष्ठा से कार्यान्वित करते हैं तथा सरकार की नीतियों के पालन में उनकी निष्ठा पर सरकार के परिवर्तन का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। प्रशासन की यह राजनीतिक तटस्थता भारत की संवैधानिक व्यवस्था द्वारा निर्धारित की गयी है।
11. **आरक्षण व्यवस्था-** भारतीय संघात्मक व्यवस्थार के केन्द्रोन्मुख होने एवं साथ ही एकात्मक तत्वों के समावेश ने भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था के समन्वित स्वरूप का निर्धारण किया है। अतः प्रशासनिक व्यवस्था पर केन्द्र का वर्चस्व स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। समाज के कमजोर एवं पिछड़े वर्ग प्रशासनिक सेवाओं में उचित प्रतिनिधित्व में वंचित न रहें, इसके लिये भारतीय प्रशासनिक सेवाओं में नियुक्ति के लिये अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों एवं पिछड़े वर्ग के हेतु आरक्षण का प्रावधान है। संविधान में यह व्यवस्था की गई है कि राजकीय सेवाओं एवं पदों पर नियुक्ति हेतु इन वर्गों के सदस्यों के दावों पर समुचित ध्यान दिया जायेगा। संविधान में यह भी स्पष्ट किया गया है कि इन वर्गों के सदस्यों को उचित प्रतिनिधित्व प्रदान करने के क्रम में यदि सरकार उनके लिए सेवाओं में आरक्षण का ऐसा कोई विशेष उपबन्ध करती है तो उसका कार्य नागरिकों को दी गई अवसर की समानता की गारण्टी के प्रतिकूल नहीं समझा जाएगा।
12. **स्वतन्त्र तथा निष्पक्ष चयन प्रणाली-** भारत में प्रशासनिक अधिकारियों के चयन का आधार केवल योग्यता को ही माना गया है एवं इस योग्यता के समुचित मूल्यांकन एवं परीक्षण हेतु निश्चित प्रणाली की व्यवस्था की जाती है। प्रशासनिक सेवा में भर्ती हेतु भारत में योग्यता एवं उपयुक्तता के अतिरिक्त अन्य

कोई आधार विधिवत मान्य नहीं है। इसके अतिरिक्त प्रशासनिक सेवाओं में भर्ती हेतु सर्वसाधारण के लिए खुली चयन व्यवस्था को अपनाया गया है। फलतः प्रशासन पर विशिष्ट कार्यो का एकाधिकार समाप्त हो गया है और इसमें जनसाधारण का प्रतिनिधित्व बढ़ता जा रहा है। प्रशासन के प्रजातान्त्रिक स्वरूप एवं चयन में योग्यता के निष्पक्ष आकलन की इन विशेषताओं को संविधान ने स्पष्टतः निर्धारित किया है। अब सरकारी सेवाओं में भर्ती के लिए लिंग, धर्म, जाति एवं नस्ल के भेदभाव को समाप्त कर दिया गया है। संविधान ने राज्याधीन नौकरियों या पदों पर नियुक्ति के सम्बन्ध में समस्त नागरिकों के लिये अवसर की समानता की घोषणा की है। इन प्रावधानों के माध्यम से संविधान ने प्रशासन-तन्त्र में सर्वसाधारण के प्रवेश द्वारा उसके जनतान्त्रिक स्वरूप का मार्ग प्रशस्त किया है। अब प्रशासन का अभिजात्य स्वरूप नहीं रहा है। जनसाधारण वर्ग के योग्य अधिकारी प्रशासनिक पदों पर आरूढ़ हैं। प्रशासनिक सेवाओं में निष्पक्ष चयन हेतु संघ लोक सेवा आयोग एवं राज्य लोक सेवा आयोग की व्यवस्था की गई है। प्रशासनिक सेवाओं में निष्पक्ष चयन किया जाता है। सामान्यत सरकार इस सन्दर्भ में आयोग के परामर्श को स्वीकार करती है एवं सरकार किसी विशेष स्थिति में संघ लोक सेवा आयोग के परामर्श को अस्वीकार करती है तो सरकार को ऐसी अस्वीकृति का कारण सहित ज्ञापन संसद के दोनों सदनों के समक्ष प्रस्तुत करना होता है। राज्य के लोक सेवा आयोग द्वारा की गई सिफारिशों की अस्वीकृति की स्थिति में राज्य सरकार को यह ज्ञापन राज्य के विधान मण्डल के समक्ष प्रस्तुत करना होता है।

इन आयोगों के कार्य पर राजनीतिक या अन्य किसी प्रकार का दबाव नहीं पड़े इसके लिए संविधान में उचित व्यवस्था की गई है। संविधान के अनुसार संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष या सदस्य अपने पद से राष्ट्रपति के आदेश द्वारा केवल कदाचार के आरोप में ही हटाया जा सकता है। राष्ट्रपति भी ऐसा आदेश तभी जारी कर सकता है जबकि भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार जाँच करके ऐसे किसी आरोप को सही पाकर सम्बन्धित व्यक्ति को पद्च्युत किये जाने की सिफारिश कर दी हो। इस व्यवस्था का उद्देश्य लोक सेवा आयोग को स्वतन्त्र एवं निष्पक्ष होकर कार्य करने की परिस्थितियाँ उत्पन्न करना है। इस तरह यह पता चलता है कि संविधान द्वारा ऐसी व्यवस्थाऐं की गई हैं कि प्रशासनिक सेवाओं में नियुक्ति के लिए चयन प्रणाली को निष्पक्ष बनायार जा सके एवं यथासम्भव, चयन का योग्यता के अतिरिक्त अन्य कोई आधार न हो सके।

13. **कार्यपालिका एवं न्यायपालिका का पृथक्करण-** देश में कार्यपालिका एवं न्यायपालिका का पृथक्करण एवं प्रशासन पर न्यायिक नियन्त्रण की व्यवस्था है, ताकि वह अपनी शक्तियों का दुरुपयोग एवं सीमाओं का अतिक्रमण न करें।
14. **पृथक प्रशासनिक विधि-** भारत में प्रशासन देश की विधि के अन्तर्गत ही कार्य करती है। यही फ्रांस की तरह पृथक प्रशासकीय कानून एवं न्यायालयों की व्यवस्था नहीं की गई है।
15. **विकेन्द्रीकरण की व्यवस्था-** सभी स्तरों पर शक्ति का विकेन्द्रीकरण भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था की एक प्रमुख व्यवस्था है। यह व्यवस्था संविधान में घोषित लोकतान्त्रिक स्वरूप के अनुरूप है। इसलिए प्रशासन तन्त्र की शक्तियों का स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं तक विकेन्द्रीकरण किया गया है।
16. **जनता के प्रति उत्तरदायित्व-** भारत में प्रशासन को जनता के प्रति उत्तरदायी बनाया गया है। यह उत्तरदायित्व निम्नलिखित प्रकार से स्थापित किया जाता है-
    - प्रत्येक प्रशासनिक विभाग के शीर्ष पर मन्त्री होता है जो कि मन्त्रिमण्डल का सदस्य होने के नाते सामूहिक रूप से संसद के लोक सदन के प्रति उत्तरदायी होता है। प्रशासन पर जनता का यह परोक्ष नियन्त्रण भारतीय संविधान के संसदीय प्रजातन्त्र की विशेषता से निर्धारित हुआ है। इस

विशेषता के कारण जनता का प्रत्यक्ष नियन्त्रण नहीं होते हुये भी मन्त्रिमण्डल उत्तरदायित्व के कारण प्रशासन जनता के प्रति अपने उत्तरदायित्व के प्रति सदैव जागरूक होता है।

- संसद के सदस्य प्रशासन की कार्यप्रणाली एवं भूमिका के सम्बन्ध में विभिन्न प्रकार के प्रश्नों, काम रोको प्रस्ताव, ध्यानाकर्षण प्रस्तावों के माध्यम से प्रशासन पर नियन्त्रण रखते हैं एवं उसे जनता के हितों के प्रति सजग बनाये रखते हैं। संसद एवं राज्य विधान मण्डलों कीर विभिन्न संसदीय समितियाँ भी प्रशासन पर नियन्त्रण स्थापित करती हैं। प्रशासन पर इस प्रकार संसद या विधान मण्डल के सदस्यों द्वारा किया गया नियन्त्रण वास्तव में अप्रत्यक्ष रूप से प्रशासन को जनता के प्रति उत्तरदायी बनाता है।
- विभिन्न प्रशासकीय उद्देश्यों एवं कार्य संचालन हेतु बनाई गई विभागीय समितियों में जन प्रतिनिधियों को पर्याप्त प्रतिनिधित्व दिया जाता है। इस प्रकार की समितियों में जन-प्रतिनिधियों की उपस्थिति प्रशासन को जनता के हितों के प्रति सचेत रखती है।

17. **विशाल आकार-** भारत में लोक प्रशासन का आकार काफी व्यापक है। उसमें एकरूपता का अभाव भी है। स्वतन्त्रता के बाद सरकारी कर्मचारियों की संख्या निरन्तर बढ़ती जा रही है। नए-नए विभाग खुलते जा रहे हैं और पुराने विभागों का विस्तार हो रहा हैं। जिस रूप में विशालकाय प्रशासन यन्त्र विकसित होता जा रहा है, उसके फलस्वरूप प्रशासनिक संगठन में स्वेच्छाचारिता, कर्तव्य विमुखता, अधिकार वृद्धि की आकांक्षा, उत्तरदायित्व को टालने की मनोवृत्ति, आदि अवगुणों के विकास के कारण प्रशासन का सफलतापूर्वक संचालन कठिन होता जा रहा है।
18. **प्रत्यायोजित व्यवस्थापन-** लोककल्याणकारी राज्य की धारणा के विकास ने भारत में राज्य के कार्य-क्षेत्र में जिस तीव्रता से अभूतपूर्व विस्तार किया है, उसके द्वारा संसद एवं विधानसभाओं के लिए व्यवस्थापन प्रक्रिया को वंचित समय दे पाना सम्भव नहीं हो रहा एवं ये संस्थाऐं कार्यभार की अधिकता से दबी हुई है। अतः संसद एवं विधानमण्डल व्यवस्थापन की मूल नीति का ही निर्धारण कर पाते हैं एवं कार्यों को सम्पन्न करने के लिए प्रत्यायोजित व्यवस्थापन की शक्ति प्रशासन के पास अनिवार्यतः आ गई है। प्रत्यायोजित व्यवस्थापन की प्रशासन की इस शक्ति को भी संविधान ने ही निधार्ररित किया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि भारतीय प्रशासन का जनतांत्रिकरण किया गया है। फलतः उसे अनेक संवैधानिक एवं राजनीतिक बाध्यताओं में कार्य करना पड़ता है।
19. **विस्तृत प्रशासनिक व्यय-** केन्द्रीय एवं राज्य स्तर पर इस विशाल प्रशासन तन्त्र के वेतन-भत्ते एवं पेंशन पर भारी व्यय किया जाता है। समय-समय पर बढ़ाये जाने वाले महँगाई-भत्ते की राशि के कारण भी इस व्यय में निरन्तर वृद्धि हुई है। इस कारण विकास कार्यों के लिये पर्याप्त राशि नहीं रह पाती है। प्रशासनिक व्यय का बढ़ता भार केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों के लिए एक चुनौती का विषय बना हुआ है। आवश्यकता से अधिक कर्मचारियों की भर्ती भी इस व्यय को निरन्तर बढ़ा रही है।
20. **नवीन चुनौतियाँ-** स्वतन्त्रता के पश्चात भारत ने विकास की विभिन्न मंजिलें तय की हैं। विशाल एवं तकनीकी के क्षेत्र में भी उल्लेखनीय विकास हुआ है। लोककल्याणकारी राज्य के अभ्युदय ने राज्य की भूमिका को भी विस्तृत बना दिया है। प्रशासन तन्त्र का भी भारी विस्तार हुआ है। इस बदलते परिप्रेक्ष्य में यह आवश्यक बन गया है कि भारतीय लोक प्रशासन अपनी नई भूमिका का सृजन करें। इनके अतिरिक्त कोई दूसरा विकल्प शेष नहीं रह जाता है। प्रशासन का लोकतान्त्रिक दृष्टिकोण के अनुरूप आचरण करना अपरिहार्य है। लोक प्रशासकों का उचित प्रशिक्षण एवं उनमें मानवीय संवेदना का विकास करना

अत्यावश्यक बन गया है। विकास कार्यों में लोगों की साझेदारी की भावना का विकास करना भी लोक प्रशासन का आवश्यक दायित्व है।

21. **केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति-** भारत में प्रशासन का संगठन सोपानात्मक(hierarchical) है अर्थात् ऊपर से नीचे तक अधिकारियों के अनेक वर्ग या सोपान हैं। भारत में केन्द्र चूँकि बहुत शक्तिशाली है, इसलिए अधिकांश महत्वपूर्ण निर्णय दिल्ली में किये जाते हैं। निचले स्तर पर बैठे अधिकारी भी फैसले स्वयं न करके मामला उच्चस्तरीय अधिकारियों के पास भेज देते हैं। वहाँ से ये मामले और ऊँचे अधिकारियों और अन्त में केन्द्र तक पहुँच जाते हैं। इस प्रक्रिया में इतना समय लग जाता है कि कभी-कभी तो निर्णय तब लिए जाते हैं, जब बाढ़ का पानी सूख जाए या फसल चौपट हो जाए या जिसे राहत दी जाने है वह स्वर्ग सिधार जाए।

22. **बढ़ती हुई शक्तियाँ-** विगत 100 वर्षों में विशेषकर प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात से लोक प्रशासन का एक अत्यन्त विलक्षण पक्ष सामने आया है कि लोक सेवा की शक्तियों, कार्यों तथा प्रभाव में अत्यधिक वृद्धि हुई है। स्वतन्त्र भारत की आर्थिक तथा सामाजिक कठिनाइयों ने एक कल्याणकारी राज्य तथा समाजवादी समाज की धारणा एवं उसकी स्थापना के विचार को बल प्रदान किया है। यह नियोजित पद्धति द्वारा ही सम्भव है। स्वतन्त्रता के पश्चात सरकार द्वारा नए-नए कार्य तथा उत्तरदायित्व ग्रहण किये जाने के कारण प्रशासन के महत्व एवं शक्तियों में वृद्धि हो गयी है। अब लोक कर्मचारी(Civil Servant) पहले की भाँति केवल पुलिस या राजस्व अधिकारी मात्र नहीं है। यह तो अनेक प्रकार के विकास कार्यों में और देश के विभिन्न भागों में सहस्त्रों परियोजनाओं के परिपालन में संलग्न है।

    इसके परिणामस्वरूप हमारी प्रशासनिक व्यवस्था में नौकरशाही अत्यधिक शक्तिशाली हो गयी है। इस नौकरशाही अर्थात् लोक सेवा की शक्ति का आभास अकेले प्रशासन से ही नहीं प्राप्त होता बल्कि विधान तथा वित्तीय क्षेत्रों में भी अनुभव होता है। यह केवल विधियों को क्रियान्वित ही नहीं करती बल्कि प्रायः उन्हें निर्मित भी करती है। यह करों से प्रायः द्रव्य का केवल व्यय ही नहीं करती बल्कि यह भी प्रायः निश्चित करती है कि कितना किस प्रकार एकत्र किया जाना है।

23. **पुरानी नियमावली व क्रियाविधि-** पुराने कायदे (Out dated manuals and procedures) के कारण बहुत सी समस्याऐं उत्पन्न होती हैं और काम में रुकावट आती है। उदाहरण के लिये, 1939 के 'मोटर अधिनियम' (Motor Vehicles Act) को लीजिए, यह तब बना था जब ना 'जेबरा क्रॉसिंग'(Zebra Crossings) थे और ना बिजली से संचालित 'संकेत चिन्ह'। पर आज तक वही अधिनियम प्रयोग में लाया जा रहा है। वित्त मन्त्रालय के अनुदान सम्बन्धी नियमों (Grand-in-aid rules) को लीजिये, ना जाने कब से यह नियम चला आ रहा है कि अनुदान की राशि वित्तीय वर्ष के समाप्त होने से पहले खर्च हो जानी चाहिए अन्यथा यह समझा जाता है कि अनुदान मांगने वालों ने अपना बजट बढ़ा-चढ़ाकर पेश किया था अथवा प्रशासनिक अधिकारी या समूचा विभाग निकम्मा है। इस नियम की वजह से मार्च के अन्तिम सप्ताह में सभी विभागों में यह होड़ लग जाती है कि किसी ना किसी तरह वे निर्धारित राशि को खर्च कर डालें। फलस्वरूप फिजूलखर्ची को प्रोत्साहन मिलता है अथवा ऐसी चीजें खरीद ली जाती हैं, जिनकी कोई आवश्यकता या उपयोगिता न हो।

24. **समस्याओं से पीड़ित प्रशासन-** आज भारतीय प्रशासन अनेक समस्याओं से ग्रस्त है। सभी स्तरों पर राजनीतिज्ञों और लोक सेवकों के मध्य सम्बन्धों की समस्या, प्रशासनिक अधिकारियों की मनोवृत्ति को राजनीतिक परिवर्तनों के अनुकूल बनाने की समस्या, जनता और प्रशासनिक अधिकारियों के मध्य आपसी सम्बन्धों की समस्या, प्रशासकों के नैतिक चरित्र में गिरावट की समस्या, विभिन्न विभागों में समन्वय की समस्या, विशेषज्ञों और सामान्यज्ञों के सम्बन्धों की समस्या, संगठनात्मक संरचना में

परिवर्तन की समस्या, प्रशासन में अपव्यय को रोकने की समस्या, आदि अनेक प्रमुख समस्याऐं हैं। इन समस्याओं का निदान आवश्यक है।

25. **लालफीताशाही-** भारतीय प्रशासन की एक विशेषता लालफीताशाही है। अधिकारी और कर्मचारी नियमों और विनियमों पर आवश्यकता से अधिक बल देते हैं। वे प्रत्येक काम सुनिश्चित प्रक्रियाओं द्वारा ही सम्पन्न करते हैं और 'उचित मार्ग' से कार्य करने में विश्वास करते हैं। अतः फाइलें इधर से उधर घूमती रहती हैं और निर्णयों तथा कार्य में विलम्ब होता रहता है।
26. **लोकतान्त्रिक मूल्यों पर आधारित-** आधुनिक विश्व में लोकतंत्र तथा कल्याणकारी राज्य की अवधारणाऐं सर्वत्र अत्यधिक मात्रा में व्याप्त है। स्वतन्त्रता के पश्चात भारत में जनता जनार्दन के हाथों में सत्ताधीशों का चयन तथा नियंत्रण की प्रणाली विकसित की गई है। भारत में संसदीय लोकतंत्र की अवधारणा को अपनाया गया है। जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि न केवल विधायिका में कानून निर्मित करते हैं बल्कि कार्यपालिका में मंत्री के रूप में लोक प्रशासन का नेतृत्व भी करते हैं। प्रजातांत्रिक विकेन्द्रीकरण को मूर्त रूप प्रदान करने के लिए नगरों में नगर निगम और नगरपालिकाएँ इत्यादि तथा गाँवों में पंचायती राज संस्थाओं का प्रवर्तन है। प्रजातांत्रिक समाजवाद के लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु शांतिपूर्ण, न्यायपूर्ण तथा राज्य प्रभावी कदमों को प्रश्रय प्रदान किया गया है। वर्तमान में प्रशासन को यह दायित्व दिया गया है कि वह देश में लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रसार तथा संरक्षण में अपना योगदान करे।
27. **उलझा हुआ प्रशासन-तंत्र-** भारत में लोक प्रशासन का कार्यक्षेत्र कई प्रकार से विस्तृत एवं उलझा हुआ है, क्योंकि अंग्रेजी शासनकाल में अद्यतन अनेकानेक प्रशासनिक संस्थाऐं भारत में गठित होती रही है। संघीय स्तर पर कार्यरत विशाल केन्द्रीय सचिवालय तथा राज्यों में राज्य शासन सचिवालयों सहित इनके कार्यकारी संगठनों का सम्पूर्ण देश में जाल बिछा हुआ है। अनेक प्रकार के बोर्ड, आयोग, संगठन, न्यायाधिकरण, संस्थान, परिषद् प्राधिकरण, अभिकरण, निगम तथा सरकारी कम्पनियाँ विभिन्न कार्यों के निष्पादन हेतु कार्यरत है। भारत में विश्व के सभी प्रमुख देशों में प्रचलित प्रशासनिक संग्ठन-स्वरूप किसी-न-किसी रूप में अवश्य मिल जाते हैं। समस्या यह है कि यहाँ आयोग, समिति तथा कार्य दलों की रिपोर्ट के आधार पर नित्य नये संगठन स्थापित करना एक परम्परा बन चुकी है। परिणामस्वरूप परम्परागत नौकरशाही की कार्यशैली में किन्चित भी परिवर्तन नहीं आता है बल्कि इसका आकार तथा वित्तीय भार बढ़ जाता है।

   भारत में प्रशासनिक नामों की उलझन के बहुत सारे उदाहरण विद्यमान है। 'उप' शब्द के लिये कहीं पर डिप्टी (Deputy) तो कहीं 'सब'(SUB) शब्द प्रयुक्त होता है। लेफ्टिनेंट(Lieutenant) का अर्थ भी लोक प्रशासन में 'उप' से है (जैसे- उपराज्यपाल)। पुलिस विभाग में रेन्ज का तात्पर्य कई जिलों से होता है जबकि वन विभाग में रेन्ज बहुत छोटी इकाई है। नामों की उलझन न्यायिक क्षेत्र में भी है। इलाहाबाद, मुम्बई, कोलकाता, गुवाहाटी, चेन्नई तथा पटना उच्च न्यायालयों का नाम शहरों के आधार पर है, जबकि आन्ध्रप्रदेश, छत्तीसगढ़, गुजरात तथा राजस्थान सहित बहुत से राज्यों के उच्च न्यायालय का राज्य के नाम पर है।
28. **विकास प्रशासन-** यह भारतीय प्रशासन की एक अनुपम विशेषता है। विकास प्रशासन एक गतिशील परिवर्तनात्मक अवधारणा है जो समाज में आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक परिवर्तन लाने हेतु प्रयत्नशील है। इसमें प्रशासन के विकास पर महत्व दिया जाता है। विकास प्रशासन योजना, नीति-कार्यक्रम तथा परियोजना से सम्बन्ध रखता है। यह सरकार का कार्यात्मक पहलू है, जिसका तात्पर्य सरकार द्वारा जन-कल्याण तथा जनजीवन को व्यवस्थित करने के लिए किये गये प्रयासों से है। स्वतन्त्रता के पश्चात भारतीय प्रशासन में विकास प्रशासन के तत्व देखने को मिलते हैं, जैसे- परिवर्तनोन्मुखी,

प्रजातान्त्रिक मूल्यों से सम्बन्धित, आधुनिक जन-आकांक्षाओं की पूर्ति हेतु प्रयत्नशील तथा आर्थिक विकास के प्रति प्रयत्नशील। आज प्रशासन के द्वारा जन-सम्पर्क को अधिक महत्व दिया जा रहा है तथा जन-सहयोग प्राप्त करने के प्रयास किये जा रहे हैं।

29. **प्रशासन का लक्ष्य सामाजिक, आर्थिक न्याय-** भारत में प्रशासन का लक्ष्य सामाजिक व आर्थिक न्याय के क्रियान्वयन से सम्बन्धित विविध प्रकार की नीतियों का क्रियान्वयन करनरा है। सामाजिक न्याय व लोककल्याण के प्रति प्रशासनिक व्यवस्था की प्रतिबद्धता का आधार भारत की संवैधानिक व्यवस्था ही है। जहाँ एक ओर संविधान की प्रस्तावना में सामाजिक व आर्थिक न्याय को राज्य का आधार स्वीकार किया गया वहीं दूसरी ओर संविधान में अनेक प्रावधानों द्वारा राज्य पर इन उद्देश्यों की पूर्ति का दायित्व सौंपा गया है। राज्य का यह दायित्व वास्तव में प्रशासनिक व्यवस्था की दायित्व है, क्योंकि उसकी नीतियों का क्रियान्वयन अन्ततोगत्वा प्रशासन द्वारा किया जाता है। संविधान में राज्य से यह अपेक्षा की गयी है कि वह ऐसी सामाजिक व्यवस्था की, जिसमें सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक न्याय, राष्ट्रीय जीवन की सभी संस्थाओं को अनुप्राणित करे, भरसक कार्यसाधक व्यवस्था करके लोककल्याण की उन्नति का प्रयास करेगा। राज्य द्वारा किये गये प्रयत्न तब तक अधूरे हैं जब तक कि समाज के पिछड़े व कमजोर वर्गों की सामाजिक व आर्थिक उन्नति के लिए हर प्रकार के शोषण से उसकी मुक्ति के कारगर प्रयत्न नहीं किए जाते। संविधान ने यह व्यवस्था की है कि राज्य जनता के दुर्बलतर वर्गों के शिक्षा तथा अर्थ सम्बन्धी हितों की विशेष सावधानी से उन्नति करेगा तथा सामाजिक अन्याय व हर प्रकार के शोषण से उनका संरक्षण करेगा। इस प्रकार संविधान ने अल्पसंख्यकों व कमजोर वर्गों के हितों के प्रति प्रशासन से अधिक संवेदनशीलता की अपेक्षा की है तथा यह भारत के प्रशासन की एक प्रमुख विशेषता है।

30. **संसदीय शासन व्यवस्था एवं उत्तरदायी कार्यपालिका-** भारतीय शासन प्रणाली का स्वरूप संसदीय है, जिसमें वास्तविक कार्यपालिका शक्ति मन्त्रीपरिषद् के हाथों में निहित है। मन्त्रीपरिषद् संसद के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी है। अगर संसद का मन्त्रीपरिषद में विश्वास ना रहे तो उसे अपने पद से त्याग पत्र देना पड़ता है।

31. **जवाबदेय प्रशासन-** प्रशासनिक कार्यों को कुशलतापूर्वक निष्पादित करने के लिये कार्मिकों को पर्याप्त प्राधिकार या शक्तियाँ प्रदान की गयी हैं। किन्तु वे प्राधिकार अनन्य नहीं हैं, बल्कि उत्तरदायित्व भी निश्चित किये गये हैं। लोक प्रशासन में निम्नतम स्तर पर कार्यरत कार्मिक से लेकर मन्त्री महोदय तक सभी को संविधान, जनता, कानून तथा व्यवस्था के प्रति जवाबदेय बनाया गया है, क्योंकि विधि का शासन व्यक्ति के बनाये कानून को सर्वोच्चता प्रदान करता है। लोक-प्रशासन की जवाबदेयता सुनिश्चित करने के लिये संसदीय, कार्यपालिका तथा न्यायिक नियन्त्रण की अनेक प्रणालियाँ प्रभावी हैं। स्वतन्त्र न्यायपालिका के द्वारा प्रशासनिक जवाबदेयता तथा नियन्त्रण को अधिक प्रभावी बनाया गया है।

32. **नौकरशाही का वर्चस्व-** आधुनिक प्रशासनिक तथा कल्याणकारी राज्यों में कर्मचारी तन्त्र का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है किन्तु कर्मचारी तन्त्र में व्याप्त अहम्, लालफीताशाही, कठोर नियमों के प्रति मोह, शक्ति लालसा, अकार्यकुशलता, अनुशासनहीनता सहित नौकरशाही के समस्त अवगुण विद्यमान हैं। यद्यपि भारत में लोक प्रशासन का बाह्य स्वरूप विकासोन्मुख तथा कल्याणकारी दिखायी पड़ता है, तथापि आन्तरिक रूप से प्रशासन-तन्त्र की कार्यशैली आज भी ब्रिटिश मॉडल पर आधारित है, जिसमें आम आदमी की मानवीय संवेदनाओं से कहीं अधिक नियमों को वरीयता दी जाती है।

अभ्यास प्रश्न-

1. भारत में लोक प्रशासन का लक्ष्य क्या है?

2. भारतीय संविधान की प्रकृति है?
3. लोकतन्त्रीय प्रशासन का लक्षण है?
4. भारत में कल्याकारी प्रशासन का उल्लेख किसमें मिलता है?
5. भारतीय लोक प्रशासन का प्रमुख लक्षण नहीं है?

6.6 सारांश

इस अध्याय को पढ़ने के बाद आप जान गये होंगे कि भारत का वर्तमान प्रशासन अतीतकालीन प्रशासनिक व्यवस्थाओं एवं प्रागैतिहासिक शासनों का विकसित प्रतिरूप है। इसका प्राचीनतम स्वरूप हमें सिन्धु घाटी सभ्यता काल में देखने को मिलता है जहाँ उसने निरन्तर प्रगति करते हुये युगों के अनेक उतार-चढ़ावों के थपेड़ों को सहन करते हुए आधुनिकता के परिवेश को प्राप्त किया है। अपने वर्तमान स्वरूप में यह ब्रिटिश शासन के विकास से पूर्णरूपेण प्रभावित है तथापि भारत का प्राचीन हिन्दु युग राजनीतिक और प्रशासनिक दृष्टि से उन्नत माना जाता था। स्वतन्ता के बाद भारतीय प्रशासन के स्वरूप में आमूल-चूल परिवर्तन आया। 26 जनवरी, 1950 के बाद भारत में लोकतन्त्र, विकास और समाजवाद के लिये लोक-प्रशासन युग की शुरुआत हुई है, इसके परिणामस्वरूप भारतीय प्रशासन को नये और विशिष्ट महत्व के कार्यों के सम्पादन की चुनौती स्वीकार करनी पड़ी। अब लोक प्रशासन आर्थिक एवं औद्योगिक गतिविधियों में भाग लेने लगा; ग्रामीण विकास और गाँवों में सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन की गति को तीव्र करने का उत्तरदायित्व लोक प्रशासन पर ही डाला गया।

6.7 शब्दावली

राजतन्त्रीय- ऐसा राज्य या शासन जिसमें सारी सत्ता एक राजा के हाथ में हो, सामान्यज्ञ- जिसे सब विषयों का थोड़ा-थोड़ा ज्ञान हो, विशेषज्ञ- जो किसी एक विषय का विशेष ज्ञाता हो, नियामकीय- नियन्त्रक, विधि- कानून, निष्पक्ष- जो किसी पक्ष या दल में सम्मिलित ना हो, तटस्थता- न इस ओर न उस ओर का, प्रत्यायोजन- सोंपना

6.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. न्याय की स्थापना, **2.** लोकतंत्रात्मक शासन, **3.** जबाबदेयता, **4.** निदेशक सिद्धान्तों में, **5.** प्रतिबद्ध लोक सेवाऐं

6.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ0 कमलेश कुमार सिंह, भारतीय प्रशासन, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2008
2. डॉ0 बी0एल0 फड़िया, लोक प्रशासन, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, 2016
3. अवस्थी एवं अवस्थी, भारतीय प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2016

6.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. पी.0के0 त्यागी, भारत में लोक प्रशासन, सुमित एन्टरप्राईजेज, नई दिल्ली, 2006
2. डॉ0 सुरेन्द्र कटारिया, लोक प्रशासन, मलिक एण्ड कम्पनी, जयपुर, 2001

6.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. भारतीय प्रशासन पर ब्रिटिश प्रभाव का उल्लेख करते हुए इसकी प्रमुख विशेषताओं का वर्णन करिये।
2. भारतीय प्रशासन की एतिहासिक पृष्ठभूमि बताते हुए वर्तमान में इसकी विशेषताओं का वर्णन कीजिये।
3. भारतीय प्रशासन की प्रमुख विशेषताओं का विस्तार से वर्णन करिये।

इकाई-7 प्रशासन पर कार्यपालिका नियंत्रण

इकाई की संरचना

7.0 प्रस्तावना
7.1 उद्देश्य
7.2 नियंत्रण का अर्थ
7.3 लोक प्रशासन पर नियंत्रण की आवश्यकता
7.4 प्रशासन पर कार्यपालिका नियंत्रण
7.5 प्रशासन पर कार्यपालिका के नियंत्रण की समस्याऐं
7.6 सारांश
7.7 शब्दावली
7.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
7.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
7.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
7.11 निबंधात्मक प्रश्न

7.0 प्रस्तावना

प्रजातांत्रिक समाज में सत्ता के न्यायोचित प्रयोग के लिये उस पर नियंत्रण रखने की आवश्यकता पड़ती है। सत्ता जितनी अधिक होगी, नियंत्रण की आवश्यकता भी उतनी ही अधिक होगी। समुचित नियंत्रण व्यवस्था के अभाव में प्रशासन कानून को तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत कर सकता है। कानूनों और स्थापित मर्यादाओं का उल्लंघन हो सकता है। व्यक्तिगत स्वार्थ की पूर्ति के लिये अधिकारी पक्षपातपूर्ण व्यवहार, भाई-भतीजावाद और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के हनन जैसे मार्गों को अपनाकर अपनी सत्ता का दुरूपयोग कर सकते हैं। हमारा देश विकासोन्मुख है। अतः विकास कार्यों में वृद्धि के साथ-साथ लोक प्रशासन के अधिकारों में भी स्वतः वृद्धि हो रही है। इससे सत्ता के दुरूपयोग की संभावना भी बढ़ गयी है। इस पर नियंत्रण रखने तथा प्रशासन को जनता के प्रति उत्तरदायी बनाने हेतु कुछ सुरक्षात्मक कदम आवश्यक है। नियंत्रण मुख्यतया तीन प्रकार से स्थापित किया जाताहै। प्रस्तुत अध्याय हम प्रशासन पर कार्यपालिका नियंत्रण के साधनों के बारे में विस्तार से जानेंगे।

7.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- प्रशासन के संबंध मेंनियंत्रण के अभिप्राय व आवश्यकता के संबंध में जान पायेंगे।
- कार्यपालिका नियंत्रण के प्रकारों को समझ पायेंगे।
- कार्यपालिका नियंत्रण से सम्बन्धित क्या समस्याएँ उपस्थित होती हैं तथा उनसे सम्बन्धित क्या उपाय किये जा सकते हैं? इस संबंध में जान पायेंगे।

7.2 नियंत्रण का अर्थ

लोक प्रशासन पर नियंत्रण के विभिन्न प्रकारों को समझने से पूर्व आइये हम नियंत्रण के अभिप्राय को समझने का प्रयास करते हैं।

संगठन की व्यवस्था बनाये रखने हेतु तथा इसके समस्त अंगो को विधिवत् ढंग से संचालित करने हेतु नियंत्रण आवश्यक होता है। वस्तुतः नियंत्रण संगठन का वह अमूर्त् तत्व तथा प्रक्रिया है जो अन्य स्वरूपों में अपना कार्य करता है तथा संगठन की प्रक्रियाओं जैसे- संचार, समन्वय, पर्यवेक्षण, सत्ता तथा उत्तरदायित्व इत्यादि से घुल-

मिल गया है। बहुधा निरीक्षण, पर्यवेक्षण, समन्वय, जांच-पड़ताल तथा नियंत्रण एक जैसे ही प्रतीत होते हैं, जबकि इनमें काफी अन्तर है। नियंत्रण संगठन की अधिकांशप्रक्रियाओं का एक उद्देश्य है जो संगठन के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये आवश्यक है।

शब्दकोषीय दृष्टि से नियंत्रण- निर्देश देने, आदेश देने तथा प्रबन्ध करने की सत्ता और शक्ति नियंत्रण है या दूसरे शब्दों में किसी चीज का प्रबन्ध अथवा प्रतिबन्ध नियंत्रण है।

हेमैन के शब्दों में ''नियंत्रण, देखभाल करने की एक प्रक्रिया है, ताकि यह पता किया जा सके कि नियोजन का अनुसरण किया जा रहा है या नहीं, लक्ष्यों की दिशा में प्रगति हो रही है या नहीं और यदि आवश्यक हो तो सुधार के लिये क्या प्रयास किया जाये।''

मैकफारलैण्ड के अनुसार, ''नियंत्रण एक प्रक्रिया है, जिसके द्वारा अधिकारी अपने अधीनस्थों के निष्पादन की तुलना निर्धारित योजनाओं, आदेशों, उद्देश्यों अथवा नीतियों के अनुसार अथवा इनके निकट करते हैं।''

वस्तुतः उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि नियंत्रण, संगठन की व्यवस्था को बनाये रखने तथा उसके उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये एक 'सुधारात्मक उपाय' है, जिसे प्रायः 'प्रबन्ध का नकारात्मक पक्ष' भी मान लिया जाता है। वास्तव में नियंत्रण, जवाबदेयता को सुनिश्चित करने की एक विधि या आवश्यकता है। प्रभावशाली नियंत्रण के लिये सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व 'समय' है, अर्थात् कार्य एवं प्रक्रिया पर नियंत्रण समय रहते किया जाना चाहिये।

7.3 लोक प्रशासन पर नियंत्रण की आवश्यकता

लोक प्रशासन पर नियंत्रण की आवश्यकता के संबंध मेंप्रो0 व्हाइट कहा कि, ''लोकतांत्रिक समाज में शक्ति पर नियंत्रण आवश्यक है। शक्ति जितनी अधिक है, नियंत्रण की भी उतनी ही अधिक आवश्यकता है।'' आज के आधुनिक लोक कल्याणकारी राज्य के सन्दर्भ में ये बात और अधिक तर्कसंगत नजर आती है। आज राज्य ने लोक सेवाओं के द्वारा अपने नागरिकों को अपने ऊपर और अधिक से अधिक निर्भर बना लिया है। राज्य के ऊपर बढ़ते हुए कार्यों के बोझ ने प्रशासकीय शक्ति में स्वाभाविक रूप से विस्तार क्या है। आज प्रशासन असीमित शक्तियों का केन्द्र बन गया है। लोक प्रशासन और उसका सेवी-वर्ग अपनी शक्तियों का दुरूपयोग ना करे, निरंकुश और अनुत्तरदायी न बने, इसके लिये यह आवश्यक है कि उनकी शक्तियों को नियंत्रित किया जाये और इन पर अंकुश रखा जाये। एक प्रजातांत्रिक समाज में शक्ति पर नियंत्रण रखना और अधिक इसलिये भी आवश्यक हो जाता है, क्योंकि जनतंत्र में प्रशासन का संचालन जनहित के लिये जनता की सहमति से किया जाता है। अतः यह आवश्यक है कि प्रशासन जनता के प्रति प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उत्तरदायी रहे। दूसरे शब्दों में कहें, तो लोक प्रशासन को जनता के प्रति उत्तरदायी तथा संवेदनशील बनाने हेतु सार्थक तथा प्रभावी नियंत्रण व्यवस्था का होना आवश्यक है। प्रशासन और उससे सम्बन्धित लोग जब अपनी सत्ता का दुरूपयोग करने लगते हैं, तो बड़े से बड़े कार्यपालक को भी सत्ता से हाथ धोना पड़ता है। अगस्त 1990 के प्रथम सप्ताह में, जब पाकिस्तान के राष्ट्रपति ने प्रधानमंत्री बेनजीर भुट्टो को बर्खास्त किया तो उन पर सबसे प्रमुख आरोप यह लगाया गया था कि बेनजीर, उसके पति आसिफ जरदारी, मां नुसरत भुट्टो एवं अन्य सम्बन्धियों ने अपनी सत्ता एवं शक्ति का पूर्णतः दुरूपयोग किया था तथा उन पर मुकदमा भी चलाया गया। लार्ड एक्टन (Lord Acton) ने इस सन्दर्भ में ठीक ही कहा है कि, ''शक्ति भ्रष्ट करती है और पूर्ण शक्ति पूर्णत भ्रष्ट करती है।'' अतः लोक प्रशासन पर नियंत्रण की अनिवार्यता से इन्कार नहीं किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त लोक प्रशासन पर नियंत्रण के दो और उद्देश्य होते हैं, प्रथम- वित्तीय संसाधनों का दुरूपयोग रोकना एवं द्वितीय- संविधान, कानून, नीतियां तथा निर्धारित नियमों के अनुरूप प्रशासनिक कार्यों का संचालन कराना। सामान्यतः वित्तीय नियंत्रण के लिये वित्त मंत्रालय, नियंत्रक एवं महालेखा

परीक्षक तथा संसदीय प्रक्रियाऐं एवं समितियां महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। लेकिन लोक प्रशासन पर नियंत्रण के तीन प्रमुख स्वरूप हैं- संसदीय नियंत्रण/विधायी नियंत्रण, कार्यपालिका नियंत्रण और न्यायिक नियंत्रण।
इस प्रकार शासन के इन तीनों अंगों के माध्यम से लोक प्रशासन पर नियंत्रण स्थापित किया जाता है।

7.4 प्रशासन पर कार्यपालिका नियंत्रण

लोक प्रशासन से सम्बन्धित संगठनों पर नियंत्रण न सिर्फ विधायिका और न्यायपालिका द्वारा स्थापित किया जाता है बल्कि स्वयं कार्यपालिका भी प्रशासन पर नियंत्रण स्थापित करती है। कार्यपालिका नियंत्रण लोक प्रशासन को नियंत्रित करने का एक महत्वपूर्ण साधन है। इसे आन्तरिक नियंत्रण के नाम से भी जाना जाता है। शासन के अंगों में कार्यपालिका एक महत्वपूर्ण हिस्सा है जो कानूनों के क्रियान्वयन तथा कल्याणकारी नीतियों के निर्माण एवं निष्पादन के लिये उत्तरदायी होता है। संसदीय शासन प्रणाली वाले देशों में शासन की नीतियों का निर्धारण कार्यपालिका द्वारा किया जाता है। उत्तरदायी शासन प्रणाली में शासन के समस्त कार्यों का उत्तरदायित्व कार्यपालिका पर होता है, जो अपने कार्यो के लिये संसद के प्रति उत्तरदायी होती है। यद्यपि प्रशासक स्वयं नीतियों का क्रियान्वयन करते हैं। किन्तु उनके आचरण को कार्यपालिका की आशाओं के अनुरूप बनाये रखने हेतु कार्यपालिका के नियंत्रण की आवश्यकता होती है। संसदीय, विधायी तथा न्यायिक नियंत्रण के साथ कार्यपालिका नियंत्रण लोक प्रशासन के कार्यकरण को अत्यधिक प्रभावित करता है। यदि यह कहा जाये, कि कार्यपालिका द्वारा किया जाने वाला नियंत्रण सर्वाधिक प्रभावशाली सिद्ध हो सकता है, तो काई अतिश्योक्ति नहीं होगी।
संसदीय लोकतंत्र वाले देशों में (भारत) कार्यपालिका के दो स्वरूप होते हैं। नाममात्र की कार्यपालिका एवं वास्तविक कार्यपालिका। नाममात्र की कार्यपालिका के रूप में राष्ट्रपति औपचारिक अथवा संवैधानिक प्रमुख होता है, जबकि राष्ट्रपति की शक्तियों को व्यवहार में काम में लेने के लिए प्रधानमंत्री तथा मंत्रिपरिषद् होती है, जिसे वास्तविक कार्यपालिका भी कहते हैं। उत्तरदायी शासन व्यवस्था में विभाग के भीतर होने वाले सम्पूर्ण कार्य का उत्तरदायित्व विभागीय मंत्री का ही होता है, क्योंकि मंत्रिमण्डलीय उत्तरदायित्व, संसदीय शासन प्रणाली की एक प्रमुख विशेषता मानी जाती है। कार्यपालिका को संसद में जवाब देने के लिये तथा संसदीय उत्तरदायित्व निभाने के लिये ये आवश्यक है, कि कार्यपालिका स्वयं अपने विभाग के कार्यकलापों, उच्चाधिकारियों एवं नीतियों का पर्यवेक्षण और निरीक्षण करे। इसके लिये मंत्री का अपने विभाग पर नियंत्रण होना आवश्यक माना जाता है। आजकल शासन की नीतियों का निर्धारण कार्यपालिका द्वारा किया जाता है और नीतियों का क्रियान्वयन सेवी- वर्ग द्वारा किया जाता है। इसलिये सेवी-वर्ग पर, जो शासन की नीतियों का क्रियान्वयन करते हैं, कार्यपालिका के नियंत्रण की आवश्यकता सुस्पष्ट है। प्रो0 एफ0 ए0 निग्रो के अनुसार, ''कार्यपालिका का नियंत्रण विभागीय कार्यवाही के लिये तथा निर्धारित नीति के माध्यम से कार्य कराने के लिये अति आवश्यक है।'' लोक सेवा से सम्बद्ध किसी अधिकारी और कर्मचारी को, उसके द्वारा किये गये कार्यो के उत्तरदायित्वों के लिये कभी संसद के समक्ष नहीं बुलाया जा सकता है। समस्त सफलताओं और असफलताओं का उत्तरदायित्व सम्बन्धित विभाग के मंत्री का होता है। यदि वह संसद में अपने विभाग से सम्बन्धित पूछे गये प्रश्नों के सन्तोषप्रद उत्तर नहीं दे पाता है, और सदन को सन्तुष्ट नहीं कर पाता है, तो ऐसी स्थिति में उसे स्वयं को अपने पद से त्याग-पत्र देना पड़ता है। कभी-कभी सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्त के अनुरूप पूरे मंत्री-मण्डल को ही त्याग-पत्र देना पड़ता है। अतः इतने बड़े उत्तरदायित्व का निर्वहन करने के लिये ये स्वाभाविक रूप से आवश्यक हो जाता है कि कार्यपालिका का प्रशासन पर प्रभावशाली नियंत्रण हो। अतः दूसरे शब्दों में इस बात को इस प्रकार भी समझ सकते हैं कि संसदीय शासन प्रणाली में मंत्रीपरिषद् ही सर्वोच्च शक्ति सम्पन्न कार्यपालिका होती है, जो अधीनस्थ कार्मिकों (लोक सेवकों) पर नियंत्रण स्थापित करती है। एक प्रकार से कर्मचारी तंत्र, कार्यपालिका का ही अधीनस्थ भाग है जिस पर उच्च स्तरीय कार्यपालिका नियंत्रण करती है। ई0एन0 ग्लेडन ने तीन प्रकार के साधन बताये,

जिनके द्वारा कार्यपालिका प्रशासन पर नियंत्रण करती है। प्रथम, मंत्रियों द्वारा नीति निर्माण करके तथा राजनीतिक निर्देशों के द्वारा; द्वितीय, राष्ट्रीय बाजार का संचालन; तथा तृतीय, नियुक्ति का अधिकार। इन तीन साधनों सहित कुछ और प्रमुख साधन हैं, जिनके माध्यम से कार्यपालिका द्वारा नियंत्रण स्थापित किया जा सकता है। आइये उनका विस्तार से अध्ययन करते हैं-

1. **नीति निर्माण द्वारा नियंत्रण-** शासन व्यवस्था को भंली-भाँति संचालित करने, संवैधानिक लक्ष्यों की प्राप्ति करने तथा सम्बन्धित राजनीतिक दल की घोषणाओं को यथार्थ रूप देने के लिये विभिन्न प्रकार की नीतियाँ बनायी जाती है। मुख्य कार्यपालिका ही मुख्य प्रशासक होती है। इस हैसियत से वह नीति निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। संसदीय प्रणाली में मंत्रिमण्डल नीतियों का निर्माण करके सदन में स्वीकृत कराने के लिये उत्तरदायी है। इसके अलावा विभागीय मंत्री मुख्य कार्यपालिका एवं मंत्रिमण्डल से सलाह लेकर स्वयं भी अनेक नीतियों को निर्धारित करता है, जो सम्बन्धित विभागों में लागू की जाती है।

   विभागीय मंत्री के पास निर्देशन, निरीक्षण, पर्यवेक्षण एवं नियंत्रण की शक्ति होती है, जिसका प्रयोग वह लोक सेवा से सम्बन्धित विभिन्न विभागों के लिए करता है। प्रत्येक उच्चाधिकारी और कर्मचारी अपने कार्य के लिये विभाग के मंत्री के प्रति उत्तरदायी होता है। विभागीय मंत्री या मुख्य कार्यपालिका स्वयं भी, अनेक विभागों के कार्यकलापों का स्थल पर जाकर औचक (अचानक, बिना किसी पूर्व सूचना के) निरीक्षण करता है और दोषी कर्मचारियों एवं अधिकारियों पर तत्काल अनुशासनात्मक कार्यवाही करता है। मंत्री, विभागीय अधिकारियों को आवश्यक आदेश और निर्देश भी जारी करता है। समस्त विभागीय अधिकारी और कर्मचारी, मंत्री के निर्देशन और नियंत्रण में कार्य करते हैं। मंत्री उच्चाधिकारियोंका एक शाखा से दूसरी शाखा में तबादला कर सकता है। मंत्री किसी भी फाईल को मंगवाकर उससे सम्बन्धित समस्त कार्यवाहियों की जाँच कर सकता है। तात्पर्य यह है कि मंत्री विभाग पर पूरा नियंत्रण रखता है अर्थात् कोई भी प्रशासनिक अधिकारी या कर्मचारी मंत्रिपरिषद् द्वारा बनायी गई नीतियों का उल्लंघन नहीं कर सकता हैं और इस प्रकार प्रशासन पर नियंत्रण स्थापित करने में सरकार की नीतियाँ महत्वपूर्ण साधन सिद्ध होती हैं।

2. **नियुक्ति तथा निष्कासन के द्वारा नियंत्रण-** 'नियुक्ति' एवं 'विमुक्ति' अर्थात् निष्कासन भी प्रशासन पर कार्यपालिका नियंत्रण का एक महत्वपूर्ण साधन बन जाता है। मंत्री, जो अपने विभाग का प्रमुख होता है अपने सचिव और विभागाध्यक्ष का चयन स्वयं करता हैं, ताकि उसके साथ वह स्वयं सामंजस्यपूर्ण वातावरण में काम कर सके। लोक सेवा के कार्मिकों की भर्ती का कार्य प्रायः संघ लोक सेवा आयोग और राज्यों के लोक सेवा आयोग द्वारा ही किया जाता है, परन्तु भर्ती के नियम कार्यपालिका द्वारा निर्देशित किये जाते हैं। इसके अतिरिक्त विभिन्न पदों के लिये प्रत्याशी में क्या योग्यता होनी चाहिये? कितना अनुभव होना चाहिये? और आयु क्या होनी चाहिये? आदि सभी बातों का निर्धारण भी मुख्य कार्यपालिका के द्वारा ही किया जाता है। जिस प्रकार भर्ती या नियुक्ति से सम्बन्धित सभी तत्वों का निर्धारण मुख्य कार्यपालिका द्वारा किया जाता है, ठीक उसी प्रकार इसे अर्थात् विभागीय मंत्री को कई प्रकार के अधिकारियों एवं कर्मचारियों को निष्कासित करने का भी अधिकार होता हैं। या यूँ कहें कि कार्यपालिका को लोक-सेवकों को निष्कासित करने का अधिकार भी होता है। अनुच्छेद 310(1) के अनुसार, संघ एवं राज्यों के लोक-सेवक राष्ट्रपति या राज्यपाल के प्रसाद-पर्यन्त पद धारण करते हैं। अर्थात् लोक-सेवकों की नियुक्ति एवं निष्कासन में कार्यपालिका को अन्तिम शक्ति प्राप्त है। यद्यपि राष्ट्रपति या राज्यपाल अपनी इच्छा से किसी भी कार्मिक को बिना वजह निष्कासित नहीं करते हैं,

क्योंकि संविधान लोक-सेवकों को संरक्षण भी प्रदान करता है। अतः नियुक्ति और निष्कासन के अस्त्र के द्वारा मंत्री विभाग पर प्रभावकारी नियंत्रण रखता है।

अमेरिका में यद्यपि उच्च पदों पर नियुक्ति के लिये राष्ट्रपति को सीनेट की अनुमति लेना जरूरी है, लेकिन उसको हटाने में वह स्वतंत्र होता है। वहाँ कार्मिक प्रबन्ध कार्यालय (O.P.M.) कार्मिक प्रबन्ध में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। अतः कहा जा सकता है कि नियुक्ति और निष्कासन के अस्त्र द्वारा मुख्य कार्यपालिका प्रशासन पर या दूसरे शब्दों में मंत्री अपने विभाग पर पूरा एवं प्रभावशाली नियंत्रण रखता हैं।

3. **बजट प्रणाली के द्वारा नियंत्रण-** बजट, आधुनिक प्रशासनिक संस्थान की प्राण वायु है। इस दृष्टि से बजट को प्रशासन पर मुख्य कार्यपालिका के कठोर नियंत्रण स्थापित करने के अस्त्र के तौर पर भी देखा जाता है। बजट निर्माण प्रत्येक प्रशासनिक संगठनों द्वारा किया जाता है, किन्तु इसका अन्तिम प्रारुप, वित्तीय कार्य-प्रणाली तथा आर्थिक नीतियाँ, मंत्रिपरिषद् द्वारा ही स्वीकृत होती हैं। या दूसरे शब्दों में कहें, तो प्रत्येक विभाग को अपनी वित्तीय आवश्यकताओं के लिये कार्यपालिका पर ही निर्भर रहना पड़ता है। कार्यपालिका ही बजट तैयार करती है, व्यय को निर्धारित करती है तथा आय के स्त्रोतों की भी व्याख्या करती है। विभागों को राशि आवंटित करने का अधिकार भी मुख्य कार्यपालिका के पास ही होता हैं। इस आवंटित धनराशि के भीतर ही उच्चाधिकारी अपने कार्यों का संचालन करते हैं, या यूँ कह सकते हैं कि धन को इन वित्तीय नियमों के अनुसार ही खर्च किया जा सकता है। विभागों की सम्पूर्ण आय-व्यय का लेखा-जोखा रखा जाता है और उन लेखों का लेखा-परीक्षण भी होता हैं। अतः इस प्रकार मंत्रिपरिषद् द्वारा स्वीकृत बजट ही व्यवस्थापिका में प्रस्तुत किया जाता है और वही स्वीकृत होता है। इसी बजट की क्रियान्विति प्रशासनिक अधिकारियों द्वारा की जाती है। इस दिशा में वित्त मंत्रालय भी बहुत प्रभावी एवं महत्वपूर्ण भूमिका में होता है। बजट द्वारा प्रशासन पर नियंत्रण से मुख्य तत्वों को बिन्दुवार कुछ इस प्रकार से समझा जा सकता है-

- सैद्धान्तिक रूप से नीतियों, कार्यक्रमों, योजनाओं का अनुमोदन बजट के अन्तर्गत होता हैं।
- बजट में प्रावधानित पूर्वानुमानों की स्वीकृति।
- प्रत्यायोजित अधिकारों के तहत किये गये खर्चों की स्वीकृति।
- अनुदानों का पुनर्विनियोग करके अर्थात् अनुदान राशि का शीर्ष बदलकर जिससे एक मद की राशि दूसरे मद में व्यय की जा सके।
- एक वित्तीय सलाहकार के माध्यम से वित्तीय सलाह उपलब्ध करवाना।
- व्यय-प्राधिकारियों के लिये वित्तीय आचार संहिता का निर्धारण करके।
- बजट के क्रियान्वयन का लेखांकन और लेखा परीक्षण करके।

4. **प्रदत्त व्यवस्थापन द्वारा नियंत्रण-** आजकल विधायिका के कार्यकलापों में वृद्धि होने के कारण व्यवस्थापिका अनेक मामलों में विधि-निर्माण का कार्य कार्यपालिका को सौंप देती हैं। कार्यपालिका को विधि-निर्माण का कार्य सौंपे जाने का एक और कारण ये भी होता है, कि व्यवथापिका के पास ना तो पर्याप्त समय होता है और ना ही तकनीकी मामलों का ज्ञान। ऐसे में जब विधायिका के द्वारा कानून निर्माण की शक्ति किसी भी कारण से, कार्यपालिका को सौंप दी जाती है, तो इसे प्रदत्त विधायन या व्यवस्थापन कहा जाता है। प्रदत्त व्यवस्थापन की स्थिति में, विधायिका कानून का एक मोटा प्रारुप या ढाँचा तैयार करके उसकी सम्बन्धित बारीकियों पर विधि निर्माण करने का कार्य या अधिकार कार्यपालिका को दे देती हैं। इसके उपरान्त कार्यपालिका विधायिका द्वारा प्राप्त ढाँचे के आधार पर अपनी उपयोगिताओं और

आवश्यकताओं के अनुसार विधि-निर्माण करती हैं। इस विधि-निर्माण में बहुत से विभागों के संगठन, अधिकारियों की नियुक्ति एवं सेवा शर्तें, अधिकार-क्षेत्र आदि कर्तव्यों को भी निर्धारित किया जाता है। भारत तथा कई अन्य देशों में यह भी प्रावधान है, कि ऐसे समय में जब सदन का सत्र नहीं चल रहा होता है तो अनुच्छेद-123 के तहत कार्यपालिका (राष्ट्रपति) अध्यादेश भी जारी कर सकता हैं। लेकिन यह अध्यादेश अस्थायी होता हैं। अगर अध्यादेश को निर्धारित समय के भीतर विधायिका द्वारा पास नहीं कराया जाता हैं तो वे अप्रभावी हो जाते हैं। इस प्रकार प्रदत्त विधायन तथा कार्यपालिका द्वारा जारी किया गया अध्यादेश भी प्रशासन पर कार्यपालिका के नियंत्रण का एक महत्वपूर्ण तरीका बन जाता है।

5. **कर्मचारी संघों से सहयोग-** विभिन्न विभागीय पद-स्थिति, तकनीकी योजनाओं तथा कार्य-प्रणाली के आधार पर लोक-सेवकों के अनेक संघ या समूह बन जाते हैं। इनको कार्मिक संघों की संज्ञा दी जाती हैं। ये कार्मिक संघ अपने सदस्यों के विकास एवं कल्याण के प्रति सदा समर्पित होते हैं। इन कार्मिक-संघो को मान्यता देना तथा पंजीकृत करना सब कुछ सरकार के अधीन होता है। कार्यपालिका के द्वारा समय-समय पर इन कार्मिक-संघों के द्वारा कार्मिकों को नियंत्रित भी कराया जा सकता हैं।
6. **लोक सेवा आचार-संहिता-** लोक-प्रशासन के विभिन्न विभागों में काम करने वाले सभी लोक सेवकों या सरकारी कर्मचारियों के लिये एक आचार-संहिता बनी होती हैं। इस आचार-संहिता में लोक सेवकों के आचार-व्यवहार तथा कार्य-प्रणाली को अनुशासित, प्रतिबद्ध एवं जवाबदेह बनाने के कुछ प्रावधान किये गये होते हैं। इस आचार-संहिता का उल्लंघन करना लोक सेवकों के लिये दण्डनीय माना जाता है तथा ऐसा करने पर उन्हें अनुशासनात्मक कार्यवाही का सामना करना पड़ता हैं। ऐसे महत्वपूर्ण केन्द्रीय आचरण नियम है- अखिल भारतीय सेवा (आचरण) नियम-1954, केन्द्रीय लोक सेवा (आचरण) नियम-1955, रेलवे सेवा (आचरण) नियम-1956। इस प्रकार लोक सेवकों को नियंत्रित करने में ये आचार-संहिता भी एक साधन के तौर पर कार्य करती हैं।
7. **लोकमत से अपील-** लोकतंत्र में जनता सम्प्रभु होती हैं। ऐसा इसलिये क्योंकि लोकतंत्र में ऐसा माना जाता है कि शासन-सत्ता की बागडोर अप्रत्यक्ष रूप से जनता के हाथ में होती है। सरकार के द्वारा जिस प्रकार के कार्य किये जाते हैं, उनकी जो नीतियाँ होती हैं तथा जिस प्रकार की उनकी कार्य-प्रणाली होती हैं, इन सब से जनता प्रभावित होती रहती हैं। प्रशासनिक तंत्र में भी यदि किसी प्रकार की बुराइयाँ या व्याधियाँ व्याप्त होती हैं तो अनेक बार कार्यपालिका के द्वारा भी जनता से अपील की जाती है कि वो सरकार का इन व्याधियों से निपटने में साथ दे या सहयोग करे। सरकार या कार्यपालिका द्वारा जनता से की गयी ये अपीलें भी व्याप्क रूप से जनता के व्यवहार को प्रभावित करती हैं तथा निरंकुश नौकरशाही को इस बात का भय बना रहता हैं कि उनके अनियंत्रित होने पर जनता भी उन्हें कटघरे में खड़ा कर सकती है।
8. **स्टॉफ अभिकरणों द्वारा-** प्रशासन सुधार विभाग, योजना आयोग, मंत्रिमण्डलीय सचिवालय, प्रधानमंत्री कार्यालय आदि महत्वपूर्ण स्टॉफ अभिकरण भारत में कार्यरत हैं। इनकी सहायता से भी कार्यपालिका प्रशासन पर अप्रत्यक्ष नियंत्रण आरोपित करती हैं और उनमें परस्पर समन्वय बनाने का प्रयन्त करती हैं।
9. **कर्मचारी निरीक्षण एकक-** प्रशासनिक कार्यकुशलता बनाये रखते हुए, कर्मचारियों की संख्या में कमी लाने तथा कार्य निष्पादन मानदंड और कार्य मानक विकसित करने के उद्देश्य से कर्मचारी निरीक्षण एकक की स्थापना सन् 1964 में की गयी थी। बदले माहौल में और सरकार द्वारा बेहतर शासन तथा सेवाओं के परिष्कृत वितरण पर जोर दिये जाने को देखते हुए कर्मचारी निरीक्षण एकक की भूमिका को पुनर्निधारित किया गया है। इस एकक को अब इस तरह से तैयार किया गया है, कि वह सम्बन्धित मंत्रालयों और स्वायत्त सेवाओं को संगठनात्मक सुधार हेतु प्रेरित कर सकें। इस प्रकार उपरोक्त वर्णित साधनों के साथ ही डॉ0 अवस्थी एवं माहेश्वरी ने भी कार्यपालिका द्वारा प्रशासन पर नियंत्रण स्थापित करने के लिये 06

प्रकार के साधन बताये हैं- नियुक्ति एवं निष्कासन का अधिकार, विधि-निर्माण एवं अध्यादेश आदि के अधिकार, लोक-सेवा संहिता, कर्मचारी-वर्ग के समुदाय का अभिकरण, बजट और लोकमत से अपील।

7.5 प्रशासन पर कार्यपालिका के नियंत्रण की समस्याऐं

इस प्रकार आपने अब तक जाना कि, प्रशासन पर कार्यपालिका का नियंत्रण सिद्धान्त एवं व्यवहार दोनों ही रूपों में देखने को मिलता है। किन्तु समस्या यह उठती है कि क्या यह नियंत्रण प्रभावी बन पाता है? इस प्रश्न का उत्तर जानने के लिये प्रशासन पर कार्यपालिका के नियंत्रण में व्याप्त व्याधियों को जानना होगा, जिनका वर्णन कुछ इस प्रकार से किया जा सकता है-

1. **मंत्रियों का चयन राजनीति के आधार पर-** भारतीय राजनीति की एक विशेषता ये है कि यहाँ पर मंत्रियों को जब मंत्रिमण्डल में शामिल किया जाता है, तो उनको कौनसा विभाग मिलेगा यह महज एक संयोग की बात होती है। मंत्रियोंका चयन राजनीतिक आधार पर होता है। इसमें उनकी योग्यता की कोई भूमिका नहीं होती है और ना ही अनुभव ही इसका आधार होता है। मंत्री पद प्राप्त करने के लिये उन्हें गुटबन्दी और कई प्रकार की तिकड़मों का सहारा लेना पड़ता है। प्रधानमंत्री की इच्छा पर उनका मंत्री बनना तथा विभागों का बँटवारा निर्भर करता है। गठबन्धन की सरकारों में तो इस प्रकार की तिकड़म और भी महत्वपूर्ण हो जाते हैं। अतः राजनीतिक आधार पर चयनित, अधिकांशतः अयोग्य एवं अनुभवहीन माने जाने वाले मंत्री संयोगवश मिले मंत्रालय में कार्मिकों को प्रभावी रूप से नियंत्रि करने में सदा ही सफल रहते हैं, ऐसा जरूरी नहीं है।
2. **मंत्री पेशवर प्रशासक नहीं-** मंत्री, पेशेवर प्रशासक नहीं होते हैं और ना ही वो किसी विषय के विशेषज्ञ होते हैं। तकनीकी ज्ञान का भी उनमें अभाव पाया जाता हैं। इस कारण उन्हें अधिकारी वर्ग द्वारा बताये गये आंकड़ों और तरीकों पर ही निर्भर रहना पड़ता है। मंत्रियों को विभाग सौंपे जाने के बाद उनको कोई प्रशिक्षण भी नहीं दिया जाता है। फलतः ये अपने कार्यों के निष्पादन के लिये पूर्णरूप से नौकरशाहों पर निर्भर करते हैं। अतः ये स्थिति भी शिथिल नियंत्रण की ओर ही इशारा करती है।
3. **राजनेताओं के पास समय का अभाव-** राजेनता अर्थात् मंत्रीगण अपनी राजनीतिक गतिविधियों में इतने व्यस्त होते हैं, कि उनके पास विभागीय कार्यों को समझने हेतु समय ही नहीं होता। फलस्वरूप वो अपने कार्यकाल या सत्ता में बने रहने के दौरान भी वो केवल विपक्षी दलों के साथ राजनीतिक दाव-पेंचों तथा उठा-पटक में ही लगे रहते हैं, प्रशासन के कार्यों के प्रति अपना ज्ञान तथा तकनीक विकसित नहीं करते। फलस्वरूप उनके द्वारा स्थापित नियंत्रण भी अप्रभावी ही रहता हैं।
4. **सरकारों का अस्थायित्व-** कार्यापालिका द्वारा प्रशासन पर नियंत्रण को शिथिल तथा कमजोर बनाने में सरकार का अस्थायी होना भी एक महत्वपूर्ण कारण माना जाता है। कई बार सरकारों को किसी भी कारण से अपने निर्धारित समय से पूर्व सत्ता से जाना पड़ता है और उनका अनुभव, ज्ञान सब अधूरा रह जाता है। अतः वे अपने कार्यकाल का लाभ उठा कर भी नियंत्रण की प्रभावी तकनीक का ज्ञान नहीं ले पाते हैं।
5. **मंत्रियों के विभागों में परिवर्तन-** मंत्रियों के विभागों का परिवर्तन भी एक ऐसा तथ्य है, जो कार्यपालिका द्वारा प्रशासन पर नियंत्रण के मार्ग में बांधा बन जाते हैं। उदाहरण के तौर पर शिक्षा विभाग का मंत्री दो-चार महीनों या एक वर्ष में जब तक शिक्षा नीति को समझने का प्रयत्न करता है और कुछ नया करना चाहता है तो अचानक से उसको पट्रोलियम और रसायन मंत्रालय में दे दिया जाता हैं। ऐसे में इनके किसी भी मंत्रालय में सुधार, नियंत्रण, नयी तकनीक आदि सब के सुझाव और विचार, व्यवहार में आने से रह जाते हैं और उन्हें नये कार्य को नये सिरे से प्रारम्भ करना पड़ता है।

6. **मंत्रियों के विपरीत लोक-सेवकों का ज्यादा योग्य और कुशल होना-** जैसा कि आप जानते होंगे, कि राजनेताओं के लिये किसी प्रकार की न्यूनतम शैक्षणिक योग्यता की कोई अनिवार्यता नहीं होती हैं, अतः उनमें तकनीकी ज्ञान और कुशलता का अभाव पाया जाता हैं। वहीं दूसरी ओर लोक-प्रशासन के उच्चाधिकारी और कर्मचारी अपनी योग्यता, ज्ञान और कुशलता के आधार पर ही सेवा में आते हैं। अतः इस बात को आसानी से समझा जा सकता है, कि लोक-सेवकों में राजनेताओं से ज्यादा ज्ञान और अनुभव दोनों ही पाया जाता हैं। ऐसी स्थिति में मंत्री सदैव अधिकारियों पर ही आश्रित रहते हैं। साथ ही लोक-सेवक मंत्रियों को ज्यादा जागरूक बनाने की कोई कोशिश भी नहीं करते हैं, क्योंकि उनकी ऐसी मान्यता है, कि यदि मंत्री को ज्यादा जागरूक बना दिया गया या ज्यादा ज्ञान दे दिया गया तो इससे ना केवल उनके प्रभाव में कमी आयेगी, बल्कि मंत्रियों का उन पर दबाव तथा हस्तक्षेप भी बढ़ जायेगा। इस कारण अनेक बार उच्चाधिकारी मंत्री को जानकारी भी उतनी ही देते हैं, जिसके कारण वे बराबर विभाग के अधिकारियों पर आश्रित ही रहें एवं उनका नियंत्रण भी शिथिल ही रहे।

उपयुक्त सभी सीमाओं और समस्याओं को देखने के बाद ये बात स्पष्ट हो जाती है कि मंत्रियों का विभागों पर प्रभावी नियंत्रण अनेक कारणों से स्थापित नहीं हो पाता हैं। इसी कारण ये कहा जाता है, कि सरकार राजनीतिज्ञों के द्वारा नहीं बल्कि नौकरशाही के द्वारा चलती हैं। इंग्लैण्ड के सन्दर्भ में सिडनी लो ने कहा है कि, ''वित्त मंत्रालय में द्वितीय श्रेणी के क्लर्क का पद प्राप्त करने के लिए एक नौजवान को अंकगणित की प्रतियोगी परीक्षा में पास होना पड़ता हैं, किन्तु वित्त-मंत्री अधेड़ उम्र का ऐसा सांसरिक व्यक्ति भी हो सकता है, जो अंकों के विषय में उस थोड़ी बहुत जानकारी को भी भूल चुका है, जो उसने ईटन अथवा ऑक्सफोर्ड में प्राप्त की। उस दशमलवों में खजाने का लेखा जब उसके सामने पहली बार रखा जाता है, तब वह उन छोटे-छोटे बिन्दुओं का अर्थ जानने के लिये उत्सुक हो जाता है।'' लेकिन इन सब आलोचनाओं के बावजूद भी आज सन्तोषजनक स्थिति उभर कर सामने आने लगी है। मंत्री-मण्डल में विशेषज्ञों को स्थान दिया जाने लगा है। प्राध्यापक को शिक्षा मंत्री, अर्थशास्त्री को वित्त-मंत्री तथा वैज्ञानिक को विज्ञान एवं तकनीकी विभाग सौंपे जाने का प्रयास किया जा रहा हैं, जो विभागीय प्रशासन पर नियंत्रण करने में सक्षम हैं।

अभ्यास प्रश्न-

1. कार्यपालिका द्वारा लोक प्रशासन पर नियंत्रण का साधन क्या है?
2. 'कर्मचारी निरीक्षण एकक' की स्थापना कौन से वर्ष में की गयी?
3. विधि निर्माण के कार्य को जब कार्यपालिका को सौंप दिया जाता है तो वो क्या कहलाता है?
4. संविधान के कौन से अनुच्छेद के तहत राष्ट्रपति अध्यादेश जारी कर सकता है?

7.6 सारांश

इस अध्याय में आपने जाना कि संसदीय नियंत्रण तथा न्यायिक नियंत्रण के साथ कार्यपालिका नियंत्रण भी लोक-प्रशासन के कार्यकरण को प्रभावित करता है। संसदीय शासन प्रणाली वाले देशों में नीतियों का निर्धारण कार्यपालिका द्वारा किया जाता हैं और नीतियों का क्रियान्वयन सेवी-वर्ग द्वारा होता हैं। चूँकि कार्यपालिका अपने समस्त कार्यों के लिये संसद के प्रति उत्तरदायी होती है, अतः शासन की नीतियों का क्रियान्वयन करने वाले सेवी वर्ग पर नियंत्रण आवश्यक होता हैं। मुख्य कार्यपालिका ही मुख्य प्रशासक होती हैं और नीति-निर्माण, सरकारी अधिकारियों एवं कर्मचारियों की नियुक्ति तथा निष्कासन, बजट प्रणाली एवं प्रदत्त व्यवस्थापन आदि तकनीकों से नियंत्रण स्थापित करने की कोशिश करती हैं। परन्तु मंत्रियों के पास ज्ञान, समय, कुशलता आदि का अभाव कई ऐसे कारण होते हैं, जिनके कारण वो प्रशासन पर अपने नियंत्रण को प्रभावी नहीं बना सकते हैं। इसी कारण ऐसा भी कहा जाता है कि सरकार राजनीतिज्ञ से नहीं बल्कि नौकरशाह के द्वारा चलायी जाती हैं। सारांशतः कार्यपालिका

के द्वारा लोक प्रशासन पर नियंत्रण स्थापित करने की अनेक सीमाएँ हो सकती हैं, किन्तु निष्पक्ष एवं संवेदनशक्ति कार्यपालिका प्रभावी भूमिका निभाने में सक्षम होती हैं।

7.7 शब्दावली

संवेदनशील- भावुक या स्वीकार करने वाला, विशेषज्ञ- किसी विषय या क्षेत्र में विशेष जानकार, पेशेवर- व्यवासाय या काम, परिष्कृत- शुद्ध या सुधरा हुआ।

7.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. बजट, नियुक्ति और आचार संहिता, **2.** 1964, **3.** प्रदत्त व्यवस्थापन, **4.** अनुच्छेद- 123

7.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. आर0के0 दुबे, आधुनिक लोक प्रशासन, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा- 2004
2. डॉ0 सुरेन्द्र कटारिया, लोक प्रशासन, मलिक एण्ड कम्पनी, जयपुर- 2001

7.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. डॉ0 बी0 एल0 फड़िया, लोक प्रशासन, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।
2. अवस्थी एवं अवस्थी, भारतीय प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा- 2003

7.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. प्रशासन पर कार्यपालिका नियंत्रण से आप क्या समझते हैं? वर्णन कीजिये।
2. प्रशासन पर कार्यपालिका के नियंत्रण की आवश्यकताओं और सीमाओं का वर्णन कीजिये।

इकाई- 8 प्रशासन पर संसदीय(विधायी) नियंत्रण

इकाई की संरचना

8.0 प्रस्तावना
8.1 उद्देश्य
8.2 लोक प्रशासन पर संसदीय नियंत्रण
 8.2.1 संसद की नियमित प्रक्रियाओं द्वारा नियंत्रण
 8.2.2 संसदीय समितियों द्वारा नियंत्रण
  8.2.2.1 लोक लेखा समिति
  8.2.2.2 अनुमान समिति या प्राक्लन समिति
  8.2.2.3 लोक उपक्रमों पर समिति
8.3 प्रशासन पर संसदीय नियंत्रण की समस्याऐं
8.4 सारांश
8.5 शब्दावली
8.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
8.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
8.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
8.9 निबंधात्मक प्रश्न

8.0 प्रस्तावना

लोकतंत्र में लोक प्रशासन विधायिका के प्रति अनिवार्य रूप से उत्तरदायी होता है। जनता के प्रतिनिधि ही व्यवस्थापिका में होते हैं, वे जनता की इच्छा और आवश्यकता को ध्यान में रखकर नीतियों को निर्धारित करते हैं और व्यवस्थापिका द्वारा निर्धारित नीतियों का क्रियान्वयन कार्यपालिका के द्वारा किया जाता है। अतएव विधायिक के लिये ये अनिवार्य हो जाता है, कि वह लोक प्रशासन को नियंत्रित कर यह सुनिश्चित करें कि वह सार्वजनिक नीतियों को भली-भाँति सम्पादित करे। अपने इसी उत्तरदायित्व की पूर्ति हेतु संसदात्मक शासन प्रणाली में संसद को निषेधात्मक एवं विधेयात्मक दोनों ही प्रकार के कदम उठाने होते हैं। प्रस्तुत अध्याय में हम प्रशासन पर विधायी नियंत्रण के उपकरणों के बारे में विस्तार से चर्चा करेंगे।

8.1 उद्देश्य

इस इकाई का उध्ययन करने के उपरान्त आप-

- संसदीय नियंत्रण की आवश्यकताके महत्व को समझ पायेंगे।
- संसदीय नियंत्रण कितनेप्रकार का होता है? इस संबंध में जान पायेंगे।
- संसदीय नियंत्रण की सीमाओं का विस्तृत अध्य्यन कर पायेंगे।

8.2 लोक प्रशासन पर संसदीय नियंत्रण

संसद या विधायिका जन प्रतिनिधि संस्था होती है, जो जनता की इच्छाओं को कानून के रूप में व्यक्त करती है। संसदीय शासन-प्रणाली में तो कार्यपालिका सामूहिक रूप से व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी होती है। विधायिका विधि का निर्माण करती है, विचार-विमर्श करती है और साथ ही साथ प्रशासन पर नियंत्रण रखने का काम भी करती है। जनता के प्रतिनिधि व्यवस्थापिका में होते हैं, वे जनता की इच्छा और आवश्यकता को ध्यान में रखकर नीतियों को निर्धारित करते हैं और व्यवस्थापिका द्वारा निर्धारित नीतियों का क्रियान्वयन मंत्रियों के माध्यम से

प्रशासन ही करता है। प्रशासन की किसी असफलता, अकार्यकुशलता, विलम्ब अथवा अनियमितता के लिये अन्ततोगत्वा मंत्री-परिषद ही उत्तरदायी होती है। इन सब आरोपों को उन्हें अपने ऊपर ही लेना पड़ता है, जिसका दण्ड साधारण भी हो सकता है। जैसे- अप्रसन्नता व्यक्त करना और कठोर भी हो सकता है जिसमें मंत्री-परिषद को हटाया भी जा सकता है। अतः प्रशासन पर संसदीय नियंत्रण की आवश्यकता का पहला महत्त्वपूर्ण कारण प्रशासन की जागरूकता, ईमानदारी, कार्यकुशलता आदि को बनाये रखना होता है और इसके लिये मंत्री-परिषद को स्वयं को सतर्क रहना पड़ता है। अतएव दूसरे शब्दों में विधायिका के लिये यह अनिवार्य हो जाता है कि वह देखे कि लोक प्रशासन सार्वजनिक नीतियों को ढंग से क्रियान्वित कर पा रहे हैं अथवा नहीं। इसके अतिरिक्त प्रशासन पर संसदीय नियंत्रण की आवश्यकता का दूसरा महत्वपूर्ण कारक शासकीय क्रियाओं में उचित समन्वय नहीं रह पाना है। एक ही कार्य के विभिन्न पहलुओं से जब अनेक विभाग सम्बन्धित हो जाते हैं तो नौकरशाही का विकृत रूप सामने आता है, जिसके परिणामस्वरूप सामान्य जनता को कठिनाईयों एवं परेशानियों का सामना करना पड़ता है। अतः प्रशासन पर संसदीय नियंत्रण अपरिहार्य है। संसद के द्वारा यह नियंत्रण प्रायः मुख्य कार्यपालिका के माध्यम से रखा जाता है। इसकी प्रकृति राजनीतिक होती है। इस कार्य में संसद की विभिन्न समितियाँ भी योगदान करती हैं। यहाँ हम संसदीय शासन प्रणाली वाले देशों में विधायी अथवा संसदीय नियंत्रण के साधनों के बारे में विस्तृत विवेचना करेंगे।

भारत में राष्ट्रपति, लोकसभा (निम्न सदन) तथा राज्य सभा (उच्च सदन) मिलकर संसद कहलाते हैं। संसदीय नियंत्रण को विधायी नियंत्रण भी कहा जाता है, क्योंकि देश के समस्त कानूनों या विधानों को स्वीकृति संसद के द्वारा प्राप्त होती है। संसदीय नियंत्रण के दो प्रकार होते हैं- संसद की नियमित प्रक्रियाओं के द्वारा नियंत्रण और संसदीय समितियों द्वारा नियंत्रण।

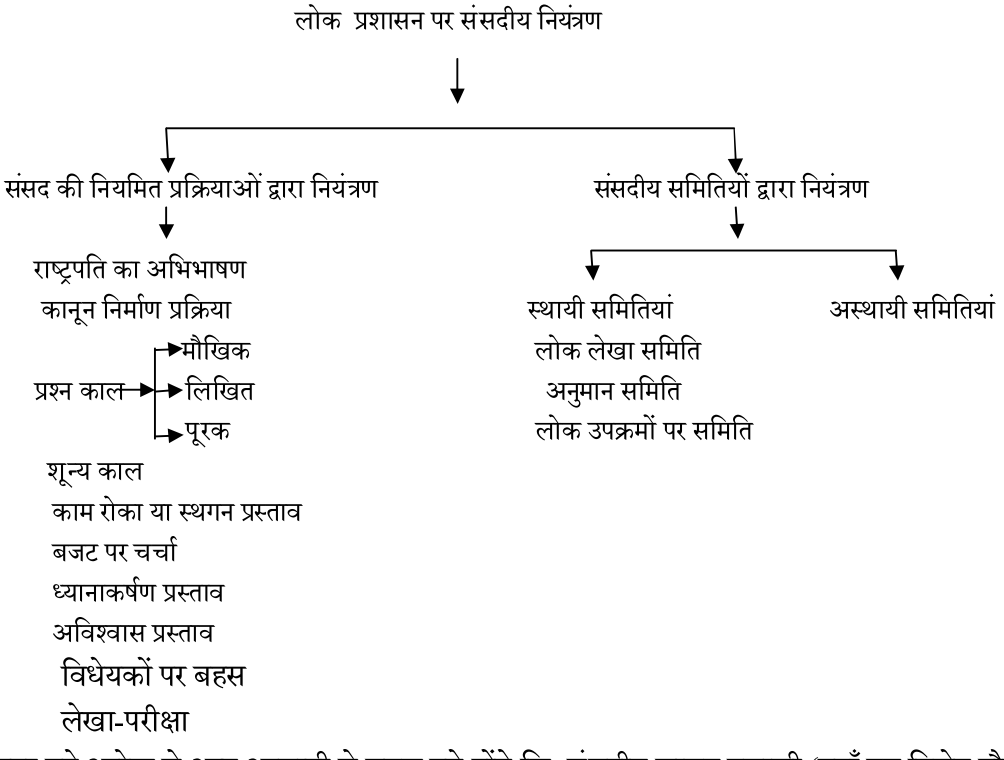

इस प्रकार ऊपर बने आरेख से आप आसानी से समझ गये होंगे कि, संसदीय शासन प्रणाली (यहाँ हम विशेष तौर पर भारतीय संदर्भ को ध्यान में रखकर चर्चा करेंगे) में, प्रशासन पर संसदीय नियंत्रण की स्थापना किस प्रकार की जाती है।

8.2.1 संसद की नियमित प्रक्रियाओं द्वारा नियंत्रण

लोकतांत्रिक शासन प्रणालियों में विधायी नियंत्रण एक महत्वपूर्ण साधन है, जो सरकार के कानूनों, नीतियों तथा बजट की स्वीकृति के अतिरिक्त अन्य कई तरीकों से लोक प्रशासन को सजग, सक्रिय एवं जवाबदेह बनाये रखने में सहायक है। जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि, विधायिका में बैठकर न केवल देश का भविष्य तय करते हैं, बल्कि प्रवर्तित प्रशासनिक प्रक्रियाओं की भी समीक्षा करते हैं। जन-साधारण की इच्छाओं, आकांक्षाओं तथा समस्याओं को राष्ट्र के सम्मुख लाने तथा उन पर सार्थक बहस करने का एकमात्र सशक्त मंत्र विधायिका ही है। प्रत्येक देश विशेषतः संसदीय लोकतांत्रिक प्रणाली में विपक्षी राजनीतिक पार्टियाँ सत्तारूढ़ सरकार को आये दिन कटघरे में खड़ा कर, सन्तोषजनक उत्तर मांगती हैं, क्योंकि वास्तविक कार्यपालिका सदन के प्रति जवाबदेह भी होती है। भारतीय संसदात्मक शासन प्रणाली में कतिपय ऐसी प्रक्रियाऐं हैं, जो लोक प्रशासन पर नियंत्रण स्थापित करने में प्रभावी सिद्ध होती हैं, इनका वर्णन कुछ इस प्रकार हैः-

1. **राष्ट्रपति का अभिभाषण(President Speech)-** भारत, ब्रिटेन, कनाडा, इत्यादि संसदीय प्रणाली वाले देशों में राजाध्यक्ष के भाषण से संसद का प्रत्येक नया सत्र आरम्भ होता है। राजाध्यक्ष अथवा राष्ट्रपति के इस अभिभाषण में शासन की प्रमुख नीतियों, वर्तमान एवं भावी योजनाओं, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय गतिविधियों के प्रति सरकार के दृष्टिकोणों एवं प्रशासनिक कदमों की चर्चा होती है। इस अभिभाषण के धन्यवाद प्रस्ताव पर वाद-विवाद करने के लिये सदन को तीन-चार दिन का समय दिया जाता है। इस दौरान विपक्षी दलों के सदस्य सरकार के कार्यकाल तथा नीतियों की आलोचना करने एवं सामयिक समस्याओं को उजागर करने में पर्याप्त रूचि प्रदर्शित करते हैं। अभिभाषण में सत्तारूढ़ दल की कार्यशैली का ही वर्णन होता है, जिसमें अनेक ऐसे बिन्दु मिल जाते हैं जिन पर पर्याप्त चर्चा हो जाती है। इस सबके फलस्वरूप जनमत जागरूक होता है और प्रशासन सतर्क होता है।
2. **कानून-निर्माण प्रक्रिया(Law Making Process)-** प्रमुख रूप से विधायिका कानून का निर्माण करती है। विधायिका द्वारा निर्मित कानून के दायरे में रहकर ही प्रशासन उसे क्रियान्वित करते हैं। विधायिका द्वारा अनेक ऐसे कानूनों का निर्माण किया जाता है, जिसमें प्रशासन के संगठन, कार्यों, नियमों तथा अधिकार-क्षेत्रों का निर्धारण कानून में ही कर दिया जाता है। नये कानूनों और नये कार्यों के आधार पर नये विभाग भी खोलने पड़ते हैं। इसके साथ ही विधायिका प्रशासकीय नीतियों का निर्धारण भी समय-समय पर करती रहती है। कुछ मामलों में प्रदत्त व्यवस्थापन(Delegated Legislation) के द्वारा विधायिका कानून-निर्माण की शक्ति कार्यपालिका को देती अवश्य है, परन्तु कार्यपालिका व्यवस्थापिका द्वारा प्रदत्त सीमा के अन्दर ही नियम बनाती है।
3. **प्रश्न काल(Question Hour)-** संसदीय शासन-प्रणाली वाले देशों में मंत्री-मण्डल सामूहिक रूप से संसद के प्रति उत्तरदायी होता है। प्रत्येक संसद सदस्य को यह अधिकार होता है कि वो किसी भी प्रकार की समस्या और अव्यवस्था के सन्दर्भ में सम्बन्धित मंत्री से प्रश्न पूछे। इस प्रकार के प्रश्न पूछे जाने की प्रक्रिया संसदीय नियंत्रण का सबसे लोकप्रिय माध्यम माना जाता है। संसद में पूछे गये प्रश्नों का उत्तर पाने का अधिकार प्रत्येक संसद सदस्य को है। मंत्री अपने अधीनस्थों की सहायता से पूछे गये प्रश्नों का उत्तर तैयार करता है और सदन में उसका जवाब प्रस्तुत करता है। इसी कारण जब तक संसद या राज्य विधान-मण्डलों का सत्र चल रहा होता है, तब तक कोई भी प्रशासनिक अधिकारी शिथिलता प्रदर्शित नहीं करता। यद्यपि मंत्री किसी प्रश्न का उत्तर देने के लिये बाध्य नहीं है, किन्तु वह अपने इस विशेषाधिकार का प्रयोग प्रायः कम या नहीं के बराबर करता है। ऐसा इसलिय, क्योंकि इससे उसकी जनता के समक्ष छवि खराब होने का भय रहता है। रॉब्सन ने प्रश्न पूछे जाने की परम्परा की महत्ता को बताते हुए कहा कि ''सदन में खुले रूप में मंत्रियों से जो प्रश्न पूछे जाते हैं, उनके परिणामस्वरूप सम्पूर्ण

असैनिक सेवा को चौकन्ना रहना पड़ता है।'' इसी प्रकार ह्यूगै ट्सकिल(Hugh Gaitskell) ने लिखा है कि ''कोई भी व्यक्ति जिसने किसी भी विभाग में कार्य किया है वह मेरी इस बात से सहमत होगा कि एक मुख्य कारण जिसकी वजह से सेवी-वर्ग अत्यन्त सतर्कता बरतता है तथा अपना समस्त विवरण सावधानी से रखता है, वह है संसद में पूछे जाने वाले प्रश्न का उसे भय।''

संसद की कार्यवाही के प्रत्येक दिन के प्रारम्भ का एक घण्टा प्रश्न पूछने के लिये ही निर्धारित किया जाता है। औसतन तीन मौखिक प्रश्न प्रतिदिन पूछे जाते हैं। जिनका उत्तर दिया जाता है। यद्यपि सभी प्रश्न गम्भीर तथा तात्कालिक महत्व के नहीं होते हैं, परन्तु सामान्यतया प्रश्न पूछने के लिये सम्बन्धित मंत्री को 10 दिन का समय देना आवश्यक है, किन्तु गम्भीर तथा तत्कालिक महत्व के प्रश्नों पर यह बाध्यता लागू नहीं होती है। संस्द में सदस्य तीन प्रकार के प्रश्न पूछते हैं- मौखिक, पूरक और लिखित। कई बार इनको तीन श्रेणियों में विभक्त करके भी समझाया जाता है। जैसे- तारांकित(Starred), अतांराकित(Unstarred) तथा अल्पसूचना प्रश्न। यह सदन के अध्यक्ष या सभापति के विवेक पर निर्भर करता है कि वह किसी प्रश्न को तारांकित श्रेणी में रखें या अतारांकित श्रेणी में। तारांकितप्रश्नों पर तारा (स्टार *) अंकित होता है और ऐसे सभी प्रश्नों का उत्तर सदन में मौखिक रूप से दिया जाता है। समस्त सार्थक मुद्दों पर कम विस्तार वाले प्रश्नों को इसी श्रेणी में रखा जाता है। अतांराकित प्रश्नों पर 'तारा' नहीं लगा होता है और उनका उत्तर लिखित रूप से दिया जाता है। ज्यादा विस्तार और जटिल आंकड़े वाले प्रश्नों को इस श्रेणी में रखा जाता है। तारांकित और अतारांकितप्रश्नों के अलावा अल्प सूचना प्रश्न भी किये जाते हैं। ये वो प्रश्न होते हैं जिनका उत्तर निर्धारित न्यूनतम अवधि से कम दिनों की सूचना पर मौखिक रूप से दिया जाता है। इन तीनों श्रेणियों के अलावा प्रश्नों की एक और श्रेणी होती है जिसे पूरक या अनुपूरक या अनुवर्ती प्रश्न भी कहा जाता है। इस सन्दर्भ में ये जान लीजिये की वैसे तो इन दो श्रेणियों में पूछे गये प्रश्नों के आधार पर मंत्री की जवाबदेयता निर्धारित हो जाती है और प्रश्न-काल के दौरान किसी प्रश्न या उत्तर पर वाद-विवाद करने की अनुमति नहीं होती। लेकिन उत्तर के सम्बन्ध में किसी तथ्य के स्पष्टीकरण की जरूरत पर अनुपूरक या अनुवर्ती प्रश्नों के लिये अध्यक्ष/सभापति से अनुमति ले सकते हैं। जिस सदस्य के नाम पर प्रश्न दर्ज होता है, वह दो अनुपूरक प्रश्न पूछ सकता है। अन्य सदस्य जिन्हें अध्यक्ष अनुमति दे, एक-एक पूरक प्रश्न पूछ सकते हैं।

भारत में सन् 1891 में प्रथम बार विधायिका में प्रश्न पूछने तथा 1909 में पूरक प्रश्न पूछने की परम्परा की शुरूआत हुई, जो आज एक सशक्त संसदीय प्रक्रिया बन चुकी है। इस प्रक्रिया के द्वारा प्रशासनिक-तंत्र पर सार्थक नियंत्रण स्थापित किया जा सका है। भारत में फिरोज गांधी द्वारा पूछे गये एकप्रश्न में- मूंदड़ा कांड (1957) को उजागर कर, तत्कालीन वित्तमंत्री टी0टी0 कृष्णमूर्ति को त्यागपत्र के लिये विवश कर दिया था। इस कांड में कानपुर के उद्योगपति हरिदास मूंदड़ा ने अपनी कम्पनी के शेयरों के भाव बढ़ाने के लिये पालपुड़ (1947) के समय खरीदी गयी जीपों के घोटाले का प्रश्न 1951 में भी खूब चर्चित रहा। सन् 1947 में पांडिचेरी के एक व्यापारी द्वारा 31 सांसदों के फर्जी हस्ताक्षर का उद्योग मंत्रालय से आयात लाइसेंस का प्रकरण भी संसदीय प्रश्नों के माध्यम से जनता के समक्ष आया था। इसके अलावा 1956 में जीवन बीमा निगम से सम्बन्धित एक ऐसा प्रश्न पूछा गया, जिसके फलस्वरूप इतना विवाद बढ़ा कि तत्कालीन वित्तमंत्री को त्याग देना पड़ा था।

4. **शून्य काल (Zero Hour)-** प्रश्न काल की समाप्ति के बाद और संसदीय कार्यवाही शुरू होने से पूर्व जो प्रश्न पूछे जाते हैं, वह शून्य काल कहलाता है। प्रश्न काल में सभी इच्छुक सदस्य जनहित सम्बन्धित प्रश्न हीं पूछ पाते हैं, अतः वे प्रश्न काल के पश्चात भी चर्चा करते रहते हैं। इसी कारण नवम्बर, 1966 से शून्य काल शुरू हुआ। प्रश्न काल का घण्टा समाप्त होते ही शून्यकाल शुरू हो जाता है, जिसमें संसद

समसामयिक विषयों पर बिना किसी पूर्व सूचना के मंत्रियों से प्रश्न पूछते हैं। यह समय कार्यपालिका को विवादित मुद्दों पर घेरने तथा सचेत करने का होता है। चौथी लोकसभा (1967-70) के समय शून्य काल का महत्व अत्यधिक था, किन्तु आठवीं लोकसभा (1985-89) में राजीव गांधी के प्रचण्ड बहुमत के कारण गैर-कांग्रेसी दल पूर्ण विपक्ष की भूमिका निभाने में असमर्थ थे। लेकिन 1989, 1991, 1996 तथा 1998 में गठित 9वीं से 12वीं लोकसभा में अल्पमत सरकारों के समक्ष शून्य काल के प्रश्न महत्वपूर्ण हो गये।

5. **काम रोको पर स्थगन प्रस्ताव(Adjournment Motion)-** 'काम रोको' या 'स्थगन प्रस्ताव' प्रशासन पर संसदीय नियंत्रण का एक महत्वपूर्ण साधन माना जाता है। फाइनर के शब्दों में, ''सरकार के प्रत्येक कार्य पर प्रश्न पूछा जा सकता है, प्रत्येक प्रश्न पर काम रोको प्रस्ताव प्रस्तुत किया जा सकता है और प्रत्येक काम रोको प्रस्ताव एक व्यापक एवं विस्तृत बहस को प्रोत्साहन दे सकता है।'' इसका प्रयोग अतिआवश्यक तथा लोक महत्व की किसी विशेष समस्या के सन्दर्भ में संसद में वाद-विवाद प्रारम्भ करने के लिये किया जाता है। इस प्रस्ताव के माध्यम से संसद सदस्यों द्वारा संसद के निश्चित कार्यक्रम को रोक कर किसी अन्य महत्वपूर्ण विषय पर बहस की जा सकती है। सामान्यतः दोपहर 12 बजे से पूर्व अध्यक्ष से 'काम रोको प्रस्ताव' की अनुमति मांगी जाती है, यदि 40 या अधिक सांसद इसका समर्थन करें, तो सदन के समस्त कार्य रोक कर 'काम रोको या स्थगन प्रस्ताव' पर चर्चा की जाती है जो अधिकतम तीन घंटे की हो सकती है। इस प्रस्ताव के लिये शर्त यह होती है कि यह मुद्दा विशिष्ट, महत्वपूर्ण तथा तात्कालिक हो, तथ्यों पर आधारित हो, सार्वजनिक महत्व का हो, न्यायालयों के विचाराधीन ना हो, सरकार के प्रशासनिक दायित्वों से सम्बन्धित हो तथा ऐसा न हो कि सदन में पूर्व में उस पर चर्चा की जा चुकी हो। चर्चा के पश्चात इस प्रस्ताव पर मतदान कराया जाता है जो बहुमत से पारित होने पर सरकार को संकट में डाल सकता है। वस्तुस्थिति यह है, कि काम रोको प्रस्ताव के अधिकांश प्रकरण निष्क्रिय हो जाते हैं। तीसरी लोक सभा में 77 प्रस्तावों में से केवल 07 पर ही आगे कार्यवाही हो सकी थी।

6. **बजट पर चर्चा(Budget Discussions)-** बजट पर वाद-विवाद के साथ भी संसद शासन पर प्रभावशाली नियंत्रण स्थापित रखती है। लोकसभा के प्रथम अध्यक्ष, श्री जी0 बी0 मावलेकर के अनुसार यह एक सिद्धान्त है कि वित्त-विधेयक के किसी भी विषय पर वाद-विवाद किया जा सकता है और जनता की किसी भी कठिनाई पर प्रकाश डाला जा सकता है। इसका मूलभूत सिद्धान्त ये है कि किसी भी नागरिक से तब तक कर नहीं लिया जा सकता, जब तक संसद के माध्यम से उसे अपने विचार प्रस्तुत करने तथा असन्तोष प्रकट करने का भरपूर अवसर प्राप्त ना हो जाये। विधायिका की अनुमति के बिना ना तो एक पैसा खर्च किया जा सकता है, और ना ही कोई नया कर लगाया जा सकता है। अतः ये स्पष्ट है कि बजट पर वाद-विवाद के द्वारा संसद, शासन पर प्रभावशाली नियंत्रण स्थापित रखती है।

   वित्त-मंत्री द्वारा आम बजट को जैसे ही लोक सभा में प्रस्तुत किया जाता है, उस पर पर्याप्त चर्चा तथा वाद-विवाद होता है। वार्षिक व्यय का यह ब्यौरा देश के आर्थिक विकास को सर्वाधिक प्रभावित करता है। बजट के सम्बन्ध में सदस्य कटौती का प्रस्ताव पेश करते हैं और इन कटौती प्रस्तावों के माध्यम से ही सरकार की आलोचना की जाती है। अध्यक्ष एवं शासन प्रणाली में ये कटौती-प्रस्ताव कई बार स्वीकृत हो जाते हैं। भारत में यूँ तो वित्त-विधेयक और बजट पर होने वाली आलोचनाओं की वजह से सरकार सजग रहती है, लेकिन जब तक सरकार का संसद में स्पष्ट बहुमत है, तब तक उनके द्वारा प्रस्तुत बजट अस्वीकृत नहीं होता है। वस्तुतः सम्पूर्ण वित्तीय प्रशासन पर विधायिका का कठोर नियंत्रण होता है। स्वीकृत अनुमानों के अतिरिक्त एक पाई भी व्यय नहीं की जा सकती है।

7. **ध्यानाकर्षण प्रस्ताव(Calling Attention Motion)-** संसद के सदस्य कुछ महत्वपूर्ण मामलों और प्रशासन से सम्बन्धित किसी भी गम्भीर समस्या की ओर सरकार का ध्यान आकृष्ट करने के लिए ध्यानाकर्षण प्रस्ताव पेश कर सकते हैं। इसके लिये सदस्य को लिखित रूप में सूचना देनी पड़ती है। लोक सभा के अध्यक्ष के द्वारा ऐसे ध्यानाकर्षण प्रस्ताव स्वीकार कर लेने के बाद सरकार को उस विषय पर तुरन्त उत्तर देना पड़ता है। इस प्रस्ताव में सम्बन्धित मंत्री से स्पष्टीकरण मांगा जाता है, जिसका वह तुरन्त या कुछ समय पश्चात स्पष्टीकरण देता है। रिचर्ड वार्नर(Richard Warner) का मानना है कि, ''इस प्रकार के अवसर विभागीय कार्यों एवं विभागीय क्षमता परीक्षण के लिए उपयुक्त है।''
8. **अविश्वास-प्रस्ताव(No-confidence Motion)-** अविश्वास-प्रस्ताव को 'निन्दा-प्रस्ताव' भी कहते हैं। हमारे संविधान में इस प्रकार के प्रस्ताव की व्यवस्था की गयी है। अविश्वास प्रस्ताव का तात्पर्य होता है कि, संसद के सदस्यों अर्थात् विपक्षी दल के सदस्यों द्वारा ऐसी किसी स्थिति में जब उन्हें सरकार की कोई नीति या कार्यकरण पूर्णतया या अंशतः दोषपूर्ण तथा आपत्तिजनक लगे तो वे सरकार या सत्तारूढ़ दल के खिलाफ अविश्वास-प्रस्ताव प्रस्तुत कर सकते हैं। प्रस्ताव प्रस्तुत करने के लिये कम से कम 50 सांसदों का समर्थन आवश्यक रहता है। अविश्वास-प्रस्ताव सदन के अध्यक्ष द्वारा मंजूर हो जाने पर सदन में मतदान कराया जाता हैं। अगर आवश्यक बहमुत सरकार के पक्ष में नहीं है, तो सरकार को त्यागपत्र देना पड़ता है और सरकार गिर जाती है। कार्यपालिका पर संसदीय नियन्त्रण का यह सबसे प्रभावशाली साधन माना जाता है, पर ये साधन संसदात्मक शासन प्रणाली वाले देशों में ही सम्भव है, क्योंकि अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली वाले देशों में कार्यपालिका संसद के प्रति उत्तरदायी नहीं होती है।
9. **विधेयकों पर बहस(Debates on Bill)-** संसद में प्रस्तुत होने वाले प्रत्येक विधेयक (बिल) को पारित करने से पूर्व उस पर कई बार वाचन या बहस होती है। इस समय सम्बन्धित विधेयक के कानूनी प्रावधानों तथा सरकार की नीति की आलोचना की जाती है। सन् 1951 में हिन्दू कोड बिल तथा 1994 में मुख्य चुनाव आयुक्त के अधिकारों में कटौती के विधेयक पर विपक्षी दलों के कठोर तेवर के कारण सरकारों द्वारा वापस ले लिये गये थे।
10. **लेखा परीक्षण(Audit)-** विधायिका ने प्रशासन या सरकार को जो धन खर्च करने की अनुमति दी है, उस धन का उपयोग हुआ या दुरुपयोग, कितना-कितना धन किस-किस मद में खर्च हुआ, ये सब बातें जानने का अधिकार सदन को है। नियंत्रक और महालेखा परीक्षक विभिन्न सरकारी विभागों के लेखों की जाँच करवाकर अनियमितताओं का पता लगाता है तथा इसकी रिपोर्ट सदन को देता है व राष्ट्रपति को भी सोंपता है।

8.2.2 संसदीय समितियों द्वारा नियंत्रण

जैसा कि आपने पिछले पृष्ठों में बताये गये आरेख के द्वारा जाना कि संसदीय नियंत्रण दो माध्यमों से स्थापित किया जाता है। जिसमें से दूसरा माध्यम संसदीय समितियों द्वारा नियंत्रण होता है। भारत सहित अधिकांश देशों की संसदों के पास कार्यों में विविधता तथा सदस्यों की राजनीतिक विवशताऐं एवं समयाभाव है। अतः बहुत से विधायी एवं गंभीर प्रकृति के कार्यों को कुशलतापूर्वक सम्पादित करने के लिये अनेक प्रकार की समितियाँ गठित की जाती हैं। संसद के दोनों सदनों की समितियों की संरचना (कुछ अपवादों को छोड़कर) एक जैसी हैं। इन समितियों की नियुक्ति, कार्य संचालन की प्रक्रिया भी लगभग समान ही है, जो संविधान के अनुच्छेद 118(1) के अन्तर्गत दोनों सदनों द्वारा निर्मित नियमों की धाराओं के अनुसार अधिनियमित होती हैं।

मोटे तौर पर संसदीय समितियों को निम्नलिखित चार श्रेणियों में रखा जाता है- वित्तीय समितियाँ, विभागों से सम्बद्ध स्थायी समितियाँ अन्य संसदीय स्थायी समितियाँ तथा तदर्थ समितियाँ।

यहाँ संसदीय नियंत्रण के सन्दर्भ में हम केवल तीन समितियों के बारे में विस्तृत अध्ययन करेंगे। इन समितियों का संक्षिप्त विवरण नीचे दिये गये चार्ट से आसानी से समझा जा सकता है।

क्र.सं.	समिति का नाम	सदस्यों की संख्या	कार्यकाल	सदस्य निर्देशित अथवा निर्वाचित
1	लोक लेखा समिति	22 (15 लोक सभा और 07 राज्य सभा)	01 वर्ष	दोनों सदनों द्वारा निर्वाचित
2	प्राक्कलन या अनुमान समिति	30 (लोक सभा)	01 वर्ष	लोक सभा द्वारा निर्वाचित
3	सरकारी उपक्रमों सम्बन्धी समिति	22 (15 लोक सभा और 07 राज्य सभा)	01 वर्ष	दोनों सदनों द्वारा निर्वाचित

सुविधा की दृष्टि से हम समितियों का विभाजन दो श्रेणियों में देखते हैं- स्थायी एवं अस्थायी समिति। स्थायी समितियाँ प्रतिवर्ष या समय-समय पर निर्वाचित या नियुक्त की जाती हैं तथा इनका कार्य प्रायः निरन्तर चलता रहता है, जबकि अस्थाई समितियों की नियुक्ति आवश्यकतानुसार की जाती है। ये समितियाँ अपना कार्य पूर्ण करने एवं प्रतिवेदन प्रस्तुत कर देने के पश्चात स्वतः समाप्त हो जाती है।

स्थायी समितियों में जाँच समितियाँ (जनहित समिति, विशेषाधिकारी समिति), संवीक्षण समितियाँ (सरकारी आश्वासनों सम्बन्धी समिति, अधीनस्थ विधान सम्बन्धी समिति, पटल पर रखें पत्रों सम्बन्धी समिति), सदन के दैनिक कार्य से सम्बन्धित समितियाँ (कार्य-मंत्रणा समिति, गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों पर प्रस्तावों सम्बन्धी समिति, नियम समिति, सदन की बैठकों में अनुपस्थित सदस्यों सम्बन्धी समिति), अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के कल्याण सम्बन्धी समिति, आवास समिति), संसद सदस्यों के वेतन-भत्तों सम्बन्धी समिति, लाभ के पदों सम्बन्धी संयुक्त समिति, पुस्तकालय समिति, महिलाओं के अधिकार समिति प्रमुख हैं।

लोकसभा की स्थायी समितियों में तीन वित्तीय समितियाँ यथा- लोक लेखा समिति, अनुमान समिति तथा लोक उपक्रमों पर समिति अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। इन तीन महत्वपूर्ण समितियों के अतिरिक्त 08 अप्रैल, 1993 से 17 विभागीय समितियाँ भी कार्यरत हैं, जो अनुदान माँगों पर विचार-विमर्श कर बजटीय प्रणाली को कुशल बनाती हैं।

अस्थायी समितियाँ किसी विचाराधीन प्रस्ताव पर संसद के किसी सदन द्वारा या अध्यक्ष द्वारा किसी विशिष्ट विषय के लिए या विशेष विधेयकों पर विचार करने एवं रिपोर्ट देने के लिए प्रवर एंव संयुक्त समितियों के रूप में बनाई जाती हैं। लोक प्रशासन पर संसदीय समितियों के माध्यम से नियंत्रण के क्रम में निम्नांकित समितियाँ महत्त्वपूर्ण हैं- लोक लेखा समिति, अनुमान समिति और लोक उपक्रमों पर समिति।

8.2.2.1 लोक लेखा समिति

लोक लेखा समिति भारतीय संसद की सबसे पुरानी और सबसे महत्वपूर्ण समितियों में से एक है। भारतीय संसद के भी बनने से पहले 1921 में 'Central Legislative Assembly' में लोक लेखा समितियाँ होती थी। 1967 तक इसका अध्यक्ष सत्तारूढ़ दल से होता था। 1967 के बाद से हमेशा इसका अध्यक्ष विपक्ष से होता रहा। विपक्षी दलों की राय से लोक सभा अध्यक्ष, लोक लेखा समिति के अध्यक्ष की नियुक्ति करती है। इस समिति का अध्यक्ष विपक्ष का कोई सदस्य होता है। 1967 से ही ये एक परम्परा बन चुकी है। सन् 1969 के पश्चात सामान्यतः विपक्षी दलों को अध्यक्ष पद प्रदान किया जाता रहा है। चूँकि एक वर्ष की समयावधि लोक लेखा समिति के सदस्यों के कार्यकरण की दृष्टि से पर्याप्त नहीं है। अतः कुछ सदस्य पुनः निर्वाचित (दो तिहाई) कर लिए जाते हैं, ताकि नये एवं अनुभवी दोनों प्रकार के सदस्य इस समिति में बने रहें। नियमानुसार कोई मंत्री पद धारक व्यक्ति समिति का सदस्य नहीं बनाया जा सकता है। आईये लोक लेखा समिति का अध्ययन निम्नांकित बिन्दुओं के आधार पर करते हैं-

1. **लोक लेखा समिति के कार्य-** इसका मुख्य कार्य सरकारी खर्चों के खातों कीर जाँच करना है। लोक लेखा समिति को प्राक्कलन समिति की 'जुड़वा बहन' भी कहा जाता है। ऐसा इसलिये, क्योंकि दोनों समितियों के कार्य एक-दूसरे के पूरक हैं। प्राक्कलन समिति जहाँ सार्वजनिक यानि सरकारी व्यय के अनुमानों से सम्बन्धित कार्य करती है, वहीं लोक लेखा समिति मुख्यतयाः भारत सरकार के व्यय के लिए सदन द्वारा प्रदान की गई राशियों का खर्च दर्शाने वाले लेखों की जाँच करती है। इसका आधार हमेशा नियंत्रक और महालेखा परीक्षक की रिपोर्ट होती है। 'भारत हैवी इलेक्ट्रिकल्स' जैसे सार्वजनिक क्षेत्र की कम्पनियों को छोड़कर जहाँ भी सार्वजनिक धन का व्यय होता है, वहाँ-वहाँ ये समिति जाँच कर सकती है। इसका कार्यकाल एक वर्ष का होता है। ये समिति नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक द्वारा दिये गये लेखा परीक्षण सम्बन्धी प्रतिवेदनों की जाँच करती है। संक्षेप में इसके कार्यों को बिन्दुवार कुछ इस प्रकार से समझा जा सकता है-
    - इसका उद्देश्य यह सुनिश्चित करना होता है कि, क्या धन प्राधिकृत रूप से खर्च किया गया है और उसी प्रयोजन से खर्च किया गया है, जिसके लिए वह प्रदान किया गया।
    - जाँच करते समय यह देखना कि किसी सरकारी अभिकरण द्वारा किया गया व्यय उसी मात्रा या सीमा में है जो संसद द्वारा स्वीकृत किया गया था।
    - यह देखना कि व्यय करने की स्वीकृति देने वाला अधिकारी इस कार्य के लिए वैध सत्ता प्राप्त (प्राधिकार युक्त) हैं।
    - समिति केवल तकनीकी अनियमिताओं का पता लगाने में ही रुचि नहीं रखती, बल्कि यह राष्ट्र के विभिन्न वित्तीय मामलों के संचालन में अपव्यय, भ्रष्टाचार, अकुशलता या कार्यपालन में कमी के किसी प्रमाण को प्रकाश में लाने में भी रुचि रखती है।
    - सरकारी नियमों (लोक उपक्रमों), व्यापार, योजनाओं तथा परियोजनाओं के लेखों का परीक्षण करना तथा उनके आय-व्यय, लाभ-हानि इत्यादि विवरण पत्रों की जाँच करना भी समिति का कार्य-क्षेत्र हैं।
    - यह संबंधित मंत्रालय या विभाग द्वारा की गई फिजूलखर्ची या उचित नियंत्रण के अभाव में निरनुमोदन के रूप में अपनी राय भी व्यक्त कर सकती है, या उसकी निंदा भी कर सकती है।
    - स्वायत्त या अर्ध-स्वायत्त निकायों के आय-व्यय लेखों की जाँच करना, जहाँ आवश्यक रहता हो।
    - राष्ट्रपति द्वारा नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक को सौंपे गए, कुछ विशिष्ट कार्यों के प्रतिवेदनों के आधार पर जाँच करना।
    - आय-व्यय के विवरणों की जाँच के अतिरिक्त अन्य महत्वपूर्ण सुझाव भी समिति दे सकती है जो वित्तीय नियंत्रण में सहायक हो सकते हैं।
2. **लोक लेखा समिति की कार्य-प्रणाली-** लोक लेखा समिति का कार्यकरण इसके सम्पूर्ण सदस्यों के साथ मंत्रणा के पश्चात अध्यक्ष द्वारा निर्धारित किया जाता है, जो प्रायः पूर्व के वर्षो की परम्परानुसार संचालित होता है। समिति की बैठक बुलाने के लिये गणपूर्ति(कोरम) के रूप में 04 सदस्यों की उपस्थिति आवश्यक है। नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक द्वारा प्रस्तुत विनियोग तथा वित्तीय प्रतिवेदनों के आधार पर समिति कुछ विभागों या मंत्रालयों को जाँच के लिए चुनती है। समिति की जाँच एवं कार्यों के दौरान सम्बन्धित मंत्रालय का सचिव, वित्तीय सलाहकार तथा अन्य सम्बन्धित अधिकारियों के अतिरिक्त

नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक भी उपस्थित रहता है। वस्तुतः नियंत्रक एवं महालेखा एक मध्यस्थ तथा विशेषज्ञ की भूमिका निभाता है। समिति के प्रशासनिक कार्यों में सहायता प्रदान करने के लिये एक सचिव होता है। समिति को लोकसभा सचिवालय से प्रशासनिक सहायता प्राप्त होती है। समिति की बैठकें प्रायः गुप्त रहती हैं।

जाँच कार्य के दौरान समिति आवश्यकतानुसार कोई भी रिकॉर्ड, रजिस्टर या सूचना माँग सकती है तथा किसी भी सम्बन्धित व्यक्ति से वार्ता कर सकती है। जाँच के दौरान सामने आने वाली वित्तीय अनियमितताओं का समिति विस्तार से वर्णित करती है तथा आवश्यक सुरक्षा उपाय सुझाती है। विवादास्पद मुद्दों पर समिति में मतदान भी हो सकता है। सामान्यतः अध्यक्ष मतदान नहीं करता, किन्तु निर्णायक स्थिति में वह अपना मत दे सकता है। समिति की रिपोर्ट संसद में प्रस्तुत की जाती है जिसे सरकार द्वारा प्रायः ज्यों की त्यों स्वीकार किया जाता रहा है।

यह भी महत्वपूर्ण है कि यह समिति नीतिगत मामलों पर निर्णय नहीं करती है, बल्कि सरकारी संस्थानों द्वारा किए गए व्यय का परीक्षण ही करती है। चूँकि समिति में कई राजनीतिक दलों के सदस्य सम्मिलित रहते हैं। अतः, आपसी वैमनस्य, संकीर्णता तथा असहयोग की आशंका बनी रहती है। किन्तु विगत पाँच दशकों में भारत में इस समिति का कार्यकरण राजनैतिक स्वार्थों से ऊपर उठकर जनहित के पक्ष में ही नजर आया है।

3. **लोक लेखा समिति की आलोचना-** लोक सेवा समिति के कार्यकरण की प्रायः प्रशंसा ही होती है किन्तु, कतिपय प्रश्न आलोचकों द्वारा उठाये जाते रहे हैं, जैसे-

- यह समिति स्वतंत्र रूप से कार्य नहीं करती है, बल्कि नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक द्वारा प्रस्तुत रिपोर्टों को ही आधार बनाकर आगे जाँच करती है।
- समिति के सदस्य वित्त, लेखांकन, प्रबन्ध या अर्थशास्त्र के विशेषज्ञ नहीं होते हैं, बल्कि राजनीतिज्ञ होने के कारण उन्हें वित्त जैसे तकनीकी विषयों में अरुचि ही होती है।
- समिति प्रशासनिक तंत्र की आन्तरिक कार्य-प्रणाली में हस्तक्षेप नहीं कर सकती है।
- लोक लेखा समिति सरकार के नीतिगत मामलों पर जाँच नहीं कर सकती है, भले ही नीतियाँ गलत क्यों न हों।
- इस समिति के निर्माण के पश्चात संसद में वित्तीय नियंत्रण सम्बन्धित बहस कम हो जाती है, क्योंकि सदस्यों की राय में उनका कार्य समिति कर रही होती है। जबकि सरकार समिति की अनुशंसाओं पर पूर्ण ध्यान नहीं देती है।
- समिति की रिपोर्ट को स्वीकार करने के लिए सरकार बाध्य नहीं है।

यद्यपि लोक लेखा समिति के सदस्य विशेषज्ञ नहीं होते हैं, किन्तु कुछ सदस्य शनैः-शनैः इसके कार्यों में रुचि लेकर विशेषज्ञ बन जाते हैं। ब्रिटिश लोक लेखा समिति के कार्यों को कतिपय विद्वानों ने पोस्टमार्टम के समान माना है, जहाँ साँप के गुजरने के पश्चात केवल लीक पीटने का कार्य होता है। किन्तु सिडनी वेब का कहना है, ''निस्संदेह पोस्टमार्टम के द्वारा मृत व्यक्ति को पुनः जीवित नहीं किया जा सकता है, लेकिन भविष्य की हत्याएँ रोकी जा सकती है।'' वास्तव में लोक लेखा समिति एक महत्वपूर्ण निकाय है, जिसके भय के कारण प्रशासनिक तंत्र नियंत्रित रहता है।

8.2.2.2 अनुमान समिति या प्राक्लन समिति

अनुमान समिति या प्राक्कलन समिति एक महत्वपूर्ण संसदीय समिति है। यह समिति संसद के माध्यम से सरकार द्वारा प्राप्त किये गये धन के व्ययों के अनुमानों की जाँच-पड़ताल करती हैं। यह स्थायी मितव्ययता समिति के रूप में कार्य करती है और इसके सुझाव सरकारी फिजूलखर्ची पर रोक लगाने का काम करते हैं। अर्थात्, ये आर्थिक प्रशासनिक ढाँचे में सुधार लाने के लिये सुझाव देवी है। इसे सतत् मितव्ययता समिति भी कहा जाता है। यह समिति इस बारे में ये भी सुझाव देती है कि प्राक्कलन को संसद में किस रूप में पेश किया जाये। यद्यपि अनुमान या प्राक्कलन(Estimate) समिति की स्थापना की मांग 1937 में की गयी थी, किन्तु तब इसे कार्यरूप नहीं दिया जा सका। कुछ समय तक एक स्थायी वित्तीय समिति अवश्य थी, जिसकी रचना 1921 में की गयी थी, जो भारत सरकार के वित्त विभाग से संलग्न थी। यह समिति कठोर वित्तीय सीमाओं के अधीन कार्य करती थी, परन्तु इसके अस्तित्व ने अनुमान समिति की रचना के औचित्य को समाप्त नहीं किया। अनुमान समिति सर्वप्रथम विधिवत् रूप से 10 अप्रैल 1950 से स्थापित हुई। उस समय इसमें 25 सदस्यों का निर्वाचन किया गया था। 1953 में इसके कार्यों में वृद्धि की गयी। अनुमान समिति की महत्ता को बताते हुए जी0वी0 मावलेकर ने कहा था, ''यह समिति मितव्ययता, प्रशासन में कार्यकुशलता तथा सार्वजनिक धन के समुचित उपयोग को सुनिश्चित करने के उद्देश्य से बनायी गयी है। अतः समिति को यह अधिकार है कि वह ऐसी किसी नीति में संशोधन का सुझाव दे, जिसके कारण विपुल धनराशि निरर्थक व्यय हो रही है।''

आईये अनुमान या प्राक्लन समिति को निम्नाकित बिन्दुओं के आधार पर समझने का प्रयास करते हैं-

1. **अनुमान समिति का संगठन-** जैसा कि आप जानते हैं कि अनुमान समिति एक स्थायी समिति है और इसका कार्यकाल एक वर्ष का होता है। लोक लेखा समिति से भिन्न इसमें राज्य सभा के सदस्यों को प्रतिनिधित्व नहीं दिया जाता है। इसके कार्य और नियुक्ति की रीति तथा अन्य सम्बन्धित विषय लोक सभा में प्रक्रिया तथा कार्य संचालन के नियमों द्वारा निर्धारित किये जाते हैं। इस समिति के सदस्यों का निर्वाचन लोकसभा के सदस्यों के बीच में से अनुपातिक प्रतिनिधित्व के आधार पर एकल-संक्रमणीय मत पद्धति के आधार पर होता है। प्रारम्भ में इसके सदस्यों की संख्या 25 थी जो बढ़ाकर 30 कर दी गयी। प्रायः लोकसभा में राजनीति दलों के सदस्यों की संख्यानुसार ही इस समिति में भी प्रतिनिधित्व रहता है। समिति के अध्यक्ष की नियुक्ति लोकसभा के अध्यक्ष द्वारा की जाती है। यदि लोक सभा के उपाध्यक्ष इस समिति के सदस्य निर्वाचित हो जाते हैं तो वे समिति के अध्यक्ष के रूप में कार्य करते हैं। सत्तारूढ़ दल का वरिष्ठ सदस्य प्रायः अध्यक्ष बनाया जाता है। केन्द्रीय मंत्री-परिषद का कोई भी सदस्य (मंत्री) इस समिति का सदस्य नहीं हो सकता है। प्रति वर्ष एक तिहाई नये सदस्य तथा दो तिहाई सदस्य पुनः चुन लिये जाते हैं, ताकि कार्य संचालन उपयोगी बना रह सके।

   अनुमान समिति सरकार की नीतियों से सम्बन्धित मामलों में सरोकार नहीं रखती है। इसका मुख्य उद्देश्य तो इस बात से सन्तुष्ट रहना होता है कि निर्धारित रीति के अन्तर्गत अधिकतम मितव्ययता के साथ न्यूनतम व्यय किया जाये। सरकार द्वारा स्वीकृत योजनाओं व परियोजनाओं को कार्यान्वित करते हुए व्यय में मितव्ययता को सुनिश्चित करना है।

2. **अनुमान समिति के कार्य-** अनुमान समिति द्वारा निम्नलिखित कार्य किए जाते हैं-
   - प्रशासनिक सुधारों द्वारा मितव्ययता लाने के उचित सुझाव देती है।
   - लोक प्रशासन में कार्यकुशलता तथा मितव्ययता लाने के लिये प्रचलित नीतियों के स्थान पर अन्य विकल्प सुझाना।
   - बजटीय अनुमानों में वांछित तथ्यों के सही प्रस्तुतीकरण का परीक्षण करना।

- समिति इस बात को भी देखती है कि प्रशासकीय क्रियाओं में लगाया गया धन अनुमानों में निहित सीमाओं के अन्तर्गत व्यय किया गया है, या नहीं।
- संसद के सम्मुख प्रस्तुत किये जाने वाले अनुमानों के स्वरूप(ढंग) के क्रम में सुझाव।
- अनुमान समिति अपने कार्यों को पूरा करने के लिये उप-समितियों का गठन करती है। उप-समितियों को किसी भी प्रकार का कार्य सौंपा जा सकता है और उसके द्वारा प्राप्त प्रस्तुत प्रतिवेदनों का वही महत्व होता है जो अनुमान समिति के प्रतिवेदनों का होता है।
- यह समिति उन उपायों के विषय में सुझाव देती है, जिनके द्वारा अनुमानों को संसद में प्रस्तुत किया जाता है।
- समिति सरकारी अधिकारियों की सुनवाई कर सकती है और एक ऐसी प्रश्नावली तैयार करती है, जिनके प्रश्नों का उत्तर विभागाध्यक्षों को देना पड़ता हैं।

इस प्रकार यह समिति संसद के समक्ष किये जाने वाले अनुमानों में निहित नीतियों से संगति रखते हुए मितव्ययता सम्बन्धी सुझाव देती है। यह नीति सम्बन्धी प्रश्नों में हस्तक्षेप नहीं करती। प्रकटतः यह ऐसी किसी नीति की जाँच कर सकती है, जिसे सरकार ने अपने निष्पादीय कार्यो के संचालन में निर्धारित किया हो। इसके अतिरिक्त यदि समिति को ये पता चल जाये कि संसद द्वारा निर्धारित नीति के कोई विशेष वांछित परिणाम नहीं हो रहे हैं या अपव्यय हो रहा है तो इस समिति का यह कर्तव्य है कि वह लोकसभा का ध्यान नीति में परिवर्तित करने के लिये आकर्षित करे। लोक उपक्रमों पर समिति के निर्माण से पूर्व अनुमान समिति लोक उपक्रमों के सम्बन्ध में रिपोर्ट देती थी, किन्तु अब समिति का कार्य केन्द्रीय मंत्रालयों तक ही सीमित रह गया है।

3. **अनुमान समिति की कार्य-प्रणाली-** अनुमान समिति के सदस्यों का कार्यकाल एक वर्ष होता है, किन्तु उन्हें पुनः निर्वाचित होने का अधिकार है। इससे समिति की सदस्यता में निरन्तरता बनी रहती है। समिति की रचना मई में किसी समय की जाती है और ये जुलाई से काम करना प्रारम्भ कर देती है। वह सालभर के लिये अनुमानों का चयन करके अपने कार्यों की योजना तैयार करती है। अनुमान समिति के सदस्य एवं अध्यक्ष मिलकर समिति के कार्यकरण को सुनिश्चित करते हैं। चूँकि भारतीय प्रशासनिक-तंत्र की विशालता एवं जटिलता को देखते हुए एक वर्ष में सभी विभागों के अनुमानों का परीक्षण करना सहज कार्य नहीं है अतः यह समिति प्रतिवर्ष तीन या चार मंत्रालय परीक्षण हेतु चुनती है तथा इन मंत्रालयों में से कुछ विशिष्ट विभागों या योजनाओं के लिये प्रस्तुत वित्तीय अनुमानों का ही गहन अध्ययन करती है। इस परीक्षण हेतु अनुमान समिति अपने साथ कतिपय उपसमितियाँ गठित कर लेती है। उप-समितियों को पृथक्-पृथक् विषयों का कार्य सौंप दिया जाता है। ये सभी उप-समितियाँ मूल अनुमान समिति की भाँति पूर्ण अधिकार प्राप्त समितियाँ होती हैं। जिस मंत्रालय से सम्बन्धित अनुमानों का परीक्षण किया जाना होता है, उससे सम्बन्धित समस्त आवश्यक सूचनाऐं समिति तथा उसकी उप-समितियाँ एकत्र करती हैं। इन प्राक्कलनों या सूचनाओं की जाँच के लिये निर्धारित प्रारुपों का उपयोग किया जाता हैं। इन प्रारुपों में सम्बन्धित मंत्रालयों से, मंत्रालयों के अधीन चल रही योजनाओं तथा परियोजनाओं, पिछले वर्ष के खर्च तथा वर्तमान अनुमानों में अन्तर आदि जैसी कई जानकारियाँ माँगी जाती हैं। समिति चाहे तो उक्त सूचना के आधार पर मंत्रालयों के कर्मचारियों व अधिकारियों को स्पष्टीकरण के लिए बाध्य कर सकती हैं। यह गैर-सरकारी लोगों को भी साक्ष्य के लिये बुला सकती है। समिति अनुमानों की जाँच के बाद अपना प्रतिवेदन लोक सभा में प्रस्तुत करती है। प्रतिवेदन पर कोई नियमित वाद-विवाद नहीं होता है, फिर भी सदस्यगण बजट पर चर्चा करते समय तथा अनुदानों की माँगों के बीच प्रतिवेदन का विस्तार से उल्लेख

करते हैं। सामान्यतः समिति की सिफारिशों पर सरकार अमल करती है। मतभेद की स्थिति में अन्तिम निर्णय संसद का होता है।

अनुमान समिति संसद की एक 'स्थायी बचत समिति' के रूप में कार्य करती है। अपने प्रतिवेदनों में समिति ने प्रशासकीय व वित्तीय दोनों क्षेत्रों में महत्वपूर्ण व उपयोगी सुझाव दिये हैं। 'बजटीय सुधार' तथा 'नागरिक व्यय की वृद्धि' की समस्याओं पर समिति ने विस्तृत विवेचना की है। फिर भी समिति की सफलता सरकार पर दीर्घकालीन चिन्तन तथा योजना के सम्बन्ध में पड़ने वाले प्रभाव पर निर्भर है।

4. **अनुमान समिति की आलोचना-** अनुमान समिति की अनेक आधारों पर आलोचना की गयी है। समिति पर अक्सर यह आरोप लगाया जाता है कि यह सरकारी अनुमानों की ब्यौरे से पड़ताल न करके, सरकारी नीतियों व विभागीय संगठन के पुनरीक्षण पर विशेष जोर देती है। इसकी आलोचना के अन्य बिन्दुओं को कुछ इस प्रकार दर्शाया जा सकता है-

- अनुमान समिति द्वारा सरकारर की नीतियों व विभागीय संगठनों की समीक्षा पर जोर देने से इसके स्वरूप व उद्देश्यों में बदलाव आ गया है।
- सदस्यता बदलते रहने के कारण समिति को प्रशासन के कार्यों का पर्याप्त ज्ञान नहीं हो पाता, अतः इसके सुझाव बहुत उपयोगी नहीं बन पाते हैं।
- तथ्यों का अन्वेषण करने के बजाय यह छिद्रान्वेषी सन्यन्त्र बन गया है।
- लोक लेखा समिति की भाँति इस समिति में भी वित्त एवं अर्थव्यवस्था के विशेषज्ञों का अभाव है। इसे नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक की सहायता भी नहीं मिलती है।
- एक विभाग या मंत्रालय का समिति द्वारा परीक्षण हो जाने के पश्चात वर्षों तक पुनः नम्बर नहीं आता है। अतः परीक्षित विभाग निष्क्रिय एवं लापरवाह हो जाते हैं।
- अनुमान समिति, मितव्ययता सुधारों के बजाय संगठनात्मक संरचना तथा कार्मिकों की संख्या इत्यादि विषयों पर अधिक रुचि लेती है।
- बहुधा समिति उन कर्तव्यों का निर्वहन करने लग जाती है, जो वास्तव में लोक सभा के हैं।
- अशोक चन्दा के अनुसार, ''इस समिति का मुख्य कार्य आय-व्यय अनुमानों का परीक्षण कर यथोचित सुझाव सरकार को देना है, किन्तु यह समिति कई बार 'सुधारक' की भूमिका में आकर सरकार की नीतियों (संसद द्वारा स्वीकृत) एवं विभागों के गठन पर प्रश्न-चिह्न लगाने लग जाती है।''

समिति की सिफारिशें परामर्शदात्री होती हैं और उसकी सिफारिशों को मानना या न मानना सरकार पर निर्भर करता है। यह सत्य है कि समिति का कार्यकाल एक वर्ष का है अतः इसकी सदस्यता अस्थायी है, फिर भी प्रतिवर्ष एक-तिहाई सदस्यों द्वारा अवकाश ग्रहण करने की प्रथा के कारण इसकी सदस्यता में निरन्तरता बनी रहती है। वास्तव में, समिति अधिकाधिक सदस्यों को प्रशिक्षण देने का एक शक्तिशाली एवं प्रबल साधन है। प्रशिक्षण में केवल प्रशासन के संचालन सम्बन्धी तरीकों पर ही बल नहीं दिया जाता बल्कि संसार के सामने नित्यप्रति आने वाली समस्याओं से भी उन्हें परिचित कराया जाता है। अनुमान समिति विशेषज्ञों की सहायता से ही कार्य करती है।

लेकिन अनुमान समिति के सम्बन्ध में की गयी उपर्युक्त आलोचनाओं से इसकी उपयोगिता समाप्त नहीं होती, क्योंकि समिति ने सरकारी भूल-चूक के अनेक कार्यों को प्रकाश में लाकर बहुत ही उपयोगी कार्य किया है। साथ ही समिति भारत में प्रशासन की योग्यता तथा उसके स्तर को उन्नत करने में महत्वपूर्ण योगदान दे रही है।

8.2.2.3 लोक उपक्रमों पर समिति

स्वतंत्रता के पश्चात भारत में मिश्रित अर्थव्यवस्था का मार्ग अपनाया गया, जिसमें निजी उद्यमों की स्थापना के बाद सार्वजनिक उद्यमों की स्थापना की ओर भी ध्यान दिया गया। ऐसी स्थिति में लोक उपक्रमों की संख्या का निरन्तर बढ़ना भी स्वाभाविक था। काफी समय से लोक उद्यमों के कार्यचालन के लिये निरीक्षण तथा समय-समय पर उनके विषय में संसद को प्रतिवेदन देने के लिये एक संसदीय समिति की रचना करने की माँग की जाती रही थी। इस माँग के पीछे भावना ये रही थी कि अपने प्रति उत्तरदायी उद्यमों को नियंत्रित करने के अनेक अवसर पाते हुए भी संसद किसी प्रभावशाली तथा अर्थपूर्ण ढंग से उनके ऊपर नियंत्रण रखने में सफल नहीं रही हैं बल्कि इसका नियंत्रण अव्यवस्थापूर्ण, गतिहीन तथा अपर्याप्त होने के साथ-साथ तारतम्यहीन भी रहा है। ऐसी स्थिति में लोक उपक्रमों के कार्यकरण तथा वित्तीय प्रक्रियाओं पर संसदीय नियंत्रण स्थापित करने के लिये एक समिति की आवश्यकता महसूस की गयी। सर्वप्रथम, दिसम्बर, 1953 में एक निर्दलीय सदस्य डॉ0 लंका सुन्दरम ने लोकसभा में यह माँग उठायी कि लोक उपक्रमों पर नियंत्रण के लिये एक समिति का गठन किया जाना चाहिये ताकि लोक उपक्रमों पर मंत्रियों के नियंत्रण, संसद के अधिकार तथा आम व्यक्ति (करदाता) के धन के समुचित उपयोग को सुनिश्चित किया जा सके। वी0 के0 कृष्णमेनन समिति ने लोक उपक्रमों पर समिति के गठन की अनुशंसा के साथ ही ये भी सुझाया था कि यह समिति लोक उपक्रमों पर सर्वोच्च प्रबन्ध मंडल या छिद्रान्वेषक के तौर पर कार्य ना करे। इसके उपरान्त सन् 1956 में जीवन बीमा विधेयक पर चर्चा के दौरान भी अशोक मेहता ने पुनः इस समिति के गठन का प्रश्न उठाया। ऐसी ही कुछ सिफारिश योजना आयोग ने की थी। अतः इन सब तरह की सिफारिशों के बाद लोकसभा ने नवम्बर 1963 में लोक उपक्रमों पर समिति से सम्बन्धित एक प्रस्ताव स्वीकार कर लिया तथा 01 मई, 1964 को लोक उपक्रमों पर समिति अस्तित्व में आयी। प्रारम्भ में इस समिति में 15 सदस्य थे जिनमें से 10 लोकसभा से व 05 राज्यसभा से लिये गये थे। जिनकी संख्या 1974-1975 में बढ़ा दी गई।

लोक उपक्रमों पर समिति(कमेटी ऑन पब्लिक अण्डरटेकिंग्स) जिसे कोपू(सी0ओ0पी0यू0) भी कहा जाता है, में अब 22 सदस्य होते हैं। लोकसभा से 15 सदस्य तथा राज्यसभा से 07 सदस्य आनुपातिक प्रतिनिधित्व की एकल संक्रमणीय मत प्रणाली द्वारा प्रतिवर्ष चुने जाते हैं। लोक लेखा तथा अनुमान समिति की भाँति इस समिति में भी एक तिहाई सदस्य प्रतिवर्ष नये सम्मिलित हो जाते हैं। समिति में कोई भी मंत्री सदस्य नहीं बनता है तथा इसके अध्यक्ष की नियुक्ति लोकसभा के द्वारा की जाती है।

1. **लोक उपक्रमों पर समिति के कार्य-** लोक उपक्रमों पर समिति को अनेक महत्वपूर्ण कार्य सौंपे गये हैं, जो केन्द्र सरकार के अधीन कार्यरत सार्वजनिक निगमों, कम्पनियों से सम्बन्धित हैं। ये हैं-
    - निर्धारित अनुसूची में वर्णित लोक उपक्रमों के प्रतिवेदन तथा लेखाओं का परीक्षण करना।
    - नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक की लोक उपक्रमों से सम्बन्धित रिपोर्टों का परीक्षण करना।
    - लोक उपक्रमों की स्वायत्तता तथा कार्यदक्षता के सन्दर्भ में इनके प्रबंधकीय, व्यवहारों का स्वस्थ व्यापारिक तथा वाणिज्यिक सिद्धान्तों के क्रम में परीक्षण करना।
    - लोक लेखा समिति तथा अनुमान समिति के उन कार्यों का परीक्षण करना जो लोक उपक्रमों से सम्बन्धित हैं, अथवा लोकसभा के अध्यक्ष द्वारा इस समिति को सौंपे गये हैं।

    इसके अतिरिक्त लोक उपक्रमों पर समिति की कतिपय सीमा भी निर्धारित की हुई हैं-
    - यह समिति सरकार की प्रमुख नीतियों से सम्बन्धित प्रकरणों पर जाँच नहीं कर सकती है।
    - लोक उपक्रमों के दैनिक प्रशासन पर टिप्पणी नहीं कर सकती है।

- किसी विशिष्ट निकाय की स्थिति प्राप्त लोक उपक्रमों के कतिपय प्रकरणों की जाँच भी नहीं कर सकती है।

2. **लोक उपक्रमों पर समिति की कार्य-प्रणाली-** लोक उपक्रमों पर समिति का मुख्य दायित्व केन्द्र सरकार के उद्यमों के लेखाओं तथा प्रतिवेदनों की जाँच करना है। समिति अपनी पूर्ण बैठक में कार्य-प्रणाली निश्चित करती है। प्रतिवर्ष सभी लोक उपक्रमों की जाँच के बजाय कुछ उपक्रमों को ही चुना जाता है। यह चुनाव लोक उपक्रमों के प्रतिवेदन तथा नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक की रिपोर्ट के आधार पर ही होता है। समिति के सदस्य सम्बन्धित उपक्रम के कार्यकरण तथा लेखा से सम्बन्धित समस्त रिकॉड देखते हैं। अंत में तीन प्रकार की रिपोर्टें प्रस्तुत की जाती हैं- प्रथम रिपोर्ट में, व्यक्तिगत उपक्रम, दूसरी में उपक्रम के विभिन्न कार्यों जैसे-वित्त, प्रबन्ध कार्मिक, उत्पादन, सामग्री विपणन इत्यादि का वर्णन होता है जबकि तीसरी रिपोर्ट सरकार द्वारा की गई कार्यवाहियों से सम्बन्धित होती है।
3. **लोक उपक्रमों पर समिति आलोचना-** लोक उपक्रमों पर समिति को लोक लेखा समिति तथा अनुदान समिति की भाँति पर्याप्त अधिकार प्राप्त नहीं है। यह प्रश्न इस समिति की स्थापना के समय भी उठाया गया था। उदाहरण के लिए यह समिति लोक उपक्रमों से सम्बन्धित सरकार की मूल्य नीति एवं श्रमिक-प्रबन्ध के क्रम में जाँच नहीं कर सकती है। इसके अतिरिक्त भी समिति में कुछ अन्य कमियाँ पायी जाती हैं जो कुछ इस प्रकार हैं-
   - बहुत से (जैसे रक्षा क्षेत्र के लोक उपक्रम) सरकारी उपक्रम इस समिति के जाँच के दायरे से ही बाहर रखे गये हैं।
   - समिति द्वारा प्रस्तुत प्रतिवेदनों पर संसद में चर्चा नहीं होती है और न ही संसद सदस्य इसकी रिपार्टों को पढ़ने में रुचि लेते हैं।
   - सरकार द्वारा इसकी (लोक उपक्रमों पर समिति) अनुशंसाओं पर गंभीरतापूर्वक ध्यान नहीं दिया गया है।
   - इस समिति के सदस्य भी राजनीतिज्ञ ही होते हैं, जिन्हें वित्त, लेखा, वाणिज्य, व्यापार तथा उद्योगों की तकनीकी एवं जटिल कार्य-प्रणाली का विशेष ध्यान नहीं रहता है।

इस प्रकार संसदीय नियंत्रण की पूरी प्रक्रिया को देखने के बाद ये कहा जा सकता है कि संसदीय नियंत्रण लोक प्रशासन पर नियंत्रण का एक लोकप्रिय तथा महत्वपूर्ण साधन है जो सम्पूर्ण लोक प्रशासन को सजक तथा सक्रिय रखता है। चूँकि समस्त प्रशासनिक कार्यों की अन्तिम जिम्मेदारी सम्बन्धित मंत्रालय के मंत्री तथा अन्ततः सम्पूर्ण मंत्री-परिषद की ही रहती है। अतः राजनीतिक कार्यपालिका, प्रशासनिक तंत्र पर प्रभावकारी नियंत्रण रखना चाहती तो है, लेकिन यह नियंत्रण मात्र सिद्धान्त रूप में ही प्रभावी प्रतीत होता है, व्यवहारतः संसद अनेक सीमाओं में बंधी हुई रहती है। संसदीय नियंत्रण के सम्बन्ध में कुछ विद्वानों का यह सोचना है कि संसद के पास समय तथा कुशल कर्मचारियों का अभाव है, वहीं दूसरी ओर सत्ताधारी दल के स्पष्ट बहुमत में होने के कारण भी प्रशासन पर संसदीय नियंत्रण शिथिल रहता है। प्रशासन पर नियंत्रण के सम्बन्ध में एक नाजुक समस्या यह भी है कि विधायिका किस सीमा तक प्रशासकों पर नियंत्रण रखे अर्थात् नियंत्रण की सीमा क्या हो? इसी प्रकार एक विकट समस्या यह भी रहती है कि इस सीमा का निर्धारण किस मानदण्ड को रखकर किया जाय। यह तथ्य भी सही है कि अनेक बार संसद का हस्तक्षेप प्रशासन के दैनिक कार्यों में आवश्यकता से अधिक हो जाता है। प्रशासकों के कार्यों पर अधिक प्रतिबन्ध लग जाने से उनके लिये ठीक से कार्य कर पाना कठिन होता है।

8.3 प्रशासन पर संसदीय नियंत्रण की समस्याऐं

भारत में प्रशासन पर विधायिका के नियंत्रण की समस्या को विस्तृत रूप में निम्न बिन्दुओं में भली-भाँति समझा जा सकता है।

1. विधायकों के पास कार्यों का बोझ आवश्यकता से अधिक होता है, जिसके कारण वे नियंत्रण से सम्बन्धित गतिविधियों को पूरा करने हेतु उचित समय नहीं दे पाते हैं।
2. सभी संसद सदस्य आवश्यक रूप से संसद की कार्यवाहियों में रुचि प्रकट नहीं करते है, बल्कि सभी दलों में मात्र दो-चार सदस्य ही ऐसे होते हैं जो पूर्णरूप से मुखर एवं सक्रिय नजर आते हैं।
3. संसद सदस्य की अधिकांश आलाचनाऐं दलीय भावनाओं पर आधारित होती हैं।
4. भारतीय प्रशासन पर संसदीय न्यिंत्रण वास्तव में मंत्रियों को उत्तरदायित्वों से मुक्ति का एक बहाना होता है, अपने इस कार्य से बचने के लिये वो स्वयं बचकर उत्तरदायित्व, स्वयं न लेते हुए प्रशासनिक अधिकारियों पर थोप देते हैं।
5. संसद सदस्यों के लिये न्यूनतम शैक्षणिक योग्यता भी निर्धारित नहीं होती है, जिसके कारण सभी सदस्य विधायिका तथा कार्यपालिका की तकनीकी शब्दावली एवं प्रक्रियाओं से पूर्णरूप से परिचित नहीं होते, अतः कई बार उनमें स्वतः ही अपने इस कार्य के लिये अरूचि पैदा हो जाती है।
6. सांसदों के पास किसी प्रकार का तकनीकी ज्ञान नहीं होता, या यूँ कहें कि वे विषय के विशेषज्ञ नहीं होते ऐसे में विषयों की बारीकियों को समझे बिना वे रचनात्मक और प्रभावकारी नियंत्रण स्थापित नहीं कर पाते हैं।
7. संसदीय नियंत्रण के सम्बन्ध में एक समस्या ये भी होती है कि, संसद द्वारा प्रशासनिक अधिकारियों की आलोचना एकपक्षीय होती है। संसद प्रशासनिक अधिकारियों की तो आलोचना करता है, पर सम्बन्धित अधिकारियों को अपना पक्ष रखने का कोई अवसर प्राप्त नहीं होता है। यही कारण है कि अधिकांशतः प्रशासनिक अधिकारी भयभीत रहते हैं और वे प्रभावशाली सदस्यों को येन-केन प्रकारेन प्रसन्न रखने की कोशिश करते हैं। फलस्वरूप इससे प्रशासन की कार्यकुशलता, निष्पक्षता, मनोबल आदि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता हैं।
8. इस नियंत्रण के सन्दर्भ में एक अन्य समस्या ये भी आती है कि, विधायिका के सदस्यों में स्व-प्रचार(Self-Advertisement) की भावना ज्यादा पायी जाती है। अतः वे सरकार और प्रशासन की आलोचना प्रशासनिक व्यवस्था में सुधार लाने के लिये नहीं करते, बल्कि इसलिये करते हैं कि अखबारों, टी0वी0 आदि में उनका नाम आये व उनको ख्याति मिले।
9. प्रचण्ड बहुमत भी एक कारण है, जब विपक्षी दलों की स्थिति सदन में कमजोर रहती है और इसका प्रत्यक्ष प्रभाव नियंत्रण पर पड़ता है।
10. भारतीय विधान मण्डलों में विगत कई वर्षों से आ रही नैतिक गिरावट के कारण जनप्रतिनिधियों का व्यवहार नितान्त गैर-जिम्मेदाराना तथा अलोकतांत्रिक हो गया है। ऐसे में जब संसद स्वयं नियंत्रित नहीं है तो वो प्रशासन को कैसे नियंत्रित करेगी।

अतः निष्कर्ष तौर पर ये कहा जा सकता है कि प्रशासनिक नियंत्रण की सीमाएँ स्पष्ट एवं उचित रूप से निर्धारित करके यह देखे जाने की आवश्यकता है कि, संसदीय नियंत्रण की गरिमामय स्थिति बनी रहे। अधिकारी अपनी सत्ता का दुरुपयोग ना करें। इसके अतिरिक्त सांसदों द्वारा की जाने वाली आलोचना सार्वजनिक हित में हो, ना कि व्यक्तिगत प्रसिद्धि या लाभ के लिये। विधायिका सूक्ष्म परीक्षण के द्वारा प्रशासन पर कड़ी नजर रखें और अप्रमाणिक, निराधार एवं बेबुनियादी बातों को लेकर प्रशासकों की कटु आलोचना ना करें। सच्चाई हालांकि यह

है कि विधायी नियंत्रण उपयुक्त नहीं है। अतः उसमें सुधार की अत्यधिक आवश्यकता है। परन्तु फिर भी पॉल एपलबी ने, भारत के सन्दर्भ में कहा है कि, ''संसद, सरकार द्वारा कानून बनाने के लिये प्रस्तुत प्रस्तावों के नीति सम्बन्धी महत्वपूर्ण प्रश्नों पर वाद-विवाद करने का कार्य बड़े प्रशंसनीय ढंग से करती है।' अतः कहा जा सकता है कि ''कुछ समस्याएँ और सीमाएँ विधायी नियंत्रण के मार्ग में अवश्य ही अवरोधक है, लेकिन इसके बावजूद भी संसदीय शासन वाले देशों में विधायिका के नियंत्रण की स्थिति प्रभावशाली एवं काफी सन्तोषजनक है।

अभ्यास प्रश्न-

1. संसदीय नियंत्रण का दूसरा नाम क्या है?
2. लोक लेखा समिति की स्थापना कब हुई?
3. संसदीय समितियों के सदस्य कितने वर्ष के लिये चुने जाते हैं?
4. अनुमान समिति का दूसरा नाम क्या है?

8.4 सारांश

उपरोक्त अध्ययन के पश्चात आप को ज्ञात हो गया होगा कि, प्रशासन और सेवी वर्ग अपनी शक्तियों का दुरूपयोग न करें, निरंकुश और अनुत्तरदायी ना बने, इसके लिये आवश्यक है कि उनकी शक्तियों को नियंत्रित कर उन्हें उत्तरदायी बनाया जाये।

प्रशासनिक पदाधिकारियों पर विधायिका मंत्रियों के माध्यम से नियंत्रण रखती है, क्योंकि संसद द्वारा अनुमोदित नीतियों का क्रियान्वयन मंत्रियों के माध्यम से प्रशासन करता है और प्रशासनिक असफलता, अकार्यकुशलत, अनियमितता के लिये अन्ततः मंत्रिपरिषद ही उत्तरदायी है। प्रशासनिक जागरूकता, ईमानदारी, कार्यकुशलता के लिये मंत्रिपरिषद की जागरूकता आवश्यक है। अतः संसदीय शासन प्रणाली वाले देशों में विधायी अथवा संसदीय नियंत्रण के अनेक साधनों को अपनाते हुए स्थापित किया जाता है।

8.5 शब्दावली

विकासोन्मुख- विकास की ओर बढ़ने वाला, नियोजन- योजना, निष्पादन- क्रियान्वयन, तर्कसंगत- तर्क सहित, विलम्ब- देरी, अपरिहार्य- जिसके बिना काम ना चल सके, शिथिलता- ढीलापन, प्राधिकृत- जिसे विधिवत अधिकार प्राप्त हों, वैध- जो विधि के अनुसार हो, कायदे-कानून के अनुसार, स्वायत्त- स्वतंत्र, वैमनस्य- वैर, तारतम्यहीन- जिसमें तालमेल ना हो

8.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. विधायी नियंत्रण, **2.** 1954, **3.** एक वर्ष, **4.** प्राक्लन समिति

8.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अवस्थी एवं अवस्थी, भारतीय प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा- 2002-2003
2. आर0के0 दुबे, आधुनिक लोक प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा- 2004
3. डॉ0 सुरेन्द्र कटारिया, लोक प्रशासन, मलिक एण्ड कम्पनी, जयपुर।

8.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. डॉ0 बी0एल0 फड़िया, लोक प्रशासन, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा- 2015

8.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. आधुनिक लोकतन्त्रीय राज्य में प्रशासन पर विधायी नियंत्रण की विधियों को समझाइये।
2. भारतीय प्रशासन पर संसद किस प्रकार नियंत्रण रखती है? विस्तृत विवेचना कीजिये।
3. भारतीय संसद किस प्रकार देश के लोक प्रशासन पर प्रभावशाली नियंत्रण रखती है? व्याख्या करें।

इकाई- 9 प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण

इकाई की संरचना

9.0 प्रस्तावना
9.1 उद्देश्य
9.2 न्यायिक नियंत्रण से अभिप्राय
9.3 न्यायिक नियंत्रण का क्षेत्र
9.4 न्यायिक नियंत्रण की प्रणालियाँ
    9.4.1 सामान्य साधन
    9.4.2 विशेष साधन या संवैधानिक उपचार
9.5 न्यायिक नियंत्रण की सीमाऐं
9.6 सारांश
9.7 शब्दावली
9.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
9.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
9.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
9.11 निबंधात्मक प्रश्न

9.0 प्रस्तावना

प्रजातांत्रिक देशों में न्यायपालिका नागरिक अधिकारों और स्वतंत्रताओं की रक्षक होती हैं। न्यायपालिका इस बात पर भी नजर रखती है कि प्रशासनिक अधिकारी अपनी सीमाओं में रहकर कार्य करें। आधुनिक प्रशासकीय राज्य और जनकल्याण की भावना ने, राज्य के कार्यों और अधिकारों का क्षेत्र, व्यापक बना दिया है। जिस अनुपात में उनके कार्यों में वृद्धि हुई है, उसी अनुपात से राज्य की शक्तियाँ भी बढ़ी हैं। अतः स्वभाविक है कि, यदि उनकी शक्तियों पर नियंत्रण ना रखा गया, तो प्रशासन निरंकुश और तानाशाह बन जायेगा। लोक प्रशासन पर इस नियंत्रण की धारणा को सबसे अच्छे ढंग से न्यायापालिका का नियंत्रण ही पूरा करता है।

9.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- न्यायिक नियंत्रण से क्या आशय है तथा ये कब स्थापित किया जाता है? इस संबंध में जान पायेंगे।
- ये जान जायेंगे कि, प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण स्थापित करने के प्रकार क्या-क्या हैं? अर्थात् नियंत्रण स्थापित कैसे किया जाता है?
- न्यायिक नियंत्रण की सीमाओं के बारे में भी आप जान पायेंगे।

9.2 प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण

सभी प्रजातांत्रिक देशों में न्यायपालिका, नागरिक अधिकारों और स्वतंत्रताओं की रक्षक होती हैं। न्यायपालिका इस बात पर पूरी नजर रखती है, कि प्रशासकीय अधिकारी अपनी सीमाओं में रह कर कार्य करें। प्रशासन पर बाहरी नियंत्रण के ये दो ही साधन होते हैं- प्रथम विधायी और दूसरा न्यायिक। पिछले अध्याय में आपने विधायी नियंत्रण के बारे में विस्तार से पढ़ा। आपको ज्ञात हो गया होगा कि वैधानिक नियंत्रण कार्यपालिका शाखा की नीति तथा व्यय को क्रियान्वित करता है और न्यायपालिका का नियंत्रण कार्यों की वैधानिकता निश्चित करता है या उसकी जाँच करता है। इस प्रकार जब भी कोई सरकारी अधिकारी नागरिकों के संवैधानिक या मौलिक अधिकारों का

अतिक्रमण करते हैं, तो न्यायपालिका उनकी रक्षा करती हैं। अर्थात् भारत में न्यायपालिका ना केवल सर्वोच्च है, बल्कि मौलिक अधिकार एवं संविधान की संरक्षक भी है। अर्नेस्ट फ्रायड(Ernest Freud) ने कहा कि कि, ''बढ़ती हुई प्रशासकीय शक्तियाँ यह माँग करती हैं कि उनकी सुरक्षा की समुचित व्यवस्था जरूरी है, जिसमें उसका दुरूपयोग नहीं किया जा सके। जब तक सरकारी कर्मचारियों में पक्षपात करने, भूल करने या अति-उत्साह प्रदर्शित करने की संभावना है, तब तक व्यक्ति के अधिकारों की रक्षा करना उतना ही आवश्यक है, जितना किसी सरकारी नीति का प्रभावशाली होना।''

संक्षेप में कहा जाये तो जब भी सरकारी अधिकारी अनाचार करता है, या अपने अधिकारों का दुरूपयोग करता है, तो ऐसी स्थिति में कोई भी नागरिक न्यायालयों में उसके विरूद्ध कार्यवाही कर सकता है और न्याय पा सकता है। ऐसे में न्यायालय नागरिकों की स्वतंत्रताओं तथा मौलिक अधिकारों का संरक्षण करते हुए प्रशासन को नियंत्रित करने हेतु जो भी कार्य करती है, वह न्यायिक नियंत्रण कहलाता है। न्यायपालिका का कार्य देश के कानूनों की व्यवस्था करना और उन्हें भंग करने वालों के लिये दण्ड की व्यवस्था करना है।

9.3 न्यायिक नियंत्रण का क्षेत्र

लोक प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण के सन्दर्भ में सबसे प्रमुख बात यह है, कि भारत में न्याय व्यवस्था में न्याय पुनरीक्षा या पुनरावलोकन को अपनाया गया है और साथ ही न्यायपालिका को स्वतंत्र रखा गया है। यहीं आपको यह बता दें, कि न्यायिक पुनरावलोकन जिसे कई बार न्यायिक पुनरीक्षा भी कहा जाता है, उस प्रक्रिया को कहते हैं, जिसके अन्तर्गत कार्यकारिणी के कार्यों (तथा कभी-कभी विधायिका के कार्यों) की न्यायपालिका द्वारा पुनरीक्षा (Review) का प्रावधान हो। दूसरे शब्दों में, न्यायिक पुनरावलोकन से तात्पर्य न्यायालय की उस शक्ति से है, जिस शक्ति के बल पर वह विधायिका द्वारा बनाये कानूनों, कार्यपालिका द्वारा जारी किये गये आदेशों तथा प्रशासन द्वारा किये गये कार्यों की जाँच करती है कि वह मूल ढाँचे के अनुरूप है या नहीं। मूल ढाँचे के प्रतिकूल होने पर न्यायालय उसे अवैध घोषित करता है। परन्तु इस स्वंत्रता के उपरान्त भी भारत में न्यायालय अपने आप किसी भी प्रशासकीय अधिकारी या प्रशासन के कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करता है। न्यायालय लोक प्रशासकों की स्वेच्छाधारिता पर अपना अंकुश और नियंत्रण कुछ निर्धारित नियमों के अनुसार कुछ निश्चित सीमाओं, परिस्थितियों तथा शर्तों में ही रख सकते हैं। इसकी एक बड़ी शर्त ये है कि न्यायालय प्रशासन के कार्यों में तब तक हस्तक्षेप नहीं कर सकते, जब तक की कोई व्यक्ति, समूह या संस्था न्यायालय में आवेदन-पत्र देकर उससे इस आधार पर हस्तक्षेप करने की प्रार्थना न करे, कि सरकारी अधिकारियों के किसी कार्य से उसके अधिकारों का अतिक्रमण या हनन हुआ है अथवा ऐसा होने की सम्भावना है। अतः लोक प्रशासन पर न्यायपालिका अपना नियंत्रण, कुछ विशेष परिस्थितियों, सीमाओं और निर्धारित अवसरों पर ही कर सकती है। प्रो0 एल0डी0 व्हाइट ने पाँच ऐसे अवसरों का उल्लेख किया, जिनमें न्यायपालिका हस्तक्षेप कर सकती है, ये हैं- अधिकार क्षेत्र का अभाव, अधिकारों के विवेक का दुरूपयोग या सत्ता का दुरूपयोग, वैधानिक त्रुटियाँ, तथ्य की प्राप्ति में त्रुटि, और समुचित प्रक्रिया की गलती। आइये इन बिन्दुओं को थोड़ा विस्तार से जानते हैं।

1. **अधिकार क्षेत्र का अभाव(Lack of Justification)-** प्रत्येक नागरिक संगठन अथवा अधिकारी के कार्यक्षेत्र को, नियमानुसार निर्धारित किया जाता है। ऐसी किसी भी परिस्थितियों में जब कोई प्रशासक अपने निर्धारित कार्यक्षेत्र या सीमा के बाहर कोई कार्य करता है और उसके ऐसा करने से यदि किसी नागरिक के अधिकार को हानि पहुँचती है, तो वह व्यक्ति अपने अधिकारों की रक्षा के लिये न्यायालय की शरण ले सकता है। यदि न्यायालय में प्रस्तुत किये गये प्रमाणों से यह सिद्ध हो जाता है, कि वह कार्य प्रशासनिक अधिकारी के क्षेत्र में नहीं था तो न्यायालय उस कार्य की अधिकारिता(Ultra Vires) होने, अर्थात् अधिकारी के कार्यक्षेत्र से बाहर होने के कारण अवैध घोषित कर सकता हैं। इसे न्यायिक

पुनरावलोकन (Judicial Review) का अधिकार ही कहा जाता है। यह सिद्धान्त उन देशों में प्रचलित है, जहाँ संविधान को सर्वोच्च माना जाता है और इसी कारण इन देशों में यह आवश्यक हो जाता है, कि सरकारी अधिकारियों के सारे कार्य संविधान के अनुकूल ही हो। अमेरिका और भारत में न्यायालयों को यह अधिकार प्राप्त हैं।

2. **सत्ता का दुरूपयोग(Abuse of Authority)-** प्रशासनिक कार्यों को पूरा करने के लिये प्रत्येक अधिकारी के पास सत्ता होती है तथा कतिपय मामलों में वह स्व-विवेक से निर्णय लेने की शक्ति भी रखता है। जब लोक-सेवा के अधिकारी अपने सत्ता और पद(Authority and Post) का प्रयोग अपने विरोधी को जान-बूझकर हानि पहुँचाने या किसी के प्रति बदले की भावना से करें, तो प्रभावित व्यक्ति न्यायालय की शरण में जा सकता है।
3. **वैधानिक त्रुटियाँ(Error of Law)-** इस बात की पूरी सम्भावना रहती है कि सरकारी अधिकारी कानून की गलत व्याख्या करें और नागरिकों को कानून का गलत ढंग से प्रयोग कर हानि पहुँचाऐं, ऐसी स्थिति में प्रभावित व्यक्ति न्यायालय में जाकर अपने अधिकारों की रक्षा हेतु, उन कार्यवाहियों की जाँच की माँग कर सकता है, जो वैधानिक दृष्टि से गलत हो। जाँच के उपरान्त यदि न्यायालय ऐसा समझता है कि अधिकारी ने कानून की गलत व्याख्या की है, तो उन कार्यों को न्यायालय में करने असंवैधानिक घोषित कर सकती हैं।
4. **तथ्यों की प्राप्ति में त्रुटि(Error of Fact Finding)-** प्रशासनिक संस्थाओं द्वारा जारी किये जाने वाले आदेश पूर्णतया तथ्यों पर आधारित होने चाहिये। लोक-सेवा में अधिकारी कभी-कभी किसी मामले की जाँच करने में या तथ्यों का पता लगाने में त्रुटि कर सकते हैं या कभी किसी नागरिक को नुकसान पहुँचाने की नीयत से कोई आदेश प्रसारित करता है। ऐसी स्थिति में प्रभावित व्यक्ति न्यायालय जा सकता है।
5. **समुचित प्रक्रिया की गलती(Error of Procedure)-** लोक-सेवा के प्रायः सभी विभागों के कार्य संचालन के लिये विधि द्वारा प्रक्रिया का निर्धारण कर दिया जाता है। उन निर्धारित प्रक्रियाओं के अन्दर रहकर ही सभी विभाग और उसके अधिकारी कार्य करते हैं। जब अधिकारी या विभाग कोई ऐसा कार्य करते हैं, जिसमें निर्धारित प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया है, तो प्रभावित नागरिक अपने अधिकारों की रक्षा के लिये न्यायालय की शरण ले सकता है। उदाहरण स्वरूप, यदि किसी कर्मचारी को भ्रष्टाचार के किसी मामले में बर्खास्त कर दिया गया हो, तो उसे सबसे पहले 'कारण बताओ' सूचना दी जाती है। किसी कर्मचारी को कारण बताओ नोटिस दिये बिना ही बर्खास्त कर दिया जाये, तो इसे प्रक्रिया की गलती कहेंगे तथा ऐसी स्थिति में प्रभावित व्यक्ति न्यायालय की शरण में जा सकता है।

इस प्रकार उपरोक्त वर्णन के द्वारा आपने एल0डी0 व्हाइट द्वारा बताये गये उन अवसरों के बारे में विस्तार से जाना, जिसमें न्यायपालिका, लोक प्रशासन पर नियंत्रण स्थापित कर सकती है।

9.4 न्यायिक नियंत्रण की प्रणालियाँ

न्यायिक नियंत्रण के अवसरों को जानने के बाद, यह जानना आवश्यक हो जाता है कि ये नियंत्रण किस प्रकार स्थापित किया जाये? या इसका रूप क्या हो? प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण कई रूपों में स्थापित किया जाता है, क्योंकि न्यायपालिका को प्रशासन पर नियंत्रण का अधिकार भी कई स्त्रोतों से प्राप्त होता है। सामान्य कानून तो, उन्हें यह अधिकार प्रदान करते ही हैं, संविधान और संसद द्वारा निर्मित अधिनियम भी उनके नियंत्रण के अधिकार को शक्ति प्रदान करते हैं। अर्थात् लोक प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण स्थापित करने हेतु प्रयुक्त साधनों को दो श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता हैं- सामान्य साधन और विशेष साधन या संविधान उपचार।

न्यायपालिका के द्वारा इन दोनों श्रेणियों के अन्तर्गत अनेक साधनों को अपनाते हुए प्रशासन पर नियंत्रण स्थापित किया जाता है। इन सब साधनों को एक आरेख के द्वारा समझा जा सकता है-

न्यायिक नियंत्रण के साधन

सामान्य साधन

1. प्रशासनिक कार्यों तथा निर्णयों का न्यायिक पुनरावलोकन
2. सरकार के विरूद्ध अभियोग
3. प्रत्यायोजित विधान की वैधानिकता
4. कार्यपालिका के कानूनों या नियमों को अवैध घोषित करना

विशेष साधन या संवैधानिक उपचार

1. बन्दी प्रत्यक्षीकरण
2. परमादेश
3. निषेधाज्ञा या प्रतिषेध
4. उत्प्रेषण
5. अधिकार-पृच्छा

आइये अब न्यायिक नियंत्रण के इन सभी साधनों का विस्तृत रूप से विवेचन करते हैं-

9.4.1 सामान्य साधन

आइये सामान्य साधन के अन्तर्गत निम्नांकित बिन्दुओं का अध्ययन करते हैं-

1. **प्रशासनिक कार्यों के निर्णयों का न्यायिक पुनर्रावलोकन-** भारत और अमेरिका में न्यायपालिका को यह अधिकार प्राप्त है, कि वो समय-समय पर प्रशासनिक कार्यों की देखभाल करती रहे, यदि कोई प्रशासनिक निर्णय संविधान के विरूद्ध है, तो उसे पुनर्रिक्षित कर असंवैधानिक घोषित करें। परन्तु न्यायालय ऐसा तभी कर सकते हैं, जब कोई व्यक्ति न्यायालय का दरवाजा खटखटाये। भारत में कार्यपालिका तथा व्यवस्थापिका के कार्यों में न्यायालयों द्वारा हस्तक्षेप करने की प्रवृत्ति कम ही रही है। ऐसा इसलिए क्योंकि, हमारा संविधान न्यायिक समीक्षा के सम्बन्ध में अनेक प्रकार की मर्यादाऐं स्थापित करता है। किन्तु फिर भी नागरिकों के हितों की रक्षा तथा कानूनी प्रक्रियाओं में आस्था प्रकट करने के लिये न्यायपालिका द्वारा कई बार प्रशासनिक कार्यों एवं निर्णयों की समीक्षा की गयी हैं। यद्यपि न्यायिक समीक्षा का क्षेत्र संसद द्वारा सीमित किया हुआ है, फिर भी अनेक अवसरों पर न्यायालयों ने प्रशासनिक कृत्यों की समीक्षा कर उनके गुण-दोष वर्णित किये हैं। उच्चतम न्यायालय ने कई बार अपने ही निर्णयों की भी पुनःसमीक्षा की है। लगभग इसी प्रकार की स्थिति ब्रिटेन में है। वहाँ न्यायिक पुनरावलोकन ज्यादा प्रभावी नहीं हो सकता है और संसदीय कानून ने अनेक प्रशासकीय कार्यो को न्यायिक पुनरावलोकन के क्षेत्र से बाहर भी रखा है, लेकिन अमेरिका में किसी भी प्रशासकीय कार्य और निर्णय को न्यायिक पुनरावलोकन के क्षेत्र से बाहर नहीं रखा गया है।
2. **सरकार के विरूद्ध अभियोग-** भारत के राष्ट्रपति एवं राज्यपालों के अतिरिक्त अन्य लोक-सेवकों को भी अवैधानिक कार्यों के लिये आम व्यक्ति की भाँति अभियोगों का सामना करना पड़ता हैं। पद पर रहते हुए अपेक्षित दायित्वों की पूर्ति तथा शक्तियों के उपयोग के क्रम में राष्ट्रपति एवं राज्यपाल के अतिरिक्त अन्य सभी मंत्री अधिकारी कानून के प्रति उत्तरदायी हैं। भारत के संविधान के अनुच्छेद- 300 में ये कहा गया है कि, ''भारत सरकार के विरूद्ध या उसके द्वारा भारतीय संघ के नाम से अभियोग प्रस्तुत किये जा सकते हैं। किसी राज्य की सरकार के विरूद्ध या उसके द्वारा उस राज्य के नाम से भी अभियोग प्रस्तुत किये जा सकते हैं।'' इसका आशय यह है, कि सिर्फ केन्द्र सरकार और राज्य सरकार द्वारा ही मुकदमा

दायर नहीं किया जाता है, बल्कि केन्द्र और राज्य सरकार के विरूद्ध भी मुकदमा दायर किया जाता है और सरकार को एक विरोधी पक्ष के रूप में न्यायालय ले जाया जा सकता हैं। भारत में सरकार के विरूद्ध संविदा और उपकार-कृत्य सम्बन्धी मुकदमें दायर किये जाते हैं। लेकिन प्रशासकीय अधिकारियों द्वारा किये गये पदों के दुरूपयोग के मामले या अन्य भ्रष्टाचार सम्बन्धी मामलें में अधिकारी के विरूद्ध व्यक्तिगत रूप से मुकदमा चलता है। सरकार के कर्मचारी होने के नाते सरकार उसमें पार्टी नहीं रहती है। इंग्लैण्ड में तो यह कहावत प्रचलित है कि ''सम्राट को कोई भूल नहीं करता।'' अतः 1947 के पहले सम्राट पर कोई मुकदमा नहीं चलाया जा सकता था। अब 1947 के 'कानूनी कार्यवाही अधिनियम'(Crown Proceeding Act) द्वारा ब्रिटेन में राज्य की उन्मुक्ति को समाप्त कर दिया गया है। अमेरिका में भी कुछ परिस्थितियों में सरकार के विरूद्ध मुकदमा किया जा सकता है।

3. **प्रत्यायोजित विधान की वैधानिकता-** किसी उच्च सत्ता प्राप्त अधिकारी के द्वारा, निम्न अधिकारी को, नियम एवं विधि निर्माण की शक्तियों का जब भी प्रत्यायोजन किया जाता है, तो इस सन्दर्भ में न्यायालयों को ये शक्ति प्राप्त होती हैं, कि वे इस प्रत्यायोजित विधान की वैधानिकता को उचित करार दें या नहीं। इस सन्दर्भ में सदा नियमों एवं विधानों का पालन किया जाना चाहिये। उचित मापदण्डों पर खरे ना उतरने वाले प्रत्यायोजित विधायनों का न्यायालय द्वारा परीक्षण हो सकता है।
4. **कार्यपालिका के कानूनों या नियमों को अवैध घोषित करना-** कार्यपालिका द्वारा निर्मित कानूनों या अध्यादेशों को भी, न्यायालयों में चुनौती दी जा सकती हैं। लेकिन इस सम्बन्ध में की जाने वाली अपीलों के सन्दर्भ में ये देखना आवश्यक होता है, कि जिस प्रशासकीय कानून के सन्दर्भ में अपील की जा रही है, उसमें प्रभावित पक्ष के द्वारा न्यायालय में अपील करने की व्यवस्था प्रदान की गयी है, अथवा नहीं। ऐसी स्थिति में राष्ट्रपति तथा राज्यपाल द्वारा जारी अध्यादेशों पर भी न्यायालय विचार कर सकते हैं। यदि ऐसे अध्यादेश, संविधान के किसी उपबन्ध का उल्लंघन करते हैंतो उन्हें न्यायालय द्वारा असंवैधानिक करार दिया जा सकता है।

इस प्रकार उपरोक्त साधन कुछ ऐसे साधन हैं, जिनको अपनाते हुये न्यायपालिका प्रशासन पर नियंत्रण स्थापित करती है।

9.4.2 विशेष साधन या संवैधानिक उपचार (Special or Extraordinary Judicial Remedies)

प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण स्थापित करने के लिये न्यायपालिका को उपर्युक्त साधारण अधिकारों के अतिरिक्त कुछ विशिष्ट साधन भी प्राप्त हैं। इन विशिष्ट साधनों को ही असंवैधानिक उपचार कहा जाता है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद- 32 में सर्वोच्च न्यायालय को तथा अनुच्छेद- 226 के अन्तर्गत, उच्च न्यायालयों को कुछ विशिष्ट प्रकार के लेख या आदेश जारी करने का अधिकार प्राप्त है। संविधान के अनुच्छेद- 32 के अन्तर्गत, सर्वोच्च न्यायालय को मौलिक अधिकारों के हनन के मामलों की सुनवाई का अधिकार है। इस क्रम में सर्वोच्च न्यायालय रिट निकाल सकता है। अनुच्छेद- 226 के अन्तर्गत उच्च न्यायालयों को मौलिक अधिकारों सहित संविधान द्वारा अधिरोपित किसी अन्य मर्यादा के उल्लंघन पर भी सुनवाई करने तथा रिट निकालने का अधिकार है। इस सम्बन्ध में उच्च न्यायालयों का क्षेत्र, सर्वोच्च न्यायालय से व्यापक है।

इन असाधारण उपचारों का इतिहास काफी लम्बा है तथा ब्रिटिश संवैधानिक इतिहास में देखा जा सकता है। वहाँ इनको न्याय के मूल स्रोत, राजा के नाम पर प्रचारित विशेषाधिकार लेख कहा जाता हैं। इन उपचारों को असाधारण इसलिये कहा जाता है, क्योंकि बन्दी प्रत्यक्षीकरण को छोड़कर अन्य सभी लेख, न्यायालयों द्वारा किसी के अधिकार के रूप में नहीं, बल्कि उसकी स्वेच्छा से प्रसारित किये जाते हैं और केवल वहीं प्रसारित किये जाते हैं, जहाँ कि अन्य साधन अपर्याप्त हों। प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण के विभिन्न लेखों का संक्षिप्त उल्लेख निम्न प्रकार किया जा सकता है-

1. **बन्दी प्रत्यक्षीकरण(The Writ of Habeas Corpus)-** इस याचिका को अंग्रेजी में 'हेबियस कॉर्पस' कहा जाता है। 'हेबियस कॉर्पस' एक लेटिन शब्द है और इसका शाब्दिक अर्थ है- शरीर प्राप्त करना। बन्दी प्रत्यक्षीकरण की रिट एक आदेश के समान होती है। इस रिट में उस व्यक्ति को, जिसने किसी अन्य व्यक्ति को बन्दी बना रखा है, न्यायालय आदेश देता है कि, बन्दी बनाये गये व्यक्ति को अविलम्ब सशरीर न्यायालय में प्रस्तुत करे, जिससे न्यायालय उस व्यक्ति को बन्दी बनाये जाने के कारणों तथा औचित्यता की वैधानिकता की जाँच कर सके, जिनके द्वारा उस व्यक्ति को बन्दी बनाया गया है। यदि उस व्यक्ति को बन्दी बनाये जाने के पर्याप्त कारण उपलब्ध ना हों, तो बन्दी बनाये गये व्यक्ति को न्यायालय मुक्त भी कर सकता हैं। इस रिट में व्यक्तिगत स्वतंत्रता की रक्षा की भावना तो काम करती ही है, साथ ही इसका उद्देश्य यह भी है कि बिना पर्याप्त कारण के मनमानी ढंग से किसी भी व्यक्ति को बन्दी नहीं बनाया जाये। परन्तु मीसा(MISA), डी0आई0आर0 (D.I.R.) तथा राष्ट्रीय सुरक्षा कानून (National Security Act) ने न्यायालय के बन्दी प्रत्यक्षीकरण अधिकार पर प्रहार किया है। एल0डी0 व्हाइट का भी यह मानना है कि, ''इस लेख का प्रभाव हर हालत में यह होता है कि, बन्दी बनाये गये व्यक्ति को उसके बन्दी बनाये जाने की वैधानिकता की जाँच करने के लिये न्यायालय के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता है।'' इस अधिकार पर सबसे बड़ी बांधा तब आती है, जब संसद या राज्य विधानमण्डल कानून पास करके, ऐसा प्रावधान कर दे कि किसी भी व्यक्ति को बिना कोई कारण बताये, अमुक एक्ट के अनुसार नजरबन्द किया जा सकता है। वास्तव में इस प्रकार के कानून नागरिकों की स्वतंत्रता और मौलिक अधिकारों पर घातक हमले हैं।
2. **परमादेश(The Writ of Mandamus)-** परमादेश को अंग्रेजी 'मैनडेमस'(Mandamus) कहा जाता है। मैनडेमस भी एक लेटिन शब्द है, जिसका शाब्दिक अर्थ है- समादेश अथवा किसी को आज्ञा देना। प्रो0 एल0डी0 व्हाइट ने कहा है कि, ''यह लेख न्यायालय द्वारा सामान्य रूप से किसी व्यक्ति की याचिका पर जारी किया जाता हैं, जिससे सम्बद्ध अधिकारी अपने कर्तव्यों का पालन करें।'' परमादेश लेख द्वारा न्यायालय सार्वजनिक निकास, सार्वजनिक कर्मचारी, निगम या संस्था को आदेश दे सकता है, कि कर्तव्यों का पालन कानून के अनुसार करें। यह लेख लोक-कर्मचारियों को उनके उन कर्तव्यों को भी याद दिलाता है, जिन्हें करने के लिये वह कर्मचारी कानून के द्वारा बाध्य हो। यह लेख किसी निगम या अधिकारी के अलावा अधीनस्थ न्यायालयों को भी जारी किया जा सकता हैं। यह आदेश राष्ट्रपति, राज्यपाल तथा किसी निकायों के विरूद्ध प्राप्त नहीं किया जा सकता हैं।
3. **निषेधाज्ञा या प्रतिषेध(The Writ of Prohibition)-** निषेधाज्ञा या प्रतिषेध, एक ऐसा लेख है जो उच्च-स्तरीय न्यायालय द्वारा, अधीनस्थ न्यायालयों को जारी किया जाता हैं। इस लेख का उद्देश्य, नीचे के या अधीनस्थ न्यायालयों को उन कार्यों से रोकना है, जिन्हें करने की अनुमति उन्हें कानून द्वारा नहीं मिली है। सरल शब्दों में कहें तो यह लेख उस समय जारी किया जाता है, जब कोई अधीनस्थ न्यायालय अपने अधिकार क्षेत्र से बाहर जा रहे हो। यह लेख अधीनस्थ न्यायालयों को विवादपूर्ण विषयों पर विचार करने से टोकने के लिये प्रसारित किया जाता है। इस लेख की विशेषता ये है, कि इसे केवल न्यायिक या अर्द्ध-न्यायिक न्याधिकरणों के विरूद्ध ही जारी किया जा सकता हैं। यह रिट ऐसे किसी प्रशासनिक अधिकारी के विरूद्ध नहीं दी जा सकती हैं जो न्यायिक कार्य नहीं करता हैं। यह रिट कार्यवाही लम्बित रहने या आदेश निकासी से पूर्व भी जारी हो सकती हैं।
4. **उत्प्रेषण(The Writ of Certiorari)-** उत्प्रेषण के लिये अंग्रेजी में 'सरटिओरेरी' शब्द प्रयुक्त होता है। लेटिन शब्द ''सरटिओरेरी''(Certiorari) का शाब्दिक अर्थ है, 'प्रमाणित होना' या 'निश्चित होना'। उत्प्रेषण उस लेख का नाम है, जो किसी उच्च स्तरीय न्यायालय द्वारा अधीनस्थ न्यायालयों को, उस

समय जारी किया जाता है, जब वह किसी मुकदमें की कार्यवाही से, असंतुष्ट हो। इसके अन्तर्गत उच्च न्यायालय अधीनस्थ न्यायालय से सभी प्रकार के रिकॉर्ड इस बात की जाँच-पड़ताल के लिये मंगवा सकता हैं कि कहीं अधीनस्थ न्यायालय अपने अधिकार क्षेत्र के बाहर तो नहीं गया है। इस लेख की माँग उन विवादों के सम्बन्ध में की जाती है, जिनकी प्रक्रिया सामान्य विधि के अनुरूप नहीं होती है। यह लेख प्रायः न्यायिक कार्य के विरूद्ध ही प्रसारित किया जाता है। इस आधार पर अधीनस्थ न्यायालय का निर्णय रूक जाता है। यह लेख परमादेश और निषेधाज्ञा दोनों के गुणों का मिश्रण होता हैं, क्योंकि इसके अनुसार, कुछ करने के लिये और कुछ ना करने की आज्ञाऐं दी जाती हैं। अन्तर सिर्फ इतना है कि प्रतिषेध कार्यवाही के दौरान जारी किया जा सकता है, जबकि उत्प्रेषण निम्न श्रेणी के न्यायालयों द्वारा आदेश दे चुकने के पश्चात जारी होता है।

5. **अधिकार-पृच्छा(The Writ of Quo-Warranto)-** अधिकार-पृच्छा को अंग्रेजी में 'को-वारण्टो' कहते हैं। लेटिन शब्द 'को-वारण्टो'(Quo-Warranto) का शाब्दिक अर्थ है- किसी अधिकार या प्राधिकार द्वारा। अधिकार-पृच्छा को, लोक-सत्ता के अधिकारियों पर न्यायिक नियंत्रण रखने की एक प्रत्यक्ष विधि के तौर पर जाना जाता है। अधिकार-पृच्छा वह लेख या न्यायिक अधिकार है, जिसके द्वारा न्यायालय, किसी व्यक्ति की याचिका पर किसी पद के ऊपर किये गये दावे के औचित्य की जाँच करता हैं अर्थात्, सरल शब्दों में, जब कोई व्यक्ति न्यायालय में यह याचिका प्रस्तुत करता है, कि उसका पद किसी अन्य व्यक्ति के द्वारा लिया गया है, तो न्यायालय उस पद के औचित्य की जाँच करवा सकता है। यदि उस पद पर आसीन व्यक्ति का दावा वैधानिक रूप से सही नहीं है, तो सम्बन्धित व्यक्ति को पद से हटाया जा सकता है। यह कार्यवाही केवल लोक-पदों, स्थायी-पदों तथा ऐसे व्यक्तियों से सम्बन्धित होती है, जिनकी नियुक्ति संविधान या कानून के किसी नियम का उल्लंघन करती हों। यह कार्यवाही सम्बन्धित व्यक्ति से यह जानना चाहती है कि, उसने किस आधार पर यह पद धारण कर रखा हैं। दूसरे शब्दो में, यह रिट अवैध दावेदारी समाप्त करके लोकहित को महत्व देती हैं। यहाँ यह जानना महत्वपूर्ण है कि परमादेश, लोक-सेवकों तथा न्यायालयों दोनों के विरूद्ध जारी हो सकता है, जबकि निषेधाज्ञा एवं उत्प्रेषण दोनों रिटें एक साथ भी जारी की जा सकती है।

इस प्रकार उपर्युक्त साधनों, उपायों एवं असाधारण उपचारों के द्वारा न्यायपालिका, प्रशासन पर प्रभावशाली नियंत्रण स्थापित करती हैं। भारत, अमेरिका, कनाडा, ब्रिटेन तथा अन्य प्रजातान्त्रित देशों की न्यायपालिकाओं ने अपने नियंत्रण के द्वारा प्रशासन को अपनी सीमा में रहने के लिये अनेक बार बाध्य किया हैं। उन देशों में जहाँ न्यायपालिका को सर्वोच्च संरक्षण(Supreme Guardian) की स्थिति प्राप्त हैं, प्रजातंत्र ज्यादा सफल हुआ है और न्यायपालिकाओं ने अपने न्यायिक पुनर्रावलोकन (Judicial Review) तथा अन्य महत्वपूर्ण लेखों के द्वारा शक्तिशाली सरकारों के भी अवैध फैसलों को निरस्त किया है और नियंत्रण में रहने को बाध्य किया है।

9.5 न्यायिक नियंत्रण की सीमाऐं

न्यायिक नियंत्रण की उपयोगिता से इन्कार नहीं किया जा सकता है। इसके माध्यम से आम नागरिक के अधिकार एवं स्वतंत्रता सुनिश्चित होती हैं लेकिन फिर भी लोक प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण की अपनी कुछ सीमाऐं या समस्याऐं हैं, जो कुछ इस प्रकार हैं-

1. हेरिस तथा वार्ड(Hariss and Ward) का मत है कि ''पूर्व न्यायिक नियंत्रण शासन की नियामकता एवं कुशल संचालन को रोक सकता हैं।'' अर्थात् व्यक्तिगत स्वतंत्रता के लिये तो न्यायपालिका बेशक आवश्यक है, परन्तु प्रशासकीय क्षेत्र में इसका अत्यधिक प्रयोग करने से प्रशासन अपंग(Handicapped) हो जाता हैं।

2. प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण न्यायपालिका स्वयं नहीं करती, नियंत्रण के लिये इसके पास आरम्भिक शक्ति नहीं हैं। यह तभी हस्तक्षेप कर सकती है, जब कोई व्यक्ति आवेदन देकर इससे अनुरोध करता है। अतः न्यायालय स्वयं हस्तक्षेप नहीं कर सकते हैं, जब कोई व्यक्ति या समूह उनके समक्ष प्रार्थना करता है, तभी वे हस्तक्षेप करते हैं।
3. न्यायिक प्रक्रिया अत्यनत जटिल एवं उलझी हुई प्रक्रिया है। इसमें नियमों, कानूनों, तथ्यों, प्रमाणों और गवाहों इत्यादि की कार्यवाहियों की इतनी उलझनें हैं, कि प्रशासकीय अन्याय का शिकार व्यक्ति न्यायालय में जाने की अपेक्षा चुप रहना ज्यादा बेहतर समझता है।
4. न्यायिक प्रक्रिया अत्यन्त ही विलम्बकारी प्रक्रिया(Time Taking Process) होती हैं। कई बार निर्णय में इतनी देरी हो जाती है, कि उस समय तक नागरिक को बहुत अधिक मात्रा में, ऐसी होनि पहुँच चुकी होती है, जिसकी भरपाई असम्भव होती है।
5. न्यायिक प्रक्रिया, न सिर्फ सुस्त और जटिल है, बल्कि यह प्रक्रिया बहुत अधिक खर्चीली है। न्यायिक कार्यवाही करने और अदालत में मुकदमा चलाने के लिए अत्यधिक व्यय करना पड़ता है। ये खर्च लम्बे समय तक बर्दाश्त कर पाना आम व निर्धन व्यक्ति के लिये सम्भव नहीं हो पाता है। अतः यह सबके लिये सुलभ नहीं है।
6. अनेक प्रशासकीय कार्य ऐसे होते हैं, जिन्हें न्यायपालिका के क्षेत्राधिकार से बाहर रखा जाता है। ऐसे प्रशासकीय कार्यो का न्यायिक पुनरावलोकन या न्यायिक समीक्षा नहीं की जाती हैं।
7. न्यायिक नियंत्रण घटना के बाद की प्रक्रिया है। जब कोई घटना घट जाती है, तब उसे न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है और तभी न्यायिक नियंत्रण की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है।
8. आजकल प्रशासन का कार्य अत्यधिक तकनीकों तथा विशेषकृत होता जा रहा हैं। न्यायालयों के न्यायाधीश, विशेष तकनीकी योग्यता के अभाव में समुचित निर्णय लेने की स्थिति में नहीं होते हैं।
9. कोई एक मुदकमा या वाद, जब विभिन्न न्यायालयों में पृथक-पृथक निर्णय प्राप्त करता है, तो न्याय-प्रणाली पर आस्था कम होती है। यही कारण है कि न्यायालयों में अपीलें बहुत कम होती हैं।

वस्तुतः स्वतंत्र एवं निष्पक्ष न्यायपालिका किसी भी व्यवस्था का मुख्य आधार होती हैं। लार्ड ब्राइस का कथन है- ‘‘कानून का सम्मान तभी होता है, जब वह निर्दोष व्यक्तियों की रक्षा के लिये ढाल बन जाता है और प्रत्येक नागरिक के निजी अधिकारों का संरक्षण करता हैं। यदि अंधेरे में न्याय का दीपक बुझ जाये तो उस गहन अंधकार का अनुमान लगना कठिन है।’’ उपर्युक्त सीमाओं और समस्याओं ने प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण के समक्ष अवश्य ही प्रश्न-चिन्ह खड़े कर दिये हैं और इसकी उपयोगिता को कुछ कम कर दिया हैं। लेकिन इन बांधाओं और सीमाओं के बाद भी प्रजातांत्रिक, संसदात्मक, अध्यक्षात्मक तथा विश्व की समस्त शासन-प्रणालियों में कमोबेश न्यायपालिका के नियंत्रण को आवश्यक माना गया हैं भारत के सन्दर्भ में तो निश्चय ही सर्वोच्च न्यायालय नागरिक स्वतंत्रता एवं मौलिक अधिकारों की संरक्षक और रक्षक दोनों ही हैं। अतः स्वतंत्र और निष्पक्ष न्यायपालिका सफल और कुशल प्रजातंत्र की पहली आवश्यकता है।

अभ्यास प्रश्न-

1. भारत में प्रशासन पर नियंत्रण का क्या साधन हैं?
2. बड़े न्यायालयों को छोटे न्यायालयों से रिकॉर्ड मंगवाने की शक्ति प्रदान करने वाला लेख या साधन का क्या नाम है?
3. किस लेख के द्वारा न्यायालय, सरकारी अधिकारों को किसी ना किसी प्रकार से कार्य करने के लिए बाध्य कर सकता हैं?
4. ‘हैबियस कॉर्पस’ का शाब्दिक अर्थ क्या है?

9.6 सारांश

इस अध्याय को पढ़ने के पश्चात आप अवगत हो गये होंगे, कि प्रशासन पर बाह्य नियंत्रण विधायी और न्यायिक साधनों द्वारा होता हैं। विधायी नियंत्रण कार्यपालिका शाखा की नीति तथा व्यय को नियोजित करता हैं और न्यायिक नियंत्रण प्रशासकीय कार्यों की वैधानिकता निश्चित करता हैं। किसी भी सरकारी अधिकारी द्वारा नागरिकों के संवैधानिक या मौलिक अधिकारों का अतिक्रमण होने पर न्यायपालिका उनकी रक्षा करता हैं और दोषियों को दण्डित करता हैं। ब्रिटेन की भाँति भारत में भी कानून के शासन की व्यवस्था की गयी हैं। भारत में न्यायपालिका को प्रशासन पर नियंत्रण स्थापित करने हेतु कुछ विशेष साधन भी प्रदान किये हैं, जिनका समुचित उपयोग करते हुए न्यायपालिका लोक-प्रशासन को नियंत्रित करती हैं। परन्तु न्यायपालिका द्वारा लोक-प्रशासन पर नियंत्रण कुछ विशिष्ट परिस्थितियों, सीमाओं और निर्धारित अवसरों पर ही किया जा सकता हैं।

9.7 शब्दावली

अधिकारातित- अधिकार-क्षेत्र से बाहर का, पुनरावलोकन- दोहराना, किसी किये हुये कार्य को फिर से देखना या करना, अवैधानिक- विधि विरूद्ध या कानून के खिलाफ, अभियोग- किसी पर लगाया गया आरोप, आक्षेप, दोषारोपण, अपकार-कृत्य-अनुचित आचरण या व्यवहार, उन्मुक्ति- छुटकारा या बंधनहीनता, अध्यादेश-किसी विशेष स्थिति से निपटने के लिये राज्य के प्रधान शासक द्वारा जारी किया गया आदेश या आज्ञा, प्रत्यायोजन- अपने अधिकार या शक्तियाँ किसी अन्य व्यक्ति को सौंपना या प्रदान करना, विधान- नियम या कायदा या बतलाया हुआ ढंग या प्रणाली या रीति, अविलम्ब- बिना विलम्ब के या तुरन्त या शीघ्र।

9.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. न्यायिक पुनरीक्षण, **2.** उत्प्रेषण, **3.** परमादेश, **4.** शरीर प्राप्त करना

9.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. आर0 के0 दुबे, आधुनिक लोक प्रशासन, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा- 2004
2. अवस्थी एवं अवस्थी, भारतीय प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा- 2002-03

9.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. डॉ0 सुरेन्द्र कटारिया, लोक प्रशासन, मलिक एण्ड कम्पनी, जयपुर- 2001
2. डॉ0 बी0 एल0 फड़िया, लोक प्रशासन, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।

9.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. एक लोकतांत्रिक व्यवस्था में प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण की प्रकृति, साधन और सीमाओं की विवेचना कीजिये।
2. लोक प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण के विभिन्न प्रकार क्या हैं? लोक-प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण के गुण और सीमाओं का उल्लेख कीजिये।
3. लोक प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण का विस्तार से वर्णन करिये।

इकाई- 10 तुलनात्मक लोक प्रशासन के प्रतिमान (मॉडल), मैक्स वेबर का नौकरशाही मॉडल

इकाई की संरचना

10.0 प्रस्तावना
10.1 उद्देश्य
10.2 तुलनात्मक लोक प्रशासन का अर्थ
10.3 मैक्स वेबर- एक परिचय
10.4 नौकरशाही का अर्थ
10.5 वेबर की नौकरशाही की अवधारणा
10.6 मैक्स वेबर का नौकरशाही का मॉडल
10.7 वेबेरियन मॉडल के मुख्य तत्व
 10.7.1 निर्वेण्यक्तिक व्यवस्था
 10.7.2 नियमों की सर्वोच्चता
 10.7.3 निपुणता अथवा कौशल
 10.7.4 पदसोपानियता
 10.7.5 लोक हित और निजी हितों में टकराव
 10.7.6 लिखित दस्तावेजों की मौजूदगी
10.8 वेबेरियन नौकरशाही मॉडल की आलोचना
10.9 वेबर की प्रतिमान अवधारणा का मूल्यांकन
10.10 सारांश
10.11 शब्दावली
10.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
10.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
10.14 सहायक/उपयोगी अध्ययन सामग्री
10.15 निबंधात्मक प्रश्न

10.0 प्रस्तावना

मैक्स वेबर प्रशासनिक जगत का एक महानतम् प्रशासनिक चिन्तक है। वह नौकरशाही के प्रतिमान का अद्वितीय सिद्धांतकार है। उसको नौकरशाही (Bureaucracy) का पर्यायवाची कहा जा सकता है, लेकिन यहाँ यह स्वीकार करना होगा कि मैक्स वेबर से पूर्व अनेक चिन्तकों ने नौकरशाही को अपने अपने नजरिये से देखा और परखा है। कुछ विचारकों ने नौकरशाही की प्रशंसा की है तो कुछ ने उसकी निन्दा। इसके पक्ष में तर्क भी दिए गए हैं और इस पर हमला भी किया गया है। यह निश्चित तौर से कहा जा सकता है कि नौकरशाही के विचार अथवा अवधारणा से सम्बन्धित तीन धाराऐं अस्तित्व में हैं। पहली धारा का निर्माता कार्ल मार्क्स (1818-1883) है। यह नौकरशाही को एक अभिशाप मानता है। उसके अनुसार नौकरशाही शोषणपरक समाज व्यवस्था का अभिन्न अंग है। उसने नौकरशाही की बुराईयों पर खुलकर लिखा है। दूसरी धारा का प्रतिनिधित्व राबट मर्टन और पीटर ब्लाउ जैसे अमरीकी चिन्तक करते हैं। इनका दृष्टिकोण सुधारवादी है। यह नौकरशाही की बुराईयों-जैसे मानवीय क्षमता को कम आंकना या कार्यक्षेत्र के माहौल को गन्दा करना-की ओर इशारा करके नौकरशाही में सुधार लाना चाहते हैं। तीसरा वह समूह है जो नौकरशाही को आधुनिक समाज के विकास की एक अनिवार्य शर्त मानता है। इस समूह का

प्रतिनिधित्व मैक्स वेबर करता है। वह नौकरशाही को किस रूप में लेता है और उसका कोन सा प्रतिमान (मॉडल) तैयार करता है, इसकी चर्चा हम अगले पन्नों में खुलकर करेंगे।

10.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- तुलनात्मक लोक प्रशासन का अर्थ और उसका महत्व समझ पायेंगे।
- मैक्स वैबर के जीवन-वृत के साथ उसके प्रशासनिक चिन्तन के लक्ष्य को समझने में आपको आसानी होगी।
- वेबर द्वारा तैयार किये गये नौकरशाही के प्रतिमान (मॉडल) को स्पष्ट रूप से समझ सकेंगे।
- वेबर द्वारा प्रस्तुत की गई विधिक और तार्किक(Legal Rational) अवधारणा से परिचित होंगे।
- नौकरशाही के प्रतिमान के वेबरवादी प्रतिमान की विशेषताओं को जान सकेंगे।
- वेबर के नौकरशाही के प्रतिमान को जानकर नौकरशाही की अनिवार्यता को स्वीकार कर सकेंगे।

10.2 तुलनात्मक लोक प्रशासन का अर्थ(Meaning of Comparative Public Adiministration)

राजनीतिक विज्ञान में राजनीतिक व्यवस्थाओं के अध्ययन के लिए प्लेटों से लेकर मार्क्स तक अध्ययन के अनेक तरीकों(Methods) को अपनाया गया है। इनमें आगमनात्मक(Inductive), निगमनात्मक(Deductive), पर्यावेक्षगात्मक(Observational) अनुभावात्मक(Empirical), तुलनात्मक, दार्शनिक और ऐतिहासिक तरीकों का समय- समय पर प्रयोग हुआ है। हालांकि लोक प्रशासन एक बहुत पुराना विषय है, लेकिन एक शास्त्रीय या सैद्धांतिक हैसियत से यह विषय बीसवीं सदी की देन है। परम्परागत-दार्शनिक तरीका बीसवीं सदी के शुरू में अपनाया जाता रहा, लेकिन बाद में यह स्वीकार किया गया कि परम्परागत दार्शनिक तरीका न तो वैज्ञानिक है और न तथ्यपरक है। इसलिए लोक प्रशासन में ऐतिहासिक और तुलनात्मक तरीके को ज्यादा तर्कसंगत समझा गया। इस नज़रिये का हामी वुड्रो विल्सन(1856-1924) है।

वुड्रो विल्सन ने प्रशासन के व्यवस्थित और वैज्ञानिक अध्ययन के लिये दार्शनिक तरीके(Method) को खारिज करते हुये ऐतिहासिक और तुलनात्मक तरीके पर जोर दिया। उसका कहना था कि प्रशासनिक क्षेत्र में तुलनात्मक तरीके का सबसे सफ़ल और सुरक्षित ढंग से प्रयोग किया जा सकता है। विल्सन के अनुसार इतिहास एक माध्यम है प्रशासनिक अवस्थाओं को आँकने का, उन व्यवस्थाओं का अध्ययन करके तथा वर्तमान के विभिन्न समाजों या राज्यों की प्रशासनिक व्यवस्थाओं का अवलोकन और आयात करके उनका तुलनात्मक अध्ययन ही, तुलनात्मक प्रशासन कहलाता है। सरल शब्दों में यदि किसी शिक्षार्थी को किसी सरकार के प्रशासन तन्त्र को समझना है तो उसकी तुलना दूसरी सरकारों के प्रशासन तंत्र से करना होगी चाहे उन सरकारों का स्वरूप जनतन्त्रीय हो, अधिनायकवादी या राजतंत्रीय। उसके अनुसार तथ्यात्मक अध्ययन के लिये तरह-तरह के राज्यों में प्रशासन के आधारों को समझना होगा; विभिन्न व्यवस्थाओं की कमजोरियों, बुराईयों, उनकी विशेषताओं और गुणों को समझना होगा और यह तभी सम्भव है, जब उनकी तुलना विभिन्न प्रशासनिक व्यवस्थाओं से की जाये। ऐसे तुलनात्मक अध्ययन के अनेक फायदे समाने आयेंगे-

- यह पता लेगा कि दूसरी प्रशासनिक व्यवस्थाओं में अराजकता, अस्थिरता, भ्रान्तियाँ क्यों पैदा हुई और लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं में इन बुराईयों को कैसे रोका जा सकता है।
- प्रशासन के क्षेत्र में आत्मालोचन के दरवाजे खुलेंगे।
- तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर लोक प्रशासन के सिद्धान्त निर्मित होंगे।

- नई प्रशासनिक तकनीकों का आयात भी होगा और नई तकनीकें विकसित होंगी।
- तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर ही लोक प्रशासन के प्रतिमान विकसित होंगे।

10.3 मैक्स वेबर- एक परिचय(Max Weber : An Introduction)

मैक्स वेबर और नौकरशाही(Bureaucracy) पढ़ने में यह दो अलग नाम हैं लेकिन वास्तव में यह एक दूसरे के पूरक हैं। नौकरशाही को समझना है तो मैक्स वेबर को पढ़ना होगा। पहले लिखा जा चुका है कि कार्ल मार्क्स नौकरशाही का कटु आलोचक था, इसलिये अगर नौकरशाही के नकारात्मक पहलू को समझना है तो मार्क्स का अध्ययन जरूरी है, लेकिन यदि नौकरशाही के सकारात्मक स्वरूप को देखना है तो मैक्स वेबर का अध्ययन अनिवार्य है। वेबर की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि नौकरशाही के सही अर्थ को समझाने के लिए उन्होंने ऐतिहासिक और तुलनात्मक विधियों का बखूबी प्रयोग किया है। इसलिये उनके द्वारा प्रस्तुत नौकरशाही सम्बन्धी विवेचना तथ्यपरक भी है और वैज्ञानिक भी।

मैक्स वेबर का जन्म 1864 में जर्मनी में हुआ। उन्होंने प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करने के बाद हायडलर्बग के विधि विश्वविद्यालय में अध्ययन किया। 1889 में उन्होंने मध्ययुगीन व्यापार संगठनों पर विधिक और ऐतिहासिक उपागम (Approach) के माध्यम से अपना शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किया जिसपर उनको डॉक्टरेट की उपाधि मिली। उन्होंने अपने समय के सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक मुद्दों पर विस्तार से बहस की। लेकिन मौलिक रूप से वेबर एक अर्थशस्त्री थे और इसीलिये वह 1894 में फीडेलर्बग विश्वविद्यालय में अर्थशास्त्र के प्रोफेसर बनाये गये। वेबर के बारे में दो बातें याद रखना जरूरी हैं। पहली यह कि वेबर व्यवस्थित और विश्लेषणात्मक(Systematic and Analytical) अध्ययन में विश्वास रखते थे। दूसरी बात यह कि वह पुस्तकालयों से निकलकर यर्थात के संसार में अनुभव(Empirical) के आधार पर ज्ञान हासिल करना चाहते थे। उनका ग्रन्थ ''The Theory of Social and Economic Organisation'' वेबर विचारों की अभिव्यक्ति है। उनकी आस्था लोकतन्त्र तथा उदारवाद में थी और वह यह मानते थे कि तत्कालीन समाज (जर्मनी का) जिस प्रकार प्रशासन-तंत्र में फंसा हुआ है वह केवल अधिनायकवादी शासन-तंत्र को मजबूत करेगा जो उदारवाद के लिये खतरे की घंटी थी। वेबर को इन अवधारणाओं की रौशनी में अब हम आगे नौकरशाही से सम्बन्धित उनके योगदान का अध्ययन करेंगे।

10.4 नौकरशाही का अर्थ (Meaning of Bureaucracy)

नौकरशाही के सन्दर्भ में मैक्स बेबर को समझने से पहले हमें नौकरशाही को एक प्रशासन-तंत्र के रूप में और शास्त्रीय (Academic) अध्यन की हैसियत से उसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में समझना होगा। जब से सभ्य समाज का उदय हुआ है लोक सेवा और उससे सम्बन्धित सेवी-वर्ग किसी न किसी रूप में व्यवस्थित सरकारों का एक महत्वपूर्ण हिस्सा रहा है। प्रत्येक संगठित समाज में रोमन साम्राज्य से लेकर चीनी राजनीतिक व्यवस्था तक यहाँ तक की कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी प्रशासन-तंत्र या नौकरशाही के महत्व को स्वीकार किया गया है। नौकरशाही एक संस्था तो है ही उससे अधिक वह एक मनोवृत्ति है और इतिहास ऐसी मिसालों से भरा पड़ा है, जो यह सिद्ध करता है कि प्रशासकीय पदों पर जो व्यक्ति तैनात रहते हैं वे एक विशिष्ट प्रवृत्ति को अपने काम काज से दर्शाते हैं। कालान्तर में यही विशिष्ट प्रवृत्तियाँ सार्वभौमिक रूप ले लेती हैं जिनसे नौकरशाही पचिहानी जाती है।

नौकरशाही(Bureaucracy) शब्द का सबसे पहले प्रयोग फ्रंच अर्थशास्त्री एम0 डे0 गूरने ने 18वीं सदी के उत्तरार्द्ध में किया। धीरे-धीरे यह शब्द फ्रांस में बहुत प्रचलित हो गया। बाद में इस शब्द का आयात ब्रिटेन में समाजशास्त्रीयों ने 19वीं सदी में करना आरम्भ कर यिा। अनेक ब्रिटिश चिन्तक जिनमें जे0एस0 मिल बहुत आगे थे नौकरशाही विषय से अछूते नहीं रहे। मिल ने तो नौकरशाही को अपनी विश्लेषण श्रृंखला का एक हिस्सा ही बनालिया। मोसका और मिशेल ने इस विषय पर खुलकर लिखा। राबर्ट के0 मर्टन ने नौकरशाही की प्रवृत्ति को बड़े सुन्दर शब्दों में इस तरह लिखा है। ''एक युवा और ऊर्जस्वी नया स्नातक बड़े जोशों-खरोश के साथ नौकरशाही में

दाखिल होता है, लेकिन हम उसे 'नौकरशाह' बनते हुये पाते हैं: अर्थात् निष्क्रिय, उदासीन, लकीर का फ़कीर, विलम्बकारी और या तो गैर जिम्मेदार या फिर अत्यन्त सर्तक। जैसे-जैसे समय बीतता जाता है, उसके यह लक्षण दिखाई देने लगते हैं उसकी प्रशिक्षित अयोग्यता प्रकट होने लगती है। नौकरशाही अपने पद धारकों का इस प्रकार से समाजीकरण करती है कि वे किसी भी प्रकार के परिवर्तन के लिये अयोग्य और लापरवाह हो जाते हैं। यह (नौकरशाही) 'अयोग्यता' के लिये एक प्रशिक्षण स्थल मोहय्या करती है।'' इन पंक्तियों को पढ़ने के बाद नौकरशाही का स्वरूप और नौकरशाहों की मनोवृत्ति बड़ी आसानी से समझ में आ जाती है।

लेकिन नौकरशाही के बारे में मर्टन का विश्लेषण एक तरफा है। अतः नौकरशाही को विस्तार से समझने का एक और केवल एक माध्यम है और वह है मैक्स वेबर जिसने प्रशासन-तंत्र का व्यवस्थित और अनुभवात्मक ढंग से अध्ययन किया है। उसने नौकरशाही का एक प्रतिमान तैयार किया जिससे प्रशासन-तंत्र का कोई भी सिद्धान्तकार अछूता नहीं रहा। उसके द्वारा निर्मित मॉडल प्रशासन-तंत्र की आत्मा माना जाता है, जिसने नौकरशाही को एक नया आयाम दिया है।

10.5 मैक्स वेबर की नौकरशाही की अवधारणा(Bureaucracy and Max Weber's Concept)

नौकरशाही की चर्चा पर मैक्स वेबर का नाम न आये यह सम्भव नहीं है। वह एक ऐसा चिन्तक है जिसने नौकरशाही के चरित्र का बड़े विस्तार से और व्यवस्थित ढंग से विश्लेषण किया है। इस विश्लेषण से अन्य चिन्तकों का नौकरशाही के प्रति नज़रिया बदला है और यह स्वीकार किया जाने लगा है कि मौजूदा राजनीतिक व्यवस्थाओं में नौकरशाही एक अपरिहार्य भूमिका अदा करती है। प्रशासन-तंत्र या नौकरशाही क्या है इस सवाल का उत्तर वेबर नहीं देता। वह नौकरशाही को परिभाषा के दायरे में भी सीमित करना नहीं चाहता। वह केवल नौकरशाही के चरित्र को समझाने का प्रयास करता हैं। जहाँ तक विश्लेषण का सवाल है, वह चयनित अधिकारियों के प्रशासनिक ढाँचे'' को प्रशासन-तंत्र की इकाई मानकर उसका विश्लेषणकरता नजर आता हैं ''चयनित अधिकारियों'' से उसका अभिप्राय ''नियुक्त अधिकारियों'' से है। प्रभुत्व और सत्ता वेबर के अनुसार नौकरशाही का आधार भी है और ध्येय भी, इस दृष्टि से वेबर ने नौकरशाही को आनुवंशिक और कानूनी-तार्किक(Legal-Rational) दो प्रकारों में वर्गीकृत किया है। पारम्परिक (Traditional) और करिश्माई(Charismatic) या चमत्कारी नौकरशाही आनुवंशिक वर्ग केअन्तर्गत आती है, जहाँ पैतृक नौकरशाही का चलन हो, जबकि कानूनी-तार्किक वर्ग में कानूनी तरीके से चयनित नौकरशाही आती है। दोनों ही प्रकार की नौकरशाही में अधिकांश प्रवृत्तियाँ सामान्य होती हैं जबकि कुछ में भिन्नता होती है। जैसा कि पहले लिखा जा चुका है वेबर ने नौकरशाही के अध्ययन में अनेक उपागमों का सहारा लिया है। इस कारण वह सटीक निष्कर्षों पर पहुँचे हैं। उदाहरण के लिये-

- ऐतिहासिक उपागम के माध्यम से उसने पश्चिमी समाजों में मौजूद तकनीकी और प्रशासनिक कारणों की खोज करके नौकरशाही के निर्माण की प्रक्रिया को समझने का प्रयास किया और इसी ज्ञान के आधार पर उसने नौकरशाही के मॉडल की रूपरेखा तैयार की।
- वेबर ने कानून के महत्व को इतना अधिक स्वीकार किया कि नौकरशाही संरचना में वह कानून को निर्णायक तत्व मानने लगा।
- नौकरशाही के चरित्र-निर्माण का एक बड़ा कारण उसने उसका अभिजात्य-वर्ग(Elite Class) से सम्बन्धित होना बताया।
- अनुभावात्मक उपागम के माध्यम से वह नौकरशाही के गुणों एवं अवगुणों की खोज कर पाया।

मैक्स वेबर की नौकरशाही की अवधारणा के सन्दर्भ में अध्ययनकर्ता को पाँच बातों पर जरूर ध्यान देना चाहिये- (1) वैधता; (2) सत्ता जिसकी वैधता हो; (3) एक कानूनी संहिता; (4) प्रशासकीय संगठनों की कानूनी हैसियत तथा (5) लोगों द्वारा कानूनों का पालन करने में अभ्यस्त होना।

सार यह है कि मैक्स वेबर नौकरशाही की वैधता और व्यक्ति निरपेक्ष व्यवस्था पर बल देता है और इसी नजरिये से उसने नौकरशाही का मॉडल तैयार किया है जिसकी विस्तृत विवेचना आगे की जायेगी।

10.6 मैक्स वेबर का नौकरशाही का मॉडल(Max Weber's Model of Bureaucracy)

प्रशासन-तंत्र की अवधारणा को समझने के लिये वेबर का नौकरशाही का प्रतिमान अथवा मॉडल, मील का एक पत्थर है। ''सत्ता, 'वैधता' और 'तार्किकता' यह तीन ऐसी अवधारणाऐं हैं जिनके इर्द-गिर्द वेबर का नौकरशाही का सिद्धान्त घूमता है। उसने वैधानिक-तार्किक सत्ता या प्रभुत्व को नौकरशाही का आधार माना है और इसी आधार पर उसने नौकरशाही का मॉडल तैयार किया है। इस प्रतिमान की निम्न विशेषताऐं हैं, जो उसके ग्रंथ 'दि थ्योरी ऑफ सोशल एण्ड एकोनॉमिक आर्गानाइजेशन' के अध्ययन से स्पष्ट होता है-

1. सरकारी प्रशासनिक इकाईयों का संचालन निश्चित नियमों के अनुसार होता है।
2. प्रशासनिक संरचना में चयनित अधिकारी होते हैं जिनकी निम्न विशेषताऐं होती हैं, पहला- प्रत्येक अधिकारी को कुछ शक्तियाँ प्राप्त होती हैं जो कानून के परिप्रेक्ष में परिभाषित भी होती हैं और उनका सीमांकन भी होता है; दूसरा- अधिकारियों को जो अधिकार दिये जाते हैं वे उनकी जिम्मेदारियों के अनुसार होते हैं। यह अधिकार व्यक्ति निरपेक्ष होते हैं; तथा तीसरा- प्रदत्त किये गये कार्यों को पूरा करने के लिए अधिकारियों को सीमित साधनों का इस तरह से प्रयोग करना होता है कि निम्नतम साधनों से अधिकतम कार्यों को निबटारा हो सके।
3. प्रशासनिक संरचना में सत्ता के क्रमिक स्तर या पद सोपान होते हैं। प्रत्येक स्तर का एक पद होता है जिस पर अधिकारी पदासीन होता है। संरचना में सत्ता ऊपर से नीचे आती है अर्थात् प्रधान अधिकारी उच्चतम पद पर होता है और इसके मातहत निचले पदों पर अर्थात् आदेश ऊपर से आता है और क्रमिक रूप से निचले स्तर तक जाता है। निम्न कर्मचारियों के भी कुछ सीमित अधिकार होते हैं। वे प्रधान अधिकारी को सुझाव दे सकते हैं और अपील भी कर सकते हैं।
4. जिम्मेदारियों को निभाने के लिये आवश्यक साधनों की जरूरत होती है जिन पर अधिकारियों का सीमित अधिकार होता है और वे उन साधनों के उपयोग के लिये उत्तरदायी भी होते हैं। यह नियम अधिकारियों पर एक बड़ा अंकुश होते हैं जिनसे कार्यों के निष्पादन में विलम्ब भी होता है। लेकिन साधनों के दुरुपयोग को रोकने के लिये यह जरूरी भी है।
5. प्रशासनिक संरचना में पद अव्यक्तिक(Impersonal) हैं। यह अधिकारियों की निजी धरोहर नहीं है जिन्हें बेचा जा सके या प्रदत्त किया जा सके।
6. पदाधिकारी लिखित दस्तावेजों(विधिक नियमों) के अनुसार काम करते हैं यद्यपि वे अनौपचारिक तरीके भी अपनाते हैं।

वेबर के अनुसार नौकरशाही एक संस्था भी है और व्यक्तियों का एक समूह भी जिन्हें अधिकारी वर्ग कहा जाता है। इन प्रशासनिक अधिकारियों की पहचान कुछ निश्चित लक्षणों से होती है जिनकी ओर वेबर ने अपने मॉडल में इशारा किया है। यह लक्षणात्मक विशेषताऐं निम्न हैं-

1. अनुबन्ध के आधार पर किसी योग्य व्यक्ति की कार्यालय के किसी विशिष्ट पद पर नियुक्ति;
2. नियुक्त अधिकारी का निरपेक्ष नियमों के अनुसार अपने कर्तव्यों को पूरा करना;

3. कार्यों को इमानदारी के साथ निष्पादन करने पर अधिकारी की वफादारी को आंकना तथा इस वफ़ादारी के अनुसार उसे पुरस्कृत (पदोन्नत) करना;
4. प्रशासनिक कार्य एक तकनीक है। यह तकनीकि महारत ही व्यक्ति को अधिकारी की कुर्सी पर पदासीन करती है;
5. अधिकारी एक प्रशासन है और उसका काम उसका व्यवसाय है; तथा
6. निश्चित नियमों या मानकों के अनुसार अधिकारी को वेतन मिलता है और उन्नति के अवसर मिलते हैं।

10.7 वेबेरियन मॉडल के मुख्य तत्व(Main elements of Weberian Model)

नौकरशाही का वेबेरियन मॉडल बहुत ही विस्तृत और स्पष्ट है। वेबर ने इस मॉडल के छः तत्व निश्चित किये हैं जिनसे यह पहिचाना जा सकता है। यह तत्व इस प्रकार हैं:

10.7.1 निर्वैयक्तिक व्यवस्था(Impersonal System)

प्रशासनिक व्यवस्था व्यक्तिक विहीन(Impersonal) होती है अर्थात् ऐसी व्यवस्था जिसमें मित्रवत् मानवीय भावनायें न हों। वेबर की नज़र में नौकरशाही का यह एक अनिवार्य लेकिन नकारात्मक पहलू है। निर्वैयक्तिक व्यवस्था नौकरशाही के चरित्र को दर्शाती है। सार यह है कि नौकरशाह अपने मातहतों को आदेश देता है और मातहत इन आदेशों का अनुपालन करते हैं। यहाँ नौकरशाह और मातहत भावनायुक्त व्यक्तियों की तरह आचरण नहीं करते हैं बल्कि उनका पद उनसे ऐसा करने के लिए बाध्य करता है अर्थात् सत्ता और उसका अनुपालन पद में निहित होता है न कि पदासीन व्यक्ति में। नौकरशाही की यही व्यवस्था निर्वैयक्तिक कहलाती है। यह व्यवस्था नकारात्मक इसीलिए है कि इसमें नौकरशाहों की अक्षमता को बढ़ावा मिलता है।

10.7.2 नियमों की सर्वोच्चता(Superemacy of Rules)

नियमों की सर्वोच्चता को वेबर नौकरशाही व्यवस्था का आधार मानता है। नियम कानूनी-तार्किक सत्ता का सार हैं। कार्यालयों को संगठित करने और कार्यों को निष्पादित करने का माध्यम नियम ही होते हैं। नियम कार्यालय के आचरण को नियंत्रित करते हैं और व्यवस्था को निर्वैयक्तिक बनाते हैं। जो नौकरशाही के लिये जरूरी है। नियम तरह-तरह के हो सकते हैं-तकनीकी नियम, आदेशीय नियम जो अधिनियम का रूप ले लेते हैं। वेबर का मानना यह है कि नियमों का तार्किक इस्तेमाल हो इसलिये अधिकारी को एक कठोर प्रशिक्षण की प्रक्रिया से गुजरना चाहिये और नौकरशाही में ऐसा होता है। नतीजा यह होता है कि नौकरशाह नियमों का गुलाम बन जाता है। नियम उसके लिये साधन ही नहीं साध्य भी बन जाते हैं। लक्ष्य उतना महत्वपूर्ण नहीं रहता जितना नियम अपरिहार्य बन जाता है। नकारात्मक पहलू यह है कि नियमों से चिपके रहने से 'विलम्ब' की स्थिति पैदा होती है; प्रशासन में जटिलता आती है; लाल फीताशाही को बढ़ावा मिलता है और प्रशासनिक जड़ता का ख़तरा बढ़ता है।

10.7.3 निपुणता अथवा कौशल(Efficiency)

वेबोरियन मॉडल का तीसरा तत्व निपुणता या कौशल है जो विशेष ज्ञान या दक्षता से प्राप्त होती है। वेबर ने इस निपुणता या दक्षता की परिधियों की ओर इशारा किया है अर्थात वह यह मानता है कि दक्षता या कौशल का एक वृत्त बनता है। इस वृत्त में तीन तत्व आते हैं (अ) कार्यों के संचालन का दायित्व जिसका आधार श्रम विभाजन है; (ब) अधिकारों से लैस एक प्रशिक्षित अधिकारी की नियुक्ति जो अन्ततः एक नौकरशाह का रूप लेता है; और (स) ऐसे दबाव के साधन जो परिभाषित हों और जिनके माध्यम से कार्यों का निष्पादन तार्किक रूप से किया जा सके।

10.7.4 पदसोपानियता(Hierarchy)

पदसोपानियता प्रशासनिक संरचना की चौथी विशेषता है। इसका अर्थ यह है कि किसी विभाग या विभागीय संगठन की बनावट श्रेणियों या पद सोपानों के रूप में होती है। संगठन में ऊपर से नीचे तक श्रेणीबद्धता होती है। आदेश उच्चतम पद से निचले पद तक आता है और निचला पद उच्च पद के आदेश या निर्देश का पालन करता

है। उच्च पद का कार्य नियमानुसार आदेश देना, नियन्त्रण रखना तथा देख-रेख करना होता है। वेबर के अनुसार श्रेणीबद्धता संगठन को जोड़े रहती है और अनुशासित रखती है। यह सिद्धान्त सम्बधात्मकता को दर्शाता है जो प्रशासनिक संरचना के ध्येय को प्राप्त करने के लिये जरूरी है।

10.7.5 लोक हित और निजी हितों में टकराव(Conflict of Public interest and Self-interest)

यह एक स्वाभाविक स्थिति है जिसकी ओर वेबर इशारा करता है। प्रशासन का उद्देश्य लोकहित है, लेकिन अक्सर यह देखा गया है कि प्रशासन में कार्यरत लोग (विशेष रूप से अधिकारी) सत्ता का दुरुपयोग करके अपने निजी हितों की पूर्ति करते हैं। वे साधनों का निजी हितों की पूर्ति के लिये दुरुपयोग करते हैं। वेबर इस स्थिति को प्रशासनिक व्यवस्था के लिये एक खतरा मानता है। वह कर्मचारियों अथवा अधिकारियों को निष्पादन के साधनों के स्वामित्व से अलग करने की सिफ़ारिश करता है। उसका तर्क है कि नौकरशाही की संरचना में उपयोग्यता(Utility) और प्रासंगिकता का होना प्रशासन की सफलता के लिये अनिवार्य है।

10.7.6 लिखित दस्तावेज़ों की मौजूदगी(Written Documents)

नौकरशाही की छटी पहिचान है लिखित दस्तावेज। यह नौकरशाही के क्रियाकलाप का आधार हैं। इसका अर्थ यह कि प्रशासनिक कार्यवाहियों, नियमों और फैसलों को एक सूत्र में बाँधकर लिखित रूप में सुरक्षित रखा जाता है। यही लेखन संग्रह एक दस्तावेज़ का रूप ले लेता है। इस व्यवस्था के अनेक लाभ हैं-भावी निर्णयों के लिये इसकी उपयोगिता; भावी नियम या अधिनियम बनाने में इसकी सार्थकता; लोगों के प्रति उत्तरदायित्व दर्शाने में इसका योगदान; तथा प्रशासन को अधिक गतिशील, सतर्क, नियोजित तथा नियंत्रित करने में सहायक यह होता है।

इस तरह हमने देखा कि वेबेरियन मॉडल की छः विशेषताऐं हैं, छः लक्षणात्मक विशेषताऐं और छः मुख्य तत्व हैं। इनको समझकर वेबेरियन नौकरशाही के प्रतिमान की संरचना कार्यविधि और ध्येय को पूरी तरह समझा जा सकता है। वेबर का यह निहायत आकर्षक मॉडल है: प्रशासकों का चयन तकनीकी योग्यता और उनके कौशल के आधार पर होता है; अधिकारियों को एक निश्चित आकर्षक वेतन मिलता है; उनको पदोन्नति के अवसर पुरस्कार के रूप में मिलते हैं; आफिस में काम और काम के अतिरिक्त कुछ नहीं एक अनुशासित व्यवस्था स्थापित करता है; यहाँ योग्यता होती है, कार्यक्षमता होती है, कर्मठता होती है, वफ़ादारी या कर्तव्यनिष्ठा होती है। इस स्थिति का नाम नौकरशाही है और योग्यता, तकनीकी ज्ञान, अधिकार, सत्ता और साधन एक ऐसी मानसिकता पैदा करते हैं जो नौकरशाही की विशेषता भी है, सद्-गुण भी और दुर्गुण भी।

10.8 वेबेरियन नौकरशाही मॉडल की आलोचना(Criticism of Weberian Model)

यद्यपि वैबेरियन मॉडल की प्रशंसा लगभग सभी प्रशासनिक चिन्तकों ने की है लेकिन मॉडल से सम्बन्धित कुछ बातों पर उनको संदेह भी है। उदाहरण के लिये (1) मॉडल कितना तर्कशील है; (2) विभिन्न परिस्थितियों से यह कितना सामन्जस्य स्थापित करता है, तथा (3) क्या यह मॉडल अधिकतम कार्यक्षमता के लक्ष्य को पा सकता है। ऐसे संदेह करने वालों या आलोचकों में राबर्ट मर्टन, फ़िलिप सेल्ज़निक, टॉलकॉट पारसंस, पीटर ब्लोंउ, राबर्ट प्रंस्थस, एच0सी0 क्रील इत्यादि प्रमुख हैं। राबर्ट मर्टन ने वेबर की कानूनी-तार्किक मॉडल की सार्थकता पर संदेह व्यक्त किया है।

उसके अनुसार वेबर का यह दावा कि प्रशासनिक संरचना में पदसोपानीयता और नियम तर्कसंगत हैं सही नहीं है। ऐसी संरचना से भ्रान्तियाँ पैदा हो सकती हैं, टकराव हो सकता है और अप्रत्याशित परिणाम निकल सकते हैं, जिससे संगठन के लक्ष्यों को नुकसान पहुँच सकता है। दूसरी ओर फिलिप सेल्जनिक भी वैबेरियन मॉडल की संरचना की तार्किकता पर संदेह करता है। वेबर के अनुसार संगठन की संरचना में श्रेणीबद्धता होती है अर्थात् अनेक उपइकाईयाँ होती हैं। सेल्ज़निक का दावा है कि उपइकाईयों के निजी लक्ष्य हो सकते हैं जो संगठन के सामान्य लक्ष्य के वितरित जा सकते हैं। मर्टन और सेल्जनिक दोनों का तर्क है कि वेबर की संगठनात्मक संरचना में

मानवीय स्वभाव की अनदेखी की गई है। इनके अनुसार वास्तविकता यह है कि प्रशासनिक संगठन मानवों (अधिकारियों) का समूह है, जिनके आचरण को ध्यान में रखना अनिवार्य है अर्थात् वेबर ने व्यवहारवादी दृष्टिकोण अपनाने में कंजूसी की है, जबकि प्रशासन के लक्ष्य, संचालन तथा दक्षता को हासिल करने के लिये मानव व्यवहार का अध्ययन जरूरी है।

टॉलकॉट पारसंस वेबर के मॉडल का तीसरा बड़ा आलोचक है। वेबर ने आदर्शवादी नौकरशाही का विचार रखा है। उसमें उसने आन्तरिक निरन्तरता का दावा किया है। वह यह मानता है कि एक नौकरशाह तकनीकी रूप से जितना दक्ष होगा उतना ही अधिक उसे आदेश देने का अधिकार होगा। पारसंस ने इस दावे को खोखला बताया है, क्योंकि इसमें विरोधाभास की संभावना है। अधिकारियों में कौशल सम्बन्धी पारस्परिक अन्तर होता है। अधिकारी एक जड़ मशीन नहीं है; वे मनुष्य हैं विभिन्न विशिष्ट स्वाभावों वाले मनुष्य। पीटर ब्लोंउ वेबेरियन, मॉडल का चौथा आलोचक है। उसके अनुसार यह मॉडल सार्वभौमिक नहीं हो सकता। परिस्थितियों की मांग अलग-अलग हो सकती है। वेबर का प्रतिमान परिवर्तन के महत्व को स्वीकार नहीं करता है। कट्टर निमय प्रशासकों को अपंग बना देते हैं जिससे प्रशासन-तंत्र निष्ठुर हो जाता है। दक्षता का अर्थ लकीर का फकीर नहीं है। परिवर्तित परिस्थितियों के अनुसार दक्षता के लाभ हो सकते हैं। ब्लोउ के अनुसार अधिकारी को औचित्य का अधिकार मिलना चाहिये। वह बदले हुये हालात के अनुसार निर्णय ले। वेबर के प्रतिमान में इस तथ्य का अभाव है।

संक्षेप में वेबैरियन मॉडल के आलोचकों की आलोचना का सार यह है कि-

- वेबर के नौकरशाही प्रतिमान की तार्किकता संदेहास्पद है;
- इसमें आन्तरिक सुसंगता नहीं है
- वेबर के अनुसार नौकरशाही परिस्थितियों पर निर्भर है, यह धारणा गलत है; तथा
- वेबर ने 'आदर्श प्रकार' को नौकरशाही का आधार बनाया, लेकिन यह आधार अवैध हैं जो 'आदर्श' है, वह 'प्रकार' नहीं हो सकता।

10.9 वेबर की प्रतिमान अवधारणा का मूल्यांकन(Evaluation of Weber's Model)

वेबर की आलोचनाओं में यद्यपि कुछ दम है लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि उसका मॉडल अर्थहीन और अप्रासंगिक है। आधुनिक राजनीतिक व्यवस्था में विकसित प्रशासन के सन्दर्भ में उसका मूल्यांकन नहीं किया जा सकता। उसने जो कुछ तैयार किया, वह तत्कालीन जर्मनी के हालात के सन्दर्भ में था। आलोचकों को वेबेरियन मॉडल को आधुनिक परिस्थितियों के प्रसंग में देखना चाहिये। वेबर यह दावा कि कानूनी-तार्किक मॉडल सर्वोत्तम और टिकाऊ है तो इसका कारण उनके द्वारा किया गया तुलनात्मक अध्ययन है। तत्कालीन दूसरे प्रशासनिक संगठनों से तुलना करके ही वे इस नतीजे पर पहुँचे होंगे कि उनका मॉडल सर्वश्रेष्ठ है।

दूसरे, 'कुशलता' और 'तार्किकता' बहुत भ्रमित या उल्लंघन में डालने वाले शब्द हैं। इन शब्दों से वेबर का अर्थ क्या था और उसके आलोचकों ने इनको किस अर्थ में लिया यह एक विवादित विषय है। वेबर कानून के विद्यार्थी रहे थे इसीलिये वह 'कुशलता' को भी शायद कानूनी अर्थ में ढालकर तार्किक बनाना चाहते थे। 'कानूनी-तार्किक' उनके इसी दिमाग़ की उपज है। जब उन्होंने कहा कि उनका मॉडल स्थायी है तो शायद उनका सोचना यह था कि तार्किकता प्रत्येक समाज की तथा प्रत्येक समय की माँग होती है।

तीसरे, आलोचकों को वेबर के 'औपचारिकतावाद''(Formalism) पर बहुत आपत्ति है। वेबर नौकरशाही के व्यवहार में औपचारिकता पर बहुत बल देता है। यहाँ उसका दृष्टिकोण तथ्यात्मक है। एलब्रो का मानना है कि 'आज' के प्रशासन में प्रबन्ध तकनीकों का विकास हुआ है जिसके कारण औपचारिक तार्किकता भी बढ़ी है। जैसे-जैसे प्रबन्धकीय तकनीकें विकसित होंगी वेबर के मॉडल की प्रासंगिकता भी बढ़ेगी।

चौथे, वेबर नौकरशाही की सार्थकता की अनिवार्यता पर जोर देता है। वह नौकरशाही को समाज का अविभाज्य अंग मानता है। उसका यह दावा आज के सन्दर्भ में बिल्कुल सटीक बैठता है। स्वयं भारत आजाद हो गया लेकिन ब्रिटेन नौकरशाही की जो व्यवस्था छोड़ गया भारत उससे आजाद नहीं हो सकता। यह नौकरशाही की खूबी है कि जहाँ उसने पैर जमा लिये वहाँ उससे पीछा छुड़ाना असंभव हो गया।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि वेबोरियन मॉडल के सकारात्मक पहलू भी है और नकारात्मक थी। अधिकारियों का श्रेष्ठता के आधार पर चयन, योग्यता के आधार पर नियुक्ति और दक्षता, कर्मठता तथा निष्ठा के आधार पर प्रोन्नति यह मॉडल के सकारात्मक पहलू हैं। जबकि दूसरी ओर अव्यक्तिक प्रशासनिक ढाँचा, संवेदन विहीनता, कड़े नियम, दक्षता के मापदण्ड, तकनीकी रुजहान तथा हद से बढ़कर औपचारिकता जैसे नकारात्मक पहलू हैं। सच यह है कि वेबर के आलोचकों ने वर्तमान नौकरशाही के स्वरूप, प्रवृत्ति और व्यवहार का अध्ययन करके वेबर के मॉडल की आलोचना की है, जो उचित नहीं है। हमें वेबर के मॉडल को बेबर के समय से आँकना चाहिये न कि अपने समय से। सच यह भी है कि आजका प्रशासनिक चिन्तक नौकरशाही का विश्लेषण करते समय वेबेरियन मॉडल से अपना पीछा नहीं छुड़ा सकता और न ही आज का समाज उस नौकरशाही की अवहेलना कर सकता है जिसकी रूप-रेखा वेबर ने तैयार की है। वेबर के मॉडल में भले ही कुछ नकारात्मक बाते हों लेकिन नौकरशाही पर आज के शोधकर्ता या सिद्धान्तकार के लिये वेबर का मॉडल अर्थपूर्ण, प्रासंगिक और तार्किक बना रहेगा।

10.10 सारांश

वेबर और वेबेरियन मॉडल के अध्ययन से आप इस नतीजे पर पहुँचेंगे कि-

1. नौकरशाही और मैक्स वेबर एक दूसरे के पर्यायवाची हैं, क्योंकि वह पहला चिन्तक है जिसने नौकरशाही पर सार्थक ढंग से ऐतिहासिक और तुलनात्मक उपागमों के आधार पर अपना शोध प्रस्तुत प्रबन्ध किया।
2. वेबर वह पहला चिन्तक है जिसने 'सत्ता' को प्रशासन तन्त्र को आधार बनाया; सत्ता का तार्किक ढंग से विश्लेषण किया तथा सत्ता और प्रभुत्व को एक दूसरे का पूरक बताया।
3. वेबर ने मॉडल के रूप में प्रसिद्ध कानूनी-तार्किक नौकरशाही का बड़े तर्कपूर्ण ढंग से विचार रखा। सत्ता की वैधता को महत्व दिया और उसका छः अंगों के रूप में विश्लेषण किया।
4. नौकरशाही के कानूनी-तार्किक मॉडल की उसने छः विशेषताऐं बतायी हैं- कार्यालयों के संचालन का नियमित आधार; नियमों के आधार पर काम; सत्ता की पदसोपानीय संरचना; दायित्वों को निभाने के साधनों पर अधिकारियों का स्वामित्व न होना; पदों का अधिकारियों की निजी सम्पत्ति न होना; तथा प्रशासन का लिखित दस्तावेजों के आधार पर परिचालित होना।
5. वेबर ने अपने मॉडल के छः मुख्य तत्व निर्धारित किये, जिनमें- निर्वैयक्तिक प्रशासनिक व्यवस्था; नियमों की सर्वोच्चता; दक्षता के वृत्त; पदसोपानियता; निजी और लोकहित का प्रथक्कीकरण ताकि प्रशासन की उपयोगिता और प्रासंगिकता बनी रहे; और लिखित दस्तावेज।
6. वेबर अपने मॉडल में ऐसे लोगों के चयन की वकालत करता है जो तकनीकी योग्यता में दक्ष हों।
7. वह ऐसे अधिकारियों को निश्चित और नियमित वेतन देने तथा प्रोन्नति के अवसर प्रदान करने की सिफारिश करता है।
8. वेबर की नजर में एकतंत्रीय शासन व्यवस्था में उच्च स्तरीय नौकरशाही (तकनीकी दृष्टिकोण से) को विकसित होने का मौका मिलता है। ऐसी नौकरशाही कर्मठ, अनुशासित और निष्ठावान होती है।

9. वेबर के मॉडल की आलोचनाऐं भी हुई हैं, विशेष रूप से उसके मॉडल की तर्कशीलता, प्रासंगिकता और कार्यदक्षता पर आलोचकों ने सवाल उठाये हैं और उसकी सफलता और सार्वभौमिकता पर संदेह व्यक्त किया है।
10. लेकिन अधिकाँश लेखकों ने आधुनिक प्रसंग में भी वेबर के नौकरशाही मण्डल की प्रशंसा की है। उनके अनुसार नौकरशाही का जो विचार वेबर ने रखा वह आधुनिक समाज में भी अपरिहार्य है।

अभ्यास प्रश्न-

1. मैक्स वेबर की शिक्षा किस विश्वविद्यालय में हुई?
2. नौकरशाही शब्द का प्रयोग सबसे पहले किस विचारक ने किया?
3. वेबर ने नौकरशाही को किन अर्थों में लिया?
4. नौकरशाही के वेबेरियन मॉडल के कितने तत्व हैं?
5. वेबर के मॉडल का सबसे प्रमुख आलोचक कौन है?

10.11 शब्दावली

तार्किक (Rational)- बुद्धिसंगत अर्थात् वह बात जिसको बुद्धि स्वीकार करे; जिसका आधार वैज्ञानिक हो और जो आस्थाओं, अन्धविश्वासों और परिकल्पनाओं पर आधारित न हो।

पदसोपानियता(Hierarchical)- पदानुक्रमिक अर्थात् संगठन की ऐसी व्यवस्था जिसमें निचले तल से ऊप्र तक अनेक स्तर (पद) हों और उनमें श्रेणीबद्धता हो। ऊपरी स्तर से आदेश आये और निम्न स्तर उसका पालन करे।

निर्वैक्तिक(Imprersonal)- जिसमें मित्रवत मानवीय भावनाऐं न हों अथवा जो व्यक्ति के रूप में अवस्थित न हो।

वैधता (Legitimate)- वह बात, घटना या संस्था जो विधि के अनुसार हो अर्थात् विधि सम्मत हो। जिस बात को वैधता प्राप्त होगी वह तर्कसंगत होगी तथा उसका अनुपालन करना होगा।

सत्ता(Authority)- प्राधिकार अर्थात् वह शक्ति जिसके माध्यम से आदेश दिया जा सके और नियंत्रण किया जा सके। यहाँ यह याद रखना है कि सत्ता को वैद्य होना चाहिये।

10.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. हाइडलबर्ग विश्वविद्यालय, **2.** एम0डे0 गूरने ने, **3.** कानूनी-तार्किक अर्थ और अनुवंशिक अर्थ में, **4.** छः, **5.** राबर्ट मर्टन

10.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ0 रवीन्द्र प्रसाद, वी0एस0 प्रसाद, पी0 सत्यनारायण (सम्पादक) प्रशासनिक चिन्तक।
2. सी0 लक्षमन्ता, सत्यनारायण राओ: लेख, मैक्स वेबर: ऐडमिनिस्ट्रेटिव थिन्कर्स, सम्पादन, डॉ0 रवीन्द्र प्रसाद, वी0ए0 प्रसाद।
3. मैक्स वेबर: दि थ्योरी ऑफ सोशल एण्ड एकोनामिक आर्गेनाइजेशन।
4. पीटर एम0 ब्लो: ब्योरियोकरेसी इन मार्डन सोसायटी।
5. एस0पी0 वर्मा: मार्डन पॉलिटिकल थ्योरी।

10.14 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. अवस्थी एण्ड अवस्थी: लोक प्रशासन के सिद्धान्त।
2. डॉ0 अशोक कुमार: प्रशासनिक चिन्तक।

10.15 निबंधात्मक प्रश्न

1. नौकरशाही के वेबेरियन मॉडल की क्या विशेषताऐं हैं?

2. वेबर के नौकरशाही के मॉडल के कौन-कौन से तत्व हैं?
3. वेबर के नौकरशाही के मॉडल की किस आधार पर आलोचना की गई है?
4. वेबर की कानूनी-तार्किक अवधारणा को समझाइये।

इकाई- 11 परिस्थितिकीय दृष्टिकोण, संरचनात्मक-कार्यात्मक दृष्टिकोण

इकाई की संरचना

11.0 प्रस्तावना
11.1 उद्देश्य
11.2 परिस्थितिकी का अर्थ
11.3 फ्रेड0 डब्ल्यू0 रिग्स: एक परिचय
11.4 रिग्स का सैद्धान्तिक नजरिया
11.5 रिग्स का प्रतिमान निर्माण
11.6 परिस्थितिकीय दृष्टिकोण और रिग्स
11.7 संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण
    11.7.1 प्रकार्यात्मकतावाद का अर्थ
    11.7.2 प्रकार्यात्मकतावाद के प्रकार
    11.7.3 संरचना का अर्थ
11.8 संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण और राबर्ट मर्टन
    11.8.1 मर्टन का प्रकार्यों से अभिप्राय
    11.8.2 प्रकार्यात्मक विश्लेषण का प्रतिमान
    11.8.3 राबर्ट मर्टन और लोक प्रशासन
11.9 फ्रेड0डब्ल्यू रिग्स और संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण
11.10 संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक विश्लेषण तथा गैब्रील आमण्ड
    11.10.1 राजनितिक व्यवस्था और आमण्ड का दृष्टिकोण
    11.10.2 आमण्ड और प्रशासन व्यवस्था
11.11 परिस्थितिकीय तथा संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण का मूल्यांकन
    11.11.1 राबर्ट मर्टन की आलोचना
    11.11.2 गैब्रील आमण्ड की समालोचना
11.12 सारांश
11.13 शब्दावली
11.14 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
11.15 सन्दर्भ ग्रंथ सूची
11.16 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
11.17 निबंधात्मक प्रश्न

11.0 प्रस्तावना

तुलनात्मक लोक प्रशासन नई परिस्थितियों के अनुसार प्रशासन की नई अवधारणाओं के अस्तित्व में आने और विकसित होने का परिणाम है। अंतरसांस्कृतिक और अन्तर्राष्ट्रीय प्रशासनिक अध्ययन तुलनात्मक लोक प्रशासन के रूप में प्रकट हुआ है। इस क्षेत्र में जिस चिन्तक ने सब से अधिक योगदान किया है वह फ्रेड0डब्ल्यू0 रिग्स थे। वह प्रशासन के तुलनात्मक अध्ययन को सर्वश्रेष्ठ उपागम मानते थे। इसलिए उन्होंने तुलनात्मक संदर्भ में लोक प्रशासन के विश्लेषण के लिए अनेक प्रतिमान और पद्धतियां विकसित की, जो इस प्रकार है- परिस्थितिकीय पद्धति, संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक पद्धति और आदर्श मॉडल परिस्थिति।

रिग्स का कहना था कि प्रशासन अन्य व्यवस्थाओं की तरह अपने आस-पास के पर्यावरण या परिस्थितियों से प्रभावित होकर संचालित होता है। इसी तरह स्वंय प्रशासन भी अपने पर्यावरण को प्रभावित करता है। यह अन्तरक्रिया एक-दूसरे को प्रभावित करती है। इसी प्रक्रिया को समझाने के लिए रिग्स ने परिस्थितिकीय(Ecological) पद्धति की अवधारणा रखी तथा उसके आधार पर उसने संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक पद्धति और अनेक प्रकार के आदर्श मॉडलों की रचना की। इसलिए रिग्स की परिस्थितिकीय पद्धति को समझने के लिए हमे उसके अन्य आदर्श मॉडलों को भी समझना होगा। आगे चलकर एक और बात समझनी होगी, वह यह कि विकास आधुनिक समाज का सबसे बड़ा मुद्दा है इसलिए जरूरी है कि प्रशासन का भी विकास हो जिसे नये नजरिये और नये आयाम की जरूरत होती है। इसी तथ्य को ध्यान में रखकर उसने प्रशासन तथा पर्यावरण को नये सन्दर्भों में परिभाषित करने का प्रयास किया है। रिग्स के निष्कर्ष बड़े आकृषक और दिलचस्प हैं जिनका अध्ययन जरूरी है।

11.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- तुलनात्मक लोक प्रशासन की अनिवार्यता को समझ पायेंगे।
- तुलनात्मक लोक प्रशासन के सन्दर्भ में रिग्स जैसे चिन्तक से परिचित होंगे।
- रिग्स ने लोक प्रशासन के विश्लषण के लिए जो पद्धतियां विकसित की, उनको समझ पायेंगे।
- यहाँ परिस्थितिकीय पद्धति तथा संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक पद्धतियों का अध्ययन करेंगे।
- यह जान पायेंगे कि विकास की दृष्टि से रिग्स की पद्धतियां तथा आदर्श मॉडल कितने जरूरी हैं, तथा
- पर्यावरण और प्रशासन के पारस्परिक रिश्तों को समझ सकेंगे।

11.2 परिस्थितिकी का अर्थ (The Meaning of Ecology)

परिस्थितिकी ‘‘Ecology’’ का अनुवाद है। परिस्थितिकी को पर्यावरण कहा जा सकता है लेकिन परिस्थितिकी या एकोलॉजी एक विज्ञान है या वैज्ञानिक अध्ययन है जिसके माध्यम से यह जाना जा सकता है कि किस तरह से सावयवों अथवा जीवों(organism) में पर्यावरण के साथ अन्तःक्रिया चलती है अथवा किस तरह वे एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। प्रशासन स्वयं में एक सावयव तो नहीं है लेकिन वह मानव जीवों का एक समूह अवश्य है। इसलिए प्रशासन का अपने पर्यावरण को प्रभावित करना स्वाभाविक है। प्रभावित करने की इस अन्तःप्रक्रिया को समझाने का काम रिग्स ने किया है। रिग्स इस परिकल्पना के साथ एक सिद्धान्तकार बना कि प्रशासन परिस्थितिकी के अनुसार स्वयं को ढालता है तथा परिस्थितिकी या पर्यावरण को अपने अनुसार ढलने के लिये मजबूर करता है। परिस्थितिकीय दृष्टिकोण में आस-पास के पर्यावरण(Environ) का अध्ययन किया जाता है। लोक प्रशासन उसमें लगे मानव-व्यवहार का एक संग्रह है, इसलिए यह स्वाभाविक है कि वह व्यवहार अपने आस-पास के पर्यावरण से प्रभावित हो तथा उस पर्यावरण के अनुसार उसकी कार्यविधि संचालित हो और प्रतिक्रिया स्वरूप ऐसी प्रशासकीय व्यवस्था अपने पर्यावरण को भी प्रभावित करे। यहाँ पर्यावरण से अभिप्राय सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और आर्थिक वातावरण से लिया गया है और विकास के सन्दर्भ में प्रक्रिया तथा अन्तःप्रक्रिया परिभाषित करने का प्रयास किया गया है।

11.3 फ्रेड डब्ल्यू0 रिग्स: एक परिचय (Fred W. Riggs : An Introduction)

फ्रेड0डब्ल्यू0 रिग्स मूल रूप से अमरीकी-चीनी थे। उनका जन्म 1917 में चीन के कुलिंग नगर में हुआ था, जहाँ उनके अमरीकी माता-पिता रहते थे। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा न्यूयार्क के एक कस्बे स्कोटिया में हुई। अन्ततः रिग्स

ने राजनीति विज्ञान को अपनी उच्च शिक्षा का विषय बना लिया। उन्होंने कोलंबिया विश्वविद्यालय से राजनीतिशास्त्र में ''Repeal of Chines Exclusion Act.'' पर डॉक्ट्रेट की उपाधि प्राप्त की। इस उपलब्धि के बाद तो रिग्स अपनी शिक्षा-सम्बन्धी जिन्दगी में इतने व्यस्त हो गये कि उन्होने जीव न के दूसरे सारे सुख त्याग दिये। कहीं उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का अध्यापन कार्य शुरू किया (City University of New York) तो कहीं वह अनुसंधान कर्मिक बन कर वैदेशिक नीति संघ में अपना शोध करते रहे। वह लोक प्रशासन विषय से भी जुड़े और न्यूयार्क लोक प्रशासन निपटान कार्यालय में एक शोधकर्ता के रूप में कार्य करने लगे (1991-1955)। वह इंडियाना विश्वविद्यालय के सरकार सम्बन्धी विभाग से भी सम्बद्ध रहे (1956-1967)। अन्त में रिग्स हवाई विश्वविद्यालय में राजनीति विज्ञान के प्रोफेसर (1967 के बाद से) रहे तथा इसी विश्वविद्यालय के पूर्व-पश्चिम अध्ययन केन्द्र के वरिष्ठ विशेषज्ञ तथा स्टेनफोर्ड स्थित व्यवहार विज्ञान के अध्येता भी रहे। वह तुलनात्मक प्रशासन संगठन के पहले अध्यक्ष चुने गये।

रिग्स एक महान शोधकर्ता, लेखक और अध्यापक थे। उनका रुजहान अन्तर-अनुशासनीय था। वह एक साथ राजनीतिशास्त्र, लोक प्रशासन, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति और व्यवहारवाद जैसे विषयों में महारत रखते थे। तुलनात्मक अध्ययन में उनकी विशेष रूचि थी और इसीलिए उन्होंने तुलनात्मक प्रशासन पर अनेक शोध प्रस्तुत किये तथा पुस्तकों की रचना की। चहुमुखी विकास उनके अध्ययन का लक्ष्य था, इसलिये जरूरत थी एक ऐसे मॉडल के तैयार करने की जो विकास के अतीत और वर्तमान मॉडलों की तुलना में अधिक तार्किक और प्रासंगिक हो। इसलिए रिग्स ने तुलनात्मक प्रशासन का चयन किया तथा अन्तरसांस्कृतिक तथा अन्तर्राष्ट्रीय प्रशासनिक अध्ययन और विश्लेषण पर जोर दिया। उनके द्वारा रचित पुस्तकों में ''The Ecology of Public Administration, Administration in Developing Countries: The Theory of Prismatic Society'' बहुत महत्वपूर्ण हैं। कुल मिलाकर उन्होंने ग्यारह पुस्तकें तथा 300 शोधपत्र लिखे।

11.4 रिग्स का सैद्धान्तिक नजरिया(Theoretical Aspect of Riggs)

रिग्स के सैद्धान्तिक नजरिये को समझने के लिए हमे दो बातों को समझना होगा। पहला- रिग्स मूल रूप से लोक प्रशासन के विद्यार्थी नहीं रहे थे, लेकिन वह यह मानते थे कि समग्र विकास की अवधारणा प्रशासनिक अध्ययन के बिना अधूरी है, दूसरा- लोक प्रशासन का अध्ययन तुलनात्मक दृष्टिकोण से होना चाहिए, तथा इस अध्ययन के लिए वृहत्तर धाराओं की पहचान होनी चाहिए तथा इन धाराओं (सिद्धान्तों) को समझाने के लिए महत्वपूर्ण साधनों का प्रयोग होना चाहिए। ऐसा रिग्स ने किस तरह किया यह हमारा अगला विषय है।

तुलनात्मक प्रशासन के अध्ययन के लिए रिग्स ने तीन अवस्थाओं की पहचान की-

- प्रतिमानात्मक(Normative) से अनुभावात्मक(Empirical)
- भावनात्मक(Ideographic) से तथ्यात्मक(Factual)
- गैर-परिस्थितिकीय(Non-ecological) से परिस्थितिकीय(Ecological)

रिग्स इन तीन रुझानों (Trends) से यह स्पष्ट करना चाहता है कि यदि हम बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार नये दृष्टिकोण अपनाये, नये उपकरणों का इस्तेमाल करें तथा नये आयाम तलाशें तो हम प्रशासन के सन्दर्भ में विकास की प्रक्रिया को तेज कर पायेंगे। उदाहरण के लिए अनुभावात्मक अध्ययन के माध्यम से हम मैदान में जाकर हालात की वास्तविकता का पता लगा सकते हैं, जबकि प्रतिमानात्मक वर्णन से हम ऐसा नहीं कर सकते। इसी तरह तथ्यात्मक दृष्टिकोण के अपनाने से हम सामान्यीकरण तथा नियमीकरण की परिकल्पनाओं को गहराईयों तक पहुँचाते हैं और यह देखते हैं कि व्यवहार और उसके अन्तरसम्बन्धों को परिवर्तनशील तत्वों के साथ नियमितता(Regularity) कैसे मिलती है। जहाँ तक परिस्थितिकीय अध्ययन का प्रश्न है, रिग्स का मानना है कि

परिस्थितिकीय परिप्रेक्ष में अध्ययन करने से प्रशासन की गतिशीलता की व्यापक समझ विकसित की जा सकती है।

11.5 रिग्स का प्रतिमान निर्माण(Rigg's Model Building)

1945 के बाद से लगभग 45 देशों को पश्चिमी साम्राज्यवादी देशों के चुंगल से आजादी मिली और वे सम्प्रभुतासम्पन्न देश बन गये, क्योंकि यह सभी नये देश पहले लगभग सामान्य शासकीय और प्रशासनिक व्यवस्था का अनुभव कर चुके थे इसलिए नये हालात में इनकी समस्याऐं, आवश्यकताऐं, उम्मीदें और मांगें भी एक जैसी थीं। कुल मिलाकर इन देशों में एक सामान्य घनाटनाक्रम घटित हो रहा था। वे आधुनिकता और गतिशीलता की ओर बढ़ने का रुझान रखते थे। क्योंकि साम्राज्यवादी देशों के प्रशासनिक सिद्धान्त और मॉडल औद्योगिक क्रान्ति का परिणाम थे। वे यूरोप और अमरीका में तो सफल हुये थे लेकिन ऐशिया, अफ्रीका तथा लैटिन अमेरिका में नई परिस्थितियों के परिप्रेक्ष में इन मॉडलों को सफलता नहीं मिल सकती थी। ऐसी स्थिति में पश्चिमी और अमरीकी समाजशास्त्रियों, राजनीतिशास्त्रियों तथा प्रशासनिक चिन्तकों ने नवोदित राज्यों की संरचनात्मक आवश्यकताओं को महसूस करते हुए इन राज्यों के वृहत अध्ययन का बीड़ा उठाया, क्योंकि इन देशों की अवहेलना पूरी मानवता की अवहेलना थी। इनका विकास पूरे विश्व का विकास था। यह तभी सम्भव था जब नवोदित राज्यों का स्वंय वहाँ जाकर घटनाक्रम का तथ्यात्मक अध्ययन किया जाता और वहाँ के लोगों को यह संदेश दिया जाता कि वे (चिन्तक) स्थानीय लोगों का विकास और उसमें उनकी भागीदारी चाहते थे, जो तथ्यपरक अध्ययन और परिणाम स्वरूप नये माडलों की रचना और क्रियान्वयन से सम्भव है।

पश्चिमी तथा अमरीकी चिन्तकों की यह सोच प्रशासन के तुलनात्मक अध्ययन के रूप में प्रकट हुई है। रिग्स का भी यही दावा था कि एशिया, अफ्रीका तथा लैटिन अमरीका के नवोदित राज्यों को नये मॉडलों, नये सिद्धान्तों तथा नई तकनीकों और उपकरणों की आवश्यकता है। इसलिए उसने समाजशास्त, भौतिकी और जीव विज्ञान से अवधारणाऐं ग्रहण करके लोक प्रशासन के लिए नये सिद्धान्तों और नये मॉडलों के निर्माण का प्रस्ताव रखा। उसने उधार लेने में कोई कंजूसी नहीं दिखाई: दूसरे विषयों से उसने नये-नये शब्द लेकर उन्हें अपने नजरिये से अपने विचारों को व्यक्त करने के लिए भी ढाला। और इन शब्दों को इस तरह ढाला कि वे पूरी तरह रिग्सवादी लगने लगे। नतीजा यह हुआ कि रिग्स ने अपने प्रशासकीय सिद्धान्तों को स्पष्ट करने के लिए तीन विश्लेषणात्मक उपकरणों का प्रयोग किया जो इस प्रकार है-परिस्थितिकीय दृष्टिकोण, संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण और आदर्श मॉडल्स। आगे रिग्स के परिस्थितिकीय दृष्टिकोण तथा संरचनात्मक कार्यात्मक दृष्टिकोण को विस्तार से समझाने का प्रयास किया जाएगा।

11.6 परिस्थितिकीय दृष्टिकोण और रिग्स(Ecological Approach and Rigs)

पहले लिखा जा चुका है कि 'Ecology' परिस्थिति या पर्यावरण को कहा जाता है। यह प्राकृतिक विज्ञान का शब्द है। इसके अन्तर्गत जीवों और उनके पर्यावरण के पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है। परिस्थितिकी के लिए अंग्रेजी का दूसरा शब्द 'Environ' है, अर्थात किसी संस्था या संरचना के आस-पास या इर्द-गिर्द का पर्यावरण या परिस्थिति, क्योंकि लोक प्रशासन मानवों और उनके व्यवहार का एक समुच्य है जो किसी जीव की तरह संगठित है और व्यवहार करता है। अतः प्रशासन का अपने इर्द-गिर्द में पर्यावरण से प्रभावित होना और प्रतिक्रिया में पर्यावरण को प्रभावित करना एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। इसलिए प्रशासन तथा पर्यावरण के पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन जरूरी है। इसी अध्ययन के आधार पर प्रशासन के नये मॉडलों की रचना की जरूरत महसूस की गई।

सार यह है कि परिस्थितिकीय दृष्टिकोण अपनाकर यह देखा जाता है कि किस तरह जीव सावयव(Living Organisms) और उनका भौतिक और सामाजिक पर्यावरण प्रतिक्रिया करते हैं और किस तरह अपने अस्तित्व

और अन्य उद्देश्यों को सन्तुलन में बनाये रखने के लिए सावयव और पर्यावरण परस्पर व्यवहार करते हैं। लोक प्रशासन की परिस्थितिकी (Ecology) जो प्रशासन और उसके पर्यावरण की एक अन्तरक्रिया या परिणाम है समाज और उन तत्वों के गहन अध्ययन की जरूरत महसूस करती है जो उसकी (परिस्थितिकी) प्रक्रिया को संचालित करती है। रिग्स परिस्थितिकीय उपागम की वकालत करने वाला पहला चिन्तक नहीं है। सर्वप्रथम जॉन0एम0गॉस ने अपने ग्रंथ 'Reflections on Public Administration' में परिस्थितिकीय दृष्टिकोण की लोक प्रशासन के अध्ययन में वकालत की। उस के अनुसार: ''लोक प्रशासन की परिस्थितिकी(Ecology) लोग, क्षेत्र या सम्पत्ति, भौतिक और सामाजिक प्रौद्योगिकी, जन आवश्यकताओं, विचारों, व्यक्तिशता(Individuality) और संकटकालीन हालात का अध्ययन करती है। दूसरी ओर राबर्ट ढल ने अपनी पुस्तक ''The Science of Public Administration : Three Problems'' में लिखा कि लोक प्रशासन अपने पर्यावरण का दर्पण भी है और अपने पर्यावरण की दिशाओं को निश्चित भी करता है। लेकिन यह रिग्स ही है जिसने परिस्थितिकीय दृष्टिकोण के क्षेत्र में एक अहम भूमिका अदा की तथा अपने ग्रंथ ''The Ecology of Public Administration'' की रचना करके इस दिशा में एक महत्वपूर्ण योदान किया। परिस्थितिकी की अवधारणा को आगे बढ़ाते हुए रिग्स ने प्रशासन और आर्थिक, सामाजिक, प्रौद्योगिकी, राजनीतिक और संचार कारकों के सम्बन्धों का वृहत परिप्रेक्ष में विश्लेषण किया। उसने उदाहरण देकर यह स्पष्ट किया कि किस तरह पर्यावरणात्मक परिस्थितियां प्रशासनिक व्यवस्था को प्रभावित करती हैं। ऐसा उसने तुलनात्मक उपागम के माध्यम से थाईलैण्ड और फिलिपाइन्स का अध्ययन करके अपने सिद्धान्तों की सार्थकता के लिए निष्कर्ष निकाले।

11.7 संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण(Structural-Functional Approach)

संरचनात्मक-कार्यात्मक उपाग्म राजनीति विज्ञान का विषय है जिसका अध्ययन इस विषय में लगभग आठ दशक पहले हुआ था। इसका आरम्भ गणित में लीब्रिज ने किया जिसे बाद में समाजशास्त्रियों और सामाजिक मानव विज्ञानियों(Anthropologists) ने किया। 1922 में यह राजनीति विज्ञान का विषय बना। लेकिन सच यह है कि यह उपागम राजनीति विज्ञान में समाजशास्त्रियों का ऋणी है। टेलकॉट पारसंस ने 'The Social System' मोरिसन लेवी ने 'The Structure of Society' और आर0 के0 मर्टन ने 'Theory and Social Structure' जैसी रचनाऐं प्रस्तुत करके समाज के वैज्ञानिक अध्ययन में एक क्रान्ति ला दी। पारसंस और शिल्ज ने तो 'Towards a General Theory of Action' में यह सिद्ध किया कि सामाजिक विज्ञानों का घटनाक्रम तब बेहतर तरीके से समझा जा सकता है जब सामाजिक संरचनाओं और संस्थाओं को समाज में कार्यों को अदा करने की वास्तविकता को स्वीकार किया जाये। यहाँ एक बात और याद रखना चाहिए कि राजनीतिशास्त्रियों ने संरचनात्मक-कार्यात्मक विश्लेषण के माध्यम को राजनीति के तुलनात्मक अध्ययन के लिए अधिक उपयोगी समझा।

संरचनात्मक-कार्यात्मक उपागम के सही अध्ययन के लिए सबसे पहले संरचना ओर कार्य और इन के आपसी सम्बन्धों को समझना होगा। जहाँ तक प्रकार्यों (Functions) का सम्बन्ध है इस बारे में तीन मूल प्रश्न सामने आते हैं, पहला- किसी व्यवस्था में कौन से कार्य सम्पन्न होते हैं, दूसरे- किन संरचनाओं के द्वारा यह सम्पन्न होते हैं और किसी व्यवस्था में कौन से कार्य सम्पन्न होते हैं, और तीसरे- किन परिस्थितियों में यह सम्पन्न होते हैं। ओरान यंग के अनुसार कार्य का सम्बन्ध क्रिया की रीति या प्रतिमानसे है। दूसरे शब्दों में कार्य का सम्बन्ध व्यवस्था से है।

11.7.1 प्रकार्यात्मकतावाद का अर्थ(Meaning of Functionalism)

रजनीति विज्ञान में 'कार्यात्मकतावाद' यूनानी राजनीतिक चिन्तकों की देन है। बाद में इस शब्दावली का प्रयोग मान्टेस्क्यू, कांट, स्पिेन्सर आदि ने किया। आधुनिक समय में राबर्ट मर्टन और मैरियन लेवी ने कार्यात्मकता की अवधारणा का खुलकर समर्थन किया। ऐडविन फोगेमैन के अनुसार जब राजनीतिशास्त्री किसी घटनाचक्र का

विश्लेषण उन कार्यों के सन्दर्भ में करते हैं जो घटनाक्रम के उद्देश्यों की पूर्ति करते हों तो इसे कार्यात्मकतावाद दृष्टिकोण कहा जायेगा। दूसरे शब्दों में कार्यात्मकतावाद के तीन मूल सिद्धान्त हैं-

- एक तथ्य या घटना जिसके स्पष्टीकरण की आवश्यकता हो;
- वह घटना जिसमें तथ्य नजर आये; तथा
- पूरी घटना से तथ्य का सम्बन्ध।

कार्यात्मक विश्लेषणकर्ता प्रत्येक राजनीतिक या प्रशासनिक घटना को एक पद्धति(System) के रूप में देखते हैं और उसे बनाये रखना चाहते हैं।

11.7.2 कार्यात्मकतावाद के प्रकार(Kinds of Functionalism)

कार्यात्मकतावाद के अनेक प्रकार हैं, लेकिन दो प्रकारों को अधिक मान्यता मिली है। इनमें पहला चयनित या चयनशील(Eclectic) है। यहाँ प्रकार्य को एक रूप या सार में लिया जाता है। विश्लेषणकर्ता प्रकार्य के अतिरिक्त संरचना, इतिहास, विचारधारा और घटनाक्रम के अन्य पहलुओं पर भी नजर रखता है। चयनित कार्यात्मकता का अध्ययनकर्ता यह मानकर चलता कि कार्यात्मक पहलू वृहत घटनाक्रम मात्र का एक हिस्सा है, इसलिए विश्लेषण करते समय अध्ययनकर्ता को राजनीतिक और सामाजिक घटनाक्रम के अन्य पहलुओं पर भी नजर डालना चाहिए।

कार्यात्मकतावाद का दूसरा प्रकार अनुभावात्मक प्रकार्यात्मकतावाद(Empirical Functionalism) है। इस दृष्टिकोण का विकास राबर्ट के0 मर्टन ने अपनी रचना 'Social Theory and Social Structure' में किया है। उसके अनुसार प्रकार्य बहुत महत्वपूर्ण अवधारणा है। वह यह नहीं मानता कि प्रकार्य मात्र एक सामान्य विचार है। प्रत्येक समाज में विभिन्न मांगे पैदा होती हैं और इन मांगों को पूरा करने के लिए कार्य कियेजाते हैं। वे प्रक्रिया जो इन मांगों को पूरा करने के लिए कार्य किये जाते हैं। वह प्रक्रिया जो इन मांगों की पूर्ति करके संतोष प्रदान करती है कार्य का उद्देश्य पूरा करती है। अतः किसी एक व्यवस्था में चाहे वह राजनीतिक हो या सामाजिक, अगर गतिशील कार्यों का विश्लेषण अनुभावात्मक आधार पर किया जाये तो यह अनुभावात्मक कार्यात्मकतावादी दृष्टिकोण होगा।

11.7.3 संरचना का अर्थ(Meaning of Structure)

यहाँ मान्यता या परिकल्पना यह है कि प्रत्येक व्यवस्था का आधार संरचनाऐं होती हैं, जो मूर्त होती हैं और जो विशिष्ट पद्धतियों या उपकरणों के माध्यम से समाज के महत्वपूर्ण कार्यों को पूरा करती हैं। दूसरे शब्दों में संरचना का अर्थ है- प्रशासनिक अथवा किसी अन्य तरह की एक ऐसी यांत्रिकी(Mechanism) जिसके माध्यम से प्रकार्यों को सम्पन्न किया जा सके। यदि गहराई से देखा जाये तो स्वयं समाज संरचनाओं की एक व्यवस्था है। राजनीतिक व्यवस्था भी संरचनाओं से मिलकर बनी है। यही स्थिति प्रशासनिक व्यवस्था की है।

11.8 संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण और मर्टन(Structural-FunctionalApproach & Merton)

वैसे टेलकॉट पारसंस और मैरियन लेवी ने संरचनात्मककार्यात्मक ढ़ाँचे की नींव डाली, क्योंकि वे राजनीतिक व्यवस्था का एक वैज्ञानिक सिद्धान्त विकसित करना चाहते थे, लेकिन राबर्ट मर्टन का इस क्षेत्र में काफी योदान है। मर्टन एक समाजशास्त्री थे, इसलिए उनका दृष्टिकोण पूरी तरह समाजशास्त्रीय था। राजनीति, अर्थव्यवस्था और प्रशासन को वह समाज के महत्वपूर्ण घटक मानते थे और उनका विश्वास था कि यह घटक सामाजिक घटनाओं से प्रभावित भी होते हैं तथा उनको प्रभावित भी करते हैं। वह समाज का विश्लेषण सामाजिक संरचनाओं के सन्दर्भ में करने के हामी थे। मर्टन की परिकल्पना थी कि समाज अपने अस्तित्व को बनाये रखना चाहता है। यही समाज का वास्तविक लक्ष्य है। इसके लिए समाज अनुकूलन की प्रक्रिया से गुजरते हैं और प्रकार्यों की मदद लेते हैं मर्टन कार्यों(works) और प्रकार्यों(functions) में अन्तर करता है।

प्रकार्यावाद समाज की व्याख्या की एक पद्धति है। उसे मानव शास्त्रीय संदर्भ में लिया गया है। लेकिन मर्टन ने इस धारणा में संशोधन किया है। उसने अपनी रचना ''Social Theory and Social Structure'' में प्रकार्यावादी दृष्टिकोण को विस्तार देते हुए एक त्रिकोणात्मक रूप प्रदान किया है अर्थात सिद्धान्त, पद्धति और आकड़ों को एक व्यवस्था के रूप में लिया है। प्रकार्यवाद इन्हीं घटकों पर टिका हुआ है।

11.8.1 मर्टन की प्रकार्य सम्बन्धी अवधारणा(Merton and his concept of Function)

जैसा कि बताया जा चुका है कि मर्टन कार्य और प्रकार्य में अन्तर करता है। प्रकार्य एक उपागम है। प्रकार्य एक कार्य-पद्धति है। यह एक अवधारणा है जिसका आधार जीव विज्ञान है। यह बिल्कुल वैसा ही है जैसा कोई सावयवी(Organism) शरीर की प्राणजी को बनाये रखने में अपनी भूमिका अदा करे, मर्टन इसी सावयवी अवधारणा को समाजशास्त्र और मानवशास्त्र में स्वीकृति प्रदान करता है। तर्क यह है कि समाज अपनी व्यवस्था को उसी तरह बनाये रखना चाहता है, जिस तरह शरीर अपनी प्रणाली को बनाये रखना चाहता है। वह कहता है कि प्रकार्य वे देखे जा सकने वाले परिणाम हैं जो सामाजिक व्यवस्था में अनुकूलन अथवा सामंजस्य को सम्भव बनाते हैं। मर्टन ने कार्य-पद्धति (सावयवी) के सन्दर्भ में तथा समाज के अनुकूलन के अर्थ में प्रकार्य को लिया है।

11.8.2 प्रकार्यात्मक विश्लेषण का प्रतिमान(Model of Functional Analysis)

मर्टन ने प्रकार्यात्मक विश्लेषण का एक असाधारण प्रतिमान तैयार किया है। यह प्रतिमान मर्टन के वैज्ञानिक नजरिये और तकनीक के प्रयोग का परिणाम है। इस प्रतिमान में उसने जिन अवधारणाओं को शामिल किया है वे इस प्रकार है-

1. **विषय-** सामाजिक तथ्यों के अध्ययन को मर्टन विषय कहता है। सामाजिक भूमिका, समूह संगठन, सामाजिक संरचना तथा सामाजिक नियन्त्रण, सामाजिक प्रक्रिया, सांस्कृतिक स्वरूप, संवेग, सामाजिक व्यवहार-यह सब विषय हैं, जिनका विश्लेषण प्रकार्यात्मक विश्लेषण के अन्तर्गत आता है।
2. **व्यक्तिनिष्ट व्यवस्थाऐं-** यह वास्तव में प्रेरणाऐं हैं, जिनका अध्ययन जरूरी है। ऐसा वैज्ञानिक पद्धति के माध्यम से किया जा सकता है। प्राकर्यात्मक विश्लेषण बहुत कुछ हद तक इन मानवीय प्रेणाओं का सहारा लेता है, जो यथार्त हैं।
3. **उद्देश्य परिणाम-** मर्टन प्रकार्यात्मक विश्लेषण में दो समस्याओं की ओर इशारा करता है। प्रथम, सामाजिक तथ्यों के योगदान को किस तरह मालूम किया जाये। दूसरे, क्योंकि प्रत्येक तथ्य की एक विषयगत प्रेरणा होती है, तब इस प्रेरणा को उद्देश्यपूर्ण परिणामों से पृथक करके किस तरह समझा जाये। इसी घटनाक्रम को मर्टन उद्देश्यपूर्ण परिणाम कहता है।
4. **प्रकार्य इकाई-** प्रकार्यात्मक विश्लेषण के अन्तर्गत जिस विषय का प्रकार्य के आधार पर विश्लेषण किया जाता है, वह विषय इकाई कहलायी जायेगी। धारणा यह भी है एक विषय प्रकार्य की इकाई हो सकता है, लेकिन यही विषय दूसरे के लिए अप्रकार्य की इकाई हो सकता है। मनोवैज्ञानिक उपागम प्रयोग करते हुए मर्टन इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि प्रकार्य जब क्रियाशील होते हैं तो उनकी अभिव्यक्ति मनोवैज्ञानिक प्रकार्य, समूह प्रकार्य, सामाजिक प्रकार्य तथा सांस्कृतिक प्रकार्य के रूप में हो सकती है।
5. **यांत्रिकीकरण की अवधारणा-** मर्टन प्रकार्यात्मक विश्लेषण के लिए जिस अवधारणा को चुनता है, वह यांत्रिकी है। यह यांत्रिकी शरीर विज्ञान और मनोविज्ञान की यांत्रिकी से मेल खाती है। जिस तरह शरीर और मस्तिष्क की यांत्रिकी व्यवहार करती है, लगभग वैसा ही कुछ हमें समाज के अन्तर्गत होने वाले प्रकार्यात्मकता के व्यवहार में देखने को मिलता है।
6. **प्रकार्यवाद की मान्यताऐं-** प्रकार्यात्मकतावाद की तीन मान्यताऐं प्रचलित थीं। प्रथम, सामाजिक संरचना का निर्माण अनेक इकाईयां करती हैं जो प्रकार्य करती हैं। दूसरे, सामाजिक इकाईयों के यह प्रकार्य ही एक सामाजिक और सांस्कृतिक व्यवस्था को बनाये रखते हैं और तीसरे, प्रकार्य प्रत्येक इकाई के

अपरिहार्य नतीजे होते हैं। मर्टन इन मान्यताओं को स्वीकार नहीं करता है। वह किसी भी प्रकार्य की प्रकृति की सार्वभौमिकता से इन्कार करता है।

11.8.3 राबर्ट मर्टन और लोक प्रशासन(Robert Merton and Public Administration)

प्रश्न यह पैदा होता है कि राबर्ट मर्टन ने प्रकार्यत्मकतावाद को समाज या सामाजिक व्यवस्था से जोड़ा तो आखिर प्रशासनिक व्यवस्था के सन्दर्भ में उसे अध्ययन का विषय कैसे बनाया जाये? या उसको एक प्रशासनिक चिन्तक क्यों माना जाये? इन सवालों का उत्तर हमें मर्टन की नौकरशाही की अवधारणा में मिलेगा। मर्टन की सर्वाधिक महत्वपूर्ण रचना ''Social Theory and Social Structure'' है, जिसमें उसने प्रशासकीय संगठन की विवेचना की है। इस रचना में उसने समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से प्रशासनिक मसलों को हल करने का प्रयास किया है। इस सम्बन्ध में उसका विशेष ध्यान नौकरशाही की ओर जाता है। यहाँ वह नौकरशाही को प्रकार्यों से न जोड़कर अकार्यों(Dys Functions) को प्रकार्यों से जोड़ता है। मर्टन की नजर में नौकरशाही का अकार्य सिद्धान्त यह समझाता है कि प्रशासकीय संगठन नौकरशाही का एक ऐसा प्रतिमान या मॉडल है, जिसका अस्तित्व मानव सभ्यता के इतिहास में मिलता है। इतिहास में नौकरशाही की सक्रियता का महत्व भी है और इतिहास इसके बदलते स्वरूपों का गवाह भी है। इसके रूप कभी तर्कसंगत(Reasonable) रहे हैं, तो कभी अतार्किक। नौकरशाही का दुर्भाग्य यह है कि उसके द्वारा निष्पादित अच्छे कार्यों को भी अक्सर लोग पसंद नहीं करते रहे हैं। यह नापसंद अक्सर अवांछनीय परिणामों में सामने आती है।

आप यहाँ देखेंगे कि नौकरशाही की अकार्य अवधारणा मर्टन को कार्ल मार्क्स के नजदीक पहुँचा देती है। मार्क्स के अनुसार उत्पादन के साधनों और उत्पादन के सम्बन्धों से व्यक्ति (मजदूर) नियंत्रित होता है और प्रशासन का नौकरशाहीकरण व्यक्तियों को उत्पादन के साधनों से अलग कर देता है। मर्टन, मार्क्स के इस विचार से पूरी तरह सहमत है। वह नौकशाही को एक ऐसा प्रशासनिकतंत्र मानता है जो एकाधिकारिक प्रवृति अपनाकर और अपनी चालाकी का प्रयोग करके यथास्थिति को बनाये रखता है। नौकरशाही का लक्ष्य अपनी स्थिति को मजबूत करना होता है। इस तरह हम देखते हैं कि प्रशासनिक व्यवस्था में प्रकार्यात्मक सिद्धान्त के माध्यम से मर्टन नौकरशाही के अकार्य कारकों के आधार पर नौकरशाही की आलोचना करतता है। इस आलोचना का कारण हैं- पहला, नौकरशाही मनोवृत्ति जो जन समाज के विरूद्ध प्रकट होती है। दूसरा, नौकरशाही का नियमों से चिपके रहना वास्तविक उद्देश्यों को नकारना होता है तथा तीसरा, नौकरशाही का निर्वैयक्तिक(Impersonal) होना जो मित्रवत मानवीय भावनाओं को कुचल देती है। मर्टन के अनुसार नौकरशाही के यह दुष्प्रभाव अकार्यत्मकता के कारण होते हैं।

11.9 रिग्स और संरचनात्मक प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण(Riggs and Structural-Functional Approach)

रिग्स परिस्थितिकीय (Ecological) सिद्धान्त का प्रतिपादक है। उसने अपने इस अध्ययन में जिस उपागम का प्रयोग किया वह संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक है। इस परिकल्पना के साथ आगे बढ़ता है कि प्रत्येक प्रणाली या व्यवस्था (System) का निर्माण विभिन्न संरचनाओं(Structures) से होता है और इन संरचनाओं के द्वारा विशिष्ट कार्य या प्रकार्य किये जाते हैं। यहाँ यह याद रखना होगा कि संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक सिद्धान्त का आधार व्यवस्था विश्लेषण (System Analysis) है। इस विश्लेषण से ही पूर्ववर्ती संरचनात्मक उपागम तथा प्रकार्यात्मक उपागम का मिलकर विकास हुआ। संरचनाऐं मूर्त भी होती हैं, जैसे विभाग तथा अमूर्त भी, जैसे प्राधिकार या सत्ता। प्रत्येक संरचना में प्रकार्य तथा अकार्य गतिशील रहते हैं।

रिग्स संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम को उपागम न कहकर 'ढाँचा'(Frame work) कहता है। उसका मानना है कि संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक ढांचा उन प्रकार्यों को जो एक समाज में निष्पादित होते हैं (उनके) विश्लेषण करने की एक पद्धति है। संरचनाऐं प्रकार्यों को निष्पादित करने के लिए उत्तरदायी होती हैं और पद्धतियों के द्वारा प्रकार्यों

को पूरा किया जाता है। रिग्स के अनुसार प्रत्येक समाज में पांच महत्वपूर्ण प्रकार्योंका निर्वाह होता है। उसने अपनी पुस्तक ''Administration in Developing Countries The Theory of Primatic Societies'' में लिखा कि ''इसी प्रकार के प्रकार्य प्रशासनिक उप-व्यवस्था में पूरे किये जाते हैं, जहाँ विभिन्न संरचनाऐंएक विशिष्ट रूप में अनेक प्रकार्यों को अंजाम देती है।'' रिग्स के अनुसार इन संरचनाओं, प्रकार्यों और पद्धतियों के घटनाक्रम को समझना ही संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण है।

11.10 संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक विश्लेषण तथा गेब्रिल ऑमण्ड(Structural-Functional Analysis and Almond)

गेब्रील ऑमण्ड का संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक विश्लेषण से गहरा सम्बन्ध है। उसकी नजर में प्रशासनिक व्यवस्था या लोग प्रशासन राजनीतिक व्यवस्था का एक हिस्सा है, इसलिए राजनीतिक विश्लेषण के अन्तर्गत प्रशासनिक विश्लेषण का अध्ययन स्वतः ही हो जायेगा जहाँ तक राजनीतिक विश्लेषण का सवाल है, आमण्ड के अनुसार पांच राजनीतिक प्रकार्य होते हैं- राजनीतिक समाजीकरण, राजनीतिक भर्ती, हित अभिव्यक्ति(Articlation), हित संकलन (Aggregation) तथा राजनीतिक संचार। जहाँ तक प्रशासनिक व्यवस्था का सवाल है तो ऑमण्ड यह मानता है कि प्रशासनिक व्यवस्था सरकारी प्रकार्यों के अन्तर्गत आती है। यह सरकारी प्रकार्य हैं- नियम-निमार्ण और नियमों का निर्गितीकरण(Adjudication) करना। आमण्ड के अनुसार सारी राजनीतिक व्यवस्थाऐं किसी न किसी रूप में इन प्रकार्यों को पूरा करती हैं। उसका कहना है कि चाहे वे राजनीति शास्त्री हों या प्रशासनिक सिद्धान्तकार उनको इन प्रकार्यात्मक गति विधियों को सम्भालना होगा, यदि राजनीति अथवा प्रशासन को वे समझना चाहते हैं विशेष रूप से तब जहाँ सरकारें अधिक विकसित न हुई हों।

ऑमण्ड वास्तव में राजनीतिक इकाई (राज्य) के प्रकार्यात्मक सिद्धान्त को समझना चाहता था। वह यह जानना चाहता था कि किस प्रकार से राजनीतिक व्यवस्थाऐं परम्परागत से आधुनिक में परिवर्तित होती हैं। उसका दार्शनिक नजरिया यह था कि व्यवस्था एक जीवित इकाई है और वह सामाजिक व्यवस्था का एक अंग है, जिसकी अपनी विशेषताऐं हैं। इस व्यवस्था पर पर्यावरर्णात्मक दबाव पड़ते हैं, इसलिए इसमें हल्के या तीव्र बदलाव आते रहते हैं।

11.10.1 राजनीतिक व्यवस्था और ऑमण्ड का दृष्टिकोण (Political System and Almon'ds Approach)

यह पहले बताया जा चुका है कि प्रशासनिक व्यवस्था राजनीतिक व्यवस्था का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंग है, इसलिए जब ऑमण्ड राजनीतिक व्यवस्था का विश्लेषण करता है तो उसे प्रशासकीय व्यवस्था का भी अध्ययन समझना चाहिए। अपनी रचना ''Politics of Developing Areas'' में आमण्ड और कोलमैन ने लिखा कि राजनीतिक व्यवस्था अन्त:क्रियाओं की एक ऐसी व्यवस्था है, जो तमाम स्वतंत्र समाजों में पायी जाती है और जो एकीकृत करने और अनुकूलित (Adaptation) करने का काम कम या अधिक वैधानिक शारिरीक बाध्यता के माध्यम से पूरा करती है। इस परिभाषा में चार तथ्य सामने आते हैं। पहला, राजनीतिक व्यवस्था अन्तः क्रियाओं का एक समुच्च है, दूसरे यह व्यवस्था अनुकूलित तथा एकीकृत करने का काम करती है, तीसरे, काम या उद्देश्य की पूर्ति वैधानिक तौर से की जाती है, तथा चौथे, जोर जबरदस्ती से काम लिया जाता है। इस तरह ऑमण्ड की नजर में राजनीतिक व्यवस्था एक ठोस इकाई है। इसका पर्यावरण को प्रभावित करना तथा उससे प्रभावित होना जरूरी है। वैधानिक शारीरिक बल व्यवस्था को बांधे रखता है। इस व्यवस्था में अन्तरक्रियाऐं घटित होती हैं, लेकिन यह व्यक्तियों के मध्य नहीं होती हैं, बल्कि उन भूमिकाओं के मध्य होती हैं जो व्यक्ति अदा करते हैं। आमण्ड राजनीतिक व्यवस्था को खुली व्यवस्था मानता है जो, सदा दूसरी व्यवस्थाओं के सम्पर्क में रहती है। ऑमण्ड ने राजनीतिक व्यवस्था की कुछ विशेषताऐं बताई हैं, जो इस प्रकार हैं- राजनीतिक संरचना की सार्वभौमिकता, राजनीतिक प्रकार्यों की सार्वभौमिकता, राजनीतिक प्रकार्यों की बहुप्रकार्यात्मकता तथा, सांस्कृतिक रूप से मिश्रित स्वाभाव।

ऑमण्ड का संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण बहुत विस्तृत और अलझा हुआ है। जैसा कि बताया जा चुका है आमण्ड ने सरकारी प्रकार्यों में नियम निर्माणों, नियम क्रयान्ववन तथा नीति या न्याय निर्णीत को शामिल किया है। इनमें नियम क्रयान्वन का सम्बन्ध प्रशासन से है।

11.10.2 आमण्ड और प्रशासनिक व्यवस्था(Almond and Administrative System)

आमण्ड ने अपने संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक के नजरिये से प्रशासनिक व्यवस्था का अध्ययन किया है। इस सन्दर्भ में उसका विषय नौकरशाही है। इस सम्बन्ध में वह मैक्स वेबर, कार्ल फ्रीडरिच, फेनरनॉड इत्यादि से प्रभावित नजर आता है जिनके अनुसार नौकरशाही नियम क्रियान्वयन में एक अहम भूमिका अदा करती है और जो नौकरशाही को आधुनिक शासन का मगज मानते हैं। ऑमण्ड नौकरशाही को आधुनिक समाज के लिये अपरिहार्य मानता है। उसके अनुसार राजनीतिक नेताओं या जजों के निर्णय नौकरशाहों और अधिकारीगण के द्वारा ही क्रियान्वित किये जाते हैं। उसने लिखा, आधुनिक काल में अधिकतर कानून बहुत सामान्य प्रकार के होते हैं, ताकि उनको प्रभावशाली ढंग से लागू किया जा सके। प्रशासनिक अधिकारियों का काम है कि वे ऐसे विनियम या विनियामक संहिता तैयार करें, जिससे उस नीति का स्पष्टीकरण हो जो शासन की राजनीतिक शाखाओं ने अपनाई है। आम तौर से जिस सीमा तक एक सामान्य नीति लागू की जाती है वह उन व्याख्याओं पर निर्भर करती है जो नौकरशाहों द्वारा की जाती है।

आमण्ड के अनुसार नौकरशाह हितों के व्याख्याकारों और एकीकरणताओं की हैसियत से अहम भूमिका अदा करते हैं। नौकरशाही किसी राजनीतिक व्यवस्था के संचार प्रकार्य को लागू करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह संस्था राजनीतिक मुद्दों और राजनीतिक दृष्टि से अहम घटनाओं की सूचना का एक स्रोत भी बनती है। लेकिन नौकरशाही एक प्रभावशाली भूमिका अदा कर सके, इसके लिए जरूरी है कि वह एक योग्य शासकीय और निर्देशक समूह से निर्देशित तथा नियंत्रित हो। उसको एक केन्द्रीय नीति निर्माण अभिकरण(Agency) की आवश्यकता होती है। ऑमण्ड ने लिखा, ''एक ऐसी केन्द्रीय, निर्देशक नीति निर्माण अभिकरण के अभाव में ऊर्जाहीनता और विकेन्द्रीकरण की ओर रुख़ अपरिहार्य हो जाता है, क्योंकि अपनी प्रकृति और प्रवृति से नौकरशाही दैत्य एक तकनीकी उपकरणीय दैत्य हो जाता है।'' नौकरशाही के बारे में आमण्ड का उक्त विश्लेषण प्रशासनिक दृष्टि से बहुत महत्पवूर्ण है।

11.11 परिस्थितिकीय तथा संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण का मूल्यांकन (Evaluation of Ecological and Structural and Functional Approach)

रिग्स ने परिस्थितिकीय दृष्टिकोण का विचार रखा और यह समझाने का प्रयास किया कि प्रशासन और उसका पर्यावरण एक दूसरे को प्रभावित करते हैं और इस प्रक्रिया की गतिशीलता या गतिशील विज्ञान को समझना प्रशासन के समझने के लिए अनिवार्य है। रिग्स के परिस्थितिकीय दृष्टिकोण को प्रशासकीय चिन्तकों ने प्रशासन के सन्दर्भ में बहुत महत्वपूर्ण माना है, लेकिन साथ में यह भी तर्क दिया है कि उसने नई-नई शब्दावली का प्रयोग करके तथा दूसरे विज्ञानों से उनकी विशिष्ट अवधारणाऐं लेकर अपने दृष्टिकोण को उलझा दिया है। समालोचकों के इस तर्क में काफी दम है कि रिग्स के दृष्टिकोण को समझने के लिए पहले उसकी भाषा को समझना पड़ता है, फिर उसकी अवधारणा को और अन्त में उसके दृष्टिकोण की प्रासंगिकता को समझना पड़ता है। जैसे-जैसे रिग्स प्रशासन के प्रतिमानों के निर्माण की ओर बढ़ता जाता है वह अस्पष्ट और कठिन होता जाता है, लेकिन सच यह भी है कि रिग्स को प्रशासनिक प्रतिमान के सृजनकर्ता की हैसियत से बड़ी ख्याति मिली है। उसका तुलनात्मक प्रशासन तथा विकास प्रशासन के क्षेत्र में बड़ा योगदान है। प्रशासन के सन्दर्भ में उसने अनेक मॉडलों, जैसे- आदर्शात्मक, अनुभावात्क, संरचनात्मक, प्रकार्यात्मक का सृजन किया लेकिन वह लोक प्रशासन के अध्ययन में सबसे अधिक परिस्थितिकीय उपागम को पसंद करता है।

11.11.1 रार्बट मर्टन की आलोचना(Criticism of Robert-Merton)

जहाँ तक संरचनात्मक-प्रकार्यात्क उपागम का प्रश्न है, समाचोलना के रूप में सर्वप्रथम रार्बट मर्टन के दृष्टिकोण को लिया जा सकता है। उसका कहना है कि सरकार को कुछ सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति करनी चाहिए। वह मूल्यों की बात करता है लेकिन यह नहीं बताता कि सामाजिक मूल्य क्या हैं।

दूसरे उसने राजनीतिक और सामाजिक उपागमों और प्रकार्यों के मध्य स्पष्ट समबद्ध भी स्थापित किये हैं। तीसरे, मर्टन ने शासकीय और राजनीतिक उपागमों में अन्तर तो किया है लेकिन उनका पारस्परिक सम्बद्ध किया है इसका उत्तर नहीं दिया है। वह सामाजिक गतिविधियों तथा कल्याणकारी गतिविधि में अन्तर तो करता है, लेकिन यह नहीं समझा सका कि राज्य का क्या काम होगा और प्रशासन क्या काम करेगा।

चौथे, मर्टन का दृष्टिकोण सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था को ध्यान में नहीं रखता है। वह केवल सरकार और राजनीति जैसे दो तत्वों को अध्ययन का विषय बनाता है। लेकिन वह यह नहीं समझा सका कि यह दो तत्व सम्पूर्ण समाज नहीं है। इसलिए उसका अध्ययन एकांगी है। उसने सामाजिक व्यवस्थाओं तथा शासकीय और प्रशासनिक अभिकरणों के मध्य सम्बन्धों को भी समझाने का प्रयास नहीं किया।

सारांश में उसने किसी सामान्य सिद्धान्त की रचना नहीं की और सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था को ध्यान में नहीं रखा। यह उसकी कमजोरी थी।

11.11.2 गैब्रील ऑमण्ड की समालोचना(Gabriel Almond : Evaluation)

आमण्ड संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक सिद्धान्त का सर्वाधिक महत्वपूर्ण रचनाकार है। लेकिन इस सम्बन्ध में उसके दृष्टिकोण की भी कम आलोचना नहीं हुई है। उसके विरूद्ध पहला तर्क यह है कि यद्यपि उसने टेलकॉट पारसंस से अपने विचारों को सजोने के लिए बहुत कुछ ग्रहण किया, लेकिन पारसंस के विचारों को उसने उस रूप में क्रियान्वित नहीं किया जो पारसंस का उद्देश्य था। पारसंस की दिलचस्पी व्यवस्थाओं में थी, जबकि ऑमण्ड की रूचि प्रकार्यों में थी। आमण्ड प्रकार्यों की बात तो करता है, लेकिन उस व्यवस्था की बात नहीं करता जहाँ प्रकार्य अर्थपूर्ण होते हैं। आमण्ड के अनुसार व्यवस्था अन्तःक्रियाओं का एक समुच्य है, लेकिन वह यह नहीं समझा पाता है कि 'व्यवस्था' या अन्तःक्रिया क्या है।

आमण्ड ने राजनीतिक व्यवस्था की अवधारणा पश्चिमी राजनीतिक व्यवस्था से ग्रहण की है, लेकिन उसने यह साफ नहीं किया है कि किस तरह पश्चिमी राजनीतिक संस्थाओं और उनकी विशेषताओं को गैर-पश्चिमी राजनीतिक समाजों पर लागू किया जा सकता हे।

उसकी एक और आलोचना यह भी है कि उसने राजनीतिक व्यवस्था को तमाम स्वतंत्र समाजों में पाई जाने वाली अन्तःक्रियाओं की व्यवस्था माना है। लेकिन स्वतंत्र समाजों से उसका क्या अभिप्राय है, यह वह नहीं बता सका। ऑमण्ड ने प्रकार्यों के सात विभिन्न रूप गिनायें है, लेकिन व्यवहार में राजनीतिक और गैर-राजनतिक समूहों के मध्य अन्तर करना कठिन है। आमण्ड यह बताने में भी असफल हुआ है कि राज्य और समाज में स्वतंत्र संवाद कैसे होता है। उसकी आलोचना का एक आधार यह भी है कि उसने निर्गतन(Output) प्रकार्यों को उचित महत्व नहीं दिया है। अन्त में यह कहा जा सकता है कि उसका तुलनात्मक राजनीतिक उपागम अपूर्ण है। उसने विकासशील देशों की राजनीतिक व्यवथाओं की तुलना विकसित देशों से की है और इस तुलना से विकसित राजनीतिक व्यवस्थाओं को हानि हुई है। उसने ऐसा करके अनेक राजनीतिशास्त्रियों और प्रशासनिक चिन्तकों को भटकाया है। इयुजान मोहान ने तो यहाँ तक कहा है कि ऑमण्ड ने वास्तव में किसी सिद्धान्त का निर्माण ही नहीं किया है। उसकी व्यवस्था सम्बन्धी योजना वास्तव में कोई योजना नहीं है। उसकी शब्दावली अपर्याप्त और उलझी हुई है।

11.12 सारांश

1. इस इकाई में दो प्रमुख दृष्टिकोणों की व्याख्या की गई है-परिस्थितिकीय दृष्टिकोण की तथा संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण की। रिग्स को प्रशासनिक प्रतिमान निर्माण का अगुआ माना जाता है। उसने तुलनात्मक प्रशासनिक अध्ययन के माध्यम से प्रशासनिक व्यवस्थाओं का विषेश रूप से विकासशील समाजों के सन्दर्भ में विस्तृत परिस्थितिकीय और विकास के परिप्रेक्ष में अध्ययन किया है।
2. रिग्स तुलनात्मक लोक प्रशासन के अन्तर-सांस्कृतिक और अन्तर-राष्ट्रीय(Cross-Cultural and Cross-national) अध्ययन पर जोर देता है। उसने विकासशील देशों की प्रशासनिक व्यवस्थाओं को समझाने पर अधिक ज़ोर दिया है। उसने तीन विस्तृत धाराओं की पहचान की है। आदर्शवादी से अनुभावात्मक, विचारात्मक से तथ्यात्मक और गैर-परिस्थितिकीय से परिस्थितिकीय। उसकी नजर में यह धाराऐं तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन के लिए महत्वपूर्ण हैं।
3. रिग्स ने परिस्थितिकीय उपागम, संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम तथा आदर्श प्रतिमानों को प्रशासनिक सिद्धान्तों के स्पष्टकरण (स्पष्टीकरण) के लिए महत्वपूर्ण विश्लेषणात्मक उपकरण माना है।
4. रिग्स के दृष्टिकोण की आलोचना भी की गई है। विशेष रूप से उसने जिस नई शब्दावली का प्रयोग किया है, वह भ्रम भी पैदा करता है और उलझाव भी।
5. जहाँ तक संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम का प्रश्न है, रिग्स के अतिरिक्त रार्बट मर्टन और गेब्रील ऑमण्ड का इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान है। मर्टन अपने विश्लेषण में प्रकार्यो तथा अकार्यों में अन्तर करता है। इसके अतिरिक्त वह प्रकटीय(Manifest) अैर अप्रकटीय(Latent) प्रकार्यों में भी अन्तर करता है। दोनों प्रकार्यों का अध्ययन अनिवार्य है।
6. मर्टन के अनुसार सामाजिक सिद्धान्त के निर्माण में तथ्यों और शोध को एक-दूसरे से जोड़ना चाहिए। उसके अनुसार सामाजिक और राजनीतिक तथ्यों को ज्ञात करने के लिए प्रकार्य आधार बनते हैं। संगठनात्मक व्यवस्था को समझने के लिए भी प्रकार्य अनिवार्य है।
7. मर्टन ने राजनीतिक और सरकारी व्यवस्थाओं में भी अन्तर किया है। उसके अनुसार राजनीतिक पहलू ज्यादा विस्तृत हैं, शासकीय पहलू की तुलना में। राजनीति व्यवस्था में राजनीतिक दलों, दबाव गुटों और नेतृत्व का भी अध्ययन किया जाता है।
8. मर्टन राजनीतिक विश्लेषण को अधिक वैज्ञानिक बनाना चाहता है। इस दृष्टि से वह अपने समय से बहुत आगे है।
9. मर्टन की भी आलोचना की गई है। सर्वप्रथम, उसने सामाजिक मूल्यों को स्पष्ट नहीं किया है। दूसरे, उसने राजनीतिक और सामाजिक क्रमिकता और प्रकार्यों का स्पष्ट सम्बन्ध नहीं जोड़ा है। तीसरे, मर्टन ने अपने विश्लेषण में सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था को नहीं लिया है।
10. संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम का तीसरा सर्वाधिक महत्वपूर्ण सिद्धान्तकार गेब्रील आमण्ड है। उसने अपने विश्लेषण में पांच राजनीतिक प्रकार्य गिनाये हैं- राजनीतिक समाजीकरण, राजनीतिक भर्ती, हित अनुकूलन, हित एकीकरण और राजनीतिक संचार। शासकीय प्रकार्यों में नियम-निर्माण, नियम क्रयान्वयन और विनियम-किर्णावन आते हैं। तमाम राजनीतिक व्यवस्थायें इन प्रकार्यों को करती हैं।
11. आमण्ड का उद्देश्य राजनीतिक व्यवस्था का प्रकार्यात्मक सिद्धान्त खोजना था। वह यह जानना चाहता था कि किस प्रकार से राजनीतिक व्यवस्थाऐं पारम्परिक से आधुनिक में बदलती है। उसके अनुसार व्यवस्था एक सावयव (जीव) है और उसका सम्बद्ध सामाजिक व्यवस्था से है जिसकी अपनी विशेषताऐं होती हैं।

12. प्रशासनिक दृष्टि से संरचनातमक-कार्यात्मक ढ़ाँचे में ऑमण्ड ने नौकरशाही पर अपने विचार रखे हैं। उसके अनुसार नीतियों का क्रयान्वन प्रशासक करते हैं। इस क्रयान्वयन में नीतियों का स्वरूप कैसा हो इसकी व्याख्या नौकरशाह करते हैं। हितों के अनुकूल और एकीकरण में भी नौकरशाहों की अहम भूमिका रहती है।
13. आमण्ड के दृष्टिकोण की आलोचना हुई है। वह पारसंस से प्रभावित था लेकिन उसने पारसंस का अनुसरण नहीं किया। पारसंस व्यवस्थाओं में दिलचस्पी लेता है, लेकिन आमण्ड प्रकार्यों की बात करता है।
14. उसने राजनीतिक व्यवस्था का विचार पश्चिमी राजनीतिक व्यवस्थाओं से लिया है, लेकिन वह यह नहीं समझा सका कि किस तरह पश्चिमी राजनीतिक व्यवस्थाओं की विशेषताओं को गैर-पश्चिमी राजनीतिक व्यवस्थाओं पर लागू किया जा सकता है।

अभ्यास प्रश्न-

1. 'दि एकोलॉजी ऑफ पब्लिक ऐडमिनिस्ट्रेशन' किस लेखक ने लिखी?
2. रिग्स ने अपने परिस्थितिकीय विश्लेषण में किस उपागम का प्रयोग किया?
3. 'पॉलिटिक्स ऑफ डेवेलपिंग कन्ट्रीज' का लेखक कौन है?
4. परिस्थितिकीय दृष्टिकोण का सिद्धान्तकार कौन है?
5. संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण का सिद्धान्तकार कौन है?

11.13 शब्दावली

परिस्थितिकी(Ecology)- परिस्थितिकी एक ऐसा विज्ञान है, जिसके अन्तर्गत सावयवों तथा उनके पर्यावरण के मध्य होने वाली अन्तःक्रियाओं का अध्ययन किया जाता है।

प्रकार्य(Functions)- प्रकार्यों तथा कार्यों में अन्तर है। प्रकार्य एक उपागम है जबकि कार्य मात्र एक गतिविधि है। प्रकार्य एक तकनीकी शब्द है जबकि कार्य एक सामान्य शब्द है।

सावयव(Organism)- सावयव जीव को कहते है जो अंगो से मिलकर बना है। प्रत्येक अंग का यद्यपि एक स्वतंत्र रूप है, लेकिन सावयव अर्थात अंग एक-दूसरे पर निर्भर करते हैं। वे अपने पर्यावरण (माहौल) से प्रभावित होते हैं और प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं।

अप्रकार्य(Dys-Function)- वे प्रकार्य जो क्रियाशीलता पर नकारात्मक प्रभाव डालते हैं अथवा प्रकार्यों को निषेध करते है।

11.14 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. फ्रेड डब्ल्यू रिग्स, **2.** तुलनात्मक उपागम का, **3.** ऑमण्ड एवं कोलमैन, **4.** रिग्स, **5.** ग्रैबिल ऑमण्ड

11.15 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. S.P. Verma : Modern Political Theory.
2. D. Ravindra Prasad, V.S. Prasad, P. Stynarayana : Administrative Thinkers (Edited).
3. Riggs, Fred W., The Ecology of Public Administration.
4. प्रसाद, सत्यनारायण: प्रशासनिक चिन्तक।
5. Maheshwari, S.R., Administrative Thinkers
6. Marcus Weeks, Politics in Miniuters (London)

11.16 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. सुरेन्द्र कटारिया: प्रशासनिक चिन्तक, जयपुर।
2. Riggs, Fred W., Trends in the Comprarative Study of Public Administration (Paper).
3. Kumar, Ashok, History of Social Thought

11.17 निबंधात्मक प्रश्न

1. रिग्स का परिस्थितिकीय दृष्टिकोण क्या है। विस्तार से उत्तर दीजिए।
2. प्रकार्यात्मकता के तीन मूल सिद्धान्त क्या हैं? स्पष्ट कीजिए।
3. राबर्ट मर्टन ने लोक प्रशासन की अवधारणा किस सन्दर्भ में प्रस्तुत की है। सपष्ट कीजिए।
4. गेब्रील ऑमण्ड ने पांच राजनीतिक प्रकार्यों का उल्लेख किया हैं। वे कौन-कौन से हैं? उनकी चर्चा कीजिए।

इकाई-12 विकास मॉडल, डाउन्स मॉडल

इकाई की संरचना

भाग-1 विकास मॉडल

12.0 प्रस्तावना
12.1 उद्देश्य
12.2 विकास की प्रशासनिक अवधारणा
12.3 प्रशासनिक विकास का लक्ष्य
12.4 प्रशासनिक विकास की प्रकृति
12.5 विकास प्रशासन का क्षेत्र
12.6 विकास प्रशासन के घटक
12.7 विकास प्रशासन के साधन
    12.7.1 विकास प्रशासन का सार
    12.7.2 राजनीतिक आधुनिकीकरण और विकास
12.8 फ्रेड रिग्स की विकास की अवधारणा
12.9 रिग्स की विकास अवधारणा का तकनीकी सार
12.10 मूल्यांकन

भाग-2 डाउन्स मॉडल

12.11 ऐन्थानी डाउन्स: एक परिचय
12.12 डाउन्स की नौकरशाही की अवधारणा
    12.12.1 ब्योरोज और निर्णय-निर्माण
12.13 ब्योरोज की परिभाषा तथा नौकरशाहों की प्रकृति
12.14 निर्णय निर्माण-सिद्धान्त और परिकल्पनाऐं
12.15 डाउन्स की पर्यावरण की अवधारणा
12.16 ब्योरोज की पदसोपनीय संरचना
12.17 ब्योरोज पदसोपानों में संचार और नियन्त्रण की समस्याऐं
12.18 ब्योरोज के गतिज: उनका जीवन चक्र
12.19 ब्योरोज व्यवहार पर आयु का प्रभाव
12.20 मूल्यांकन
12.21 सारांश
12.22 शब्दावली
12.23 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
12.24 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
12.25 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
12.26 निबंधात्मक प्रश्न

12.0 प्रस्तावना

इस इकाई के दो भाग हैं। भाग-1 में विकास मॉडल की विवेचना की गयी है। भाग-2 में डाउन्स के मॉडल की व्याख्या है। विकास के कई आयाम हैं-आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक लेकिन आधुनिक दृष्टिकोण यह है कि

प्रशासन का विकास अन्य सभी विकासों की एक अनिवार्य शर्त है। विकास तथा विकास प्रशासन दो विभिन्न विषय हैं लेकिन दोनों में गहरा सम्बन्ध है। विकास प्रशासन तुलनात्मक लोक प्रशासन की देन है। यदि विकास एक मनः स्थिति है तो विकास प्रशासन उस मनः स्थिति को मूर्त रूप देने का एक माध्यम है। विकास प्रशासन की अपनी प्रकृति, अपना क्षेत्र, अपने लक्ष्य, अपने घटक तथा अपने साधन हैं। इसलिए विकास प्रशासन स्वयं में एक पूर्ण विज्ञान हैं। उसके सिद्धान्त हैं और उसकी एक अवधारणा है, जिसकी विवेचना इस इकाई में की गयी है।
डाउन्स एक अमरीकी अर्थशास्त्री है लेकिन लोक प्रशासन भी उसका विशिष्ट विषय रहा है। इसलिये उसने नौकरशाही पर अपनी खोज के अनुसार सिद्धान्त की रचना की है। वह नौकरशाही की सकारात्मक भूमिका को स्वीकार करता है, लेकिन शब्द नौकरशाही का वह प्रयोग करना नहीं चाहता है। उसका विश्लेषण विषय ब्योरोज हैं जिनको विभाग या अनुभाग कहा जा सकता है। इन ब्योरोज़ का वह निर्णय-निर्माण के सन्दर्भ में विश्लेषण करता है। लोक प्रशासन में यही उसकी देन है। वह शब्द नौकरशाह(Bureaucrat) का भी प्रयोग नहीं करना चाहता है। इसके स्थान पर उसने ‘Officials’(अधिकारी) का नाम अधिक पसन्द किया है तथा अधिकारियों की भूमिका, स्वभाव, उद्देश्य तथा कार्यविधि की उसने विवचेना की है। इस तरह नौकरशाही से सम्बन्धित अपने सिद्धान्त को उसने न तो मॉडल कहा है और न आदर्श। एक और विशेष बात यह है कि मैक्स बेबर से असहमत होते हुये भी उसने बेबर की नौकरशाही के आदर्श मॉडल से ‘पदसोपान’ का सिद्धान्त ग्रहण किया है। संक्षेप में डाउन्स के मॉडल या सिद्धान्त के तार्किक पहलू हैं, जिनकी अवहेलना नहीं की जा सकती।

12.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- प्रशासन, विकास तथा विकास प्रशासन से सम्बन्धित अवधारणाओं तथा आधुनिक विषम समाज में उनके महत्व को समझ सकेंगे।
- विकास और विकास प्रशासन दो अलग विषय हैं। इस इकाई के माध्यम से दोनों के शास्त्रीय अन्तर को जान सकेंगे।
- विकास प्रशासन की प्रकृति, उसके लक्ष्यों, क्षेत्र और उसके घटकों की जानकारी कर सकेंगे।
- आधुनिकीकरण और विकास का आपस में क्या सम्बन्ध है, यह जान पायेंगे।
- विकास से सम्बन्धित रिग्स की अवधारणा से परिचित हो सकेंगे।
- इकाई का दूसरा भाग-एन्थानी डाउन्स के मॉडल से सम्बन्धित डाउन्स के बारे में जानकारी ले सकेंगे।
- डाउन्स ने नौकरशाही का अध्ययन ब्यारोज के सन्दर्भ में किया है, जिसे समझ सकेंगे।
- डाउन्स ने ब्योरोज में किस तरह निर्णय-निर्माण के सिद्धान्त के अध्ययन को विषय बनाया है, यह जान पायेंगे।
- डाउन्स ने निर्णय-निर्माण से सम्बन्धित कुछ परिकल्पनाओं का सहारा लिया है, उनमें से एक ब्योरोज के पर्यावरण से सम्बन्धित है। यह क्या अवधारणा है, इसको समझ सकेंगे।
- ब्योरोज की संरचना का आधार पदसोपान है, इससे जुड़ी हुई संचार और नियंत्रण की समस्याओं से तथा उनके जीवन चक्र तथा आयू सम्बन्धित डाउन्स के सिद्धान्त से परिचित हो सकेंगे।

12.2 विकास की प्रशासनिक अवधारणा(Administrative Concept of Development)

तुलनात्मक लोक प्रशासन के विश्लेषण आयामों का निरन्तर विकास होता रहा है। समाजशास्त्री तथा प्रशासनिक चिन्तक निरन्तर यह समझने का प्रयास करते रहे हैं कि विषम तथा विविधतापूर्ण प्रशासनिक व्यवस्थाओं में

परिवर्तित क्यों और कैसे आते हैं। दो विश्व युद्धों ने सामाजिक विज्ञान से लेकर मनोविज्ञान तक प्रत्येक विषय का स्वरूप बदल दिया। लोक प्रशासन भी इससे अछूता नहीं रहा। परम्परागत लोक प्रशासन परिवर्तित परिस्थितियों के अनुकूल नहीं रहा था। उसको नई दिशा की जरूरत थी। एडवर्ड वाइडनर ने इस वास्तविकता को समझ कर विकास प्रशासन की अवधारणा प्रस्तुत की। यह कोई नई बात नहीं थी। समाजशास्त्रियों की ओर से आर्थिक विकास में सामाजिक दृष्टिकोण को पहिचानने की वकालत पहले ही हो चुकी थी। बी0एफ0 होजलिट्ज, नील स्मेलजर तथा आर0डब्ल्यू0 मैक के ग्रंथ इस दिशा में प्रकाशित हो चुके थे। अब एक तार्किक धारणा यह बनी थी कि जब तक सामाजिक विकास नहीं होगा आर्थिक विकास अर्थहीन है और जब तक प्रशासनिक विकास नहीं होगा अन्य विकास संभव नहीं हैं।

विकास प्रशासन लोक प्रशासन का नया आयाम है। राजनीति तथा आर्थिक विकास के बदलते स्वरूप ने विकास प्रशासन को जन्म दिया है। समाज का आधुनिकीकरण, वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रगति, लोकतान्त्रिक राजनीति के नये तकाजे तथा शहरी और ग्रामीण विकास की नई मांगे विकास प्रशासन के लिये नये दरवाजे खोलती है। विकास प्रशासन को समझने से पहले संक्षेप में विकास को समझना होगा। विकास समाज की गतिशीलता है जो एक व्यवस्था से दूसरी व्यवस्था की ओर अग्रसर रहती है। बाइडनर के अनुसार, विकास एक मनः स्थिति, प्रवृत्ति एवं दिशा है। बदलते रहना विकास की प्रकृति है। रिग्स के अनुसार, विकास एक व्यवस्था की उस क्षमता में वृद्धि है, जिसके अनुसार वह अपने भौतिक, मानवीय तथा सांस्कृतिक पर्यावरण को अपनी इच्छानुसार आकार देती है। विकास का अर्थ मात्र आर्थिक विकास या आर्थिक वृद्धि(Economic Growth) नहीं है। यह भौतिकवादी नजरिया है। विकास बहुआयामी होता है। आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक तथा मनोवैज्ञानिक सभी प्रकार के विकास अनिवार्य हैं और नई अवधारणा यह है कि अब यह विकास प्रशासनिक विकास पर टिके हुये हैं। विकास प्रशासन के दो अर्थ हैं। प्रथम, विकास गतिविधियों के प्रशासन तथा बहुआयामी विकास के लिये निर्मित नीतियों के क्रियान्वयन के तरीके से लिया जाता है। दूसरे, प्रशासनिक क्षमताओं में वृद्धि विकास है। इन दोनों का एक- दूसरे के सम्बन्ध है। विकास प्रशासन के विश्लेषण का केन्द्रीय बिन्दु सरकारीतंत्र की क्षमता है। बहुआयमी विकास के लक्ष्यों को पाने के लिये प्रशासनिक कुशलता एक अहम भूमिका अदा करती है। इसके लिये नियोजित तकनीकें एवं सिद्धान्त अपनाये जाते हैं। इसलिये विकास प्रशासन को नियोजित(planned) परिवर्तन माना गया है। विकास प्रशासन चार ‘P’ पर टिका हुआ है: P- Planning या योजना, P- Policy या नीति, P- Programme या कार्यक्रम तथा P- Project या परियोजना। विकास प्रशासन जनता के लिए जनता के सहयोग से चलता है। विकेन्द्रीकरण और सहभागिता इसका मूल मंत्र है। यह कल्याणकारी है और मानवीय है। जनता तथा विकास प्रशासन एक दूसरे पर निर्भर रहते हैं।

12.3 प्रशासनिक विकास का लक्ष्य(Objectives of Alministrative Development)

प्रशासन को गतिशील, क्रियाशील और तर्कसंगत बनाये रखना प्रशासनिक विकास के अन्तिम लक्ष्य हैं। प्रशासनिक विकास नवीनीकरण में विश्वास रखता है। वह परम्परावादी प्रशासन की कमियों को सुधारता है। वह परिस्थितियों के अनुसार अपने आप को ढालता है। जहाँ विकसित समाजों की गति का वह कारण है वहाँ विकासशील देशों में भी वह ऐसा ही विकास लाना चाहता है। वह आधुनिकीकरण तथा नवीनीकरण का माध्यम है जिसकी नकल विकासशील देश करते हैं। विकास प्रशासन एक विषय है। यह तुलनात्मक प्रशासनिक अध्ययन का परिणाम है और इसलिए यह प्रशासनिक विकास का एक अभिन्न अंग है। संक्षेप में प्रशासनिक विकास पाँच तत्वों पर टिका हुआ है-

1. प्रशासनिक विकास, विकास प्रशासन का एक अभिन्न अंग है;
2. प्रशासनिक व्यवस्था में सुधार इसका लक्ष्य है ताकि एक अर्थपूर्ण सार्थक नतीजा निकल सके;

3. यह प्रशासन की परम्परागत प्रक्रियाओं, पद्धतियों एवं नियमों में परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन लाने का प्रयास करता है;
4. प्रशासनिक क्षमता, कुशलता तथा गतिशीलता में वृद्धि इसका लक्ष्य है; तथा
5. यह बहुआयामी विकास की माँगों को पूरा करने का प्रयास करता है।

12.4 प्रशासनिक विकास की प्रकृति(Nature of Development Administration)

विकास प्रशासन अध्ययन और विषय की दृष्टि से प्रशासन के तुलनात्मक अध्ययन का नतीजा है और अब यह लोक प्रशासन का एक अंग माना जाता है। त्वरित विकास, परम्परागत प्रशासन की कमजोरी, विदेशी तकनीकी सहायता तथा विविध आवश्यकताओं की तीव्रता ने इसके महत्व को बढ़ा दिया है, इसीलिये जरूरी है कि विकास प्रशासन की प्रकृति को पहले समझा जाऐ। इसकी प्रकृति से सम्बन्धित सात विशेषताऐं सामने आती हैं जो इस प्रकार हैं-

1. त्वरित विकास(Rapid development) के लिए नवोदित राष्ट्रों की जो पहली माँग थी तथा जो विकसित राष्ट्रों के साथ कदम से कदम मिलाकर चलना चाहते हैं ऐसे देशों में एक नियोजित कार्यक्रम की आवश्यकता होती है, जिसको क्रियान्वित करने तथा उनमें गतिशीलता लाने का काम विकास प्रशासन कर सकता है।
2. परम्परागत विकास तथा परम्परागत प्रशासन में अन्तरद्वन्द के कारण विकास की प्रक्रिया धीमी पड़ जाती है। ऐसी स्थिति में विकास प्रशासन परिवर्तित माहौल के अनुसार क्रियाशील होकर विकास को गति देता है।
3. विकास प्रशासन विदेशी तकनीकी सहायता पर निर्भर करता है। वह विकसित देशों में होने वाले नित-नये प्रशासनिक प्रयोगों और उनके परिणामों का लाभ उठाता है।
4. तुलनात्मक प्रशासन के अध्ययन ने विकास प्रशासन में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन की नींव डाली है। तुलनात्मक प्रशासन सिद्धान्तों तथा प्रतिमानों (मॉडलों) का नमूना है जिसका लाभ विकास प्रशासन उठाता है।
5. परिवर्तन के अनुकूल ढालना विकास प्रशासन की मूल प्रकृति है। विकास स्थिर या निश्चल (Static) नहीं है। वह परम्परावादी भी नहीं है। गतिशीलता उसका लक्षण है। परिस्थितियों के अनुकूल चलना उसका स्वभाव है।
6. नियोजित प्रयास के माध्यम से विकास प्रशासन परिवर्तन लाता है।
7. जन-सहभागिता पर आधारित होना विकास प्रशासन की एक विशेषता है। वह जनकल्याण के लिए है और प्रशासनिक नीतियों, कार्यक्रमों तथा परियोजनाओं को मूर्त रूप देने के लिये जन सहयोग पर निर्भर करता है। इन सात विशेषताओं के अतिरिक्त विकास प्रशासन लक्ष्योन्मुख होता है। निर्धारित लक्ष्यों की एक समय सीमा में प्राप्ति उसकी प्रकृति है। विकास प्रशासन न तो पलायनवादी है तथा न लक्ष्यों और प्रकार्यों के प्रति उदासीन। वह उत्तरदायी है और जिम्मेदारी के साथ अपने कर्त्तव्य को परिस्थितियों के अनुसार निभाता है। विकास प्रशासन प्रगतिशील है; वह श्रेष्ठ से श्रेष्ठतर की ओर बढ़ता है। वह सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक तकाजों को पूरा करने के लिए कटिबद्ध है।

12.5 विकास प्रशासन का क्षेत्र(Scope of Development Administration)

प्रशासन तथा विकास प्रशासन में अन्तर करना कठिन है। यदि सैद्धान्तिक नजरिये से ऐसा कोई अन्तर किया भी जाए तो केवल कह सकते हैं कि प्रशासन सामान्य शब्द है जबकि विकास प्रशासन विशिष्ट। दोनों का कार्यक्षेत्र एक

है, दोनों का लक्ष्य एक है। सभी प्रशासनिक अभिकरणों(Agencies) का विकास से सम्बन्ध है। कुल मिलाकर विकास प्रशासन का क्षेत्र बहुत विस्तृत है, जिसको अनेक भागों में बाँटा जा सकता है, जो इस प्रकार है-

1. **सामान्य प्रशासन के अभिकरण-** शासकीय नीतियों के निर्धारण, राजनीतिक तथा प्रशासनिक मुद्दों के मध्य समन्वय तथा प्रशासनिक प्रकार्यों का निर्देशन, उन पर नियंत्रण तथा उनका निरीक्षण सामान्य प्रशासन के अभिकरणों की परिधि में आता है।
2. **प्रशासनिक विकास के अभिकरण-** प्रशासनिक संरचना, प्रशासनिक संगठन (विभाग, अनुभाग) तथा इनसे सम्बन्धित कार्मिक(Personnel) प्रशासन, उनकी भर्ती, उनका चयन तथा उनमें दक्षता के आधार पर उत्तरदायित्वों का बँटवारा प्रशासनिक विकास अभिकरण के अन्तर्गत आते हैं।
3. **नियोजन-परिवर्तन तथा प्रशासन-** विकास प्रशासन के अभिकरण आर्थिक, सामाजिक परिवर्तन के लिये नियोजन के माध्यम से लक्ष्यों की प्राप्ति करते हैं। इन अभिकरणों में योजना आयोग (अब नीति आयोग), राज्य योजना विभाग तथा समाज कल्याण विभाग आते हैं। 2016 से पूर्व पंचवर्षीय योजनाऐं देश के त्वरित आर्थिक और सामाजिक विकास के उद्देश्यों की पूर्ति करने में सफल रही थी।
4. **संगठन-कार्मिक वर्ग तथा प्रशासन-** विकास प्रशासन का सबन्ध केवल विकास के कार्यक्रमों के क्रियान्वयन से ही नहीं है वह प्रशासनिक संगठनों की आन्तरिक कार्य क्षमता बढ़ाने के साथ उनकी भर्ती, नियुक्ति, प्रशिक्षण, प्रोन्नति तथा पदस्थापन से सम्बन्धित समस्याओं का भी निबटारा करता है।
5. विकास प्रशासन के मानवीय पहलू- विकास प्रशासन के अध्ययन में समाज तथा समाज से सम्बन्धित पहलू जिनका रिश्ता मानवीय विकास तथा मानव कल्याण से हो सम्मिलित किये जाते हैं। आर्थिक नियोजन का लक्ष्य यही है।
6. विकास प्रशासन मानव संसाधनों की दृष्टि से- शिक्षा, स्वास्थ्य, सामाजिक न्याय, महिला सशक्तिकरण, सुरक्षा, रोजगार इत्यादि जैसे-बहुआयामी क्षेत्र विकास प्रशासन की परिधि में आते हैं। संक्षेप में विकास प्रशासन का क्षेत्र बहुत विकसित है। यह कल्याणकारी राज्य की भावना को मूर्त रूप देता है।

12.6 विकास प्रशासन के घटक(Elements of Development Administration)

विकास प्रशासन तुलनात्मक प्रशासन का नवीनतम् विषय है। यदि विकास प्रशासन का कोई प्रतिमान (मॉडल) स्वीकार किया जाता है तब उसके कुछ घटकों का निर्धारण करना होगा। इस दृष्टि से प्रशासनिक चिन्तकों ने विकास प्रशासन के जो घटक तय किए हैं, वे इस प्रकार हैं-

1. **लोकतांत्रिक मूल्य-** लोकतांत्रिक संस्कृति पर प्रशासनिक विकास का टिका रहना वास्तव में लोकतांत्रिक मूल्य हैं। व्यस्कमताधिकार, राजनीतिक स्वतन्त्रता तथा समानता, राजनीतिक संस्थाओं में भागीदारी तथा असहमति यह वे मूल्य हैं जो प्रशासनिक विकास का आधार बनते हैं।
2. **लोक कल्याणकारी राज्य की परिकल्पना-** आधुनिक राज्य का लक्ष्य जनकल्याण है। भारतीय संविधान में दिये गये राज्य की नीति के निर्देशक तत्व जनकल्याण की भावना को अभिव्यक्त करते हैं।
3. **मजबूत प्रशासनिक व्यवस्था-** यदि जनकल्याण या बहुआयामी विकास एक साध्य है तो मजबूत प्रशासनिक व्यवस्था एक साधन है। अमेरिका का विकास वैज्ञानिक प्रबन्धन के कारण हुआ है। किसी देश के विकास की धीमी गति ढीले प्रशासन के कारण होती है।
4. **शक्तियों का विभाजन-** प्रशासनिक संरचना शक्तियों के विभाजन पर आधारित है, जो पदसोपान के सिद्धान्त में निहित हैं। विकास प्रशासन इस शक्ति विभाजन के प्रभाव पर टिका होता है।

5. **कल्याणकारी कानून तथा नीतियाँ-** कार्यपालिका का काम लोक कल्याणकारी नीतियाँ बनाना तथा व्यवस्था का काम इन नीतियों के बारे में कानून बनाना होता है। विकास प्रशासन का आधार यही नीतियाँ और कानून या नियम होते हैं।
6. **संसाधनों का महत्व-** आर्थिक, प्राकृतिक एवं मानव संसाधनों की उपलब्धि विकास प्रशासन को गतिशील और सुगम बनाती है।
7. **समाज के मूल्य तथा परम्पराऐं-** विकास प्रशासन समाज के तर्कसंगत मूल्यों तथा परम्पराओं पर टिका होता है। मूल्य एवं परम्पराऐं विकास की दिशा को तैय करते हैं।
8. **राजनीति का स्वरूप-** किसी समाज का स्वरूप क्या है? जनतन्त्रीय(लोकतंत्रीय), एकाधिकारिक या राजतन्त्रीय-प्रशासन की अवधारणा इस स्वरूप पर निर्भर करती है।
9. **जनतंत्रीय शर्तें-** राजनीतिक दबाव समूह, राजनीतिक सहभागिता, राजनीतिक समाजीकरण, स्वतन्त्र मीडिया, जनतन्त्रीय विकेन्द्रीकरण, मौलिक अधिकार, मानव अधिकार, समाज के कमजोर अल्पसंख्यक तबकों के प्रति रुख, राजनीति का स्वाभाव (दलगत राजनीति तथा धार्मिक-जातीय ध्रुवीकरण) यह ऐसे घटक हैं, जो प्रशासनिक विकास की प्रकृति का निर्धारण करते हैं।
10. **बहुआयामी भौतिक प्रगति-** वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रगति, औद्योगिक, कृषि एवं संचार प्रगति वित्तीय संसाधनों की उपलब्धता, मानवीय कौशल और क्षमता, राष्ट्रीय इच्छा शक्ति, स्वदेश प्रेम, नैतिक चरित्र का उत्थान (ताकि भ्रष्टाचार न बढ़े) तथा राष्ट्रीय एकता, साम्प्रदायिक सौहार्द तथा राष्ट्रीय मनोबल इत्यादि यह ऐसे तत्व हैं, जो प्रशासनिक विकास का आधार बनते हैं।

यूरोप तथा अमेरिका यदि विकसित कहलाते हैं, तो इसका कारण वहाँ उक्त सभी घटकों की अर्थपूर्ण मौजूदगी है और यहाँ यह स्पष्ट है कि तृतीय विश्व के विकासशील तथा अविकसित राष्ट्र प्रशासनिक विकास के इन घटकों को पाने के लिए संघर्ष करते नजर आ रहे हैं। इन्हीं घटकों से सम्बन्धित विकास प्रशासन के साधन हैं।

12.7 विकास प्रशासन के साधन(Means of Administrative Development)

विकास प्रशासन के तीन प्रमुख साधन माने जाते हैं- प्रशासनिक सुधार, नवीनीकरण या नवाचार तथा स्वतः प्रशासनिक विकास।

1. **प्रशासनिक सुधार-** प्रशासन की गतिशीलता सतत् बनी रहती है। लेकिन कभी-कभी उसमें जड़ता आ जाती है जिसके कारण उसका रूप विकृत होने लगता है। ऐसी स्थिति में प्रशासन में कुछ सुधारों की आवश्यकता होती हैं। यह विकास प्रशासन की अनिवार्य शर्त है। विकास प्रशासन में सुधार लाने के लिए सुनियोजित प्रयास होते रहते हैं, जिनके फलस्वरूप संगठन और संरचना में परिवर्तन लाये जाते हैं। नई प्रशासनिक तकनीकें तथा पद्धतियां प्रयोग में लाये जाती हैं। नियमों तथा मानवीय व्यवहार में सुधार किया जाता है। कार्यशैली तथा लक्ष्यों को नया रूप दिया जाता है।
2. **नवीनीकरण या नवाचार-** नवीनीकरण के लिए तीन साधन अपनाये जाते हैं- नई तकनीक एवं नये विचार का अविष्कार अथवा नवीन विधियों का अविष्कार किया जाता है, इन अविष्कारों की स्वीकृति ली जाती है; तथा इस स्वीकृति के बाद उसका व्यवहारिक उपयोग किया जाता है। ऐसा करना केवल आधुनिक समाज में संभव है, परम्परागत समाजों में नहीं।
3. **स्वतः प्रशासनिक विकास-** विकास एक ऐसी यांत्रिकी है, जिसके कारण विकास की प्रक्रिया स्वतः चलती रहती है। समय तथा परिस्थितियां भी प्रशासन को विकसित करती हैं। समाज का स्वभाव, संस्कृति, राजनीति, अर्थव्यवस्था, विज्ञान तथा तकनीकों के प्रभाव प्रशासन को प्रभावित करते हैं। इन परिस्थितियों से प्रशासन के विकास में गति आती है।

12.7.1 विकास प्रशासन का सार(Essence of Development Administration)

प्रशासन और प्रशासनिक विकास में घनिष्ठ सम्बन्ध है। प्रशासन एक सामान्य शब्द है लेकिन विकास प्रशासन तक विशिष्ट अर्थ रखता है। जब राजकीय संगठनों द्वारा नीति और भौतिक लक्ष्यों की योजनाऐं क्रियान्वित होती हैं तो इसका कारण विकास प्रशासन होता है। विकास प्रशासन में प्रगतिशील राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक लक्ष्यों को पाने के मार्गदर्शन की प्रक्रिया को अपनाना होता है। विकास प्रशासन में विशेष ध्यान कार्य-परक(Action-oriented) एवं ध्येय-पर(Goal-oriented) प्रशासन प्रणाली पर रहता है। प्रशासन में परिवर्तन पर्यावरण में परिवर्तन के बिना नहीं लाये जा सकते हैं और पर्यावरण स्वयं परिवर्तित नहीं हो सकता, जब तक विकास कार्यक्रमों के प्रशासन को सुदृढ़ नहीं किया जाता। विकास प्रशासन का आधार सरकार की क्षमता है।

12.7.2 राजनीतिक आधुनिकीकरण और विकास(Political Modernisation and Development)

यदि आधुनिकीकरण(Modernisation) और विकास की बात की जाये तो इन दोनों को परिभाषित करना वास्तव में बहुत कठिन है। दोनों एक दूसरे से सम्बन्धित हैं तथा दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। इसलिये दोनों को विभाजित करना मुश्किल है। लेकिन फिर भी पहले आधुनिकीकरण को समझना जरूरी है। आधुनिकीकरण का अगर अर्थ, आधुनिक समाज से लिया जाये तो फिर आधुनिक समाज को समझना होगा। पश्चिमी अर्थ में आधुनिक समाज की विशेषता है, शहरीकरण, साक्षरता, सामाजिक गतिशीलता तथा प्रौद्योगिकी का प्रयोग। वहाँ जीवन के यह आधुनिक रास्ते हैं अर्थात् पश्चिमी अर्थ में पारम्परिक समाज का विघटन और सामाजिक सम्बन्धों के प्रति धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण, जन मामलों में न्याय और इस विचार को स्वीकृति कि राष्ट्र-राज्य राजनीतिक संस्था(Polity) की पहली और सर्वोच्च इकाई है। पश्चिम में ऐसे आधुनिकीकरण का पहला चरण औद्योगिक क्रान्ति था जो समय के साथ पूरे विश्व में फैल गया। इसके बाद दूसरा चरण सुधार युग(Reformation Era) का था। यह दोनों चरण आधुनिकीकरण की अभिव्यक्ति थे, जिनके फैलाव को रोकना असंभव था। हनंटिगटन(Huntington) का कहना है कि आधुनिकीकरण एक बहुआयामी प्रक्रिया है जो मानव चिन्तन और क्रियाशीलन के प्रत्येक क्षेत्र में परिवर्तन लाती है। उसके अनुसार शहरीकरण, औद्योगीकरण और धर्म-निरपेक्षीकरण आधुनिकीकरण तथा आधुनिक समाज की विशेषताऐं हैं। आधुनिकीकरण मूल्यों, अभिवृत्तियों और अपेक्षाओं में भी परिवर्तन हो जाता है।

साराँश में राबर्ट एवर्ड के शब्दों में ''आधुनिकीकरण एक प्रक्रिया है, जो संसाधनों के तार्किक उपयोग पर आधारित है और जिसका उद्देश्य एक आधुनिक समाज की स्थापना करना है। यह एक ऐसी अवधारणा है, जिसके अन्तर्गत सामाजिक-आर्थिक, राजनीतिक और मनः सांस्कृतिक आयाम आते हैं। आधुनिक समाज का उद्देश्य राजनीतिक दृष्टि से समाज को गतिशील बनाना है। इसी स्थिति को विकास कहा जायेगा।

12.8 रिग्स की विकास की अवधारणा(Rigg's Concept of Development)

रिग्स उन प्रशासनिक चिन्तकों में से है जिन्होंने सामाजिक व्यवस्थाओं के सन्दर्भ में विकास को तकनीकी शब्दावली के माध्यम से परिभाषित किया है। उदाहरण के लिये उसने विकास को परिभाषित करने के लिये 'विवेकशीलता' (Discretion) तथा 'विवर्तन'(Diffraction) जैसी शब्दावली का प्रयोग किया है। उसके अनुसार विकास सामाजिक व्यवस्थाओं की बढ़ती हुई स्वायत्तता की एक प्रक्रिया है, जो विवर्तन के उठते हुए स्तर से सम्भव होती है।' वह विवेकशीलता को ही स्वायत्तता के रूपमें लेता है। विवेकशीलता क्या है? रिग्स के अनुसार, विवेकशीलता विकल्पों में से चुने जाने का कौशल है जबकि विवर्तन (बहुरंगी पैटर्न में विभाजन) एक समाज में अवकलन(Differentiation) या भेदात्मक और एकीकरण के स्तर को दर्शाता है। परिस्थितिकीय दृष्टिकोण से विकास एक ऐसी बढ़ती हुई क्षमता है, जो पर्यावरण को प्रभावित करने वाले सामूहिक निर्णय लेती है

तथा उनको क्रियान्वित करती है। यहाँ यह याद रखना चाहिए कि रिग्स अन्तरता या अवकलन और एकीकरण को विकास की प्रक्रिया के दो प्रमुख तत्व मानता है।

अवकलन का अर्थ है, एक ऐसी स्थिति का अस्तित्व जिसमें प्रत्येक प्रकार्य को पूरा करने के लिए एक विशिष्ट संरचना मौजूद होती है। दूसरी ओर एकीकरण का अर्थ है, एक ऐसी यांत्रिकी जो विभिन्न प्रकार की विशिष्ट भूमिकाओं को एक-दूसरे से जोड़े, उनको मिलाये, उनको गूंथे और उनमें समन्वय पैदा करे। अवकलन तथा एकाकीरण के स्तर विकास की विवर्तनीय(diffracted) तथा प्रिज्मीय (प्रिज्मीय, एक त्रिकोणीय व्यवस्था है जिसका रूप इन्द्रधनुष जैसा है, जिसमें से तिरंगी किरणें फूटती है) स्थितियाँ होती हैं। यदि समाज में पूरी तरह भिन्नता है, लेकिन एकीकरण में कमजोरी या कमी है, तो यह प्रिज्मीय समाज है। विवर्तनीयता विकास को आगे बढ़ाती है और विवर्तनीयता तथा एककीकरण का जितना उच्चतर स्तर होगा, उतना उच्चतर विकास का स्तर होगा तथा जितना निम्नस्तर इनका स्तर होगा, उतना कम विकास होगा। इसी तरह रिग्स के अनुसार, विवर्तनीयता तथा एककीकरण के मध्य विकृत तारतम्यता प्रिज्मीय स्थितियों के विभिन्न स्तरों के रूप में प्रकट होती हैं।

रिग्स ने विवर्तनीयता और एकीकरण के बदलते हुये स्तरों के मध्य दो रेखाऐं खींची हैं। यहाँ वह यह सिद्ध करता है कि दोनों के मध्य एक विकर्ण(Diagonal) है। यह विकर्ण उस एककीकरण के उस आदर्श स्तर को प्रस्तुत करता है जो उन विषमताओं को संभालने का काम करता है और जो विवर्तनीय भूमिकाओं में समन्वय लाने के लिये जरूरी है। इसके लिये वह प्रत्येक भूमिका को पर्याप्त स्वायत्तता प्रदान करता है, ताकि वह सफलता के साथ विभिन्न प्रकार्यों का निष्पादन कर सके। रिग्स ने परिकल्पनात्मक आधार पर कुछ ऐसे काल्पनिक समाजों को प्रस्तुत किया है, जो अधिक से अधिक विवर्तनीय हैं और जो परिवर्तनों से उत्पन्न समस्याओं पर सफलता पाये बिना अधिकाधिक भिन्न होते जाते हैं।

12.9 रिग्स की विकास अवधारणा का तकनीकी सार (Technical essence of Rigg's Development Concept)

रिग्स न तो इंजीनियर था और न ही भौतिकी वैज्ञानिक, लेकिन उसे विकास के सन्दर्भ में अपने दृष्टिकोण को सिद्ध करने के लिये वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली के प्रयोग करने का एक जूनून था। उदाहरण के लिये वह विवर्तन (differention) एककीकरण(integration) जैसे शब्दों के अतिरिक्त 'भेदन' या 'वेद्यन'(penetration), भागीदारी (Participation), प्रिज्मैटिक(Prismatic) आदि जैसे शब्दों का भी प्रयोग विकास से सम्बन्धित अपने प्रतिमानों को गढ़ने के लिये करता है। नतीजा यह है कि उसका नजरिया अस्पष्ट और उलझा हुआ नजर आता है।

उदाहरण के लिये, रिग्स के अनुसार, किसी भी देश में विवर्तन का स्तर प्रौद्योगिकीय तथा गैर-प्रौद्योगिकीय कारकों पर निर्भर करता है। प्रौद्योगिकी का जितना अधिक विकास होगा, विवर्तन का स्तर उतना ही ऊँचा होगा। रिग्स का तर्क है कि एकीकरण दो महत्वपूर्ण कारकों पर निर्भर करता है। अर्थात् भेदन(Penetration) और भागीदारी(Participation) पर। भेदन सरकार की वह क्षमता या योग्यता है, जिसके आधार पर वह (सरकार) निर्णय लेती है तथा उन्हें पूरे देश में लागू करती है। भागीदारी का अर्थ है कानून की ग्रहणशीलता(Receptivity) तथा शासन ने जो कानून बनाये हैं उनके क्रियान्वयन कराने में मदद करने की इच्छा। इस तरह जहाँ भेदन का सम्बन्ध शासन से है, वहीं भागीदारी का सम्बन्ध जनता से है।

भागीदारी के दो महत्वपूर्ण तत्व हैं- इच्छा और क्षमता। अर्थात जन-समाज में सरकारी नीतियों और कानूनों को लागू कराने की अपनी इच्छा तथा क्षमता का प्रदर्शन करना। रिग्स के अनुसार लोगों में भागीदारी की जितनी अधिक इच्छा और क्षमता होगी सरकारी मामलों में भागीदारी का स्तर उतना ही ऊँचा होगा। इसका अर्थ यह हुआ कि वेद्यन या भेदन और भागीदारी विवर्तनीय संरचनाओं के एककीकरण को आसान बनायेगी और नतीजा यह होगा कि अन्तिम उद्देश्य अर्थाथ विकास सम्भव होगा।

12.10 मूल्यांकन

विकास एक ऐसा विषय है जिसके बारे में सामाजिक विज्ञानों के विद्वानों ने अपना दृष्टिकोण अपने विषय-क्षेत्र के सन्दर्भ में रखा है। अर्थशास्त्रीयों ने आर्थिक वृद्धि के सन्दर्भ में विकास को लिया है। समाजशास्त्रीयों ने सब से पहले विकास के सामाजिक पहलुओं को उजागर किया। इन समाजशास्त्रियों में बी0एफ0 होजीलट्ज, नील जे स्मेलजर तथा आर0डब्ल्यू0 मैक का नाम लिया जा सकता है। इन विद्वानों ने आर्थिक और सामाजिक विकास को एक साथ बाँधने का प्रयास किया है। विकास से सम्बन्धित अनेक सिद्धान्त भी रचे गये जिनमें प्रकार्यात्मक तथा द्वन्दात्मक दृष्टिकोणों को महत्व दिया गया है।

लेकिन लोक प्रशासन में तुलनात्मक अध्ययन के साथ लोक प्रशासन का सम्बन्ध तुलनात्मक लोक प्रशासन से जुड़ गया, जिसके फलस्वरूप विकास प्रशासन का नजरिया सामने आया। विकास प्रशासन तथा प्रशासनिक विकास एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। विकास प्रशासन एक शास्त्रीय विषय है (अकादमिक) जिसके कुछ सिद्धान्त हैं, लेकिन प्रशासनिक विकास एक प्रक्रिया है जो विकास प्रशासन पर टिकी हुई है। एडवर्ड वाइजनर ने सबसे पहले विकास प्रशासन की अवधारणा प्रस्तुत की। विकास प्रशासन लोक प्रशासन का नया आयाम है। आर्थिक, राजनीतिक तथा सामाजिक व्यवस्थाओं के बदलते स्वरूपों ने विकास प्रशान को जन्म दिया है। वाइडनर का यह कथन समझाने के योग्य है कि ‘‘विकास एक मनः स्थिति, प्रवृत्ति एवं दिशा है।’’ विकास बहुआयामी होता है और अब स्थिति यह है कि विकास, विकास प्रशासन की गति पर टिका हुआ है। विकास प्रशासन आधुनिकीकरण तथा नवीनीकरण में विश्वास रखता है। उसके कुछ निश्चित लक्ष्य हैं, उसकी अपनी प्रकृति है तथा उसका क्षेत्र बहुत विस्तृत है। इसी तरह विकास प्रशासन के कुछ घटक हैं तथा उसके अपने कुछ लक्ष्य हैं। इन सारी बातों ने विकास प्रशासन का अपना एक सिद्धान्त और मॉडल तैयार किया है, जिस पर आज सामान्य प्रशासन टिका हुआ है।

लेकिन यहाँ यह स्वीकार करना पड़ेगा कि प्रशासन, विकास प्रशासन तथा प्रशासनिक विकास की अवधारणाऐं एक- दूसरे से इतनी उलझ गई हैं कि उन्हें सुलझाना कभी-कभी कठिन लगता है।

भाग-2 डाउन्स मॉडल

12.11 ऐन्थानी डाउन्स: एक परिचय(Anthony Downs : His Life and Work)

ऐन्थॉनी डाउन्स को एक अर्थशास्त्री, राजनीतिशास्त्री तथा एक प्रशासनिक चिन्तक की हैसियत से जाना जाता है। उसका जन्म 21 नवम्बर 1930 को वांशिंगटन, संयुक्त राज्य अमेरीका में हुआ। प्रारम्भिक शिक्षा कार्टेलन कॉलिज तथा स्टेनफोर्ड विश्वविद्यालय में हुई। उसका अध्ययन-क्षेत्र पब्लिक एकोनॉमी तथा राजनीति विज्ञान था लेकिन मूल रूप से वह एक अर्थशास्त्री था और अर्थशास्त्र के नजरिये से ही उसने लोक प्रशासन तथा राजनीति का विश्लेषण किया। उसके सिद्धान्तों पर जोजेफ शुमपीटर, जूलियस मारगोलिस, के0 नेथ, जे0 ऐरो तथा मैक्स वेबर का गहरा प्रभाव पड़ा। उसका सर्वाधिक महत्वपूर्ण ग्रन्थ ‘An Economic Theory of Democracy’ (1957) है। इस ग्रन्थ में उसने लोकतंत्रीय व्यवस्था में लोगों के मतदान रीति(Voting Pattern) का विश्लेषण किया है और वह इस नतीजे पर पहुँचा है कि कुल मिलाकर अकेले या सामुहिक रूप से मतदाता स्वःहित(Self-Interest) से प्रेरित होकर मतदान करते हैं। उसके इस नतीजों को पश्चिमी लोकतंत्रों में बहुत मान्यता मिली। डाउन्स लोक प्रशासन का भी विद्यार्थी रहा था। इस क्षेत्र में उसका योगदान अद्वितीय है। उसने अपने शोध प्रबन्ध ‘Inside Bureaucracy’ (1967) में नौकरशाही से सम्बन्धित अपना सिद्धान्त प्रस्तुत किया, जिसको ‘डाउन्स मॉडल’ कहा जा सकता है, यद्यपि वह अपने सिद्धान्त को मॉडल कहना पसंद नहीं करता है। इस प्रबन्ध में उसने मूल रूप से ‘ब्योरोज’(Bureaus) का विश्लेषण निर्णय-निर्माण के सन्दर्भ में किया है। डाउन्स ने अमरीका के प्रसिद्ध संस्थानों में उच्च पदों पर काम किया, जिनमें Brooking Institutions, Rand Corporation हैं। उसने लगभग

24 पुस्तकों तथा 500 से अधिक लेखों एवं शोध प्रबन्धों की रचना की। 86 वर्ष की आयु में उसका देहान्त हो गया।

12.12 डाउन्स की नौकरशाही की अवधारणा(Downs' Concept of Bureaucracy)

एन्थॉनी डाउन्स ने अपने शोध प्रबन्ध(Inside Bureaucracy, 1964) में नौकरशाही पर अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट किया है। उसकी नजर में यह विडम्बना की बात है कि नौकरशाही को नफरत से देखा जाता है, जबकि ब्योरोज (Bureau) विभाग या कार्यालय विश्व के प्रत्येक देश में सर्वाधिक महत्वपूर्ण संस्थाऐं हैं। वे रोजगार का एक बड़ा स्रोत हैं और निर्णय-निर्माण का एक बड़ा साध्य हैं। इस तरह डाउन्स ने नौकरशाही पर अपने चिन्तन में 'ब्योरेज' को अपने अध्ययन का केन्द्रीय विषय बनाया है तथा उन्हें 'निर्णय-निर्माण'(decision-making) प्रक्रिया के सन्दर्भ में लिया है, क्योंकि उसकी नजर में ब्योरोज ही वे संस्थाऐं हैं, जो निर्णय-निर्माण के माध्यम से विश्व के आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक और यहाँ तक कि नैतिक जीवन की दिशाओं को तैय करती हैं। यहाँ यह याद रखना चाहिये कि यद्यपि डाउन्स 'नौकरशाही' का विश्लेषण करना चाहता है, लेकिन आज नौकरशाही एक नापसंदीदा शब्द है, इसलिये वह नौकरशाही के स्थान पर 'ब्योरोज' और 'आफिशियल्स'(Officials) कहना पसंद करता है।

12.12.1 ब्योरोज और निर्णय-निर्माण(Bureaus and Decision-making)

मार्श, साइमन, ब्लाउ तथा स्कॉट के 'औपचारिक संगठनों' के नजरिये से प्रभावित होकर डाउन्स ने अपना नौकरशाही सम्बन्धी निर्णय-निर्माण सिद्धान्त पूर्वानुमयता के उद्देश्य से प्रस्तुत किया है। उसका यह सिद्धान्त उस मौलिक परिकल्पना पर आधारित है कि नौकरशाही वाले अधिकारी, समाज के अन्य प्रतिनिधियों के समान अपने निजी हितों से प्रेरित होते हैं। इस निष्कर्ष पर डाउन्स- एडम स्मिथ (अर्थशास्त्री), साइमेल, ट्रूमेन, राइकर, साइमन (राजनीतिशास्त्री) इत्यादि से प्रभावित है। उसके नौकरशाही सम्बन्धी निर्णय-निर्माण सिद्धान्त के चार भाग हैं- शब्दावली की परिभाषा, अनेक केन्द्रीय परिकल्पनाऐं, एक काल्पनिक पर्यावरण तथा पर्यावरण पर लागू परिकल्पनाओं पर आधारित प्रस्ताव।

12.13 ब्योरोज की परिभाषा तथा नौकरशाहों की प्रकृति(Definition of Bureaus and Nature of Bureaucrats)

डाउन्स के अनुसार ब्योरोज संगठन का एक विशिष्ट प्रारूप है। इसलिये पहले संगठन को परिभाषित करना जरूरी है। उसकी नजर में संगठन दो या दो से अधिक व्यक्तियों की सजग समन्वित गतिविधियों या शक्तियों की एक व्यवस्था है। इस व्यवस्था को अस्तित्व में लाने का कारण एक विशिष्ट उद्देश्य की पूर्ति करना है। इस तरह एक संगठन एक ऐसा ब्योरो है जिसकी चार मौलिक विशेषताऐं हैं-

1. यह इतना बड़ा है कि सर्वोच्च स्तर के सदस्य व्यक्तिगत तौर पर संगठन के आधे से कम लोगों को जानते हैं।
2. इसके अधिकतर सदस्य पूर्णकालिक कर्मचारी होते हैं, जो अपनी आय के लिए संगठन की नौकरी पर निर्भर रहते हैं।
3. संगठन में कर्मचारियों की उपलब्धियों के आधार पर उनको सेवा में स्थायित्व और प्रोन्नति का अवसर मिलता है, भले ही यह बात सैद्धान्तिक हो।
4. संगठन के द्वारा होने वाले निर्गतन(Output) का किसी बाजार में परोक्ष या प्रत्यक्ष रूप से आंकलन नहीं किया जाता है।

ब्योरोज से सम्बन्धित इन चार विशेषताओं से जो तथ्य सामने आते हैं, उनका सार यह है कि बड़ा आकार होने के कारण ब्योरोज (विभाग) निर्वैव्यक्तिकरण की ओर अधिक बढ़ते हैं और परिणामस्वरूप अनेक प्रशासनिक

समस्याओं का सामना करते हैं। पूर्णकालिक रोज़गार का अर्थ है कि ब्योरोज के सदस्य नीम हकीम (अल्प ज्ञानी) नहीं होते हैं, वे अपने कार्य में दक्ष तथा उसके प्रति बफादार होते हैं। उनका बाजार मूल्य(Market Value) होता है, वे प्रतिस्पर्धा में भागीदार होते हैं। जहाँ तक कर्मचारी उपलब्धियों से सम्बन्धित प्रोन्नति के मापदण्डों या नीतियों का प्रश्न है, सच यह है कि कर्मी(Personnel) पूरी तरह अपने वरिष्ठों पर निर्भर रहते हैं। नतीजा यह होता है कि कर्मी अपने व्यवहार को वरिष्ठों की मर्जी के अनुसार तथा उपलब्धियों को पाने की जिज्ञासा के अनुरूप ढालने का प्रयास करते हैं और अन्त में, ब्योरोज के कार्यों का बाजार में मूल्यांकन न होने का कारण लाभ विहीन नजरिया है। अर्थात् उनके द्वारा निष्पादित कार्य ध्येय की पूर्ति के लिए होते हैं न कि लाभ के लिए।

डाउन्स ब्योरोज की अपनी इस परिभाषा में सरकारी विभागों के अतिरिक्त गैर-सरकारी संस्थाओं जैसे रोमन कैथेलिक चर्च, कैलीफोरनिया विश्वविद्यालय, दि न्यूयार्क पोर्ट अथारिटी तथा चायनीज कम्यूनिस्ट आर्मी जैसे संगठनों को ब्योरोज का दर्जा देता है।

यहाँ डाउन्स यह भी स्पष्ट करता है कि नौकरशाह मात्र वे व्यक्ति नहीं होते हैं जो ब्योरोज़ के लिए काम करते हैं। डाउन्स ब्योरोज को भी परिभाषित करता है। उसके अनुसार यह वह लोग हैं, जो 1. एक बड़े आकार के संगठन के लिए काम करते हैं। 2. उस संगठन से वेतन प्राप्त करते हैं, जो उनकी आय का एक बड़ा भाग होता हैं। 3. उनके खूबी से काम करने की योग्यता(Performance) और उपलब्धियों के आधार उनकी भर्ती, पदोन्नति और सेवा अवधि का निर्धारण होता है। इस तरह कोई भी अधिकारी जिस पर उक्त चार बातें लागू होती हों भले ही वह कहीं भी काम करता हो ''नौकरशाह'' कहलाया जा सकता है।

यहाँ यह याद रखना होगा कि डाउन्स अपने विश्लेषण में शब्द ''नौकरशाह''(Bureaucrat) का प्रयोग नहीं करना चाहता। इसलिए नहीं कि यह शब्द अनादरपूर्ण है, लेकिन इसलिये कि इसका प्रयोग लोगों को अपमानजनक लगता है। डाउन्स नौकरशाह के स्थान पर शब्द ''अधिकारी''(Official) का प्रयोग करता है।

12.14 निर्णय निर्माण-सिद्धान्त और परिकल्पनाऐं(Decision-Making Theory and Hypothesis)

ब्योरोज के सन्दर्भ में डाउन्स का निर्णय-निर्माण सिद्धान्त अनेक केन्द्रीय परिकल्पनाओं पर आधारित है। यह इस प्रकार है-

अधिकारी (नौकरशाह) अपने ध्येयों की पूर्ति तर्क संगत तरीके से करते हैं। अर्थात् अपनी अधिकतम क्षमताओं और योग्यताओं के अनुसार सीमित साधनों तथा सूचना के दायरे में रहकर वे कार्यों का निबटारा करते हैं। इस तरह वे 'उपयोगिता को बढ़ाने वाले'(Utility maximizers) होते हैं। अर्थात् कम से कम लागत और समय में अधिकतम उपलब्धि उनका लक्ष्य होता है।

अधिकारियों के कुछ जटिल लक्ष्य होते हैं। इनमें शक्ति, आय, प्रतिष्ठा, सुरक्षा, सुगमता या सुविधा, वफादारी (विचार के प्रति, संस्था के प्रति, या राष्ट्र के प्रति), अति श्रेष्ठ कार्य से गर्व और जनहित के लिए सेवा भाव। इनको प्राप्त करना अधिकारियों के लक्ष्य होते हैं। कुछ अधिकारियों के बहुत छोटे लक्ष्य भी होते हैं। उदाहरण के लिये- 1. विशुद्ध आत्म-हितकारी अधिकारी जो ऐसे लक्ष्यों के लिये काम करते हैं जो उनको लाभ पहुचाये न कि ब्योरेज या समाज को। ऐसे अधिकारी दो प्रकार के होते हैं, पहला- पर्वतारोही(Climbers) यहाँ अर्थ पर्वत से चढ़ने से नहीं है, अर्थात् वे अधिकारी जो अपनी शक्ति, आय और प्रतिष्ठा को दिन-रात बढ़ाये रखना अपना लक्ष्य समझते हैं। यह चालाकी से प्रोन्नति, अपना स्तर, अपनी स्थिति को बुलन्दियों तक ले जाते हैं। दूसरा- अनुदार(Conservers) यह अपनी सुरक्षा और सुविधा को बढ़ाने में लगे रहते हैं। यह यथास्थिति में विश्वास रखते हैं। यह परिवर्तन को अपनी स्थिति आय, प्रतिष्ठा के लिये खतरा समझते हैं। इसीलिए यह नवीनीकरण (Innovation) का विरोध करते हैं। 2. मिश्रित-प्रयोजन (Mixed-motive) अधिकारी- ये वे अधिकारी हैं, जो आत्म-हितों को जनहित मूल्यों से मिला लेते हैं। ऐसे अधिकारियों के तीन वर्ग हैं, पहला- उत्साही या जोशीले(Zealots), दूसरा- समर्थक(Advocates)

और तीसरा- राजनीतिज्ञ(Statesmen)। उत्साही, संकुचित नीतियों के प्रति वफादार होते हैं लेकिन ऐसी नीतियाँ जो उनको लाभ पहुँचाये। समर्थक या वकालत करने वाले विस्तृत नीतियों का समर्थन करते हैं और राजनीतिज्ञ, राष्ट्र या समाज के प्रति वफादार होते हैं। लेकिन यह तीनों वर्ग कहीं न कहीं अपने स्वार्थ की पूर्ति करते हैं। शक्ति प्राप्त करना, प्रभावित करना तथा अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाना इनका विशिष्ट लक्ष्य होता है।

12.15 डाउन्स की पर्यावरण की अवधारणा(Down's Concept of Environment)

डाउन्स के सिद्धान्त में अधिकारी जिस जगत में काम करते हैं, वह यथार्थवादी है। वह इस यथार्थवादी स्थिति को 'पर्यावरण' कहता है। इस पर्यावरण की अनेक शर्तें हैं, जो इस प्रकार हैं-

1. सूचना पर्यावरण की एक अनिवार्य शर्त है। संगठन के संचालन के लिये सूचना का आदान जरूरी है, लेकिन सूचना का आदान महँगा होता है, क्योंकि यह आँकड़ों को प्राप्त करने में देरी लगाता है, जोखिम माँगता है, धन भी व्यय होता है।
2. निर्णय-निर्माताओं की क्षमताऐं सीमित होती हैं। वे निर्णय-निर्माण में अधिक समय नहीं लगा सकते। उनके सामने निर्णय लेते समय अनेक मुद्दे होते हैं और जो आँकड़े उनको मिलते हैं, आवश्यक नहीं वे उनके लिये उपयोगी हों।
3. यद्यपि सूचना प्राप्त करके कुछ अनिश्चितता दूर की जा सकती है, लेकिन एक सीमा के बाद मूल अनिश्चितता निर्णय निर्माण में बांधा बनती है। इस तरह डाउन्स जिस पर्यावरण की बात करता है, वह भौगोलिक नहीं है, बल्कि संगठन का आन्तरिक पर्यावरण है जो, निर्णय-निर्माण की प्रक्रिया को प्रभावित करता है। सार यह है कि संगठन या ब्योरोज में निर्णय-निर्माण के लिये बाहर से सूचनाऐं आती हैं, जिनका सम्बन्ध आँकड़ों से होता है।

12.16 ब्योरोज की पदसोपनीय संरचना(Hierarchical Structure of Bureaus)

यद्यपि डाउन्स, वेबर के आदर्श नौकरशाही के मॉडल से पूरी तरह सहमत नहीं है, लेकिन उसने वेबर के पदसोपनीय सिद्धान्त को स्वीकार किया है। वह पदसोपानीय संरचना को ब्योरोज का अनिवार्य कारक मानता है। उसके अनुसार दो कारणों से ब्योरोज की पदसोपनीय संरचना होनी चाहिए। प्रथम, ऐसी संरचनाऐं उन टकरावों को रोकने के लिए जरूरी हैं, जो बड़े संगठनों में समन्वित गतिविधियों की उपज होती है। द्वितीय, ब्योरोज अधिकारियों के विभिन्न ध्येय, यथार्थ को देखने के विभिन्न नजरिये, उनके व्यवहार तथा उनकी तकनीकी अर्हताऐं टकराव का कारण होते हैं। डाउन्स के अनुसार इन टकरावों को रोकने के लिये ब्योरोज की कोई यांत्रिकी होनी चाहिये, जो चन्द वरिष्ठों के हाथों में हो। इस स्थिति को प्राप्त करने का साधन केवल पदसोपनीयता ही हो सकती है। जैसे-जैसे संगठन बड़े से बड़ा होता जाये, वरिष्ठों के सत्ता स्तर बनने चाहिये, ताकि वे निम्न स्तर के टकरावों को दूर कर सकें।

पदसोपानीय संगठन के पक्ष में दूसरा तर्क है, प्रभावशाली संचार की आवश्यकता। संगठन के सदस्यों में एक-दूसरे के व्यवहार या कार्य-विधि की जानकारी होना अनिवार्य है, लेकिन सब अन्य सब की जानकारी रखें, यह सम्भव नहीं है। इसीलिये एक यांत्रिकी होनी चाहिए जो केवल पदसोपानीय व्यवस्था ही प्रदान कर सकती है। डाउन्स ने इस विषय पर विस्तार से चर्चा की है तथा पदसोपानीयता को संगठन के वास्तविक साध्य का एक प्रभावशाली साधन माना है। डाउन्स के अनुसार पद सोपानीयता के अनेक रूप हो सकते हैं। इनमें दो बहुत महत्वपूर्ण हैं। पहला- लम्बे पदसोपान (Tall hierarchies) जिनमें नियंत्रण के विस्तार तंग, लेकिन पद(Levels) अनेक होते हैं। दूसरा- 'समतल' पदसोपान (Flat hierarchies) जिनमें नियंत्रण के विस्तार चौड़े और पद कम होते हैं।

1. लम्बे पद सोपानों की आवश्यकता वहाँ होती है, जहाँ संगठनों में टकराव की सम्भावना अधिक होती है। ऐसे संगठन बड़े विषम होते हैं। उनको परिभाषित करना कठिन होता है। उनके पर्यावरण अनिश्चित होते हैं।

उनके कर्मी बहुत विशिष्ट होते हैं। यहाँ तकनीकी नवीनीकरण की प्रक्रिया तीव्र होती है। अनेकता और भिन्नता अधिक होती है।

2. समतल पदसोपान वहाँ अनिवार्य है, जहाँ टकराव की सभावना कम होती है। समतल पदसोपान ऐसे ब्योरोज की जरूरत हैं, जहाँ साधारण, सरल और परिभाषित प्रकार्य हों। जहाँ स्थायी पर्यावरण हो तथा कम विशिष्टता प्राप्त कर्मी हों। जहाँ आन्तरिक तकनीकों में स्थायित्व हो तथा समानुरूप सदस्यता हो।

समतल पद सोपान व्यवस्था विकेन्द्रीकरण की विशेषता है लेकिन लम्बे पदसोपान पूरी तरह केन्द्रित ब्योरोज की विशेषता होती है।

12.17 ब्योरोज पदसोपानों में संचार और नियन्त्रण की समस्याऐं(Problems of Communication are Control in Bureaus hierarchy)

ब्योरोज पद सोपानों में जो समस्याऐं पैदा होती हैं, डाउन्स उन्हें संचार (Communications) और नियंत्रण की समस्या कहता है। उसके अनुसार आधुनिक ब्योरोज की विषम पदसोपानीय व्यवस्थाऐं आँकड़ा-संकलन पद्धतियों के रूप में काम करती हैं और उनकी बनावट कुछ ऐसी होती है कि वह केवल अनिवार्य सूचना को उच्चस्तरीय अधिकारियों तक पहुँचाती हैं ताकि वे महत्वपूर्ण नीतियों का चयन कर सकें। पदसोपान के प्रत्येक स्तर पर सूचनाओं की काटछाँट होती है और वे ही सूचनाऐं निर्गत होती है जो निर्णय निर्माण के लिये अति आवश्यक होती हैं।

ब्योरोज पदसपोनों में दूसरी समस्या निर्देशित-विकृतिकरण(Directive-Distortion) या तोड़ने-मरोड़ने की है। डाउन्स के अनुसार ब्योरो पदसोपान में आदेश तथा निर्देश नीचे की ओर जाते हैं। होता यह है कि उच्चतम अधिकारी सम्पूर्ण ब्योरो के लिए एक लक्ष्य निर्धारित करता है, क्योंकि उसके पास न तो समय होता है और न अनिवार्य सूचना, इसीलिये वह केवल सामान्य(General) खाका प्रस्तुत करता है। इस खाके की बारीकियाँ मातहतों(अधीन) पर छोड़ दी जाती है। मातहत उस सामान्य खाके को हर स्तर पर अधिक विशिष्ट बनाते चलते हैं। यहाँ उन्हें औचित्य के प्रयोग की छूट होती है। लेकिन यहाँ होता यह है कि मातहत औचित्य की शक्तियों का प्रयोग अक्सर अपने निजी हित के लिए करने लगते हैं, यद्यपि वे औपचारिक कार्यो की पूर्ति भी करते हैं। अतः ऊपर से निचले स्तर तक विकृतीकरण (Distortion) की समस्या पैदा होने लगती है। यहाँ तक कि निर्धारित तथा निर्देशित लक्ष्य अधिक से अधिक विकृत हो जाता है। उच्चतर अधिकारी के मौलिक ध्येय में निम्न स्तर के अधिकारियों की इच्छाऐं शामिल हो जाती हैं और इस तरह लक्ष्य का स्वरूप बदल जाता है। अपने इस विश्लेषण में डाउन्स जिन नतीजों पर पहुँचता है, वे इस प्रकार हैं-

1. बड़े संगठन में मातहतों के व्यवहार को उच्च स्तर के अधिकारी नियन्त्रित नहीं कर सकते। यहाँ टकराव की सम्भावना बनती है, विशेष रूप से ध्येयों के मामले में। इस तथ्य से यह निष्कर्ष निकलता है कि ब्योरोज की प्रत्येक इकाई पर प्रभावशाली नियन्त्रण नहीं रखा जा सकता। यहाँ डाउन्स दो नतीजों पर पहुँचता है, पहला- किसी ब्योरो को संगठित करने का कोई प्रभावशाली तरीका नहीं है। बड़े संगठनों में नियन्त्रण की समस्या बड़ी जटिल होती है। दूसरा- प्रत्येक ब्योरो के नेता(leaders of organisation) बाहरी जाँच-पड़ताल से डरते हैं। जाँच-पड़ताल से किसी ऐसे व्यवहार का पता लगता है जिस से ब्योरो के औपचारिक लक्ष्य के साथ टकराव होना अनिवार्य बन जाता है, लेकिन जाँच-पड़ताल के डर से ब्योरोज में पारस्परिक टकराव की सम्भावना कम हो जाती है। यह ब्योरोज के जीवित रहने के लिये जरूरी है। इसके अतिरिक्त जाँच-पड़ताल का डर ब्योरोज के अधिकारियों को काम या संगठन के प्रति ज्यादा वफादार बना देता है।

2. डाउन्स पदसोपानों में संचार और नियन्त्रण की समस्याओं से दूसरा नतीजा यह निकालता है कि किसी भी ब्योरो से 'फालतू'(Waste) को दूर करना नितांत गैर-जरूरी है। 'फालतू' से यहाँ अभिप्राय ऐसे कामों, सूचनाओं, आँकड़ों इत्यादि से हैं जो समय को बर्बाद करते हैं या अनुपयोगी होते हैं। डाउन्स का कहना है कि कोई भी मानव संगठन शत-प्रतिशत अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकता। इसलिये एक सीमा तक 'फालतू' अपरिहार्य है। इससे यह नतीजा भी निकाला जा सकता है कि प्रत्येक ब्योरो पूर्ण नहीं है तथा संगठन का प्रत्येक व्यवहार अनिवार्य नहीं है।

12.18 ब्योरोज के गतिज: उनका जीवन चक्र(The Dynamics of Bureaus : Their Life Cycle)

डाउन्स अपने सिद्धान्त में ब्योरोज की गतिशीलता या गतिज(Dynamics) की बात करता है और यह समझाने का प्रयास करता है कि किस तरह ब्योरोज अस्तित्व में आते हैं। उसके अनुसार ब्योरोज पैदा नहीं होते, वे बनाये जाते हैं। इनके बनाने वाले कुछ उत्साही(Zealots) लोग होते हैं, जो एक विशेष विचार को पर्याप्त सहयोग के माध्यम से ब्योरोज के रूप में साकार करते हैं। ब्योरोज वास्तव में आधुनिक समाजों की देन है, क्योंकि ऐसे समाजों में उत्साहियों को अपने 'विचार'(Idea) साकार करने का मौका और प्रोत्साहन मिलना आसान होता है। ब्योरोज के अस्तित्व में आने के लिये दूसरी शर्त उचित माहौल या पर्यावरण का होना है। अर्थात्, अनुकूल उदित परिस्थितियाँ (Exogenous conditions) नये ब्योरोज के लिये अपरिहार्य हैं। इस तरह 'उत्साही' अनुकूल पर्यावरण में अपने विचारों को ब्योरोज के रूप में साक्षात करते हैं। डाउन्स के अनुसार उत्साही चार तरीकों(Ways) से ब्योरोज का निर्माण करते हैं-

करिश्मे का उपयोग करके, जिसका समर्थन मैक्स वेबर ने भी किया है। यहाँ उत्साहित करिश्माई नेता होते हैं, जो अपनी निजी क्षमताओं को ब्योरोज में बदल देते हैं।

एक स्थापित ब्योरो को दो भागों में बाँट कर यहाँ उत्साही किसी स्थापित ब्योरो के सदस्य होते हैं, लेकिन वे उसी ब्योरो में एक पृथक अनुभाग स्थापित करके अपने विचार को मूर्त रूप देते हैं। यहाँ तक कि यह अनुभाग स्वयं एक स्वायत ब्योरो बन जाता है, क्योंकि इसको बाहरी समर्थन मिलता है।

उत्साहियों द्वारा अपने नये विचार को साकार करने के लिये उद्यमकर्ता-सम्बन्धी(Entrepreneurial) विकास का सहारा लेना पड़ता है। यहाँ अर्थ यह है कि एक नया उद्यमी अपनी योजना को साकार करने के लिये जिस तरह जोखिम उठाता है वैसे ही उत्साही नये ब्योरोज के निर्माण के लिये जोखिम उठाते हैं। वे पर्याप्त सहयोग प्राप्त करते हैं और अपना सपना साकार करते हैं।

क्रियेशन एक्स निहिलो(Creation ex nihilo) जैसी शब्दावली का प्रयोग करके डाउन्स ने ब्योरोज की उत्पत्ति की एक अस्पष्ट अवधारणा प्रस्तुत की है, जो उलझन में डालने वाली है। उसका कहना है कि कुछ अन्य सामाजिक अभिकरणों(Agencies) के शक्तिशाली सदस्य किन्हीं प्रकार्यों को करने के लिए एक संगठन की आवश्यकता महसूस करते हैं। यह संगठन उत्साहियों की परिधि से बाहर होता है, लेकिन कुछ समय के बाद उत्साही इसके प्रति आकृषित होते हैं और जो लोग इस संगठन को बनाते हैं, वह यह महसूस करते हैं कि यदि वे उत्साहियों के समान काम करते हैं तो उनको बड़ी सफलता मिलेगी। लेकिन यह सदस्य किसी प्रकार के नियमों, अधिनियमों, परम्पराओं आदि की परवाह नहीं करते हैं, इसीलिये डाउन्स इनको 'ex nihilo' कहता है, जिसका अर्थ है कुछ नहीं अर्थात् कोई नियम नहीं, कोई परम्परा नहीं।

12.19 ब्योरोज व्यवहार पर आयु का प्रभाव

डाउन्स के अनुसार ब्योरोज जितने पुराने (लम्बी आयु के) होते जाते हैं उतनी ही उनकी निपुणता बढ़ती जाती है और वे बाहरी सहायता, सहयोग और संसाधन जुटाकर अस्तित्व में बने रहते हैं। आयु के ब्योरोज पर जो प्रभाव पड़ते हैं वे निम्न प्रकार के हाते हैं-

1. ब्योरो अपने काम को निपुणता से करना सीखता है और उसमें अधिक क्षमता का संचार होता है। अधिकारी इस क्षमता का प्रयोग अधिक सेवाऐं प्रदान करने में करते हैं।
2. ब्योरोज अधिक प्रभावी नियमों और अधिनियमों को विकसित करते हैं। नई परिस्थितियों का सामना करने की ब्योरोज में शक्ति बढ़ती है।
3. ब्योरोज के उच्च अधिकारियों के ध्येय संगठन को बनाये रखने तथा विस्तृत करने में बदल जाते हैं। इस तरह वे प्रशासनिक मामलों में ज्यादा ध्यान देते हैं। इस लिए ब्योरोज की दीर्घ आयु ध्येय में लचीलापन लाती है।
4. अधिकारियों का महत्व ब्योरोज में परिवर्तित होता रहता है। उत्साहियों की शक्ति और प्रभाव घट जाती है, क्योंकि वे कमजोर प्रशासक होते हैं। अनुदारवादियों की शक्ति बढ़ जाती है, क्योंकि वे अच्छे प्रशासक होते हैं तथा संगठनात्मक उद्देश्यों को बदलते में लचीले होते हैं।
5. एक ब्योरो जितना पुराना और बड़ा होता जाता है उतना ही वह ऊर्जाहीनता का शिकार होता है। इसका नतीजा यह निकलता है कि दीर्घ आयु ब्योरोज नियमों के बारे में कम लचीले और ध्येयों के मामले में अधिक लचीले हो जाते हैं।

डाउन्स के सिद्धान्त का व्यवहारिक पहलू यह है कि, पहला- नौकरशाही या अधिकारी तन्त्रीय निर्णय-निर्माण का सिद्धान्त ब्योरोज कार्य-विधि को अच्छे ढंग से समझने में सहायता करता है तथा दूसरा- यह सिद्धान्त ब्योरोज के व्यहवार के बारे में अधिक सटीक भविष्यवाणियाँ करने में सक्षम होता है। डाउन्स ने इस सिद्धान्त का खाका ब्योरोज के यथार्थ जीवन से सम्बन्धित व्यवहारिक भविष्यवाणी करने के लिये तैयार किया है। इस सिद्धान्त के आधार पर ब्योरोज के कुछ आन्तरिक तत्व और ब्योरोज के प्रकार्यों के अनेक पहलू हमारे समाने आते हैं जो निम्न हैं-

आन्तरिक तत्व	ब्योरोज प्रकार्यों के पहलू
संचार व्यवस्था।	स्पष्टता जिससे इसके प्रकार्य परिभाषित किये जा सकते हैं।
सूचना संकलन पद्धति।	वह सरलता जिससे ब्योरोज़ की क्रिया के नतीजे देखे जा सकते हैं तथा उनके प्रभाव आँके जा सकते हैं।
सत्ता का बटबारा, औपचारिक तथा अनौचारिक दोनों।	ब्योरो के आन्तरिक तकनीकी पर्यावरण का स्थायित्व।
संसाधनों को बाँटने की पद्धति।	ब्योरो के बाहरी पर्यावरण का स्थायित्व बारे में रुख।
ब्योरो के लक्ष्य तथा कार्यों को परिभाषित करना।	ब्योरो के विभिन्न प्रकार्यों को अन्तर्निर्भरता।
नवीनीकरण का तरीका और नवीनीकरण के बारे में रूख।	प्रकार्यों की विषमता।
प्रकार्यो का आन्तरिक पृथककीरण।	प्रकार्यों का क्षेत्र।
आकार, तकनीकी पद्धति, सामाजिक प्रकार्यों के सन्दर्भ में स्थायित्व।	ब्योरो का उसके पर्यावरण में शक्ति निर्धारण।

12.20 मूल्यांकन

नौकरशाही पर मैक्स वेबर से लेकर आज तक बहुत कुछ लिखा गया है। नकारात्मक भी और सकारात्मक भी। लेकिन शायद ही कोई ऐसा प्रशासनिक चिन्तक हो, जिसने नौकरशाही की अनिवार्यता को स्वीकार न किया हो।

आलोचकों ने नौकरशाही की आलोचना की है लेकिन वे यह बताने में असफल रहे कि इस तन्त्र का विकल्प क्या है।

एन्थोनी डाउन्स उन चिन्तकों में से एक हैं, जो नौकरशाही की अनिवार्यता को मौजूदा राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक समाज के विकास की एक अनिवार्य शर्त मानता है। यद्यपि डाउन्स ने मैक्स वेबर के नौकरशाही सम्बन्धी नजरिये को स्वीकार किया है, लेकिन वह उसके आदर्श प्रकार के मॉडल को स्वीकार करने से कतराता नजर आता है। शायद इसलिए कि वह अपनी एक अलग पहिचान बनाये रखना चाहता है। लेकिन वेबर का नौकरशाही का मॉडल एक ऐसा जाल है, जिसमें जो एक बार फँस गया उसका मुक्त होना बहुत कठिन है। ऐसा ही कुछ डाउन्स के साथ हुआ है। उसने अपने सिद्धान्त में मैक्स वेबर का वह तथ्य स्वीकार किया है, जो वेबर के मॉडल का केन्द्रीय बिन्दु है। अर्थात् प्रशासनिक संगठन की पदसोपानीय व्यवस्था।

डाउन्स के विश्लेषण की इकाई 'ब्योरो' (विभाग) है, लेकिन वह ब्योरोज के सदस्यों को नौकरशाह न कहकर 'अधिकारी'(Officials) कहता है। यहाँ उसके दृष्टिकोण में विरोधाभास नजर आता है। वह नौकरशाही के आलोचकों की भर्तसना करता है और स्वयं वह शब्द ''नौकरशाही'' या ''नौकरशाह'' का प्रयोग नहीं करता है। ऐसा इसलिये कि शब्द ''नौकरशाह'' बदनाम है। डाउन्स का रुजहान निर्णय-निर्माण की ओर है। यहीं वह अपने सिद्धान्त की मौलिकता बनाये रखता है।

डाउन्स यह स्वीकार करने से हिचकिचाता है कि नौकरशाही में कुछ मानवीय दुर्बलताऐं हैं। लेकिन वह इस परिकल्पना के साथ आगे बढ़ता है कि नौकरशाही के अधिकारी अपने प्रशासन में तथा निर्णय लेने में अपने निजी हितों से प्रेरित होते हैं। यहाँ वह यह भूल जाता है कि यह निजी हित ही नौकरशाही को विकृत करते हैं। डाउन्स ने ब्योरोज की जो परिभाषा दी है उसमें उसने वे तत्व सम्मिलित किये हैं जिनको वेबर ने अपने आदर्श प्रकार के मॉडल में दर्शाया है। इसलिये उसकी परिभाषा में नया कुछ भी नहीं है। डाउन्स ने ब्योरोज का विश्लेषण निर्णय-निर्माण के सन्दर्भ में किया है। यह उसका मौलिक विचार नहीं है। निर्णय-निर्माण का सिद्धान्त रिचर्ड सी0 स्नाइडर ने विकसित किया था। बाद में इस दृष्टिकोण का समर्थन बर्क, स्पेन, डेविड ईस्टन, और विलियम राइकर ने खुलकर किया। डाउन्स का योगदान यह है कि उसने शुद्ध प्रशासनिक दृष्टि से निर्णय-निर्माण को अपने सिद्धान्त का आधार बनाया। लेकिन उसके द्वारा निर्णय-निर्माण की प्रक्रिया में लगे अधिकारियों का जो विश्लेषण पर्वतारोही(Climbers) तथा अनुदार(Conservers) के रूप में किया गया है वह मात्र काल्पनिक है। यथार्थ से उसका कोई लेना देना नहीं है।

लेकिन डाउन्स का 'पर्यावरण' सम्बन्धी विश्लेषण यथार्थ के काफी समीप है। सूचना की उसकी अवधारणा तर्क-संगत है। इसी तरह डाउन्स ने ब्योरोज की पदसोपनीय संरचना की जो अवधारणा प्रस्तुत की है उसमें पर्याप्त यथार्थ है। ब्योरोज में होने वाले आन्तरिक टकरावों को दूर करने के लिये वह पदसोपान को एक यांत्रिकी के रूप में लेता है जो अनिवार्य है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि डाउन्स ने ब्योरोज की निर्णय-निर्माण की भूमिका का विश्लेषण करके नौकरशाही को एक नया आयाम देने का प्रयास किया है, भले ही जिस शब्दावली का इस विश्लेषण में प्रयोग किया है उस से सिद्धान्त को स्पष्टता न मिली हो।

अभ्यास प्रश्न-

1. विकास प्रशासन कितने 'P' पर टिका हुआ है?
2. विकास प्रशासन का पहला सिद्धान्तकार कौन है?
3. विकास प्रशासन का घटक नहीं है?
4. 'विवेकशीलता' तथा 'विवर्तन' की अवधारणा किस चिन्तक की देन है?
5. डाउन्स के शोध प्रबन्ध का शीर्षक क्या है?

6. डाउन्स नौकरशाह को क्या कहता है?
7. डाउन्स किस इकाई का विश्लेषण करता है?
8. डाउन्स के सिद्धान्त की मूल्य अवधारणा क्या है?
9. कौन सा विचार डाउन्स का नहीं है?

12.21 सारांश

1. इस इकाई में विकास का सम्बन्ध आर्थिक, सामाजिक या राजनीतिक विकास से नहीं है। यहाँ विषय विकास बनाम प्रशासन है। जिसे विकास प्रशासन कहा जाता है और जो तुलनात्मक लोक प्रशासन की देन है।
2. प्रशासन और विकास प्रशासन में अन्तर बहुत कम है। पहला, एक क्रिया है तो दूसरा, एक शास्त्रीय विषय।
3. सार यह है कि आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, मानवीय और तकनीकी या वैज्ञानिक विकास, विकास प्रशासन की अवधारणा पर टिके हुये हैं।
4. विकास प्रशासन लोक प्रशासन का नया आयाम है। वह कल्याणकारी तथा आधुनिकीकरण की एक मांग है। विकास एक मन स्थिति, एक प्रकृति और एक दिशा है।
5. विकास प्रशासन के कुछ निश्चित लक्ष्य हैं। प्रशासन को गतिशील तथा तर्कसंगत बनाये रखना उसका सर्वोपरि ध्येय है। वह बहुआयामी विकास की माँगों को पूरा करता है।
6. विकास के अनेक घटक हैं, जिनमें लोकतांत्रिक मूल्य, सुदृढ़ प्रशासनिक व्यवस्था, शक्तियों का विभाजन, कल्याणकारी नीतियाँ, संसाधनों का महत्व, सामाजिक परम्पराऐं, राजनीतिक स्वरूप तथा बहुआयामी भौतिक प्रगति प्रमुख हैं।
7. रिग्स की विकास अवधारणा ने विकास को नया तकनीकी रूप प्रदान किया है।
8. डाउन्स ने अपनी नौकरशाही का सिद्धान्त अपने शोध प्रबन्ध ''Inside Bureaucracy'' में प्रस्तुत किया है। वह अपने नौकरशाही सम्बन्धी नजरिये को सिद्धान्त कहना पंसद करता है न कि मॉडल। इसी तरह नौकरशाह के स्थान पर वह अधिकारी(officials) कहना ज्यादा उपयुक्त समझता है।
9. नौकरशाही सम्बन्धी उसके विश्लेषण की इकाई 'ब्योरो'(officials) है, जिसका अर्थ है- विभाग। ब्योरोज को वह निर्णय-निर्माण का माध्यम मानता है।
10. डाउन्स का निर्णय-निर्माण चार भागों पर आधारित है- शब्दावली की परिभाषा, परिकल्पनाऐं, एक काल्पनिक पर्यावरण तथा पर्यावरण पर लागू परिकल्पनाओं पर आधारित प्रस्ताव।
11. उसने संगठन के सन्दर्भ में ब्योरोज को परिभाषित किया है तथा उनकी चार मौलिक विशेषताऐं बताई हैं- संगठन का बडा आकार, संगठन के सदस्य पूर्ण कालिक कर्मचारी, स्थायित्व और प्रोन्नति उपलब्धियों के आधार पर तथा संगठन के निर्गतनों का आकलन की परिधि से बाहर होना।
12. डाउन्स ने ब्योरोज का विश्लेषण निर्णय-निर्माण के सन्दर्भ में किया है। यह अनेक केन्द्रीय परिकल्पनाओं पर आधारित है। यह इस प्रकार है- अधिकारी उपयोगिता बढ़ाने वाले होते हैं(Utility Maximizers), अधिकारियों के कुछ जटिल लक्ष्य होते हैं। अधिकारी दो प्रकार के होते हैं, विशुद्ध स्व-हितकारी या आत्म-हितकारी तथा मिश्रित प्रयोजन अधिकारी। आत्म हितकारी भी दो प्रकार के होते हैं, पर्वतारोही अर्थात् अपनी आय, शक्ति तथा प्रतिष्ठा को बुलन्दी तक ले जाने वाले तथा अनुदार जो यथास्थिति बनाये रखने में लगे रहते हैं। मिश्रित प्रयोजन अधिकारी तीन प्रकार के होते हैं- उत्साही, समर्थक तथा राजनीतिज्ञ।

13. डाउन्स ने ब्योरोज के पर्यावरण की विवेचना की है जिसकी अनेक शर्ते हैं, जिनमें सूचना का संचार; निर्णय-निर्माण की क्षमताऐं तथा पर्यावरण का आन्तरिक स्वरूप।

14. डाउन्स ने ब्योरोज के विश्लेषण में पदसोपान को विशेष मान्यता दी है, जो ब्योरोज के आन्तरिक टकारावों को रोकने में सहायक होती है। पदसोपनीयता के दो रूप हैं, पहला- 'लम्बा'(Tall) तथा दूसरा- 'समतल'(Flat)।

15. डाउन्स ने पदसोपानों में संचार, नियंत्रण और विकृतिकरण की समस्या को स्पष्ट किया है।

16. डाउन्स अपने सिद्धान्त में ब्योरोज की गतिशीलता की बात करता है और यह समझाने का प्रयास करता है कि किस प्रकार से ब्योरोज अस्तित्व में आते हैं और जीवित रहते हैं।

17. ब्योरोज का निर्माण करने वाले कुछ 'उत्साही'(Zealots) होते हैं। वे यहाँ चार साधनों का प्रयोग करते हैं- करिश्मे का, टुकड़े करके, उद्यमकर्मी की तरह तथा, क्रियेशन ऐक्स निहिलों की हैसियत से।

18. डाउन्स के अनुसार ब्योरोज के व्यवहार पर आयू (अवधि) का भी प्रभाव पड़ता है। उसने ब्योरोज के व्यवहार उनके आन्तरिक तत्व तथा ब्योरोज के प्रकार्यों के अनेक पहलुओं की भी चर्चा की है।

19. डाउन्स के सिद्धान्त की अनेक बिन्दुओं पर आलोचना की जा सकती है। विशेष रूप से यह कहा जा सकता है कि उसका सिद्धान्त काल्पनिक तथा परिकाल्पनिक अधिक है व्यवहारिक कम। वह स्वयं को वेबेरियनवाद से मुक्त नहीं कर सका है। यद्यपि उसने कुछ मौलिक विचार प्रस्तुत करने का प्रयास किया है, लेकिन उसमें अन्त-द्वन्द स्पष्ट है।

12.22 शब्दावली

आधुनिकीकरण(Modernisation)- एक ऐसा शब्द जो आधुनिकता से जुड़ा हुआ है, जो वैज्ञानिक-तार्किक विकास पर जोर देता है और जो जड़ परम्पराओं और रुढ़ियों का विरोधी है।

विवेकशीलता(Discretion)- यहाँ विवेकशीलता का अर्थ है, विकल्पों में से चुने जाने का कौशल।

विवर्तन(Diffraction), अर्थात् एक समाज में अवकलन या भेदात्मक और एककीकरण (Integration) के स्तर को प्रदर्शित करना ही विवर्तन है।

भेदन(Penetration), अर्थात् सरकार की वह क्षमता या योग्यता जिसके आधार पर सरकार निर्णय लेती है।

ब्योरो(Bureau) का शाब्दिक अर्थ- मेज, डेस्क, अल्मारी, पत्राजात लेकिन सिद्धान्त में विभाग, प्रशासनिक संगठन जिसमें काम करने वाले Bureaucrats (अधिकारी) या नौकरशाह कहलाऐ जाते हैं।

कलाइम्बर्स(Climbers) शाब्दिक अर्थ- पर्वतारोही, ऊँचाई पर जाने वाले लेकिन सिद्धान्त में वे लोग जो अपनी शक्ति, आय, प्रतिष्ठा, सुरक्षा इत्यादि को ऊँचाइयों तक ले जाना चाहते हैं, अर्थात् महत्वाकांक्षी अधिकारी।

एक्सोजीनस कन्डीशन्स(Exogenous Conditions) शाब्दिक अर्थ- अनुकूल उदित परिस्थितियाँ, अर्थात् ब्योरोज के अस्तित्व के लिये अनुकूल परिस्थितियों का होना जरूरी है।

एक्स निहिलो(ex nihilo) शाब्दिक अर्थ- 'कुछ नहीं'(nothing) अर्थात्, वह अवधारणा जो वर्तमान विचारों तथा नई परम्पराओं का विरोध करती है।

जीलटस(Zealots) का शाब्दिक अर्थ है, उत्साही या जोशीले। यहाँ वे लोग जो, नित नये ब्योरोज का निर्माण करते हैं।

12.23 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. चार, **2.** रिग्स, **3.** आर्थिक व्यवस्था, **4.** रिग्स, **5.** 'Inside Bureaucracy' **6.** ब्यूरो (Officials) **7.** ब्यूरोज, **8.** निर्णय-निर्माण, **9.** विकास

12.24 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. S.P. Varma : Modern Political Theory, Poona.
2. Vats Yayan : Principles of Sociology, Meerut.
3. Kumar : Social Change and Social Control, Agra.
4. त्रिलोकीनाथ चतुर्वेदी: तुलनात्मक लोक प्रशासन।
5. Anthony Downs : Inside Bureaucracy, 1964.
6. Joseph La Palombava : (ed) Bureaucracy and Political Development (1963).
7. Max Weber : Bureaucracy in Sociology, 1962.
8. Max Weber : The Routinization of Charisma, The Theory of Social and Economic Organization.
9. Ludvig Yon Mises : Bureaucracy, 1962.

12.25 सहायक/ उपयोगी अध्ययन सामग्री

1. B.F. Hozelitz : Sociolgical Aspect of Economic Growth.
2. S.N. Eisenstadt : Essays on Sociological Aspects of Political and Economic Development.
3. Neil J. Smelser : The Sociology Life.
4. R.W. Mack : Social Change in Developing Areas.
5. S.P. Varma : Modern Political Science.
6. त्रिलोकनाथ चतुर्वेदी: तुलनात्मक लोक प्रशासन।
7. D. Ravindra Parasad (ed) : Administrative Thinkers.
8. प्रसाद, प्रसाद, सत्यनारायण: प्रशासनिक चिन्तक।

12.26 निबंधात्मक प्रश्न

1. विकास की प्रशासनिक अवधारणा क्या है? प्रशासनिक विकास के लक्ष्य, प्रकृति एवं क्षेत्र को स्पष्ट कीजिए।
2. रिग्स की विकास की अवधारणा क्या है? रिग्स की विकास अवधारणा के तकनीकी सार पर चर्चा कीजिए।
3. डाउन्स के नौकरशाही के सिद्धान्त के कौन-कौन से भाग हैं? नौकरशाहों की अवधारणा डाउन्स ने क्यों प्रस्तुत की?
4. डाउन्स ने अपने सिद्धान्त में किस इकाई का विश्लेषण किया है? डाउन्स की अधिकारियों(Officials) की अवधारणा क्या है? स्पष्ट करें।
5. डाउन्स ने निर्णय-निर्माण को किस रूप में लिया है? पदसोपान पर डाउन्स के सिद्धान्तों की विवेचना कीजिए।

इकाई- 13 नौकरशाही का आदर्श प्रारुप, मैक्स वेबर की आदर्शवादी नौकरशाही प्रणाली, मैक्स वेबर के आदर्शवादी प्रतिमान की विशेषताऐं और आलोचना

इकाई की संरचना

13.0 प्रस्तावना
13.1 उद्देश्य
13.2 नौकरशाही का अर्थ
13.3 मैक्स वेबर: एक परिचय
13.4 मैक्स वेबर: नौकरशाही का एक सिद्धान्तकार
13.5 वेबर का आदर्श प्रारूप नौकरशाही का प्रतिमान
13.6 सत्ता की वैधता के विश्वास
13.7 आदर्श प्रारूप नौकशाही मॉडल की विशेषताऐं
13.8 वेबरवादी मॉडल के मुख्य तत्व
13.9 फ्रेड रिग्स पर वेबर का प्रभाव
13.10 वेबरवादी मॉडल की आलोचना
13.11 मूल्यांकन
13.12 सारांश
13.13 शब्दावली
13.14 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
13.15 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
13.16 सहायक/उपयोगी अध्ययन सामग्री
13.17 निबंधात्मक प्रश्न

13.0 प्रस्तावना

मैक्स वेबर का नाम प्रशासनिक चिन्तकों में बड़े सम्मान के साथ लिया जाता है। वह नौकरशाही का महानतम सिद्धान्तकार है। जहाँ मार्क्स ने नौकरशाही का नकारात्मक रूप प्रस्तुत किया, वहाँ मैक्स वेबर ने नौकरशाही को सकारात्मक रूप में दर्शाकर उसे आधुनिक प्रशासन-तंत्र का एक अभिन्न अंग बना दिया। उसने नौकरशाही का एक ऐसा मॉडल तैयार किया, जो न केवल वर्तमान नौकरशाही का आधार है, बल्कि भावी प्रशासनिक चिन्तकों तथा नौकरशाही पर शोधकर्ताओं के लिए एक प्रेणा-स्त्रोत भी है। उसने आदर्श नौकरशाही प्रतिमान (मॉडल) प्रस्तुत करके नौकरशाही तथा प्रशासन की तर्कपूर्ण व्याख्या प्रस्तुत की है। उसके अनुसार संस्थागत मानव व्यवहार में तार्किकता लाने का सर्वोत्तम साधन नौकरशाही है। उसने स्पष्ट किया कि यथार्थ में किसी भी संगठन में आदर्श नौकरशाही पूर्णतः नहीं पायी जाती, लेकिन यहाँ दोष संगठन का या व्यक्तियों का है न कि मॉडल का। वेबर के आदर्श नौकरशाही मॉडल को आज विश्व के प्रायः अधिकांश देश अपनाये हुये हैं, चाहे वह विकसित देश हों अथवा अविकसित या विकासशील देश।

13.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- नौकरशाही का अर्थ एवं महत्व समझ सकेंगे।
- मैक्स वेबर को नौकरशाही के एक सिद्धान्तकार के रूप में जान पायेंगे।

- मैक्स वेबर का आदर्श नौकरशाही मॉडल को जान सकेंगे।
- मैक्स वेबर नौकरशाही के मॉडल की विशेषताओं से परिचित होंगे।
- मैक्स वेबर तथा रिग्स के प्रशासनिक मॉडलों का अन्तर समझ पायेंगे।
- मैक्स वेबर के आदर्श प्रारूप प्रतिमान के बारे में आलोचकों का नजरिया जान पायेंगे, तथा
- वेबरवाद के महत्व को नौकरशाही पर शोधकर्ताओं ने जिस तरह स्वीकार किया है, यह समझ सकेंगे।

13.2 नौकरशाही का अर्थ

शब्द 'नौकरशाही'(Bureaucracy) का यह दुर्भाग्य है कि यह जितना महत्वपूर्ण है उससे अधिक बदनाम है। कुछ सीमा तक नौकरशाही इस बदनामी के लिए स्वंय जिम्मेदार भी है, विशेष रूप से अपनी नकारात्मक भूमिका के कारण, लाल फीताशाही और अनावश्यक कागजी कार्यवाही के कारण, फिर स्वयं खेती-वर्ग का मिजाज जो उसे नौकरशाह बना देता है-अक्खड़, अपरिवर्तनीय, कठोर, संवेदनहीन, नियमों का कीड़ा और ऐसा बहुत कुछ। लेकिन एक सच यह भी है कि नौकरशाही की संस्था अनिवार्य भी है, आज ही नहीं अपने अतीत में भी यह जरूरी थी। ढाई हजार वर्ष पूर्व चीन के महान विचारक कन्फ्यूशियस ने सुझाव दिया था कि चीनी साम्राज्य का काम-काज सलाहकारों और लोक सेवकों के एक ऐसे वर्ग के माध्यम से सम्पन्न होना चाहिए जो सम्राट को सलाह भी दे सकें तथा शासन के काम का निपटारा भी कर सकें। लगभग कुछ ऐसे ही विचार कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में व्यक्त किये थे, जब उसने सुझाव दिया था कि प्रशासक को लोक प्रशासन के विज्ञान का ज्ञान होना चाहिए। उसका सप्तांग का सिद्धान्त उसके इसी दृष्टिकोण को दर्शाता है। उसने लिखा ''मात्र एक पहिया गाड़ी को चलाये नहीं रख सकता।'' आधुनिक सरकारें प्रशासनिक संरचनाओं का (विभागों) समूह हैं। कार्यपालिका नीतियां तैय करती है, प्रशासनिक संरचनाऐं इन कार्यों को पूरा करती हैं। लोक सेवक इन संरचनाओं का मानवीय रूप है, जिन्हें हम नौकरशाह और इनकी संस्था को नौकरशाही कहते हैं।

13.3 मैक्स वेबर: एक परिचय

वेबर एक ऐसे चिंतक या सिद्धान्तकार थे जिन्होंने अनुमानों के संसार से निकलकर यथार्थ के मैदान में पदार्पण किया। वह न केवल प्रशासन बल्कि राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, विधिशास्त्र और इतिहास जैसे क्षेत्रों में भी एक बहुआयामी व्यक्तित्व बन गया।

मैक्स वेबर(1864-1920) एक सिद्धान्तकार था, जो दूसरे शब्दों में नौकरशाही(Bureaucracy) का पर्यायवाची बन गया। वेबर सही अर्थ में एक समाजशास्त्री था। उसने पहली बार नौकरशाही की अवधारणा को स्पष्ट करने का प्रयास किया। उसके लेखों से पहले नौकरशाही मात्र एक क्रिया समझी जाती थी। लेकिन वेबर ने नौकरशाही को अवधारणात्मकता प्रदान करके अध्ययन का एक विषय बना दिया। इसी के साथ वेबर ने वैधता और आधिपत्य (Legitmacy and Demination) के बारे में भी सिद्धान्त प्रतिपादित किये।

वेबर ने कानून, इतिहास और अर्थशास्त्र का गहन अध्ययन किया था। राजनीतिक-अर्थशास्त्र वेबर का प्रिय विषय था। इसी विषय में उसने अध्यापन से अपना जीवन आरम्भ किया, लेकिन हताशा और निराशा ने उसका रूख समाजशास्त्र की ओर मोड़ दिया। आज वह समाजशास्त्र का महान लेखक माना जाता है।

लेकिन यहाँ प्रश्न यह है कि मैक्स वेबर का प्रबन्धन या प्रशासन से क्या सम्बन्ध था? यहाँ हम यह बता दें कि वेबर का रूझान अट्ठारह वर्ष की आयु से विश्लेषण और क्रमबद्ध अध्ययन की ओर अधिक था। वह पुस्तकालय में बैठकर पुस्तकों के पन्नों से निष्कर्ष नहीं निकालता था, वह वास्तविकताओं का अध्ययन करके अनुभव के आधार पर अपने सिद्धान्तों का समर्थक था। इस तरह वह अनुभववादी भी था और यथार्थवादी भी था। वह जर्मनी की सामाजिक परिस्थितियों से अधिक प्रभावित था। उसको सबसे बड़ा डर यह था कि समाज का नौकरशाहीकरण

व्यक्ति के स्वतंत्र अस्तित्व के लिये एक चुनौती बन सकता है। इसलिये उसने जिन विषयों पर लिखना आरम्भ किया उनमें सत्ता, संगठन, वैधता और नौकरशाही महत्वपूर्ण है। यहाँ यह बात स्पष्ट कर दें कि वेबर ने जो कुछ भी लिखा उसका लक्ष्य एक सर्वोत्तम प्रशासन की नींव डालना था। उसके सिद्धान्त शासन के इर्द-गिर्द ही घूमते नजर आते हैं।

13.4 मैक्स वेबर: नौकरशाही का एक सिद्धान्तकार

नौकरशाही की नकारात्मकता अथवा सकारात्मकता की बहस से आगे निकलकर वेबर ने उचित यह समझा कि वह नौकरशाही का एक वैज्ञानिक सिद्धान्त प्रतिपादित करे। इस विषय का वह पहला सिद्धान्तकार नहीं था। शायद पहला विचारक डॉ0 गोरने था, जो फ्रैंच अर्थशास्त्री था। जिसने सबसे पहले शब्द 'ब्योरियोक्रेसी' का प्रयोग 18वीं सदी के पूर्वाद्ध में किया था। गोरने के बाद यह शब्द बहुत लोकप्रिय हो गया, विशेष रूप से फ्रांस और ब्रिटेन में, जहाँ 19वीं सदी में समाशास्त्रियों ने इस शब्द का खुलकर प्रयोग करना शुरू कर दिया। विख्यात राजनीतिक अर्थशास्त्री जे0एस0 मिल ने शब्द 'ब्योकरियोकरेसी' का अपने विश्लेषणात्मक अध्ययन में प्रयोग किया। मोसका तथा मिशेल्ज ऐसे दो प्रसिद्ध समाजशास्त्री हैं, जिन्होंने नौकरशाही पर विस्तार से लिखा। फिर कार्ल मार्क्स को कौन भुला सकता है, जिसने नौकरशाही को पूँजीपतियों, सत्ताधारियों तथा बुर्जुआइयों के हाथ में एक ऐसा दमनकारी हथकण्डा बताया जो गरीबों, मजदूरों और कमजोरों को कुचलने के लिए आवश्यक था। लेकिन मार्क्स का यह दृष्टिकोण एकतरफा और पूर्वाग्रह से ग्रस्त था। इसलिए यहाँ नौकरशाही की प्रासंगिक्ता को सिद्ध करने के लिए मैक्स वेबर अपने मजबूत तर्कों के साथ पदार्पण करता है। वेबर वह पहला चिन्तक था, जिसने सबसे पहले नौकरशाही का क्रमबद्ध अध्ययन किया और उसकी विशेषताओं को दर्शाया। अपने इस अध्ययन के आधार पर उसने नौकरशाही का एक मॉडल तैयार किया, जो अन्ततः नौकरशाही के दूसरे प्रतिमानों का आधार बना।

नौकरशाही से वेबर का अभिप्राय क्या था, यह उसने कभी स्पष्ट नहीं किया। हाँ, इतना जरूर कहा कि ''नौकरशाही नियुक्त अधिकारियों का एक प्रशासनिक ढांचा है'' अर्थात नियुक्त अधिकारीगण नौकरशाही का निर्माण करते हैं। वेबर ने अपनी रचनाओं में पूँजीवादी अर्थव्यवस्था और आधुनिक प्रशासनिक व्यवस्था में नौकरशाही को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है। उसके अनुसार औपचारिक संगठनों की दृष्टि से नौकरशाही की व्यवस्था अत्यंत महत्वपूर्ण है। अधिकतर विद्वान यह स्वीकार करते हैं कि वेबर द्वारा नौकरशाही पर अध्ययन अत्यंत प्रमाणिक तथा आधिकारिक है।

वेबर वह पहला चिन्तक है, जिसने नौकरशाही के आदर्श रूप की एक रूप रेखा प्रस्तुत की। वह नौकरशाही में खुले तौर पर कार्यों का वर्गीकरण देखता है, जिसके अनुसार प्रत्येक अधिकारी नियमानुसार अपनी अपनी परिस्थितियों के सन्दर्भ में उन्हें पूरा करता है। नियुक्त अधिकारी को उसकी तकनीकी योग्यता तथा कौशल के अनुसार पद और विशिष्ट कार्य के निष्पादन की जिम्मेदारी सौंपी जाती है। वेबर अधिकारी के उस विशिष्ट कार्य को 'भूमिका' कहता है। उसके अनुसार नौकरशाही एक संगठन भी है, एक संरचना भी और एक व्यवस्था भी है, जहाँ विभिन्न भूमिकाऐं हैं, जिन्हें विशिष्ट अधिकारी अदा करते हैं। अधिकारी की योग्यता और कौशल की जांच का भी एक नियम है; एक निश्चित प्रविधि एक मापदण्ड है। पदरचना में संस्तरण या पदसोपानियता(Hierarchy) पायी जाती है। सभी अधिकारी और अधीनस्थ कर्मचारी इस व्यवस्था के अनुसार अपनी भूमिका अदा करते हैं। इस सम्बन्ध में कोई तर्क-विर्तक नहीं होता है।

13.5 वेबर का आदर्श-प्रारूप नौकरशाही का प्रतिमान

मैक्स वेबर के नौकरशाही के आदर्श-प्रारूप मॉडल(Ideal Type of Bureaucratic Model) को समझने से पहले नौकरशाही का चरित्र उसकी संरचना तथा उसका स्वरूप समझना होगा। उसने नौकरशाही के दृष्टिकोण को

दो भागों में वर्गीकृत किया है, पहला- नौकरशाही संगठन के रूप में तथा दूसरा- नौकरशाही तार्किक नियम (विधिक) प्राधिकार के रूप में। विस्तार में यह इस प्रकार से है-

1. **नौकरशाही संगठन के रूप में(Bureaucracy as an Organisation)-** वेबर पहला एक ऐसा चिन्तक है, जिसने नौकरशाही की स्पष्ट व्याख्या संगठनातमक आधार पर की है। इस आधार का अपना एक इतिहास है। इसलिए वह नौकरशाही को पैतृक या पुश्तैनी भी कहता है, जो पारम्परिक तथा करिश्माई प्रारूप की सत्ताओं में पाई जाती है। वेबर का कहना है कि कर्मचारी-तन्त्र के जितने लक्षण होते हैं, उन्हें संयुक्त रूप से समझने की आवश्यकता है। इन्हीं लक्षणों के आधार पर नौकरशाही का कोई मॉडल तैयार किया जा सकता है। लेकिन आदर्श-प्रारूप के मॉडल का निर्माण करने से पहले सभी कर्मचारियों (सेवी-वर्ग) के लक्षणों को समझना होगा। फिर इन लक्षणों को एक स्थान (सैद्धांतिक रूप से) पर एकत्रित करना होगा। अन्ततः उस संग्रह पर शोध करना होगा तथा शोध के परिणामों के आधार पर मॉडल तैयार करना होगा। यह एक कठिन प्रक्रिया है।
2. **नौकरशाही विधिक-तार्किक प्राधिकार के रूप में(Bureaucracy as a Rational-Legal Authority)-** वेबर के आदर्श-प्रारूप के मॉडल का आधार यही विधिक-तार्किक प्राधिकार का विचार है, जो उसके अनुसार कानूनी प्रारूप की सत्ता में पाया जाता है। वेबर के इसी दृष्टिकोण को वेबरवादी प्रतिमान कहा जाता है। उसका विश्वास था कि लगभग सभी प्रकार की सत्ता सम्बन्धी व्यवस्थाओं का आधार वैधता है। उसके अनुसार नौकरशाही कोई ऐतिहासिक व्यवस्था, नियम या परम्परा नहीं है, बल्कि इसके पीछे तार्किक नियम होते हैं। विवेक नौकरशाही का विधिक प्रारूप है। इस बात को समझाते हुए नौकरशाही पुश्तैनी या पैतृक होती है और उसका स्रोत परम्परा या करिश्मा होता है। वेबर नौकरशाही को सामन्तवादी समाज से जोड़ता है, क्योंकि राजा या शासक परम्परा के आधार पर सत्ता प्राप्त करते थे और यही परम्परा उनकी सत्ता को वैधता प्रदान करती थी। लेकिन जनतंत्रीय व्यवस्था में ऐसा नहीं होता है। यहाँ सत्ता का आधार संविधान और कानून होतेहैं। वे ही सत्ता की वैधता सिद्ध करते हैं।

13.6 सत्ता की वैधता के विश्वास(Beliefs of Legitimacy of Authority)

वेबर के अनुसार नौकरशाही का भी आधार सत्ता है और इस सत्ता की भी वैधता है। सत्ता की यह वैधता पांच विश्वासों या आस्थाओं पर टिकी हुई है-

1. एक ऐसा विधिक नियम बनाया जा सकता है, जो संगठन के सदस्यों से आज्ञापालन करा सके।
2. कानून एक अदृश्य नियमों का नाम है, जिनको विशिष्ट मामलों पर लागू किया जा सकता है और प्रशासन इन नियमों या कानूनों की हदों में रहकर संगठन के हितों को संरक्षण देता है।
3. वह व्यक्ति जो सत्ता का प्रयोग करता है, वह भी निर्वयक्तिक (impersonal) आदेश का पालन करता है।
4. केवल एक सदस्य की हैसियत से सदस्य का कानून का पालन करना।
5. आज्ञा पालन उस व्यक्ति के लिए नहीं है जो सत्ताधारी है, बल्कि उस निर्वेयक्तिक आदेश के प्रति हैं, जो सत्ताधारी को पद या स्थिति प्रदान करता है।

इन पांच विश्वासों से यह सिद्ध होता है कि वेबर ने वैधता और निर्वेयक्तिक आदेश के मध्य सम्बन्धों पर बहुत जोर दिया। आगे जाकर हम यह देखते हैं कि वेबर चार ऐसे तत्वों में विश्वास करता था, जो नौकरशाही के दृष्टिकोण का सार हैं। यह चार तत्व हैं- पहला, ऐतिहासिक, तकनीकी और प्रशासनिक कारक जो नौकरशाहीकरण की प्रक्रिया को तेज करते हैं; दूसरा, अधिकारीतन्त्रीय संगठन पर कानून के शासन का प्रभाव; तीसरा- अधिकारीगण की एक अभिजात वर्ग के रूप में अपनी पेशावराना हैसियत के अनुसार आचरण करना, तथा चौथा, आधुनिक विश्व में नौकरशाही को अत्याधिक श्रेय देना, विशेष रूप से सरकारी नौकरशाही को।

13.7 आदर्श रूप नौकरशाही मॉडल की विशेषताऐं(Characteristics of Ideal Type Bureaucracy Model)

मैक्स वेबर ने अपने आदर्श रूप नौकरशाही के मॉडल की विशेषताऐं बताई हैं, जो इस प्रकार हैं-

1. **स्पष्ट श्रम-विभाजन(Clearcut Division of Lobour)-** इसका सीधा सादा अर्थ है, कर्मचारियों/अधिकारियों के कार्यों का स्पष्ट विभाजन तथा निश्चित कार्य के अनुसार कर्मी का अपने उत्तरदायित्व को निभाना तथा उस कृत के लिए जिम्मेदार रहना।
2. **आदेश तथा दायित्वों के सीमित क्षेत्रों के साथ पदसोपनीय सत्ता संरचना(Hierarchical Authority Structure with Limited Areas of Command and Responsibility)-** नौकरशाही संरचना, पद सोपनियता के सिद्धान्त पर टिकी होती है। अधीनस्थ कार्यालयों तथा पदों में तथा उसके अनुसार उच्चतर कार्यालय या पदों में सत्ता का विभाजन होता है। प्रत्येक कर्मचारी या अधिकारी इस संरचना के अनुसार अपने सीमित क्षेत्राधिकार में रहकर अपना कार्य करता है। सत्ता या आदेश ऊपर से नीचे तथा अनुपालन नीचे से ऊपर की ओर चलता है। प्रत्येक अधीनस्थ पद पर निरीक्षकों की पैनी नजर रहती है।
3. **उर्मूत नियमों की अपरिवर्तनशील व्यवस्था(Consistent System of Abstract Rules)-** तकनीकी अथवा कानूनी नियम कार्यालयों की कार्यवाही का आधार होते हैं। सेवी-वर्ग इन नियमों में मंझा हुआ होता है और वह इन्हीं के अनुसार अपनी जिम्मेदारी निभाता है। वह इन नियमों में, सेवा में प्रवेश करने से पूर्व कठोर प्रशिक्षण की प्रक्रिया से गुजरता है। संगठन के अमूर्त नियम तथा अपरिवर्तनशील व्यवस्था कार्यों में एकरूपता तथा समन्वय का कारण बन जाती है।
4. **स्पष्टतः परिभाषित कार्य(Clearly defied Functions)-** कानूनी तौर पर कार्यालयों के कार्यों को स्पष्ट रूप से परिभाषित तथा मर्यादित कर दिया जाता है। प्रत्येक पद का एक क्षेत्राधिकार होता है, जिसका उल्लंघन गैर-नियमकीय होता है। इसलिए टकराव नहीं होता है।
5. **अधिकारियों की नियुक्ति, उनकी योग्यता तथा तकनीकी दक्षता के आधार पर(Officials appointed on the basis of their ability and Technical Expertise)-** नौकरशाही से यहाँ अर्थ, सरकारी नौकरशाही से है। जहाँ अधिकारियों की नियुक्ति का आधार उनकी व्यक्तिक योग्यता, कौशल तथा तकनीकी जानकारी होती है और जिसका उनको चयनित होने के बाद विशिष्ट प्रशिक्षण मिला होता है।
6. **अधिकारियों की नियुक्ति या तो संविदा के या निश्चित सरकारी नियमों के आधार पर होना (Officials appointed either on the basis of Free Contract or according to established Government Rules)-** यहाँ यह समझना है कि प्रशासनिक संगठन दो प्रकार के होते हैं, निजी निकाय तथा सरकारी विभाग। निजी निकायों में अधिकारियों की नियुक्ति स्वतंत्र संविदा के आधार पर होती है, अर्थात प्रबन्धन का प्रत्येक अधिकारी से एक स्वतंत्र सशर्त समझौता होता है। यहाँ दबाव नहीं होता। दूसरी ओर, सरकारी विभागों में नियुक्ति सरकारी नियमों के अनुसार होती है। यहाँ नियुक्त अधिकारी स्वतंत्र नहीं होता और उस पर वे तमाम वेतनाम शर्तें लागू होती हैं जो कार्यपालिका निर्धारित करती है। यहाँ सेवा अवधि में स्थायित्व होता है। वास्वतव में सरकारी अधिकारीतंत्र ही वेबर की नौकरशाही की परिभाषा में आता है।
7. **मासिक वेतन और पेन्शन का अधिकार(Rights to Monthly Salary and Pension)-** नौकरशाही संरचना में समझौते के आधार पर वेतन तैय तो होता है। लेकिन संगठन चाहे निजी हो या

सरकारी, वेतन निर्धारण का आधार कुछ मानक होते हैं जो कर्मी के पदसोपनीय स्तर, पद के दायित्व तथा सामाजिक स्थिति और आर्थिक परिस्थिति के अनुसार तैय किये जाते हैं। ऐसे ही निश्चित मानक पेन्शन निर्धारण के लिए होते हैं।

8. **पूर्णकालीन पदाधिकारी(Full Time Occupation)-** किसी प्रशासनिक संगठन में दो प्रकार के कर्मचारी या अधिकारी होते हैं- स्थायी और आंशिक। स्थायी कर्मचारी अपने कार्यालय को पूरा समय देते हैं और अपने कार्यों के लिए जिम्मेदारी निभाते हैं, जबकि अंशकालिक कर्मचारी एक सीमित समय तक कार्य करते हैं और अपने कार्यों के लिए जबावदेह भी नहीं होते हैं। यह दूसरे वर्ग के कर्मचारी माने जाते हैं।
9. **पेशा ही अन्तिम लक्ष्य(Career Ultimate Goal)-** जब कोई अधिकारी नौकरशाही से सम्बद्ध पेशा चुनता है तो वह उसे पेशे को अपने जीवन-यापन का अन्तिम लक्ष्य बना लेता है। उसी पेशे में उसकी प्रोन्नति होती रहती है और उसी हैसियत से वह सेवानिवृत्त हो जाता है।
10. **साधनों पर स्वामित्व न होना(Lack of ownership of Resources)-** कार्यों को पूरा करने के लिए अधिकारियों को संसाधन प्राप्त होते हैं, लेकिन यह संसाधन उनकी निजी मलकियत नहीं होते हैं। वे इन संसाधनों के उपयोग के लिए उत्तरदायी होते हैं। इसके अतिरिक्त सरकारी काम-काज तथा निजी मामले और सरकारी आमदनी तथा निजी आय पूरी तरह एक-दूसरे से पृथक होते हैं।
11. **कार्यालयों के पदों को निजी सम्पत्ति न समझना(Incumbents of Offices are non-private property)-** सरकारी विभागों में अधिकारियों की भर्ती एक निजी सम्पत्ति के रूप में नहीं होती है, जिसको बेचा जा सके या विरासत के रूप में उस पर दावा किया जा सके।
12. **लिखित दस्तावेज प्रशासन का आधार(Administration based on writer documents)-** प्रशासन अनौपचारिक नहीं होता है। यहाँ औपचारिकता प्रशासन पर छाई रहती है, जिसका आधार लिखित दस्तावेज होते हैं। नौकरशाही संगठन का एक आदर्श अधिकारी अपने कार्यालय का संचालन औपचारिक निवैयक्किता के आधार पर करता है। यही उसकी सर्वोपरि भावना होती है। वह निष्पक्ष तरीके से काम करता है। वह काम के प्रति वफ़ादार होता है, व्यक्तियों के लिए नहीं।
13. **कठोर एवं व्यवस्थित अनुशासन तथा नियंत्रण(Strict and Systematic Discipline and Control)-** नौकरशाही संगठन के किसी कर्मी को अनुशासनहीन नहीं होने दिया जाता है। नियंत्रण की व्यवस्था होती है। शक्ति वितरण के माध्यम से उत्तरदायित्व निर्धारित होता है। नियंत्रण की एक क्रमिक व्यवस्था होती है। कार्यपालिका से लेकर व्यवस्थापिका तथा न्यायपालिका तक नौकरशाही पर नियन्त्रण रख्ने का एक उपकरणीय व्यवस्था होती है।
14. **अधिकतम कार्यकुशलता(Highest Degree of Efficiency)-** नौकरशाही की एक विशेषता यह है कि वह तकनीकी दृष्टि से अधिकतम कुशलता प्राप्त करने में सक्षम होती है। कारण यह है कि प्रत्येक अधिकारी अपने कार्य का विशेषज्ञ होता है। उसके कार्यों में उचित समन्वय तथा नियंत्रण रहता है।

मैक्स वैबर ने अपनी पुस्तक ‘‘The Theory of Social and Economic Organisation’’ में यह स्पष्ट किया है कि सभी समकालीन राष्ट्रों की प्रशासनिक प्रणालियों से कहीं न कहीं नौकरशाही का बोध होता है, भले ही उनके सामाजिक या राजनीतिक वातावरण में अन्तर हो। ‘संरचनात्मकता’ तथा ‘प्रकार्यात्मकता’ नौकरशाही की पहचान है। वेबर इस बात को स्वीकार करता है कि लोकतंत्र के लिए कार्यकुशल नौकरशाही होना अनिवार्य है, लेकिन ऐसा न हो कि नौकरशाही लोकतंत्र के लिए खतरा बन जाये। वेबर का विश्वास है कि सरकार में जन-भागीदारी सुनिश्चित करके नौकरशाही को अधिक उत्तरदायी बनाया जा सकता है, क्योंकि नौकरशाही स्थायी होती है। इसलिए उसका प्रभाव देश की राजनीति पर गहरा पड़ता है। अक्सर राजनीतिज्ञों तथा नौकरशाहों में विचारात्मक टकराव भी देखा जा गया है जो विकास में बाधा डालता है।

वेबर के अनुसार यह कानूनी-तार्किक नौकरशाही तकनीकी तौर पर अन्य सभी प्रकार की प्रशासनिक व्यवस्थाओं से उच्चतर होती है। जो लोग एक बार नौकरशाही से शासित होते हैं, उनके सामने दूसरी कोई व्यवस्था अर्थहीन हो जाती है। इसलिए, नौकरशाही एक स्थायी और अपरिहार्य संस्था बन जाती है।

13.8 वेबरवादी मॉडल के मुख्य तत्व(Main elements of Weberiase Model)

नौकरशाही के वेबरवादी मॉडल के मुख्य तत्व हैं- निर्वेव्यत्तित्व व्यवस्था(Impersonal order), निमय(Rules), दक्षता या योग्यता का क्षेत्र(Sphere of competence), पदसोपनीयता(Hierarchy), निजी और लोक ध्येय (Personal and Public ends), लिखित दस्तावेज(Writeen documents), तथा एकल अथवा एकतंत्रीय व्यवस्था(Monocratic Entity), लगभग इन सभी तत्वों का आदर्श प्रकार की नौकरशाही की विशेषताओं में समावेश है। संक्षेप में इनको इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है-

1. **निर्वैव्याक्तिक व्यवस्था(Impersonal order)-** यह तत्व वेबर की सोच और उसके द्वारा प्रस्तुत मॉडल का सर्वाधिक प्रभावशाली भाग है। यह नौकरशाही की क्रियाशीलता को प्रोत्साहित करने वाला है। यही वह तत्व है जो आदेश और अनुपालन का आधार है, 'निर्वैव्यक्तिकता' सत्ता के प्रयोग को प्रभाकारी बनाती है, सत्ता का निवास स्थान पद में होता है न कि व्यक्ति में। उसकी भूमिका का आधार, उसकी पहचान, उसकी शक्ति और उसके अधिकार यही सत्ता है जो पद में निहित है।
2. **नियम(Rules)-** वेबरवादी विधिक-तार्किक सत्ता की विशेषता यह है कि उसके द्वारा संचालित संगठन और सरकारी प्रकार्य नियमों से बंधे हुये हैं। एक कार्यालय के व्यवहार का संचालन तकनीकी नियमों अथवा अधिनियमों के द्वारा होता है। इन नियमों के तार्किक क्रियान्वयन के लिए विशिष्ट प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। अन्ततः नियमों का पालन एक साधन के अतिरिक्त स्वंय में साध्य बन जाता है। मर्टन के अनुसार ''प्रशासकीय व्यवस्था में एक ऐसा समय आता है, जब खेल से अधिक महत्वपूर्ण नियम बन जाते है। नतीजा यह निकलता है कि नियम देरी का कारण बन जाते हैं। प्रशासनिक दुशवारिया पैदा होती है और इसी स्थिति को लालफीताशाही कहा जाने लगता है।''
3. **दक्षता का क्षेत्र(Sphere of competence)-** इसका अर्थ है, कौशल और दक्षता। जिसके अनुसार उन जिम्मेदारियों को पूरी निष्ठा के साथ निभाना जो अधिकारी को श्रम-विभिाजन के आधार पर सौंपी गयी हैं। दूसरे, योग्यता के अनुसार कर्मी को सत्ता के प्रयोग का अधिकार देना। तीसरे, परिभाषित दबाव के ऐसे साधन जो निश्चित परिस्थितियों में प्रयोग में लाये जायें।
4. **पदसोपनीयता(Hierarchy)-** पहले भी बताया जा चुका है कि पदों की संरचना पदसोपनीयता के सिद्धान्तों के अनुसार होती है। अर्थात संगठन की संरचना ऐसी होती है कि निम्न पद किसी उच्च पद के नियन्त्रण में होता है। यह सिलसिला ऊपर से नीचे की ओर तल तक चलता है।
5. **निजी और लोकहित(Personal and Public ends)-** इसका अर्थ है, प्रशासनिक अधिकारियों का साधनों के स्वामित्व से पृथकीकरण। वेबर सरकारी हैसियत का अनुचित प्रयोग करने वाले अधिकारियों पर नजर रखने की बात करता है।
6. **लिखित दस्तावेज(Writeen documents)-** इस सम्बन्ध में पहले बताया जा चुका है। यहाँ यह बताना है कि प्रशासकीय व्यवस्था में लिखित दस्तावेज लिए गये निर्णयों, बनाई गयी नीतियों, मीटिंगों में होने वली बहसों तथा क्रियान्वित प्रकार्यों की सनद(दस्तावेज) होते हैं, इनका कानूनी महत्व होता है। यह प्रशासनिक उत्तरदायित्व को दर्शाते हैं और भावी राजनीति के लिए दिशा निर्देश मोहय्या कराते हैं।

7. **एकल व्यवस्था(Monocratic Entity)-** यद्यपि नौकरशाही किसी भी प्रकार के शासनतंत्र के लिए अपरिहार्य है, लेकिन इसका स्वरूप और चरित्र जनतंत्रीय नहीं है। वह एकलवादी है अथवा एकतंत्रीय जो लोकतंत्र के लिए एक खतरा बन सकती है।

वेबेरियन मॉडल का सबसे अधिक प्रशंसनीय भाग है, तकनीकी तौर पर अर्हता प्राप्त व्यक्तियों का चयन। ऐसे चयनित अधिकारियों को एक निश्चित वेतन प्रदान किया जाता है तथा उनको नियमानुसार निश्चित आयु तक सेवा का मौका दिया जाता है। प्रोन्नति का अवसर मिलता है तथा उनको अनुशासित तथा नियंत्रित करने की व्यवस्था की जाती है।

13.9 फ्रेड रिग्स पर वेबर का प्रभाव

फ्रेड रिग्स ने नौकरशाही पर बहुत कुछ लिखा है, लेकिन खास बात यह है कि वह नौकरशाही की अपनी व्याख्या में मैक्स वेबर से बहुत अधिक प्रभावित नजर आता है। उसने वेबर के अनेक विचारों को अपने सिद्धान्तों में जगह दी है। उदाहरण के लिए रिग्स ने वैधता, सन्तुलन तथा क्षमता की अवधारणा वेबर से ली है। वह इन को नौकरशाही के उद्देश्य मानता है। संक्षेप में-

1. **वैधता(Legitimacy)-** जिसका अर्थ है- सरकार को अपने शासन करने, प्रशासन करने, निर्णय लेने तथा कार्यों को निष्पादित करने के लिए जनता से स्वीकृति या मान्यता मिले। यह मान्यता ही सरकार को वैध बनाती है तथा उसके काम काज को तार्किक बनाती है।
2. **स्थिरता या सन्तुलन(Stability or balance)-** इसका अर्थ है, सत्यनिष्ठा या आत्मनियंत्रण को बनाये रखने के लिए सरकार पर समताकारक शक्तियों का अंकुश होना ताकि स्थिरता बनी रहे।
3. **क्षमता(Capacity)-** सरकार का काम लक्ष्यों की पूर्ति के लिये निर्णय लेने और उनको लागू करना है। यह तभी संभव है, जब सरकार में क्षमता होगी। इन निर्णयों से वांछित परिवर्तन लाया जा सकता है।

संक्षेप में इन तीनों उद्देश्यों का सम्बन्ध प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में नौकरशाही से ही होता है। रिग्स ने लोक प्रशासन के परिस्थितिकीय अध्ययन की आवश्यकता पर बल दिया है। उसका कहना है कि अनुभव आधारित, विधि सम्मत तथा परिस्थितिकीय अध्ययन ही वास्तव में लोक प्रशासन का तुलनात्मक अध्ययन है। उसकी नजर में प्रशासनिक प्रक्रिया एक ऐसी प्रणाली है जो अपने वातावरण से घिरी होती है, जिसकी इस वातावरण से क्रिया-प्रतिक्रिया चलती है और जिसका अध्ययन करना जरूरी है।

यहाँ यह समझना चाहिए कि विधि-सम्मत सत्ता और इस पर आधारित नौकरशाही वेबर के विश्लेषण का केन्द्र बिन्दु है, जबकि रिग्स समपार्श्वीय(Prismatic) समाज तथा इसकी प्रशासनिक उप-प्रणाली पर विचार-विमर्श करता है। इन दोनों सिद्धान्तों में गहरा अन्तर है जो इस प्रकार है-

- वेबर पदों की संरचना को पदसोपनीय मानता है, लेकिन रिग्स अपनी प्रशासनिक उप-प्रणाली में विषम जातीयता देखता है।
- वेबर प्रत्येक पद की क्षमता को दर्शाता है, जबकि रिग्स प्रशासनिक उप-प्रणाली को अतिव्यापन मानता है।
- वेबर योग्यता के आधार पर अधिकारियों का चुनाव करता है, लेकिन रिग्स के अनुसार भर्ती का आधार पहुँच, प्रभाव और भाई-भतीजावाद होता है।
- वेबर की नजर में नौकरशाही में नियमानुसार प्रशासन होता है, लेकिन रिग्स मानता है, नियम मात्र एक ढकोसला होते हैं। वास्तव में प्रशासन अधिकारी की मानसिकता और सोच पर चलता है।

- वेबर के अनुसार सार्वभौमिकता तथा निर्वैयक्तिकता प्रशासन का आधार है। अधिकारी सत्ता पद से पहचाना जाता है। लेकिन रिग्स मानता है कि व्यवहार में व्यक्तिगत मानक ही कार्य संचालन करते हैं।

13.10 वेबरवादी नौकरशाही मॉडल की आलोचना

यह तो बिल्कुल सच है कि नौकरशाही के सिद्धान्तकार के रूप में मैक्स वेबर अद्वितीय है। उसे एक एकाधिकारिक विद्वान माना जाता है। उसकी सोच या नजरिया लोक प्रशासन के विद्यार्थियों के लिए एक दिशा प्रदान करता है। उसने अपना आदर्श नौकरशाही प्रतिमान प्रस्तुत करके नौकरशाही के सन्दर्भ में प्रशासन की तर्कपूर्ण व्याख्या प्रस्तुत की है। लेकिन उसके मॉडल में अनेक मूलभूत कमियां भी हैं, जिनकी वजह से समाजशास्त्रियों तथा लोक प्रशासन के अनेक विद्वानों ने उसके विश्लेषण की आलोचना की है। आलोचकों के मतानुसार वेबर ने नौकरशाही पर अपनी सैद्धानितक अवधारणा के माध्यम से अनेक सामान्य निष्कर्ष निकाले हैं, लेकिन अनुभावात्मक तथ्यों के आधार पर वह इनका औचित्य सिद्ध करने में कोई दिलचस्पी नहीं दिखाता है। सिद्धान्त या मॉडल की प्रासंगिकता के बारे में वह उदासीन है। वेबर के मॉडल की तीन आधारों पर अधिक आलोचना हुई है, पहला- उसके मॉडल की तार्किकता, दूसरा- विभिन्न स्थानों और परिवर्तित परिस्थितियों में प्रशासनिक जरूरतों के अनुसार मॉउल की उपयुक्ता, तथा तीसरा- क्या यह मॉडल उस क्षमता को पा सकता है, जिसकी कल्पना वेबर ने की है। वेबर के मॉडल का एक बड़ा आलोचक 'मर्टन' है। उसके अनुसार वेबर का रचनात्मक नजरिया प्रशासनिक संगठन में पदसोपनीयता पर जोर देता है। लेकिन यह अनिवार्य नहीं है कि ऐसी संरचना से किसी संगठन के लक्ष्यों की पूर्ति हो। हो सकता है नतीजे विपरीत निकलें। यह भी संभव है कि पदसोपनीयता अक्षमता को जन्म दे, जो मर्टन की नजर में नौकरशाही की विशेषता है। वेबर के मॉडल तथा नौकरशाही पर उसके विचारों की आलोचना सेल्जनिक, टेलकॉट पारसंस, ऐलविन गाउल्डनर, बेन्डिक्स, पीटर ब्लाउ तथा राबर्ट प्रेसथस ने की है। उदाहरण के लिए -

1. फिलिप सेल्जनिक ने वेबर के पदसोपानीय सोपान की आलोचना करते हुए लिखा कि संगठन में प्रकार्यो को उप-विभागों में विभाजित करने से उप-विभाग वृहत उद्देश्य की अपेक्षा अपना निजी उद्देश्य साधने का प्रयास करेंगे। मर्टन और सेल्जनिक इस तर्क पर सहमत हैं कि संगठनात्मक संरचना का विशिष्टीकरण अधिकारियों के निजी स्वाभाविक व्यवहार (एक मानव के रूप में) तथा अपेक्षित प्रशासनिक व्यवहार (एक प्रशासकीय संहिता के अनुसार) में टकराव पैदा करेगा अर्थात इन आलोचकों के अनुसार वेबर ने पदसोपनियता सिद्धान्त की रचना में व्यवहारवादी दृष्टिकेण नहीं अपनाया है।
2. टेलकाट पारसंस, वेबर के नौकरशाही प्रतिमान में एकरूपता तथा तारतम्य का अभाव देखता है। संगठन में कुछ लोग तकनीकी तौर पर श्रेष्ठ होते हैं तथा उन्हें आदेश देने का अधिकार होता है। और कुछ लोग अपने पद तथा प्रशासनिक योग्यता में श्रेष्ठ होते हैं। वह भी आदेश देने का अधिकार रखते है। ऐसी स्थिति में अधीनस्थ किसके आदेश का पालन करे, यह सवाल टकराव पैदा करता है।
3. ऐलविन गाउल्डनर ने नियमों के अनुपालन की दृष्टि से वेबर की नौकरशाही पर सवाल उठाये हैं। उसके अनुसार यथार्थ यह है कि कुछ अधिकारी नियमों को अपने ऊपर थोपा हुआ महसूस करते हैं और कुछ नियमों को जरूरी तथा अपने हित में देखते हैं। इस तरह प्रशासनिक व्यवस्था नियमों के पालन और अनुपालन अथवा औपचारिकता तथा अनौपचारिक के विवाद में उलझ जाती है, जिसका समाधान वेबर के पास नहीं है।
4. रूडोल्फ का तर्क है कि संगठन पर पर्यावरण का गहरा प्रभाव पड़ता है, जिसकी अनदेखी वेबर ने की है। उसके अनुसार वेबर प्रशासन को एक तार्किक मशीन और अधिकारियों को तकनीकी कार्यकर्ता मानता है, जो अनुचित है।

5. बैन्डिक्स के अनुसार अधिकारियों का आचरण, उनकी सोच और उनका अपना काम करने का तरीका उनके प्रशासनिक आचरण पर प्रभाव डालता है और वे उसी के अनुसार निर्णय लेते हैं। लेकिन वेबर के मॉडल में इन तथ्यों की अनदेखी की गयी है।
6. पीटर ब्लाउ के अनुसार वेबेरियन मॉडल से विभिन्न स्थानों और समयों में प्रशासन को एक सा लागू नहीं किया जा सकता, क्योंकि समय और स्थान की अपनी-अपनी मांगे होती हैं।
7. वेबर के विचार मात्र एक अनुमान या उपकल्पना हैं। उनका कोई वैज्ञानिक अनुभववादी आधार नहीं है। वह मानवीय मनःस्थिति और व्यवहार को प्रभावित करने वाले अनौपचारिक प्रभावों तथा स्वभावों की भूमिका पर ध्यान नहीं देता है।
8. उसके सिद्धान्त विश्लेषणात्मक खोज पर आधारित नहीं हैं। वह संगठन में होने वाली क्रियाओं तथा प्रतिक्रियाओं से बेखबर लगता है।
9. बेबर 'आदर्श' प्रारूप की नौकरशाही की बात करता है, लेकिन सच यह है कि स्वंय 'नौकरशाही' या 'ब्योरियोक्रेसी' जैसी शब्दावली किसी आदर्श की अभिव्यक्ति नहीं करती हैं। नौकरशाही में कुछ भी आदर्श नहीं है।
10. कुल मिलाकर वेबर का नौकरशाही का मॉडल भ्रमांक तथा उलझा हुआ है और उसको क्रियान्वित करने के बाद भी प्रशासन का यथार्थ समझ में नहीं आ सकता। प्रशासन कोई यांत्रिकी नहीं है। यह मानव व्यवहार का समुच्चय है जो परिस्थितियों के अनुसार चलता है, बदलता है और निश्चित होता है।

13.11 मूल्यांकन

वेबर के नौकरशाही के आदर्श प्रारूप के मॉडल के सम्बन्ध में आलोचनाओं का अध्ययन करके कोई भी यह निष्कर्ष निकाल सकता है, कि उसका मॉडल या उसेक सिद्धान्त न तो वैज्ञानिक हैं, न तार्किक और न ही प्रासंगिक। लेकिन ऐसा निष्कर्ष एकतरफा होगा। सच तो यह है कि वेबर ही एक ऐसा चिन्तक है, जिसके प्रशासनिक सिद्धान्तों तथा उसके मॉडल से कोई भी भावी प्रशासनिक चिन्तक अप्रभावित नहीं रह सका। स्वयं टेलकाट पारसंस ने वेबर के प्रसिद्ध ग्रंथ ''Wirtschaft and Gesellschaft'' का अनुवाद किया। बेन्डिक्स ने मैक्स वेबर पर एक पुस्तक ''Max Weber : An Intellectual Portait'' लिखी। हेन्डरसन तथा पारसंस ने वेबर के जर्मन ग्रन्थ का ''The Theory of Social and Economic Organisation'' के नाम से अनुवाद किया एडवर्ड शिल्ज़ और हेनरी फिंच ने वेबर के ग्रन्थ का अंग्रेजी में अनुवाद ''The Methodology of the Social Sciences''किया। इस तरह ऐसा कोई प्रशासनिक चिन्तक नहीं है जिसने वेबर पर कुछ न कुछ काम न किया हो। संक्षेप में वेबर के विचारों का मूल्यांकन आचोलनाओं के निम्नलिखित परिप्रेक्ष में किया जा सकता है-

1. आलोचकों का कहना है कि आधुनिक प्रशासन के सन्दर्भ में वेबेरियन नौकरशाही अनुभवात्मक रूप से सत्यापित नहीं होती है। लेकिन सच यह है कि वेबर ने जो कुछ लिखा वह जर्मनी की परिस्थितियों के अनुसार लिखा। समाज का स्वरूप भावी दशकों में बदल गया जिसका अनुमान लगाना मुश्किल था। यदि वह यह कहता है कि उसका आदर्श प्रतिमान श्रेष्ठ और स्थायी है तो वह इसीलिए कि उसने अपने मॉडल की तुलना संगठनों के पारम्परिक तथा करिश्माई स्वरूप से की जो उसके समय का यथार्थ था।
2. एक और सम्भावना है, उसने जो कुछ लिखा वह जर्मनी भाषा में है। हो सकता है कि तार्किकता(Rationality) तथा दक्षता(Efficiency) से उसका जो अभिप्राय हो वह अंग्रेजी भाषा में न हो। उसे कानूनी तार्किकता से बहुत लगाव था वह सोचता था कि जैसे जैसे सभ्यता का विकास होगा वह तार्किक होती जायेगी और इस तरह आने वाले समय में उसका नजरिया (आदर्श मॉडल) अधिक स्थायी और दक्षता से परिपूर्ण होता जायेगा। इसमें क्या संदेह है कि तकनीकी दृष्टि से प्रशिक्षित अधिकारी

अप्रशिक्षित कर्मियों से अधिक दक्ष होंगे। पहली शर्त वेबर द्वारा प्रस्तुत मॉडल की है, जबकि दूसरी पारम्परिक और करिशमाई नौकरशाही की है।

3. अब जहाँ तक इस आरोप का प्रश्न है कि वेबर ने औपचारिकतावाद पर बहुत बल दिया है तो यह औपचारिकता आज के प्रशासन का एक यथार्थ बन गयी है। कारण है प्रबन्धन तकनीकों का विकसित होना। ऐलब्रो के अनुसार निर्णय-निर्माण तथा क्रियाशील शोधों(Operational Research) और प्रबन्धन तकनीकों ने प्रशासन को अत्याधिक वैज्ञानिक बना दिया है, जिसकी वजह से प्रशासन का स्वरूप औपचारिक हो गया है। अब नौकरशाही से पीछा छुड़ाना मुश्किल है।
4. इसमें संदेह नहीं है कि वेबर का नौकरशाही मॉडल कोई दैवी उपहार नहीं है। उसमें कमियां होना स्वाभाविक है। उसके सकारात्मक और नकारात्मक दोनों पहलू हैं। योग्यता के आधार पर चयन, तकनीकी अर्हताऐं, अधिकारियों के सत्ता दुरूपयोग पर अंकुश जैसी विशेषतायें सकारात्मक पहलू हैं, जबकि निर्वैव्यक्तिक व्यवस्था, नियमन, पदसोपानीयता, तकनीकी नियम तथा लिखित दस्तावेज नकारात्मक पहलू हैं। लेकिन नकारात्मक पहलू भी आधुनिक प्रशासन की एक अनिवार्यता हैं।
5. यह सही है कि मौजूदा नौकरशाहियों ने वेबर के मॉडल को बदनाम किया है, लेकिन कमी वेबेरियन के मॉडल में नहीं है, बल्कि उसके क्रियान्वयन में है। दूसरे नौकरशाहों के आचरण ने भी इस मॉडल को बदनाम किया है। नौकरशाही जितनी प्रशासन पर हावी होगी उतनी उसकी कुरूपता सामने आयेगी लेकिन यह सेचना कि नौकरशाही विहीन प्रशासन आदर्श होगा अनुचित है। ऐसा संभव नहीं है। प्रयास यह होना चाहिए कि विकास तथा कल्याणकारी कार्यों में नौकरशाही के प्रभावों को कम से कम किया जाये। यहाँ यह भी स्वीकार करना चाहिए कि नौकरशाही के भले ही नये मॉडल तैयार किये जायें लेकिन वे किसी भी रूप में वेबर के प्रभाव से बच नहीं सकते। वेबर नौकरशाही के शोधकर्ताओं तथा भावी प्रशासनिक विद्वानों के लिए प्रोत्साहन का स्रोत है।

13.12 सारांश

1. मैक्स वेबर का नौकरशाही के अध्ययन में महान योदान है। वह सामाजिक विज्ञानों का ज्ञाता था, इसलिए उसका नजरिया बहुत विस्तृत था। प्रत्येक समाजशास्त्रीय नजरिये से तथा ऐतिहासिक और तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर उसने तत्कालीन लोक प्रशासन का विश्लेषण किया तथा इस विश्लेषण के आधार पर उसने नौकरशाही के स्वभाव और स्वरूप को समझने का प्रयास किया। प्रशासन के अध्ययन पर वेबर का प्रभाव अद्वितीय है तथा नौकरशाही की चर्चा बिना वेबर के नहीं की जा सकती।
2. वेबर ने प्रशासन को सर्वप्रथम सत्ता से जोड़ा फिर सत्ता के सन्दर्भ में प्रशासन की व्याख्या की। लेकिन इस व्याख्या से पूर्व उसने सत्ता का भी अध्ययन किया तथा उसे पारम्परिक, करिश्माई तथा वैधानिक वर्गों में बांटा। उसकी नजर में सत्ता वही है, जिसमें वैधता(Legitimacy) हो। उसने एक आदर्श प्रकार की सत्ता की कल्पना की और उसी का विश्लेषण प्रस्तुत किया।
3. वेबर ने कानूनी सत्ता का विचार रखा और उसे तार्किक कहा अर्थात उसने कानूनी-तार्किक सत्ता का विचार रखा। उसके अनुसार नौकरशाही विधिक-तार्किक सत्ता का संस्थात्मक स्परूप है और आधुनिक सरकारों का यही आधार है।
4. वेबर ने विधिक-तार्किक नौकरशाही की विस्तार से अनेक प्रमुख विशेषतायें बताई। इन्हीं विशेषताओं के आधार पर उसने नौकरशाही का मॉडल तैयार किया। इस मॉडल को वेबेरियन मॉडल कहा जाता है।

5. वेबर के अनुसार विधिक-तार्किक सत्ता का सार उसकी वैधता में है और इस वैधता का आधार निर्वैव्यक्तिक व्यवस्था, नियम, दक्षता का वृत्त, पदसोपनीयता, लिखित दस्तावेज, तकनीकी तौर पर अर्ह प्राप्त अधिकारी तथा निजी और लोक ध्येय होते हैं।
6. वेबर नौकरशाही को आधुनिक प्रशासन का एक अभिन्न अंग मानता है जिस से पीछा छुड़ाना असंभव है।
7. मैक्स वेबर का रिग्स के प्रशासनिक विचारों पर गहरा प्रभाव पड़ा है। वैधता, स्थिरता, सन्तुलन और क्षमता जैसे वेबेरियन लक्षणों से रिग्स प्रभावित नजर आता है। लेकिन वेबर तथा रिग्स के विचारों में अन्तर यह है कि जहाँ विधि-सम्मत सत्ता वेबर की नौकरशाही का सार है, वहाँ रिग्स ने नौकरशाही की व्याख्या में परिस्थितिकीय दृष्टिकोण अपनाया है। रिग्स नौकरशाही के स्थान पर समपार्श्वीय समाज तथा उसकी उप-प्रणाली पर जोर देता है।
8. वेबेरियन मॉडल की आलोचना भी हुई है। आलोचकों को संदेह है कि क्या वेबर का मॉडल वास्तव में तार्किक है या नहीं या मात्र एक भ्रम है, क्या यह मॉडल परिवर्तित परिस्थितियों तथा परिवर्तित स्थानों के लिए उपयुक्त है तथा क्या यह मॉडल अधिकतम निपुणता प्राप्त कर सकता है।
9. एक आरोप यह भी है कि वेबर ने अपने मॉडल में मानवीय व्यवहार को अनदेखा किया है। वह केवल मॉडल में संरचनात्मक पहलू पर जोर देता है।
10. वेबेरियन मॉडल का नकारात्मक पहलू भी है और सकारात्मक भी, लेकिन इसका कारण उसकी तत्कालीन जर्मनी की परिस्थितियां हैं।

अभ्यास प्रश्न-

1. मैक्स वेबर ने किस पुस्तक की रचना की?
2. वेबर का नौकरशाही का मॉडल किस बात पर जोर देता है?
3. वेबर नौकरशाही के आदर्श प्रारूप की कौन सी विशेषता है?
4. निर्वैव्यक्तिकता का क्या अर्थ है?
5. कौन सा बिन्दु वेबर के मॉडल की आलोचना में शामिल नहीं है?

13.13 शब्दावली

करिश्मा(Charishma), अरबी का शब्द है। हिन्दी में दैवी या चमत्कारी अर्थात वह शक्ति जिसके माध्यम से दूसरों को प्रभावित किया जा सकता है।

ब्योरियोक्रेसी(Bureaucracy), फ्रैंच शब्द है, जिसका हिन्दी में अनुवाद अधिकारीतंत्र है तथा इसकी प्रकृति के अनुसार नौकरशाही किया गया है। शाब्दिक अर्थ में डेस्क जहाँ फाइलें हों या फिर कार्यालय जहाँ प्रशासन होता है। ब्योरियोक्रेसी कहलाता है। क्योंकि प्रशासनिक अधिकारियों का स्वाभाव शाहों जैसा हो जाता है, हालाकि वे नौकर ही होते हैं, इसलिए अधिकारीतंत्र को नौकरशाही कहा जाता है।

हायरारकी(Hierarchy), हिन्दी में पदानुक्रम या श्रेणीबद्ध कहा जाता है। क्योंकि इसका रूप सीढ़ीनुमा होता है इसलिए पदसोपनीयता का प्रयोग किया गया। यह एक त्रिकोणीय व्यवस्था है जिसमें (संगठन में) अनेक स्तर निम्न से उच्चतर तक जाते हैं। निम्न स्तर उच्च स्तर के आदेशों का अनुपालन करते हैं।

रेशनल(Rational), का हिन्दी में तार्किक या बुद्धिसंगत है। वह बात जो बुद्धि ग्रहण कर सके, जो आस्था या कल्पना पर न टिकी हो अथवा वह बात जो वैज्ञानिक आधार पर सिद्ध हो सके।

13.14 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. The Theory of Social and Economic Organisation, **2.** विधिक-तार्किक नौकरशाही, **3.** पद सोपानीयता, **4.** सत्ता व्यक्ति में नहीं पद में होती है, **5.** लिखित दस्तावेज

13.15 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. Marcus Weeks : Politics in Minutes, London.
2. त्रिलोकीनाथ चतुर्वेदी: तुलनात्मक लोक प्रशासन, जयपुर।
3. Administrative Thinkers (Ed) D. Ravindra Prasad.
4. S.P. Verma : Modern Political Theory V.S. Prasad etc.
5. प्रशासनिक चिन्तक: प्रसाद, प्रसाद, सत्यनारायण।

13.16 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. अवस्थी एण्ड अवस्थी: लोक प्रशासन के सिद्धान्त, आगरा।
2. Max Weber : The Theory of Social and Economic Organization, New York.
3. Max Webr : The Methodology of the Social Sciences, New York.

13.17 निबंधात्मक प्रश्न

1. मैक्स वेबर के आदर्श प्रारूप नौकरशाही के मॉडल की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
2. वेबर के आदर्श मॉडल के मुख्य तत्व क्या हैं?
3. वेबर तथा रिग्स के प्रशासनिक सिद्धान्तों के सन्दर्भ में क्या अन्तर है? तथा वेबेरियन मॉडल की किस आधार पर आलोचना हुई है?

इकाई- 14 मैक्स वेबर का सत्ता प्रतिमान और तृतीय विश्व की प्रशासनिक व्यवस्था

इकाई की संरचना

14.0 प्रस्तावना
14.1 उद्देश्य
14.2 मैक्स वैबर: एक सिद्धान्तकार
14.3 सत्ता का अर्थ
14.4 वेबर की सत्ता की अवधारणा
14.4.1 प्रभुत्व, संगठन और शासित
14.5 मैक्स वेबर तथा सत्ता के प्रकार
14.5.1 परम्परागत सत्ता
14.5.2 करिश्माई सत्ता
14.5.3 कानूनी सत्ता
14.6 तृतीय विश्व की प्रशासनिक व्यवस्था और वेबर का सत्ता प्रतिमान
14.7 तृतीय विश्व में वेबेरियन मॉडल की उपयोगिता
14.8 भारतीय शासन व्यवस्था पर वेबर के मॉडल का प्रभाव
14.9 तृतीय विश्व में वेबेरियन मॉडल की सीमाऐं
14.10 समालोचना
14.11 सारांश
14.12 शब्दावली
14.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
14.14 सन्दर्भ ग्रंथ सूची
14.15 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
14.16 निबंधात्मक प्रश्न

14.0 प्रस्तावना

इस इकाई में मैक्स वेबर द्वारा प्रस्तुत सत्ता की अवधारणा को स्पष्ट किया गया है। मैक्स वेबर एक जर्मन समाजशास्त्री था, जिसने लोक प्रशासन को तुलनात्मक प्रशासन का दर्जा दिया। वास्वत में वेबर का उद्देश्य नौकरशाही का एक मॉडल तैयार करना था। इसके लिए वह कोई अवधारणात्मक संरचना की पहचान करना चाहता था, जो इसे सत्ता के रूप में मिल गई। उसने तत्कालीन जर्मनी की परिस्थितियों तथा उसके अतीत से प्रभावित होकर सत्ता का वर्गीकरण और उसकी विशिष्ट विवेचना की और वह इस नतीजे पर पहुँचा कि तर्कसंगत-विधिक सत्ता ही वास्तविक सत्ता है, जिसमें स्थायित्व है। इस तर्कसंगत-विधिक सत्ता के आधार पर उसने नौकरशाही के आदर्श प्रारूप का एक मॉडल तैयार किया जिसको उसने श्रेष्ठ तथा स्थायी बताया क्योंकि वह विवेक पर आधारित है। वेबर का यह प्रतिमान विश्व की नौकरशाहियों के लिए आदर्श बन चुका है और आज न केवल विकसित देश बल्कि तृतीय विश्व के विकासशील देश भी इसको अपना चुके है।

14.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- सत्ता के बारे में मैक्स के दृष्टिकोण को समझ सकेंगे।

- सत्ता के कितने वर्ग हैं, और उनकी प्रकृति क्या है यह जान सकेंगे।
- पारम्परिक सत्ता, करिश्माई सत्ता तथा तार्किक-विधिक सत्ता में अन्तर क्या है, समझ पायेंगे।
- सत्ता की अवधारणा प्रस्तुत करने में वेबर का लक्ष्य क्या था, यह जान पायेंगे।
- वेबर द्वारा रचित नौकरशाही के आदर्श प्रारूप मॉडल को जान सकेंगे।
- वेबर के आदर्श प्रतिमान को तृतीय विश्व के देशों ने किस उद्देश्य से अपनाया, यह समझ सकेंगे।
- वेबर सत्ता प्रतिमान में क्या कमियां हैं, इन से परिचित होंगे।

14.2 मैक्स वेबर: एक सिद्धान्तकार(Max Weber : A Theorist)

मैक्स वेबर जर्मन समाजवादी थे। समाजवादी के अतिरिक्त वह एक राजनीतिशास्त्री तथा अर्थशासत्री भी थे। तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन क्षेत्र में उनकी अहम भूमिका रही है। यदि यह कहा जाये कि संसार तुलनात्मक प्रशासन को केवल वेबर के कारण से जानता है तो अतिश्योक्ति नहीं होगी। संयुक्त राज्य अमेरिका में तुलनात्मक लोक प्रशासन को जो लोकप्रियता मिली है, उसका सब से बड़ा कारण वेबर की कृतियों का अंग्रेजी में अनुवाद है। रोमन श्वनुर, मैक्स वेबर को ही संयुक्त राज्य में तुलनात्मक लोक प्रशासन की ओर बढ़ते रूझहान का कारण मानता है। अब तक अधिकारीतंत्र या नौकरशाही के जितने सिद्धान्तकार हुए हैं, उन पर वेबर की कृतियों का ही प्रभाव पड़ा है। वेबर वास्तव में एक ऐसा मौलिक सिद्धान्तकार है, जिसके प्रभाव से अन्य जर्मन समाजशास्त्री जैसे- हेन्स गर्थ और राइनहार्ड बैंडिक्स भी अछूते नहीं रह सके। निमरोद राफली ने वेबर के नौकरशाही के आदर्श-रूप प्रतिमान को लोकप्रशासन के साहित्य में एक प्रभावक प्रतिमान माना है। वेबेरियन मॉडल को लोक प्रशासन में एक क्रान्ति माना जाता है। यहाँ एक बात यह याद रखना चाहिए कि वेबर के आदर्श-रूप मॉडल को प्राधिकार या सत्ता के सिद्धान्त से प्रथक करके देखा नहीं जा सकता। इसलिए यदि किसी को वेबर के आदर्श-रूप मॉडल का विश्वलेषण करना है तो वास्तविकता तक पहुँचने के लिए उसे वेबर द्वारा प्रस्तुत सत्ता की अवधारणा को भी समझना चाहिए।

वेबर का स्वाभाव यह था कि उसने अपने आरम्भिक जीवन से ही व्यवस्थित तथा विश्लेषणात्मक अध्ययन में दिलचस्पी दिखाना शुरू की थी। यही कारण है कि उसने जो कुछ लिखा, वह उसकी पैनी नजर तथा यथार्थ सम्बधी अनुभावात्मक अध्ययन का परिणाम था। वह अपने विश्लेषण में उन निर्धारक तत्वों को खोजता है जो उसके सिद्धान्त का आधार बन सकते हैं। ऐसा ही एक निर्धारक तत्व है 'सत्ता' जिसकी विवेचना अगले पन्नों में की जायेगी। सत्ता के अपने नजरिये को वेबर ने अपनी पुस्तक ''The Theory of Social and Economic Organisation'' में प्रस्तुत किया है।

14.3 सत्ता का अर्थ (Meanxing of Authority)

आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त की मौलिक परिकल्पना यह है कि 'राजनीति' को शक्ति के सन्दर्भ में परिभाषित किया जा सकता है, अनेक विचारकों ने ऐसा किया भी है। कैटलिन तथा लासवैल दो ऐसे व्यवहार परकतावादी विचारक हैं, जिन्होंने शक्ति सन्दर्भ में राजनीति विज्ञान की सीमाओं का वर्णन किया है। इनके अतिरिक्त एच0जो0 मारगेन्थाऊ ने अपनी पुस्तक ''Politics Among Nations'' में तथा पी0एच0 ओदेगार्व के ग्रंथ ''American Politics'' तथा वी0 ओ0 की(V.O. Key) की पुस्तक ''Politics, Parties and Pressure Groups'' में शक्ति माध्यम को अपनाकर राजनीति विज्ञान की प्रकृति तथा क्षेत्र में आश्चर्यजनक विकास तथा विस्तार किया गया है। कैटलिन तो ''शक्ति के लिए संघर्ष''(Struggle for Power) को ही राजनीति कहता है। जहाँ तक शक्ति की परिभाषा का सवाल है, साधारण परिकल्पना यह है ''एक व्यक्ति या समूह की दूसरों के व्यवहार को अपनी

इच्छा के अनुसार प्रभावित करने की योग्यता शक्ति है।'' दूसरे शब्दों में ''ऐच्छिक परिणामों को उत्पन्न करने की क्षमता का नाम शक्ति है।''

यहाँ शक्ति की अवधारणा को इसलिए स्पष्ट किया गया है, ताकि 'सत्ता' का अर्थ और उसका उद्देश्य अच्छी तरह समझ में आ जाये। राजनीति विज्ञान के अध्ययन में आजकल तीन शब्द प्रचलित है 'शक्ति', 'प्रभाव' तथा 'सत्ता'। यह तीनों शब्द कहीं न कहीं भ्रम पैदा करते हैं। कारण यह है कि यह तीनों शब्द एक साथ जुड़े हुए हैं। अनेक विचारक, शक्ति को प्रभाव(influence) कहते हैं, अथार्त जिसमें प्रभावित करने की क्षमता हो वह शक्तिशाली है, या जो शक्तिशाली है वह प्रभावित कर सकता है। इसी तरह जिसके पास शक्ति है, वह सत्ताधारी हो सकता है और जो सत्ताधारी है वह प्रभावित कर सकता है। फिर भी शक्ति, प्रभाव और सत्ता में अन्तर है। इस अन्तर को समझना जरूरी है। ''सत्ता'' तथा शक्ति में अन्तर इस तरह है कि ''सत्ता''(influence) वैध (कानूनी) तथा औपचारिक रूप से स्वीकृत शक्ति है। लेकिन शक्ति एक प्रकार का प्रभाव है, जिसमें उत्पीड़न हो सकता है या धमकी हो सकती है, या मनाना (समझाना-बुझाना) (Persuasion) हो सकता है, लेकिन यहाँ सत्ता नहीं होती। ई0वी0 वाल्टर के शब्दों में ''सत्ता में शक्ति भी होती है और प्रभाव भी।'' मैरियम ने अपनी पुस्तक ''Political Power'' में शक्ति और सत्ता के अन्तर को स्वीकार नहीं किया है। लेकिन डैविड ईस्टन, मैरियम से सहमत नहीं है। उसका मत है कि शक्ति उत्पीड़न का साधन है और उसका भौतिक प्रभाव पड़ता है, लेकिन सत्ता सम्मति पर आधारित होती है और शक्ति से अधिक प्रभावशाली होती है। यहाँ लासवैल तथा मैरियम का अपना दृष्टिकोण है। उनके अनुसार यह कहना गलत है कि शक्ति का प्रयोग सदा या साधारणतया हिंसा पर निर्भर होता है। यहाँ निष्कर्ष यह है कि सत्ता वैद्य तथा औपचारिक रूप से स्वीकृत शक्ति है, सत्ता में शक्ति, प्रभाव तथा सम्मति तीनों होती हैं, शक्ति से सत्ता प्राप्त होती है, तथा सत्ता, शक्ति की प्रकृति को निर्धारित करती है।

14.4 वेबर की सत्ता की अवधारणाऐं(Weber's concepts of Authority)

वेबर बहुत यथार्थवादी विचारक है। उसके सिद्धान्तों का आधार उसका अनुभावात्मक दृष्टिकोण है। वह ऐसे देश में (जर्मनी) पला-बढ़ा, जहाँ शक्ति व्यवहारिक तथा दार्शनिक रूप में एक विषय रही थी। उसने देखा की प्रत्येक संगठित समूह एवं प्रशासनिक संस्था में सत्ता के तत्व विद्यमान रहते हैं। जिनके पास उत्तरदायित्व होता है उनके पास सत्ता भी होती है। सत्ता अथवा प्राधिकार की दृष्टि से समूह की रचना होती है। वेबर ने सत्ता को जिस रूप में स्वीकार किया उस का सार उसी के शब्दों में इस प्रकार है, ''सत्ता की परिभाषा में यह सम्भावना छिपी हुई है कि एक विशिष्ट विषय-युक्त आदेश का व्यक्तियों के एक विशिष्ट समूह द्वारा पालन किया जायेगा।'' वेबर भी सत्ता और शक्ति में अन्तर को स्वीकार करता है। उसने शक्ति की परिभाषा देते हुए लिखा, ''वह सम्भावना, जिसमें एक पात्र सामाजिक सम्बन्धों के अन्तर्गत ऐसी स्थिति में हो कि विरोध तथा प्रतिरोध के बावजूद वह अपनी इच्छा को क्रियान्वित कर सके।'' अतः 'शक्ति' अधिक व्यापक अर्थ लिए हुए है और परिस्थितियों के उन सभी संयोजनों पर लागू होती है जिन में व्यक्ति अपनी इच्छा को एक सामाजिक स्थिति में लागू या क्रियान्वित कर सकता है, जबकि सत्ता के प्रयोग में यह आवश्यक नहीं है। सत्ता के प्रयोग की जो शर्त है वह यह है कि व्यक्ति (सत्ताधारी) किसी अधीनस्थ समूह को आदेश दे और उस समूह के सदस्य उस आदेश को तार्किक और औचित्यपूर्ण समझ कर उसका पालन करें। सत्ता संस्थानविकृत होती है। यह संगठित समूह से सम्बद्ध होती है।यहाँ आदेश का पालन कानून के डर से भी होता है और स्वाभाविक रूप से भी लोक प्रशासन के क्षेत्र में वेबर ने जो सिद्धान्त प्रतिपादित किये हैं, उनका सम्बन्ध प्रभुत्व, नेतृत्व और वैधता के सिद्धान्तों से है। उसने सत्ता, प्रभुत्व और नियंत्रण में भी भेद किया है। उसके अनुसार किसी व्यक्ति के सशक्त होने का दावा यह हो सकता है कि वह तमाम विरोधों के बावजूद समाज पर अपनी मर्जी थोपने में सफल हो सके। यही शक्ति उसको सत्ता दिलवाती है। संभवतया इतिहास में इसी 'शक्ति' ने राज्य को जन्म दिया है तथा सत्ताधारी पैदा किये हैं, जिन्होंने राज्य पर नियंत्रण करके अपनी इच्छाओं

को न केवल साकार किया बल्कि उनको वैधता भी दिलवायी। समूह की संरचना का आधार यही शक्ति है। यह वास्तविकता तब उभर कर सामने आती है जब ''एक निश्चित सशक्त समूह विशेष अधिकारियों के माध्यम से अपने आदेशों का पालन करवाने में सफल होता है।'' बैनडिक्स के अनुसार, ''वेबर ने 'सत्ता' को अलग तकनीकी शब्द के रूप में प्रयोग नहीं किया, बल्कि ऐसा लगता है कि उसने इसे नियंत्रण का एक पर्यायवाची समझा।'' वेबर आधिपत्य को वास्तव में अधिनायकवादी सत्ता का आदेश मानता है। इस तरह वेबर आधिपत्य या नियंत्रण को ही सत्ता मानता है। इस आधिपत्य के वह पांच तत्व स्वीकार करता है-

1. एक व्यक्ति या व्यक्तियों का वह समूह, जो शासन करता है;
2. ऐसा व्यक्तियों का समूह, जो शासित होता है;
3. शासितों के आचरण को इच्छा अनुसार परिवर्तित करने वाला शासकों का आदेश या उस आदेश की अभिव्यक्ति;
4. शासकों के प्रभाव का सबूत उनके द्वारा जारी किये गये आदेश की दृष्टिगत इकाई के संदर्भ में; तथा
5. शासित आदेशकर्ता के आदेशों का पालन करते हैं तथा किस हद तक करते हैं, इस प्रभाव का प्रत्यक्ष या परोक्ष साक्ष्य। यहाँ यह ध्यान रखना है कि नियंत्रण या प्रभुत्व के बने रहने का नाम वैधता है। इस तरह वैधता सत्ता के अस्तित्व के लिए एक अनिवार्य शर्त है। वैधता का स्रोत शासित होते हैं। सत्ता के प्रयोग का अर्थ है शासन करना और शासन तभी अर्थपूर्ण है जब उसको शासितों की ओर से स्वीकृति मिली हो। यह स्वीकृति ही वैधता (Legitimaey) है।

14.4.1 प्रभुत्व, संगठन और शासित (Authority, Organization and Ruled)

अपने सिद्धान्तों के प्रस्तुतिकरण में वेबर ने दो उपागमों(Methods) का प्रयोग किया है। पहला, अनुभवात्मक (Empirica) का तथा दूसरा तुलनात्मक(Comparative) का। नियंत्रण के विभिन्न संगठनों में इन उपागमों के माध्यम से उसने विवेचना की है। उसके बाद वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा है कि प्रत्येक प्रकार के प्रशासन में प्रभुत्व के तत्व विद्यमान होते हैं। प्रशासन तथा सत्ता लगभग पर्यायवाची शब्द बन गये हैं। वेबर के अनुसार सत्तायुक्त संगठन में शासितों की अर्थपूर्ण भागीदारी होती है। इस भागीदारी के आधार पर उसने भागीदारों को चार वर्गों में विभाजित किया है-

1. वे लोग जो आदेशों का पालन करने के आदि होते हैं। ऐसे लोगों के लिए आदेशों का पालन करने के लिए उत्पीड़न या मनाने के उपकरणों का प्रयोग नहीं होता। वे अपने स्वभाव से आदेशों का पालन करने के आदी होते हैं। ऐसी स्थिति में दण्डात्मक कार्यवाही या वंचित करने की धमकी का सवाल ही नहीं पैदा होता है।
2. वे लोग जो व्यक्तिगत रूप से तत्कालीन प्रभुत्व के बने रहने में दिलचस्पी रखते हैं, क्योंकि इससे उनको फायदा पहुँचता है। यहाँ वह केवल अपने हित को देखते है और हित की सुरक्षा के लिए वे वर्तमान व्यवस्था को बनाए रखना चाहते हैं।
3. ऐसे लोग जो प्रभुत्व में भागीदार होते हैं, इस अर्थ में कि प्रकार्यों का निष्पादन उनके माध्यम से होता है, तथा
4. वे लोग जो स्वयं को संगठन के प्रकार्यों को निष्पादित करने के लिए तैयार रहते हैं।

शासितों के इस वर्गीकरण से प्रभुत्व को समझने में आसानी होती है। शासकों और शासितों के मध्य रिश्तों का पता चलता है और यह समझ में आता है कि सत्ता क्यों बनी रहती है और कब बिखर जाती है? इस वर्गीकरण से यह भी पता लगता है कि वेबर ने प्रशासन को प्रभुत्व या सत्ता-प्रयोग के रूप में परिभाषित किया है, जबकि दूसरे चिन्तकों ने प्रशासन को सेवा या दायित्व अदा करने के सन्दर्भ में लिया है। लेकिन वेबर का दृष्टिकोण यथार्थवादी है, जबकि दूसरे चिन्तकों का आदर्शवादी या काल्पनिक है।

14.5 मैक्स वेबर तथा सत्ता के प्रकार (Max Weber and Kinds of Authority)

मैक्स वेबर ने सत्ता अथवा प्राधिकार के तीन प्रकार बताये हैं, जो इस प्रकार हैं, पहला- परम्परागत सत्ता, दूसरा- करिश्माई सत्ता और तीसरा- तार्किक-विधिक सत्ता। इन तीनों प्रकार की सत्ताओं की संक्षेप में चर्चा इस प्रकार की जा सकती है-

14.5.1 परम्परागत सत्ता (Traditional Authority)

परम्परागत सत्ता का सम्बन्ध उसके गहरे अतीत से है। संभवतयः तब से जब से संगठित समाज ने राज्य का रूप ग्रहण किया होगा। अतीत ही ऐसी सत्ता की वैधता को निश्चित करता है। यहाँ वैधता केवल एक विश्वास है। एक ऐसा विश्वास जो सदा बना रहता है। यहाँ सत्ताधारी 'मालिक'(Master) कहलाया जाता है। यह मालिक प्रभु भी कहलाए जाते हैं, क्योंकि यह पदवी उनको वंश से मिली होती है। अर्थात अपनी आनुवांशिक हैसियत के कारण वे व्यक्तिगत सत्ता का प्रयोग करते हैं तथा आनुवंशिक हैसियत और परम्परा स्वतंत्र व्यक्तिगत निर्णय लेने, उनका अनुपालन करवाने तथा करने वालों को दण्डित करने का उनको विशेषाधिकार होता है। उनको यह प्रभुत्व वंश विरासत की सामाजिक परम्परा के कारण हासिल होता है। इसमें उनका कोई व्यक्तिगत प्रयास नहीं होता है और न ही इसमें उनकी कोई व्यक्तिगत काबलियत होती है। समाज में उपस्थिति रिवाज उनकी सत्ता को वैधता प्रदान करते हैं और वे निश्चित होकर इस सत्ता के मजे लूटते हैं। वे व्यक्तिगत तौर पर निरकुंश हो जाते हैं, क्योंकि अंधविश्वास व्यक्तियों को प्रभु का भक्त होने का निर्देश देता है। व्यक्ति स्वाभाविक रूप से प्रभु की आज्ञा का पालन करते हैं। यहाँ पालनकर्ता ''अनुचर'' (Followers) कहलाये जाते हैं। परम्परा, अंधविश्वास, पवित्र श्रद्धा तथा भय की भावना परम्परागत सत्ता का आधार बन जाते हैं। विवेक अथवा तर्क यहाँ अर्थहीन हैं। यह सब कुछ एक सामन्ती समाज की विशेषता है जहाँ भक्ति, सेवा, अनुपालन और निष्ठा ही परम्परगत सत्ता के विधिक स्त्रोत हैं। परम्परागत सत्ता की सार्थकता को बनाये रखने के लिए दो उपकरण प्रयुक्त होते हैं-

पहला पैतृक शासन है, जिसमें निजी उपकरण होते हैं- गृह अधिकारी, सम्बन्धी या निजी कृपापात्र या स्वामी भक्त व्यक्ति एक सामन्ती समाज में इस उपकरण के अन्तर्गत व्यक्तिगत भक्त भिन्न होते हैं। इनमें जागीरदार या करदाता सरदार आते हैं। यह शासक व्यक्ति के अधीन होते हैं। इनको अनुचर अधिकारी कहा जाता है जो प्रभु व्यक्ति या सत्ताधारी के निरकुंश आदेशों अथवा परम्परागत आदेशों के अधीन होते हैं। वास्तव में इन अधीन व्यक्तियों की क्रियाऐं प्रभु शक्ति का दपर्ण होती है।

दूसरा सामन्ती समाज है (था)। यहाँ पदाधिकारी व्यक्तिगत रूप से निर्भर नहीं होते हैं। वे स्वामी भक्ति की शपथ लेते हैं, लेकिन अनुदान या संविदा के आधार पर उनका स्वतंत्र क्षेत्राधिकार होता है।

सारांश यह है कि पैतृक सत्ता हो या सामन्ती व्यवस्था, परम्पराऐं तथा निरंकुशता दोनों की विशेषता है। मालिक इच्छा, सनक और उसका मिजाज अनुचर के आचरण को प्रभावित करता है। अर्थात प्रत्येक स्थिति में वह अपने मालिक को खुश करने का प्रयास करता है, भले ही उसका अपना विवेक कुंठित हो जाये।

पारम्परिक सत्ता की अपनी एक विशेष प्रकृति है, जिसको जानना जरूरी है। इस प्रकृति से सम्बन्धित जो लक्षण सामने आते हैं, वे हैं- 1. व्यवस्था की पवित्रता(sanctity of system), जिसके आधार पर विवेकशीलता की माँग की जाती है; 2. सत्ता का स्वामित्व एक आनुवंशिक सरदार के हाथ में जिसके द्वारा की गई नियुक्तियाँ, लिए गए स्वतन्त्र निर्णय तथा दिए गये आदेश, तर्क संगत माने जाते हैं; 3. सत्ता का आधार कानून न होकर व्यक्तित्व होता है, जो नियमों या कानूनों के आधार पर नहीं परिस्थितियों के अनुसार निर्णय लेता है। यह निर्णय तर्कसंगत माने जाते हैं; 4. प्रशासनिक कर्मियों का चयन, भर्ती, उनका क्षेत्राधिकार, योग्यता, सक्षमता और उनका प्रशिक्षण यह सब सरदार की सनक या खब्त(whims) के इर्द-गिर्द घूमते हैं। यह खब्तीपन ही तर्कसंगत माना जाता है; तथा 5. प्रशासनिक संरचना में पद्वानुक्रमता को कोई स्थान नहीं मिलता, सत्ता का कोई बटवारा नहीं होता है और न

शक्ति या अधिकार हस्तान्त्रित होते हैं। साराँश यह है कि पारम्परिक सत्ता में सरदार ही तर्कसंगता का स्रोत है, उसके आदेश तर्कसंगत हैं और उसके मातहत उसकी सनक पर बने रहते हैं या पद मुक्त होते हैं।

14.5.2 करिश्माई सत्ता (Charismatic Authority)

'करिश्मा' वैसे तो एक धार्मिक शब्द है, जिसका प्रयोग यहूदी, ईसाई और इस्लाम के धार्मिक ग्रन्थों में बार-बार हुआ है, इसलिए इसको दैवी शक्ति भी कह सकते हैं। करिश्माई ऐसा व्यक्तित्व होता है जिसमें चमत्कार करने की शक्ति होती है। जिसको देखकर सुनकर या महसूस करके दूसरे व्यक्ति उस चमत्कारी व्यक्ति के प्रति आकृषित होते हैं तथा उसके आदेशों, संदेशों या सुझावों के अनुसार अपनेव्यवहार को ढालते हैं। करिश्माई व्यक्ति को प्रभावित करने के अनेक उपकरण होते हैं-दैवी शक्ति, नेतृत्व की शक्ति, वाक् शक्ति (भाषण देने का कौशल) या प्रकृति प्रदत्त वरदान ये सब वे शक्तियां या प्रभाव हैं जिन का उपयोग करिश्माई व्यक्ति स्वतः करता है। लोग इस व्यक्ति से प्रभावित होते हैं और उसके अनुचर या भक्त बन जाते हैं। चमत्कारी व्यक्तियों में कुछ ऐसे व्यक्ति होते हैं जो अपने करिश्में का सत्ता की प्राप्ति के लिए प्रयोग नहीं करते हैं। लेकिन अक्सर ऐसे लोग जिनमें करिश्माई शक्ति होती है और पूर्णतया सांसारिक होते हैं वे सत्ता की ओर बढ़ते हैं। उनमें नेतृत्व के गुण होते हैं, वे अच्छे वक्ता होते हैं, अनुचरों की दुखती रग को पकड़ने में माहिर होते हैं, भावानात्मक मुद्दे खड़े करते हैं और फिर उन्हें भुनाने की योग्यता रखते हैं। वे लोमड़ी की तरह चालाक और शेर की तरह निर्भीक होते हैं। ऐसे व्यक्ति करिश्माई कहलाये जाते हैं, जिनके पास सत्ता होती और वे आदेश देते हैं तो अनुचर अन्धे भक्तों की तरह उनके आदेश का पालन करते हैं।

भक्त पदाधिकारियों को एक संगठन के रूप में माना जा सकता है। उनकी क्रियाओं का क्षेत्र तथा आदेश की शक्ति, दैवी संदेश, अनुकरणीय आचरण उनके द्वारा लिये गये निर्णयों पर निर्भर करते है। पदाधिकारियों का चुनाव इनमें से किसी एक आधार पर हो सकता है। इनमें से कोई भी पदाधिकारी नियमों या परम्पराओं से बंधा हुआ नहीं होता है। लेकिन सत्ताधारी के निर्णय अधिकारी को बांधकर रखते हैं।

करिश्माई सत्ता को भी उसकी प्रकृति से ही पहचाना जा सकता है। इस सत्ता के पीछे भी तर्कसंगता तथा वैधता छिपी होती है, जो इसके अस्तित्व को बनाए रखती है। करिश्माई सत्ता की प्रकृति को जिन लक्षणों से पहचाना जा सकता है, वे हैं- 1. करिश्मा, नेतृत्व और सत्ता का आपस में गहरा सम्बन्ध होता है। जब नेतृत्व करिश्माई होता है तो सत्ता पर सरलता से कब्जा कर लेता है; 2. करिश्माई सत्ताधारी 'अतिमानव' और 'अतिभौतिक' होता है; 3. प्रशासनिक प्रशिक्षित कर्मचारी, कानून, नियम, चयन, भर्ती, प्रोन्नति, प्रशासनिक वैज्ञानिक संरचना, यह सब करिश्माई सत्ता के सामने तर्कहीन बातें हैं; 4. मानवीय सम्बन्ध का सार है, करिश्माई व्यक्ति और उसके अनुयायी या भक्त। प्रशासनिक स्टाफ है, लेकिन उसका चरित्र, उसके अधिकार या शक्तियाँ करिश्माई नेता तैय करता है। उसका अस्तित्व बना रहे इसलिए लाभ, पद या जागीर का प्रबन्ध किया जाता है; तथा 5. करिश्माई सत्ता के निरन्तर असफल होने का कारण उसकी करिश्मा विहीनता मानी जाती है। वह सत्ता से स्वतः बाहर हो जाता और उसका स्थान नया करिश्माधारी ले लेता है। साराँश में यह नया करिश्माधारी नेतृत्व प्रदान करता है, जो उसकी और उसके अनुयायी की नजर में वैध भी होता है और तर्कसंगत भी।

14.5.3 कानूनी सत्ता (Legal Authority)

मैक्स वेबर ने कानूनी सत्ता को तार्किक-विधिक(Rational Legal) सत्ता कहा है। यह वह सत्ता है जिसकी प्रकृति कानूनी है और जिसको विवेक के आधार पर समझा जा सकता है। कानूनी सत्ता निर्वैव्यक्तिक(impersonal) है जबकि पारम्परिक तथा करिश्माई सत्ताऐं व्यक्तिपरक(Person-oriented) हैं। साधारण शब्दों में जहाँ कहीं नियमों एवं निश्चित सिद्धान्तों के अनुसार न्यायिक और प्रशासकीय कार्यवाही होती है तथा नियमों को न्यायसंगत ढंग से, संगठन के सभी सदस्यों पर समान रूप से लागू किया जाता है, वहाँ कानूनी सत्ता की अवधारणा मूर्त हो जाती है। यह सत्ता वैद्य भी होती है तथा तर्कसंगत भी। वैध इसलिए कि इसे कानूनी स्वीकृति मिली होती है तथा तर्कसंगत

इसलिए क्योकि यह विवेक की कसौटी पर खरी उतरती हैं। यहाँ संगठन की संरचना में कानूनी पहलू को सदा ध्यान में रखा जाता है अर्थात, यहाँ आर्दश(Ideal) की अवधारणा विद्यमान होती है। 'आदर्श' सत्ताधारी है। जो इस 'आदर्श' की शक्ति (नीति-निर्णय) को कार्यान्वित करते हैं, वे श्रेष्ठ होते हैं। यह श्रेष्ठ अधिकारी कहलाये जाते हैं। इनका चयन विवेक, पसंद या सनक के आधार पर नहीं होता है। वे कानूनी परिधि के अन्तर्गत प्रविधि के अनुसार चयनित तथा नियुक्त किये जाते हैं। उनका पहला कर्त्तव्य यह है कि उस वैधानिक व्यवस्था को सुरक्षित रखें जिसकी वे उपज है। सारे अधिकारी कानूनी आदेशों के अधीन होते हैं तथा सब वैधानिक रूप से समान होते हैं। वे व्यक्ति विशेष का नहीं, विधि का पालन करते हैं। यहाँ प्रभुत्व वैधानिक है तथा उसकी सत्ता को कार्यान्वित करने वाले उपकरण भी वैधानिक है। अधिकारियों का एक कानूनी क्षेत्राधिकार होता है वह केवल उसी क्षेत्राधिकार में रहकर काम करते हैं। इस तरह संगठन बाध्य होता है, अर्थात नियमों से बंधा हुआ। कानूनी सत्ता के इस विवरण से जो तथ्य सामने आते हैं, वे इस तरह हैं-

1. सत्ता का स्वरूप कानूनी होता है। उसकी वैधता के लिए परम्पराओं की या विरासत की या फिर किसी करिश्माई शक्ति की आवश्यकता नहीं होती।
2. कानूनी सत्ता विवेक के अनुसार होती है। कानून तर्क-विर्तक के बाद बनते हैं। उनका स्रोत बुद्धि होती है। वे प्रासंगिक भी होते हैं तथा सामाजिक भी।
3. पदाधिकारियों के रूख को उसके अधिकारिक कार्यो से अलग रखा जाता है और यह उम्मीद की जाती है समस्त कार्यवाही वैध तथा लिखित होनी चाहिए।
4. यहाँ हस्तान्तरण का भी नियम लागू होता है। जो व्यक्ति पदों पर आसीन होते हैं, सत्ताधारी व्यक्ति की सत्ता इन पदासीन अधिकारियों को हस्तान्तरित(delegation) हो जाती है।
5. व्यक्ति की वैधानिक सत्ता के क्षेत्र और उसके निजी बाहरी क्षेत्र में बुनियादी अन्तर होता है। सत्ता की ऊँच या नीच वैधानिक आधार पर आंकी जाती है।

उपर्युक्त अध्ययन से यह बात स्पष्ट होती है कि मैक्स वेबर ने यद्यपि आदर्श प्रकार की नौकरशाही का प्रतिमान तो तैयार किया है, लेकिन उसने सत्ता का कोई प्रतिमान नहीं रचा है। हाँ, इतना जरूर है कि उसने सत्ता की एक मनोवैज्ञानिक तथा वैज्ञानिक व्याख्या अवश्य की है। उसने सत्ता की प्रकृति उसके स्वरूप तथा उसकी भूमिका पर खुलकर लिखा है। आगे हम वेबर के सत्तावादी दृष्टिकोण को और अधिक स्पष्ट करने के प्रयास करेंगे। यहाँ हमने पारम्परिक सत्ता, करिश्माई सत्ता, वैध और तर्कसंगत सत्ता को और उससे सम्बन्धित अधिकारियों या कर्मचारियों को 'प्रकृति' के आधार पर समझाने का प्रयास किया है।

मैक्स वेबर तर्कसंगत विधिक सत्ता की प्रकृति की ओर भी ध्यान आकृषित किया है। तर्कसंगत सत्ता की विशिष्ट प्रकृति यह है कि यहाँ निर्वेयक्तिक(impersonal) के द्वारा गठित व्यवस्था या सत्ता के आदेश का पालन किया जाता है। सत्ता विधिपरक होती है। स्पष्ट अर्थ यह है कि आदेश का पालन कानून का पालन है, न कि व्यक्ति विशेष का। इसके अतिरिक्त तर्कसंगत सत्ता में जो अन्य बातें सत्ता की प्रकृति को स्पष्ट करती हैं, वे हैं- 1. कानूनी सत्ता नौकरशाही की प्रशासनिक व्यवस्था को अपनाती है; 2. प्रशासनिक संरचना पदसोपानीय होती है और समस्याओं का निवारण नियमानुसार प्रशासकीय यांत्रिकरण(Administrative Machanism) के माध्यम से होता है; 3. सत्ता निश्चित सुस्पष्ट मानकों के अनुसार प्रशासनिक कार्य निष्पादित करती है। यह तभी सम्भव है जब अधिकारी प्रशिक्षित, तकनीकी दृष्टि से दक्ष, नियमों तथा कानूनों का अनुपालन करने वाले, निष्ठावान और कर्मठ हों। ऐसा होने पर तर्कसंगत सत्ता में नौकरशाही की सर्वोच्चता स्थापित होती है। यहाँ प्रत्येक स्तर पर परिभाषित पद परिभाषित अधिकार एवं क्षेत्राधिकार तथा वैज्ञानिक प्रशासनिक संरचना, नियमन, अनुपालन और अनुशासन केन्द्रीय बिन्दु बन जाते हैं; 4. उत्पादन साधनों का स्वामित्व निजी न होकर सार्वजनिक होता है। निजी सम्पत्ति, सार्वजनिक सम्पत्ति से अलग होती है; 5. प्रशासन लिखित दस्तावेजों पर आधारित होता है। यही वैधानिकता का

तकाजा है; तथा 6. नौकरशाही अपनी शुद्ध प्रवृति के साथ उभर कर आती है। विशिष्ट ज्ञान, कठोर प्रशिक्षण, अपार अनुभव, तकनीकी महारत और सबसे बढ़कर नौकरशाही का एकतंत्रीय दम्भी स्वरूप।

14.6 तृतीय विश्व की प्रशासनिक व्यवस्था और वेबर का सत्ता प्रतिमान(Third World Administrative System and Weber's Authority Model)

मैक्स वेबर के द्वारा निर्मित जिस मॉडल या प्रतिमान की बात की जाती है, वह वास्तव में नौकरशाही के आदर्श प्रारूप का प्रतिमान है। सत्ता की उसकी अवधारणा ने इस प्रतिमान का आधार तैयार किया है। अन्तर केवल यह है कि जहाँ वेबर की सत्ता की अवधारणा में शासक और शासित तथा शासक और अधिकारी तीनों हैं, वहाँ उसके आदर्श प्रारूप में केवल अधिकारीतंत्र या नौकरशाही है। दूसरी एक बात यह है कि उसके द्वारा रचित नौकरशाही का आदर्श प्रारूप केवल तर्कसंगत-विधिक सत्ता से है न कि पारम्परिक या करिश्माई सत्ता से। तीसरे, बेवर ने सत्ता या नौकरशाही के बारे में जो विश्लेषण प्रस्तुत किया है, वह जर्मनी की परिस्थितियों के अनुसार है। लेकिन इसके बावजूद सत्ता सम्बन्धी या नौकरशाही सम्बन्धी उसका नजरिया अकाट्य है तथा विकसित तथा विकासशील सभी देशों के लिए एक नमूना है।

जहाँ तक तृतीय विश्व का सवाल है, पहले तृतीय विश्व को समझना होगा। तृतीय विश्व मात्र एक परिकल्पना है, जिसकी उत्पत्ति औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप पूँजीवाद, साम्राज्यवाद तथा दो विश्व युद्ध जैसे चरणों से गुजरकर हुई। दो विश्व युद्धों के बाद पूँजीवादी देश पूरी तरह से विकसित हो गये और साम्राज्यवाद के बिखरने के बाद अधीनस्थ या उपनिवेश राज्य पूरी तरह आजाद हो गये और उन्होंने एक स्वतंत्र सप्रभुता-सम्पन्न राष्ट्रों का दर्जा हासिल कर लिया। इन नवोदित राज्यों में अधिकांश विकास के रास्ते पर चल पड़े, लेकिन कुछ विकास की दृष्टि से अविकसित ही रहे। इस तरह जिन देशों ने विकसित राज्य का दर्जा पाया उनमें अधिकांश यूरोपीय देश, संयुक्त राज्य अमरीका, सोवियत संघ, जापान इत्यादि हैं, लेकिन जिन देशों ने विकास की ओर चलना आरम्भ किया उनको विकासशील राज्यों का दर्जा मिला चीन(लेकिन चीन अब विकसित राष्ट्र है), भारत, पाकिस्तान, इन्डोनेशिया, मलेशिया, कोरिया, अनेक मध्य ऐशिया तथा सेन्ट्रल ऐशिया के देश। जो देश विकास की रफतार नहीं पकड़ सके अफ्रीका, लैटिन अमरीका के अनेक देश वे अविकसित कहलाये। इस तरह अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के कुछ सिद्धान्तकारों ने विकसित देशों को प्रथम विश्व तथा विकासशील देशों को तृतीय विश्व का नाम दिया। विडम्बना यह है कि दूसरा विश्व कौन सा है, यह कभी स्पष्ट नहीं हो सका। संक्षेप में हम जब तृतीय विश्व की बात करते है तो स्वतः नवोदित राष्ट्र सामने आते हैं।

अब जहाँ तक इस तृतीय विश्व में मैक्स वेबर के सत्ता प्रतिमान की उपयोगिता या प्रासंगिकता का प्रश्न है, यह पहले स्पष्ट किया जा चुका है कि वेबर ने जिस मॉडल को तैयार किया, वह सत्ता के सिद्धान्तों पर अधारित उसके आदर्श प्रारूप नौकरशाही का प्रतिमान ही है।

जैसा कि बताया जा चुका है कि मैक्स वेबर ने आदर्श नौकरशाही प्रतिमान प्रस्तुत करके सत्ता, नौकरशाही तथा प्रशासन की तर्कपूर्ण व्याख्या प्रस्तुत की है। संस्थागत मानव व्यवहार में तर्कसंगतता लाने के लिए सर्वोत्तम साधन आदर्श नौकरशाही ही है। उसने स्पष्ट किया कि यथार्थ में किसी भी संगठन में आदर्श नौकरशाही पूर्णतः नहीं पायी जाती, लेकिन यह आदर्श मॉडल का दोष नहीं है, बल्कि दोष उस संगठन का है, जिसमें बहुत कम मात्रा में आदर्श नौकरशाही के मॉडल को अपनाया गया है।

सत्ता की और विशेष रूप से तर्कसंगत-विधिक सत्ता की अवधारणा पर आधारित मैक्स वेबर के आदर्श नौकरशाही मॉडल को आज विश्व के प्रायः सभी देश अपना रहे हैं, चाहे वह विकसित देश हो अथवा विकासशील या अविकसित। क्योंकि सभी देशों में प्रशासन विकास की चाबी है। और इसमें कोई संदेह नहीं है कि

प्रशासन-तंत्र के जिस ढ़ाँचे को इन देशों ने (विकासशील) अपनाया है, उसका आधार मैक्स वेबर का नौकरशाही का मॉडल ही है।

14.7 तृतीय विश्व में वेबोरियन मॉडल की उपयोगिता (Utility of Weberian Model in Third World)

अधिकांश तृतीय विश्व के देश ब्रिटेन की प्रशासनिक व्यवस्था से प्रभावित रहे हैं, क्योंकि यह देश एक लम्बे समय तक ब्रिटेन के अधीन रहे थे। ब्रिटने की प्रशासनिक व्यवस्था बहुत कुछ हद तक वेबर के नौकरशाही के मॉडल पर टिकी हुई थी, विशेष रूप से अधिकारीतंत्र की दृष्टि से। इसलिए जहाँ-जहाँ ब्रिटिश साम्राज्य का प्रभाव रहा, वहाँ ब्रिटिश तर्ज का प्रशासन पनपा। ब्रिटेन में केन्द्रीय प्रशासन के संचालन में नौकरशाही की अहम भूमिका रही है। ब्रिटिश लोक सेवकों को छः वर्गों में विभाजित किया गया है। यह हैं- प्रशासनिक वर्ग, विशिष्ट वर्ग, लिपिक वर्ग, लेखक सहायक वर्ग, सन्देश वाहक और निम्न वर्ग। नौकरशाही सरकार की नीतियों को क्रियान्वित करने के लिए सदा तत्पर रहती है। स्पष्ट है कि ब्रिटेन से मुक्त नवोदित राज्यों को प्रशासनिक विरासत ब्रिटेन से ही मिली। संक्षेप में, तृतीय विश्व के देशों ने वेबर की नौकरशाही की अवधारणा के जिन तत्वों को अपनाया, उनका सार है-

1. नौकरशाही व्यवस्था को अपनाकर, प्रत्येक नौकरशाह एवं कर्मचारियों का स्पष्ट विभाजन करके उन्हें उत्तरदायी बनाया जाता है।
2. प्रशासनिक व्यवस्था में पदसोपान सिद्धान्त का पालन किया जाता है, जिससे उच्च एवं अधीनस्थ के मध्य आदेश एवं दायित्वों का स्पष्ट विभाजन हो जाता है तथा कार्य निश्चित प्रक्रिया से पूरे होते हैं।
3. इन देशों की प्रशासनिक व्यवस्था में कार्यालयों की सम्पूर्ण कार्यवाही अमूर्त नियमों द्वारा की जाती है, जिससे कार्यों में एकरूपता बनी रहती है।
4. इन देशों की प्रशासनिक संरचना में प्रत्येक पद के कार्यों को कानूनी रूप से परिभाषित एवं मर्यादित कर दिया जाता है, जिससे कार्यों में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं होता है और संगठन में तनाव और संघर्ष की स्थिति कम हो जाती है। यह ध्येय वेबर के आदर्श प्रारूप के प्रतिमान का ही है।
5. प्रतियोगी परीक्षाओं तथा तकनीकी योग्यता के आधार पर अधिकारियों और कर्मचारियों की भर्ती का प्रावधान है। योग्यता और अनुभव को यहाँ मापदण्ड माना जाता है। उचित प्रशिक्षण तथा वरिष्ठता एवं योग्यता के आधार पर प्रोन्नति होती है।
6. तृतीय विश्व के देशों में भी वेबोरियन सिद्धान्त के अनुसार कर्मचारियों को पदसोपान स्तर में पद स्थिति दायित्व आदि के आधार पर वेतन तथा अन्य सुविधाऐं दी जाती हैं, जिससे कर्मचारियों में कार्यों के प्रति प्रेरणा और रुचि बनी रहती है।

14.8 भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था पर वेबर के मॉडल का प्रभाव (Impact of Weber's Model on Indian Administrative System)

तृतीय विश्व का भारत एक महत्वपूर्ण देश है। यह संसार का सबसे बड़ा लोकतंत्र है। अतीत में ब्रिटेन का उपनिवेश रहा है। इसीलिए प्रशासनिक-तंत्र पर ब्रिटेन की प्रशासनिक व्यवस्था की पूरी छाप है। यहाँ संघीय और संसदीय शासन व्यवस्था है। शासन शक्ति के पृथक्कीकरण के सिद्धान्त पर टिका हुआ है। यहाँ प्रशासनिक व्यवस्था 1854 से लेकर 1947 तक अनेक चरणों से होकर गुजरी है। सन् 1858 में कम्पनी के शासन के स्थान पर भारत में ब्रिटिश क्राउन का शासन स्थापित हो गया और सारी शक्तियां प्रशासकों के हाथों में केन्द्रित हो गयी। सर एडमण्ड ब्लण्ट के शब्दों में ''उच्च ब्रिटिश प्रशासनिक अधिकारी असल में भारत के स्वामी बन बैठे। वे किसी अन्य सत्ता के प्रति उत्तरदायी होने की अपेक्षा परस्पर एक-दूसरे के प्रति उत्तरदायी बन गये।'' 1858 से लेकर 1930 तक भारतीय लोक सेवा से संबंधित लगभग सात आयोगों, अधिनियमों और प्रतिवेदनों ने भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था को मूर्त

रूप दिया, जिनमें लोक सेवा आयोग (1926) की स्थापना प्रमुख थी। 1935 के अधिनियम में लोक सेवा आयोग का प्रावधान और उसके कार्यों की विवेचना की गयी। सेवी-वर्ग से जुड़े लगभग सभी विषयों पर कहीं न कहीं वेबर की नौकरशाही के प्रतिमान की झलक नजर आती है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सेवी-वर्ग प्रशासन में सुधारों की गति और तेज हो गयी। ए0 डी0 गोरवाला (1951), पाल0 एच0 एपलबी (1953 एवं 1956) ने भारतीय प्रशासनिक सुधार से सम्बन्धित अपने प्रतिवेदन प्रस्तुत किये जिनमें मैक्स वेबर के नजरिये का सहारा लिया गया। इस तरह भारतीय लोक सेवा की कुछ निश्चित विशेषताऐं सामने आयी, जिनका विवरण इस प्रकार है-

1. भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था राजनीतिक संरक्षण अथवा लूटखसोट प्रणाली के दोषों से मुक्त है, जो अमरीकी प्रशासन की विशेषता थी। यहाँ भर्ती, योग्यता के आधार पर की जाती है। योग्यता की जाँच के लिए खुली प्रतियोगिता होती है, जिसका माध्यम संघीय लोक सेवा आयोग है। राज्यों में यह दायित्व राज्य लोक सेवा आयोग को सौंपा गया है।
2. लोक सेवा आयोग द्वारा चयनित प्रत्याशियों को सेवा पूर्व प्रशिक्षण दिया जाता है।
3. पदोन्नति के न्यायोचित अवसरों, नौकरी की सुरक्षा और अच्छे वेतन की व्यवस्था करके लोक सेवकों के मनोबल और उनकी कार्यक्षमता के स्तर को ऊँचा बनाये रखने का प्रयास किया जाता है।
4. भारतीय लोक सेवा ने ‘बहुद्देशीय’ स्वरूप ग्रहण किये हैं। इससे ‘सामान्य (general or common) प्रशासक’ बनते हैं। प्रशासकों को समय-समय पर प्रशासन की प्रत्येक ‘मेज’ पर काम सौंपा जाता है ताकि वे बहुआयामी प्रशासनिक महारत हासिल कर सकें। आई0ए0एस0 एक बहुपदीय सेवा है, जिसके अधिकारी सामान्य प्रशासन में दक्ष हो जाते हैं। अब निम्न स्तरों पर भी यही नियम लागू होने लगा है। लक्ष्य होता है, सामान्य ज्ञान की प्राप्ति।
5. भारतीय लोक सेवाओं में अधिकारियों का एक चतुवर्गीय विभाजन मिलता है- फर्स्ट, सैंकण्ड, थर्ड और फोर्थ क्लास पब्लिक सर्वेन्ट। इनमें प्रथम तथा दूसरी श्रेणी के अधिकारी ‘राजपत्रित’ होते हैं, जिसका अर्थ है कि इन सेवाओं के सदस्य प्रशासनिक निर्णय प्रक्रिया में उत्तरदायित्व के पदों पर ही कार्य करेंगे।
6. प्रशासनिक संगठन की संरचना लगभग वैसी ही है, जिसकी वकालत मैक्स वेबर ने की है। अथार्त ‘पदसोपानीय व्यवस्था।’
7. अधिकारी निर्वैव्यक्तिक सिद्धान्त में विश्वास रखते हैं तथा नियमों, अधिनियमों और कानूनों का पालन करते हैं जिसकी सिफारिश वेबर ने की है।

सारांश में, भारतीय लोक सेवा कम से कम सिद्धान्त में तो आदर्श नौकरशाही के प्रतिमान पर आधारित है।

14.9 तृतीय विश्व में वेबेरियन मॉडल की सीमाऐं (Limitations of Weberian Model in Third World)

तृतीय विश्व के देशों (विशेष रूप से भारत, पाकिस्तान, बंगलादेश तथा श्री लंका) की प्रशासनिक व्यवस्थाऐं अभी विकासोन्मुख दौर से गुजर रही हैं, जबकि वेबर का आदर्श नौकरशाही मॉडल विकसित देशों के सन्दर्भ में है। विकसित देशों में चहुमुखी विकास हुआ है- आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, नैतिक तथा मानव क्षेत्र में, इतना ही नहीं वैज्ञानिक, तकनीकी क्षेत्र में और भौतिक तथा अधिभौतिकी क्षेत्र में भी। तृतीय विश्व के देशों की यह स्थिति नहीं है। इसलिए वेबोरियन मॉडल की सभी विशेषताओं को इन देशों में अपनाना अभी सम्भव नहीं है। तृतीय विश्व के देश विकास और आधुनिकता की ओर कदम बढ़ा रहे हैं, लेकिन अशिक्षा, निर्धनता तथा परम्परावाद प्रगति के मार्ग के रोड़े हैं। सबसे बड़ी समस्या है, नैतिक पतन की जो प्रशासिनक भ्रष्टाचार का कारण है। अन्य समस्यायें इस तरह है-

1. तृतीय विश्व के देशों की प्रशासनिक प्रणाली में राजनैतिक हस्तक्षेप बहुत अधिक है। यहाँ राजनीति और प्रशासन में घनिष्ठ संबंधहै। यह स्थिति वेबेरियन मॉडल के लिए अनुकूल माहौल तैयार नहीं कर सकती।
2. वेबर का मॉडल आदर्श नौकरशाही के औपचारिक सम्बन्धों पर जोर देता है, जबकि तृतीय विश्व के देशों में अनौपचारिक सम्बन्ध भी प्रशासन को प्रभावित करते हैं। वेबर ने कहीं भी औपचारिक क्रियाओं को मान्यता नहीं दी है।
3. वेबर के मॉडल में प्रत्येक प्रकार के 'आदर्श' पर जोर दिया गया है, लेकिन तृतीय विश्व में 'आदर्श' मात्र एक कल्पना है और यहाँ उदासीनता, विलम्ब, भ्रष्टाचार और अनुशासन हीनता का बोल बाला है। अतः प्रशासन के प्रत्येक स्तर पर 'आदर्श' का अभाव है, जो वेबेरियन मॉडल को निरर्थक बना देता है।
4. वेबर की आदर्श प्रशासनिक संरचना 'पदसोपान' के सिद्धान्त पर आधारित है, लेकिन तृतीय विश्व के देशों की प्रशासनिक संरचना में पदसोपान का उल्लघंन करना आम बात है। पद सोपान का उल्लंघन करके पदोन्नतियों तथा अतिरिक्त पद तक सृजित किये जाते हैं।
5. तृतीय विश्व के अधिकांश देश निर्धन हैं। ऐसी स्थिति में इन देशों के प्रशासनिक संगठनें में पद के अनुरूप उचित वेतन तथा अन्य सुविधायं दिये जाना संभव नहीं है।
6. तृतीय विश्व के देशों में यद्यपि सैद्धान्तिक रूप से भर्ती एवं प्रोन्नति मानकों और नियमों के अनुसार करने की बात कही जाती है, लेकिन वास्तविकता यह है निश्चित प्रक्रिया से कम तथा अनैतिक तरीकों से अधिक की जाती है। इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि इन देशों में वेबर के मॉडल की आदर्श बातों को अपनाया जाना संभव है।

14.10 मूल्यांकन(Evaluation)

प्रत्येक संगठित समूह तथा प्रशासनिक संस्था में सत्ता के तत्व विद्यमान रहते हैं। लेकिन सत्ता का वास्तविक अर्थ क्या है? इस पर एक लम्बे समय से बहस छिड़ी हुई है। सत्ता, शक्ति, प्रभाव, नियंत्रण लगभग सब एक जैसे ही शब्द हैं। यद्यपि इनमें अन्तर स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है, लेकिन फिर भी भ्रम बना रहता है। वेबर ने सत्ता और शक्ति में अन्तर किया है। अपनी इच्छा को दूसरे पर थोपने को वह शक्ति कहता है। या इच्छानुसार दूसरे के आचरण के बदलने के शक्ति कहा जा सकता है। लेकिन ऐसा प्रभाव या नियंत्रण के माध्यम से भी सकता हो। सत्ता के प्रयोग से भी इस लक्ष्य की पूर्ति हो सकती है, इसीलिए भ्रम बना रहता है। लेकिन जब वेबर सत्ता को वैधता से जोड़ता है तो सत्ता का अर्थ कुछ हद तक स्पष्ट हो जाता है, इसलिए शक्ति का व्यापक अर्थ है और 'सत्ता' का सीमित। सत्ता, शासन और प्रशासन से जुड़ी हुई है इसीलिए वेबर ने प्रशासन के सन्दर्भ में सत्ता की विवेचना करना अधिक उपयुक्त समझा है।

मैक्स वेबर सत्ता का कोई प्रतिमान निर्मित नहीं करता है, बल्कि अपने नौकरशाही के सिद्धान्त के आदर्श प्रारूप मॉडल की रचना करता है। 'सत्ता' को उसने अपने नौकरशाही के आदर्श मॉडल की रचना का आधार बनाया है। इसलिए उसने सत्ता की विस्तृत विवेचना की है।

यहाँ सच यह है कि वेबेरियन नौकरशाही को अनुभवात्मकता के पैमाने पर स्पष्ट नहीं किया जा सकता। विश्व का स्परूप बदला है, हालात बदले हैं और यहाँ नई परिस्थितियों में वेबर का मॉडल प्रशासनिक युक्ति को पूरा करता नजर नहीं आता है। सत्ता की अवधारणा प्रस्तुत करके और उसका वर्गीकरण करके वेबर क्या सिद्ध करन चाहता है? यह कहीं स्पष्ट नहीं होता है। केवल यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि 'सत्ता' का विश्लेषण करके उसने अपनी आदर्श प्रारूप की नौकरशाही के प्रतिमान के लिए भूमिका तैयार की। उसने यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि उसका आदर्श प्रारूप सर्वश्रेष्ठ और स्थायी है और ऐसा उसने अपने कानूनी-तार्किक प्रतिमान की पारम्परिक तथा करिश्माई सत्ता से तुलना करके किया।

वेबर ने 'तार्किकता' और 'प्रभावोत्पादकता'(efficiency) को किस अर्थ में लिया है यह वह स्पष्ट नहीं कर सका। वह वैधानिक तर्कसंगतता का प्रेमी था, इसलिए वह यह दावा करता था कि उसका मॉडल अधिकतम प्रभावोत्पादकता के लक्ष्य को प्राप्त कर सकेगा। शायद उसका विश्वास यह भी था कि जैसे-जैसे समाज का स्वाभाव बदलेगा, उसका मॉडल स्थायित्व प्रदान करेगा।

उसके आदर्श प्रतिमान की आलोचना औपचारिकता के सन्दर्भ में भी गई है। वह अपने सिद्धान्त में औपचारिकता पर जोर देता है, लेकिन इस आलोचना में भी कोई सार नहीं है। प्रबन्धन तकनीकों, निर्णय-निमार्ण की अवधारणा ने व्यवहारिक शोधों इत्यादि ने प्रशासन को वैज्ञाकिनता प्रदान कर दी है, जिसके फलस्वरूप प्रशासन में औपचारिकता का बढ़ना स्वाभाविक है। वेबर के मॉडल में सकारात्मक तथा नकारात्मक दोनों पहलू हैं। योग्यता तथा तकनीकी महारत के आधार पर अभ्यर्थियों का चयन तथा अधिकारियों के सत्ता दुरूपयोग से बचने के तरीके सकारात्मक पहलू हैं, लेकिन निर्वैव्यक्तिक व्यवस्था, नियम, दक्षता का वृत्त, पदसोपान, तकनीकी नियम तथा लिखित दस्तावेज नकारात्मक बातें हैं। वेबर ने नकारात्मक बातों को अपने मॉडल में अधिक महत्व दिया है, जिसके कारण मॉडल के सकारात्मक पहलू छिप गये हैं।

लेकिन आज वास्तविकता यह है कि वेबर के मॉडल के आधार पर विश्व के लगभग सभी जनतंत्रीय देशों ने अपनी प्रशासनिक व्यवस्था में नौकरशाही को अपनाया है और अब उससे पीछा छुड़ाना असंभव प्रतीत होता है, क्योंकि नौकरशाही का कोई दूसरा विकल्प नहीं है और न ही ऐसी कोई संभावना है। हाँ, इतना जरूर है कि उसका मॉडल तृतीय विश्व के देशों पर उतना सटीक नहीं बैठता, जितना वह चाहता था।

14.11 सारांश

1. सामाजिक चिन्तकों में जर्मन समाजशास्त्री मैक्स वेबर का नाम सर्वाधिक लोकप्रिय है। वह एक बहुआयामी व्यक्तित्व का मालिक था। वह समाजशास्त्री भी था, राजनीति शास्त्री भी और अर्थशास्त्री भी। इन तीनों शास्त्रों की झलक उसके प्रशासनिक चिन्तन में स्पष्ट है। वेबर तुलनात्मक लोक प्रशासन की अध्ययन का अगुआ था। उसके इस नजरिये का प्रभाव सबसे अधिक अमरीकी प्रशासन पर पड़ा। उसका प्रभाव इतना अधिक है कि कोई भी प्रशासनिक विचारक उसके आदर्श मॉडल से बच नहीं सका।
2. मैक्स वेबर ने नौकरशाही के आदर्श प्रारूप के मॉडल का एक तार्किक खाका तैयार किया, लेकिन इस खाके को मूर्त रूप देने के लिए उसने एक भूमिका तैयार की। सत्ता की उसकी अवधारणा, उसका विश्लेषण तथा उसका वर्गीकरण ऐसी ही भूमिका है। लक्ष्य उसका नौकरशाही का आदर्श मॉडल तैयार करना था, सत्ता का उसका विचार एक माध्यम था।
3. वेबर के अनुसार प्रत्येक संगठित समूह एवं प्रशासनिक संस्था में सत्ता के तत्व विद्यमान रहते हैं। सत्ता राज्य का केन्द्रीय बिन्दु है। सत्ता के तीन वर्ग है- पारम्परिक सत्ता, करिश्माई सत्ता तथा तार्किक-विधिक सत्ता। यह तार्किक-विविधिक सत्ता(Rational-legal Authority) ही है, जिसको वेबर ने पारम्परिक तथा करिश्माई सत्ता से पृथक करके नौकरशाही के अपने आदर्श प्रारूप के मॉडल का आधार बनाया है।
4. वेबर ने 'आदर्श' की भी व्याख्या की है। उसके अनुसार आदर्श रूप का आशय कुछ वास्तविक तथ्यों के तर्कसंगत आधार पर यथार्थ अवधारणाओं का निर्माण करना है। आदर्श रूप वास्तविक नहीं है, बल्कि यह वास्तविकता के काल्पनिक आधार से निर्मित किये जाते हैं। पहले एक 'आदर्श' की कल्पना की जाती है फिर उस 'आदर्श' के आधार पर एक विशिष्ट की रचना की जाती है। यही प्रक्रिया वेबर ने आदर्श-रूप की नौकरशाही के मॉडल के निर्माण के लिए बनाई है।
5. वेबर के आदर्श-प्रारूप नौकरशाही प्रतिमान के दो भाग हैं- नौकरशाही संगठन के रूप में, तथा नौकरशाही तार्किक नियम सत्ता के रूप में। उसने इन भागों को विस्तार से समझाया है।

6. आदर्श रूप नौकरशाही की वेबर ने ग्यारह विशेषतायें बताई है, जिनमें स्पष्ट श्रम विभाजन, आदेश तथा दायित्वों के मर्यादित क्षेत्र, अमूर्त नियम, कार्यालयों का परिभाषित कार्यक्षेत्र, अधिकारियों की नियुक्ति का आधार स्वतंत्र संविदा, प्रत्याशियों का चयन तकनीकी योग्यता के आधार पर, मासिक भत्ते व पेन्शन, पूर्ण-कालिक सेवा, आजीवन सेवा, साधनों पर अधिकारियों के स्वामित्व का कोई अधिकार नहीं और निर्वैव्यक्तिकता की भावना इत्यादि।
7. तृतीय विश्व के देशों की प्रशासनिक व्यवस्था पर वेबर के आदर्श रूप के मॉडल की स्पष्ट छाप नजर आती है। लगभग सभी देशों ने नौकरशाही की व्यवस्था को अपनाया है।
8. लेकिन तृतीय विश्व के देशों में वेबर का मॉडल इसीलिए प्रभावशाली नहीं हो सकता, क्योकि यहाँ नैतिकता का स्तर बहुत नीचा है। आज भी यहाँ निर्धनता पैर पसारे है, इसीलिए प्रशासन में अनुशासनहीनता, भ्रष्टाचार, कत्तर्व्यविहीनता तथा अक्षमता अपनी चरम सीमा पर हैं, जो वेबर के सिद्धान्तों के विरूद्ध है।

अभ्यास प्रश्न-

1. मैक्स वेबर ने किस पुस्तक की रचना की?
2. वेबर ने किस देश की परिस्थितियों से प्रभावित होकर अपना आदर्श प्रारूप मॉडल तैयार किया?
3. कौन सा भाग सत्ता नहीं है?
4. सत्ता के कितने प्रकार हैं?
5. पदसोपान किसकी विशेषता है?

14.12 शब्दावली

निर्वैव्यक्तिक(impersonal)- जो व्यक्ति के रूप में अवस्थित न हो अथवा जिसमें मित्रवत् मानवीय भावनाऐं न हो अथवा वह पद जिसका पदाधिकारी से निजी सम्बन्ध न हो।

तर्कसंगत- वह बात जो विवेक या बुद्धि की कसौटी पर खरी उतरे। जिसका आस्था या विश्वास से सम्बन्ध न हो। जो वैज्ञानिक हो/जहाँ कार्य, कारण और परिणाम का निश्चित सम्बन्ध हो।

आदर्श(Ideal)- वह बात जिसका सम्बन्ध विचार या प्रत्यय से हो, जो कल्पित या काल्पनिक हो अथवा यथार्थ के विपरीत हो या वह जिसका रूप अन्तिम सत्य से मिलता हो।

वैधता(Legitimacy)- कानूनी स्वीकृति, विधिसम्मत, सत्ता को समाज या जनता की मान्यता, संविधान के अनुसार शक्ति का प्रयोग।

14.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. General and Industrial Management, **2.** जर्मनी, **3.** आदर्श, **4.** तीन, **5.** नौकरशाही की

14.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. त्रिलोकीनाथ चतुर्वेदी: तुलनात्मक लोक प्रशासन, जयपुर।
2. प्रसाद, प्रसाद: प्रशासनिक चिन्तक, नई दिल्ली।
3. अवस्थी एण्ड अवस्थी: लोक प्रशासन के सिद्धान्त, आगरा।
4. ऐ0 अवस्थी, लोक प्रशासन, आगरा।
5. अशोक कुमार: प्रशासनिक चिन्तक, आगरा।

14.15 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. S.P. Verma : Modern Political Theory, Agra.
2. Vatsyayan : Principles of Sociology, Meerut.

3. जाकिर हुसैन: राजनीतिक सिद्धान्त, बरेली।
4. Weber : The Theory of Social and Economic Organization, Newyork.
5. R. Merton : Reader in Bureaucray, Glenco.

14.16 निबंधात्मक प्रश्न

1. तर्कसंगत-विधिक सत्ता और करिश्माई सत्ता को स्पष्ट कीजिए।
2. वेबर की नौकरशाही का आदर्श प्रारूप क्या है? तृतीय विश्व के देशों में वेबर के सत्ता प्रतिमान की सीमाओं को स्पष्ट कीजिए।

इकाई- 15 एफ0डब्ल्यू0 रिग्स का सामाजिक प्रारूप- प्रिज्मैटिक समाज और साला मॉडल

इकाई की संरचना

15.0 प्रस्तावना

15.1 उद्देश्य

15.2 एफ0डब्ल्यू0 रिग्स: एक परिचय

15.3 रिग्स द्वारा वेबर की आलोचना

15.4 तुलनात्मक लोक प्रशासन तथा रिग्स की भूमिका

15.5 रिग्स के आदर्श मॉडल

15.5.1 कृषका समाज

15.5.2 औद्योगिका समाज

15.5.3 ट्रांजीशिया मॉडल

15.6 विस्तृत प्रिज्मीय-चक्रीय मॉडल

15.6.2 रिग्स का विस्तृत मॉडल

15.6.3 विवर्तित मॉडल

15.7 रिग्स का समपार्श्वीय समाज

15.7.1 विजातीयता

15.7.2 औपचारिकता

15.7.3 अतिराव या सर्वव्यापिता

15.8 रिग्स का साला मॉडल

15.8.1 साला मॉडल की प्रकृतियाँ

15.8.2 प्रिज्मीय समाज और परिवर्तन

15.8.3 साला तथा प्रिज्मीय समाज में सम्बन्ध

15.9 प्रिज्मीय समाज की आलोचना

15.10 रिग्स के मॉडलों का मूल्यांकन

15.11 सारांश

15.12 शब्दावली

15.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

15.14 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

15.15 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

15.16 निबंधात्मक प्रश्न

15.0 प्रस्तावना

तुलनात्मक लोक प्रशासन के विकास में फ्रेड डब्ल्यू0 रिग्स का योगदान उल्लेखनीय है। उसने प्रशासनिक व्यवस्थाओं और उनके पर्यावरण के मध्य होने वाली क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं में अनेक महत्वपूर्ण अवधारणाओं एवं सिद्धान्तों की खोज की। रिग्स के अध्ययन-क्षेत्र विशेष तौर पर विकासशील तथा संक्रमणशील (transitional) समाज रहे हैं। रिग्स का नया प्रशासनिक प्रिज्मीय समाज निश्चय ही विकासशील एवं अर्द्धविकसित समाजों में प्रशासन की गतिशीलता को सम्झने का एक महत्वपूर्ण माध्यम या मॉडल है। रिग्स ने परिस्थितिकीय दृष्टिकोण तथा संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम को अपनाकर सामाजिक विश्लेषण किया है।

प्रशासनिक अध्ययन की दृष्टि से उसने समाजों को दो भागों-कृषका तथा औद्योगिका में विभाजित किया है, यद्यपि यह उसकी काल्पनिक अवधारणा है। उसने प्रिज्मीय समाज की अवधारणा प्रस्तुत की है, लेकिन इससे पहले उसने 'फ़्यूज्ड' (विस्तृत तथा अविस्तृत), 'डिफ्रेक्टेड' (विवर्तनीय) तथा 'समपार्श्वीय' की रूपरेखा प्रस्तुत की और अन्तः 'साला मॉडल' का विचार रखा। इस इकाई में उसके इन सभी मॉडलों, समाजों और नजरियों की व्याख्या, आलोचना तथा समालोचना को समझाया गया है।

15.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- रिग्स के तुलनात्मक लोक प्रशासन के विकास योगदान को जान पायेंगे।
- उसके द्वारा अपनाये गये परिस्थितिकीय दृष्टिकोण तथा संरचनात्मक-कार्यात्मक दृष्टिकोण को समझ पायेगें।
- उसके द्वारा प्रस्तुत कृषका-औद्योगिक समाज से परिचित होंगे।
- उसके द्वारा रचे गये प्रिज्मीय मॉडल को विस्तृत समाज तथा चक्रीय समाज के सन्दर्भ में समझ सकेंगे।
- उसके द्वारा 'साला' मॉडल की परिकल्पना के बारे में जान सकेंगे।
- प्रिज्मीय समाज की विशेषताओं, प्रकृतियों, साला तथा प्रिज्मीय समाज के सम्बन्धों तथा प्रिज्मीय समाज में परिवर्तन की समस्याओं को समझ सकेंगे।
- रिग्स की किन आधारों पर आलोचना की गई, यह जान सकेंगे।

15.2 एफ0डब्ल्यू0 रिग्स: एक परिचय(F.W. Riggs : His Life and Work)

पिछली इकाई में एफ0 डल्ब्यू0 रिग्स के बारे में बहुत कुछ लिखा जा चुका है। यहाँ हम संक्षेप में केवल इतना बतायेंगे कि तुलनात्मक लोक प्रशासन के विकास में 'इण्डियाना विश्वविद्यालय' के प्रोफेसर रिग्स का महत्वपूर्ण योगदान है। वह वैज्ञानिक दृष्टिकोण के धनी थे, इसलिए उन्होंने प्रशासनिक व्यवस्थाओं और उनके वातावरण के बीच होने वाली क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं तथा उनके नतीजों का वैज्ञानिक नजरिये से अध्ययन किया और इन नतीजों के आधार पर ऐसे सिद्धान्तों की खोज की जो उनकी परिकाल्पनिक अवधारणाओं का अन्तः आधार बने। जिन समाजों का रिग्स ने अध्ययन किया, उनमें खास तौर से विकसित तथा संक्रमणशील (transitional) समाज थे। अपने तुलनात्मक नजरिये को ठोस आधार देने के लिए रिग्स ने फिलिपाइन्स (1958-59), भारत (1959), थाईलैण्ड (1957-58) तथा कोरिया (1956) आदि देशों का दौरा किया। वहाँ उन्होंने विश्वविद्यालयों में भाषण दिये तथा वहाँ की सामाजिक-प्रशासनिक व्यवस्थाओं का तथ्यात्मक अध्ययन किया। अपने इस अनुभावात्मक (empirical) अध्ययन के आधार पर उन्होंने तुलनात्मक लोक प्रशासन पर सैद्धान्तिक और व्यवहारिक विवेचन के लिए नये-नये मॉडल प्रस्तुत किये। इन मॉडलों में रिग्स का नया प्रशासनिक मॉडल-समपार्श्वीय या प्रिज्मैटिक (Prismatic Society) बहुत ही विख्यात हुआ है। इस मॉडल से निश्चय ही विकासशील एक अर्द्धविकसित अर्थव्यवस्थाओं में प्रशासन की गतिशीलता को समझने में आसानी हुई है। इस मॉडल के आधार पर समाजों की पुरानी हो चुकी प्रशासनिक संरचनाओं को सुधारने या उनको नयापन देने का उपकरण मिलता है।

15.3 रिग्स द्वारा वेबर की आलोचना (Rigg's Criticism of Weber)

किसी प्रशासनिक चिन्तक का मैक्स वेबर से पीछा छुड़ाना बड़ा मुश्किल लगता है। यही बात रिग्स के साथ भी है। किसी नये मॉडल की रचना के लिए यह जरूरी है कि वह प्रचलित मॉडल को नकारे। रिग्स ने तुलनात्मक लोक

प्रशासन के प्रचलित मॉडलों की आलोचना करते हुए उनको अपर्याप्त माना, विशेष रूप से उसने सबसे पहले वेबर के नौकरशाही के मॉडल पर उंगली उठाई। वेबर अपने नौकरशाही के मॉडल को 'आदर्श'(Ideal) बताता है। रिग्स को शब्द 'आदर्श' के प्रयोग पर ही आपत्ति है। उसके अनुसार 'आदर्श' मात्र एक कल्पना है, इसलिए वेबर का नौकरशाही का मॉडल भी एक स्वायत्त प्रशासन व्यवस्था की कल्पना मात्र है। यह यथार्थ से दूर है और विकासशील समाजों के अध्ययन के लिए न्यायसंगत नहीं है। कारण यह है कि विकसित समाजों में प्रशासनिक संरचनाऐं स्वायत्त (Autonomous) होती हैं, लेकिन विकासशील समाजों में प्रशासन की संरचनाऐं स्वायत्त नहीं होती, वे एक-दूसरे पर निर्भर करती हैं। जिसका अर्थ है कि विकासशील समाज के प्रशासन की अन्य समाजिक तत्वों के साथ क्रिया-प्रतिक्रिया की प्रक्रिया चलती रहती है। अक्सर ऐसा देखा गया है कि विकासशील समाजों में प्रशासनिक इकाईयों द्वारा प्रशासनिक के अतिरिक्त गैर-प्रशासनिक कार्य भी किये जाते हैं। इस तरह इन इकाईयों का प्रशासनिक स्वरूप विलुप्त हो जाता है। इस स्थिति में रिग्स का कहना यह है कि विकासशील देशों की प्रशासनिक व्यवस्था को वेबर के नौकरशाही मॉडल के आधार पर नहीं समझा जा सकता।

इसलिए रिग्स का मत है कि विकासशील अथवा अर्द्धविकसित समाजों के अध्ययन के लिए नई तकनीकें, नई अवधारणाऐं और नये मॉडल तैयार करने होंगे और उनको नये सन्दर्भों में लागू करना होगा। यह नई अवधारणाऐं ऐसी होनी चाहिए जिनमें पुरानी (पारम्परिक) और आधुनिक संरचनात्मक लक्षणों का ताल-मेल हो। रिग्स ने अपने ग्रंथ ''Administration in Developing Countries: Theory of Prismatic Society'' में सपष्ट किया है कि समाजों को नये यर्थाथवादी नजरिये से देखना और उन समाजों की मागों के अनुसार नई अवधारणाओं की रचना करना जरूरी है। वेबर के मॉडल के द्वारा विकासशील समाजों की विभाजीय विशेषताऐं अभिव्यक्त नहीं हो सकती। टेल्कॉट पारसन्स ने भी रिग्स के दृष्टिकोण का समर्थन किया है। उसके अनुसार बदली हुई परिस्थितियों तथा तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन में हुए नये विकासों के कारण नई तकनीकों तथा नये मॉडलों की आवश्यकता महसूस की जाने लगी है।

15.4 तुलनात्मक लोक प्रशासन तथा रिग्स की भूमिका(Comarative Administration and Rigg's Role)

औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप अनेक प्रशासनिक मॉडल सामने आये। इनका विकास पश्चिमी देशों तथा अमरीका में हुआ था। लेकिन दूसरे विश्व युद्ध के बाद परिस्थितियां बदली। साम्राज्यवाद बिखर गया। नये राष्ट्र अस्तित्व में आये, जिनको अविकसित या विकासशील देशों का दर्जा मिला। यह देश ऐशिया, अफ्रीका तथा लैटिन अमरीका में हैं। जब इन देशों में विकसित देशों के प्रशासनिक मॉडलों को लागू किया गया तो यह लगभग असफल होते नजर आये, कारण था यहाँ की विशेष परिस्थितियां तथा व्यवस्थाऐं जो विकसित देशों से भिन्न थी। इन देशों में इनकी उपयोगिता और प्रांसगिकता संदिग्ध थी। विकसित देशों के मॉडल यथास्थिति को बनाये रखने के उद्देश्य से थे, लेकिन विकाशशील देशों में स्थिति को बदलना था।

अतः रिग्स ने इस वास्तविकता को समझा। उसने पूर्णतः एक नई अवधारणा विकसित करने का निश्चय किया। इसी क्षेत्र में दूसरे चिन्तकों ने प्रयास किये। इस तरह इस नई अवधारणा की खोज के परिणामस्वरूप तुलनात्मक लोक प्रशासन अस्तित्व में आ गया। अब तुलनात्मक लोक प्रशासन के माध्यम से जिस क्षेत्र का अध्ययन करना था वे दो क्षेत्र थे- अन्तरसांस्कृतिक तथा अन्तर्राष्ट्रीय प्रशासन। यहाँ रिग्स ने तुलनात्मक प्रशासन के अध्ययन के लिए तीन विस्तृत धाराओं (Trends) की पहचान की। यह हैं- प्रतिमानात्मक से अनुभावात्मक (normative to empirical), भावसूचक से तथ्यपरक (ideographic to nomathetic) और गैर-परिस्थितिकीय से परिस्थितिकीय (non-ecological to ecological)।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि प्रतिमानात्मक वर्णन में तो केवल आदर्श का अध्ययन होता है लेकिन अनुभावात्मक अध्ययन के द्वारा व्यवहारिक पहलुओं को समझा जाता है। इसी तरह भावात्मक पद्धति विशिष्ट का अध्ययन करती है लेकिन तथ्यात्मक पद्धति सामान्यीकरण की ओर जाती है। नियमों तथा परिकल्पनाओं का सहारा लेकर व्यवहार की निरन्तरता को अन्तर सम्बन्धों की परिवर्तनशील तत्वों के साथ नियमित्ता प्रदान करती है। रिग्स परिस्थितिकीय दृष्टिकोण को सब से अधिक पसंद करता है। रिग्स ने अपने सिद्धान्तों को समझाने के लिए विशेष रूप से तीन महत्वपूर्ण साधनों का प्रयोग किया है- (1) परिस्थितिकीय दृष्टिकोण, (2) प्रकार्यात्मक-संरचनात्मक दृष्टिकोण तथा आदर्श प्रारूप (मॉडल)। पहले तथा दूसरे साधन की चर्चा पिछली इकाई में हो चुकी है। यहाँ आदर्श मॉडल पर बहस की जायेगी।

15.5 रिग्स के आदर्श मॉडल (Rigg's Ideal Models)

रिग्स विकासशील देशों की प्रशासनिक व्यवस्थाओं का विश्लेषण करना चाहता था, इसलिए उसने अनेक आदर्श प्रतिमानों का विकास किया। रिग्स ने प्रत्येक समाज के लिए पांच मूलभूत कार्य माने हैं-आर्थिक, सामाजिक, संरचनात्मक, प्रतीकात्मक तथा राजनीतिक। इस तरह इन पांचों कार्यों को नजर में रखकर उसने संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक(Structural-Functional Approach) दृष्टिकोण का सहारा लिया, जिसकी प्रेरणा उसको 1955 में डवाइट वाल्डो से मिली थी। रिग्स ने वाल्डो के सिद्धान्त पर चिन्तन किया और 1956 या 1957 में कृषका-औद्योगिका (Agraria-Industria) विद्या का उल्लेख अपने ग्रन्थ ''Agraria and Industrial Towards a Topography of Comparative Administration'' में पहली बार किया। कृषका का अर्थ है- कृषक समाज तथा औद्योगिका का अर्थ है- औद्योगिक समाज। अर्थात अपने आरम्भ में यह दो समाज विकसित हुए। उसने इम्पीरियल चीन तथा संयुक्त राज्य अमरीका के सन्दर्भ में कृषका (चीन) तथा औद्योगिका (अमरीका) को दृष्टि में रखकर अपने मॉडल विकसित किये। वह इस परिकल्पना के साथ आगे चला कि सभी समाज कृषका से औद्योगिका में बदलते हैं। (रूप परिवर्तन होता है)।

रिग्स के अनुसार दोनो समाजों की अपनी-अपनी विशेषतायें तथा लक्षण होते हैं। कुछ विचारकों का मानना है कि समाज का ऐसा विभाजन समाजों की संक्रमणकालीन अवस्था(Transitional period) को जानने में उपयोगी नहीं हो सकता।

15.5.1 कृषका समाज (Agraria Society)

रिग्स ने कृषका समाज के छः संरचनात्मक लक्षणों की पहचान की है, जो इस तरह हैं- आरोपित या काराणात्मक मूल्य (Ascriptive Value), विशिष्ट लक्षण(Diffused Pattern), असंगठित या विसरित ढांचा(Limited Social and Spatial Mobiltiy), सीमित सामाजिक तथा स्थानकेन्द्रित गतिशीलता(Simple and Stable Occupational differences), साधारण और स्थिर पेशागत भिन्नताऐं(Simple and Stable Occupational differences), भेदपूर्ण स्तरीकरण व्यवस्था का अस्तित्व(Existence of differential stratification System)।

संक्षेप में रिग्स द्वारा कृषका समाज के लक्षणों को दर्शाने का उद्देश्य यह है कि किस तरह कृषका समाज अस्तित्व में आता है, संचालित होता है तथा धीमी गति से स्वयं को बदलने का प्रयास करता है। ऐसे समाज के अपने मूल्य होते हैं जो आरोपित होते है या जिनका कोई कारण होता है। विशिष्टता ऐसे समाज की पहचान होती है(सामन्तवाद)। प्रशासनिक ढांचा विसरित होता है, फैला हुआ। गतिशीलता में धीमापन होता है। मतभेद बहुत होते हैं, जिनके दूर होने में विलम्ब होता है, भिन्नताऐं बहुत होती हैं।

15.5.2 औद्योगिक समाज (Industrea Society)

रिग्स ने औद्योगिक समाज की भी छः विशेषतायें बताई हैं, जो इस प्रकार हैं- उपलब्धि के मानक(Achievement Norms), सार्वभौमिकता(Universality), विशिष्टता(Specificity), उच्चतर सामाजिक और स्थान केन्द्रित गतिशीलता(Higher Social and spatial Mobility), पूरी तरह विकसित व्यावसायिक ढ़ाँचे (Well developed occupational patterns) और समतावादी-वर्ग व्यवस्था की मौजूदगी(Existence of Egalitarian class System)।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि औद्योगिक समाज में आर्थिक दृष्टि से उपलब्धि के कुछ मानक हैं, जिनमें प्रति व्यक्ति आय तथा राष्ट्रीय उत्पादन वृद्धि विशेष है। साथ ही प्रशासन विकास के भी कुछ मानक हैं, जिन पर अन्य सारे विकास टिके होते हैं। ऐसे समाज की रूपरेखा सार्वभौमिक होती है, लेकिन विशिष्ट स्थिति स्पष्ट होती है। समाज अत्याधिक गतिशील होता है तथा व्यवसायिक ढ़ाँचे पूरी तरह विकसित होते हैं। राजनीतिक तौर पर समानता होती है।

15.5.3 ट्रांजीशिया मॉडल (Transitia Model)

रिग्स के कृषका तथा औद्योगिक मॉडलों के बारे में आलोचकों का तर्क यह था कि विशुद्ध औद्योगिक समाज कहीं भी नहीं पाया जाता है, इसी तरह कृषि समाज निरन्तर औद्योगिक समाजों की ओर बढ़ते रहे हैं। इसीलिए रिग्स का यह मॉडल यथार्थ के समीप नहीं है, इसलिए इसकी उपयोगिकता भी नहीं है। रिग्स के यह मॉडल अमूर्त और काल्पनिक हैं तथा प्रशासनिक दृष्टि से यह महत्वहीन हैं। फिर भी रिग्स के कृषका तथा औद्योगिका मॉडलों ने प्रशासनिक चिन्तन को आगे बढ़ाया। लेकिन क्योंकि स्वंय इन प्रतिमानों को वह अपर्याप्त समझ रहा था, इसीलिए इन मॉडलों को नजर में रख कर और वह और आगे बढ़ा। उसका ट्रांजीशिया मॉडल उसके इसी नजरिये का नतीजा है।

रिग्स ने शब्द ट्रांजीशिया(Transitia) ट्रांजिट अथवा ट्रांजीशन(Transition) से गढ़ा है, जिसका अर्थ है- संक्रान्ति या संक्रमणकाल। 'ट्रांजीशिया' से उसका अभिप्राय है, कृषका समाज और औद्योगिका समाज के मध्य का संक्रमणकाल। ऐसे समाज तब अस्तित्व में आते हैं, जब कृषका समाज औद्योगिका समाज में बदलता है। ट्रांजीशिया मॉडल रिग्स की नजर में एक साम्य(Equilibrium) या संतुलित मॉडल है। 'ट्रांजीशिया' में कृषि समाज तथा औद्योगिक समाज दोनों की विशेषताऐं मौजूद होती हैं, लेकिन इससे पहले कि रिग्स के ट्रांजीशिया मॉडल की कुछ पहचान बनती, इसकी भी आलोचना होने लगी। आलोचकों के अनुसार ट्रांजीशिया मॉडल की भी सीमाऐं हैं, जो इस प्रकार हैं-

1. यह मॉडल (संकेतों का अध्ययन) संक्रमणकालीन समाजों के अध्ययन में ज्यादा सहायक नहीं हो सकता।
2. मिश्रित समाजों के विश्लेषण में इस पद्धति से किसी विशेष यांत्रिकी का प्रयोग नहीं किया जा सकता, क्योंकि आधुनिक समाजों में कहीं न कहीं कृषक विशेषताऐं पाई जाती हैं।
3. यह मॉडल कृषका समाज से औद्योगिक समाज में बदलने का दिशाहीन मार्ग उपलब्ध कराता है तथा,
4. इस मॉडल में प्रशासनिक व्यवस्था के पर्यावरण के विश्लेषण पर बहुत कम जोर दिया गया है।

15.6 विस्तृत प्रिज्मीय-चक्रीय मॉडल (The Fused-Prismatic Diffracted Model)

रिग्स ने उक्त कमियों को भी महसूस किया और विकासशील देशों के लिए नये मॉडलों का विकास किया। अब उसका नया मॉडल था, विस्तृत प्रिज्मीय-चक्रीय मॉडल (Fused-Prismatic Diffracted Model)। यहाँ रिग्स ने लोक प्रशासन के अध्ययन के मॉडलों की रचना सामाजिक संरचना तथा इसके कार्यो के आधार पर करने का प्रयास किया है, जो अनेक कार्य समपन्न करती हैं। बहु-कार्यात्मकता(Multi-functionality) को कार्यात्मक दृष्टि से अपविस्तृत (Diffused) कहा जाता है, जो सामाजिक संरचना विशेष तथा सीमित कार्य करती है, उसे

कार्यात्मक रूप से 'विशिष्ट' कहा गया है। इसी विशिष्ट को रिग्स ने 'चक्रीय' (Diffracted) कहा है। 'फ्यूज्ड' तथा 'डिफरेक्टेड' के मध्यवर्ती समाजों को रिग्स 'प्रिज्मैटिक' कहता है। इस तरह रिग्स के नये मॉडल का नाम है: 'फ्यूज्ड-प्रिज्मैटिक-डिफरेक्टेड' मॉडल या 'विस्तृत-समपार्श्वीय-चक्रीय प्रतिमान। इसे विवर्तन(diffracted) भी कहा जा सकता है। रिग्स के इस मॉडल का अवधारणात्मक आधार है-

1. संरचात्मक और प्रकार्यात्मक नजरिये के आधार पर मॉडल का विकास।
2. किसी विस्तृत(Fused) समाज में एक ही संरचना अनेक तरह के कार्य सम्पन्न करती है, जबकि किसी विवर्तित या चक्रीय समाज में विशिष्ट प्रक्रियाओं को पूरा करने के लिए पृथक-पृथक संरचनाओं का निर्माण होता है।
3. विस्तृत समाज तथा विवर्तित(defused) समाजों के मध्य दूसरे समाज भी मौजूद रहते हैं, जिनमें दोनों के लक्षण विद्यमान होते हैं, इसी समाज को प्रिज्मीय(Prismatic) या समपार्श्वीय समाज कहा जाता है। ऐसे समाजों को इन्द्रधनुषी भी कह सकते हैं।
4. रिग्स का विश्वास यह भी है कि कोई भी समाज न तो पूरी तरह से विस्तृत होता है और न ही पूरी तरह से विवर्तित या चक्रीय। व्यापक तौर पर सभी समाज प्रिज्मीय होते हैं।
5. रिग्स की नजर में यह 'आदर्श' प्रकार के मॉडल हैं, जो किसी वास्तविक समाज में नहीं पाये जाते हैं। परन्तु कुछ समाज इनके नजदीक होते हैं जो निजी उद्देश्यों के लिए उपयोगी होती हैं।

15.6.1 रिग्स का विस्तृत मॉडल (Rigg's Fused Model)

रिग्स का विस्तृत मॉडल 1957 के दशक के साम्राज्यवादी चीन, थाईलैण्ड और कंबोडिया के अनुभावात्मक अध्ययन पर आधारित है। तब इन समाजों में प्रकार्यों का कोई वर्गीकरण नहीं था। एकल संरचना से प्रकार्य सम्पन्न होते थे। यह कृषक समाज थे। इनमें औद्योगिकता और आधुनिकता का अभाव था। प्रशासनिक व्यवस्था में राजा की अहम भूमिका थी। मुख्य प्रशासक सभी प्रकार की आर्थिक, प्रशासनिक गतिविधियों को संचालित करता था। शासक जनता के प्रति उत्तरदायी नहीं था। जनता वफादारी के लिए प्रतिबद्ध थी। समाज में मुख्य भूमिका राजा की हो या राजपरिवार की, प्रशासन-तंत्र ऐसे समाजों में शासक-वर्ग का ही पंगू होता है। उसे प्रजा का नहीं राजा का ध्यान रखना होता है। ऐसे समाजों की प्रशासनिक व्यवस्था विशिष्ट, मनोनीत और राजपरिवार की संरचना पर आधारित होती है। यथास्थिति को बनाये रखना इसका सर्वोच्च लक्ष्य होता है। संक्षेप में विस्तृत मॉडल की विशेषताओं का सार है- यथास्थिति को बनाये रखना; बिना विकसित संचार व्यवस्था के समाज में स्थिरता; जन समाज की ओर से न कोई मांग, न बहस बस केवल आज्ञापालन; दमनकारी और निरंकुश सत्ता का स्वरूप; निजी स्वार्थों की पूर्ति; न्याय और अन्याय में कोई अन्तर नहीं; औपचारिक तथा अनौपचारिक में कोई अन्तर नहीं; तथा कारगात्मक मूल्यों की भूमिका और जनता का व्यवहार पारंपरिक।

15.6.2 विवर्तित मॉडल (Diffracted Model)

विवर्तित, ऐसे समाज हैं जो सार्वभौमिकता के नजरिये पर टिके होते हैं, इसलिए इन समाजों में दूसरों के साथ कोई भेदभाव नहीं किया जाता है। यहाँ विशिष्टीकरण का स्तर बहुत ऊँचा होता है। संरचनाऐं अनेक होती हैं। एक विशेष कार्य, एक विशेष संरचना के माध्यम से होता है। यहाँ कारणात्मक मूल्य विहीन सामज होते हैं। इन समाजों में मूल्य, परिस्थितियों के अनुसार बनते हैं। गतिशीलता और विवर्तितता इन समाजों की विशेषता है। वर्ग संरचना का स्पष्ट होना भी एक विशेषता है।

इन समाजों के सभी मॉडल, वैज्ञानिक संरचनाओं तथा तर्कसंगतता पर आधारित होते हैं। संक्षेप में विवर्तितमॉडल की जो अन्य मुख्य विशेषताऐं हैं, वे इस प्रकार हैं- ऐसे मॉडलों के समाजों की आर्थिक व्यवस्था बाजार आधारित होती है और उसका प्रत्येक पहलू बाजार की प्रकृति से प्रभावित और संचालित होता है; प्रकार्यों में भिन्नता होती है तथा उनका निष्पादन उन्हीं प्रकार्यों के अनुरूप संरचनाऐं करती हैं; संचार प्रौद्योगिकी उन्नत दशा में होती है; यहाँ

की सरकारें जनकल्याणपरक(Welfare oriented) होती है। यहाँ मानव अधिकार परम मूल्यों के रूप में स्वीकार किये जाते हैं; जन मागें प्रबल होती हैं। हर तरह की बहस को मान्यता मिलती है। सरकारें उनका सम्मान करती हैं; सरकारों पर जनता का नियंत्रण रहता है। जनभावना का आदर किया जाता है; सरकारी मशीनरी दमनकारी नहीं होती। इसका यह अर्थ नहीं है कि सरकार अराजकता को भी सहन करती है। तथ्य केवल यह है कि कानून और व्यवस्था के नाम पर ऐसे समाज जो असीमित और असंवैधानिक दण्डात्मक कदम नहीं उठाये जा सकते। जनता कानूनों का स्वाभावतः पालन करती है; लोगों में सामाजिक जीवन के मूलभूत पक्षों को लेकर व्यापक सहमति होती है।

15.7 रिग्स का समपार्श्वीय समाज (Rigg's Prismatic Society)

रिग्स ने कार्यात्मक दृष्टि से समाजों को तीन भागों में विभाजित किया था- बहुकार्यात्मक, एकल कार्यात्मक तथा समपार्श्वीय(Prismatic)। परन्तु तार्किक रूप से कोई भी समाज न तो पूर्णरूप से बहुकार्यात्मक(Multifunctional) होते हैं और न ही पूरी तरह एकलकार्यात्मक(Unifunctional)। सभी समाज मध्यवर्ती स्थिति में होने के कारण एक सीमा तक समपार्श्वीय होते हैं। रिग्स के अनुसार समपार्श्वीय या प्रिज्मैटिक मॉडल बहुकार्यात्मक तथा एकलकार्यात्मक प्रतिमानों का मध्य बिन्दु हैं और यह वास्तविक समाजों को समझने में पूरी तरह सक्षम हैं। यहाँ परिकल्पना यह है कि सभी समाज गतिशील होने के कारण संक्रमणकाल(Transitional period) से गुजरते हैं। इन सभी समाजों का एक प्रशासनिक व्यवहार होता है। प्रिज्मैटिक मॉडल इस प्रशासनिक व्यवहार को समझने में सहायक होता है। भारत, चीन, मिस्त्र, पाकिस्तान, बांग्लादेश, नाइजीरिया, कोलम्बिया आदि के समाजों को प्रिज्मैटिक कहा जा सकता है। इन समाजों में पुराने और नये का या परम्परात्मकता और आधुनिकता का (विचारों, क्रियाओं, व्यवहारों में) मेल देखने को मिलता है।

रिग्स ने प्रिज्मीय मॉडल की रचना अपने सभी पूर्व के मॉडलों व उनके निचोड़ का सहारा लेकर की है। रिग्स के अनुसार प्रिरज्मीय समाज में तीन विशेषताऐं होती है- विजातीयता, औपचारिकता और सर्वव्यापिता या अतिराव। संक्षेप में इनकी विवेचना इस प्रकार है-

15.7.1 विजातीयता(Heterogenity)

विजातीयता किसी भी प्रिज्मीय समाज की अपनी विशेषता होती है। प्रिज्मीय समाज में एक साथ अनेक व्यवस्थाऐं व्यवहार और दृष्टिकोण मौजुद रहते हैं। शहरी क्षेत्रों में अभिजात्य(Elite Class) बौद्धिक वर्ग निवास करता है। वहाँ आधुनिकता होती है। प्रशासनिक इकाईयों पर पश्चिमी जगत की छाप नजर आती है, लेकिन जो देहाती क्षेत्र हैं और जहाँ लोग परम्परावाद से ग्रस्त है, वहाँ गांव का मुखिया राजनीतिक, प्रशासनिक, धार्मिक तथा सामाजिक दायित्वों को पूरा करता है। यह विजातीयता प्रशासनिक व्यवस्था की मुख्य विशेषता बन जाती है।

1. रिग्स विजातीयता को सामाजिक परिवर्तन के लिहाज से असंगत मानता है। विजातीयता प्रशासनिक व्यवस्था को असंतुलित बनाती है जो प्रशासनिक विकास की दृष्टि से ठीक नहीं है। लेकिन यह प्रिज्मीय समाज की विशेषता है जिस से रिग्स इन्कार नहीं कर सकता।
2. प्रिज्मीय समाज में पश्चिमी तर्ज पर आधुनिकता अपने परम शिखर पर पहुँचने का प्रयास करती है। यह प्रक्रिया नगरों में बहुत तीव्र होती है, लेकिन दूसरी तरफ गावों में इस आधुनिकता के दर्शन नहीं होते। लोग परम्पराओं की जकड़ में होते हैं। आधुनिक सुविधाओं का पूरी तरह अभाव होता है। यहाँ तक कि रात प्रायः अंधकारमयी होती है।
3. प्रिज्मीय समाज के हर क्षेत्र में विजातीय विद्यमान रहती है। पश्चिमी जगत की शिक्षा, मूल्य, जीवन शैली, स्वास्थ्य व्यवस्था सब को प्राथमिकता दी जाती है,लेकिन पारम्परिक तरीकों को बनाये रखा जाता है। यही विजातीयता का अर्थ है।

4. राजनीतिक दृष्टि से प्रिज्मीय समाज बड़ा संघर्षयुक्त होता है। विशेष रूप से यह जनतंत्रीय उदारवादी समाज होता है, जिसका लाभ शासक और शासित दोनों उठाते हैं। यहाँ 'यथा प्रजा तथा राजा' की कहावत चलती है। जनता स्वाभाव से अनुशासनहीन होती है। सत्ताधारी राजनेता भी स्वार्थी, पदलोलुप और भ्रष्ट होते हैं। राजनीतिज्ञों का लक्ष्य सत्ता पाना, सत्ता से चिपके रहना होता है। ऐसे में तनाव, अस्थिरता, हिंसा और अराजकता प्रिज्मीय समाज की विशेषता बन जाती है।
5. जिन प्रिज्मीय समाजों में धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक बहुलवाद है (भारत, पाकिस्तान, श्रीलंका) वहाँ वर्गीय हित सर्वोपरि होते हैं, जिसके कारण टकराव की संभावना बढ़ जाती है, (प्रायः एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमरीका में यही स्थिति बनी रहती है)। असमानताऐं, विषमताऐं, वर्ग-विभेद, जातीयता, धर्मान्धता इत्यादि का सबसे पहला कुप्रभाव प्रशासन व्यवस्था पर पड़ता है। प्रशासन-वर्ग हितों का अखाड़ा बन जाता है। क्रान्ति की संभावना भी बढ़ जाती है।

15.7.2 औपचारिकतावाद(Formalism)

औपचारिकता प्रिज्मीय समाज की दूसरी विशेषता है। व्यवहार या तो औपचारिक होते हैं या अनौपचारिक। प्रशासन में इन व्यवहारों का अपना महत्व होता है। रिग्स की नजर में परम्पारिकता और वर्णात्मकता के मध्य, औपचारिक और प्रभावी शक्ति के मध्य, संवैधानिक, कानूनी, नियमनीय, संगठनात्मक और संख्यात्मक के प्रभावों तथा शासन और समाज के वास्तविक तथ्यों के मध्य किस हद तक असंगति या अन्तर होता है, इस बात का सम्बन्ध औपचारिकतावाद से है। एक ओर औपचारिक रूप से लागू किये गये और दूसरी ओर प्रभावशाली ढंग से व्यवहार में लाये गये मानकों के मध्य और वास्तविकताओं तथा सत्ताके निर्धारित उद्देश्यों के मध्य मौजूद रिक्तता तथा दोषों का मापक औपचारिकतावाद है। दूसरे शब्दों में व्यवहार और सिद्धान्त का अन्तर औपचारिकतावाद समझता है। इस रूप में औपचारिकतावाद प्रिज्मीय समाज की एक विशेषता बन जाती है।

इस तरह औपचारिकता तथा वास्तविकता में जितनी विसंगति होगी, व्यवस्था में उतनी ही अधिक औपचारिकता के लक्षण मौजूद होंगे। प्रिज्मीय समाज की तुलना में विस्तृत तथा चक्रीय समाजों में अधिक यथार्थ होता है, लेकिन प्रिज्मीय समाज में औपचारिकतावाद अधिकतर होता है। संक्षेप में औपचारिकतावाद में जो मुख्य विशेषताऐं उभर कर सामने आती हैं, वे इस प्रकार हैं-

1. यद्यपि अधिकारियों के कार्यों के निष्पादन को कानून, नियम, अधिनियम इत्यादि निर्देषित करते हैं, लेकिन इन अधिकारियों का वास्तविक व्यवहार अधिक महत्वपूर्ण होता है। वे नियमों के अनुसार भी काम करते हैं और उनको तोड़ भी देते हैं। इस के कारण तीन हैं, पहला- सरकार पर उद्देश्यों को पूरा करने के लिए दबाव की कमी; दूसरे- नौकरशाही की क्रियात्मकता पर सामाजिक प्रभाव की दुर्बलता; तीसरे- नौकरशाहों का निरंकुश आचरण। इस तरह अधिकारियों का आचरण बड़ा अपूर्वानुमेय (unpredictable) बन जाता है। वे कब क्या करेंगे, इस बारे में कुछ अनुमान नहीं लगाया जा सकता।
2. इस कर्त्तव्यविहीन, दिशाहीन और निरकुंश या मनमाने आचरण का कारण सरलता से पैसा कमाना, पैसा कमाने की परिस्थितियाँ पैदा करना और काम के प्रति उदासीन रहकर भ्रष्टाचार को बढ़ावा देना होता है। इस तरह औपचारिकतावाद समाज में भ्रष्टाचार का स्रोत बन जाता है।
3. सामाजिक जीवन में भी औपचारिकतावाद व्याप्त रहता है। सामाजिक और सांस्कृतिक पहलुओं से सम्बन्धित कानून तो बनते हैं, लेकिन उनका सम्मान किया जाता है और न वे लागू किये जाते हैं। सरकार इनको लागू करने के प्रति संजीदा नहीं होती है। विकासशील देशों की तो यह विशेष खासियत है।
4. रिग्स ने संवैधानिक औपचारिकतावाद की ओर भी इशारा किया है। इसका अर्थ है संवैधानिक सिद्धान्तों तथा उनके वास्तविक लागू करने में अन्तर। भारत इस की एक मिसाल है। उदाहरण के लिए भारत में संवैधानिक दृष्टि से मुख्यमंत्री का चुनाव विधानसभा के सदस्य करें, लेकिन करती है केन्द्रीय राजनीतिक

पार्टी। कानूनों को बनाने का अधिकार संसद को है लेकिन कानून बनाती है नौकरशाही। इस संवैधानिक औपचारिकतावाद से नौकरशाही बलवान होती है। वास्तविकता तो यही है कि प्रिज्मीय समाज में कानून का शासन नहीं व्यक्ति (अधिकारी) विशेष का शासन होता है। सत्ता राजनीतिज्ञों के हाथ में नहीं, नौकरशाहों के हाथ में होती है। नौकरशाह एक समूह में एक राजनीतिक दल का रूप ले लेते हैं। राजनीतिक दल एक औपचारिकता मात्र रह जाते हैं।

15.7.3 अतिराव या सर्वव्यापिता (Overlapping)

रिग्स के अनुसार, अतिराव या सर्वव्यापिता(Overlapping) प्रिज्मीय समाज की तीसरी विशेषता है। जब संरचना औपचारिक रूप से प्रभावशाली नहीं बन पाती तो अतिराव की समस्या पैदा हो जाती है। बहुकार्यात्मक और एकलकार्यात्मक अथवा विस्तृत एवं चक्रीय समाजों में यह समस्या नहीं होती है, किन्तु प्रिज्मीय समाजों में ऐसा होता है। यहाँ नई सामाजिक संरचनाऐं सामाजिक व्यवस्था को प्रभावित करती रहती हैं। संक्षेप में अतिराव के कारण प्रिज्मीय समाज में जो बातें उभर कर सामने आती हैं वे इस प्रकार हैं-

1. प्रिज्मीय समाज मं अभिनव(New) या आधुनिक सामाजिक संरचनाओं का निर्माण होता है, लेकिन पुरानी और अविस्तृत संरचनाऐं अपना वर्चस्व बनाये रखती हैं।
2. यद्यपि नये मानकों और मूल्यों का जिनका सम्बन्ध आमतौर से चक्रीय संरचना से होता है, औपचारिक मान्यता मिलती है, लेकिन सच यह है कि उन पर जबानी खर्च (पाखण्ड) होता है। लेकिन पारम्परिक मूल्यों के पक्ष में इन नये मानकों और मूल्यों की अनदेखी होती है।
3. देखा यह गया है कि प्रशासनिक व्यवहार यथार्थ में राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक तथा अन्य गैर-प्रशासनिक तत्वों से प्रभावित होता है। जितना प्रभावित करने की क्षमता बढ़ती है, उतना अतिराव बढ़ता है। इस तरह इन समाजों में गैर-प्रशासनिक तत्व प्रशासन को विशेष तौर पर प्रभावित करते हैं, इसलिए अतिराव बना रहता है।
4. अतिराव के कारण प्रिज्मीय समाज में कुछ खास पहलू उभर कर सामने आते हैं, जिनके परिणाम स्वरूप जो विशेषताऐं पनपती हैं, वे हैं- भाई-भतीजावाद; बहु-सम्प्रदायवाद; बाजार-कैन्टीन की अर्थ व्यवस्था; बहु-मूल्यता; तथा सत्ता और नियंत्रण की पृथकता।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि प्रिज्मीय समाज में वे सारी बुराईयाँ पनपती हैं जो मानवीय मूल्यों के लिए चुनौती होती हैं।

15.8 रिग्स का 'साला मॉडल' (Rigg's Sala Model)

साला 'स्पेनिश' भाषा का शब्द है, जिसका प्रयोग लैटिन-अमरीकी देशों में सरकारी कार्यालयों के लिए किया जाता है। इस शब्द का हिन्दी में कोई रूपान्तर नहीं है। इसलिए शब्द 'साला'(Sala) ही प्रयोग किया जा सकता है। रिग्स का प्रिज्मीय मॉडल सम्पूर्ण सामाजिक परिवेश और व्यवहार पर विचार करता है। प्रिज्मीय समाज, रिग्स के अनुसार, आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और प्रशासकीय उप-व्यवस्थाओं(Sab-Systems) से मिलकर बनता है। रिग्स की नजर में ये 'उप-व्यववस्थाऐं' ही 'साला' मॉडल है। कुछ विचारकों ने विस्तृत समाज में 'साला' जैसी शक्ल की प्रशासनिक इकाई को 'ब्यूरो' अथवा 'ऑफिस' अथवा 'चैम्बर' कहा है, लेकिन यह गलत है। साला, ब्यूरो, ऑफिस या चैम्बर से हटकर अपनी अलग विशिष्टता वाली इकाई है। प्रशासनिक तार्किकता और क्षमता व्यूरो की विशेषता है। साला में यह तत्व मौजूद नहीं रहते। एक अवधारणा यह भी है कि रिग्स ने प्रिज्मीय समाज में नौकरशाही के लिए 'साला' शब्द का प्रयोग किया है, लेकिन साला नौकरशाही का समर्थक नहीं हो सकता। साला की प्रकृति बहुत जटिल है और इसमें नौकरशाही की सभी विशेषताओं का होना संभव नहीं है। साला मॉडल से जो तथ्य उभर कर सामने आते हैं वे इस प्रकार है-

1. साला में अधिकारियों का चयन प्रतियोगी परीक्षाओं के माध्यम से, लेकिन अन्ततः नियुक्ति में भाई-भतीजावाद होता है।
2. साला के अधिकारी समाज या जन कल्याण के बजाय, निजी उन्नति एवं लाभ से प्रेरित होते हैं।
3. अधिकारियों का व्यवहार अनुदार, संकीर्ण और निर्देशित होता है। नियमों, अधिनियमों और निर्देशों की अनदेखी होती है। आम लोगों के हितों की अनदेखी होती है, चुनींदा लोग बड़े लाभों के हकदार बनते हैं।
4. बहु सम्प्रदायवाद(Poly-communalism) प्रशासनिक समस्याऐं पैदा करता है। अधिकारी कानूनों की अनदेखी करके उस सम्प्रदाय के हितों के पक्ष में काम करते हैं, जिनसे वे बधे होते हैं, जैसे- भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश।

15.8.1 साला मॉडल की प्रकृतियाँ(Characteristics of Sala Model)

प्रोफेसर हैडी के अनुसार साला मॉडल की निम्नलिखित प्रकृतियाँ हैं- सेवाओं का असमान वितरण; संस्थागत भ्रष्टाचार; नियमों के क्रियान्वयन में अकार्यकुशलता; भर्ती में भाई-भतीजावाद; आत्मरक्षा की प्रवृत्तियाँ; और औपचारिक आकांक्षाओं और वास्तविक व्यवहार के बीच भारी दूरियां।

दूसरी ओर स्वंय रिग्स ने साला मॉडल की प्रवृत्तियों का विवेचन इस प्रकार किया है-

1. भ्रष्टाचार(Corruption), साला मॉडल के अधिकारी अत्यन्त भ्रष्ट होते हैं। इसके अनेक कारण हैं। लेकिन पहला कारण उनकी चयन की प्रक्रिया से है जो पूरी तरह पक्षपात पर निर्भर करती है। चयन में योग्यता न देखकर भाई-भतीजावाद का बोल-बाला रहता है। परिणाम यह होता है कि अयोग्य, अनैतिक, निष्क्रिय, उदासीन और भ्रष्ट प्रकृति के लोग अधिकारी बन बैठते हैं।
2. अतिराव(Overlapping), साला व्यवस्था में यदि उच्चतर अधिकारी को अपने अधीनस्थ अधिकारी की योग्यता तथा प्रतिनिष्ठा में से एक को चुनना हो तो वह ऐसे अधीनस्थ का चयन करता है जो उसके प्रति वफादार हो, भले ही वह अक्षम और अयोग्य हो। वास्तव में उसका लक्ष्य स्वार्थ की पूर्ति करना होता है। यहाँ अधिकारी हित प्रशासनिक हितों को दबा देते हैं। यही स्थिति अतिराव है।
3. पदसोपान सिद्धान्त का अभाव(Lack of Hierarchy theory), साला प्रशासनिक व्यवस्था में विभागों को नौकरशाही सिद्धान्त के अनुसार पदसोपान में संगठित नहीं किया जाता है। सत्ता का कोई उत्तरोत्तर क्रम निर्धारित नहीं किया जाता। अधिकारी स्वतंत्र होते हैं और पृथक-पृथक रूप से अपनी सत्ता का प्रयोग करते हैं। इस तरह संगठन में विजातीय की स्थिति बन जाती है।
4. औपचारिकतावाद(Formalism), फैरल हैडी के अनुसार साला व्यवस्था में औपचारिक आकांक्षाओं तथा वास्तविक व्यवहारों में अन्तर रहता है। अतः यहाँ साला संगठनों का जो औपचारिक तथा लिखित स्वरूप होता है, वह व्यवहार में देखने को नहीं मिलता है, क्योंकि अधिकारियों का लक्ष्य निजी हितों की पूर्ति होती है, इसलिए वे नियमों की अनदेखी करते हैं।

15.8.2 प्रिज्यमीय समाज और परिवर्तन(Prismatic Society and change)

किसी भी समाज का लक्ष्य विकास को पाना है। इसके लिए परिस्थितियाँ अनुकूल होनी चाहिए। विकास की प्रक्रिया का इतिहास पश्चिमी समाजों का इतिहास है। इन समाजों को विकास के मानकों को पाने के लिए लम्बा इन्तजार करना पड़ा। तब उनके सामने कोई मॉडल नहीं था। धीरे-धीरे वे अपने व्यवहार को इच्छानुसार ढाल पाये। रिग्स ने पश्चिमी समाजों और अमरीकी समाज की विकास प्रक्रिया का अनुभावात्मक अध्ययन किया और वह इस नतीजे पर पहुँचा कि पश्चिमी समाजों को विकास की प्रक्रिया में विजातीयता, औपचारिकता तथा सर्वव्यापिता का कम अनुभव करना पड़ा।

किसी भी समाज में परिवर्तन के लिए दबाव आन्तरिक भी होते हैं और बाहरी भी। प्रिज्मीय समाज में ऐसा अधिक होता है। रिग्स प्रिज्मीय समाज पर पड़ने वाले बाहरी दबाव को 'ऐक्सोजीनियस'(Exogeneious) ('बहिर्जात'

हिन्दी में समानार्थ हो सकता है) परिवर्तन कहता है। लेकिन यदि प्रिज्मीय समाज पर दबाव आन्तरिक हो तो उसे रिग्स एन्डोजिनियस(Endogeneous) (हिन्दी में समानार्थ 'अन्तर्जात' हो सकता है) कहलाता है। लेकिन अगर परिवर्तन दोनों दबावों से आये तो उसको रिग्स ने 'इक्वीजेनेटिक'(Equi-genetic) (हिन्दी में समानुवंशिक) की संज्ञा देता है। यहाँ रिग्स का तर्क यह है कि विवर्जन की प्रक्रिया जितनी ज्यादा(Process of diffraction) बहिजार्त होगी, उसकी प्रिज्मीय अवस्था उतनी ही अधिक पारम्परिक और विजातीय होगी और जितनी अधिक अन्र्तजात होगी उसकी प्रिज्मीय अवस्था उतनी ही कम औपचारिक और विजातीय होगी।

रिग्स के अनुसार प्रिज्मीय समाज में जितनी अधिक औपचारिकता, विजातीयता और सर्वव्यापिता होगी, 'बाहरी प्रिज्मीय' स्वरूप उतना ही ज्यादा और प्रिज्मीय परिवर्तन के गुण उतने ही कम होंगे।

15.8.3 साला तथा प्रिज्मीय समाज में सम्बन्ध (Relation between Sala and Prismatic Society)

साला तथा प्रिज्मीय समाज में बहुत कुछ हद तक समानता देखने को मिलती है। रिग्स ने साला प्रतिमान की किसी संक्रमणशील(Transitional) समाज में मौजूद रहने का दावा नहीं किया है। उसने प्रिज्मीय समाजों में लोक प्रशासन के अध्ययन के लिए 'साला मॉडल' का सहारा लिया है। कारण इसका यह है कि साला व्यवस्था तथा प्रिज्मीय समाजों में प्रशासनिक विशेषताओं के सन्दर्भ में पर्याप्त समानताऐं पायी जाती हैं। उदाहरण के लिए दोनों समाजों में औपचारिकता और व्यवहारिकता के मध्य भिन्नता पायी जाती है। दोनों ही समाजों में सतही तौर पर कानूनों के पालन को महत्वपूर्ण माना जाता है, लेकिन वास्तविकता इसके विपरीत है। दोनों के समाज संकीर्णता से ग्रस्त रहते हैं। नियम कुछ हैं, यथार्थ कुछ और है। लगभग दोनों समाजों के लक्षण एक जैसे हैं। फिर दोनों व्यवस्थाओं में अन्तर क्या है? रिग्स के अनुसार प्रिज्मीय समाज एक पूर्ण व्यवस्था है, लेकिन साला उसकी उप-व्यवस्था है।

पूर्ण व्यवस्था तथा उप-व्यवस्था के सन्दर्भ में रिग्स का यह मानना है कि प्रिज्मीय समाज में परस्पर व्यापिता उसका एक महत्वपूर्ण लक्षण है। उसके अनुसार प्रिज्मीय समाज एक अत्यंत केन्द्रीक्रत(centralised) तथा गाढ़ा या सांद्र (concentrated) प्राधिकार संरचना है जो अत्यंत बिखरी हुई है तथा स्थानीकृत नियंत्रण व्यवस्था पर चढ़ जाती (overlapping) है या लागू होती है। यहाँ सत्ता और नियंत्रण एक-दूसरे से अलग होते हैं। सत्ता कानूनी शक्ति और नियंत्रण एक-दूसरे से अलग होते हैं। सत्ता कानूनी शक्ति है, लेकिन नियंत्रण गैर-कानूनी शक्ति है। व्यवहारिक रूप से 'सत्ता' (Dejure: कानूनी) नियंत्रण (defacto: वास्तविक) के सामने आत्मसमर्पण करती है। रिग्स ने प्रिज्मीय समाज को एक 'असंतुलित राज्य'(Polity) माना है, क्योंकि यहाँ सत्ता तो होती है लेकिन नौकरशाही कानूनी सत्ता की परवाह न करते हुए प्रशासनिक व्यवस्था पर हावी रहती है। इसलिए साला मॉडल के अधिकारी प्रिज्मीय समाज में स्वंय को सहज महसूस करते हैं, क्योंकि विवर्तित समाज उनको मनमानी करने का अवसर नहीं देता है। प्रिज्मीय समाज में साला के अधिकारियों के हाथों में सत्ता केन्द्रित हो जाती है और वे उसका दुरूपयोग करके जन इच्छाओं के विपरीत काम करते हैं। साला मॉडल के अधिकारियों के लिए कमजोर राजनीतिक व्यवस्था तथा नेतृत्व एक वरदान होता है। वे राजनेताओं के नियंत्रण से बाहर हो जाते हैं और परिणामस्वरूप संसद, राजनीतिक दल, स्वयं-सेवी संगठन तथा लोकमत सब प्रभावहीन हो जाते हैं।

15.9 प्रिज्मीय समाज की आलोचना(Criticism of Prismatic Society)

लोक प्रशासन पर बहस हो और रिग्स का नाम न आये ऐसा असंभव है। बिना रिग्स के सन्दर्भ के लोक प्रशासन का अध्ययन अधूरा है। ऐसा इसलिए कि उसने लोक प्रशासन को समझाने के लिए हर वह तकनीक अपनाई है, जो तार्किक हो सकती है। तुलनात्मक लोक प्रशासन तो वास्तव में उसका ऋणी है। लेकिन ऐसा कौन सा प्रशासनिक सिद्धान्तकार है, जिसकी आलोचना न हुई हो। यहाँ रिग्स भी अछूता नहीं है। यहाँ कुछ आलोचकों का रिग्स के सिद्धान्तों के बारे में नजरिया प्रस्तुत है-

1. सिसॉन, रिग्स के मॉडलों का एक बड़ा आलोचक है। उसके अनुसार रिग्स के लेखों को समझने के लिए उन्हें तीन बार पढ़ना पड़ेगा। पहले उसकी भाषा, फिर उसकी अवधारणा और फिर यह जानने के लिए कि उसके लेखों में कुछ है भी या नहीं। सिसॉन का यह आक्रमण उसके 'शब्दों' पर है।
2. रिर्चड चैपमैन के अनुसार, रिग्स को अपनी शब्दावली को स्पष्ट करने के लिए स्वंय अपना शब्दकोष तैयार करना चाहिए था। यहाँ भी रिग्स की शब्दावली पर उंगली उठाई गई है।
3. चैपमैन को संहेद है कि रिग्स का मॉडल कहाँ तक लोक प्रशासन को समझने में लाभदायक है।
4. दया कृष्ण के अनुसार, रिग्स के मॉडल अनुमानों पर आधारित हैं, लेकिन अनुभावात्मक साक्ष्यों की गैर-मौजूदगी के कारण ऐसे अनुमानों की सार्थकता सवालों के घेरे में रहती है। उसके अनुसार रिग्स का चक्रीय मण्डल अव्यवहारिक है। ऐसा समाज अनावश्यक है।
5. टिलमैन के अनुसार, रिग्स ने सामाजिक व्यवस्थाओं को स्पष्ट करने के लिए गलत विश्लेषणात्मक उपकरण भौतिक विज्ञान से ग्रहण करके लागू किये। रिग्स को उपयुक्त विश्लेषणात्मक उपागम अपनाना चाहिए था। रिग्स ने यह तो दिखाया कि पर्यावरण किस प्रकार से प्रशासन को प्रभावित करता है, लेकिन यह बताना भूल गया कि प्रशासन किस तरह सामाजिक परिवर्तन लाता है। संक्षेप में रिग्स के मॉडलों या समाजों की अवधारणाओं की आलोचना का सार यह है-
   - **प्रिज्मीय समाजों में असमानताऐं-** रिग्स द्वारा वर्णित प्रिज्मीय समाज असमानताओं और विभिन्ताओं से भरा पड़ा है, इसलिए विभिन्न समाजों को समझने के लिए अनेक प्रतिमानों की आवश्यकता को उसने महसूस नहीं किया।
   - **निषेधात्मक प्रवृत्ति-** रिग्स ने प्रिज्मीय समाजों में अतिराव(Overlapping) का उल्लेख किया है और उसकी बुराईयां भी गिनाई हैं। ऐसी स्थिति प्रिज्मीय समाजों की केवल निषेधात्मक(Negative) तस्वीर प्रस्तुत करती है।
   - **पश्चिमोन्मुख मॉडल-** रिग्स द्वारा प्रयुक्त शब्दावली से ऐसा लगता है कि उसका प्रिज्मीय मॉडल पश्चिमी जगत की ओर(Western-oriented) झुका हुआ है। मुनरो के अनुसार रिग्स के सिद्धान्त ने संयुक्त राज्य अमरीका जैसे विकसित राज्यों को प्रिज्मीय समाजों के कार्यों का मूल्यांकन करने के लिए मापदण्ड माना है, जो अनुचित था।
   - **सीमित और संकुचित अध्ययन-** रिग्स ने प्रिज्मीय समाजों के सीमित कार्यों का ही अध्ययन किया है। इस सीमित अध्ययन में मितव्ययता, कार्यकुशलता तथा नैतिकता के कार्यों को अध्ययन का विषय बनाया है, क्योंकि यह कार्य पश्चिमी मापदण्डों का उल्लघंन करते हैं। इस तरह यह सीमित और संकुचित है।
   - **गलत मान्यता-** रिग्स ने माना कि संयुक्त राज्य अमरीका चक्रीय प्रतिमान के नजदीक है, परन्तु यहाँ की स्थानीय सरकारों में कुछ प्रिज्मीय विशेषताऐं भी मिलती हैं। उसकी यह मान्यता गलत थी।
   - **चक्रीय व्यवहार की अवहेलना-** रिग्स ने प्रिज्मीय समाज में चक्रीय(diffracted) व्यवहार की पूर्ण अवहेलना की है। उसने यह स्पष्ट नहीं किया कि इस समाज की विभिन्न संरचनाओं के मध्य महत्वपूर्ण अन्तर कौन-कौन से होते हैं।

15.10 रिग्स के मॉडलों का मूल्यांकन(Evaluation of Rigg's Models)

इन आलोचनाओं का यह अर्थ नहीं है कि रिग्स की सामाजिक अवधारणा बिल्कुल निरर्थक है। उसके मॉडल बहुत महत्वपूर्ण हैं। उसकी यह मान्यता कि प्रिज्मीय मॉडल बहुकार्यातमक तथा एकलकार्यात्मक प्रतिमानों का मध्य

बिन्दु है। यह मान्यता तर्कहीन नहीं है। वास्तव में कोई भी समाज न तो पूर्णतः बहुकार्यात्मक होता है और न ही पूर्णतः एकलकार्यात्मक। सभी समाज मध्यवर्ती स्थिति में होते हैं।

इस कारण एक सीमा तक मध्यवर्ती समाज प्रिज्मीय ही होते हैं। अतः रिग्स का प्रिज्मीय प्रतिमान सभी प्रकार के समाजों और उनकी प्रशासनिक संरचनाओं को समझाने के लिए उपयोगी है। वास्तविकता तो यह है कि यह प्रतिमान केवल एक 'बौद्धिक अभ्यास' है, जो सक्रमणशील समाजों में प्रशासनिक व्यवहार को भी समझने में सहायक है। रिग्स एक समाजशास्त्री भी है और प्रशासनिक चिन्तक भी, इसलिए उसके मॉडल एक ओर सामाजिक व्यवस्था की विशेषताओं को समझते हैं, तो दूसरी ओर प्रशासनिक व्यवस्था और नौकरशाही की विशेषताओं को भी व्यक्त करते हैं। इस तरह रिग्स का प्रिज्मीय मॉडल समाजों की प्रशासनिक व्यवस्थाओं को समझने में अधिक सहायक है।

लोक प्रशासन के तुलनात्मक अध्ययन में रिग्स का विशेष स्थान है। उसके मॉडल निगमनात्मक(Deductive) प्रकृति के हैं। जब रिग्स ने लिखना आरम्भ किया तो तृतीय विश्व ऐशिया, अफ्रीका तथा लैटिन अमरीका का अभ्युदय हो रहा था। नये राष्ट्र अस्तित्व में आने लगे थे। इनमें कुछ बहुत अविकसित थे और कुछ में विकसित होने की क्षमता थी। जो प्रक्रिया चली उसने इन देशों को विकासशील देशों का दर्जा दिया। रिग्स के चिन्तन पर इन नवोदित राष्ट्रों में होने वाली उथल-पुथल और घटनाओं का गहरा प्रभाव पड़ा। उसने देखा कि परिस्थितियों तथा पर्यावरण की राज्यों के विकास में क्या भूमिका होती है? इसलिए उसने इन समाजों के विश्लेषण के लिए परिस्थितिकीय नजरिये से काम लिया। तुलनात्मक लोक प्रशासन उसका नया अध्ययन-क्षेत्र बना। उसने तुलनात्मक लोक प्रशासन को एक नया दृष्टिकोण नया आयाम तथा नई दिशा प्रदान की। इस तरह लोक प्रशासन का एक नया युग आरम्भ हुआ। उसके सिद्धान्त, तकनीकें तथा मॉडल चिन्तकों तथा शोधकर्ताओं के लिए प्रेरणा का स्त्रोत बन गये।

इतना कुछ होते हुए भी रिग्स आलोचना का शिकार बना। विशेष रूप से उसकी कठिन शब्दावली, समाजों की निषेधात्मक तस्वीर, प्रिज्मीय समाज में उसके द्वारा दिखाई विभिन्नताऐं, मूल विषय से उसका भटकाव तथा उसकी अधूरी एवं एकांकी मान्यताऐं प्रशासनिक चिन्तकों की आलोचनाओं से बच नहीं सकीं। सच यह है कि पश्चिमी जगत के चिन्तक आंखें बंद करके किसी विचार को स्वीकार नहीं करते हैं।

अभ्यास प्रश्न-

1. ''The Ecology of Public Administration'' का लेखक कौन है?
2. Agraria and Industria की अवधारणा किस चिन्तक की है?
3. प्रिज्मीय समाज किसी समाज की कौन सी अवस्था है?
4. साला मॉडल क्या है?
5. प्रिज्मीय समाज की कितनी विशेषताऐं हैं?
6. रिग्स की सबसे अधिक आलोचना किस बारे में हुई है?

15.11 सारांश

प्रशासनिक सिद्धान्तों के क्षेत्र में फ्रेड रिग्स (1917-2008) का जो योदान है और तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन में जो उनकी बौद्धिक भूमिका है, उसको सारांश में इस प्रकार दर्शाया जा सकता है-

1. फ्रेड रिग्स प्रशासनिक प्रतिमान रचना तथा तुलनात्मक लोक प्रशासन अध्ययन के अगुआ माने जाते हैं। रिग्स ने विकासशील देशों की प्रशासनिक व्यवस्थाओं का परिस्थितिकीय तथा विकासात्मक सन्दर्भों में अध्ययन किया है, अपने ग्रंथ ''The Administration in Developing Countries'' में उसने सामाजिक मॉडल को प्रस्तुत किया तथा प्रिज्मीय समाजों के अनेक सिद्धान्त प्रतिपादित किये।

2. रिग्स अन्तरसांस्कृतिक तथा अन्तर्राष्ट्रीय प्रशासनिक अध्ययन पर जोर देकर तुलनात्मक लोकप्रशासन की बुनियाद डाली। इस तकनीक के माध्यम से वह विकासशील देशों की प्रशासनिक व्यवस्थाओं को समझ सका।
3. रिग्स ने अपने प्रशासनिक सिद्धान्तों को स्पष्ट करने के लिए परिस्थितिकीय उपागम, संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम तथा आदर्श प्रतिमानों का सहारा लिया।
4. विकासशील देशों की प्रशासनिक व्यवस्थाओं के विश्लेषण के लिए उसने अनेक आदर्श मॉडलों का विकास किया। उसने कृषक और औद्योगिक समाजों को समझाने के लिए 'कृषका' तथा 'औद्योगिका' मॉडल तैयार किये। जब उसके इस दृष्टिकोण की आलोचना हुई तो उसने विस्तृत(Fused), प्रिज्मीय(Prismatic) तथा चक्रीय(diffracted) मॉडलों का निर्माण करके पूर्व-ऐतिहासिक, विकासशील तथा विकसित समाजों के लिए मॉडल तैयार किये।
5. रिग्स का सर्वाधिक लोकप्रिय मॉडल 'प्रिज्मीय' अथवा समपार्श्वीय है जो विस्तृत समाज तथा चक्रीय समाज की एक संक्रमणकालीन (दोनों के मध्य) अवस्था है। प्रिज्मीय समाज की विशेषताओं में उसने विजातीयता, औपचारिकता तथा अतिराव का उल्लेख किया।
6. प्रिज्मीय समाज की उप-व्यवस्था अथवा प्रशासनिक उप-व्यवस्था को उसने 'साला'(Sala) का नाम दिया। 'साला' को उसने एक मॉडल के रूप में पेश किया और उसकी वे ही विशेषताऐं बताई जो प्रिज्मीय समाज की हैं।
7. रिग्स ने प्रिज्मीय समाज में सुधार एवं परिवर्तन लाने की भी बात की और परिवर्तन के लिए 'बहिर्जात' (Exogeneous), 'अन्तर्जात'(Endogeneous) तथा 'सम-आनुवांशिक'(Equi-Genetic) तत्वों की पहचान की।
8. रिग्स के मॉडलों की आलोचना भी की गयी। विशेष रूप से उसकी शब्दावली के सन्दर्भ में, जिसने उसकी अवधारणाओं को भ्रमित कर दिया। उसका रुजहान इतना परिवर्तन पर नहीं था जितना साम्यस्थिति पर। वास्तव में वह क्या साबित करना चाहता था, इस पर मतभेद है। उसने विकासशील देशों की तुलना अमरीका से क्योंकि यह समझ से परे है।
9. लेकिन ये आलोचनाऐं रिग्स के मॉडलों के महत्व को कम नहीं कर सकती। उसने लोक प्रशासन को एक नया आयाम, एक नई तकनीक (तुलनात्मक), एक नई अध्ययन पद्धति (अनुभावात्मक), तथा एक नई दिशा प्रदान की।

15.12 शब्दावली

विस्तृत संगलित(Fused)- कार्यत्मक रूप से अपविस्तृत समाज 'फ्यूज़्ड' कहलाये जाते हैं अथार्थ किरण के प्रारंभिक बिन्दु को विस्तृत कहा जाता है।

समपार्श्वीय(Prismatic)- यहाँ प्रकाश किरण के बदलाव की प्रक्रिया का इस्तेमाल सामाजिक रूपांतरणों को व्यक्त करने की प्रक्रिया के रूप में किया गया है।

विवर्तित या विवर्जन(Diffracted)- अथार्थ बहुरंगी पैटर्न में विभाजन अथवा प्रकाश की किरणों का इंद्रधनुषी सात रंगों में विश्लेषण, विभाजन या विवर्तन करना।

Sala (विभाग, कार्यालय, चैम्बर)- स्पेनिश शब्द, सरकारी कार्यालय, धार्मिक सम्मेलन, कमरा, पेवेलियन इत्यादि। यहाँ 'साला' से अभिप्राय प्रिज्मीय समाज की उप-व्यवस्था।

Dejure- कानूनी, वैधानिक, defacto- वास्तव में, तथ्यात्मक।

Exogeneous- बाह्य या बाहरी, Endogeneous- आन्तरिक या अंदरूनी, Equi-genetic- समानुवंशिक (यह तीनों शब्द परिवर्तन के सम्बन्ध में हैं)।

15.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. फ्रेडरिक रिग्स, **2.** रिग्स, **3.** प्रथम तथा तृतीय अवस्थाओं के बीच की अवस्था, **4.** प्रिज्मीय समाज की उप-व्यवस्था, **5.** तीन, **6.** शब्दावली

15.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. प्रसाद, प्रसाद, सत्यनारायण: प्रशासनिक चिन्तक, नई दिल्ली।
2. रविन्द्र प्रसाद, वी0 एस0 प्रसाद, परधारसाराधी: प्रशासनिक चिन्तक, नई दिल्ली।
3. वही: Administrative Thinkers.
4. त्रिलोकीनाथ चतुर्वेदी: तुलनात्मक लोक प्रशासन, जयपुर।
5. रमेश कुमार अरोड़ा, तुलनात्मक लोक प्रशासन, जयपुर।
6. S.R. Maheshwari : Administrative Thinkers, नई दिल्ली।

15.15 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. Fred. W. Rigg's: Administration in Developing Countries : The Theory of Prismatic Society.
2. Fred. W. Rigg's: The Ecology of Public Administration.
3. Ferrel Heady: Public Administration- A Comparative Perspective.

15.16 निबंधात्मक प्रश्न

1. रिग्स के आदर्श मॉडल को स्पष्ट कीजिए।
2. रिग्स की विस्तृत-प्रिज्मीय-चक्रीय अवधारणा क्या है?
3. रिग्स के प्रिज्मीय(समपार्श्वीय) समाज की व्याख्या करें।
4. साला मॉडल क्या है? विस्तार से समझाईये।

इकाई- 16 राजनीति और प्रशासन में सम्बन्ध

इकाई की संरचना

16.0 प्रस्तावना
16.1 उद्देश्य
16.2 राजनीति का अर्थ एवं महत्व
16.3 राजनीति की चिरसम्मत धारणा
16.4 राजनीति की आधुनिक धारणा
16.5 राजनीतिक स्थिति की विशेषताऐं
16.6 प्रशासन
16.7 राजनीति एवं प्रशासन में सम्बन्ध
16.8 सारांश
16.9 शब्दावली
16.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
16.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
16.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
16.13 निबंधात्मक प्रश्न

16.0 प्रस्तावना

राजनीतिक चिंतक, आज के युग में राजनीति को मनुष्यों की एक विशेष गतिविधि मानता है। मनुष्यों की यह गतिविधि समाज के विभिन्न समूहों के माध्यम से व्यक्त होती है। इसके क्षेत्र में वही सत्ता आती है, जिसका प्रयोग या तो वह स्वयं करता है, या शासन को प्रभावित करने के लिए करता है।

वर्तमान में शासन को प्रभावित करने के लिए जन लोकपाल एवं भ्रष्टाचार पर राजनीति विशेष रूप से हो रही है। प्रशासन का अर्थ कार्यों को प्रबन्ध करने से है। यद्यपि राजनीति एवं प्रशासन के सम्बन्ध को इस अध्याय में विस्तृत चर्चा की गयी है।

प्रशासन एवं राजनीति एक-दूसरे के पूरक हैं। दोनों में ही सत्ता एवं शक्ति का प्रयोग होता है। पूर्व में दोनों में काफी अन्तर एवं भेद की चर्चा होती थी, परन्तु वर्तमान में यह भेद लगभग समाप्त हो चुका है और दोनों ही एक-दूसरे के अंगीकार बन गये हैं।

16.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- राजनीति के अर्थ एवं महत्व को जान सकेंगे।
- राजनीति की चिर-सम्मत धारणा को जान सकेंगे।
- राजनीतिक स्थिति की विशेषताओं के सम्बन्ध में जान सकेंगे।
- राजनीति एवं प्रशासन में सम्बन्ध में जान सकेंगे।

16.2 राजनीति का अर्थ एवं महत्व

'राजनीति' शब्द का व्यवहार सामाजिक समूह के लिए किया जाता है, जो क्लबों और परिवार जैसे छोटे मानव समूहों से लेकर संयुक्त राष्ट्र संघ तक व्याप्त है। मानव समाज में यूनानी दार्शनिक प्लेटो से लेकर अब तक के जितने

भी चिंतक आदर्श लोक की कल्पना करते रहे हैं, वे सभी अंत में समाज के राजनीतिक पुनर्गठन की बात किसी न किसी रूप में करते हैं। सामाजिक सहयोग, संघर्ष और प्रतिस्पर्धा नामक गतिविधियों को राजनीति कहते हैं।
अरस्तू ने कहा है, कि मनुष्य एक राजनीतिक प्राणी है। इसका अर्थ है कि मनुष्य किसी न किसी राज्य(पोलिस) के अन्तर्गत रहता है। अर्थात् एक सामूहिक सत्ता के माध्यम से अपने जीवन को व्यवस्थित करता है, ताकि एक नैतिक प्राणी के नाते वह सद्जीवन और आत्म-सिद्धि प्राप्त कर सके। अतः अरस्तू की दृष्टि में राजनीति, मनुष्य के सम्पूर्ण अस्तित्व को समेट लेती है। मनुष्यों की गतिविधियाँ समाज के विभिन्न समूहों के माध्यम से व्यक्त होती है। जैसे- राजनीतिक दलों के द्वारा, राष्ट्रों में यह गतिविधि शांति के समय राजनय के रूप मे व्यक्त होती है और अशांति के समय युद्ध के रूप में। परन्तु युद्ध राजनीति का उपयुक्त तरीका नहीं है। युद्ध का सहारा तब लिया जाता है, जब राजनीति विफल हो जाती है। युद्ध के नियमों का पालन राजनीति का विषय अवश्य है। निष्कर्ष में राजनीतिक गतिविधि 'शक्ति के संघर्ष' के रूप में व्यक्त होती है। यह संघर्ष अनेक राष्ट्रों के बीच हो सकता है, एवं एक ही राष्ट्र के भीतर विभिन्न समूहों के बीच भी चल सकता है। दूसरों के साथ प्रतिस्पर्धा की स्थिति में, समाज के दुलर्भ संसाधनों पर अपना प्रभुत्व और नियंत्रण स्थापित करने के प्रयास को राजनीति की संज्ञा दी जाती है। राजनीति के क्षेत्र में सत्ता वह कहलाती है, जिसका प्रयोग या तो शासन स्वयं करता है या जिसका प्रयोग शासन को प्रभावित करने के लिए होता है। अरस्तू की प्रसिद्ध रचना 'पालिटिक्स' में इस तर्क का खंडन भी किया है कि सत्ता का स्वरूप एक ही होता है। परन्तु सभी तरह की सत्ता एक जैसी नहीं होती है। मैक्स वेबर जो जर्मन समाज वैज्ञानिक थे, उन्होंने भी सत्ता को वैधानिक एवं तार्किक बताया है। अरस्तू ने सत्ता, शक्ति को राजनीतिक सम्बन्ध का आवश्यक लक्षण माना है। वहीं मैक्स वेबर ने भी सत्ता के प्रयोग क्षेत्र की ओर संकेत किया है।
'राजनीति' शब्द दैनिक जीवन में बहुत प्रचलित है। राजनीतिक गतिविधियों को लेकर समाज मानता है कि इसका सरोकार केवल सार्वजनिक क्षेत्र से है। अर्थात् सांसदों, विधायकों, चुनावों और मंत्री-मण्डल से है। आम आदमी राजनीति को संकुचित दायरे में रखकर सोचता है। वह तो इसे या तो केवल मंत्रियों और विधायकों की गतिविधि समझ लेता है, या राजनितिज्ञों का चातुर्यपन और चुनाव पैतरों केसाथ जोड़ता है। परन्तु यदि हम राजनीति से घृणा करते हुए उससे दूर भागेंगे तो यह डर है कि राजनीति सचमुच गलत लोगों के हाथों में चली जायेगी और सार्वजनिक समस्याओं का समाधान नहीं हो सकेगा। वर्तमान में राजनीति ऐसे ही लोगों के द्वारा की जा रही है।

16.3 राजनीति की चिरसम्मत धारणा

प्लेटो, अरस्तू एवं उनके समकालिक विचारकों का मत है कि राज्य मनुष्य के जीवन के लिए अस्तित्व में आता है और सद्जीवन के लिए बना रहता है। राज्य के बगैर किसी मनुष्य को मनुष्य रूप में नहीं पहचाना जा सकता। राज्य में सद्जीवन की प्राप्ति के लिए मनुष्य जो कुछ भी करता है, जिन-जिन गतिविधियों में भाग लेता है एवं जो नियम संस्थाऐं और संगठन को निर्मित करता है उन सबको अरस्तू ने राजनीति का विषय माना है। इसे ही राजनीति की चिरसम्मत धारणा कहते हैं। मनुष्य के समस्त सामाजिक सम्बन्धों और सामाजिक जीवन के सभी पहलुओं का अध्ययन राजनीति के अन्तर्गत होता था। अरस्तू ने राजनीति को सर्वोच्च विज्ञान का रूतवा दिया। मानव समाज के अन्तर्गत विभिन्न सम्बन्धों को व्यवस्थित करने में राजनीति निर्णायक भूमिका निभाती है। परन्तु आज के युग में राजनीति जन-साधारण के समर्थन पर आश्रित हो गयी है। इसलिए यह जन-साधारण के जीवन के साथ निकट से जुड़ गयी है।

16.4 राजनीति की आधुनिक धारणा

राजनीति की चिरसम्मत धारणा के विपरीत, आज के युग में राजनीति के प्रयोग का क्षेत्र तो सीमित हो गया है, परन्तु इसमें भाग लेने वालों की संख्या बहुत बढ़गयी है। राजनीति के अध्ययन में मनुष्य के सामाजिक जीवन की समस्त गतिविधियों पर विचार नहीं किया जाता, बल्कि केवल उन गतिविधियों पर विचार किया जाता है, जो

सार्वजनिक नीति और सार्वजनिक निर्णयों को प्रभावित करती हैं। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में सर्वाजनिक नीतियां और निर्णय इन गिने-चुने शासकों, विधायकों या सत्ताधारियों की इच्छा को व्यक्त नहीं करते, बल्कि समाज के भिन्न-भिन्न समूहों की परस्पर क्रिया के फलस्वरूप उभरकर सामने आते हैं। इस तरह राजनीति जन-साधारण की उन गतिविधियों का संकेत देती है, जिनके द्वारा भिन्न-भिन्न समूह अपने-अपने परस्पर विरोधी हितों में ताल-मेल स्थापित करने का प्रयत्न करते हैं।

परम्परागत राजनीतिशास्त्र का मुख्य सरोकार 'राज्य' से था, इसीलिए इसको राज्य के विज्ञान से भी परिभाषित करते हैं। उस काल के राजनीतिशास्त्र के विद्वानों एवं लेखकों के लेख में भी इन्हीं बातों का अभिलेख मिलता है। इन लेखों में लेखकों ने अपना ध्यान निम्नलिखित समस्याओं पर ही केन्द्रित किया। जैसे- राज्य के लक्षण, मूल तत्व एवं संस्थाऐं सर्वगुण सम्पन्न राज्य। परन्तु आधुनिक काल में उपरोक्त विचारों के अतिरिक्त और भी पक्षों का समावेश किया है। उदाहरणार्थ 'राजनीति' मनुष्य की व्यपापक क्रिया है। यह केवल राज्य की परिधि में निहित नहीं है वरन् सम्पूर्ण सामाजिक संगठन के साथ जुड़ी रहती है। इसीलिए राजनीति को आज के सन्दर्भ में एक सामाजिक प्रक्रिया माना जाता है।

16.5 राजनीतिक स्थिति की विशेषताऐं

उपरोक्त कथन से स्पष्ट हो गया कि राजनीति एक विशेष मानवीय क्रिया है। इन क्रियाओं के कार्यान्वयन में मनुष्य का ही योगदान है तथा क्रियान्वित कार्य राजनीतिक स्थिति कहलाती है। इसके समर्थन में भिन्न-भिन्न विद्वानों ने अपने मत भी प्रकट किये हैं। जैसे एलेन बाल द्वारा रचित पुस्तक 'मार्डन पालिटिक्स एण्ड गवर्नमेंट' के अन्तर्गत लिखा है, राजनीतिक क्रिया में मतभेद और उन मतभेदों का समाधान निहित होता है। जे0डी0बी0 मिलर ने अपनी पुस्तक 'द नेचर एण्ड पालिटिक्स' में लिखा है कि राजनीतिक स्थित में संघर्ष के समाधान के लिए शासन या सरकार का प्रयोग किया जाता है। इसका तात्पर्य है कि राजनीतिक गतिविधि में मतभेद की स्थिति से पैदा होती है और इसका सरोकार परिवर्तन की दिशा में या परिवर्तन की रोकथान के लिए संघर्ष के समाधान में प्रयोग से है। इस तरह राजनीतिक प्रक्रिया में दो बातों का होना आवश्यक है, पक्षों में मतभेद या संघर्ष की मौजूदगी एवं सरकार की सत्ता के माध्यम से उस संघर्ष के समाधान का प्रयास।

राजनीति का सम्बन्ध समाज में 'मूल्यों' के आधिकारिक आवंटन से है। इस परिभाषा में तीन महत्वपूर्ण शब्दों का प्रयोग किया गया है ये शब्द हैं- मूल्य, आधिकारिक एवमं आवंटन। 'मूल्य' का अभिप्राय समाज में मिलने वाली दुर्लभ वस्तुऐं हैं, जैसे- रोजगार, स्वास्थ्य सेवा, परिवहन सेवा, शिक्षा, मनोरंजन, मान-प्रतिष्ठा इत्यादि। इसको ऐसे भी समझा जा सकता है कि वे अभीष्ठ वस्तुऐं, लाभ अथवा सेवाऐं जिन्हें हर कोई पाना चाहता है, परन्तु वे इतनी कम हैं कि उन्हें सभी नहीं पा सकते हैं।

आवंटन' शब्द का अर्थ विभिन्न व्यक्तियों या समूहों में इन वस्तुओं का वितरण या बंटवारे से है। इस बंटवारे के लिए निर्णयन प्रक्रिया को अपनाना पड़ता है। निर्णय तो नीति के द्वारा सम्पन्न किया जाता है। निर्णय का अर्थ है, अनेक में से एक का चयन। नीति में निर्णय तक पहुँचना और उसे कार्यान्वित करना भी शामिल है।

उपरोक्त दो शब्दों की व्याख्या के बाद 'आधिकारिक' शब्द की विवेचना करना भी आवश्यक है। नीति जिन लोगों के लिए बनाई जाती है और वही लोग जब नीति का पालन करना आवश्यक समझते हैं, तब वह नीति आधिकारिक होती है। इस प्रकार से सम्पूर्ण प्रक्रिया में सरकार का ही योगदान है। शासन, सत्ता पक्ष के द्वारा ही किया जाता है, सत्ता वैधानिक होती है एवं सत्ता में शक्ति भी निहित होती है। किसी विशेष निर्णय या कार्यवाही को लागू करने के लिए लोगों से सत्ता सहर्ष आज्ञापालन सुनिश्चित कराने की क्षमता रखता है। जब हम राजनीति की परिभाषा को मूल्यों के आधिकारिक आवंटन के रूप में देखते हैं, तब हम उसे सार्वजनिक सामाजिक घटना के रूप में पहचानते हैं। राजनीति एक विश्व-व्यापी गतिविधि है। समाज में अभीष्ट वस्तुऐं, लाभ और सेवाऐं इत्यादि थोड़ी

होती हैं और उनकी माँग करने वाले लोग ज्यादा होते हैं। अतः वहाँ ऐसी आधिकारिक सत्ता की आवश्यकता पड़ती है, जो परस्पर विरोधी मांगों को सामने रखकर कोई एक रास्ता निकाल सके और जिसे सब लोग स्वीकार कर लें। इसका अर्थ यह नहीं है कि सबकी मांगें पूरी कर दी जाती है या कोई समाधान हमेशा के लिए स्वीकार कर लिया जाता है। वास्तव में एक समाधान स्वीकार करने के पश्चात नई मांगें नये-नये रूपों में प्रस्तुत की जाती हैं और फिर नये समाधान की तलाश की जाती है। अतः राजनीति एक निरंतर प्रक्रिया है। राजनीति के इस दृष्टिकोण को हम साधारणतया उदारवादी दृष्टिकोण के रूप में पहचानते या पुकारते हैं। राजनीति का यह आधुनिक दृष्टिकोण है। राजनीति के प्राचीन दृष्टिकोण के अन्तर्गत सामाजिक जीवन का लक्ष्य या ध्येय पूर्व में ही निर्धारित रहता था और समाज के सदस्यों को पूर्व निर्धारित व्यवस्था के अन्तर्गत ही अपने कर्तव्यों का पालन करना पड़ता था। परन्तु आधुनिक दृष्टिकोण के अन्तर्गत संघर्ष को सामाजिक जीवन का स्वभाविक लक्षण माना जाता है। इसे बल पूर्वक दबाने की चेष्टा नहीं की जाती है, वरन् इसका समाधान खोजने पर बल दिया जाता है।

किसी भी मतदभेद या संघर्ष के समाधान के लिए आधिकारिक सत्ता का प्रयोग आवश्यक होता है। इस सत्ता के प्रयोग के कारण ही आधिकारिक नीतियां, नियम एवं निर्णय समाज में स्वीकार किये जाते हैं और प्रभावशाली ढंग से लागू भी किये जाते हैं। सत्ता के दो मुख्य घटक होते हैं, शक्ति और वैधता । पहले भी इन दोनों शब्दों का प्रयोग किया जा चुका है, परन्तु अब विस्तार से इनकी व्याख्या यहाँ पर की जा रही है। वैधता से तात्पर्य है कि सरकार द्वारा लिए गये निर्णय और उनके अनुरूप बनाये गये नियम सारे समाज में लिए उपयुक्त हैं और कल्याणकारी हैं, इसलिए समाज के सभी वर्ग उसे मन से स्वीकार करते हुए और उन नियमों का अनुपालन सुनिश्चित करने को तत्पर रहते हैं। शक्ति का अर्थ है, समाज की इच्छा के विरूद्ध किसी नियम या निर्णय को बल पूर्वक आदेशानुसार पालन करवाना। समाज में व्यवस्था स्थापित रखने के लिए वैधता और शक्ति एक-दूसरे के पूरक हैं। चूंकि राजनीति में सत्ता का प्रयोग आवश्यक है और शक्ति के बिना सत्ता अधूरी है, इसलिए राजनीति में शक्ति का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। राजनीति में शक्ति के तीन प्रकार हैं- राजनीतिक शक्ति, आर्थिक शक्ति और विचारात्मक शक्ति। राजनीतिक शक्ति का अर्थ है- नीतियों एवं कानून का निर्माण करना, कानून को लागू करना, कर लगाना और वसूल करना, कानून का पालन न करने वालों को दंडित करना तथा शत्रुओं एवं आक्रमणकारियों को नष्ट करने से है। साधारणतः राजनीतिक शक्ति का उपयोग सरकार के तीन विभिन्न अंगों द्वारा किया जाता है, विधान मण्डल, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका, इन्हें शक्ति के औपचारिक अंग कहते हैं। परन्तु इनके अलावा कुछ अनौपाचारिक अंग भी हैं, जैसे- विभिन्न दबाव समूह, राजनीतिक दल आदि। ये अपने ढंग से राजनीतिक शक्ति का प्रयोग करते हैं।

आर्थिक शक्ति का अर्थ है, 'धन सम्पदा, उत्पादन के साधनों या अन्य दुलर्भ साधनों के स्वामित्व के बल पर निर्धन लोगों या निधर्न राष्ट्रों के जीवन की परिस्थितियों पर नियन्त्रण स्थापित करना।' आर्थिक शक्ति राजनीति पर व्यापक प्रभाव डालती है। उदार लोकतंत्र के अन्तर्गत बड़े-बड़े जमीदार, उद्योगपति और व्यापारिक घराने, सार्वजनिक नीतियों और निर्णयों को व्यापक रूप से प्रभावित करते हैं और विकास की प्राथमिकताऐं निर्धारित करने में अपने हित को सर्वोपरि रखते हैं। बड़े-बड़े पूंजीपति अक्सर अप्रत्यक्ष रूप से राजनीतिक दलों और चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवारों को भारी वित्तीय सहायता प्रदान करते हैं। ऐसी सहायता पाने वाले राजनीतिज्ञ ऊपरी तौर पर जनसाधारण के हितों की दुहाई देते हैं, परन्तु भीतर से वे अपने वित्त-दाताओं के हितों के लिए प्रतिबद्ध होते हैं। विचारात्मक शक्ति, राजनीतिक शक्ति का एक गूढ़ आधार प्रस्तुत करती है। विचारात्मक शक्ति शासन की व्यवस्था को समाज की दृष्टि में उचित ठहराती है और इसीलिए उसे वैधता प्रदान करती है। समाज में शासक वर्ग सर्वोत्तम शासन प्रणाली के बारे में विचारों को बढ़ावा देते हैं, जिन्हें राजनीतिक विचारधारा कहते हैं। आज के युग में भिन्न-भिन्न देशों में विभिन्न प्रकार की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व्यवस्थाऐं प्रचलित हैं और उन्हें उचित ढहराने

के लिए पूंजीवाद, समाजवाद, साम्यवाद, लोकतंत्रीय समाजवाद आदि सर्वोत्तम शासन प्रणाली सिद्ध करने को तत्पर रहती हैं। ये सारे वाद विभिन्न विचारधाराओं के ही उदाहरण है।

16.6 प्रशासन

अंग्रेजी शब्द 'एडमिनिस्ट्रेसन' की रचना लैटिन के दो शब्दों से मिलकर हुई है। एड एवं मिनिस्टर, जिसका अर्थ है, प्रबन्ध करना। अंग्रेजी शब्दकोश के अनुसार प्रशासन शब्द का अर्थ है, कार्यों का प्रबन्ध। शासन करने से तात्पर्य है- प्रबन्ध करना, निर्देशन करना इत्यादि। प्रशासन शब्द को विभिन्न विद्वानों ने निम्नलिखित रूप से परिभाषित किया है-

पॉल एच0 ऐपलेबी के शब्दों में, यदि प्रशासन न हो तो सरकार तो केवल वाद-विवाद का क्लब मात्र बन कर रह जायेगी, बर्शते इस स्थिति में वह जीवित रह सके।

ई0 एन0 ग्लेडन के अनुसार, प्रशासन का अर्थ है लोगों की परवाह करना या देखभाल करना, कार्यों का प्रबन्ध करना, किसी जाने-बूझे कार्य की पूर्ति के लिए उठाया जाने वाल सुनिश्चित कदम।

नीग्रो के अनुसार- किसी उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए मनुष्य तथा सामग्रियों का जो संगठन तथा उपयोग किया जाता है, उसे प्रशासन कहा जाता है।

एल0 डी0 व्हाइट ने प्रशासन को कुछ इस प्रकार पारिभाषित किया है, किसी उद्देश्य अथवा लक्ष्य की पूर्ति के लिए बहुत से व्यक्तियों के निर्देशन, समन्वय तथा नियंत्रण को ही प्रशासन की कला कहते हैं।

पिफनर ने प्रशासन की परिभाषा इस प्रकार की है, वांछित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए मानवीय तथा भौतिक साधनों का संगठन तथा निर्देशन ही प्रशासन है।

हरबर्ट साइमन के शब्दों में, प्रशासन सबसे अधिक व्यापक अर्थ में, समान लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए वर्गों द्वारा मिलकर की जाने वाली क्रियाओं को प्रशासन कहा जा सकता है।

लूथर गलिक के अनुसार, प्रशासन का सम्बन्ध कार्यो के करवाने से निश्चित उद्देश्य की पूर्ति कराने से है।

उपरोक्त परिभाषाओं से विदित है कि प्रशासन सर्वमान्य लक्ष्यों की पूर्ति के लिए सहयोग करने वाले वर्गों की क्रियाओं से है। दूसरे शब्दों में, प्रशासन में वे सभी क्रियाऐं आती हैं जो किसी उद्देश्य या ध्येय की प्राप्ति के लिए की जाती हैं। प्रशासन शब्द का प्रयोग संकीर्ण अर्थ में भी किया जाता है, जिसका अभिप्राय व्यवहार के उन सभी प्रतिरूपों से है जो विभिन्न प्रकार के सहयोगी समूहों में एक जैसे होते हैं और जो उन निश्चित उद्देश्यों पर आधारित नहीं होते, जिनके लिए वे परस्पर सहयोग करते हैं और न ही वे उन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए प्रयोग की जा रही निश्चित पद्धतियों पर आधारित होते हैं।

16.7 राजनीति एवं प्रशासन में सम्बन्ध

प्रशासन को राजनीति से भिन्न रखने में आरम्भिक दौर के चिंतकों ने काफी भेद किया। उनकी दृष्टि में राजनीति, नीतियों का निर्माण करती है और प्रशासन का कार्य है कि वह यथासंभव कुशलता एवं मितव्ययिता से उन नीतियों को लागू करे। अतः क्रियाओं की दृष्टि से राजनीति और प्रशासन के क्षेत्र पृथक एवं भिन्न हैं। लोक प्रशासन के पितामह 'वुडरो विल्सन' ने अपने लेख 'स्टडी ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन' में लिखा है कि प्रशासन का उचित क्षेत्र राजनीति से बाहर है। प्रशासनिक प्रश्न, राजनीतिक प्रश्न नहीं होते। यद्यपि प्रशासन के ध्येय राजनीति निश्चित करती है, किन्तु यह अनुमति नहीं दी जानी चाहिए कि वह प्रशासन के कार्यों में हस्तक्षेप करें। राजनीति राजमर्मज्ञ का विशेष क्षेत्र है और प्रशासन तकनीकी अधिकारी का विशेष क्षेत्र है।

कालान्तर में राजनीति एवं प्रशासन के भेद की काफी आलोचना हुई प्रशासन के अराजनीतिक दृष्टिकोण पर इतना बल दिया गया कि इसने प्रशासन को अपरिवर्तनीय परिभाषा बना दिया जो अपने स्वतंत्र सिद्धान्तों का अनुसरण करता है। चाहे सरकार का स्वरूप कुछ भी क्यों न हो और जिन राजनीतिक मूल्यों के अधीन इसे काम करना है, वे

कैसे ही क्यों न हों। यह दृष्टिकोण पूर्णतया गलत है, क्योंकि किसी देश की राजनीतिक व्यवस्था उसकी प्रशासन व्यवस्था से न तो बाहर है और न असम्बन्धित, अपितु यही तो इसका ताना-बाना है। राजनीति और प्रशासन के बीच सम्बन्धों का विकास कालान्तर में हुआ। जान लॉक तथा मांटेसक्यू के समय से लेकर आजतक विद्वान् प्रशासक व राजनीतिज्ञ इस विषय पर वाद-विवाद करते रहे हैं। अपने गणतंत्र के प्रारम्भिक समय से ही अमेरिका के राजनेता नीति-निर्माण तथा प्रशासनिक विषयों में भेद करते आये हैं। इससे राजनीति और प्रशासन में द्विभाजन का विकास हुआ। यद्यपि इस धारणा का द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात अन्तिम तौर पर परित्याग कर दिया गया।

प्रशासन व राजनीति में भेद को लेकर काफी आलोचना हुई और लोक प्रशासन के विद्वानों ने इस भेद को अस्वीकृत कर दिया एवं एक सिरे से नकार दिया। तथ्य इस बात को सिद्ध करते हैं कि प्रशासन का नीति-निर्माण या निर्धारण के कार्य से घनिष्ठ सम्बन्ध है और वह इसमें सक्रिय भाग लेता है। यह एक पूर्णतया अतार्किक तर्क है कि नीति निर्धारण का कार्य प्रशासनिक अधिकारी वर्ग की सहायता या परामर्श के बिना भी सम्पन्न किया जा सकता है। मन्त्रीगण अधिकांश विधेयक अपने-अपने उच्च प्रशासनिक अधिकारी के प्रेरणा पर ही पारित करते हैं। हस्तांतरित विधान की सम्पूर्ण धारणा राजनीति व प्रशासन के विभाजन को अर्थहीन एवं तथ्यहीन सिद्ध करती है। तथ्यों व आंकड़ों के अभाव में किसी भी सफल नीति का निर्धारण असम्भव है। ये तथ्य तथा आंकड़े प्रशासनिक अधिकारी ही प्रदत्त करते हैं। कानूनों व नीतियों की व्यवहारिकता तथा अव्यवहारिकता प्रशासनिक अधिकारियों के परामर्श के आधार पर ही तय की जाती है। कहने का तात्पर्य है कि पग-पग पर राजनीति एवम प्रशासन परस्पर मिश्रित प्रतीत होते हैं। हर पल प्रशासन राजनीति को प्रभावित करता है। ऐपलबी का कहना था, कि नीति का निर्माण ही लोक प्रशासन है। उपरोक्त विचारों से यह सिद्ध हो गया कि राजनीति एवं प्रशासन अविभाज्य है। उदाहरणार्थ निम्नलिखित तथ्य उसके साक्षी हैं।

राजनीतिक नेता को जटिल और तकनीकी विषयों पर नीति सम्बन्धी निर्णय करने के लिए ज्ञानपूर्ण परामर्श हेतु सर्वथा स्थायी कर्मचारियों पर आश्रित होना पड़ता है।

पेचीदा स्थितियों में नीति-निर्माण तथा नीति परिपालन एक-दूसरे से सम्बधित होते हैं और एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं।

प्रायः नीतियों की विभिन्न प्रकार से व्याख्या हो सकती है। ऐसी स्थिति में जो प्रशासक एक नीति का परिपालन करने के लिए उत्तरदायी होते हैं, उस नीति की व्याख्या करते हुए स्वेच्छा-निर्णय का प्रयोग भी करते हैं।

अभ्यास प्रश्न-

1. राज्य के चार तत्व होते हैं। सत्य/असत्य
2. राजनीति का सम्बन्ध नीति-निर्माण से होता है। सत्य/असत्य
3. प्रशासन का सम्बन्ध नीतियों के क्रियान्वयन से होता है। सत्य/असत्य

16.8 सारांश

उपरोक्त लेख का अध्ययन करने के बाद आप राजनीति एवं प्रशासन शब्द से भली-भॉति परिचित हो चुके होंगे। कानूनों व नीतियों की व्यवहारिकता तथा अव्यवकारिकता, प्रशासनिक अधिकारियों के परामर्श के आधार पर ही तय की जाती है। कहने का तात्पर्य है कि राजनीति एवं प्रशासन मिश्रित प्रतीत होते हैं।

इससे स्पष्ट है की नीति-निर्माण और नीति क्रियान्वयन एक दूसरे से पूरी तरह से पृथक नहीं किये जा सकते है। क्योंकि मंत्री विभागाध्यक्ष होते हैं, जो अपनी अनुभवहीनता और विशेषज्ञता के अभाव में काफी हद तक प्रशासनिक अधिकारियों के परामर्श पर निर्भर करते हैं।

16.9 शब्दावली

राज्य- एक निश्चित भू-भाग में रहने वाली जनसंख्या, जिसकी अपनी सरकार हो, जो अपने आंतरिक और वाह्य मामलों में पूरी तरह से स्वतन्त्र हो(सम्प्रभुता)।

आवंटन- व्यक्तियों या समूहों में वस्तुओं का विवरण।

16.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य, **2.** सत्य, **3.** सत्य

16.11 सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

1. गाबा, ओ0 पी0- राजनीति सिद्धान्त की रूपरेखा।
2. जैन पुखराज- राजनीति विज्ञान।

16.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. शर्मा एवं सडाना - लोक प्रशासन सिद्धान्त एवं व्यवहार।
2. एन0सी0ई0आर0टी0।

16.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. राजनीति को परिभाषित करते हुए उसकी विभिन्न धारणाओं की व्याख्या कीजिए।
2. राजनीतिक स्थिति की विशेषताओं पर एक निबन्ध लिखिए।
3. राजनीति एवं प्रशासन से आप क्या समझते हैं? दोनों के मध्य सम्बन्धों पर अपनी समीक्षा कीजिए।

इकाई- 17 राजनीति और नीति-निर्माण संस्थाओं का तुलनात्मक अध्ययन

इकाई की संरचना

17.0 प्रस्तावना

17.1 उद्देश्य

17.2 राजनीति और लोक प्रशासन

17.3 नीति-निर्माण में भागीदार प्रमुख संस्थाओं की भूमिका

- 17.3.1 कार्यपालिका
- 17.3.2 व्यवस्थापिका
  - 17.3.2.1 विधायी प्रक्रिया
- 17.3.3 अधिकारीतन्त्र
- 17.3.4 न्यायपालिका

17.4 विभिन्न अंगों के बीच अन्योन्य क्रियाऐं

17.5 नीति-निर्माण को प्रभावित करने वाली अन्य संस्थाऐं

- 17.5.1 राजनीतिक दल
- 17.5.2 दबाव व हित समूह
- 17.5.3 जनसंचार माध्यम
- 17.5.4 सामाजिक आन्दोलन
- 17.5.5 अन्तर्राष्ट्रीय ऐजेन्सीयां

17.6 सारांश

17.7 शब्दावली

17.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

17.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

17.10 सहायक एवं उपयोगी पाठ्य सामग्री

17.11 निबंधात्मक प्रश्न

17.0 प्रस्तावना

नीति-निर्माण एक जटिल एवं गतिशील प्रक्रिया है क्योंकि बदलते समय के अनुसार नीतियों में भी परिवर्तन होता रहता है। नीति की एक प्रमुख विशेषता इसमें लचीलापन का होना है। नीति के निर्माण एवं क्रियान्वयन में अनेक लोग तथा संस्थाएं सम्मिलित होती हैं, जो विभिन्न स्तरों पर अपनी अपनी भूमिकाएं अदा करती हैं। जैसा कि हम जानते हैं कि भारत में संसदीय शासन प्रणाली के साथ ही संघात्मक व्यवस्था को भी अपनाया गया है। संघात्मक शासन वाले देशों में प्रायः त्रीस्तरीय सरकारें- संघ सरकार, राज्य सरकार तथा स्थानीय सरकार देखने को मिलती है। इनमें से संघ सरकार तथा प्रान्तीय सरकारें अपने-अपने स्तर पर नीतियों का निर्माण करती हैं, ऐसा भारत में भी देखने को मिलता है। भारतीय संविधान में तीन सूचियों के माध्यम से शक्तियों का विभाजन करने का प्रयास किया गया है। पहली, संघ सूची, जिसमें केन्द्रीय एवं राष्ट्रीय महत्व के विषयों को रख गया है, जिस पर संघ सरकार ही नीति बना सकती है। दूसरी, प्रान्तीय सूची, जिसमें स्थानीय महत्व के विषयों को रखा गया है, जिस पर प्रान्तीय सरकारें नीति बना सकती हैं। कुछ विशेष परिस्थितियों में संघ सरकार भी प्रान्तीय विषयों पर नीति बना सकती है अथवा प्रान्तों को नीति बनाने में मार्गदर्शन अथवा निर्देश दे सकती है। तीसरी, समवर्ती सूची, इसमें उल्लेखित विषयों पर संघ सरकार तथा प्रान्तीय सरकार दोनों को नीति बनाने का अधिकार प्राप्त है, किन्तु जब कभी इनके

द्वारा बनाई गई नीतियों में विरोधाभास अथवा टकराव होता है तो ऐसी स्थिति में संघ द्वारा बनायी गयी नीति ही प्रभावी अथवा मान्य होती है। जहाँ तक प्रश्न स्थानीय सरकार का है तो इन्हें प्रान्तीय सरकार के अधीन रखा गया है, इसलिए ये प्रान्तीय नीतियों के अनुसार कार्य करती हैं। इस इकाई में विभिन्न स्तरों पर नीति-निर्माण में सहभागी सरकार के आन्तरिक अंग- कार्यपालिका, व्यवस्थापिका, प्रशासन तन्त्र तथा न्यायपालिका की भूमिका पर विचार किया जाएगा। नीति-निर्माण को प्रभावित करने वाली अन्य संरचानाओं यथा राजनीतिक दल, दबाव समूह, हित समूह, सामाजिक आन्दोलन तथा अंतर्राष्ट्रीय एजेन्सियों आदि पर विचार किया जाएगा। इस इकाई में नीति-निर्माण में भागीदार सरकार के विभिन्न अंगों के बीच अन्योन्य क्रियाओं का भी वर्णन किया जाएगा।

17.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- राजनीति और प्रशासन के बीच सम्बन्धों को जान सकेंगे।
- नीति-निर्माण में भूमिका निभाने वाली संस्थाओं का तुलनात्मक विश्लेषण कर सकेंगे।
- नीति-निर्माण को प्रभावित करने वाली अन्य संरचनाओं की भूमिका का वर्णन कर सकेंगे।
- नीति निर्धारक संरचनाओं के बीच अन्योन्य क्रियाओं को जानने में सक्षम हो सकेंगे।

17.2 राजनीति और लोक प्रशासन

लोक प्रशासन अपेक्षाकृत आधुनिक एवं नवीन अनुशासन है। लोक प्रशासन के जनक वुडरो विल्सन तथा अन्य प्रारम्भिक विद्वानों ने राजनीति और प्रशासन के अलगाव की बात की। इनका अभिमत था कि राजनीति का सम्बन्ध नीतियों के निर्माण से है तथा प्रशासन का सम्बन्ध नीतियों के क्रियान्यवयन से है। अतः नीति-निर्माण और लोक प्रशासन असम्बद्ध है और नीति-निर्माण प्रशासन के क्षेत्र से बाहर हैं। इनका यह भी मानना था कि प्रशासनिक प्रश्न राजनीतिक नहीं होते। इन्हीं तर्कों के आधार पर राजनीति शास्त्र से अलग होकर एक नये विशय के रूप लोक प्रशासन का उद्भव हुआ। राजनीति और प्रशासन के अलगाववादी विचारधारा के अग्रणी विद्वान- वुडरो विल्सन, गुडनाऊ तथा एल0डी व्हाइट आदि है। लुई ब्राउन ली के अनुसार ‘‘राजनीति और प्रशासन के बीच अन्तर है और यह अन्तर सदैव बना रहेगा, चाहे लोकतन्त्रीय समाज में उनमें कितने ही निकट सम्बन्ध क्यों न हों।’’

इस विचारधारा का प्रभाव कई दशकों तक रहा, किन्तु कुछ समय पश्चात उक्त विचार का प्रभाव धीरे-धीरे एक होता गया और आधुनिक समय में तो यह अन्तर समाप्त ही हो गया है। आधुनिक विचारधारा तथा कुछ प्रबन्धकीय दृष्टिकोण के विद्वानों का यह मानना था कि प्रशासन राजनीतिक परिवेश में रहकर ही कार्य करता है, इसलिए प्रशासन और राजनीति को, प्रशासन और नीति को एक दूसरे से बिल्कुल अलग नहीं किया जा सकता। अतः प्रशासन और राजनीति के बीच सम्बन्धों पर बल दिया जाने लगा। लूथर गूलिक पॉल एच0 एपलबी तथा हर्बट साइम आदि इस दृष्टिकोण के अग्रणी विचारक थे। पॉल एच0 एपलबी ने तो यहाँ तक कह डाला है कि ‘‘लोक प्रशान नीति-निर्माण है।’’ जैसा कि हम जानते हैं कि संसदीय प्रणाली में कार्यपालिका का उद्‌भव व्यवस्थापिका से होता है। व्यवस्थापिका के सदस्य ही कार्यपालिका में होते हैं। इन दोनों के मध्य अन्तर्सम्बन्ध भी पाया जाता है। कार्यपालिका व्यवस्थापिका के प्रति जवाबदेह होती है। अतः संसदीय शासन प्रणाली वाले देशों में नीति-निर्माण और प्रशासन का अटूट सम्बन्ध बन जाता है, जिन्हें एक-दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। इस सन्दर्भ में एक विद्वान पीटर ओडेगार्ड के विचार को उद्धृत करना उचित होगा। इनका मत है कि नीति तथा प्रशासन राजनीति के जुड़वा बच्चे हैं, जो एक दूसरे से अलग नहीं किये जा सकते। यह विचार तो संसदीय शासन प्रणाली वाले देशों में तो पूर्णतः सही है, परन्तु अध्यक्षीय शासन प्रणाली वाले देशों में भी बहुत हद तक सही प्रतीत होता है।

इसमें सन्देह नहीं है कि नीति-निर्माण का कार्य प्रमुखतः व्यस्थापिका का है और वही नीति का आधार तथा प्रारूप को अंतिम रूप से निर्धारित करती है। यह भी सही है कि नीति का प्रारूप तैयार करना कार्यपालिका का कार्य है। इस पूरी प्रक्रिया में प्रशासन का महत्वपूर्ण योगदान होता है क्योंकि वास्तविक आँकड़े प्रशासन के माध्यम से ही प्राप्त होते हैं, जिनके आधार पर नीतियों का निर्माण किया जाता है। यह भी सही है कि व्यवस्थापिका के पास न ही इतना समय है और न ही व्यवस्थापिका के लिए यह सम्भव है कि एक बार में व्यापक नीति बनाने के बाद लागू करने के क्रम में आने वाली विभिन्न प्रकार की समस्याओं के दृष्टिगत नीतियों को विस्तार दे सके। यह कार्य भी प्रशासन को ही करना पड़ता है। अतः कहा जा सकता है कि भारत जैसे देशों में नीति-निर्माण के कार्य में प्रशासन की भूमिका दिन-प्रतिदिन महत्वपूर्ण होती जा रही है। सम्पूर्ण नीति, प्रशासन के द्वारा तैयार की जाती है, जिसे सम्बन्धित मंत्री के माध्यम से व्यवस्थापिका के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है और बहुमत के आधार पर स्वीकृत हो जाता है। इस लिहाज से देखा जाए तो वर्तमान समय में नीति-निर्माण में प्रशासन की भूमिका काफी अहम हो गई है।

17.3 नीति-निर्माण में भागीदार प्रमुख संस्थाओं की भूमिका

जनता की विविध माँगों, अपेक्षाओं और समस्याओं के समाधान हेतु सरकार को नीतियाँ बनानी पड़ती हैं। नीति सरकारी निर्णय है, जो वास्तव में कुछ लक्ष्यों एवं उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सरकारद्वारा अपनायी गयी गतिविधियों का परिणाम होता है। सरकार द्वारा एक बार नीति बना देना ही काफी नहीं है, बल्कि समय-समय पर आने वाली चुनौतियों और समस्याओं के दृष्टिगत नीति में परिर्वतन तथा नीति का पुनर्निरधारण भी आवश्यक है। नीति-निर्माण सरकार की सबसे महत्वपूर्ण गतिविधि है। इसकी वजह यह है कि नीति देश तथा देश के समस्त नागरिकों के जीवन के लगभग प्रत्येक पक्ष को छूती है। विकास प्रशासन पर संयुक्त राष्ट्र के प्रकाशन (1975) में कहा गया है कि ‘‘आज के विभिन्न नीतिगत प्रश्नों के परिणाम एवं जटिलताओं के चलते, कोई राजा अथवा राजनैतिक दल अकेले ही नीतियाँ नहीं बना सकता और इसलिए उसे नीति-निर्माण में सहायता हेतु कछ केन्द्रीय इकाईयों की स्थापना करनी चाहिए।’’ जब हमारे सामने कोई सरकारी नीति बनकर आती है तो उस नीति के निर्माण में किसी एक संस्था का नहीं बल्कि सरकार के कई संस्थाओं यथा कार्यपालिका, व्यवस्थापिका, अधिकारीतंत्र तथा न्यायपालिका आदि के सम्मिलित प्रयास का परिणाम होता है। ये संस्थाएँ अपने अधिकार क्षेत्र में रहकर नीतियों के निर्माण में अपनी-अपनी भूमिकाएँ निभाती हैं। अब हम नीति-निर्माण के दृष्टिगत इन संस्थाओं की क्या भूमिका है, इस पर एक-एक कर के विचार करेंगे।

17.3.1 कार्यपालिका

यहाँ कार्यपालिका का आशय राजनीतिक कार्यपालिका से है, जिसे अस्थाई कार्यपालिका भी कहा जाता है। चूँकि नीति-निर्माण का पहल करना कार्यपालिका का कार्य है। कार्यपालिका एक कार्यात्मक निकाय है, उसके पास ही जनता की आकांक्षाओं को पूरा करने का दायित्व होता है। कार्यपालिका ही समस्याओं के विस्तार आदि से अवगत होता है इसलिए कार्यपालिका ही नीति प्रारूप बनाती है। यह नीति निर्धारण की सर्वोच्च संस्था नहीं है किन्तु बहुमत के कारण उसका प्रारूप सरलता से पारित हो जाता है। अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली वाले देशों में राष्ट्रपति तथा उसका मंत्रिमण्डल नीति-निर्माण के लिए पहल करता है। किन्तु संसदीय शासन प्रणाली वाले देशों में नीति-निर्माण के लिए पहल करने का दायित्व सम्बन्धित मंत्रालय अथवा कार्यदायी मंत्रालय का होता है। जैसा कि आप जानते हैं कि दोहरी कार्यपालिका संसदीय प्रणाली की एक प्रमुख विशेषता है। एक नाम मात्र की कार्यपालिका (भारत में राष्ट्रपति तथा ब्रिटेन में राजा) तथा दूसरी वास्तविक कार्यपालिका (प्रधानमंत्री सहित मन्त्रिपरिषद्) होती है। नीति-निर्माण में उक्त के अलावा मन्त्रिमण्डल, मन्त्रिमण्डल सचिवालय, मन्त्रिमण्डल समितियाँ, प्रधानमंत्री कार्यालय की महत्वपूर्ण भूमिका होती है, जिस पर अब हम चर्चा करेंगे।

1. **राष्ट्रपति-** जैसा कि हम जानते हैं कि भारत में कार्यपालिका का संवैधानिक प्रमुख राष्ट्रपति होता है। हमारे संविधान में कार्यपालिका का सम्बन्धित समस्त शक्तियाँ राष्ट्रपति को दी गई हैं। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 74 में कहा गया है कि राष्ट्रपति को परामर्श देने के लिए एक मंत्रिपरिषद् होगा, जिसका मुखिया प्रधानमंत्री होगा। व्यवहार में राष्ट्रपति की शक्तियों का प्रयोग प्रधानमंत्री सहित मंत्रिपरिषद् करती है। अतः मंत्रिपरिषद् वास्तविक कार्यपालिका है। मंत्रीपरिषद् समस्त कार्य राष्ट्रपति के नाम से करती है। नीति के निर्माण में राष्ट्रपति सीधे तौर पर उसमें भाग नहीं लेता है, बल्कि अप्रत्यक्ष रूप से उसे प्रभावित करता है। आप यह भी जानते हैं कि राष्ट्रपति को शासन एवं प्रशासन से सम्बन्धित समस्त सूचना प्रदान करना प्रधानमंत्री का दायित्व होता है और प्रधानमंत्री समय-समय पर राष्ट्रपति को शासन की गतिविधियों से अवगत कराता रहता है। अगर राष्ट्रपति किसी विषय से सम्बन्धित सूचना सरकार से मांगता है तो उसे उपलब्ध कराया जाता है। अतः राष्ट्रपति सरकार को किसी विषय पर आवश्यक कार्यवाही हेतु निर्देशित अथवा किसी मामले पर अपना सुझाव भी दे सकता है, जिस पर सरकार विचार करती है और उचित कार्यवाही करती है।
2. **मंत्रिमण्डल एवं मंत्रिमण्डल समितियाँ** वास्तविक कार्यपालिका मंत्रिपरिषद् है, जो एक व्यापक संगठन है और इसके अन्तर्गत प्रधानमंत्री, कैबिनेट मंत्री, राज्यमंत्री तथा उपमंत्री होते हैं। यह भी सच है कि शायद ही कभी मंत्रीपरिषद् के सभी सदस्यों की एक साथ बैठक होती है। मंत्रिमण्डल, मंत्रिपरिषद् की अपेक्षा छोटा संगठन है किन्तु अधिक शक्तिशाली है, क्योंकि इसमें प्रमुख विभागों के मंत्री शामिल होते हैं। यह राजनीतिक कार्यपालिका का कोर बिन्दु है। मन्त्रिमण्डल ही सरकार की गतिविधियों के लगभग समस्त क्षेत्रों से सम्बन्धित नीति-निर्माण की शुरूआत एवं निर्णय करता है। इसकी स्वीकृति के बिना नीति से सम्बन्धित प्रस्ताव न ही प्रभावी हो सकता है और न ही अपने अंतिम मुकाम को प्राप्त कर सकता है। मंत्रिमण्डल सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्त पर कार्य करती है। यह सरकार का सर्वोच्च एवं प्रभावशाली नीति निर्माता निकाय है, परन्तु इसके समक्ष प्रमुख नीतिगत प्रस्ताव ही निर्णय के लिए लाए जाते हैं। अन्य कम महत्व के प्रस्तावों पर निर्णय सम्बन्धित विभाग के मंत्री द्वारा ही अपने स्तर पर कर लिया जाता है अथवा आवश्यकता महसूस होने पर प्रधानमंत्री से परामर्श लेकर निर्णय ले लेता है। आमतौर पर मंत्रिमण्डल की साप्ताहिक अथवा यथा आवश्यक बैठक होती है और सभी राष्ट्रीय नीतियों पर निर्णय लिए जाते हैं। यह नीति-निर्माण के मौलिक निकाय के बजाये एक प्रस्तावक निकाय के रूप में अधिक काम करता हैं, साथ ही यह नीति निर्धारक निकाय से अधिक एक नीति निश्चायक निकाय के रूप में अधिक कार्य करता है।

   मन्त्रिमण्डल के कार्यों को सुविधाप्रद बनाने तथा शीघ्र निर्णय लिए जाने हेतु समिति प्रणाली को अपना गया है। मंत्रिमण्डल समितियों की संख्या निश्चित नहीं है, बल्कि अलग-अलग उद्देश्यों के लिए समितियाँ तथा उप समितियाँ बनाई जाती हैं। कभी-कभी विशेष उद्देश्यों के सन्दर्भ में यथाशीघ्र निर्णय तक पहुँचने के लिए तदर्थ समितियाँ भी बनाई जाती हैं और उद्देश्य पूर्ति के साथ ही समाप्त हो जाती हैं। कैबिनेट की समितियाँ सम्बन्धित मामलों में विस्तृत अध्ययन व विचार विमर्श कर नीति-निर्माण को सुगत बनाती हैं तथा कैबिनेट के समय की बचत करती हैं। कुछ महत्वपूर्ण मसलों पर कैबिनेट समितियाँ होती हैं, जिनमें से प्रमुख समितियाँ निम्नलिखित हैं- राजनीतिक मामलों की समिति, आर्थिक मामलों की समिति, संसदीय मामलों की समिति और नियुक्ति समिति। मन्त्रिमण्डल समितियाँ व्यक्तिगत रूप से मंत्रियों को नीति-निर्माण प्रक्रिया में सहभागिता के लिए पर्याप्त अवसर देती हैं। जैसा कि आप जान चुके हैं कि मन्त्रिमण्डल के समक्ष महत्वपूर्ण नीतिगत प्रस्ताव लाया जाना आवश्यक होता है। मन्त्रिमण्डल के सामने लाए गए नीतिगत प्रस्ताव पर वह सीधे विचार कर सकती हैं या किसी मंत्रिमण्डल समिति अथवा उप-

समिति के पास और अधिक गहन परीक्षण तथा विश्लेषण के लिए भेज सकता है। सरकार की ओर से किसी मंत्रिमण्डल समिति का निर्णय अन्तिम है या इसके निर्णय को स्वीकृति के लिए पुनः मंत्रिमण्डल के सामने रखा जाए, यह इस बात पर निर्भर करता है कि उस समिति में कौन लोग हैं।

3. **सचिवालय-** मन्त्रिमण्डल के क्रियाकलापों को व्यवहारिक रूप प्रदान करने तथा कार्यालयी सहायता उपलब्ध करने के लिए मन्त्रिमण्डल सचिवालय होता है। मन्त्रिमण्डल सचिवालय का राजनीतिक प्रधान प्रधानमंत्री तथा प्रशासनिक मुखिया मन्त्रिमण्डल सचिव होता है। नियम के अनुसार मंत्रिमण्डल सचिवालय, मंत्रिमण्डल अथवा इसकी सामितियों के लिए पत्र तैयार नहीं करता, ये कार्य सम्बन्धित मंत्रालय के द्वारा ही पूरा किया जाता है। ऐसा भले ही कभी होता है, कि मंत्रिमण्डल सचिव, मंत्रिमण्डल के लिए कोई पत्र तैयार करे। मंत्रिमण्डल सचिव मंत्रिमण्डल तथा उसी समितियों की सभी बैठकोंमें मौजूद रहता है। वह मंत्रिमण्डल एवं उसकी समितियों के लिए कार्य सूची तैयार करने, विचारणीय मुद्दों की प्राथमिताएं सुनिश्चित करने के साथ ही प्रधानमंत्री के परामर्श पर कैबिनेट समितियों को विषयों का आवंटन करने का कार्य करता है। कैबिनेट सचिव, मंत्रिमण्डल और उसकी समितियों की बैठकों का मिनट्स तैयार करने तथा बैठकों में लिए गए निर्णय से सम्बन्धित मंत्रालय को अवगत कराना अथवा सूचना प्रेषित करने के लिए भी मंत्रिमण्डल सचिव ही उत्तरदायी है। अतः हम कह सकते हैं कि नीति-निर्माण में कैबिनेट सचिव अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, इसकी स्थिति का महत्व प्रधानमंत्री के कार्य करने के तौर तरीके तथा प्रधानमंत्री के द्वारा मंत्रिमण्डल सचिव पर किए जाने वाले विश्वास की मात्रा पर निर्भर करता है। फिर भी बहुत समय से कैबिनेट सचिवालय ने स्वयं को नीति-निर्माण प्रक्रिया की एक महत्वपूर्ण संस्था के रूप में स्थापित कर लिया है।

4. **प्रधानमंत्री एवं उसका कार्यालय-** भारत में राष्ट्रपति बहुमत दल के नेता को प्रधानमंत्री तथा उसके परामर्श पर ही अन्य मंत्रियों की नियुक्ति करता है। प्रधानमंत्री ही यह निर्धारित करता है कि किसे मंत्रिपरिषद् में तथा मंत्रिमण्डल में शामिल करना है। प्रधानमंत्री ही अपने सहयोगी मंत्रियों में विभागों का बँटवारा करता है तथा वह जिसे चाहे अपने मंत्रिपरिषद् अथवा मंत्रिमण्डल से निकाल भी सकता है। प्रधानमंत्री, मंत्रिमण्डल की बैठकों की अध्यक्षता करता है। नीति निर्धारण के सन्दर्भ में प्रधानमंत्री की विशेष महत्ता है, वह नीति-निर्माण में निर्णायक भूमिका भी निभाता है। प्रधानमंत्री, मंत्रिमण्डल की नीति निर्धारण प्रक्रिया पर नियंत्रण रखता है। कुछ महत्वपूर्ण मामलों जैसे - विदेश सम्बन्धित मामलों, प्रतिरक्षा एवं आर्थिक क्षेत्र से सम्बन्धित मामलोंपर नीति-निर्माण में वह व्यक्तिगत रूप से रूचि लेते हैं और उसकी इच्छा के अनुसार नीतियों का निर्माण किया जाता है। यदि मंत्रिमण्डल का कोई सदस्य उसके विचार से असहमत है तो भी उसे स्वीकार करना पड़ता है अन्यथा उसे मंत्रिमण्डल से त्यागपत्र देने होता है। मंत्रिमण्डल के सदस्य उसके विचार से इस वजह से भी सहमत हो जाते हैं क्योंकि उन्हें अपने अस्तित्व के समाप्त होने का भय रहता है। जैसा कि आप जानते हैं कि यदि प्रधानमंत्री अपने पद से इस्तीफा देता है तो पूरी मंत्रिपरिषद् समाप्त हो जाती है। प्रधानमंत्री, मंत्रिमण्डल सचिवालय की सहायता से नीतिगत् निर्णयों पर असधारण प्रभाव डालता है। अतः ग्रीब्ज ने ठीक ही कहा है कि ''सरकार राष्ट्र की स्वामी है और प्रधानमंत्री सरकार का स्वामी है।''

प्रधानमंत्री को उसके दायित्वों के निर्वहन करने एवं सचिवालयी सहायता प्रदान करने के लिए प्रधानमंत्री कार्यालय होता हैं। इसकी स्थापना 1947 में प्रधानमंत्री सचिवालय के रूप में की गयी थी, किन्तु 1977 में प्रधानमंत्री सचिवालय को प्रधानमंत्री कार्यालय का नाम दे दिया गया। शक्तिशाली प्रधानमंत्री कार्यालय का प्रारम्भ लाल बहादुर शास्त्री के कार्यकाल से हुआ था। यह कार्यालय प्रधानमंत्री की शक्ति और सत्ता का प्रतीक है। इस कार्यालय की धमक प्रधानमंत्री की प्रभावशीलता तथा अपने दल पर उसका कितना

नियंत्रण है, इस बात पर निर्भर करता है। वर्तमान समय में प्रधानमंत्री कार्यालय सत्ता का केन्द्र बन गया है। प्रधानमंत्री के अधिक निकट होने के कारण यह मंत्रिमण्डल सचिवालय से अधिक शक्तिशाली है। इस कार्यालय का प्रमुख प्रधान सचिव कहलाता है, जो इस कार्यालय का सर्वोच्च अधिकारी होता है। यह कार्यालय प्रधानमंत्री को महत्वपूर्ण विषयों पर एवं अनुवर्ती मुद्दों पर जरूरत के हिसाब से परामर्श देता है तथा आवश्यक दस्तावेजों को उपलब्ध कराना, प्रधानमंत्री के निर्देशों का पालन कराना, विशेष मामलों पर टिप्पणी तैयार करना, सम्बन्धित मंत्री से सम्पर्क स्थापित करना, विभिन्न मंत्रालयों में समन्वय स्थापित करना, प्रधानमंत्री को मंत्रिमण्डल सचिवालय से सम्बन्धित महत्वपूर्ण निर्णयों से अवगत कराना एवं प्रधानमंत्री के आदेश तथा सूचना को मंत्रिमण्डल सचिवालय को सूचित करना इसी कार्यालय का कार्य है। यद्यपि प्रधानमंत्री सचिवालय नीति विकल्प विकसित करने के साथ-साथ अन्य महत्वपूर्ण कार्य भी करता है। इस कार्यालय ने नीति-निर्माण में प्रधानमंत्री की भूमिका में उल्लेखनीय वृद्धि की है। पाई0 पणाण्डीकर के अनुसार ''प्रधानमंत्री कार्यालय की स्थापना, स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के काल में, भारत के नीति-निर्माण उपकरण के रूप में किया गया, शायद सबसे महत्वपूर्ण संस्थागत बदलाव है।''

उक्त संरचनाओं के अलावा योजना आयोग तथा राष्ट्रीय विकास परिषद् भारत में नीति-निर्माण की प्रक्रिया को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करती है। उक्त दोनों संस्थाओं का अध्यक्ष प्रधानमंत्री ही होता है। एक परामर्शदात्री निकाय होने के बावजूद योजना आयोग देश के सामाजिक आर्थिक विकास हेतु नीति-निर्माण की प्रक्रिया में एक महत्वपूर्ण अंग के रूप में उभरा है। इसकी संरचना और संसाधनों के आवंटन में विशेष भूमिका की वजह से इसे 'सुपर कैबिनेट' कहा जाता है। यह देश के लिए योजनाओं के निर्माण तथा संसाधनों का आवंटन, वितरण तथा निर्धारण आदि कार्य, नीति निर्धारण में इसकी भूमिका को स्पष्ट कर देते हैं। राष्ट्रीय विकास परिषद् राष्ट्रीय योजनाओं की कार्यप्रणाली की समीक्षा करना, सामाजिक तथा आर्थिक नीति के महत्वपूर्ण विषयों पर विचार करना और राष्ट्रीय योजनाओं के अन्तर्गत निर्धारित लक्ष्यों व उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु विविध उपायों के बारे में सुझाव देना है। राष्ट्रीय विकास परिषद् में योजना आयोग के सदस्य, कुछ मंत्री तथा सभी राज्यों के मुख्यमंत्री शामिल होते हैं, जबकि योजना आयोग में राज्यों के मुख्यमंत्री शामिल नहीं होते। इनकी संगठनात्मक स्थिति के कारणउक्त दोनों संस्थायें योजना निर्माता निकाय है और इनकी सिफारिश केवल परामर्श ही नहीं बल्कि नीतिगत निर्णय मानी जाती है। वर्तमान समय में उक्त दोनों संस्थाओं के स्थान पर नीति आयोग का गठन किया गया है, जो उक्त सभी कार्यों को करती है।

17.3.2 व्यवस्थापिका

व्यवस्थापिका को विधायिका तथा विधानमण्डल के नाम से भी जाना जाता है। विधि अथवा कानून बनाने वाली संस्था को विधायिका कहा जाता है। विश्व के विभिन्न देशों में इस संस्था को अलग-अलग नामों से जैसे- भारत में संसद, संयुक्त राज्य अमेरिका में कांग्रेस, जापान में डायट तथा नेपाल में राष्ट्रीय पंचायत इत्यादि नाम से जाना जाता है। नीति-निर्माण में व्यवस्थापिका की भूमिका विभिन्न राजनीतिक प्रणालियाँ (संसदीय एंव अध्यक्षीय प्रणाली) में भिन्न-भिन्न होती हैं। आगे इस सन्दर्भ में विचार किया जाएगा। व्यवस्थापिका नीति-निर्माण की सर्वोच्च संस्था है। जैसा कि आप जानते हैं कि संसदीय शासन प्रणाली में कार्यपालिका, व्यवस्थापिका (संसद) के प्रति उत्तरदायी होती है और लोकसभा (निम्न सदन) में विश्वास प्राप्त रहने तक अस्तित्व में रहती है, विश्वास खाने पर उसका अस्तित्व समाप्त हो जाता है।

भारतीय संसद संविधानमें दिए गए विषयों संघीय तथा अवशिष्ट विषयों पर कानून बनाती है। संसद राज्य सूची के विषयों पर भी कानून बना सकती है, यदि राज्यसभा विशेष बहुमत द्वारा यह प्रस्ताव पारित करे कि राष्ट्रीय हित में ऐसा करना आवश्यक है। राज्य में संकटकालीन परिस्थितियों में भी राज्य सूची के विषयों पर संसद को कानून बनाने का अधिकार मिल जाता है। हमारे संविधान में कहा गया है कि संसद की अनुमति के बिना न तो कोई व्यय

किया जा सकता है और न ही कोई कर लगाया जा सकता है। अतः भारतीय संसद कानून बनाती है और सरकार के नीतिगत निर्णयों को वैधता प्रदान करती है। यह कराधान एवं व्यय के अधिकारिक आकार देती है तथा लिए गये वित्तीय निर्णयों के सन्दर्भ में सरकार को जिम्मेदार ठहराती है। व्यवस्थापिका विधि निर्माण एवं नीति-निर्माण में भूमिका निभाने के साथ-साथ प्रशासनिक गतिविधियों की आलोचना करती है एवं उन पर नियंत्रण रखती है। प्रशासन पर प्रत्यक्ष रूप से नियंत्रण तो कार्यपालिका का होता है किन्तु व्यवस्थापिका प्रशासन पर अप्रत्यक्ष रूप से नियंत्रित करती है, अर्थात् दूसरे शब्दों में कहा जाये तो यह सरकार पर नियंत्रण के माध्यम से प्रशासन पर अंकुश लगाती है। व्यवस्थापिका द्वारा सरकार पर नियंत्रण के कई साधन जैसे- प्रश्न काल, शून्यकाल, काम रोको प्रस्ताव, बजट को अस्वीकार करके, अविश्वास प्रस्ताव इत्यादि। व्यवस्थापिका का विधि निर्माण तथा नीति-निर्माण प्रक्रिया के दौरान गहरी छान-बीन तथा उसमें आवश्यक संशोधन भी करती है। यह जन सामान्य की मांगों, आकांक्षाओं तथा शिकायतों आदि को अभिव्यक्त करने का अवसर उपलब्ध कराने के साथ ही नीतियों के निर्धारण से सम्बन्धित विभिन्न मुद्दों पर वाद-विवाद हेतु जनप्रतिनिधियों को एक सार्वजनिक मंच भी उपलब्ध कराती है। यह विधिक तथा नीतिगत प्रस्तावों की प्रमाणिकता सुनिश्चित करती है। संसदीय प्रणाली वाले देशों में कार्यपालिका नीति-निर्माण सम्बन्धित प्रस्तावों को पूरी तरह से तैयार कर व्यवस्थापिका के समक्ष प्रस्तुत करती है। अर्थात विधिक अथवा नीतिगत प्रस्तावों के सम्बन्ध में पहल करने की शक्ति कार्यपालिका के पास है, जो प्रधानमंत्री कैबिनेट व सम्बन्धित मंत्री द्वारा किया जाता है। व्यस्थापिका किसी भी प्रकार के प्रस्ताव का पहल नहीं करती, बल्कि कार्यपालिका द्वारा उसके सामने लाए गये प्रस्तावों पर चर्चा, सुझाव राष्ट्रीय नीति एवं सामाजिक व आर्थिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर उसे परिष्कृत तथा उसमें संशोधन करती है। यह सत्य है कि संसदीय शासन में बहुमत के आधार पर सरकारें बनती हैं। यदि सरकार को लोकसभा में बहुमत प्राप्त है तो ऐसी स्थिति में व्यवस्थपिका मात्र औपचारिक अनुमोदन तक ही सीमित रह जाती है क्योंकि संसद में बहुमत होने से कार्यपालिका द्वारा प्रस्तुत प्रस्ताव पारित हो ही जाता है। ऐसी स्थिति में व्यवस्थापिका, कार्यपालिका के नियंत्रण में आ जाती है।

अध्यक्षीय प्रणाली वाले देशों में कांग्रेस नीति-निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। अमेरिका में नीति-निर्माण के लिए पहल राष्ट्रपति करता है, किन्तु उसका प्रस्ताव कांग्रेस करती है। कांग्रेस को भारतीय संसद की अपेक्षा कम शक्ति प्राप्त है, क्योंकि मुख्य कार्यपालक के चुनाव में व्यवस्थापिका भाग ही नहीं लेती है। अमेरिका के संविधान विधि व नीति निर्माताओं को कार्यपालिका में भाग लेने से रोकता है, क्योंकि शक्ति-पृथक्करण का सिद्धान्त का पालन किया जाता है। यदि अमेरिका का राष्ट्रपति जिस दल का है उस दल को कांग्रेस में बहुमत नहीं है तो ऐसी स्थिति में प्रस्तावों को पारित करना कठिन हो जाता है।

व्यवस्थापिका के सदस्य सामान्य तौर पर विशेषज्ञ नहीं होते और इसकी बैठकें कार्य के अनुपात में नहीं होती हैं, जिससे निर्णय निमार्ण में विलम्ब होता है। अतः उक्त कमियों को दूर करने तथा उचित व शीघ्र निर्णय निर्माण हेतु समिति व्यवस्था को अपनाया गया है। वर्तमान समय में ये समितियाँ व्यवस्थापिका की कार्य गतिविधि का अनिवार्य अंग बन गई हैं। संसदीय समितियों की स्थापना संसद के दोनों सदनों के सदस्यों को मिलकर या दोनों सदनों की अपनी-अपनी समितियाँ होती है। संसदीय समितियाँ दो प्रकार की होती है- स्थाई समितियाँ तथा तदर्थ समितियाँ। सन् 1993 में संसद में 17 स्थाई समितियों की व्यवस्था की गई है, जो अलग-अलग विषयों पर अपना कार्य करती हैं। स्थाई समितियाँ निरन्तर बनी रहती हैं और एक समिति के अन्तर्गत एक या कई उप समितियाँ हो सकती हैं, जब कि तदर्थ समितियाँ किसी विशेष उद्देश्य के सम्बन्ध में बनाई जाती हैं जैसे ही वह उद्देश्य पूरा हो जाता है ये समाप्त हो जाती हैं। समितियों में सदस्यों तथा अध्यक्ष का चयन सदन के अध्यक्ष द्वारा किया जाता है। संसदीय समितियों में कार्य अनौपचारिक तरीके से तथा सदस्या आमने-सामने बैठकर किसी मुद्दे पर व्यापक रूप से विचार विमर्श करते हैं तथा तर्क वितर्क कर सकते हैं। ये समितियाँ अपनी कार्यवाही में विशेषज्ञों का भी सहयोग ले सकती हैं। इन समितियों की बैठकें निरंतर चलती रहती हैं, इनकी बैठकें सत्र प्रारम्भ होने पर भी चलती ही रहती हैं।

इस तरह से कहा जा सकता हैं कि इन समितियों के माध्यम से संसद एक समय में कई मुद्दों के सम्बन्ध में विधि निर्माण तथा नीति निर्धारण की कार्यवाही कर सकता है। ये समितियाँ उन विषयों पर गहन मंथन व तथ्यों का पता करती हैं, जो उन्हें सदन द्वारा दिया जाता है। तत्पश्चात् उस सम्बन्ध में अपनी सिफारिशें तथा सुझाव सदन के समक्ष रखती हैं। इन समितियों द्वारा दिये गये सलाहों तथा सुझावों पर सरकार द्वारा उचित ध्यान दिया जाता है क्योंकि इनके परामर्श को विशेषज्ञ सलाह के तौर पर देखा जाता है।

17.3.2.1 विधायी प्रक्रिया

अब हम यहाँ पर व्यवस्थापिका में विधि-निर्माण तथा नीति-निर्धारण की प्रक्रिया पर संक्षेप में विचार करेंगे। कार्यपालिका द्वारा विधि-निर्माण तथा नीति-निर्माण प्रस्ताव तैयार किया जाता है। यह प्रस्ताव व्यवस्थापिका के दोनों सदनों द्वारा अलग-अलग पारित हाने के तथा राष्ट्रपति के अनुमोदन के पश्चात ही क्रियान्वित की जा सकती है। दोनों सदनों में प्रस्ताव को पारित किये जाने के लिए हर विधेयक को तीन वाचनों से होकर गुजरना पड़ता है। गैर-वित्तीय प्रस्ताव दोनों सदनों में से किसी सदन में पहले लाया जा सकता है।

व्यवस्थापिका के किसी सदन में सम्बन्धित मंत्री द्वारा विधेयक प्रस्तुत करने की लिखित अनुमति माँगी जाती है। सदन की अनुमति मिलने पर विधेयक सदन में प्रस्तुत किया जाता है, इस अवस्था को विधेयक का प्रथम वाचन कहा जाता है। विधेयक प्रस्तुत किये जाने के पश्चात इसे सरकारी गजट में प्रकाशित किया जाता है। परन्तु सभापति की अनुमति से विधेयक को सदन में प्रस्तुति से पहले भी गजट में प्रकाशित किया जा सकता है। ऐसी स्थिति में सदन में प्रस्ताव लाने हेतु अनुमति की आवश्यकता नहीं होती बल्कि विधेयक सीधे सदन में प्रस्तुत कर दिया जाता है।

द्वितीय वाचन के अन्तर्गत विधेयक पर दो चरणों में विचार किया जाता है। यह चरण काफी महत्वपूर्ण होता है और इसी चरण में विधेयक पर गहन विचार-विमर्श, तर्क-वितर्क किया जाता है। इस वाचन के प्रथम चरण में विधेयक पर सामान्य चर्चा होती है तथा इसके सिद्धान्तों पर बहस की जाती है। इसी चरण में यह निर्धारित किया जाता है कि विधेयक पर गहन विचार हेतु सीधे सदन के समक्ष रख जाए अथवा किसी समिति को प्रेषित किया जाए। प्रायः महत्वपूर्ण, जटिल तथा तकनीकि प्रकृति के प्रस्तावों को समिति को प्रेषित कर दिया जाता है। समिति प्रेषित प्रस्ताव पर विस्तृत विचार मंथन, तर्क वितर्क तथा सम्बन्धित सूचनाऐं प्राप्त करती हैं तथा इस कार्य में विशेषज्ञों का भी सहयोग ले कर अपने सुझाव तथा सिफारिश सदन को देती हैं। इस वाचन के दूसरे चरण में पुनः सदन विधेयक के प्रत्येक पहलू पर समिति की सिफारिश के दृष्टिगत गहन विचार विमर्श करती हैं तथा विधेयक में संशोधन प्रस्ताव भी लाए जा सकते हैं। संशोधन पर मतदान होता है और बहुमत द्वारा पारित किया जाता है तो संशोधन विधेयक का हिस्सा बन जाता है।

तृतीय वाचन, विधेयक प्रस्तुत करने वाला सदस्य विधेयक को पारित करने के लिए पेश करता है। इस वाचन में बहस केवल विधेयक को स्वीकार करने अथवा अस्वीकार करने तक ही सीमित रहता है। प्रायः सूक्ष्म चर्चा नहीं होती है। इस अन्तिम वाचन में बहुमत द्वारा विधेयक को पारित कर दिया जाता है तो यह विधेयक दूसरे सदन को भेज दिया जाता है और दूसरे सदन में भी विधेयक को उक्त तीनों वाचनों से होकर गुजरना पड़ता है। दूसरा सदन भी पारित कर देता है और राष्ट्रपति अनुमति प्रदान कर देता है तो कानून बन जाता है।

17.3.3 अधिकारीतन्त्र

अधिकारीतन्त्र को स्थाई कार्यपालिका भी कहा जाता है, क्योंकि ये एक निश्चित आयु तक सेवा में रहते हैं। आप जान चुके हैं कि नीति-निर्माण करने का दायित्व वैधानिक रूप से कार्यपालिका तथा व्यस्थापिका का है, अधिकारी तन्त्र का नहीं। यह वैधानिक रूप से नीति के सफल क्रियान्वयन के लिए उत्तरदायी है। अधिकारी तन्त्र नीति-निर्माण में सहायता करता है। यह भी सत्य है कि नीति-निर्माण और क्रियान्वयन दो अलग-अलग कार्य हैं किन्तु उक्त दोनों कार्य पूर्णरूप से पृथक्क नहीं बल्कि एक दूसरे से गहराई से सम्बन्धित हैं। किसी नीति की सफलता या विफलता

इस बात पर निर्भर करती है कि वह नीति वास्तविक धरातल पर क्रियान्वित हो पा रही है अथवा नहीं। अतः नीति के सफल क्रियान्वयन के लिए व्यवहारिक तथा वास्तविकता पर आधारित नीतियों का निर्माण आवश्यक है। अधिकारीतंत्र कार्यापालिका के नियंत्रण में कार्य करता है तथा उससे प्राप्त आदेशों का पालन करता है। कार्यपालिका नीति-निर्माण के विषय में जो भी कार्यवाही करती है उसका आधार अधिकारीतन्त्र द्वारा जुटाई गयी सूचनायें होती हैं। कार्यपालिका जिस नीति का प्रस्ताव व्यवस्थापिका में रखती हैं, उसका ढाँचा तो अधिकारी तन्त्र ही तैयार करता है। कल्याणकारी राज्य की अवधारणा के कारण सरकार के कार्य व्यापक, अत्यधिक जटिल तथा बहुआयामी हो गया है। समय तथा वशेषज्ञता के अभाव के कारण व्यवस्थापिका अपने दायित्यों को ठीक से निर्वहन नहीं कर पर रही है, परिणामस्वरूप प्रत्यायोजित विधायन की अवधारणा को बढ़ावा मिला है। इस अवधारणा के अनुसार व्यवस्थापिका अपने कुछ विधायी शक्तियों को कार्यपालिका को दे देती है अर्थात् विधि बनाने की कुछ शक्तियाँ कार्यपालिका को हस्तान्तिरित कर देती है। व्यवहारिक रूप से यह देखने को मिलता है कि व्यवस्थापिका किसी नीति-निर्माण के सम्बन्ध में व्यापक प्रारूप को अनुमोदित कर देती है और उसके अन्तर्गत अन्य नियमों, उपनियमों, निर्णयों को कार्यपालिका के लिए छोड़ देती हैं, जिस पर कार्यपालिका आवश्यकतानुसार निर्णय लेती है। अतः नीति को विस्तृत रूप से परिभाषित करने का दायित्व प्रशासन तंत्र का ही होता है। अधिकारी तन्त्र नीति-निर्माण से जुड़े विकल्पों पर सलाह देने सम्बन्धित अपने दायित्यों का निर्वहन करते हैं। आप जानते हैं कि मंत्रियों को सचिव व अन्य आधिकारी विभिन्न विषयों पर निर्णय लेने में परामर्श देते हैं अथवा इन अधिकारी तन्त्र द्वारा स्वयं निर्णय ले लिया जाता है जो कानूनों तथा नीतियों के ढाँचे के अन्दर हो।

नीति-निर्माण के अधिकारी तन्त्र की भूमिका की चर्चा मुख्यतः तीन बिन्दुओं- सूचना देना, परामर्श देना तथा विश्लेषण करना को ध्यान में रखकर किया जाएगा।

1. **सूचना देना-** हम जानते हैं कि अधिकारीतन्त्र का सीधा सम्बन्ध जनता से होता है। अधिकारीतन्त्र जनता के बीच रहकर कार्य करते हैं जिससे उन्हें जनता की इच्छाओं, नीति क्रियान्वयन में आने वाली समस्याओं आदि के बारे में ज्ञान तथा अनुभव होता है। किसी समस्या अथवा मुद्दे पर नीति-निर्माण के लिए यह जरूरी है कि उस समस्या की गम्भीरता दुष्प्रभाव, विस्तार आदि का गहराई से विश्लेषण किया जाए। इस सम्बन्ध में वास्तविक सूचनाओं की आवश्यकता पड़ती है, जो समस्या के विस्तार एवं दुष्प्रभाव आदि को प्रमाणित कर सके। अधिकारीतन्त्र ही समस्या की प्रमाणिकता हेतु विभिन्न प्रकार की सूचनाऐं एकत्र करता हैं। अधिकारीतन्त्र द्वारा उपलब्ध कराए गए वास्तविक सूचनाएं तथा आकड़ें वस्तुनिष्ठि नीति का आधार होते हैं। यदि आंकड़े सत्यता पर आधारित नहीं हैं तो ऐसी सूचना के आधार पर निर्मित नीति की असफलता निश्चित है। अतः व्यवस्थित तथा व्यवहारिक नीति निमार्ण के लिए सूचनाओं की सत्यता अथवा विश्व सनीयता अतिआवश्यक है, इस कार्य को अधिकारीतंत्र कुशलता के साथ निर्वहन करता है।
2. **परामर्श देना-** जैसा कि पहले बताया जा चूका है कि वैधानिक रूप से देखा जाए तो नीति-निर्माण हेतु प्रस्ताव तैयार करना कार्यपालिका का कार्य है। हम जानते हैं कि कार्यपालिका के दायित्वों के निर्वहन में सहायता एवं सलाह देने के लिए अधिकारीतंत्र अथवा सचिव होते हैं। कार्यपालिका को परामर्श देना अधिकारीतंत्र का वैधानिक दायित्व है। इस दायित्व के निर्वहन हेतु अधिकारीतन्त्र कार्यपालिका को नीति-निर्माण के कार्यों में परामर्श देता हैं। मंत्री अथवा मंत्रिमण्डल नीति निर्धारण के सम्बन्ध में जो निर्णय लेती है उसमें सम्बन्धित विभाग के सचिवों तथा कैबिनेट सचिवालय की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। अधिकारीतन्त्र विभिन्न मुद्दों में से महत्वपूर्ण मुद्दों की पहचान करने जिसे नीति हेतु चुने जाने के सम्बन्ध में परामर्श प्रदान करना। प्रधानमंत्री कार्यालय भी नीति-निर्माण सम्बन्धी परामर्श देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। अधिकारीतन्त्र की परामर्शदात्री भूमिका, कार्यपालिका को वर्तमान महत्वपूर्ण समस्याओं के समाधान से जुड़े विभिन्न विकल्प उपलब्ध कराने से भी जुड़ा हुआ है।

3. **विश्लेषण करना-** अधिकारीतन्त्र का कार्य है कि वह समस्याओं का विश्लेषण करे तथा उन मुद्दों अथवा समस्याओं की ओर ध्यान आकर्षित करे जिस पर निर्णय करना आवश्यक है। अधिकारीतन्त्र निति निर्माण हेतु लिए गए मुद्दों के गुण-दोष का विश्लेषण करता है। अधिकारीतन्त्र का यह भी कार्य है कि नीति प्रस्तावों का संविधान के प्रावधानों, संसद द्वारा बनाए गए कानूनों, तथा अन्य नियमों तथा उपनियमों के सन्दर्भ में विश्लेषित करे। इस तरह से हम कह सकते हैं कि अधिकारीतन्त्र नीति-निर्माण में सहायता प्रदान करके महत्वपूर्ण भमिका निभाता है।

17.3.4 न्यायपालिका

न्यायपालिका सरकार के तीन अंगो में से एक है। परम्परागत रूप से न्यापालिका का मुख्य कार्य उसके सामने लाए गए विवाद को निपटारा कर न्याय करना है। वर्तमान समय में न्यायपालिका संचार माध्यमों से प्राप्त सूचनाओं के आधार पर स्वंय संज्ञान लेकर निर्णय अथवा दिशा निर्देश जारी करती है। जब कार्यपालिका अपने वैधानिक दायित्वों का निर्वहन नहीं करती है तो ऐसी स्थिति में न्यायालय अपनी सीमाओं को लाँघ कर सक्रियता दिखाते हुए कार्यपालिका को अपने दायित्वों को करने का निर्देश देती है, इसे न्यायिक सक्रियता कहते हैं। कभी-कभी इस सक्रियता की वजह से कार्यापालिका और न्यायपालिका के मध्य विवाद उत्पन्न हो जाता है। संघीय शासन वाले देशों में सर्वोच्च न्यायालय को ही संविधान की व्याख्या करने का अधिकार है और सर्वोच्च न्यायालय संविधान का संरक्षक भी है।

न्यायपालिका नीति-निर्माण में अप्रत्यक्ष रूप से भूमिका निभाती है। न्यायपालिका, नीति-निर्माण में दो तरीके- न्यायिक सक्रियता तथा न्यायिक समीक्षा के माध्य से अपना योगदान देती है। न्यायपालिका, व्यवस्थापिका तथा कार्यपालिका द्वारा निर्मित नीतियों को संविधान में वर्णित प्रावधानों के आधार पर वैधता प्रदान करती है। न्यायिक समीक्षा के तहत न्यायपालिका यह देखती है कि कोई नीति संविधान के प्रावधानों तथा संविधान की मूल भावना के अनुसार है या नहीं। यदि कोई नीति संवधान के प्रावधानों का उलंघन करती है तो ऐसी नीति को न्यायपालिका असंवैधानिक घोषित करते हुए रद्द कर देती है। अगर नीति का कुछ भाग संविधान के प्रावधानों अथवा भावना के विरूद्ध है तो उस भाग को रद्द कर देती है। न्यायालय यह भी देखती है कि कोई नीति नागरिकों के मौलिक अधिकरों पर प्रतिकूल प्रभाव तो नहीं डालता अथवा इसमें किसी प्रकार की कटौती तो नहीं कर रहा है। यदि ऐसा है तो न्यायालय उस नीति को अथवा उस भाग को रद्द कर देती है। न्यायालय विवादों का निपटारा करते समय दिए गए अधिनिर्णय के माध्यम से भी नीति को प्रभावित करती है। भारत में न्यायपालिका को परामर्शदात्री क्षेत्राधिकार प्राप्त है। देश के मुख्य कार्यपालिका द्वारा किसी विषय पर परामर्श माँगने पर उसके द्वारा दिया गया परामर्श नीति-निर्माण में सहयाक सिद्ध हो सकता है।

कई बार न्यायपलिका, किसी अमुक विषय पर सरकार को स्पष्ट नीति बनाने के लिए कहा है जैसे- भर्ती, पदोन्नती आदि के मामलें में। न्यायपालिका संविधान में उल्लिखित किसी प्रावधान को लागू कराने के लिए तथा जनकल्याण हेतु नीति बनाने का निर्देश देती है तत्पश्चात सरकारें नीतियाँ बनाती हैं अथवा पूर्व की नीतियों में संशोधन करती हैं जैसे- 6-14 वर्ष के बच्चों को अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने की नीति। यह भी देखा जाता है कि कई बार न्यायालय के कहने पर भी सरकारें उस विषय पर नीति नहीं बनाती जिसका बेहतर उदाहरण के रूप में एक समान नागरिक संहिता को देख सकते हैं। यह भी देखा जाता है कि न्यायालय के फैसले को निष्प्रभावी करने के लिए भी नीतियाँ बनाई जाती हैं। न्यायपालिका के फैसले को निरस्त करने के लिए संविधान में संशोधन तक किया गया है जैसे शाह बनो के मामले में। समय-समय पर न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय नीति बनाने में मार्गदर्शक के रूप कार्य करते हैं। कई बार न्यायालय अपने फैसलों के जरिये सुझाव भी देती है, जो सरकारों के लिए नीति निर्धाण की दृष्टि से महत्वपूर्ण होते हैं। अतः हम कह सकते हैं कि न्यायपालिका, व्यवस्थापिका तथा कार्यपलिका के

मनमाने तरीके से नीति निर्धाण पर नियन्त्रण लगाने का कार्य करती है तथा सामाजिक एवं आर्थिक नीतियों के प्रतिपादन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है।

17.4 विभिन्न अंगो के बीच अन्योन्य क्रियाऐं

अब तक हम जाने चूके है कि सरकार के विभिन्न अंग कार्यपालिका, विधायिका, अधिकारी तन्त्र तथा न्यायपलिका नीति-निर्माण में किस तरह से अपनी-अपनी भूमिकाऐं निभाते हैं। इस तरह से कहा जा सकता है कि नीति का निर्माण किसी एक संस्था द्वारा नहीं किया जाता, बल्कि नीति इन संस्थाओं के सम्मिलित प्रयास का परिणाम है। नीति बनाते वक्त ये सभी संस्थाएं घनिष्ठ अन्योन्य क्रियाएं करती हैं। इन संस्थाओं के आपसी सहयोग तथा एक दूसरे को दी जाने वाली सहायता से ही एक उपयुक्त तथा व्यवहारिक नीति का निर्धारण संम्भव है अन्यथा नहीं। इस सम्बन्ध में यह भी जाने लेना आवश्यक है कि ये संस्थाएं अपनी सीमा में रहकर ही एकदूसरी संस्था की सहायता तथा सहयोग देती हैं। यदि इन संस्थाओं द्वारा नीति बनाने के सम्बन्ध में सहयोग व सहायता करते समय अपनी सीमा लाँघती है तो इन संस्थाओं के मध्य विवाद उत्पन्न हो जाता है। व्यवहार में ऐसी स्थिति कई बार उत्पन्न हो चुकी है किन्तु समय रहते इन विवादोंको शान्तिपूर्वक उचित समाधान भी कर लिया जाता है।

नीति प्रस्ताव बनाना कार्यपलिका का कानूनी अधिकार है किन्तु नीति प्रस्तावों के स्वरूप के निर्धारण में अधिकारीतन्त्र कई तरीके से कार्यपालिका के इस दायित्व को पूरा करने में मदद करती है। कार्यपलिका को अधिकारी तन्त्र यह बताता है किस मुद्दे पर नीति का निर्माण आवश्यक है अर्थात् अधिकारी तन्त्र राष्ट्रीय तथा समसामयिक महत्व के मुद्दे की ओर कार्यपलिका का ध्यान आकृष्ट करती है। अधिकारीतंत्र समस्या का विश्लेषण तथा उसकी गंभीरता के बारे में बताता है तथा इस सम्बन्ध में आवश्यक सूचनाऐं प्रदान करता है, साथ ही नीति के सम्बन्ध में कार्यपलिका के समक्ष अधिक से अधिक विकल्प भी उपलब्ध कराता है। अब तो नीति का निर्धारण कार्यपलिका का ही कार्य नहीं बल्कि इसमें अधिकरीतन्त्र की भूमिका दिनों-दिन बढ़ती जा रही है। चूँकि अधिकारीतन्त्र नीतियों को क्रियान्वित करते हैं तो उन्हें व्यवहारिक अनुभव होता है कि नीति क्रियान्वयन में क्या समस्या आती है तथा नीति अपने उद्देश्य को किस हद तक प्राप्त करने में सफल रहा। परिणामस्वरूप अधिकारीतंत्र वर्तमान नीति में संशोधन का भी सुझाव देते हुए नित नएनए विकल्प सुझाते हैं। अतः बेहतर नीति के निर्माण में कार्यपालिका तथा अधिकारीतन्त्र के मध्य सूचनाओं का आदान-प्रदान होता है तथा दोनों साथ मिलकर कार्य करते हैं।

संसदीय शासन प्रणाली में कार्यपलिका का उद्धाव व्यवस्थापिका से ही होता है तथा दोनों में अन्तर्सम्बन्ध पाया जाता है क्योंकि व्यवस्थापिका के ही सदस्य कार्यपालिका में होते है। कार्यपालिका व्यवस्थापिका के निम्न सदन के प्रति उत्तरदायिव है और निम्न सदन के विश्वास प्राप्त रहने तक जीवित रहती है अन्यथा समाप्ता हो जाती है। व्यवस्थापिका नीति के सम्बन्ध में अपनी भूमिका उस समय निभाती है, जब उसके समक्ष नीति प्रस्ताव लाया जाता है। व्यवस्थापिका के सामने नीति प्रस्ताव रखने अथवा पहल करने का दायित्व कार्यपालिका का है। व्यवस्थापिका नीति प्रस्तावों पर स्वयं तथा अपनी समितियों के माध्यम से व्यापक विचार विमर्श एवं विश्लेषण करती है, अवश्यकतानुसार संशोधन भी कर सकती हैं। तत्पश्चात् बहुमत द्वारा नीति प्रस्ताव पर अनुमोदन प्रदान करती है। चूँकी संसदीय प्रणाली में कार्यपलिका को विधायिका में बहुमत प्राप्त होता है ऐसी स्थिति में व्यवस्थापिका मात्र अनुमोदन देने वाली संस्था के रूप में कार्य करती है। नीतियाँ, कार्यपालिका पर व्यवस्थपिका का नियंत्रण का आधार उपलब्ध करती है। नीति के सम्बन्ध में व्यवस्थापिका द्वारा पूछे गए सवालों का जवाब कार्यपालिका को देना पड़ता है। कार्यकारी विभागों के अधिकारीतन्त्र द्वारा किए गए कार्यो के लिए सम्बन्धित मंत्री उत्तरदायी होता है, जिसे अपने विभाग से सम्बन्धित प्रश्नों का उत्तर देना होता है, भले ही उस कार्य में मंत्री की कोई प्रत्यक्ष भूमिका न हो, यह मंत्री उत्तरदायित्व के सिद्वान्त के अनुसार ऐसा होता है। इस तरह नीतिनिर्माण में

कार्यपलिका तथा व्यवस्थापिका एक दूसरे से जुड़े हुए हैं तथा प्रत्यायोजित विधायन की वजह से इन दोनों का सम्बन्ध और घनिष्ठ हो गया है।

नीति निर्धारण में न्यापालिका की भूमिका सीधे तौर पर नहीं है, जिस तरह कार्यपालिका, व्यवस्थापिका तथा अधिकारीतन्त्र की है। फिर भी नीति के निर्माण में न्यायपालिका विभिन्न तरीके से भूमिकाएं निभाती हैं- न्यायपालिका नीति-निर्माण में प्रयुक्त शब्दों का अर्थ स्पष्ट करती है एवं व्याख्या करती है। न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय, सुझाव, और निर्देशों को ध्यान में रखकर कार्यपालिका व व्यवस्थापिका नीतियों का निर्धारण करती है। न्यायापालिका ही नीतियों को वैधता प्रदान करती है इसे किसी नीति को असंवैधानिक घोषित कर रद्द करने की शक्ति प्राप्त है। इस तरह से कहा जा सकता है कि न्यायपालिका मनमाने तरीके से नीति के निर्धारण पर नियंत्रण रखते हुए अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करती है।

अतः उपरोक्त बातों से यह स्पष्ट हो जाता है कि नीति-निर्माण में कार्यपालिका, व्यवस्थापिका, अधिकारीतन्त्र तथा न्यायपालिका घनिष्ठ रूप से आपसे में अन्योन्यन क्रिया करते है। जहाँ कार्यपालिका नीति प्रस्तावों पर पहल करती है, जिन्हें व्यवस्थापिका स्वीकृति करती है तथा न्यायपालिका वैधानिक तथा असंवैधनिक घोषित करने की सत्ता रखती है। अधिकारीतन्त्र नीति बनाने में कार्यपालिका को मदद करने के साथ ही नीति में परिवर्तन करने का साकारात्मक सुझाव भी प्रदान करती है।

17.5 नीति-निर्माण को प्रभावित करने वाली अन्य संस्थाऐं

अब तक हम नीति निर्धारण से सीधा सम्बन्ध रखने वाली एवं नीति-निर्माण की प्रक्रिया में संलग्न कार्यपालिका, व्यवस्थापिका, न्यायपालिका तथा अधिकारीतन्त्र जैसी सरकारी संस्थओं के बारे में जाने चुके हैं। इन उक्त संस्थाओं के अलावा कुछ और संरचनाएं भी हैं जो नीतिनिर्माण में सीधे तौर पर भाग तो नहीं लेती किन्तु नीति-निर्माण प्रक्रिया को किसी न किसी रूप से प्रभावित जरूर करती हैं। इसलिए यह जानना आवश्यक हो जाता है कि ऐसी कौन सी संरचनाएं है जो नीतियों को बनाने में प्रभाव डालती है तथा नीतियों को अपने अनुकूल ढ़ालने का प्रयत्न करती है। अब हम कुछ गैर-सरकारी संरचनाओं यथा राजनीतिक दलों, दबाव एवं हित समूह, जन संचार के माध्यमों, अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों तथा सामाजिक आन्दोलनों आदि का अध्ययन करेंगे, जो नीति-निर्माण की प्रक्रिया पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालती हैं। चूँकि यह पाठ्यक्रम भारतीय विद्यार्थियों के लिए बनाया गया है, अतः नीति-निर्माण में उक्त संरचनाओं की भूमिका पर विचार भारतीय परिप्रेक्ष्य में किया जाएगा।

17.5.1 राजनीतिक दल

लोकतांत्रिक शासन प्रणाली में राजनीतिक दल ऐसा महत्वपूर्ण माध्यम होता है, जो जन सामान्य की अवश्यकताओं, अपेक्षाओं तथा आंकाक्षाओं को सरकार तक पहुँचाती हैं। इसके साथ ही राजनीतिक व्यवस्था में नीति-निर्माण हेतु जनता की माँगों को निवेश करती हैं। राजनैतिक दल चुनावों में भाग लेते हैं और सत्ता प्राप्त करने का प्रयास करते रहते हैं। राजनीतिक दल ही राजनीतिक व्यवस्था में जनता के प्रतिनिधि होते हैं और वे नीतियों के निर्माण हेतु जनमत का निर्माण करते हैं। सरकार तथा राजनीतिक दल उस नीति को बनाने में पहले करते हैं जो लोकमत के अनूकूल हो, क्योंकि भारी जनमत की उपेक्षा करके नीतियों का निर्माण सम्भव नहीं है। यदि सरकार व्यापक लोकमत के विरोध के बावजूद नीतियाँ बनाती है तो उसका खामियाजा निर्वाचन में हार के रूप में देखने को मिलता है। ऐसा करने की हिम्मत शायद ही कोई राजनीतिक दल दिखाएगा। राजनीतिक दलों के माध्यम से ही नीतियों को जन स्वीकृति अथवा अस्वीकृति प्राप्त होती है।

प्रायः यह देखा जाता है कि चुनावों के समय हर राजनीतिक दल अपना घोषणा पत्र निकालता है, जिसमें यह उल्लेख होता है कि सत्ता में आने पर कौन-कौन से निर्णय तथा कदम उठाये जायेंगे। राजनीतिक दल अपने घोषणा पत्र तथा विचारधारा के आधार पर जनता का समर्थन अथवा वोट माँगते हैं। राजनीतिक दल चुनावों में बहुमत प्राप्त

कर सत्ता प्राप्त करते हैं, तो वे अपने घोशणा पत्र को लागू करने के दृष्टिगत नीतियों का निर्माण करते हैं। अनुमोदन हेतु संसद में प्रस्तुत नीति प्रस्ताव पर विचार करते समय सभी राजनीतिक दल यह प्रयास करते हैं कि नीति में अधिक से अधिक संशोधन करके नीति को अपने अनुकूल निर्मित किया जाए। इस क्रिया में राजनीतिक दल का प्रभाव, दल की व्यापक जनाधार तथा उसकी शक्ति पर निर्भर करता है। नीति-निर्माण पर राष्ट्रीय तथा क्षेत्रीय दलों का प्रभाव एक दूसरे से भिन्न होता है। यदि कोई क्षेत्रीय दल राष्ट्रीय सरकार के निकट है तो वह अन्य क्षेत्रीय दलों की अपेक्षा ज्यादा प्रभाव डालता है, क्योंकि भारतीय संघात्मक व्यवस्था में राज्य सरकारों की तुलना में केन्द्र सरकार के पास नीति-निर्माण की अधिक सत्ता है। अतः क्षेत्रीय दलों की नीति को प्रभावित करने की शक्ति केन्द्र में सत्तारूढ़ दल के साथ घनिष्टता पर निर्भर करती है।

17.5.2 दबाव तथा हित समूह

यहाँ दबाव तथा हित समूह से हमारा आशय ऐसे संगठनों से है, जो सीधे तौर पर राजनीतिक में शामिल हुए बिना सरकार के निर्णयों और नीतिगत् गतिविधियों को प्रभावित करने का प्रयास करते हैं। इनका मकसद राजनीतिक गतिविधियों जैसे- चुनाव में शामिल होना नहीं बल्कि अपने तथा अपने सदस्यों के हितों को सुरक्षित एवं संरक्षण करना भी है। ये समूह इस बात का फिक्र नहीं करते कि कौन सा राजनीतिक दल सत्ता में है। इन समूहों को इकट्ठा बनाये रखने का आधार एक समान उद्देश्य का होना है। एक सुसंगठित तथा सशक्त दबाव तथा हित समूह केवल अपने सदस्यों के हितों का नहीं वरन् आम नागरिकों के हितों का संरक्षक होने के दावा करते हैं, जिससे लोग जुड़ते हैं फलस्वरूप इस समूह का आकार बढ़ता है, साथ ही प्रभाव डालने की क्षमता में वृद्धि होती है। इन समूहों द्वारा नीति-निर्माण प्रक्रिया को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित किया जाता है। ये समूह नीति-निर्माण को कई तरह से प्रभावित करते हैं-

1. इन समूहों को सम्बन्धित विषय में विशेषज्ञता प्राप्त होती है। ये किसी मुद्दे को व्यापकता प्रदान करने के साथ ही सम्बन्धित मुद्दे के पक्ष या विपक्ष में नीति बनाने वालों को आंकड़े उपलब्ध कराते हैं। नीति के लिए विकल्प तथा उस विकल्प के सम्भवित परिणाम भी प्रस्तुत करते हैं।
2. इन समूहों के पास आवश्यक पूंजी तथा संसाधन होते हैं। ये चुनावों में दलों को चंदा देते हैं और बदले में वे दल इनके हितों का समर्थन करते हैं। कभी-कभी यह भी देखने को मिलता है कि सरकार को किसी नीति के कार्यान्वयन हेतु इन समूहों पर निर्भर रहना पड़ता है। इनके सहयोग के बिना सरकार के कई कार्यक्रमों का क्रियान्वित होना अथवा सफल होना आसम्भव हो जाता है। इस सहयोग के एवज में इन संगठनों को नीति-निर्माण प्रक्रिया को प्रभावित करने का अवसर प्राप्त हो जाता है।
3. ये समूह नीति-निर्माण के समय कार्यपालिका पर दबाव डालते हैं। सम्बन्धित विभाग के मंत्री को ज्ञापन या किसी जाँच समिति अथवा आयोग के समक्ष उपस्थिति होकर अपना पक्ष रखते हैं, लाबिंग करते हैं तथा मोलभाव की नीति अपनाकर अन्य समूहों का समर्थन प्राप्त करते हैं और नीतियों को रूपान्तिरित करने हेतु प्रभावपूर्ण दबाव डालते हैं।

किसी विशेष नीतिगत विषय पर इन समूहों का दृष्टिकोण एवं मांगें अलग-अलग होती हैं। नीति निर्माताओं को इन दृष्टिकोणों में से किसी एक का चयन करना कठिन हो जाता है। ऐसे में नीति निर्माता उस दृष्टिकोण का समर्थन करते हैं जिसके लिए सशक्त दबाव रहता है। सुसंगठित, सशक्त और सक्रिय दबाव समूह, उन समूहों की अपेक्षा अधिक मात्रा में नीति को प्रभावित करने की स्थिति में होते हैं। जो असंगठित तथा अमुखर होते हैं। ये समूह नीतियों को अपनी-अपनी क्षमता तथा प्रभाव के अनुसार ही प्रभावित करते हैं। जो दबाव एवं हित समूह जितना शक्तिशाली होगा, उसकी राजनीतिक हैसियत उतनी ही अधिक होगी और उसी अनुपात में नीति को प्रभावित करने की क्षमता भी। उद्योगपतियों का समूह, ट्रेड यूनियन, शिक्षक संघ, छात्र संगठन, किसान समूह तथा नागरिक समाज में कार्यरत

विभिन्न संगठन आदि दबाव एवं हित समूह के उदाहरण हैं। कुल मिलाकर हम कह सकते हैं कि हमेशा से नीति निर्माण की सामान्य प्रवृत्ति इन समूहों की माँगों को संतुष्ट करने की रही है।

17.5.3 जनसंचार माध्यम

जनसंचार माध्यमों को लोकतन्त्र का चौथा स्तम्भ कहा जाता है। नीति को प्रभावित करने, लोगों में चतना जगाने एवं बढ़ाने के साथ ही समाज में परिवर्तन लाने के साधन के रूप में जनसंचार माध्यमों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। जनसंचार माध्यमों में प्रिन्ट तथा इलेक्ट्रानिक्स मीडिया दोनों शामिल हैं जैसे- समाचार पत्र, पत्रिकाऐं, रेडियो, टेलीविजन, समाचार चैनल आदि जनसंचार के प्रमुख साधन हैं। नीति सन्दर्भ में जन संचार माध्यम प्रमुख रूप से तीन तरह से- सूचनार्थ, आलोचनात्मक विश्लेषण, सुझाव प्रदान कर महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

जनसंचार माध्यम सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक के साथ ही अन्य जन सामान्य से जुड़ी समस्याओं को उठाते हैं तथा नीति निर्माताओं का ध्यान इन मुद्दों पर आकृष्ट करते हैं। ये संचार माध्यम उक्त विषयों से सम्बन्धित सूचनाओं को प्रदर्शित करते हैं, जो नीति निर्माताओं के लिए महत्वपूर्ण निवेश प्रदान करते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय जगत में हाने वाली अन्य घटनाओं, प्रक्रियाओं की जानकारी प्रदान करते हैं। जनसंचार माध्यम नीति-निर्माण से जुड़ी नवीन तकनीकी तथा वैज्ञानिक पद्धति के बारे में भी अवगत कराते हैं। जन संचार माध्यम नीतियों के सम्बन्ध में जनता की प्रतिक्रयाओं को भी प्रसारित करते हैं और किसी नीति के समर्थन तथा विरोध में जन समर्थन जुटाते हैं।

जनसंचार माध्यम समाचार पत्रों के सम्पादकीय लेखों तथा समाचार चैनलों पर परिचर्चा के माध्यम से सरकारी की नीतियों की आलोचनात्मक विश्लेषण करते हुए नीति के लाभों तथा हानियों के बारे में प्रभावशाली ढंग से जनता के सामने लाते हैं। संचार माध्यम नीतियों का आलोचना के साथ ही कुछ सुझाव तथा विकल्प भी उपलब्ध कराते हैं, जो नीति बनाने वालों के लिए नीति में संशोधन करना अथवा नीति को स्थगित करने हेतु निर्णय लेना आसान हो जाता है। संचार माध्यम नीति निर्माताओं की अभिजात्य वर्ग उन्मुख नीतियों के निर्माण की प्रवृत्ति को जनोन्मुखी नीति-निर्माण में बदलकर महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। उपरोक्त बातें नीति-निर्माण में जनसंचार माध्यमों की भूमिका को प्रदर्शित करते हैं।

17.5.4 सामाजिक आन्दोलन

समाज में व्याप्त किसी समस्या, मांगों अथवा मुद्दों के सम्बन्ध में कोई निर्णय न लेना अथवा उठाए गए कदम के विरोध दोनों स्थितियों में सामाजिक आन्दोलन का जन्म सामाजिक संरचनाओं से होता है। सामाजिक आन्दोलन नीति निर्माताओं पर व्यापक एंव सशक्त रूप से दबाव डालते हैं। सामाजिक आन्दोलन नीति निर्माताओं द्वारा बनाई गई किसी पुरानी नीति में बदलाव लाने अथवा नई नीति बनाने हेतु बाध्य करते हैं। प्रायः यह देखने को मिलता है कि एक व्यापक तथा नियोजित सामाजिक आन्दोलन द्वारा उठाए गए मुद्दों पर नीति-निर्माण करने वाले, इनकी माँगों की निष्पक्षता, व्यापक उद्देश्यों के साथ ही अन्य वर्गों की माँगों एवं साधनों की उपलब्धता को ध्यान में रखते हुए नीतियों का निर्माण करते हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि सामाजिक आन्दोलनों के कारण वर्तमान में चल रही नीतियों में बदलाव अथवा संशोधन किया जाता है। किसी मामलों में तो इन आन्दोलनों के परिणाम स्वरूप ही नई नीति अस्तित्व में आती है। सामाजिक आन्दोलन नीति-निर्धारण प्रक्रिया एवं नीति क्रियान्वयन में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

17.5.5 अन्तर्राष्ट्रीय एजेन्सियाँ

आज वैश्वीकरण के दौर में काई भी देश अकेले नहीं रह सकता और न ही अकेले अपने देश का पूर्ण विकास कर सकता। ऐसे में प्रत्येक देश किसी न किसी रूप से एक दूसरे पर निर्भर रहते हैं और एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं एवं स्वयं भी प्रभावित होते हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा निर्मित नीतियों को ध्यान में रखकर इसके सदस्य राष्ट्र अपनी नीतियों का निर्माण करते हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ तथा इसकी अन्य एजेन्सियाँ जैसे अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (आई0एल0ओ0), विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यू0 एच0 ओ0), यूनेस्को इत्यादि के साथ ही विश्व बैंक,

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (आई0एम0एफ0), विश्व व्यापार संगठन (डब्ल्यू0टी0ओ0) भी सदस्य राष्ट्रों की नीति-निर्माण प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं। ये एजेन्सियाँ सदस्य राष्ट्रों को तकनीकि सहायता तथा अनुदान देती हैं। ये एजेन्सियाँ अपनी-अपनी नीतियों एवं शर्तों के अनुसार सदस्य राष्ट्रों खासकर विकासशील देशों को नीति-निर्माण के लिए सुझाव, दिशानिर्देश तथा अनुदान हेतु कभी-कभी बाध्यकारी शर्त रखकर प्रभावित करती हैं, परिणामस्वरूप सदस्य राष्ट्र इन अन्तर्राष्ट्रीय एजेन्सियों की अपेक्षाओं के अनुसार नीतियों का निर्माण करते हैं। भारत ने इन एजेन्सियों के दबाव में ही वैश्वीकरण, निजीकरण और उदारीकरण की नीति को स्वीकार किया तथा राजकोषीय घाटा कम करने हेतु कदम उठाया। इसी तरह स्टाकहोम में आयोजित संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण सम्मेलन ने विभिन्न देशों में बनने वाली औद्योगिक नीतियों को प्रभावित किया है।

17.6 सारांश

इस ईकाई में राजनीति और लोक प्रशासन के बीच घनिष्ट सम्बन्धों के बारे में विचार करने के साथ ही यह समझाने का प्रयास किया गया है कि राजनीति और लोक प्रशासन के अलगाव वाला दृष्टिकोण वर्तमान समय में अप्रासंगिक हो गया है। नीति का निर्माण अब केवल राजनीति गतिविधि नहीं है, बल्कि इसमें प्रशासन महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। प्रशासनिक अधिकारी अपने दायित्वों का निर्वहन करते हुए कार्यपालिका के नीति-निर्माण में कई तरह से सहयोग करते हैं। अधिकारीतन्त्र के सहयोग के बिना वास्तविक तथा व्यवहारिक नीतियाँ बनाना असम्भव होगा, क्योंकि राजनीतिक कार्यपालिका को क्षेत्र की व्यवहारिक जानकारी तथा उचित विकल्प अधिकरीतन्त्र द्वारा ही उपलब्ध कराई जाती है। इस ईकाई में हमने जाना कि नीति-निर्माण में सरकार की संस्थाओं के साथ-साथ अन्य गैर-सरकारी संरचनाओं की भी भूमिका हाती है। यह सही है कि नीति-निर्माण में पहल करने का कार्य कार्यपालिका का है। हमारे संविधान के भाग-4 के अन्तर्गत अनुच्छेद 36-51 के बीच राज्य के नीति निर्देशक सिद्धान्तों का उल्लेख है, जिसमें अपेक्षा की गई कि सरकारें नीतियाँ बनाते समय इन निर्देशों को ध्यान में रखेंगी। संविधान के भाग-3 में वर्णित मौलिक अधिकार सरकार के नीति-निर्माण हेतु सीमाएं निर्धारित करती है, कि सरकार ऐसी नीति नहीं बनायेगी जो मौलिक अधिकारों पर नाकारात्मक प्रभाव डाले या कटौती करे। न्यायपालिका द्वारा दिए गए निर्णय सरकार को नीति बनाने में सहयोग करते हैं। किन्तु जब नीति संविधान की मूल भावना अथवा संविधान के आधारभूत ढाँचे के विरूद्ध हो तो ऐसी नीति को न्यायालय असंवैधानिक घोषित कर रद्द कर देती है। नीति निर्धारण करने वाली विभिन्न संस्थाओं के मध्य अन्योन्य क्रियाएं होती हैं। नीति-निर्माण भविष्योन्मुखी तथा उपलब्ध संसधनों पर आधारित होती है।

अभ्यास प्रश्न-

1. नीति का प्रारूप तैयार करने का वैधानिक दायित्व किसका है?
2. नीति को अनुमोदित करने वाली सर्वोच्च संस्था कौन है?
3. संविधान के किस भाग में नीति निर्देशक सिद्धान्तों का उल्लेख है?
4. संविधान की मूल भावना के विरूद्ध निर्मित नीति को असंवैधानिक घोषित करने की शक्ति किस संस्था को प्राप्त है?

17.7 शब्दावली

तदर्थ समितियाँ- संसद द्वारा किसी विशेष उद्देश्य अथवा विषय पर विचार करने हेतु गठित किया जाता है, जैसे ही उद्देश्य पूरा हो जाता है वे समाप्त हो जाती है।

अवशिष्ट विषय- वे विषय जिनका उल्लेख तीनों सूचियों - संघ सूची, प्रान्तीय सूची तथा समवर्ती सूची में न हो।

विशेष बहुमत- साधारण बहुमत एवं उपस्थित तथा मत देने वाले का 2/3 बहुमत।

परामर्शदात्री- परामर्श देना, सलाह देना।

17.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. कार्यपालिका, **2.** व्यवस्थापिका, **3.** भाग- 4, **4.** न्यायपालिका

17.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सिन्हा, मनोज (सम्पादित), 'प्रशासन एवं लोकनीति', ओरियंट ब्लैकस्वॉन, नई दिल्ली, 2010
2. सप्रू, आर0के0, 'लोकनीति सूत्रीकरण, कार्यान्वयन तथा मूल्यांकन', जवाहर पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, 2004
3. बसु, रूमकी, 'लोक प्रशासन, संकल्पनाएँ और सिद्धान्त', जवाहर पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, 2004
4. सक्सेना, प्रदीप, 'नीति विज्ञान एवं लोक प्रशासन', आर0वी0एस0ए0 पब्लिशर्स, जयपुर, 1993

17.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. सप्रू, आर0 के0, 'लोकनीति सूत्रीकरण, कार्यान्वयन तथा मूल्यांकन', जवाहर पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, 2004
2. भट्टाचार्य, मोहित, 'लोक प्रशासन के नए आयाम', जवाहर पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, 2014
3. चक्रवर्ती, विद्युत एवं चाँद, प्रकाश, 'पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन ए ग्लोबलाइजिंग वर्लड, थ्योरिज़ एण्ड प्रैक्टिसेज', सेज पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2012
4. दयाल, ईश्वर (सम्पादित), 'डाइनेमिक्स ऑफ फार्मूलेटिंग पॉलिसी इन गर्वनमेन्ट इन इण्डिया', कॉन्सेप्ट प्रकाशन, दिल्ली, 1976

17.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. नीति-निर्माण में कार्यपालिका की भूमिका की व्याख्या कीजिए।
2. नीति-निर्माण में अधिकारीतंत्र के योगदान का वर्णन कीजिए।
3. राजनीतिक दल नीति-निर्माण को किस प्रकार से प्रभावित करते हैं?
4. नीति-निर्माण में संलग्न सरकारी संस्थाओं के मध्य होने वाली अन्योन्य क्रियाओं की विवेचना कीजिए।

इकाई- 18 प्रशासनिक ढ़ाँचा तुलनात्मक अध्ययन: सहायक अभिकरण, स्टाफ अभिकरण

इकाई की संरचना

18.0 प्रस्तावना
18.1 उद्देश्य
18.2 स्टाफ अभिकरण का अर्थ तथा महत्व
18.3 स्टाफ अभिकरण के लक्षण
18.4 स्टाफ अभिकरण का कार्य एवं प्रकृति
18.5 विभिन्न देशों में स्टाफ अभिकरण (भारत, ब्रिटेन तथा अमेरिका)
18.5.1 भारत में स्टाफ अभिकरण
18.5.2 ब्रिटेन में स्टाफ अभिकरण
18.5.3 अमेरिका में स्टाफ अभिकरण
18.6 स्टाफ अभिकरण का वर्गीकरण
18.7 सहायक अभिकरण का अर्थ और उसका महत्व
18.8 सहायक अभिकरणों के लक्षण
18.9 सहायक अभिकरण तथा स्टाफ अभिकरण में तुलना
18.10 सारांश
18.11 शब्दावली
18.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
18.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
18.14 सन्दर्भ ग्रंथ सूची
18.15 निबंधात्मक प्रश्न

18.0 प्रस्तावना

प्रशासनिक कार्यों को सम्पन्न करने के लिए जिस यन्त्र की रचना की जाती है उसके शीर्ष पर होती है। मुख्य कार्यपालिका को व्यापक शक्तियाँ प्रदान की जाती हैं ताकि वह अपने कार्यों और दायित्वों का निर्वहन कर सके। उसकी सहायता के लिए एक सेवावर्ग होता है जिसमें से कुछ अधिकारियों का कार्य नीति सम्बन्धी प्रश्नों के निर्धारण करना होता है तो अन्य का कार्य उन नीतियों का क्रियान्वयन करने में सहायता प्रदान करना होता है। नीति-निर्माण का कार्य करने वाले अधिकारियों की सहायता के लिए एक मन्त्रणा देने वाला वर्ग होता है। इस वर्ग का कार्य केवल परामर्श देना होता है, आदेश देना नहीं। जिस वर्ग का सम्बन्ध केवल नीति सम्बन्धी कार्यों से होता है, उसे हम सूत्र अथवा लाइन अभिकरण कहते हैं। नीति सम्बन्धी कार्यों में जो केवल मन्त्रणा देने का कार्य करता है, उसे मन्त्रणा या स्टाफ अभिकरण कहा जाता है। प्रशासन के कार्य में सहायता पहुँचाने वाला एक अन्य अभिकरण भी होता है जिसे सहायक अभिकरण कहते हैं। सहायक अभिकरण सभी विभागों में एक जैसा कार्य सम्पन्न करता है। सहायक अभिकरणों को कुछ लेखकों ने स्टाफ अभिकरण का एक अंग माना है, परन्तु हर्बर्ट साइमन और कुछ अन्य विद्वान, इसे एक पृथक अभिकरण मानते हैं।

सूत्र अभिकरण और स्टाफ अभिकरण की संकल्पना सैनिक प्रशासन की शब्दावली से ग्रहण किया गया है। सेना में दो प्रकार की इकाइयाँ होती हैं- सूत्र इकाई और स्टाफ इकाई। मुख्य सेनापति के अधीन जनरल, कर्नल, मेजर, कप्तान आदि अधिकारी सूत्र इकाई के अंग माने जाते हैं तथा इनकी सहायता करने हेतु जिस इकाई की आवश्यकता होती है, उसे स्टाफ इकाई कहते हैं। इसी आधार पर सामान्य प्रशासन में भी इन्हीं शब्दावलियों का

प्रयोग कर लिया गया है। इस इकाई में हम मुख्यतः स्टाफ अभिकरण तथा सहायक अभिकरण के विषय में एक-एक करके अध्ययन करेंगे तथा उनके अर्थ, प्रकृति, कार्य और उनके मध्य विभेदों को जानने का प्रयास करेंगे।

18.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- स्टाफ अभिकरण का अर्थ, कार्य, लक्षण तथा इसके वर्गीकरण को जान सकेंगे।
- विभिन्न देशों में स्टाफ अभिकरण की स्थिति को जान सकेंगे।
- सहायक अभिकरण का अर्थ, कार्य और उसके लक्षण को जान सकेंगे।
- स्टाफ अभिकरण और सहायक अभिकरण में तुलना कर सकेंगे।

18.2 स्टाफ अभिकरण का अर्थ तथा महत्व

स्टाफ अभिकरण के अर्थ को समझने का सबसे उत्तम माध्यम उसका शब्दिक अर्थ ही है। अंग्रेजी में 'स्टाफ' शब्द का तात्पर्य 'छड़ी अथवा हाथ के डण्डे' से है, जिस पर चलते समय शरीर का बोझ डाला जा सके। जिस प्रकार चलने की क्रिया में छड़ी सहायता तो करती है परन्तु वह स्वयं यह निर्णय नहीं कर सकती कि किस दिशा में चलना है या कब चलना है। ठीक इसी प्रकार प्रशासन में स्टाफ अभिकरण बहुत ही महत्वपूर्ण माने जाते हैं जो कि सूत्र अभिकरणों के लिए परामर्शदाता की भूमिका निभाते हैं तथा आवश्यकता पड़ने पर उन्हें सहायता प्रदान करने का कार्य भी करते हैं, परन्तु वे निर्णय निर्माण का कार्य नहीं करते। स्टाफ अभिकरणों द्वारा प्रबन्ध सम्बन्धी या गृह प्रबन्ध सम्बन्धी कार्य किये जाते हैं, ताकि सूत्र अभिकरण को उद्देश्यों की प्राप्ति करने में कठिनाइयों का सामना न करना पड़े।

लोक प्रशासन के विद्वान प्रो0 ह्वाइट का मानना है कि 'स्टाफ उच्च श्रेणी के पदाधिकारी को परामर्श देने वाला एक अभिकरण होता है, जिसकी कोई क्रियात्मक जिम्मेदारी नहीं होती।' इसी प्रकार मूने के अनुसार 'स्टाफ कार्यपालिका के व्यक्तित्व का ही विस्तार होता है। इसका अर्थ है अधिक आंखें, अधिक कान और अधिक हाथ जो कि उसकी योजना बनाने तथा क्रियान्वित करने में उसे सहायता दे सकें।' इसी प्रकार अन्य विद्वानों ने भी स्टाफ को मुख्य कार्यपालक के लिए अत्यन्त ही महत्वपूर्ण माना है। आइये अब स्टाफ की आवश्यकता को भी समझने का प्रयास करें।

18.2.1 स्टाफ की आवश्यकता

किसी भी बड़े संगठन पर अनेक दायित्व होते हैं तथा संगठन में इतने कार्य होते हैं कि किसी एक व्यक्ति के द्वारा उन सभी कार्यों को ससमय तथा कुशलतापूर्वक पूरा कर पाना संभव नहीं होता। अतः संगठन के दायित्वों का निर्वाह करने के लिए तथा संगठन के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए कई लोगों की आवश्यकता होती है। प्रशासन की जो इकाई या अधिकारी इस प्रकार की सहायता देने का कार्य करते हैं, वे स्टाफ अधिकारी व स्टाफ अभिकरण कहलाते हैं। मुख्य प्रशासक को अपने विविध कार्यों को सम्पन्न करने के लिए भिन्न- भिन्न प्रकार की सहायता की आवश्यकता होती है जैसे- विशिष्ट परामर्श, तथ्यों एवं आकड़ों का संकलन तथा लिये गये निर्णयों का लेखा-जोखा इत्यादि। ये सभी कार्य स्टाफ इकाइयों के द्वारा सम्पन्न किए जाते हैं।

स्टाफ कार्य-विशेषीकरण का पर्याय माना जा सकता है, क्योंकि स्टाफ का अधिकांश समय सामग्री एकत्र करने, उसका अध्ययन करने तथा अन्य बौद्धिक क्रियाओं द्वारा उससे कुछ समाधान निकालने में लगता है। वह संगठन के सम्बन्ध में विचार करने तथा नियोजन करने वाला अंग है। स्टाफ के अभाव में संगठन का संचालन संभव नहीं हो सकता इसलिए स्टाफ किसी भी संगठन के लिए आधारभूत माना जाता है।

18.3 स्टाफ अभिकरण के लक्षण

अब हम स्टाफ अभिकरणों के लक्षणों को समझने का प्रयास करेंगे। स्टाफ अभिकरण के निम्नलिखित लक्षण होते हैं-

1. स्टाफ, प्रशासन में द्वीतियक भूमिका का निर्वाह करता है। प्रत्येक राज्य में सूत्र अभिकरण प्राथमिक भूमिका का निर्वाह करते हैं, जबकि स्टाफ का कार्य परामर्शदात्री होता है।
2. स्टाफ अभिकरणों के पास अपनी सत्ता नहीं होती न ही वे आदेशात्मक कार्य करते हैं। निर्णय निर्माण का कार्य तथा आदेश देने का कार्य केवल सूत्र अभिकरण का होता है। स्टाफ केवल उनके आदेशों का पालन मात्र करती है। निर्णय निर्माण की प्रक्रिया को यह अपने सुझावों तथा शिफारिशों से प्रभावित तो कर सकते हैं, परन्तु निर्णय नहीं ले सकते।
3. स्टाफ अभिकरणों की भूमिका मुख्य कार्यपालक को सहायोग प्रदान करना होता है। वे मुख्य कार्यपालक की भूमिका का निर्वाह नहीं कर सकते और न ही वे किसी कार्यपालिका संबंधी कार्य के लिए उत्तरदायी होते हैं, क्योंकि किसी भी कार्य का उत्तरदायित्व पूर्ण रूप से मुख्य कार्यपालक का ही होता है।
4. स्टाफ अभिकरणों का एक अन्य लक्षण यह भी होता है कि वे सीधे जनता के सम्पर्क में नहीं आते। अर्थात वे मुख्य कार्यपालक के लिए कार्य करते हैं ना कि जनता के लिए। उनका प्रत्यक्ष संबंध कार्यपालक से होता है, वे जनता की सेवा परोक्ष रूप से करते हैं।

18.4 स्टाफ अभिकरण का कार्य एवं प्रकृति

जैसा कि पहले ही बताया गया है कि स्टाफ अभिकरणों का सम्बन्ध प्रशासन के संस्थागत कार्यों से होता है, जिसे गृह-प्रबन्ध का कार्य भी कहते हैं। स्टाफ अभिकरण सूत्र अभिकरण को योजना बनाने में सहायता प्रदान करता है, परामर्श देता है और तथ्यों के अन्वेषण तथा संकलन के माध्यम से हर संभव सहायता प्रदान करता है। मूने का मानना है कि स्टाफ अभिकरण के कार्यों के तीन पहलू हैं- सूचना संबंधी, परामर्श संबंधी और पर्यवेक्षण संबंधी।

1. **सूचना संबंधी कार्य-** इससे यह आशय है कि स्टाफ अभिकरण द्वारा सूत्र अधिकारी को आवश्यक सूचनाऐं प्रदान की जाती हैं, जिससे सूत्र अधिकारी को संगठन के प्राथमिक कार्यों को करने में सहायता मिलती है। स्टाफ अभिकरण सम्बन्धित तथ्यों को इकट्ठा करता है और उन्हें सूत्र अधिकारी के समक्ष प्रस्तुत करता है, जिससे सूत्र अधिकारी नीति-निर्माण का कार्य करते हैं।
2. **परामर्श संबंधी-** इससे यह आशय है कि स्टाफ अभिकरण सूत्र अभिकरण को प्रशासन के प्रत्येक कार्य के सम्बन्ध में अपनी राय देता हैं तथा सूत्र अभिकरण को किसी समस्या के विभिन्न आयामों से परिचित कराते हैं, जिससे सूत्र अभिकरण को निर्णय लेने में सुविधा होती है। सूत्र अभिकरण स्टाफ अभिकरण द्वारा दिए गए परामर्श को मानने या न मानने के लिए स्वतंत्र होता है, किन्तु स्टाफ अधिकारी का यह कर्तव्य है कि वह सूत्र अधिकारी को सलाह दे।
3. **पर्यवेक्षण संबंधी-** इससे आशय है कि स्टाफ अभिकरण का यह भी कार्य है कि वह यह सुनिश्चित करें कि उच्च श्रेणी के सूत्र अधिकारी के निर्णय अधीनस्थ कर्मचारियों तक पहुँच रहे हैं और उन निर्णयों को क्रियान्वित किया जा रहा है। यदि किसी कार्य के निष्पादन् में कोई कठिनाई उत्पन्न हो रही है तो यह स्टाफ का कार्य है कि वह उन कठिनाइयों को दूर करने का प्रयास करे अथवा उन निर्णयों के क्रियान्वयन में आवश्यक सहायता प्रदान करे।

मूने के द्वारा बताए गए इन तीन कार्यों के अतिरिक्त स्टाफ के और भी दो महत्वपूर्ण कार्यों को सम्मिलित किया जा सकता है जैसे-

4. **सहयोगात्मक कार्य-** स्टाफ का सबसे महत्वपूर्ण कार्य सूत्र अभिकरणों को सहयोग प्रदान करना है। वे मुख्य कार्यपालक को संगठन के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए आवश्यक सहायोग प्रदान करते हैं। ये मुख्य कार्यपालक के अतिरिक्त आखें, होथों और कानों का कार्य करते हैं। अर्थात, ये मुख्य कार्यपालक को सभी आवश्यक जानकारियों से अवगत कराते हैं और केवल वही सूचनाऐं उन तक पहुँचाते हैं, जो कि संगठन के विकास में सहायक हों। व्यर्थ की समस्याओं और सूचनाओं को वे अपने ही स्तर पर निस्तारित कर देते हैं, जिससे मुख्य कार्यपालक का समय और परिश्रम बच जाता है तथा वह संगठन के हित पर अपना ध्यान केन्द्रित कर पाने में सफल होता है।
5. **प्रत्यायोजित कार्य-** हालांकि स्टाफ अभिकरणों का कार्य केवल सहयोग करना, परामर्श देना, सूचनाऐं पहुँचाना और पर्यवेक्षण करना मात्र है, परन्तु कभी-कभी मुख्य कार्यपालक अपने कुछ कार्य स्टाफ अभिकरणों को प्रत्यायोजित कर देते हैं। परन्तु वे केवल वही कार्य कर सकते हैं तथा उसी सीमा तक प्रत्यायोजित सत्ता का प्रयोग कर सकते हैं, जिस सीमा तक उन्हें ऐसा करने का अधिकार प्रत्यायोजित किया जाता है। अर्थात, कार्यों और शक्तियों का प्रत्यायोजन सीमाओं का निर्धारण करते हुए किया जाता है।

इसी प्रकार फिफनर ने स्टाफ अभिकरणों के सात कार्यों का उल्लेख किया है- सूत्र अभिकरण को परामर्श देना, प्रशासन में समन्यव्य स्थापित करना, खोज तथा अन्वेषण करना, योजनाऐं बनाना, लोक सम्पर्क स्थापित करना तथा सूचनाऐं एकत्र करना, विभागों की सहायता करना, और विभागीय अध्यक्ष से प्राप्त शक्तियों को उनकी सीमाओं के अंर्तगत क्रियान्वित करना।

इसी प्रकार यह कहा जा सकता है कि विभिन्न विचारकों ने स्टाफ अभिकरणों के कार्यों के सम्बन्ध में अपने भिन्न-भिन्न मत प्रस्तुत किए हैं, किन्तु उपरोक्त मतों से यह स्पष्ट हो जाता है कि स्टाफ अभिकरणों का कार्य किसी भी संगठन के संचालन के लिए मौलिक है।

18.5 विभिन्न देशों में स्टाफ अभिकरण (भारत, ब्रिटेन तथा अमेरिका)

स्टाफ अभिकरणों को भली भाँति समझने के उद्देश्य से अब हम विश्व के प्रमुख देशों में स्टाफ अभिकरणों का अध्ययन करेंगे, जिसमें मुख्यतः भारत, ब्रिटेन तथा अमेरिका में स्टाफ अभिकरणों की चर्चा की जाएगी। इस अध्ययन के पश्चात आप यह जान सकेंगे कि विभिन्न देशों में स्टाफ अभिकरण का कार्य किन संस्थाओं या कार्यालयों द्वारा सम्पादित किया जाता है।

18.5.1 भारत में स्टाफ अभिकरण

भारतीय प्रशासन में स्टाफ अभिकरणों के कई उदाहरण देखने को मिलते हैं, जिनमें से कुछ प्रमुख उच्चस्तरीय स्टाफ अभिकरण निम्नलिखित हैं-

1. **प्रधानमंत्री कार्यालय-** भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व जो कार्य गवर्नर जनरल के सचिव द्वारा किया जाता था, उन्हीं कार्यों के सम्पादन का दायित्व प्रधानमंत्री सचिवालय को इसकी स्थापना (15 अगस्त सन् 1947) के उपरान्त दिया गया, जिसे अब प्रधानमंत्री कार्यालय के रूप में जाना जाता है। इस सचिवालय का प्रधान कार्य प्रधानमंत्री को सभी मामलों में आवश्यक सचिवीय सहायता और परामर्श देना है जैसे- प्रधानमंत्री के समक्ष प्रस्तुत किए जाने वाले सभी प्रश्नों पर आवश्यक सामग्री का संग्रह करना तथा उसे परामर्श देना; प्रधानमंत्री को भारत सरकार के विभिन्न मंत्रालयों और राज्य सरकारों के साथ संबंध स्थापित करने तथा अपना उत्तरदायित्व पूरा करने में सहायता देना है, योजना आयोग तथा राष्ट्रीय विकास परिषद् के अध्यक्ष के रूप में प्रधानमंत्री की सहायता करना; तथा प्रेस तथा सामान्य जनता के साथ प्रधानमंत्री के सार्वजनिक संबंध और संपर्क विषयक कार्यों की देखरेख करना, इत्यादि।

2. **मंत्री-मण्डल सचिवालय-** भारत में मंत्रिमण्डल सचिवालय की स्थापना गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी परिषद् के स्थान पर की गयी थी। यह स्टाफ, मंत्रियों के दायित्वों एवं कार्यों का सम्पादन करता है। यह मंत्रिमण्डल की तथा इसकी स्थायी समितियों के कार्यों की देख-रेख करता है। यह मंत्रिमण्डल की बैठकों के लिए एजेन्डा तैयार कराता है, मंत्रिमण्डल में होने वाली चर्चाओं तथा उनमें लिए गए निर्णयों का विवरण रखता है, मंत्रिमण्डल के विचारार्थ मामलों से सम्बन्धित स्मृति-पत्र तैयार करता है, प्रत्येक मंत्रालय को निर्णय भेजता है तथा इसी प्रकार के अन्य कार्य करता है।
3. **मंत्रिमण्डल समितियाँ-** मंत्रिमण्डल के कार्यभार को कम करने, इसके समक्ष प्रस्तुत किए जाने वाले विषयों की आवश्यक जाँच करने तथा नीति एवं प्रशासन के महत्वपूर्ण मामलों के बारे में मंत्रिमण्डल को सहायता देने के लिए मंत्रिमण्डल की 12 स्थायी समितियाँ होती हैं। सामान्यतः कोई भी विषय पहले सम्बन्धित समिति को सौंपा जाता है और समिति में विचार किए जाने के बाद ही उसे मंत्रिमण्डल में विचारार्थ रखा जाता है। इनके नाम निम्नलिखित हैं- राजनीतिक मामलों की समिति, आर्थिक मामलों की समिति, आर्थिक समन्वय समिति, खाद्य एवं कृषि समिति, नियक्ति समिति, उद्योग एवं व्यापार समिति, विज्ञान और प्राविधिक समिति, परिवार नियोजन समिति, यातायात और पर्यटन समिति, रोजगार समिति, संसदीय मामलों की समिति और पुनर्वास समिति।

इनके अतिरिक्त कई तदर्थ समितियाँ भी होती हैं। इन समितियों में दो-तीन को छोड़ कर शेष सभी समितियों का अध्यक्ष प्रधानमंत्री ही होता है। इस प्रकार प्रत्येक समिति एक छोटे मंत्रिमण्डल की भाँति कार्य करती है।

4. **योजना आयोग तथा राष्ट्रीय विकास परिषद्-** मार्च 1950 में भारत सरकार के एक प्रस्ताव द्वारा योजना आयोग की स्थापना की गयी थी जिसका उद्देश्य देश के आर्थिक और सामाजिक विकास की दीर्घकालीन योजनाऐं बनाना था। प्रधानमंत्री इस आयोग का अध्यक्ष होता था तथा इसका एक पूर्णकालिक उपाध्यक्ष भी होता था। इनके अतिरिक्त कुछ मंत्री और कुछ सार्वजनिक सदस्य भी होते थे, जो अपनी विशिष्ठ योग्यता के लिए जाने जाते थे। मंत्रिमण्डल सचिव आयोग का भी सचिव होता था। आयोग देश के लिए पंचवर्षीय योजनाऐं तैयार करती थी, इनके प्रगति और क्रियान्वयन की देख-रेख करती थी तथा योजनाओं की लक्ष्य-पूर्ती का मूल्यांकन भी करती थी। इसी प्रकार एक राष्ट्रीय विकास परिषद् की भी व्यवस्था थी। जैसा कि हम जानते हैं कि भारत में संविधान द्वारा संघीय प्रणाली की स्थापना की गयी है। अतः केन्द्रीय सरकार को राज्य सरकारों पर पंचवर्षीय योजना थोपने का अधिकार नहीं है। यदि राज्य चाहें तो वे केन्द्र द्वारा निर्मित योजनाओं को स्वीकार एवं लागू करने से इन्कार भी कर सकते हैं। अतः इन योजनाओं को लागू करने में राज्यों का सहयोग प्राप्त करने के उद्देश्य से राष्ट्रीय विकास परिषद् की स्थापना की गई। यह योजना आयोग द्वारा तैयार की गई केन्द्रीय और राज्य सरकारों से संबंध रखने वाली राष्ट्रीय योजनाओं पर विचार करके उन्हें स्वीकार करती है। प्रधानमंत्री, राष्ट्रीय विकास परिषद् के अध्यक्ष और सभी राज्यों के मुख्यमंत्री और योजना आयोग के सदस्य इसके सदस्य होते हैं। परिषद् में मुख्यमंत्रियों के शामिल होने के कारण योजनओं को राज्यों में लागू करने में केन्द्र सरकार को कोई कठिनाई नहीं होती क्योंकि मुख्यमंत्री इन योजनाओं पर अपनी पूर्वसहमति दे देते हैं। परन्तु सन् 2015 में भारत सरकार ने योजना आयोग तथा राष्ट्रीय विकास परिषद् के स्थान पर 'नीति आयोग' का गठन कर दिया है। उक्त दोनों संस्थाओं के सभी कार्यों का निष्पादन इस आयोग के द्वारा किया जा रहा है।
5. **संघ लोक सेवा आयोग-** संघ लोक सेवा आयोग केन्द्र की सेवाओं में नियुक्ति के लिए परीक्षाओं का संचालन करता है। इसकी व्यवस्था भारतीय संविधान की धारा- 320 में की गई है। यह प्रधानमंत्री और सरकार को सरकारी कर्मचारियों की भर्ती तथा नियुक्ति के संबंध में सभी प्रकार के विषयों में आवश्यक परामर्श देता है।

6. **केन्द्रीय जाँच ब्यूरो-** जाँच ब्यूरो प्रधानमंत्री की देखरेख में अपने कार्यों का सम्पादन करता है। यह प्रधानमंत्री द्वारा सौंपे गये महत्वपूर्ण सार्वजनिक मामलों की गुप्त रूप से जाँच तथा छान-बीन करने का कार्य करता है।

18.5.2 ब्रिटेन में स्टाफ अभिकरण

ब्रिटेन में प्रधानमंत्री की सहायता के लिए निम्नलिखित स्टाफ अभिकरण विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं-

1. **मंत्रीमण्डलीय सचिवालय-** ब्रिटेन में मंत्रीमण्डलीय सचिवालय की स्थापना प्रथम विश्व युद्ध के कारण उत्पन्न कार्यभार के फलस्वरूप सन् 1916 में की गयी थी। धीरे-धीरे इसका महत्व और भी बढ़ता गया और अब यह शासन का एक अभिन्न अंग बन गया है।
   यह सचिवालय मंत्रीमण्डल तथा मंत्रीमण्डलीय समितियों के लिए आवश्यक सचिवीय कार्य करने के अतिरिक्त मंत्रीमण्डल के सम्मुख विचारणीय विषयों के लिए आवश्यक सामग्री को इकट्ठा करता है तथा उसकी छान-बीन करता है। यह विभागों में समन्वय तथा तालमेल बैठाने का कार्य भी करता है और साथ ही मंत्रीमण्डल की सभी बैठकों का पूर्ण विवरणऔर किए गए निर्णयों का नियमित रूप से रिकॉर्ड रखता है।
2. **कोष विभाग-** ब्रिटिश कोष विभाग भी एक स्टाफ अभिकरण ही है। पूर्व में यह राजस्व तथा राजकीय करों के सग्रह, कर लगाने और सभी प्रकार का वित्तीय नियंत्रण करने के साथ-साथ समस्त राजकीय कर्मचारियों की नियुक्ति, नियंत्रण और देखभाल का भी पूरा कार्य किया करता था। शुरूआती दिनों में कोष विभाग का स्थाई सचिव सिविल सर्विसेज का अध्यक्ष हुआ करता था जो कि सरकारी कर्मचारियों की नियुक्ति सम्बन्धी कार्य करता था परन्तु सन् 1968 के बाद यह कार्य 'सिविल सर्विस विभाग' को दे दिया गया। वर्तमान में सरकारी कर्मचारियों के वेतन तथा उनके कार्य के मूल्यांकन आदि का कार्य कोष विभाग द्वारा किया जाता है।
3. **मन्त्रिपरिषद समितियाँ-** मंत्रियों के कार्यभार को कम करने के उद्देश्य से मंत्रिमण्डल समितियों का विकास हुआ। मंत्रीगण इन समितियों के सदस्य होते हैं, किन्तु इनमें से कुछ समितियों में गैर-मंत्रिमण्डलीय मंत्री, लोक सेवा के सदस्य, विभागाध्यक्ष, आदि भी शामिल होते हैं। ये समितियाँ मंत्रिपरिषद् को नीतियों के निमार्ण में सहायता देती हैं। इनका कार्य विभागीय मतभेदों तथा कठिनाइयों को दूर करना तथा मंत्रिपरिषद् के कार्यों का एकीकरण करना भी होता है। ब्रिटेन में भी मंत्रिपरिषद समितियाँ दो प्रकार की होती हैं- स्थायी समितियाँ तथा तदर्थ समितियाँ।

18.5.3 अमेरिका में स्टाफ अभिकरण

सन् 1857 से पूर्व संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के राष्ट्रपति को अपना कार्य-भार अधिकांशतः स्वयं ही देखना पड़ता था। उसके लिए केवल एक निजी सचिव, एक भण्डारी तथा एक संदेशवाहक की नियुक्ति की गयी थी। सन् 1937 में नियुक्त 'राष्ट्रपति की प्रशासनिक प्रबन्ध की समिति' ने सिफारिश की कि राष्ट्रपति के स्टाफ में ऐसे व्यक्तियों की वृद्धि की जानी चाहिए जो उसके सामने प्रस्तुत की जाने वाली सभी समस्याओं के सम्बन्ध में उसे आवश्यक सामग्री का संकलन करते हुए समुचित परामर्श दे सकें। इस समिति की सिफारिशों के अनुसार 1939 के पुनर्व्यवस्था कानून द्वारा कांग्रेस ने राष्ट्रपति के कार्यकारी कार्यालय की स्थापना की। राष्ट्रपति कार्यालय के निम्नलिखित अंग होते हैं-

1. **व्हाइट हाउस कार्यालय-** व्हाइट हाउस कार्यालय की परिधि में राष्ट्रपति पद का सम्पूर्ण क्षेत्र आ जाता है। इसमें राष्ट्रपति को विभिन्न कार्यों में सहायता देने के लिए अनेक सहायक और सचिव कार्य करते हैं, जिनकी नियुक्ति स्वयं राष्ट्रपति करता है। कार्यालय में अनेक प्रकार के कर्मचारी भी होते हैं जैसे- राष्ट्रपति का सचिव, व्यैक्तिक सचिव, कानूनी परामर्शदाता, आर्थिक परामर्शदाता, इत्यादि। ये कर्मचारी प्रशासनिक

कार्यों के विशेषज्ञ होते हैं और राष्ट्रपति को निर्णय लेने में सहायता प्रदान करते हैं। ये राष्ट्रपति को किसी भी समस्या पर गहन विचार करने के उपरान्त मंत्रणा देने का कार्य करते हैं। ये राष्ट्रपति के लिए प्रतिवेदन तैयार करते हैं तथा समय-समय पर राष्ट्रपति द्वारा सौंपे गये अन्य कार्य भी करते हैं। राष्ट्रपति तथा अन्य विभागों के बीच यह कार्यालय आवश्यक कड़ी का कार्य करता है। यह कार्यालय राष्ट्रपति के प्रतिनिधि के रूप में संपर्क व प्रत्र व्यवहार करता है।

2. **आफिस ऑफ मेनेजमेन्ट एण्ड बजट-** यह उच्चतम प्रबंध की एक शक्तिशाली अंग है। इसका कार्य वार्षिक बजट तैयार करना तथा उसके निष्पादन में राष्ट्रपति को सहायता देना है। इसके अन्य कार्य भी हैं, जैसे- सरकार के वित्तीय कार्यों में राष्ट्रपति की सहायता करना; निष्पादन अभिकरणों को परामर्श देना; सरकारी सेवाओं के संचालन में क्षमता तथा मितव्ययिता लाने का सुझाव देना; विभिन्न निष्पादक विभागों में समन्वय स्थापित करना, आदि। इसके माध्यम से राष्ट्रपति बजट पर अपना पूरा नियंत्रण रखता है।
3. **राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद-** इसका निर्माण द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात सन् 1947 के राष्ट्रीय सुरक्षा कानून के अंतर्गत हुआ। यह राष्ट्रीय सुरक्षा से संबंधित सैनिक, विदेशी तथा घरेलू विषयों के एकीकरण के विषय में राष्ट्रपति को परामर्श देती है। यह देश की सैनिक शक्ति के सन्दर्भ में राज्य के संभावित खतरों का अनुमान लगाती है तथा उनका मूल्यांकन करती है। शासकीय विभागों तथा अभिकरणों के हित के मामलों तथा उनसे संबंधित नीतियों पर विचार करती है। परन्तु प्रत्येक मामले में अंतिम निर्णय राष्ट्रपति का ही होता है क्योंकि इसका कार्य केवल परामर्श देना मात्र ही होता है।
4. **आर्थिक सलाहकार परिषद-** सन् 1946 के 'पूर्ण रोजगार कानून' के अंतर्गत आर्थिक परामर्शदाता परिषद् का निर्माण किया गया था। यह परिषद् देश की आर्थिक परिस्थितियों का सूक्ष्म अध्ययन करती है और राष्ट्रीय हित की दृष्टि से उपयुक्त आर्थिक नीतियों के सम्बन्ध में सुझाव देती है। यह परिषद् राष्ट्रपति को प्रति वर्ष आर्थिक प्रतिवेदन तैयार करने में मदद करती है, जिसे राष्ट्रपति कांग्रेस के सामने प्रस्तुत करता है। इस परिषद में तीन विशेषज्ञ अर्थशास्त्री होते हैं।

18.6 स्टाफ अभिकरण का वर्गीकरण

स्टाफ अभिकरणों को तीन वर्गों में विभाजित किया जाता है- सामान्य स्टाफ, सहायक स्टाफ और तकनीकी स्टाफ । कुछ विद्वानों जैसे फिफनर और प्रेस्थस ने स्टॉफ अभिकरण को 'कर्मचारी वर्ग' का नाम दिया है और इसको तीन प्रकारों में वर्गीकृत करते हुए इसे सामान्य कर्मचारी वर्ग, तकनीकी कर्मचारी वर्ग और सहायक कर्मचारी वर्ग की संज्ञा दी है। नामकरण चाहे कुछ भी हो, सामान्य शब्दों में यह कहा जा सकता है कि स्टाफ अभिकरणों को उपरोक्त तीन वर्गों में विभाजित किया जाता है।

1. **सामान्य स्टाफ-** सामान्य स्टाफ, मुख्य निष्पादक अथवा कार्यपालक को प्रशासनिक कार्यों के सम्पादन में सामान्य रूप से सहायता पहुँचाने का कार्य करता है। इसका प्रमुख कार्य परामर्श देना होता है तथा साथ ही यह तथ्यों का संग्रह कर महत्वपूर्ण विषयों को विचारार्थ कार्यपालिका के समक्ष प्रस्तुत करता है। प्रत्येक देश में इस वर्ग का प्रावधान किया जाता है। यदि भारत की बात करें तो, भारत में मुख्य कार्यपालिका का सामान्य स्टाफ इस प्रकार है- मंत्रिमण्डल सचिवालय, प्रधानमंत्री कार्यालय, वित्त मंत्रालय, योजना आयोग(वर्तमान में नीति आयोग), गृह मंत्रालय, संगठन तथा प्रणाली संभाग, केन्द्रीय सांख्यिकीय संगठन, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, लोक सेवा आयोग, इत्यादि। इसी प्रकार इंग्लैण्ड में ब्रिटिश राजकोष तथा अमेरिका में ह्वाइट हाउस कार्यालय तथा बजट ब्यूरो को सामान्य स्टाफ अभिकरणों के अंतर्गत रखा जाता है। यह मंत्रणा अभिकरण किसी भी संस्था में अत्यंत ही महत्वपूर्ण होते हैं। जैसा कि

हेनरी फेयोल ने भी स्पष्ट किया है कि ''कार्य करने के विषय में उनकी योग्यता तथा क्षमता कुछ भी हो, बड़े उद्यमों के प्रधान अपने सभी दायित्वों को अकेले कभी पूरा नहीं कर सकते। इसी कारण बाध्य होकर उन्हें ऐसे मनुष्यों का सहारा लेना पड़ता है जिनके पास शक्ति, योग्यता तथा समय है, जिनके स्वयं प्रधान के पास न होने की संभावना है। बस मनुष्यों का यही समूह प्रबंध में कर्मचारी वर्ग का संगठन करता है। यह प्रबंधक के व्यक्तित्व की सहायता, सम्बलन और विस्तार है जो कर्तव्यों के फलन में प्रबंधक की सहायता करते हैं। केवल बड़े-बड़े उद्यमों में ही यह कर्मचारी निकाय पृथक दिख पड़ता है और उद्यम के महत्व के साथ ही इसका महत्व बढ़ता जाता है।''

सामान्य स्टाफ कर्मचारियों में निम्नलिखित गुणों का होना आवश्यक है जिससे कि वे अपना कार्य पूरी दक्षता और कुशलता के साथ कर सकें-

- स्टाफ कर्मचारी को प्रत्येक मामले के बारे में समुचित ज्ञान रखना चाहिए। किसी भी स्टाफ कर्मचारी के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वे विभिन्न समस्याओं के विषय में पूरा ज्ञान रखें तथा आवश्यकता पड़ने पर अपने अधिकारियों को उस समस्या के प्रत्येक पक्ष से अवगत कराएं जिससे समस्या का समाधान संभव हो सके।
- स्टाफ कर्मचारियों में सहयोग के साथ कार्य करने की क्षमता होनी चाहिए, जिससे वे संस्था का सफल रूप से संचालन कर सकें। वे ऐसे लोगों में से भर्ती किये जाने चाहिए जो दूसरों के साथ कदम मिला कर चलने की कला में निपुण हों। उनमें यह योग्यता हो कि वे विचार विमर्श कर सकें और समस्याओं का समाधान कर सकें।
- स्टाफ कर्मचारियों के लिए यह आवश्यक है कि वे महत्वाकांक्षी न हों तथा उनमें प्रसिद्धि प्राप्त करने की प्रवृत्ति न हो, क्योंकि उनके द्वारा किया गया कार्य केवल परामर्शदायी होता है और उनके द्वारा किया गया प्रत्येक कार्य मुख्य कार्यपालक का कार्य माना जाता है। उनका महत्व इसी बात में निहित है कि वे अपना नाम गुप्त रखें क्योंकि स्टाफ सदा पृष्ठभूमि में ही कार्य करता है।
- स्टाफ कर्मचारियों को यह चाहिए कि वे धैर्यवान, सहनशील, परीश्रमी, गंभीर आज्ञाकारी एवं लग्नशील हों।
- उनमें किसी समस्या का समग्र दृष्टिकोण अपनाते हुए मूल्यांकन करने का सामर्थ्य होना चाहिए।
- उनमें दूसरों को समझाने का गुण हो और वे अपने विचारों को स्पष्टतः तथा प्रबलता के साथ अभिव्यक्त करने का साहस रखते हों।

2. **तकनीकी स्टाफ-** इस श्रेणी के अंतर्गत वे कर्मचारी आते हैं, जिनके पास कुछ विशिष्ट तकनीकी योग्यता होती है। मुख्य कार्यकारी को प्रशासन में विविध प्रकार के दायित्वों का निर्वाह करना पड़ता है। ऐसे में यह संभव नहीं है कि उसे सभी क्षेत्रों के विषय में समुचित ज्ञान हो। कभी-कभी उन्हें कई प्राविधिक मामलों पर भी विचार करना पड़ता है। अतः ऐसे मामलों में उन्हें तकनीकी परामर्श तथा सहायोग प्रदान करने हेतु कुछ विशेषज्ञों को रखा जाता है। संक्षेप में तकनीकी स्टाफ विशिष्ट योग्यता धारक स्टाफ होता है जिसमें चिकित्सक, शिक्षाशास्त्री, वकील, मनोवैज्ञानिक, अभियंता, इत्यादि आते हैं।
3. **सहायक अभिकरण-** प्रत्येक प्रशासनिक विभाग में कई ऐसी सामान्य समस्याऐं होती हैं, जैसे- आय-व्यय संबंधी कार्य, हिसाब-किताब की जाँच करने का कार्य, कर्मचारियों की नियुक्ति, मुद्रण आदि का

कार्य। पहले प्रत्येक विभाग अपने ये कार्य अलग-अलग किया करते थे, परन्तु यह विचार किया गया कि इन सामान्य समस्याओं के समाधान के लिए 'सामान्य अभिकरण' स्थापित करना अधिक औचित्यपूर्ण होगा। ऐसा करने से न केवल समस्त विभागों में इन कार्यों में एकरूपता लायी जा सकती है बल्कि इससे धन, समय और शक्ति की भी बहुत बचत की जा सकती है। इसका यह लाभ होगा कि एक ही कार्य का दुहराव अलग-अलग विभागों में रोका जा सकता है।

सहायक स्टाफ का कार्य प्रधान सेवक का नहीं अपितु गौण सेवक का होता है। अर्थात वह विभाग के प्रमुख कार्य में प्रत्यक्ष रूप से प्रतिभाग नहीं करता। विलोबी ने इन सेवाओं को ''संस्थामूलक अथवा गृह-संबंधी कार्य' के नाम से पुकारा है। ह्वाइट ने इन्हें ''सहायक सेवा'' कहा है। गृह संबंधी अथवा सहायक सेवाऐं उन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए की जाती हैं जिनके लिए विभाग कायम किए जाते हैं। ये क्रियाऐं उद्देश्य की प्राप्ति का साधन कही जा सकती है।

हमारे देश में कुछ सहायक अभिकरण इस प्रकार हैं- लोक सेवा आयोग, केन्द्रीय संस्थापना मण्डल, प्रकाशन ब्यूरो, लोक निर्माण विभाग, लेखा एवं लेखा परीक्षा विभाग, आदि। ये सहायक अभिकरण प्रशासन के प्राथमिक अभिकरण नहीं हैं। ये अभिकरण प्रशासनिक विभागों के सहायक एवं पूरक होते हैं।

18.7 सहायक अभिकरण का अर्थ और उसका महत्व

सहायक अभिकरण को अंग्रेजी भाषा में ''Auxiliary'' कहा जाता है जिसका तात्पर्य 'सहायक' होता है। प्रशासन में इनका कार्य सहायता प्रदान करना अथवा पूरक का होता है। जिस प्रकार प्रत्येक राज्य की अपनी अलग सेना होती है, परन्तु आवश्यकता पड़ने पर उसे मित्र राज्यों से सेना की सहायता लेनी पड़ती है। ठीक उसी प्रकार संगठन में इनका कार्य सूत्र अभिकरणों की सहायता करना और गृह-सम्बन्धी कार्य करना होता है जैसे- यंत्रों का क्रय करना, सेवकों की नियुक्ति करना, आय-व्यय संबंधी कार्य करना, इत्यादि।

18.8 सहायक अभिकरणों के लक्षण

इससे पहले हमने प्रशासन में सहायक अभिकरणों के महत्व को देखा था। इकाई के इस भाग में हम सहायक अभिकरणों के लक्षणों का अध्ययन करेंगे जिससे इसकी प्रकृति को समझना और भी सरल हो जाएगा। सहायक अभिकरणों के लक्षण निम्नलिखित हैं-

1. सहायक अभिकरण किसी भी संगठन में सामान्य रूप से सहायता प्रदान करने का कार्य करते हैं। जैसे किसी संस्था में अनेक विभाग होते हैं और उन सभी विभागों में जिन वस्तुओं अथवा अन्य चीजों की आवश्यकता होती है, उनके क्रय संबंधी कार्य सहायक अभिकरणों के द्वारा किए जाते हैं।
2. सहायक अभिकरणों के पास बहुत ही सीमित सत्ता होती है और वे केवल अपने क्षेत्र में ही निर्णय ले सकते हैं। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि स्टाफ अभिकरणों के पास सत्ता का अभाव होता है, क्योंकि उनका कार्य केवल परामर्श देने मात्र का होता है, परन्तु सहायक अभिकरण अपने क्षेत्र में निर्णय लेने के लिए एक सीमा तक स्वतंत्र होते हैं। उदाहरण के रूप में जैसा कि प्रथम बिन्दू में बताया गया कि सहायक अभिकरणों का कार्य आवश्यक वस्तुओं का क्रय आदि करना भी है। अतः किसी वस्तु का क्रय करने के क्रम में लिए जाने वाले निर्णय, नियम और शर्तों को तय करने का अधिकार सहायक अभिकरणों को होता है।
3. सहायक अभिकरणों का कार्य परिचालन का होता है। वे प्रत्येक संस्था में सहायक अभिकरणों के कार्य नित्य किये जाने वाले कार्य होते हैं जैसे खरीदना, पूर्ति करना, कार्मिक मामलों की देख-रेख करना, लेखा संबंधी कार्य, बजट तैयार करना आदि। इन कार्यों के सम्पादन में सहायक अभिकरण स्टाफ अभिकरण की अपेक्षा कहीं अधिक महत्वपूर्ण होते हैं क्योंकि उनका कार्य केवल परामर्श देना नहीं बल्कि यर्थाथ में

व्यवस्था का संचालन करना होता है। उदाहरण के रूप में यदि किसी संस्था में कोई आयोजन किया जाना है तो सूत्र अभिकरण इस आयोजन का निर्णय लेंगे, स्टाफ अभिकरण आयोजन से संबंधी सुझाव देंगे तथा जमीनी स्तर पर उस आयोजन को सफल बनाने का कार्य सहायक अभिकरण का ही होता है जो कि आवश्यक सामग्री का क्रय करेंगे तथा अन्य आवश्यक सेवाएं प्रदान करते हुए आयोजन को सफल बनाएंगे। इस उदाहरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि इनका कार्य स्टाफ अभिकरणों की अपेक्षा अधिक व्यवहारिक होता है। ये निर्णय निमार्ण प्रक्रिया में भागीदार नहीं होते परन्तु व्यवहारिक व्यवस्था सुनिश्चित करना इनका दायित्व होता है।

4. सहायक अभिकरण सीधे अथवा प्रत्यक्ष रूप से जनता के संपर्क में नहीं आते। इनका कार्य प्रत्यक्ष रूप से जनकल्याण सम्बन्धी नहीं होता बल्कि यह सूत्र अभिकरणों को सहायता प्रदान करने के क्रम में परोक्ष रूप से जन-कल्याण का कार्य करते हैं।
5. प्रत्येक विभाग अथवा संस्था में सहायक अभिकरणों का स्थान सामान्यतः मुख्य कार्यपालक के अधीन भी होता है तथा कुछ ऐसी संस्थाएं और विभाग हैं जो सहायक अभिकारणों का कार्य ही करते हैं जैसे- वित्त विभाग, विधि विभाग, लोक निर्माण विभाग आदि। ये विभाग जहाँ एक तरफ सहायक अभिकरणों की भूमिका का निर्वाह करती हैं, वहीं दूसरी तरफ ये एक सीमित दायरे में रहते हुए अपनी सत्ता का प्रयोग भी करती हैं और अपनी सेवाओं के माध्यम से अन्य विभागों पर अपना आंशिक नियंत्रण भी स्थापित करती हैं।

उपरोक्त लक्षणों का अध्ययन करने के पश्चात् इस बात में कोई संदेह नहीं है कि सहायक अभिकरणों का महत्व प्रत्येक संस्था के लिए अत्यंत ही महत्वपूर्ण होता है, क्योंकि यह ऐसी मूलभूत सेवाएं प्रदान करते हैं जिनके बिना निर्णय निर्माण अथवा किसी योजना अथवा कार्यक्रम का क्रियान्वयन संभव ही नहीं हो सकता।

18.9 सहायक अभिकरण तथा स्टाफ अभिकरण में तुलना

सामान्य रूप से अधिकांश मामलों में सहायक और स्टाफ अभिकरणों के कार्यों के मध्य विभेद करना कठिन हो जाता है। सहायक तथा स्टाफ अभिकरण कई मामलों में एक जैसा कार्य करते देखते हैं, जैसे- पहला, दोनों ही अभिकरण सूत्र अभिकरणों को सहयोग प्रदान करते हैं, ताकि सूत्र अभिकरण विभाग के मुख्य उद्देश्यों की प्राप्ति कर सकें। दूसरा, उनकी अपनी स्वंय की कोई वैध स्थिति नहीं होती। इन दोनों अभिकरणों का अपना कोई अलग अस्तित्व नहीं हो सकता। इनका अस्तित्व पूर्ण रूप से सूत्र अभिकरणों पर आश्रित होता है। तीसरा- किसी भी संस्था में इन दोनों का कार्य द्वितीयक ही होता है, जबकि प्राथमिक कार्य सूत्र अभिकरणों का होता है। चौथा- सूत्र अभिकरणों की तुलना में यह दोनों अभिकरण अकार्यात्मक होते हैं। दूसरे शब्दों में वे संस्था के वही कार्य करते हैं जिनका सीधा संबंधजन सेवाओं से नहीं होता।

यदि स्टाफ और सहायक अभिकरणों के मध्य विभेद की बात की जाए तो उन्हें निम्नलिखित बिंदुओं के आधार पर समझा जा सकता है-

1. स्टाफ अभिकरणों का कार्य केवल सुझाव देना मात्र ही होता है, जबकि सहायक अभिकरणों का कार्य गृह-संबंधी कार्यों का सम्पादन कसा होता है।
2. स्टाफ अभिकरण किसी सत्ता का प्रयोग नहीं करते, उनका मौलिका कार्य ही सुझाव देना मात्र होता है, जबकि सहायक अभिकरण अपनी सीमित दायरे में अपनी सत्ता का प्रयोग कर सकते हैं तथा कई छोटे-छोटे निर्णय उनके स्तर से लिए जाते हैं।
3. स्टाफ अभिकरणों का कार्य कार्यकारी अथवा परिचालन संबंधी नहीं होता, जबकि सहायक अभिकरणों का कार्य परिचालन का होता है और वे एक कार्यकारी की भूमिका में होते हैं।

4. स्टाफ अभिकरणों को सूत्र अभिकरणों को सुझाव देने के क्रम में नवीन चुनौतियों का सामना करना पड़ता है और नवीन समस्याओं के समाधान हेतु सूत्र अभिकरण को उपयुक्त सुझाव देने होते हैं, जबकि सहायक अभिकरणों का कार्य नियमित होता है, उन्हें सामान्यतः एक जैसे कार्य का ही सम्पादन करना होता है जैसे विधि विभाग केवल विधिक परामर्श देने और विधिक सहयोग करने का कार्य करती है। इसी प्रकार वित्त विभाग केवल वित्तीय निर्णय ही लेती है।
5. प्रत्येक संस्था में स्टाफ अभिकरणों की स्थिति संस्था के अलग-अलग स्तरों पर होती है, जबकि सहायक अभिकरण सीधे मुख्य कार्यपालक के अधीन होते हैं अथवा उनका एक अलग विभाग ही होता है।

अभ्यास प्रश्न-

1. भारत के किन्हीं दो स्टाफ अभिकरणों के नाम का उल्लेख कीजिए।
2. स्टाफ और सहायक अभिकरण में कोई एक समानता बताइए।
3. भारत में नीति आयोग का गठन किस वर्ष किया गया?
4. तकनीकी स्टाफ के अंतर्गत कौन-कौन आते हैं?

18.10 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात हम सूत्र अभिकरण, स्टाफ अभिकरण और सहायक अभिकरणों के मध्य विभेद करने में सक्षम हो सकते हैं। सामान्य तौर पर सूत्र अभिकरणों तथा स्टाफ अभिकरणों के मध्य विभेद तथा उनके परस्पर संबंधों की बात की जाती है और स्टाफ अभिकरण तथा सहायक अभिकरण को एक-दूसरे का पर्याय मान लिया जाता है। परन्तु इस इकाई में यह प्रयास किया गया कि हम स्टाफ और सहायक अभिकरणों के मध्य विभेद कर सकें तथा उनकी भूमिका को सहज रूप से समझ सकें। इन्हें समझना इसलिए भी आवश्यक हो जाता है, क्योंकि आम जीवन में भी हमें प्रायः कई संस्थाओं से जुड़ना पड़ता है और उनके द्वारा किए गए कार्य अथवा जन-कल्याण संबंधी कार्यों का हमें लाभ भी प्राप्त होता है। ऐसे में यह आवश्यक हो जाता है कि इन संस्थाओं की कार्य-पद्धति को समझा जाए और इनकी कार्य-पद्धति को तब तक नहीं समझा जा सकता, जब तक कि सूत्र, स्टाफ और सहायक अभिकरणों को न समझ लिया जाए।

18.11 शब्दावली

संकल्पना- धारणा या विचार, द्वितीयक- माध्यम या मध्यस्थ, परामर्श- राय, पर्यवेक्षण- निरीक्षण, प्रत्यायोजित- हस्तान्तरण या सौंपना, कोष- खजाना या धन एकत्र का स्थान

18.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. प्रधानमंत्री कार्यालय तथा मंत्रिमण्डल सचिवालय, **2.** दोनों का कार्य द्वीतीयक होते हैं।, **3.** 2015, **4.** चिकित्सक, शिक्षाशास्त्री, वकील, मनोवैज्ञानिक, अभियंता।

18.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. ए0 अवस्थी तथा महेश्वरी, एस0आर0, 'लोक प्रशासन', लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 1978
2. शरण, परमात्मा, 'आधुनिक लोक प्रशासन, मिनाक्षी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1981
3. शर्मा, एम0पी0, 'पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन थियोरी एण्ड प्रैक्टिश', किताब महल, इलाहाबाद, 1977
4. त्यागी, ए0आर0, 'लोक प्रशासन', आत्मा राम एण्ड शन्स, नई दिल्ली, 1986

18.14 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. ए0 अवस्थी तथा माहेश्वरी, एस0आर0, 'लोक प्रशासन', लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 1978
2. शरण, परमात्मा, 'आधुनिक लोक प्रशासन', मिनाक्षी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1981

3. शर्मा, एम0पी0, 'पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन थियोरी एण्ड प्रैक्टिश', किताब महल, इलाहाबाद, 1977
4. त्यागी, ए0आर0, 'लोक प्रशासन', आत्मा राम एण्ड शन्स, नई दिल्ली, 1986
5. डिमोक, एम0ई0 तथा डिमोक, जी0ओ0, 'पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन', आई0बी0एच0 पब्लिसर्श, नई दिल्ली, 1970
6. पिफनर, जे0एम0 तथा शेरउड़, 'एडमिनिस्ट्रेटिव ऑर्गनाइजेशन', आई0बी0एच0 पब्लिसर्श, नई दिल्ली, 1968

18.15 निबंधात्मक प्रश्न

1. भारत में स्टाफ अभिकरणों पर प्रकाश डालिए।
2. स्टाफ अभिकरण तथा सहायक अभिकरणों के मध्य विभेद कीजिए।
3. स्टाफ अभिकरणों के कार्यों की विवेचना कीजिए।
4. उदाहरण सहित सहायक अभिकरण के महत्व का वर्णन कीजिए।

इकाई-19 सेवीवर्गीय प्रशासन, तुलनात्मक अध्ययन, एतिहासिक पृष्ठभूमि: अमेरिका व फ्रांस के प्रशासन की विशेषताऐं

इकाई की संरचना

19.0 प्रस्तावना
19.1 उद्देश्य
19.2 संयुक्त राज्य अमेरिका की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि
19.3 फ्रांस की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि
19.4 सेवीवर्गीय प्रशासन: तुलनात्मक अध्ययन
19.5 अमेरिका की प्रशासनिक विशेषताऐं
19.6 फ्रांस की प्रशासनिक विशेषताऐं
19.7 सारांश
19.8 शब्दावली
19.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
19.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
19.11 सहायक/उपयोगी अध्ययन सामग्री
19.12 निबंधात्मक प्रश्न

19.0 प्रस्तावना

प्रत्येक देश का अपना इतिहास होता है, अपनी अलग भौगोलिक स्थिति होती है, अपनी पृथक संस्कृति और परम्पराऐं होती हैं। इसी के साथ प्रत्येक देश की अपनी अलग आर्थिक राजनैतिक और सामाजिक संस्थाऐं, परम्पराऐं और कार्यप्रणाली होती है। अमेरिका और फ्रांस की प्रशासनिक विशेषताओं का वर्णन करने से पूर्व वहाँ की आर्थिक, सामाजिक तथा ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का परिचय कराया गया है। तत्पश्चात प्रशासनिक विशेषताओं और कार्मिक प्रशासन की विशेषताओं का विस्तार से वर्णन किया गया है।

19.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- सेवीवर्गीय प्रशासन का तुलनात्मक अध्ययन कर पायेंगे।
- अमेरिका व फ्रान्स की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के सम्बन्ध में जान पायेंगे।
- अमेरिका की प्रशासनिक विशेषताओं की विवेचना कर पायेंगे।
- फ्रान्स की प्रशासनिक विशेषताओं की विवेचना कर पायेंगे।
- अमेरिका एवं फ्रांस की प्रशासनिक व्यवस्था की अन्य कुछ प्रमुख देशों के साथ तुलनाकर पायेंगे।

19.2 संयुक्त राज्य अमेरिका व फ्रांस की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

संयुक्त राज्य अमेरिका, यह नाम थॉमस पेन द्वारा सुझाया गया था और 04 जुलाई, 1776 के स्वतंत्रता के घोषणापत्र में आधिकारिक रूप से प्रयुक्त किया गया। लघु रूप से इसके लिए 'बहुधा संयुक्त राज्य' का भी उपयोग किया जाता है। ''अमेरिका'' शब्द को हिन्दी और अन्य बहुत सी भाषाओं में अधिकाशंतः संयुक्त राज्य अमेरिका के लिए प्रयुक्त किया जाता है, जो तकनीकी रूप से सही नहीं है, क्योंकि अमेरिका शब्द यूरोप के लोगों द्वारा इस पूरी नई दुनिया के लिए प्रयुक्त किया गया था, ना कि वर्तमान संयुक्त राज्य अमेरिका के लिए। अमेरिका को नई

दुनिया के नाम से भी जाना जाता है, क्योंकि 15वीं सदी में ही इन महाद्वीपों की खोज यूरोप के लोगों द्वारा की गई थी। हालांकि इससे पहले यह क्षेत्र 'वाइकिंग' और 'इनूइट' लोगों और स्थानीय लोगों को ज्ञात था।

18वीं शताब्दी तक अमेरिका, ब्रिटिश ताकत के अधीन था। लेकिन 16 दिसंबर 1773 को हुई एक घटना, जो 'बोस्टन चाय पार्टी' के नाम से मशहुर है, अमेरिका की तकदीर पलटकर रख दी। वर्ष 1773 में ब्रिटिश संसद में एक प्रस्ताव पारित कर अमेरिकियों पर प्रतीक के तौर पर चाय के आयात पर कुछ कर लगा दिया गया। यह कर बहुत ज्यादा नहीं बल्कि सिर्फ प्रतीक के ही तौर पर लगाया गया था, जिसका अर्थ यह दर्शाना था कि अमेरिका ब्रिटेन का गुलाम है। लेकिन अमेरिका को यह कतई मंजूर नहीं था कि उसके सम्मान और संप्रभुता के साथ कोई खिलवाड़ करे, इसीलिए वह प्रतीकात्मक कर भी उसे बहुत भारी लगता था।

इसी प्रतीकात्मक कर के विरोध में 'संस ऑफ लिबर्टी' नामक एक राजनीतिक दल के सदस्यों ने बोस्टन हार्बर पर चाय के तीन जहाजों को वापस ब्रिटेन लौटने से मना कर दिया और जहाजों में भरी चाय को चेस्टर नदी में बहा दिया। यह अमेरिकी लागों के विरोध का तरीका था, जिसके अनुसार उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया कि उनके लिए उनकी संप्रभुता से बढकर और कुछ नहीं है। इसके बाद यूनाइटेड स्टेट 13 ब्रिटिश कॉलोनीयों के साथ पूर्वी तट में उभरा। इस घटना के बाद अमेरिका में ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ कार्यवाहियां बढती गई और अंततः 1775 में इस आजादी के घोषणा को अपना लिया था। 1783 में ग्रेट ब्रिटेन से यूनाइटेड स्टेट की आजादी के साथ यह युद्ध खत्म हुआ और यूरोपियन कॉलोनी साम्राज्य के खिलाफ यह पहला सफल युद्ध था।

1848 में मैक्सिको में अमेरिकी हस्तक्षेप के कारण कैलिफोर्निया और वर्तमान अमेरिकी दक्षिण-पश्चिम का अमेरिका में विलय हो गया। नए नवेले देश ने अपनी सीमाओं का पश्चिम की ओर विस्तार करने के लिए स्थानीय इंडियन लोगों पर युद्धचक्र आरम्भ किया जो उन्नीसवीं सदी के अंत तक चला और स्थानीय अमेरिकीयों को अपनी भूमियों से हाथ धोना पड़ा। यूनाइटेड स्टेट ने 19वीं शताब्दी में भारतीय जनजाति को विस्थापित कर उत्तरी अमेरिका में जोरदार विस्तार की शुरूआत की थी, जिसमें उन्होनें नए प्रदेशों का भी अधिग्रहण किया था और धीरे-धीरे कुछ नये राज्यों का भी निर्माण किया था। 19वीं शताब्दी के दूसरे चरण में, अमेरिकन सिविल वॉर ने देश में कानूनी गुलामी का खात्मा किया। 1954 में स्कूलों में नस्लीय अलगाव को असंवैधानिक घोषित किया गया और अमेरिका में अफ्रीकी मूल के लोगों के अधिकारों के लिये सिविल राइट्स का अभियान चलाया। इस शताब्दी के अंत तक, यूनाइटेड स्टेट प्रशांत महासागर तक विस्तृत और देश की आर्थिक स्थिति भी काफी मजबूत हो चुकी थी, साथ ही देश में औद्योगिक क्रांति ने भी उँची उड़ान भर ली थी।

प्रथम विश्व युद्ध में अमेरिका ने मिलिट्री पॉवर का दमखम दिखा के युद्ध को वैश्विक स्तर पर सुनिश्चित कर दिया। द्वितीय विश्व युद्ध से यूनाइटेड स्टेट वैश्विक महाशक्ति के रूप में उभरा और न्यूक्लियर हथियारों को विकसित करने वाला पहला देश बना और युद्ध में उनका उपयोग करने वाला भी पहला देश बना और इसके साथ-साथ यूनाइटेड नेशन सिक्यूरिटी कौंसिल का स्थायी सदस्य बना। 1991 में सोवियत संघ के विघटन और शांति युद्ध के खत्म होते ही यूनाइटेड स्टेट महाशक्ति के नाम से जाना जाने लगा और दुनिया के विकसित देशों में शुमार हो गया।

यदि ब्रिटेन को संसदीय लोकतंत्र का जनक माना जाता है तो अमेरिका को अध्यक्षीय शासन व्यवस्था का सर्वोत्कृष्ट रूप कहा जाता है। अमेरिकी शासन व्यवस्था में राष्ट्रपति का पद अत्यंत शक्तिशाली तथा महत्वपूर्ण है। यद्यपि राष्ट्रपति के अधीन मंत्री-मण्डल भी कार्यरत होता है, किन्तु उसकी स्थिति मात्र अधीनस्थ कार्मिक की जैसी है। व्यवस्थापिका के रूप में परम्पराओं पर आधारित 'सीनेट' तथा निर्वाचित प्रतिनिधियों की 'कांग्रेस' नामक संस्थाऐं हैं। व्यवस्थापिका, कार्यपालिका (राष्ट्रपति) तथा न्यायपालिका एक-दूसरे से पृथक ही नहीं बल्कि स्वतंत्र भी हैं। अमेरिकी राष्ट्रपति, व्यवस्थापिका (कांग्रेस) के प्रति जवाबदेह नहीं होता है, लेकिन बजट पारित करने तथा विभिन्न कानून एवं नियम निर्माण में व्यवस्थापिका की गंभीर भूमिका के कारण सहयोग भाव बनाए रखना पड़ता है।

भारत, इंग्लैण्ड और फ्रांस के समान अमेरिका का इतिहास सदियों पुराना नहीं है। अमेरिका की खोज और इसका नामकरण एक रोचक घटना है। दरअसल हुआ यह कि कोलम्बस नामक पुर्तगाल का एक नाविक भारत के बजाय अमेरिका पहुँच गया। अब प्रश्न उठता है कि जब अमेरिका की खोज कोलम्बस ने की तो अमेरिका का नाम कोलम्बस के नाम पर क्यों नहीं पड़ा। कोलम्बस भारत के बजाय भटककर सेन सिल्वेडोर, क्यूबा और हिस्पानिया पहुँच गया। उसने यह पता लगाया कि यह एक समूचा महाद्वीप है। सन् 1507 में एक भूगोलज्ञ ने नए महाद्वीप का नक्शा बनाया और इसका नाम अमेरिकस के नाम पर ही रखने का प्रस्ताव रखा। लोगों को उसका यह प्रस्ताव भा गया और इस नये महाद्वीप का नाम अमेरीका पड़ गया।

कोलम्बस द्वारा खोज किये जाने के पश्चात अनेक यूरोपवासी धीरे-धीरे उस महाद्वीप में जा बसे। इनमें से इंग्लैण्ड से वहाँ पहुँचने वाले लोगों का बहुमत था, जिन्होंने आन्तरिक कलह के फलस्वरूप अपना वतन छोडकर इस नए द्वीप में बसना पसन्द किया। कालान्तर में अमेरिका, इंग्लैण्ड के अधीन हो चला। सन् 1776 तक अमेरिका में 13 उपनिवेशों की स्थापना हो चुकी थी। आन्तरिक मामलों में ये समस्त उपनिवेश स्वायत्त व स्वशासित थे, लेकिन बाह्य मामलों में इन पर इंग्लैण्ड का आधिपत्य विद्यमान था।

कालान्तर में अमेरिका वासियों का इंग्लैण्ड से भावात्मक जुड़ाव समाप्त हो गया। राजनैतिक और सामाजिक चेतना के फलस्वरूप पूर्ण स्वायत्तता और स्वतंत्रता की इच्छा बलवती होना स्वाभाविक था। लम्बे संघर्ष के फलस्वरूप अमेरिकावासियों को सफलता प्राप्त हुई और सन् 1783 में ब्रिटेन और अमेरिका के मध्य संधि हुई तथा अमेरिका को एक स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में मान्यता प्राप्त हो गई। वर्तमान में अमेरिका में शासन व्यवस्था का संचालन वहाँ के प्रथम राष्ट्रपति जॉर्ज वाशिंगटन की अध्यक्षता में 1787 में शासन में निर्मित और 1789 में प्रभावी किये गए संविधान के द्वारा ही किया जाता है। तात्कालिक 13 परिसंघों ने धीरे-धीरे वर्तमान संविधान को मान्यता प्रदान कर दी थी। इस प्रकार विश्व के प्रथम निर्मित और लिखित संविधान का उदय हुआ।

अमेरिका की लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था लगभग 225 वर्ष पुरानी है। दुनिया का सबसे मजबूत लोकतंत्र और उनकी शासन व्यवस्था पूर्णतः लोकतांत्रिक सिद्धान्तों पर पूरी तरह से खरी उतरती है। राजनीतिक अस्थिरता की किसी भी प्रकार की चिन्ता वहाँ के राष्ट्रपति, सरकार तथा नागरिकों को नहीं सताती। वहाँ के लोकतंत्र की मजबूती का मौलिक कारण यही है कि वहाँ की लोकतांत्रिक व्यवस्था में व्यक्तिवाद राजनीतिक छवि के आधार पर किसी भी पद को अपनी जमींदारी में परिवर्तित नहीं कर सकता।

व्यक्तिगत राजनीति पर राष्ट्रीय राजनीति तथा राष्ट्रीय हितों को प्रधानता दी गई है। संविधान में कुल छः (06) अनुच्छेद हैं, सम्पूर्ण संविधान मुश्किल से बीस पृष्ठों का है, फिर भी इसके प्रावधान एकदम स्पष्टता लिए हुए है। कहीं किसी भी प्रकार का भ्रम नहीं हो सकता। राष्ट्रपति तथा संसद के अधिकारों के बारे में भारतीय संविधान की तरह कहीं किसी संदेहजनक प्रावधान का उल्लेख नहीं है। प्रशासनिक तथा वैधानिक अधिकारों के बीच सुस्पष्ट सीमा रेखा बनाई गई है। सासदों की बजाय संसद को महत्व दिया गया है। सम्पूर्ण प्रशासनिक अधिकारों को राष्ट्रपति में निहित किया गया है। स्वतंत्र प्रशासनिक निर्णय लेने के सन्दर्भ में राष्ट्रपति को संसद के प्रति जवाबदेह नहीं बनाया गया है। वहीं सरकार से पूर्णतः मुक्त रहकर संसद के दोनों सदनों को किसी भी आदेश, निर्देश तथा कानून बनाने के अधिकार प्राप्त है।

अमेरिका में प्रमुखतः दो ही राजनीतिक दल पाए जाते हैं- एक रिपब्लिकन और दूसरा डेमाक्रेटिक। दोनों दल आन्तरिक रूप से पूर्णतः प्रजातांत्रिक आधार पर चले हैं। लेकिन वहाँ की दलीय व्यवस्था काफी ढीली मानी जाती है। दलीय अनुशासन वहाँ बड़ा गुण नहीं माना जाता। अनुशासन की तुलना में स्वतंत्र एवं बेबाक मताभिव्यक्ति को राजनीतिज्ञ की गुणवत्ता का मानदण्ड माना जाता है। राजनैतिक दल, विचारधारा के व्यापक मंच के रूप में कार्य करते हैं। अतः दल के उच्चाधिकारियों की भी विशेष संगठनात्मक पकड़ नहीं रहती है।

19.3 फ्रांस की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

मध्यकालीन विश्व इतिहास तथा समसामयिक अन्तर्राष्ट्रीय परिदृश्य में फ्रांस का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। जर्मनी, स्पेन तथा इटली के मध्य स्थित फ्रांस, पश्चिमी यूरोप का सबसे बड़ा देश है। फ्रेंच पोलीनेशिया, फ्रेंच सदर्न, न्यू कैलेडोनिया, सेंट पियरो, मिक्वेलोन, मेयोटे तथा कोर्सिका द्वीप (नेपोलियन की जन्मभूमि) फ्रांस के अधीन क्षेत्र हैं। प्राचीनकाल की राजतंत्र व्यवस्था (बूबोर्न वंश) से लेकर द्वितीय विश्व युद्ध तक फ्रान्स निरन्तर युद्धरत रहा है। सन् 1338 से लेकर 1453 ई0 तक का सौ वर्षीय युद्ध फ्रान्स तथा ब्रिटेन के इतिहास में प्रसिद्ध है, जिसमें 'जॉन आफ आर्क' की साहस कथा भी रोचकता से भरपूर है। सन् 1789 की फ्रांसिसी क्रांति विश्व प्रसिद्ध है, क्योंकि 'समानता', स्वतंत्रता' तथा 'भाईचारा' के लिए किसान एवं मजदूरों द्वारा क्रांति यह की गई। इस क्रांति में सम्राट लुई सोलहवें तथा महारानी एन्टी नोइट की हत्या (1793) कर दी गई थी। रूसो, वाल्टेयर तथा मोटेस्क्यू जैसे विचारकों ने फ्रांस को चेतना प्रदान की। इस क्रांति के पश्चात्त नेपोलियन बोनापार्ट का उदय हुआ, जिसका मानना था कि संसार में असंभव कुछ भी नहीं हैं। यरोप विजय अभियान में नेपोलियन को ब्रिटेन से नील के युद्ध (1798), ट्रेफालगर के युद्ध (1805) तथा वाटरलू के युद्ध (1815) में हार का सामना करना पड़ा। अनेक लड़ाइयों के पश्चात फ्रांस में जनरल 'डिगाल' द्वारा 1958 में स्थापित पंचम गणराज्य प्रवर्तित है।

फ्रांस, एकात्मक शासन व्यवस्था वाला समाजवादी गणराज्य है। वर्तमान शासन व्यवस्था, पंचम गणराज्य के लिए निर्मित संविधान पर आधारित है। अर्थात् अब तक फ्रान्स का संविधान चार बार परिवर्तित हो चुका है। सन्1792 में प्रथम गणराज्य, 1848 में द्वितीय, 1875 में तृतीय, 1946 में चतुर्थ तथा 04 अक्टूबर 1958 को वर्तमान पंचम गणराज्य का संविधान फ्रांस में प्रवर्तित हुआ। चौथे गणराज्य में लोकतांत्रिक गणराज्यों संसदीय शासन, द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका, नागरिक अधिकार, शक्ति पृथक्करण इत्यादि विशेषताऐं समाहित की गई थीं, किन्तु 1946 से 1958 तक फ्रान्स में तीन बार आम चुनाव तथा 25 बार मंत्री-मण्डल गठित होने के कारण फ्रांस को 'यूरोप का बीमार व्यक्ति' कहा जाने लगा था। इसलिए कहा जाता है कि 1958 में निर्मित संविधान पूर्ण नहीं था, बल्कि यह 'संकट काल का शिशु' था, जिसमें तत्कालीन परिस्थितियों का सामना करने हेतु केवल राष्ट्रपति को अधिक शक्ति देने पर ही ध्यान दिया गया था। वर्तमान में फ्रांस में संसदीय तथा अध्यक्षीय शासन व्यवस्थाओं का मिश्रित स्वरूप प्रवर्तित है।

फेरेल हैडी ने फ्रान्स की प्रशासन व्यवस्था को क्लासिक(Classic) कहा है। फ्रांस की राजनीतिक संस्कृति(Political Culture) की दो मुख्य विशेषताएँ रही हैं। पहला- फ्रांस में पिछली दो शताब्दियों तक राजनीतिक अस्थिरता तथा दूसरा- शासन व्यवस्था में परिवर्तन। यहाँ सरकार के रूप परिवर्तन का इतिहास बड़ा मनोरंजक है। हैडी के कथानुसार, "1789 से फ्रांस में तीन संवैधानिक राजतन्त्र रहे। एक बार साम्राज्यशाही, एक बार अर्द्धतानाशाही तथा पाँच बार गणतन्त्र रहा। ये अधिकांश परिवर्तन हिंसात्मक तरीके से हुए है।' इन परिवर्तनों के बाद भी वहाँ का प्रशासन यथावत् रहा है। यहाँ सरकार का रूप तानाशाही से प्रजातान्त्रिक हुआ और साम्राज्यशाही से गणराज्य बना, सरकार का रूप तानाशाही से प्रजातान्त्रिक हुआ और साम्राज्यशाही से गणराज्य बना, किन्तु प्रशासन में विशेष परिवर्तन नहीं आया। केवल अपनी स्वामिभक्ति बदल ली और कार्य करता रहा। अलफ्रेड डाइमन्ट के अनुसार, ''गणराज्य समाप्त हो जाता है, किन्तु प्रशासन बना रहता है।'' फ्रांसीसी प्रशासन राजनीतिक निर्देशन बिना भी चलता रहा है। यूथी ने लिखा है, "जब संसद कार्य नहीं करती, तो अतीत के व्यवस्थापन पृष्ठों की छानबीन की जाती है और व्यवस्थापिका द्वारा बिना परिवर्तन नई परिस्थिति का सामना कर लिया जाता है। यह सब प्रशासन की सहायता से होता है। यहाँ सप्ताहों तक कोई सरकार नहीं होती, सैकड़ों प्रीफेक्ट्स फ्रान्स को प्रशासित करती रहती है।"

फ्रांस का सेवीवर्ग प्रशासन वहाँ के साँस्कृतिक परिवेश से काफी प्रभावित है। व्यक्तित्व के गुण, सामाजिक मूल्य, वर्गीय सम्बन्ध, शिक्षा व्यवस्था, राजनीतिक व्यवस्था एवं उपनिवेशीय व्यवस्था सेवीवर्ग प्रशासन के रूप-निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। फ्रांस की शिक्षा व्यवस्था नौकरशाही पूर्ण है। यह नौकरशाही संगठन की अनेक आधारभूत व्यवस्थाओं को स्वतः सिद्ध कर देती है। शिक्षा व्यवस्था का संगठनात्मक रूप केन्द्रीकृत तथा अव्यक्तिगत है। अध्यापन कला में नौकरशाही के जीवाणु हैं तथा अध्ययन की विषयवस्तु नौकरशाही है। यह लोगों का सामाजिक स्तर में प्रवेश के लिए चयन करती है। फ्रांस में श्रमिक आन्दोलनों तथा औद्योगिक स्वरूप भी नौकरशाही है। इनकी प्रकृति राजनीतिक है। निम्नस्तरीय कर्मचारी प्रत्यक्ष रूप से इनमें भाग नहीं लेते। फलतः नौकरशाही में केन्द्रीकरण बढ़ जाता है। स्पष्ट है कि नौकरशाही फ्रांस के सांस्कृतिक परिवेश में पूरी तरह रमी हुई है। इसने वहाँ सेवीवर्ग व्यवस्था को काफी प्रभावित किया है।

फ्रांस में प्रशासन और राजनीति के बीच अटूट सम्बन्ध रहा है। राजनीतिक व्यवस्थाएँ मिट गई, किन्तु प्रशासन व्यवस्था के अनेक राजनीतिक सिद्धान्त प्रशासनिक क्षेत्र में कायम रह सके। फ्रांसीसी प्रशासन में एकरसता और स्थायीपन रहा है। नये विचारों तथा सामाजिक शक्तियों ने प्रचलित सिद्धान्तों पर नई अवधारणाओं को स्थापित किया है, किन्तु इनमें प्राचीन संरचना नष्ट नहीं हुई वरन् उसकी प्रकृति में परिवर्तन आ गए है।

19.4 सेवीवर्गीय प्रशासनः तुलनात्मक अध्ययन

लोक कार्मिक सेवीवर्गीय प्रशासन व्यवस्था सरकार के कार्यों, उत्तरदायित्वों एवं निष्पादकता को दर्शाती है। द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात से विकासशील देशों के सरकारों में व्यापक परिवर्तन हुए हैं तथा उन परिवर्तनों का दबाव लोक कार्मिक व्यवस्था पर आया है। ऐसा माना जाना लगा है कि लोक कार्मिक व्यवस्था में व्यापक नीतिगत परिवर्तन किये जाने चाहिये, जिसमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण लोक कार्मिकों से संबंधित नीतियां हैं लोक कार्मिक नीति सरकार की निष्पादकता एवं प्रजातंत्र प्रणाली को चित्रित करती है। यह नीतियां दर्शाती हैं कि लोक प्रशासन का संचालन किन- आधारों पर संचालित किया जा रहा है तथा सरकार किन आधारों को प्राथमिकता देती हैं जो कि आगे चलकर संगठन की सफलता या असफलताओं को निर्धारित करती है।

यह सर्वमान्य है कि देश का संचालन संविधान के अनुसार किया जाना चाहिये तथा संविधान में जिन अधिकारों, सिद्धान्तों एवं कर्त्तव्यों का वर्णन किया गया है, उनका पालन किया जाना चाहिये। प्रत्येक सरकार का यह दायित्व होता है कि वह देश का प्रशासन उन विधियों, नियमों एवं कर्तव्यों से संचालित करे, जोकि संविधान के मूल संरचना में वर्णित की गई हैं (यथा अवसरों की समानता, योग्यता, स्वतंत्रता इत्यादि)। लोक प्रशासन के क्षेत्र में सरकार का यह प्रथम दायित्व है कि वह आपसी कार्मिक नीतियों में इन विधियों, नियमों इत्यादि को प्राथमिकता के आधार पर समावेश करे तथा इनका पालन सुनिश्चित करे। इसका प्रभाव न केवल प्रजातांत्रिक व्यवस्था, न्यायिक प्रणाली व समाज पर होगा बल्कि लोक प्रशासन कार्यकुशल, निष्पादक एवं प्रभावपूर्ण होगा एवं साथ-साथ नागरिकों का विश्वास सरकार व प्रशासन पर बढेगा।

लोक कार्मिक नीतियॉं सरकारी संगठनों पर भी गहरा प्रभाव डालती हैं। सरकारी प्रशासनिक संगठनों में निष्पक्षता, तटस्थता, कार्य एवं निर्णय करने की स्वतंत्रता, स्वतंत्र कार्य प्रभार इत्यादि न केवल विकसित होते हैं बल्कि जनसेवा, जनहित एवं राष्ट्रसेवा को प्रभावी बनाते हैं। इसके अतिरिक्त सरकारी प्रशासनिक संगठनों में योग्यता एवं कार्य कुशलता विकसित होती है। प्रशासनिक संगठन दबावों, भ्रष्टाचार, अनैतिकता एवं दुराचार से ग्रसित नहीं होते है। प्रशासनिक संगठनों के कर्मचारियों के मध्य सौहार्द्रपूर्ण संबंध होते हैंऔर वे संगठन के उद्देश्यों की पूर्ति एक टीम के रूप में प्राप्त करने हेतु सतत् प्रयत्नशील रहते हैं जिसका कि प्रभाव सरकार व कर्मचारियों के मध्य संबंधों पर भी पड़ता है और इन दोनों के मध्य सम्बन्ध कम तनावपूर्ण एवं सहयोग के बने रहते हैं, जिससे कि लोक प्रशासन में हडतालें, घेराव, धरना इत्यादि नहीं होते हैं। यही नहीं, प्रशासनिक संगठनों की छवि अच्छी बनती है

और जनता में उनके प्रति सदभावना एवं विश्वास बना रहता है। सरकार की उपयुक्त एवं विधि शासन सम्मत कार्मिक नीतियॉ कर्मचारियों में आत्मविश्वास, सम्मान, मनोबल, समर्पण एवं त्याग की भावना को बलवती करती हैं।

यद्यपि सरकार द्वारा लोक कार्मिक नीति के निर्माण में संविधान विधि एवं न्याय को प्राथमिकता देती है, तथापि सामाजिक व्यवस्था, बदलते हुए अन्तर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय घटनाचक्रों, आर्थिक क्षेत्र के परिवर्तनों एवं राजनीतिक भूमिका को भी ध्यान में रखती है। इस हेतु सरकार कार्मिक नीतियों में अपवाद स्वरूप विभिन्न प्रकार के सामाजिक न्याय हेतु साधन यथा आरक्षण, लिंग प्राथमिकता, मानवीयता इत्यादि को भी स्थान देती है।

तुलनात्मक आधार पर अमेरीका में लोक सेवा की प्रकृति केरियर के रूप में स्वीकार्य नहीं है, जबकि फ्रांस में इसे केरियर के रूप में स्वीकार किया गया है। अमेरीका में पोजीशन वर्गीकरण पाया जाता है, जबकि फ्रांस में रैंक वर्गीकरण पाया जाता है। अमेरीका में लोक सेवा में भर्ती के लिये आयु तथा शैक्षणिक योग्यता बंधन नहीं है, जबकि फ्रांस में लोक सेवा में भर्ती के लिए 18 से 26 वर्ष तथा शारीरिक परीक्षा अनिवार्य है। अमेरीका में निजी तथा सरकारी संस्थाओं द्वारा प्रशिक्षण दिया जाता है, जबकि फ्रांस में ई0एन0ए0 द्वारा गहन प्रशिक्षण दिया जाता है। अमेरीका में पदोन्नति के लिए वरिष्ठता तथा वरीयता का संयुक्त प्रभाव रहता है, जबकि फ्रांस में सर्विस रिकार्ड व कार्य निष्पादन मूल्यांकन का श्रेष्ठ विश्वसनीय स्वरूप पाया जाता है। अमेरीका में राजनीतिक अधिकारों पर प्रतिबंध लगाया गया है एंव केवल मतदान का अधिकार दिया गया है, जबकि फ्रांस में राजनीतिक अधिकार पर्याप्त रूप से पाया जाता है तथा चुनाव में सक्रिय भागीदारी रहती है। अमेरीका में हडतालें नहीं होती हैं, जबकि फ्रांस में हड़ताल करना अवैध नहीं माना जाता है। अमेरीका में लूट-प्रणाली अंशतः अभी भी प्रचलित है। अमेरीका में विशेषज्ञों का प्रभुत्व पाया जाता है, जबकि फ्रांस में संयुक्त रूप से विशेषज्ञ एवं सामान्यज्ञ पाये जाते हैं

19.5 अमेरिका की प्रशासनिक विशेषताऐं

आईये अमेरिका की प्रशासनिक विशेषताओं का अध्ययन निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार करते हैं-

1. **प्रशासन का कानूनी आधार-** जिस किसी देश में लिखित संविधान अपनाया जाता वहाँ यह अपेक्षा की जाती है कि सरकार के संगठन और उसके कार्यकरण के विषय में संविधान में ही स्पष्ट प्रावधान होना चाहिए। भारत के संविधान में केन्द्रीय स्तर व राज्य स्तर के प्रशासनिक संगठनों, उनके कार्यकरण और उनके आपसी संबंधों का विस्तृत विवरण संविधान में मौजूद है। अमेरिका में प्रशासन संबंधी बहुत ही अल्प प्रावधान संविधान में होने से राष्ट्रीय सरकार के संगठन और कार्य प्रणाली कोकानूनी जामा पहनाने के लिए अधिनियमों का सहारा लिया गया है। अमेरिका की कांग्रेस को प्राप्त शक्तियों का उपयोग करते हुए प्रशासनिक अभिकरणों के गठन, उनकी कार्य-प्रणाली और साथ ही साथ उनके आपसी संबंधों की व्यवस्था अनेक अधिनियम पारित करके की गई है। विभागों के स्थायी रूप से गठन करने या अस्थाई या तदर्थ अभिकरणों का गठन करके आकस्मिक आवश्यकता की पूर्ति हेतु अमेरिका के राष्ट्रपति द्वारा समय-समय पर कार्यपालिका आदेश प्रसारित किये जाते रहे हैं। इस प्रकार अमेरिका में प्रशासन को विभिन्न विधानों और राष्ट्रपति के आदेशों द्वारा कानूनी आधार प्रदान करके संविधान में रह गई कमियों की पूर्ति की जाती है।
2. **प्रशासन में एकरूपता का अभाव-** अमेरिका की प्रशासनिक व्यवस्था में एक प्रमुख कमी यह है कि इसमें एकरूपता नहीं पायी जाती है। केन्द्रीय स्तर पर विभागों के गठन और कार्यकरण संबंधी प्रावधान सरकार द्वारा एक समय में योजनाबद्व तरीके से नहीं करके, टुकड़ों-टुकड़ों में किये गये हैं। जब कभी कोई आवश्यकता महसूस हुई तो कांग्रेस उसकी पूर्ति के लिए प्रावधान करके रूक जाती है। भविष्य में फिर कुछ आवश्यकता महसूस होती है तो फिर उसके अनुरूप कांग्रेस के द्वारा प्रयत्न किये जाते रहे हैं। इस

कारण कांग्रेस के द्वारा सदैव टुकड़ों-टुकड़ों में किये गये प्रयत्नों से सम्पूर्ण प्रशासन में वहाँ एकरूपता विकसित नहीं हो पाई है। इस स्थिति के लिए दो प्रमुख कारण माने जाते हैं, एक कारण तो यह है कि कांग्रेस ने विभागों को सदैव शक की निगाह से देखा है और दूसरा राजनीति में इतने उलझे रहते हैं, कि उन्हें प्रशासन पर गम्भीरता से विचार करने का समय ही नहींमिलता। अमेरीका में लोक सेवक स्वयं भी विभागीय, अन्तर्विभागीय और व्यक्तिगत राजनीति में इतना उलझे रहते हैं कि वे नीति-निर्माताओं को समुचित सहायता उपलब्ध नहीं करा पाते हैं।

3. **प्रशासन में स्परूपगत भिन्नताऐं-** अमेरिका के प्रशासन में स्परूपगत अत्यधिक भिन्नताऐं देखने को मिलती है। राष्ट्रीय स्तर पर लगभग तेरह विभाग वहाँ विद्यमान हैं। इनमें से कुछ विभाग तो बहुत पुराने हैं, इतने पुराने जितना स्वंय संयुक्त राज्य अमेरिका है। विभागों की प्रकृति में भी भिन्नता देखने को मिलती है। उनमें कार्यरत लोक सेवकों की संख्या, उनके द्वारा व्यय किये जाने वाले धन, उनके द्वारा निर्वाह किये जाने वाले दायित्व के भार आदि की दृष्टि से विभागों में बहुत असमानताऐं देखने को मिलती हैं। इनमें से कुछ स्वतंत्र अभिकरण का रूप लिये हुए हैं, जिन्हें कमीशन, बोर्ड, कॉउन्सिल, अथॉरिटी, आदि नामों से जाना जाता है। इनमें से कुछ साठ-सत्तर वर्ष पुराने हैं तो कुछ का गठन इससे कुछ समय पूर्व किया गया हैं।
4. **प्रशासनिक संगठन के विभिन्न रूप-** अमेरिका में संघीय सरकार में संगठनों के अनेक प्रकार के रूप देखने को मिलते है। इन प्रशासनिक संगठनों के समूहों को मुख्यतः दो भागों में विभक्त किया जा सकता है, एक विभागीय संगठन और दूसरा स्वतंत्र संस्थाऐं। भारत, अमेरिका और इंग्लैण्ड में विभागीय संगठनों का स्वरूप लगभग एक जैसा ही है। विभागीय संगठन राजनैतिक नेतृत्व में कार्य करते हैं। इनका प्रभारी कोई मंत्री होता है जो राजनीति में होता हैं। इनका एक प्रशासनिक अध्यक्ष होता है और वह मंत्री के अधीन रहते हुए अपना कार्य सम्पन्न करता है। उस प्रशासनिक अध्यक्ष के अधीन अन्य अधिकारी और कर्मचारी होते हैं जो एक-दूसरे को सहयोग देते हुए अपने-अपने दायित्वों का निर्वाह करते हैं। ये प्रशासनिक विभाग राजनैतिक कार्यपालिका के पूर्णतः प्रत्यक्ष नियंत्रण में रहते हुए दायित्वों का निर्वाह करते हैं। अमेरिका के राज्य विभाग, युद्ध विभाग, ट्रेजरी विभाग, सैन्य विभाग, आदि इस वर्ग में आते हैं।

   द्वितीय वर्ग में आयोग और मण्डल प्रकृति के अभिकरण सम्मिलित किये जाते हैं, जिनकी स्थापना की आवश्यकता तब पड़ी, जब राज्य ने आर्थिक, वाणिज्यिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आदि प्रकृति के कार्यों को अपने हाथों मे लिया। इस प्रकार के प्रशासनिक अभिकरणों के संचालन का दायित्व तीन से इग्यारह व्यक्तियों के हाथों में सौंपा जाता है, जिनकी नियुक्ति सरकार द्वारा प्रायः पांच से लेकर सात वर्ष की अवधि के लिए की जाती है। इनके पास प्रशासनिक दायित्वों के अतिरिक्त बहुत कार्य अर्ध-न्यायिक ओर अर्ध-विधायी प्रकृति का होता है। ये अपने कार्यों को सम्पन्न करने में पूर्णतः स्वतंत्र होने के कारण इन्हें 'स्वतंत्र नियामकीय निकाय' के नाम से सम्बोधित किया जाता है। अमेरिका अपने यहाँ 'शक्ति के प्रथक्करण के सिद्वान्त' को अपनाने के लिए मशहूर है, किन्तु इन 'स्वतंत्र नियामकीय निकायों' पर यह शक्ति के प्रथक्करण का सिद्वान्त लागू नहीं कर रखा है।

   जहाँ तक 'सार्वजनिक निगम' का प्रश्न है, इनकी अमेरिका में स्थापना की आवश्यकता तब महसूस की गई जब वहाँ सरकार ने अपने हाथों में आर्थिक व वाणिज्यिक प्रकृति के दायित्वों को लेने की जरूरत को महसूस किया। 'सार्वजनिक निगम' रूपी संगठन से भारतवासी भली प्रकार से परिचित हैं, क्योंकि भारत में संघीय और राज्य सरकारों द्वारा अनेक 'सार्वजनिक निगमों' की स्थापना विगत वर्षों में की गई है। प्रत्येक सार्वजनिक निगम की स्थापना हेतु सरकार को अधिनियम पारित करना होता है। अमेरिका में सार्वजनिक निगम की स्थापना के उद्देश्य से कांग्रेस द्वारा पृथक-पृथक अधिनियम पारित किये जाते रहे हैं। निगम के प्रशासनिक प्रबंधन के लिए एक संचालक मण्डल होता है। निगम को सरकार द्वारा केवल मोटे

तौर पर नीति निर्धारित करके देनी होती है। इसके अलावा सरकार इनके प्रशासन में दखलन्दाजी नहीं करती है। दिन-प्रतिदिन के प्रशासनिक प्रबंधन के लिए इन्हें स्वतंत्र छोड़ दिया जाता है। स्वायत्तता की दृष्टि से सार्वजनिक निगमों की स्थिति प्रशासकीय सरकारी विभाग और स्वतंत्र नियामकीय आयोग के बीच की होती है। नियामकीय आयोग से थोड़ा कम और सरकारी विभागों की तुलना से कहीं अधिक स्वायत्तता सार्वजनिक निगमों को प्राप्त रहती है।

5. **विधि का शासन-** अमेरिका में आज पूर्णतः विधि का शासन पाया जाता है। आज के शब्द का प्रयोग यहाँ इस कारण किया गया है कि जिस समय अमेरीका का संविधान मूल रूप में प्रारम्भ किया गया था, उस समय इस संबंध में कुछ कमियां विद्यमान थीं। उन कमियों को दूर कर दिया गया और अब भारत और इंग्लैण्ड की भॉति अमेरीका में डायसी द्वारा प्रतिपादित विधि के शासन की समस्त विशेषताऐं देखने का मिलती हैं। यथा- 1. अमेरिका में कानून की सर्वोच्चता पाई जाती है। जब तक कोई व्यक्ति अमेरिका में स्पष्टतः कानून के विरूद्व आचरण न करे और कानून के विरूद्व किया गया यह आचरण अमेरीका के सामान्य न्यायालय में सिद्ध नहीं हो जाता, तब तक न तो अमेरिका में किसी को दण्ड दिया जा सकता है और न ही किसी को शारीरिक या आर्थिक हानि पहुँचायी जा सकती है। 2. अमेरिका में अब कानून के समक्ष सब समान हैं। कोई भी अमेरिका का नागरिक कानून के उपर नहीं है। राष्ट्रपति से लेकर वहाँ का चपरासी या सामान्य नागरिक भी सामान्य कानून से शासित होते हैं। जिस समय मौलिक संविधान लागू हुआ था उस समय लोगों को दास बना कर रखने की अनुमति देता था। एक संवैधानिक संशोधन के पश्चात अब इस प्रकार की प्रथा को समाप्त कर दिया गया है। 1920 तक महिलाओं को समान अधिक तथा मताधिकार तक प्राप्त नहीं थे। वहाँ पर अब एक ही प्रकार के कानून व एक ही प्रकार के न्यायालय हैं। अब वहाँ समस्त नागरिक, चाहे वह गोरा हो या काला, चाहे वह अमीर हो या गरीब, प्रत्येक लोक सेवक चाहे वह छोटे से छोटे पद पर हो या फिर शिखरस्थ पद और चाहे राजनीति के क्षेत्र में अमेरिका का राष्ट्रपति हो या सामान्य सदस्य, कानून की दृष्टि में सभी समान हैं। अमेरिका में सर्वोच्य न्यायालय के निर्णय ही अन्तिम माने जाते हैं। समस्त संसदीय कानूनों का निर्माण अमेरिका में विधि के शासन की रक्षा के लिए किया जाता है और जिन मामलों में न्यायालय द्वारा इसकी अवहेलना पायी जाती है तो न्यायालय द्वारा उन्हें निरस्त करने में तनिक भी विलम्ब नहीं किया जाता है। इन समस्त बातों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि अमेरिका में आज विधि का शासन मौजूद है।

6. **शासन में उत्तरदायित्व की कमी-** इंग्लैण्ड और भारत में शासन को जनप्रतिनिधियों और मंत्रियों के माध्यम से पूर्णतः उत्तरदायी बनाया जाता है। इन दोनों देशों में संसदात्मक शासन व्यवस्था होने के कारण प्रशासन पर कदम-कदम पर अंकुश रहता है। लोक प्रशासन की किसी भी खामी के लिए व्यवस्थापिका में प्रश्न पूछकर, पूरक प्रश्न पूछकर, निन्दा प्रस्ताव द्वारा, अविश्वास प्रस्ताव आदि की सहायता से कार्यपालिका पर अंकुश रखा जाता है। संसदात्मक प्रणाली में कार्यपालिका में स्थायित्व नहीं होता है। मत्री-मंडल सामूहिक और व्यक्तिगत उत्तरदायित्व से कार्य करता है। वे एक साथ तैरते और एक साथ डूबते हैं। अमेरिका में स्थिति भिन्न है, वहाँ राष्ट्रपति का कार्यकाल निश्चित है। उसे कार्यकाल के पूर्ण होने से पहले केवल 'महाभियोग' द्वारा ही हटाया जा सकता है और महाभियोग के पास होने की प्रक्रिया इतनी जटिल है कि आज तक एक भी राष्ट्रपति को इसके द्वारा अपदस्त नहीं किया गया है। इस प्रकार अमेरिका में अध्यक्षात्मक व्यवस्था होने के कारण वहाँ लोक प्रशासन पर उतना अंकुश नहीं रह पाता है, जितना भारत और इंलैण्ड में है।

7. **प्रशासन की त्रि-स्तरीय व्यवस्था-** भारत और अमेरिका में संघात्मक व्यवस्था होने के कारण इन दोनों देशों में प्रशासन के तीन स्तर पाये जाते हैं, यथा संघीय स्तर, राज्य स्तर और स्थानीय स्तर। अमेरिका में

संघीय शक्तियों का वर्णन किया गया है और शेष समस्त कार्य व शक्तियां राज्य सरकारों की हैं। संविधान द्वारा संघीय और राज्य सरकारों को संप्रभुता प्रदान की गई है। स्थानीय सरकारों का निर्माण राज्य द्वारा पारित अधिनियमों से किये जाने कारण उन्हें सम्प्रभुता तो प्राप्त नहीं है, लेकिन स्वायत्तता प्राप्त है। इस प्रकार तीनों स्तरों पर हमें प्रशासन का रूप देखने को मिलता है। प्रत्येक राज्य में पृथक-पृथक संविधान होने से उनका स्वरूप थोड़ा भिन्नता लिए हुए अवश्य है।

8. **केन्द्रीय प्रशासन का सुदृढ रूप-** जिस प्रकार इंग्लैण्ड संसदात्मक शासन प्रणाली का जन्मदाता है, उसी प्रकार अमेरिका को संघीय व्यवस्था की देन माना जाता है। प्रारम्भ में 13 राज्यों को मिला के बने संयुक्त राज्य अमेरिका में आज 50 राज्य हैं। अत्यधिक विशाल भू-भाग, राज्यों में स्वायता व संप्रभुता की प्रबल इच्छा, जनता द्वारा एकात्मक शासन को परतन्त्रता का प्रतिबिम्ब समझना और शक्ति के विकेन्द्रीकरण का स्वतंत्रता का प्रतिरूप समझना और संघात्मक व्यवस्था से स्थानीय स्वायत्त शासन और नागरिक प्रशिक्षण के लाभ को दृष्टिगत रखते हुए संघीय व्यवस्था को अंगीकार किया। मौलिक संविधान में संघीय सरकार को एक कमजोर केन्द्र के रूप में प्रारम्भ किया गया। कालान्तर में अनेक कारणों यथा- आर्थिक-सामाजिक परिवर्तन, केन्द्र में निहित शक्तियों के सिद्वान्त, गृहयुद्ध, न्यायिक निर्णय, वित्तीय दृष्टि से राज्यों की केन्द्रीय अनुदान पर निर्भरता, अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति, वैज्ञानिक खोजों, संवैधानिक संशोधन और केन्द्र के प्रति जनता के सम्मान में प्राथमिक अभिवृद्धि के फलस्वरूप आज केन्द्रीय सरकार और प्रशासन की स्थिति अत्यन्त सुदृढ हुई दिखाई देती है।
9. **कार्य की संस्कृति एवं पर्यावरण-** प्रबन्धन जगत में सफलता का मंत्र स्वस्थ कार्य संस्कृति है। अमेरिका और यूरोपीय देशों में इतनी सफलता एवं प्रगति का रहस्य अनका परफेक्ट वर्क कल्चर ही है। उनके लिए काम ही पूजा है। इन देशों के लोग, चाहे वे लोक सेवा में हों या निजी प्रशासन में या स्वयं का कोई व्यवसाय करते हों, निश्चित और निर्धारित समय पर जमकर काम करते है। वहाँ सरकारी कार्यालयों में पांच दिन का सप्ताह होता है। सप्ताह के अन्त में भरपूर आन्नद करते हैं और सोमवार से पुनः काम में मन लगाकर जुट जाते हैं। ऐसा कहते है कि अमेरिका में राष्ट्रपति के चुनाव के समय एक प्रत्याशी एक मील में एक मजदूर को अपना परिचय देने लगा तो उस मजदूर ने कहा- क्षमा करें, मेरे पास समय नहीं है, मैं काम कर रहा हूँ। यह सुनकर वह प्रत्याशी उस मील में फिर किसी से भी नहीं मिला, क्योंकि सभी तो वहा काम करने में व्यस्त थे।
10. **लूट प्रणाली-** लोकसेवकों की भर्ती में लूट-प्रणाली अमेरिका की राजनीतिक विशेषता है। इसमें चुनाव में जीतने वाला राजनीतिक दल राज्य के सभी प्रशासनिक पदों पर अपने दल के व्यक्ति नियुक्त करता है। यह प्रथा इस कहावत पर आधारित है कि 'लूट का सम्बन्ध विजेताओं से ही होता है' (To the victor belong the spills)। सरकारी पदों को लूट का माल समझा जाता है। अमेरिका में अनेक आधारों पर लूट-प्रणाली का समर्थन होता रहा। राज्य की नीतियों को सही क्रियान्विति सत्ताधारी दल के सिद्धान्तों तथा विचारधाराओं में विश्वास रखने वाले कर सकते हैं। अतः असैनिक सेवाओं में दलीय व्यक्तियों को ही नियुक्त किया जाना चाहिए। विलियम टर्न(William Turn) ने इस व्यवस्था का पक्ष लिया है तथा योग्यता प्रणाली की आलोचना की है। उनके मतानुसार, "दलीय राजनीति से निरपेक्ष कर्मचारी उस घोड़े के समान हैं, जिसकी दोनों आँखों के किनारों में पट्टियाँ लगी रहती हैं और वे केवल एक ही दिशा में देखते है।" लूट-प्रणाली इस प्रकार प्रचालित थी, क्योंकि विजेता दल अपने कार्यकर्ताओं तथा मित्रों को सरकारी पद देकर उनके प्रति आभार प्रदर्शित करता था। सत्ताधारी दल बदलने के साथ ही लोकसेवक भी बदल दिए जाते थे।

लूट-प्रणाली की प्रेरणा और लाभ चाहे कुछ भी रहा हो, किन्तु यह सत्य है कि प्रशासन मे अनेक दोष आ गए। प्रशासन भ्रष्टाचारी तथा अकुशल हो गया। देश का राजनीतिक जीवन कलुषित बन गया। दल के भ्रष्टाचारी और तिकड़मी कार्यकर्ता उच्च प्रशासनिक पदों पर नियुक्त होने लगे। जनता में राजनीति और प्रशासन के प्रति घृणा व्याप्त हो गई। 1881 में एक नौकरी के इच्छुक निराश व्यक्ति ने राष्ट्रपति गारफील्ड(Garfield) की हत्या कर दी। इस व्यवस्था में निहित बुराइयों को दूर करने के लिए 1883 में “पेण्डलेटन अधिनियम”(Pendleton Act) पारित किया। लोक सेवकों की भर्ती प्रतियोगिता के आधार पर करने के लिए 1940 में रामस्पीक अधिनियम(Ramspeck Act) पारित कर लोक सेवा आयोग की स्थापना की गई। अब 85 प्रतिशत नियुक्तियां प्रतियोगी परीक्षा से होती हैं। लूट-प्रणाली का रूप बदल गया। यह दलीय न रहकर राष्ट्रपति की इच्छा के आधार पर व्यक्तिगत बन गई।ओ0 जी0 स्टॉल(O.G. Stahl) का कहना है कि “आधुनिक उदार राज्यों में संयुक्त राज्य अमेरिका ही एक ऐसा राज्य है जिसमें आंशिक रूप से योग्यता प्रणाली की वर्तमान स्थिति स्वीकार की जाती है।” राष्ट्रपति बदलने के साथ ही उच्च पदों पर आसीन व्यक्तियों में प्रायः परिवर्तन हो जाता है।

11. **विभागीय प्रतियोगिताऐं-** अमेरिका प्रशासन मध्य-स्तरीय कर्मचारियों की नियुक्तियाँ विभागीय प्रतियोगिताओं के आधार पर करता है। इंग्लैंड के समान कोई राष्ट्रीय प्रतियोगिता नहीं होती। विभागाध्यक्ष आवश्यकताओं के आधार पर विषयों का निर्णय करते हैं। अर्थ विभाग के लिए अर्थशास्त्र सम्बन्धी, विदेश विभाग के लिए राजनीति विषयों में प्रतियोगिता होती है। अमेरिकी व्यवस्था में विभाग का प्रत्येक अधिकारी अपने विभागीय विषयों से पहले से ही परिचित रहता है। इसमें दोष यह है कि उनमें विस्तृत सामान्य ज्ञान और उदार दृष्टिकोण की कमी होती है तथा उच्च स्तर के राजनीतिक अधिकारियों के सामने वे हीन भावना से पीड़ित रहते हैं। अमेरिकी सिविल सर्विस को राजनीतिक प्रभुओं को प्रभावित करने का गौरव प्राप्त नहीं हो पाया। यही कारण है कि अमेरिका में योग्य प्रशासनिक अधिकारी औद्योगिक क्षेत्रों में जाना पसन्द करते हैं। वहाँ धन तथा सम्मान की दृष्टि से संयुक्त पूँजी की सेवाएँ सरकारी नौकरियों से अधिक आकर्षण रखती है।
12. **उच्च पदाधिकारी तथा अर्थव्यवस्था-** अमेरिकी प्रशासनिक व्यवस्था में उच्च पदाधिकारी-वर्ग शक्तिशाली और प्रभावपूर्ण अर्थव्यवस्था का प्रतिनिधित्व करता है। उच्च स्तर के पदाधिकारी पदोन्नति से नहीं आते, उनका आयात औद्योगिक और बैंकिंग क्षेत्र से किया जाता है। इनकी नियुक्ति दलीय आधार पर की जाती है। संयुक्त पूँजी के गुटों के प्रतिनिधित्व का ध्यान रखा जाता है। अमेरिका में अर्थव्यवस्था का राजनीति और प्रशासन के साथ पूर्ण गठबन्धन पाया जाता है। अमेरिकी प्रशासन ब्रिटिश प्रशासन की तरह निष्पक्ष नहीं है।
13. **प्रशासन पर दलों का प्रभाव-** अमेरिकी प्रशासन पर दलों का भारी प्रभाव है। अमेरिका में मुख्य कार्यपालक अधिकारी के बदलते ही पदाधिकारी अधिकारी भी बदल जाते हैं। 1883 से पूर्व सभी मध्य और निम्न स्तरीय पदाधिकारी बदल दिए जाते थे, पर अब ये अधिकारी प्रतियोगिता के आधार पर प्रशासनिक आयोग द्वारा चुने जाते हैं। उच्च प्रशासनिक पदों पर अब भी व्यापक दलीय प्रभाव है और राष्ट्रपति द्वारा राजनीतिक नियुक्तियों की कीमत चार्ल्स ब्रियर्ड के अनुसार ‘कई करोड़ डॉलर वार्षिक’ है। आयोगों, निगमों, एजेन्सियों आदि के प्रधान राजनीतिक आधार पर चुने जाते हैं, इनके अधिकांश सदस्यों की नियुक्ति दलबन्दी के आधार पर होती है। परामर्शदाता मण्डल में राष्ट्रपति के विश्वासपात्र दलीय नेताओं और व्यक्तिगत मित्रों को स्थान मिलता है। प्रशासनिक नीतियों के निर्धारण में स्थ्ज्ञायी(Defensible) प्रशासकों का व्यवहार में कोई महत्व नहीं है।

14. **शासन में सहयोग एवं समन्वय की कमी-** अमेरिका में कार्यपालिका, व्यवस्थापिका और न्यायपालिका के मध्य शक्ति-प्रथक्करण के सिद्धान्त को अपनाया गया है। सम्पूर्ण कार्यपालिका संबंधी शक्तियाँ राष्ट्रपति में निहित हैं और व्यवस्थापिका अर्थात् कांग्रेस द्वारा नीति का निर्माण किया जाता है। न्याय संबंधी शक्तियां सर्वोच्च न्यायालय कोदी गई है। राज्य स्तर और स्थानीय स्तर पर भी इस शक्ति के प्रथक्करण के सिद्धान्त को अपनाने से उस समय सहयोग और समन्वय की समस्या प्रमुखतः सम्मुख आती है जब राष्ट्रपति एक दल का होता है और व्यवस्थापिका में दूसरे दल का बहुमत होता है। भारत और इंग्लैण्ड में संसदीयव्यवस्था होने से व्यवस्थापिका के बहुमत दल के लोग ही कार्यपालिका में होते हैं, इसलिए सहयोग और समन्वय की समस्या वहाँ नहीं आती है। कार्यपालिका और व्यवस्थापिका में अमेरिका में एक ही दल का बहुमत होने पर भी शासन में अनेक अवसरों पर एकता नहीं रहती तथा प्रत्येक कार्य में विलम्ब होना स्वाभाविक है। ऐसा होने पर कार्यपालिका व्यवस्थापिका को और व्यवस्थापिका कार्यपालिका को नीचा दिखाने और असफल सिद्ध करने में जुट जाती है और प्रशासन ठप्प हो जाता है। ऐसे में शासन के दोनों अंगों में संघर्ष होना स्वाभाविक है। यह स्थिति केवल काल्पनिक नहीं है। अमरीका के इतिहास में ऐसे अवसर आए भी हैं, जब शासन के सम्मुख गतिरोध उत्पन्न हो गया था। इस प्रकार की समस्याओं का सामना अमेरिका में अनेक अवसरों पर करना पड़ा है। समस्या का कभी कम तो कभी गम्भीर रुप विगत वर्षो में सामने आया है।

अमेरिका में सन् 1943 में कांग्रेस द्वारा राष्ट्रपति रूजवेल्ट के नेतृत्व के विरूद्ध विद्रोह उपस्थित किया गया और राष्ट्रपति द्वारा अनुमोदित अनेक प्रस्ताव अस्वीकार कर दिये। अमेरिका में नवम्बर 1995 में अत्यन्त विकट स्थिति उत्पन्न हो गई जब एक सप्ताह तक सरकार नाम की कोई चीज ही नहीं थी। नवम्बर 12-13, 1995 की रात से अधिकांश केन्द्रीय कर्मचारी घर बैठ गये। इनकी संख्या लगभग आठ लाख थी। सरकार के पास पैसा नहीं था। वह कर्मचारी को वेतन देने में असमर्थ थी। राष्ट्रपति भवन के आधे से अधिक कर्मचारी काम पर नहीं आए। पासपोर्ट कार्यालय बंद रहा। विदेश स्थित अमरीकी दूतावास वीजा देने में असमर्थ थे। राष्ट्रपति क्लिंटन को अपनी जापान यात्रा रद्द करनी पड़ी। वह प्रशांत सागर तटीय देशों के आर्थिक शिखर सम्मेलन में भी भाग नहीं ले सके। आखिर सरकार के ठप्प पड़ जाने का क्या कारण था उत्तर है सरकार की कंगाली। अमरीका में वित्तीय वर्ष पहली अक्टूबर से प्रारम्भ होता है। स्पष्ट है कि संसद को इस तारीख से पहले बजट पास कर देना चाहिए, लेकिन संसद ने ऐसा नहीं किया। लिहाजा काम बंद। यह स्थिति अमरिकी संविधान की देन है। वहाँ राष्ट्रपति प्रशासन के लिए जिम्मेदार है। उनका चुनाव सीधे जनता करती है। तत्कालीन राष्ट्रपति क्लिंटन डेमोक्रेटिक पार्टी के थे। संसद में बहुमत विरोधी रिपब्लिकन पार्टी का था। बजट को मंजूरी देना संसद का कार्य है। रिपब्लिकन पार्टी 1994 में लगभग चार दशकों के बाद संसद में बहुमत में आई। इस दल का चुनावी वादा था कि वह सात वर्षोमें अर्थात् 2002 तक राष्ट्रीय बजट के घाटे को बराबर कर देगी। यह घाटा लगभग 200 अरब डॉलर प्रतिवर्ष था, जिसके चलते अमेरिका पर कर्ज का बोझ बढ़ रहा था। रिपब्लिकन पार्टी का कहना था कि वह चाहती है कि आने वाली पीढ़ी कर्ज में पैदा न हो। यदि यह कर्ज बेलगाम रहा तो अमरीका का भविष्य अरक्षित हो जाएगा।

डेमोक्रेटिक प्रशासन और रिपब्लिकन बहुमत वाली संसद में बजट को लेकर टकराव की स्थिति पैदा हो गई। मतभेदों के कारण संसद ने पहले 06 सप्ताह के लिए कामचलाऊ बजट पास किया, जो 12-13 नवम्बर, 1995 की रात को समाप्त हो गया। उसके बाद काम-काज बंद। संसद जिद पकड़े हुए थी कि सरकार वर्षों में अपने बजट का घाटा समाप्त करें। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसके सुझाव पर किये जाने वाले व्यय में कटौती की जाए। क्लिंटन प्रशासन बजट घाटे को तो सन्तप्त करने का पक्षधर था पर वह रिपब्लिकन पार्टी की तरह सामाजिक भलाई के कार्यक्रमों में कटौती के पक्ष में कतई नहीं था। इसीलिए

उसका कहना था कि बजट बराबर करने की समय अवधि 10 वर्ष रखी जाए, जिससे कमजोर वर्गों पर उसका प्रभाव न पड़े। प्रशासन को रिपब्लिक पार्टी का बड़े लोगों को करों में रियायत देने का प्रस्ताव भी नामंजूर था। राष्ट्रपति ने संसद द्वारा पारित बजट को वीटो कर दिया। वीटो समाप्त करने के लिए संसद में दो-तिहाई बहुमत चाहिए, वह रिपब्लिकन पार्टी के पास था नहीं। इस मतभेद के फलस्वरुप प्रशासन ठप्प पड़ गया। लेकिन क्लिंटन को इस स्थिति से लाभ हुआ। इस दौरान हुए जनमत संग्रह में उनकी लोकप्रियता बढ़ गई। रिपब्लिकन पार्टी का कार्यक्रम दूरगामी राष्ट्रीय हितों की तो जरूर सुरक्षा करता है, लेकिन उसका फौरी प्रभाव बुरा पड़ा। वृद्ध, विद्यार्थी तथा कम आय वाले लोग इस टकराव में राष्ट्रपति के साथ हो गए। राष्ट्रपति क्लिंटन के बारे में मशहूर है कि वे जल्दी राय बदलते हैं। लेकिन इस बार वे ऐंठ गए, स्पष्ट है इसका कारण जनसमर्थन था। अगले वर्ष उन्हें दुबारा राष्ट्रपति पद के लिए चुनाव लड़ना था। आगामी चुनाव उनका अन्तिम चुनाव होने वाला भी था। अमरीका संविधान के अनुसार कोई व्यक्ति दो बार से अधिक समय राष्ट्रपति नहीं रह सकता है। 1994 में रिपब्लिकन पार्टी जिस कार्यक्रम को लेकर जनता के सामने आई थी, उसका दूरगामी राष्ट्रीय हित को ध्यान में रखते हुए जनता ने दिल खोलकर स्वागत किया, लेकिन 1995 में जब उसका क्रियान्वयन हो रहा था तो जनता परेशान हो उठी। इस जनता की परेशानी का लाभ सीधे क्लिंटन को मिला। इस टकराव के चलते अमेरिका में खासा तनाव रहा। लेकिन 19 नवम्बर, 1995 की शाम समझौता हो गया और अगले दिन अर्थात् 20 नवम्बर को समस्त लोक सेवक काम पर लौट आए। उन्हें पिछले दिनों का वेतन भी मिल गया। सरकार और प्रशासन ठप्प रहने के दौरान जिन्हें वेतन नहीं मिला, उनमें स्वयं राष्ट्रपति क्लिंटन भी थे। वहाँ वेतन प्रति सप्ताह प्रदान किया जाता है। सांसदों को तनख्वाह बराबर मिलती रही। समझौते के अनुसार सरकार ने रिपब्लिकन पार्टी की सात वर्ष में बजट को पूरा करने की मांग मान ली। इसके साथ ही रिपब्लिकन पार्टी ने क्लिंटन प्रशासन की इस मांग को स्वीकार कर लिया कि सुरक्षा, शिक्षा, स्वास्थ्य और पर्यावरण की सुरक्षा में खर्चों को कम नहीं किया जाएगा।

15. **राज्य प्रशासन की अत्यधिक स्वायत्तता एवं स्वतंत्रता-** भारत और अमेरिका दोनों देशों में संघात्मक व्यवस्था है, लेकिन जितनी स्वायत्तता और स्वतन्त्रता अमेरिका में राज्यों को प्रदान की गई है, उतनी भारत में नहीं। जहाँ अमेरिका में अलग-अलग राज्यों में मिलकर संघ का निर्माण किया है। वहीं भारत में एक प्रकार से एकात्मक व्यवस्था से संघात्मक में परिवर्तित किया है। राज्यों की समुचित स्वायत्तता, संप्रभुता और स्वतन्त्रता की शर्त पर ही अमेरिका में संघ का निर्माण हो सका था। अमेरिका के संक्षिप्त संविधान में अनुच्छेद- 01 (8) में संघीय सरकार के कार्यों का वर्णन करते हुए शेष विषय राज्यों के माने गए हैं। संघीय संविधान में राज्यों की सरकारों के संगठन और कार्यप्रणाली के प्रावधान नहीं होने के कारण सभी राज्यों ने अपना-अपना पृथक संविधान निर्मित करके लागू किया है। राज्यों की कार्यपालिका, व्यवस्थापिका और न्यायपालिका के संगठन, कार्य और उनके आपसी संबंधों के विषय में प्रत्येक राज्य के संविधान में प्रावधान किये गए हैं। आपात स्थिति के अतिरिक्त संघ द्वारा राज्य प्रशासन में दखल नहीं किया जाता है। इसमें दो राय नहीं कि कतिपय कारणों से केन्द्र की स्थिति दिन प्रतिदिन सुदृढ़ होती जा रही है।

भारत में राज्यों में भी संसदात्मक व्यवस्था है और राज्यपालों की नियुक्ति और पदमुक्ति का अधिकार राष्ट्रपति में निहित है। अमेरिका में राज्यपाल, राज्य सचिव, महान्यायवादी, शिक्षा अधीक्षक राज्य कोषाधिकारी और राज्य अंकेक्षक सभी का निर्वाचन सम्बन्धित राज्य की जनता करती है और राज्य स्तर की कार्यपालिका संबंधी शक्तियां इन्हीं पदाधिकारियों को सौंपी गईहैं। नेब्रास्का को छोड़ सभी राज्यों में द्विसदनीय विधायिका है। वहाँ नागरिकों को दोहरी नागरिकता उपलब्ध है। एक तो संयुक्त राज्य अमरीका

की और दूसरे राज्य की। अमरीका में दोहरी न्यायपालिका है। संघीय स्तर पर सर्वोच्च न्यायालय है जो कि संविधान की व्याख्या करने, संघ व राज्यों के मध्य विवाद सुलझाने तथा राज्य एवं नागरिकों के मध्य विवादों की सुनवाई करता है। राज्यों की न्यायपालिका और राज्यों के कानून पृथक-पृथक हैं। ग्रामीण और नगरीय प्रशासन के लिए राज्यों ने अलग-अलग अधिनियम बनाकर काउंटी, सिटी, टाउन तथा गांव का गठन किया है।

16. **अमेरिका में न्यायिक पुनर्रावलोकन-** संविधान की व्याख्या करना और नागरिकों के अधिकारों की रक्षा करना संघीय व्यवस्था में न्यायालय के प्रमुख दायित्व हैं। व्यवस्थापिका द्वारा पारित कोई कानून और कार्यपालिका द्वारा प्रसारित कोई भी आदेश गैर-संवैधानिक होने की स्थिति में न्यायालय को उन्हें असंवैधानिक घोषित कर उनके क्रियान्वित होने पर रोक लगाने को न्यायिक पुनरावलोकन कहा जाता है। अमरिका में न्यायालय को पुनर्रावलोकन का अधिकार प्राप्त है। वहाँ यदि कार्यपालिका का कोई आदेश या नियम उसके संवैधानिक अधिकारों का उल्लंघन करता है तो उसे भी न्यायपालिका असंवैधानिक घोषित कर सकती है। न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति ने ही अमरीका की न्यायपालिका को संसार की सर्वाधिक शक्तिशाली न्यायपालिका बना दिया है। इस शक्ति के आधार पर न्यायालयों के अधिकार क्षेत्र में कार्यपालिका द्वारा किये वे कार्य भी आ जाते हैं, जो उसने ऐसे कानूनों के आधार पर किये गये हैं जो न्यायालय की दृष्टि में असंवैधानिक हैं। कार्विन के अनुसार, न्यायिक पुनरावलोकन न्यायालयों की वह शक्ति है जो उन्हें अपने सामान्य क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत आने वाले विधायी कार्यों की संवैधानिकता पर निर्णय देने की शक्ति प्रदान करती है और यदि वे उन्हें असंवैधानिक पाती है तो उन्हें लागू करने से इनकार कर सकती है।

किसी न्यायालय की शक्ति, स्थिति और महत्व इस बात पर निर्भर करती है कि उसे न्यायिक पुरावलोकन की शक्ति प्राप्त है या नहीं और यदि है तो उसकी सीमा क्या है। न्यायालय इस शक्ति के आधार पर संविधान की सर्वोच्चता की रक्षा कर सकती है, व्यवस्थापिका और कार्यपालिका पर नियन्त्रण रख सकती है और कार्यपालिका की निरंकुशता और विधायी अत्याचार से नागरिक अधिकारों और स्वतंत्रताओं की रक्षा कर सकती है।

17. **न्यायिक पुनर्रावलोकन का संवैधानिक आधार-** अमरीका में न्यायिक पुनर्रावलोकन की संवैधानिक्ता के सम्बन्ध में दो विचारधाराऐं हैं। एक विचारधारा, जिसके प्रबल समर्थक भूतपूर्व राष्ट्रपति जैक्सन हैं, के अनुसार न्यायालयों की न्यायिक पुनर्रावलोकन की शक्ति के मध्य पृथक्करण के सिद्धान्त की व्यवस्था करता है। दूसरी विचारधारा न्यायिक पुनर्रावलोकन का प्रचलन संविधान निर्माताओं की इच्छाओं का, जैक्सन के अनुसार, निरादर है। कार्विन, बीयर्ड, मिल्टन चार्ल्स आदि संविधान निर्माताओं और विचारकों का वर्ग इस मत का है कि प्रचलित न्यायिक पुनर्रावलोकन की शक्ति अमेरिका की संवैधानिक धाराओं में अन्तर्निहित है। इस संबंध में डायसी का कहना है कि ''वस्तुतः अमरीका में प्रत्येक न्यायाधीश का यह अधिकार ही नहीं बल्कि कर्तव्य भी है कि उस विधि या नियम को अवैध समझे जो संविधान की धाराओं के विपरीत है।''

अमेरिका में सन् 1801 न्यायिक पुनरावलोकन की दृष्टि से महत्वपूर्ण वर्ष था। उस वर्ष में मारबरी बनाम मेडीसन के मुकदमें का फैसला सुनाते हुए न्यायमूर्ति मार्शल द्वारा न्यायिक पुनरावलोकन के सिद्धान्त का स्पष्ट रूप से प्रतिपादन किया गया। उसके पश्चात अनेक मुकदमों में न्यायपालिका ने पुनरावलोकन के सिद्धान्त को मद्देनजर रखते हुए अनेक फैसले दिए हैं।

न्यायिक पुनर्रावलोकन के सन्दर्भ में पाठकों को दो बातों से अवगत कराना समीचीन होगा, यथा 1. सर्वोच्च न्यायालय अपनी ही पहल पर कभी कानून की वैधनिकता और अवैधानिकता पर विचार नहीं

कर सकता। यह कार्य सर्वोच्च न्यायालय तभी कर सकेगा, जब व्यक्ति या व्यक्ति समूह किसी मुकदमें की सहायता से उस कानून की संवैधानिकता को चुनौती दे। 2. इस अधिकार का प्रयोग केवल सर्वोच्च न्यायालय ही नहीं वरन निम्न संघीय न्यायालय और राज्यों के उच्च न्यायालय भी करते हैं। यह अवश्य है कि उनके फैसलों के विरूद्ध सर्वोच्च न्यायालय में अपील की जा सकती है। इस विषय में अन्तिम निर्णय सर्वोच्च न्यायालय का माना जाता है।

19.6 फ्रांस की प्रशासनिक विशेषताऐं

आइये फ्रांस की प्रशासनिक व्यवस्थाओं का अध्ययन निम्न बिन्दुओं के आधार पर करते हैं-

1. **राज्य की सर्वोच्चता-** फ्रांस में रोम साम्राज्य की प्रेरणा से विभिन्न संस्थाओं का नियामकीय सिद्धान्त कानून की सर्वोच्चता है। यहाँ का प्रशासन राज्य की सत्ता पर निर्भर है। राज्य सत्ता द्वारा प्रशासन और व्यक्ति के सम्बन्धों तथा प्रशासन की आन्तरिक संरचना को निर्धारित किया जाता है। इस व्यवस्था में राज्य और प्रशासन एक स्तर पर नहीं रहते। प्रशासन राज सत्ता के अधीन रहता है। राज्य तथा राज्य कर्मचारियों के बीच कोई समझौता नहीं होता। सेवीवर्ग प्रशासन से सम्बन्धित विभिन्न निर्णय राज्य द्वारा एकपक्षीय लिए जाते हैं।
2. **अत्यन्त केन्द्रीकृत प्रशासन-** फ्रांस का लोक प्रशासन अत्यन्त केन्द्रीयकृत, सत्तावादी एवं रूढ़िवादी है तथा अपनी प्राचीन परम्पराओं से प्रभावित है। यहाँ प्राचीन शासन व्यवस्था केन्द्रीयकृत थी। नेपोलियन के समय सारी सत्ता पेरिस में सिमट आई थी। विभिन्न क्रान्तिकारी एवं प्रतिक्रियावादी व्यवस्थाओं ने केन्द्रीकरण की स्थापना की। फ्रांस के लोग अभी भी नेपोलियनवाद की ओर झुके हुए थे। यहाँ की सरकारें संघात्मक व्यवस्था से भयभीत रही और इसलिए यहाँ स्थानीय सरकार का विकास नहीं हुआ। इस केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति ने यहाँ नागरिक सेवा को प्रभावित किया है। 19वीं शताब्दी में ऐसे सामान्य नियमों की रचना की गई जो सम्पूर्ण नागरिक सेवा पर लागू होते थे। नागररिक सेवा में केन्द्रीकरण की प्रकृति के कारण फ्रांस के उपनिवेशीय लोकसेवक भिन्न परिस्थितियाँ में भी उन्हीं सामान्य नियमों के अधीन कार्य करते हैं जो राजधानी में रहने वाले नागरिकों पर लागू होते हैं।
3. **स्थायित्व-** फ्रांसीसी प्रशासन अपने सेवीवर्ग स्थायित्व के लिए हमेशा प्रसिद्ध रहा है। यहाँ लूट-प्रणाली का प्रचलन कभी नहीं रहा। राजतन्त्र में अधिकारीगण स्थायी होते थे। फ्रांस का कोई लोकसेवक दल सरकार से बँधा नहीं होता, वह राज्य का सेवक होता है और स्थायी रहता है। यहाँ दोहरी न्याय व्यवस्था नागरिक सेवा के स्थायित्व में सहयोगी बनती है। सेवीवर्ग स्थायित्व को जनमत का समर्थन प्राप्त होता है। व्यावहारिक नागरिक सेवा का शुद्धिकरण कम हुआ है। जब कभी किया गया है तो इसकी प्रतिक्रियास्वरूप लोक सेवा में अधिक स्थायित्व की व्यवस्था हुई है। एक आश्चर्यजनक तथ्य यह है कि 1847 से 1852 तक 05 वर्षों में फ्रांस में चार सरकारें बदल गई (ये थी- July Monarchy The Democratic Republic, The Conservative Republic, The Second Empire) किन्तु उच्चतर और मध्यस्तरीय सेवीवर्ग में केवल वे लोग हटे, जिनकी मृत्यु या त्यागपत्र प्राप्त हो गया था। यह 1869-74 के समय भी हुआ। तात्पर्य यह है कि सरकारों के परिवर्तन का नौकरशाही पर कोई प्रभाव नही पड़ता है। फ्रांस की लोक सेवा का यह स्थायित्व धीरे-धीरे संस्थागत बन गया है। यहाँ राज्य को स्थायी बनाने के लिए जो प्रयास किए गए हैं, वे सब नागरिक सेवा में स्थायित्व लाने में सहयोगी बने। फलस्वरूप लोकसेवाओं में एकीकरण की स्थापना हुई है जो राज्य की सत्ता का प्रभाव कम हुआ है। गारण्टी व्यवस्था ने फ्रांस के नागरिक सेवक को राज्य की स्वेच्छाचारी शक्तियों के विरूद्ध सर्वाधिक सुरक्षित नागरिक बना दिया है।

4. **गारण्टीज का विकास-** फ्रांस की नागरिक सेवा में हुए परिवर्तनों ने कर्मचारियों के अधिकार बढ़ा दिए हैं, किन्तु इसके फलस्वरूप आधारभूत सिद्धान्तों में परिवर्तन नहीं हुआ। नागरिक सेवकों की सुरक्षा के अनेक नियम बनाए गए हैं। इन नियमों ने राजशक्ति की समा बाँधी है। अभी भी राज्य अनेक शक्तियों का प्रयोग करता है किन्तु वह किसी भी परिस्थिति में कर्मचारियों को दमन नहीं कर सकता। प्रभावित लोकसेवक को राज्य द्वारा की गई कार्यवाही के विरूद्ध अपील करने का अधिकार है। राज्य कभी एकपक्षीय कार्यवाही नहीं करता कार्यवाही से पूर्व वह व्यावसायिक संघों से संयुक्त विचार-विमर्श करता है। नागरिक सेवाओं के हितों की रक्षा हेतु अनेक व्यवस्थाएँ विकास का परिणाम हैं। इस कार्य में व्यावसायिक संघों(Trade Unions) ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

   फ्रांस में व्यावसायिक संघवाद का विचार अनेक उतार-चढ़ावों से पनपा है। फ्रांस के शासकों तथा न्यायाधीशों ने नागरिक सेवकों की संस्थाओं को सन्देह की नजर से देखा। 1990 में व्यवस्थापन द्वारा प्रत्येक नागरिक को संघ(Association) बनाने का अधिकार दिया गया, किन्तु नागरिक सेवक व्यावसायिक संघ नहीं बना सकते थे। सरकार को यह भय था कि यदि कर्मचारियों को संघ बनाने का अधिकार दे दिया गया तो वे मजदूरों के साथ मिलकर सामान्य हड़ताल(General Strike) करा देंगे। जब सरकार को यह विश्वास हो गया कि व्यावसायिक संघ राजनीतिक क्रान्ति का साधन नहीं बनेंगे और केवल व्यावसायिक हितों की ही रक्षा करेंगे तो उनका दृष्टिकोण बदल गया। प्रथम विश्व युद्ध के बाद कर्मचारियों के अनेक संघ बने। यद्यपि इन्हें सरकारी मान्यता प्राप्त नहीं थी, किन्तु सरकार द्वारा इनका विरोध नहीं किया गया। 1946 के व्यवस्थापन द्वारा नागरिक सेवकों के संघ बनाने के अधिकार को मान्यता प्राप्त हुई। वास्तविक व्यवहार में इन व्यावसायिक संघों ने किसी राजनीतिक क्रान्ति में भाग लेने की अपेक्षा कर्मचारियों के हितों की रक्षा के कार्य में रूचि ली।

5. **व्यापक कार्यक्षेत्र-** फ्रांस में हस्तक्षेप की नीति प्रारम्भ से नागरिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में रही है। राज्य का कार्यक्षेत्र अत्यन्त व्यापक है और इसलिए प्रशासन के दायित्व भी अनेक हैं। यहाँ राज्य, कृषि तथा औद्योगिक प्रशुल्क में हस्तक्षेप करता है। डाक, तार तथा टेलीफोन पर राज्य का स्वामित्व है तथा सरकार इसका नियमन करती है। रेडियो अंशतः राज्य के स्वामित्व में है। राज्य द्वारा देश में सड़क, पुल, बन्दरगाह, रेलमार्ग, नागरिक उड्डयन आदि का जाल सा बिछा दिया गया है। कृषि विकास के लिए राज्य ने अनेक कदम उठाए हैं। तम्बाकू व्यापार पर उसका एकाधिकार है। प्रथम विश्व युद्ध के बाद सरकार औद्योगिक क्षेत्र में पुनर्रचना और निवेश कर रही है। राज्य गृह निर्माण की समस्या के समाधान में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। उत्पादन और राष्ट्रीय आय में वृद्धि के प्रयत्नों के साथ-साथ राज्य सामाजिक सेवाओं तथा सामाजिक सुरक्षा की दृष्टि से अनेक कार्य सम्पन्न करता है। वह पारिवारिक भत्ता, वृद्धावस्था, बीमारी, अक्षमता तथा बेरोजगारी में सहायता का प्रबन्ध करता है। वित्त मंत्रालय, श्रम मंत्रालय तथा सामाजिक सुरक्षा मन्त्रालय मापदण्ड निर्धारित करता है और कार्यान्वित करता है। इन्हेंऐसी संस्थाओं द्वारा प्रशासित किया जाता है जिसमें कर्मचारी, नियुक्तिकर्ता तथा स्थानीय संस्थाएँ रहती है। इन क्रियाओं से सरकारी बजट बढ़ जाता है और नागरिक सेवा का विस्तार हो जाता है। राज्य के व्यापक कार्यक्षेत्र ने नौकरशाही की भूमिका को बहु-आयामी बना दिया है। उसका राष्ट्रीय जीवन में भारी वर्चस्व है।

6. **मिशनरी भावना-** प्रारम्भ में फ्रांसीसी प्रशासन मिशनरी भावना से कार्य करता रहा है। गणतन्त्रात्मक व्यवस्था में फ्रांस के राजाओं ने अपने अधीनस्थ अधिकारियों में आर्थिक विकास की प्रेरणा जाग्रत की। नेपोलियन प्रथम के समय में भी प्रशासन राज्य के हस्तक्षेप के प्रति सजग रहा। 19वीं सदी और उसके बाद पूँजीवादी युग में राज्य के हस्तक्षेप की नीतियाँ कायम रही। चतुर्थ गणतन्त्र के समय प्रशासन ने कृषि

और उद्योगों के आधुनिकीकरण की अनेक योजनाएँ प्रारम्भ की। आज भी फ्रांस का सेवीवर्ग प्रशासन मिशनरी भावना से चल रहा है।

7. **देश के सभी वर्गों का प्रतिनिधित्व-** फ्रांसीसी प्रशासन में देश के सभी वर्गों के लोगों का प्रवेश है। बड़ा आकार होने के कारण यह विभिन्न वर्गों को इसमें प्रतिनिधित्व करने का निमन्त्रण देती है। ब्रिटेन में जितने लोकसेवक हैं, उनसे दुगुने फ्रांस में है। ब्रिटेन में जिन पदों पर स्थानीय सरकार के अधिकारी कार्य करते हैं उन पदों पर फ्रांस में लोकसेवक रखे जाते है।
8. **अच्छे प्रत्याशियों का चयन-** फ्रांस में प्रशासन की ओर अच्छे और योग्य व्यक्ति आकर्षित होते हैं। यहाँ स्पर्धा बड़ी कठोर होती है। सेवाओं में प्रवेश परीक्षाएँ योग्यता की मापक समझी जाती है। लोक सेवाओं में वेतन एवं भौतिक उपलब्धियाँ कम होती हैं। इनकी प्रतिष्ठा और सम्मान अधिक होता है, अतः लोग अल्पकाल के लिए भी इनमें आना पसन्द करते हैं। यदि एक बार सरकारी सेवा में किसी ने प्रवेश पा लिया तो फिर वह कहीं भी अपने भाग्य की परीक्षा कर सकता है। उसे एक सफलता प्रमाण-पत्र मिल जाता है। फ्रांस में लोकसेवकों का जितना सम्मान और प्रतिष्ठा है, विश्व के किसी प्रजातांत्रिक देश में नही हैं।
9. **विभिन्नताएँ-** फ्रांस की प्रशासनिक सेवा की एक अन्य विशेषता भिन्नरूपतः(Diversity) है। नागरिक सेवा के अलग-अलग कोर्प्स(Corps) बने हुए हैं। इन स्कूलों में विभिन्न नागरिक सेवाओं का प्रशिक्षण दिया जाता है। स्कूलों तथा कोर्प्स से विभिन्नताएँ जन्म लेती हैं। नेपोलियन एक ऐसी नागरिक सेवा स्थापित करना चाहता था जिसका अपना जीवन है। वह ऐसा करने में सफल भी हुआ। नागरिक सेवा कोर्प्स को स्वतन्त्रता प्रदान की गई। इससे सरकारी विभागों में संघात्मक संरचना का मार्ग प्रशस्त हुआ।
10. **नागरिक सेवकों के दो रूप-** फ्रांस में सरकारी कम्रचारियों को फंक्शनरी कहते हैं। इनके दो बड़े समूह हैं- वे सेवक जो प्रशासनिक कार्यालयों में कार्य करते हैं और वे कर्मचारी जो राष्ट्रीयकृत उद्योगों में सेवारत हैं। फ्रांसीसी प्रशासन मे सेवीवर्ग नागरिक सेवकों की संख्या अधिक है। अन्य देशों की तरह सेवकों की संख्या में निरन्तर वृद्धि होती गई है, विशेषकर उद्योगों में सेवारत कर्मचारियों की।
11. **प्रशासनिक सत्ता एवं स्वविवेक-** फ्रांस में राज्य कार्यों का क्षेत्र व्यापक है, अतः प्रशासनिक स्वविवेक भी व्यापक तथा गहरा है। मन्त्रीगण अपने कार्यो के लिए नियम बनाते हैं तथा आदेश जारी कराते हैं। इन नियमों का प्रभाव कानून की भाँति होता है। कोई भी कानून उस समय तक कार्यान्वित नहीं किया जा सकता जब तक उसे तकनीकी विस्तार के साथ समझाया न जाए। यह कार्य व्यवस्थापिका नहीं कर पाती। कार्यपालिका द्वारा इसके लिए सरक्यूलर जारी किए जाते हैं जो स्पष्टीकरण की प्रकृति के तथा कानून जैसी शक्ति रखते हैं। यदि कार्यान्विति के पहलू पर कानून मौन रह जाए तो कार्यपालिका सरक्यूलर द्वारा रिक्त स्थान की पूर्ति करते हैं। इन्हें लोक प्रशासन की भाषा में डिक्री(Decree) कहा जाता है।

   कार्यपालिका की डिक्री जारी करने की शक्ति पर संविधान द्वारा कुछ सीमाएँ लगाई गई हैं। कोई मन्त्री ऐसी डिक्री जारी नहीं कर सकता जो कानून का उल्लंघन करती हो। कानून द्वारा ऐसी डिक्री पर प्रतिबन्ध लगा दिया जाता है। नागरिकों को इनके विरूद्ध प्रशासकीय न्यायालय मे अपील करने का अधिकार है। डिक्री पर यह वैज्ञानिक नियन्त्रण नागरिकों में मुख्य रक्षा कवच का काम करता है। इसके अतिरिक्त संसदीय आयोग भी कड़ी निगरानी रखते है।
12. **प्रशासनिक संरचना-** फ्रांसीसी प्रशासन की संरचना के मुख्य अंग है मन्त्रालय, प्रीफेक्ट तथा सरकारी उद्यम।

   क. मन्त्रालय- मंत्रालय केन्द्र सरकार की प्रमुख इकाइयाँ है। ये सरकार के परम्परागत राज्य के सामाजिक कार्य सम्पादित करते हैं तथा अर्थव्यवस्था के सार्वजनिक क्षेत्र का नियन्त्रण करते हैं। फ्रांसीसी प्रशासन को केन्द्रीयकृत माना जाता है, किन्तु यह आश्चर्यजनक तथ्य है कि पेरिस स्थित मन्त्रालयों

में कुल 4 प्रतिशत नौकरशाही रहती है तथा शेष नौकरशाही क्षेत्रीय कार्यालयों में है। मन्त्रालय की रचना के तीन मुख्य अंग हैं-

- मन्त्रालय के प्रत्येक मन्त्री की एक कैबिनेट होती है। सहायक के रूप में सदस्य, मन्त्री द्वारा नियुक्त होते हैं तथा उसी के प्रति उत्तरदायी होते हैं। ये मन्त्री के राजनीतिक मित्र अथवा परिवार-जन होते हैं तथा अभिकरण के मन्त्री के आँख और कान का काम करते है। कैबिनेट के कार्य दो प्रकार के हैं- राजनीतिक मामलों में सहायता, व्यवस्थापिका, जनता और दबाव समूहों के सामने मन्त्री के हितों की रक्षा करते हैं। तथा प्रशासनिक कार्य, कैबिनेट के सदस्य सम्पूर्ण मन्त्रालयों के कार्यों में समन्वय स्थापित करने की चेष्टा करते है।
- मन्त्रालय की मूल इकाई निदेशन(Direction) है। इसकी अध्यक्षता वरिष्ठ नागरिक सेवक द्वारा की जाती है जो निदेशक(Director) कहलाता है। इसका मन्त्री से सीधा सम्पर्क होता है। इसे मन्त्रालय की डिक्रीज पर हस्ताक्षर करने का अधिकार रहता है। इस पद पर बाहरी व्यक्ति भी नियुक्त किए जा सकते हैं, किन्तु व्यवहार में ऐसा कम होता है। सुरक्षा मन्त्रालय तथा विदेश मन्त्रालय के अतिरिक्त कोई स्थायी अधिकारी नहीं होता है। प्रत्येक निदेशन अपनी क्षेत्रीय सेवा का नियन्त्रण करती है। अपने कार्यों में ये बाहरी हस्तक्षेप से मुक्त रहते हैं।
- प्रत्येक मन्त्रालय में परामर्श एवं नियन्त्रण के लिए कुछ अंग होते हैं। परामर्श देने का कार्य विभिन्न परिषदों द्वारा किया जाता है। निदेशक बिना परिषद से परामर्श लिए कार्य भी नहीं कर पाता। फ्रांसीसी प्रशासन व्यवस्था में सशक्त राजनीतिक निदेशन नहीं है तथा प्रशासकीय प्रबन्ध के साधन नहीं अपनाए गए हैं, अतः यहाँ आन्तरिक संगठन के अंगों का विकास कर लिया गया है। परामर्शदाता परिषदें(Consultative Councils) व्यवस्थापन का नियोजन तथा प्रशासकीय नीति निर्धारित करने में विभाग की सहायता करती हैं। इन परिषदों की संख्या विभाग के कार्यक्षेत्र एवं प्रकृति पर निर्भर करती है। परिषद् में दो प्रकार के सदस्य होते हैं। पहला- विषेषज्ञ सदस्य जो सेवा निवृत्ति अथवा सेवारत अधिकारी या वैज्ञानिक संस्थाओं के सदस्य हो सकते हैं। दूसरा- सम्बन्धित हितों के प्रतिनिधि तथा राष्ट्रीय सभा के कुछ सदस्य। जो परिषदें आर्थिक तथा सामाजिक मन्त्रालयों से सम्बन्धित है उनमें व्यापार संघ, किसान संस्था एवं चैमबर ऑफ कॉमर्स के प्रतिनिधि रहते हैं। इनमें परामर्श लिया जाता है।

वित्तीय पर्यवेक्षण रखने वाली संस्थाएँ भी होती हैं। नियन्त्रण का कार्य वित्तीय लेखा न्यायालय(Court of Accounts) द्वारा सम्पन्न किया जाता है। यह एक स्वतन्त्र निकाय होता है। इसके सदस्य न्यायाधीशों की भाँति जीवनपर्यन्त नियुक्त किए जाते हैं। यह सभी सरकारी विभागों तथा सामाजिक सुरक्षा सेवाओं का ऑडिट करता है तथा अपना वार्षिक प्रतिवेदन प्रकाशित करता है।

ख. प्रीफेक्ट- फ्रांस एकात्मक राज्य है। यहाँ सरकार के विभिन्न स्तरों में शक्तियों का बँटवारा नहीं है, वरन् कार्यों का विकेन्द्रीकरण किया जाता है। नेपोलियन प्रथम ने सभी विभागों (जो 90 थे) में एक-एक प्रीफेक्ट की नियुक्ति की जो केन्द्र सरकार के प्रतिनिधि के रूप में स्थानीय स्तर पर कार्य कर सके। प्रीफेक्ट में मन्त्रियों के प्रतिनिधि होते हैं, किन्तु इन्टीरियर के मन्त्री द्वारा इस पर नियन्त्रण रखा जाता है। इसके मुख्य कार्य ये हैं- केन्द्रीय मन्त्रालयों के क्षेत्रीय अभिकरणों का पर्यवेक्षण और समन्वय, इन्टीरियर मन्त्रालय के कार्य सम्पन्न करना, भाग के मुख्य प्रशासकीय अधिकारी के रूप में कार्य करना तथा स्थानीय सरकारों के कार्यों पर पर्यवेक्षण रखना।

ग. **सरकारी उद्यम-** फ्रांस में सरकारी उद्यमों का क्षेत्र अत्यन्त संकुचित था, किन्तु विश्व युद्ध के बाद यहाँ अनेक महत्वपूर्ण उद्योगों का राष्ट्रीयकरण किया गया था। इनके प्रबन्ध हेतु सरकारी निगम व्यवस्थाएँ की गई। राष्ट्रीयकरण किसी एक दल द्वारा किया गया था वरन् संविद मत्री-मण्डलों द्वारा किया गया था। अतः राष्ट्रीयकृत उद्यम के संगठन पर विभिन्न राजनीतिक और आर्थिक दर्शनों का प्रभाव पड़ा। कई उद्यमों के संगठन पर विभिन्न राजनीतिक और आर्थिक दर्शनों का प्रभाव पड़ा। कोई उद्यम सिन्डीकलवादियों से प्रभावित रहा तो अन्य पर स्वायततावादियों का प्रभाव पड़ा।

13. **लोक सेवाओं की स्थिति-** फ्रांस में अस्थिर सरकारें रहने के कारण लोक सेवाओं का प्रभाव एवं महत्व बढ़ता गया। राजनीतिक उलट-फेर पर भी प्रशासनिक स्थिरता बनी रही है। सरकारी अधिकारियों ने स्वयं को राज्य के साथ एकाकार कर लिया तथा वे अपने आपको सम्प्रभु मानने लगे तथा जनता ने उनकी यह स्थिति स्वीकार की। वे लोकसेवा(Public Servant) में न रहकर लोक अधिकारी(Public Officer) बन गए। आज भी उनका विशेष सम्मान है। लोकसेवकों की भर्ती, प्रशिक्षण, सेवा शर्तें निम्न प्रकार हैं-

- **लोकसेवकों की भर्ती-** फ्रांस में लोक सेवा एक आजीवन व्यवसाय है। नियुक्ति के बाद, पुनर्नियुक्ति हेतु लोक सेवक इधर-उधर नहीं जाते। यहाँ भर्ती व्यवस्था को शिक्षा से जोड़ दिया गया है। उच्च पदों पर वे ही प्रत्याशी आ सकते हैं, जिन्होंने उच्च शिक्षा प्राप्त की है, किन्तु उच्च शिक्षा जनसंख्या के एक छोटे से भाग तक सीमित है। उच्च प्रशासनिक पदों पर एक वर्ग विशेष के लोग ही आ पाते हैं।
- **लोक सेवकों का प्रशिक्षण-** भर्ती के बाद कर्मचारियों को व्यापक प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है। यह कार्य 1945 में स्थापित 'प्रशासन के राष्ट्रीय विद्यालय'(National Schools of Administration) द्वारा सम्पन्न किया जाता है। नवागन्तुक लोक सेवकों के लिए 3 साल का पाठ्क्रम है। उच्च प्रशासकीय सेवा के लिए व्यवहारिक प्रशिक्षण दिया जाता है। शैक्षणिक विशेषीकरण के लिए चार क्षेत्र हैं- सामान्य प्रशासन, आर्थिक और वित्तीय प्रशासन, सामाजिक प्रशासन तथा विदेशी मामले। औद्योगिक प्रबन्ध में ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रशिक्षणार्थी को निजी उद्योग में भी रखा जाता है।
- **सेवा की शर्तें-** लोक सेवकों को सुरक्षा एवं स्तर की पूरी गारन्टी है। इनका कार्यकाल आजीवन होता है। अनुशासनात्मक कार्यवाही के अधीन पहले पदमुक्त किया जा सकता है, किन्तु यह कार्यवाही एक लम्बी प्रक्रिया द्वारा सम्पन्न होती है। अनुशासनात्मक कार्यवाही ट्रिब्यूनल में लोक सेवकों के भी प्रतिनिधि लिए जाते हैं। पदोन्नति आदि इन्हीं लोक सेवकों द्वारा नियन्त्रित की जाती है। लोक सेवकों को पर्याप्त वेतन दिया जाता है। इसके अतिरिक्त परिवार भत्ता, सामाजिक सुरक्षा एवं सेवानिवृत्ति पर पेन्शन की व्यवस्था भी की जाती है।
- **राजनीतिक कार्य-** फ्रांस में लोक सेवक सरकार के कार्यों में सक्रिया भाग लेते हैं। लोक सेवकों को राजनीतिक कार्यों में भाग लेने पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है। एक लोकप्रिय लोक सेवक मन्त्री भी बन सकता है। व्यक्तिगत रूचि के कारण लोक सेवक सक्रिय राजनीति में कूद पड़ते हैं और पुनः लोक सेवा में अपने पूर्व पद पर आ सकते हैं। राजनीतिक अस्थिरता और मन्त्री-मण्डलों के शीघ्र पतन के कारण लोक प्रशासकों को राजनीति में आने का पूरा अवसर मिलता है।

14. **नियन्त्रण की व्यवस्था-** फ्रांसीसी प्रशासन पर दो प्रकार के नियन्त्रण हैं- बाह्य नियन्त्रण और आन्तरिक नियन्त्रण। बाह्य नियन्त्रण, व्यवस्थापिका और कार्यपालिका द्वारा तथा आन्तरिक नियन्त्रण निर्धारित इकाइयों द्वारा रखा जाता है। फ्रांसीसी क्रान्ति के बाद यहाँ राजनीतिक अस्थिरता का वातावरण रहा है।

फलस्वरूप प्रशासन की आन्तरिक नियन्त्रण व्यवस्था सशक्त बनी है तथा राजनीतिक निर्देशन का क्षेत्र सीमित हुआ है।

प्रशासन के बाहरी नियन्त्रण का मुख्य अभिकरण व्यवस्थापिका है। यह विधायी नियन्त्रण सदैव कमजोर रहा है। व्यवस्थापिका ने अपनी अनेक शक्तियाँ कार्यपालिका को हस्तांतरित कर दी और प्रशासन पर नियन्त्रण कमजोर पड़ गया। नियन्त्रणकारी शक्तियाँ व्यवस्थापिका के पास हैं, उनका प्रयोग विधायी समितियों द्वारा किया जाता है। इन समितियों के सभापति भूतपूर्व मन्त्री होते हैं और ये नियन्त्रित विषय भली प्रकार जानते हैं। इसमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण वित्तीय समिति है। यह अनेक उप-समितियों में विभाजित है। प्रत्येक उप-समिति में एक सभापति और रिपोर्टर होता है। प्रत्येक उप-समिति एक मन्त्रालय के बजट पर नियन्त्रण रखने के लिए उत्तरदायी है। प्रशासन पर दूसरा बाहरी नियन्त्रण कार्यपालिका का होता है। फ्रांस में प्रशासन पर इसका नियन्त्रण प्रभावशाली नहीं रहता। अस्थिर मन्त्री-मण्डल एवं सरकार की संविद प्रकृति से यहाँ अन्तः मन्त्री- मण्डलीय समन्वय नहीं रह पाता।

प्रशासन पर आन्तरिक नियन्त्रण सशक्त और प्रभावशाली होता है। इसके मुख्य अभिकरण हैं- 'कौंसिल डी इटाट'(Conseil 'd' etat)का नियन्त्रण, बजट तथा वित्तीय नियन्त्रण, सेवीवर्ग सम्बन्धी नियन्त्रण, सरकार की विकेन्द्रीकृत सेवाओं पर नियन्त्रण(Tutelle Administration) आदि। यह जनमत एवं राजनीतिक नियन्त्रण से स्वतन्त्र है।

प्रो0 अल्फ्रेड डाइमन्ट(Prof. Alfred Diamant) ने फ्रांसीसी प्रशासन की नियन्त्रण व्यवस्था की निम्न विशेषताओं का उल्लेख किया है- क. लोक सेवा कार्य सम्पन्नता को नियन्त्रित करने तथा मापने में संकीर्ण वित्तीय और कानूनी मापदण्डों पर जोर दिया जाता है। ख. इन मापदण्डों पर लाइन अभिकरण की अपेक्षा स्टाफ अभिकरण का महत्व बढ़ जाता है। स्टाफ में शक्ति तथा प्रभाव अधिक होने के कारण इसमें श्रेष्ठ लोग ही प्रवेश कर पाते हैं। ग. उच्चतर सेवाओं के विशिष्ट वर्ग लाइन अभिकरण के उच्च पदों पर भी एकाधिकार रखते हैं। घ. कौंसिल डी0 इटाट(Conseil 'd' etat) वित्तीय निरीक्षक तथा ऐसे ही नियन्त्रणकारी अंगों ने प्रशासकीय स्व-विवके एवं पहल की शक्ति को घटा दिया है।

15. **लोकसेवा के वर्ग-** फ्रांस की लोकसेवा को पाँच वर्गों में विभक्त किया गया है- अत्यधिक महत्वपूर्ण पद, प्रशासनिक पद श्रेणी- 1, प्रशासनिक पद श्रेणी- 2, प्रशासनिक पद श्रेणी- 3 और प्रशासनिक पद समीपवर्ती।
16. **लोकसेवा की महत्वपूर्ण भूमिका-** फ्रांस की लोकसेवा की राजनीतिक व्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका है। देश के राजनीतिक राष्ट्रपति और मंत्री-मण्डल द्वारा लिये गये निर्णयों को क्रियान्वित करना, नियोजन और निर्देशन के कार्य सम्पन्न करना, कानूनों, अधिनियमों और मंत्री-मण्डल द्वारा लिये जाने वाले निर्णयों का प्रारूप तैयार करना तथा प्रशासनिक व्यवस्था में समन्वय स्थापित करना इत्यादि। फ्रांस में सरकार का कार्य-क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है। अतः लोकसेवा अथवा नौकरशाही को अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है।
17. **संगठित होने पर हड़ताल करने का अधिकार-** फ्रांस में लोकसेवा के सदस्यों को संगठित होने और हड़ताल करने जैसे लोकतांत्रिक अधिकार प्रदान किये गये हैं। लोकसेवक देश के कानून की सीमा में रहकर इन अधिकारों का प्रयोग कर सकते हैं। अनेक बार लोकसेवक अपनी माँगों को मनवाने के लिए हड़ताल का सहारा लेते हैं। यूरोप के अन्य देशों की तुलना में क्रांस में हड़ताले अधिक होती हैं।
18. **मतभेदों को दूर करने की व्यवस्था-** किसी लोकतांत्रिक व्यवस्था में सरकार तथा लोकसेवकों के बीच मतभेदों का उभरना स्वाभाविक है। यह आवश्यक है कि इन मतभेदों को हल करने के लिए प्रभावशाली व्यवस्था हो। फ्रांस में सरकार और कर्मचारियों के बीच उठने वाले विवादों और मतभेदों को दूर करने के लिए संयुक्त कर्मचारियों के बीच उठने वाले विवादों और मतभेदों को दूर करने के लिए 'संयुक्त परिषदों'

की व्यवस्था है। लोकसेवक 'कौंसिल डी इटाट'(Counseil 'd' etat) में अपील कर सकते हैं। इनके अतिरिक्त लोकसेवकों में अनुशासन बनाये रखने केलिए 'अनुशासन परिषदों'(Council of Discipline) की व्यवस्था की गई है।

19. **उच्च लोकसेवकों की गतिशीलता-** फ्रांस की लोकसेवा के उच्चाधिकारी सक्षम और गतिशील होते हैं। उनकी प्रशासनिक समझ और पकड़ अच्छी होती है। वे प्रशासनिक तथ्यों को शीघ्र ही आत्मसात कर लेते हैं। उनमें गतिशीलता का गुण पाया जाता है। उच्च लोकसेवक एक प्रकृति के पद से दूसरी प्रकृति के पद पर स्थानान्तरित किये जाते हैं।
20. **महिलाओं का बहुमत-** यूरोपीय देशों में महिलाएँ जीवन के सभी क्षेत्रों में पुरूषों के समान कार्य करती हैं। फ्रांस की लोकसेवा में भी ऐसी स्थिति है। यहाँ समस्त लोकसेवा में पुरूषों की तुलना में महिलाओं की संख्या ज्यादा है। कतिपय विभागों- समाज कल्याण तथा शिक्षा विभाग में तो महिलाओं का बहुमत है। महिलाओं की इस भूमिका ने लोकसेवा में शालीनता और संजीदापन की भावना का विकास किया है।
21. **प्रशासकीय विधि-** प्रशासकीय विधि का फ्रांस की राजनीतिक व्यवस्था में महत्वपूर्ण स्थान है। प्रशासकीय विधि सामान्य नागरिकों और प्रशासकीय अधिकारियों के पारस्परिक संबंधों का नियमन करती है। डायसी के मतानुसार, 'फ्रांस की प्रशासकीय विधि प्रशासनिक अधिकारियों के अधिकारों और कर्तव्यों के वे सिद्धान्त हैं, जिनके आधार पर राष्ट्रसत्ता एक प्रतिनिधि के रूप में राज्य कर्मचारियों और जनता के पारस्परिक व्यवहार का निर्णय और नियमन होता है। रैने डेविड लिखते हैं, ''प्रशासकीय विधि का अर्थ उन नियमों से है जो लोक प्रशासन के संगठन तथा कर्तव्यों का ज्ञान कराते हैं और प्रशासनिक अधिकारियों तथा नागरिकों के पारस्परिक संबंध को नियमित करते हैं'' अतः यह कहा जा सकता है कि प्रशासकीय विधि वे नियम है जो नागरिकों और सरकार के आपसी संबंधों को निरूपित करते हैं और दूसरी और नागरिकों तथा लोकसेवकों के अधिकारों और कर्तव्यों की रक्षा करते है। फ्रांस में प्रशासकीय विधि तथा दीवानी विधि में अन्तर स्पष्ट है। प्रशासकीय विधि को प्रशासकीय न्यायालयों के निर्णयों का समूह माना जा सकता है।
22. **प्रशासकीय न्यायालय-** फ्रांस में नागरिकों तथा सरकारों के मध्य विवादों का निपटारा साधारण न्यायालयों द्वारा किया जाता है। ये विवाद एक विशेष कानून 'प्रशासकीय विधि' के अनुसार, प्रशासनिक न्यायालयों द्वारा निपटाये जाते हैं। इन प्रशासनिक न्यायालयों की आलोचना की जाती है कि इनमें कार्यरत न्यायाधीशों की सहानुभूति साधारण नागरिकों की अपेक्षा लोकसेवकों के साथ अधिक होती है। अतः इनसे निष्पक्ष न्याय की अपेक्षा नहीं की जा सकती है। दूसरे, ऐसी व्यवस्था से सामान्य न्यायालयों के अधिकारों और प्रतिष्ठा को गहरा आघात पहुँचता है। तृतीय, इन प्रशासकीय न्यायालयों के कारण लोकसेवकों को अप्रत्यक्ष अनियंत्रित और अमर्यादित आचरण करने की छूट मिल जाती है और अन्त में सामान्य न्यायालयों और प्रशासकीय न्यायालयों के बीच क्षेत्राधिकार को लेकर अनावश्यक विवाद उपस्थित हो जाते है। उपर्युक्त आलोचनाओं के बावजूद प्रशासकीय न्यायालयों के महत्व से इनकार नहीं किया जा सकता है। फ्रांस की राजनीतिक व्यवस्था में इनका महत्वपूर्ण स्थान है।

निष्कर्ष यह है कि फ्रांस में लोकसेवा की भारी उपलब्धियां रही हैं। देश की अस्थिर राजनीतिक स्थिति में लोकसेवा ने अपने आपको अल्पकालीन अथवा दीर्घकालीन विकासों से पृथक् बनाए रखा है। फ्रांस को विश्व के एक शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में प्रतिष्ठित करने में लोकसेवा का उल्लेखनीय योगदान रहा है। फ्रांस की लोकसेवा की कार्यप्रणाली से यह सिद्ध हो गया है कि वह बिना सशक्त राजनीतिक निर्देशन के अपनी भूमिका का निर्वाह कर सकती है। लोकसेवा ने अपने लक्ष्य तथा कार्य संपन्नता के मापदण्ड स्वयं निर्धारित किए हैं।

अभ्यास प्रश्न-

1. 'संयुक्त राज्य अमेरिका' यह नाम किसके द्वारा दिया गया?
2. अमेरिका की खोज किसके द्वारा की गयी?
3. अमेरिकी संविधान में कितने अनुच्छेद हैं?
4. सौ वर्षीय युद्ध किस-किस देश के बीच हुआ?
5. फ्रांस की शासन-व्यवस्था किस पर आधारित है?
6. किसने फ्रांस की शासन व्यवस्था को क्लासिक कहा है?
7. प्रशासन के क्षेत्र में 'लूट-प्रणाली' किस देश की व्यवस्था है?

19.7 सारांश

अमेरिका सैन्य और आर्थिक दृष्टि से संसार का सबसे सम्पन्न देश है। वहाँ अध्यक्षात्मक शासन व्यवस्था विद्यमान है। संसार को अध्यक्षात्मक और संघात्मक व्यवस्था की देन उसी की मानी जाती है। कार्यपालिका और न्यायपालिका के मध्य शक्ति का पृथक्करण है। वहाँ के लोग बहुत मेहनती और सम्पन्न है वहाँ के प्रशासन में निम्नलिखित विशेषताऐं सम्मिलित की जाती हैं- 1. प्रशासन का संवैधानिक और कानूनी रूप, 2. त्रिस्तरीय शासन व्यवस्था, 3. एकरूपता का अभाव, 4. प्रशासन में स्वरूपगत विभिन्नताऐं, 5. प्रशासनिक संगठन के विभिन्न रूप, 6. न्यायिक पुनरावलोकन, 7. केन्द्रीय प्रशासन का सुदृढ रूप, 8. विधि का शासन, 9. शासन में उत्तरदायित्व की कमी, 10. कार्य की संस्कृति एवं पर्यावरण, 11. शासन में सहयोग एवं समन्वय की कमी, 12. राज्य प्रशासन की अत्यधिक स्वायत्तता एवं स्वतंत्रता 13. लूट-प्रणाली, 14. विभागीय प्रतियोगिताएँ, 15. उच्च पदाधिकारी तथा अर्थव्यवस्था, 16. शासन पर दलों का प्रभाव।

फ्रांस की लोक सेवाओं को प्रदत्त अधिकारों को लेकर इसकी आलोचना भी की जाती है। जैसे लोक सेवाओं की स्थिरता आज के आर्थिक सुधारों के क्षेत्र में बहुत बड़ी बांधा बन कर सामने खड़ी है। फ्रांस में बेरोजगारी को देखते हुए लोक सेवाओं को दिये विशेषाधिकार आज के समय में उपयुक्त नहीं जान पड़ते। फ्रांस में दशकों से प्रशासनिक सुधारों को सफलता प्राप्त नहीं हो सकी है। नवीन अवधारणाओं और चुनौतियों के अनुरूप लोक सेवाएं अपने-आपको ढालने में सफल नहीं हुई है। लोक सेवाओं को बदली हुई परिस्थितियों के अनुरूप अपने आपको ढालना होगा अन्यथा यूरोपीय संघ के भीतर और बाहर की दुनिया से फ्रांस प्रतियोगिता में ठहर नहीं पाएगा।

फ्रांस में सामाजिक और व्यावसायिक क्षेत्र में लोक सेवा सर्वाधिक विवादित क्षेत्र है। लोक सेवा से संबंधित होना आर्थिक विशेषाधिकार और सामाजिक श्रेष्ठता प्रतिपादित करता है। ऐसे समय में जब यूरोप का निर्माण का कार्य चल रहा है और जब पूरे संसार में राज्य के सुधार का कार्य प्रगति पर है। फ्रांस के लोक सेवकों की संख्या और साथ ही साथ सार्वजनिक क्षेत्र का महत्व तीव्र वाद-विवाद के मसले माने जाते हैं।

19.8 शब्दावली

न्यायिक पुनर्रावलोकन- व्यवस्थापिका और कार्यपालिका के निर्णयों के औचित्य की जांच करके अनुचित और गैर- कानूनी होने पर उन पर रोक लगाना।

जीवन वृत्ति- जीवन भर के लिए किसी आय के स्रोत को व्यवसाय के रूप में स्वीकार करना।

लूट-प्रणाली- भर्ती की दूषित प्रणाली जिसके अन्तर्गत विजित राष्ट्रपति पहले से कार्यरत लोक सेवकों को सेवा से हटा कर उनके स्थान पर अपने राजनैतिक दल और अपने चहेतों की भर्ती की जाती हो।

अभिजात वर्ग- समाज का सम्पन्न और प्रभावशाली वर्ग।

सोने की चिडिया- आर्थिक रूप से अत्यधिक सम्पन्न।

शक्ति का पृथक्करण- कार्यपालिका, व्यवस्थापिका और न्यायपालिका के मध्य सुस्पष्ट शक्तियों के वितरण के साथ पूर्णतः पृथक-पृथक कार्यक्षेत्र हैं। व्यवस्थापिका पूर्णतः नीति का निर्माण करें, कार्यपालिका नीति के निर्माण से मुक्त रहते हुए नीति को क्रियान्वित करे और न्यायपालिका यह देखभाल करे कि सब कुछ नियम और कानून से चल रहा है।

जमींदारी- भूमि का मालिकाना हक प्राप्त होगा।

विधि का शासन- ऐसी शासन व्यवस्था जिसमें सभी नागरिक कानून की नजर में एक समान हों, जिसमें सभी के लिए एक से कानून और एक ही प्रकार के न्यायालय हों और न्यायालय द्वारा दोषी करार दिये बिना किसी को सजा न सुनाई जाती हो।

संघात्मक व्यवस्था- जिसमें दोहरे स्तर पर सरकार विद्यमान हो- एक संघ या केन्द्रीय स्तर पर दूसरा राज्य स्तर पर और इन दोनों स्तर की सरकारों को संविधान द्वारा संप्रभुत्ता दी गई है। सर्वोच्च न्यायालय हो, लिखित संविधान हो, दोहरी नागरिकता हो।

अध्यक्षात्मक शासन व्यवस्था- एक ही कार्यपालिका हो, व्यवस्थापिका के प्रति जवाबदेह न हो, कार्यपालिका का निर्वाचन निश्चित अवधि के लिए हो, कार्यपालिका के प्रति जवाबदेह न हो, कार्यपालिका का निर्वाचन निश्चित अवधि के लिए हो, कार्यपालिका के सदस्य व्यवस्थापिका के सदस्य नहीं होते हों।

संसदात्मक शासन व्यवस्था- जिसमें व्यवस्थापिका में बहुमत दल के नेता को वास्तविक कार्यपालिका शास्तियां दे रखी हों, दोहरी कार्यपालिका हो- एक नाम मात्र की और दूसरी वास्तविक कार्यपालिका में सामूहिक उत्तरदायित्व हो, वास्तविक कार्यपालिका के सदस्य व्यवस्थापिका के सदस्य हों।

19.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. थॉमस पेन, **2.** पुर्तगाली नागरिक- कोलम्बस, **3.** छः, **4.** फ्रांस और ब्रिटेन के बीच, **5.** पंचम गणराज्य के लिए निर्मित संविधान पर, **6.** फेरेल हैडी, **7.** अमेरिका

19.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. वी0एम0 सिन्हा, कार्मिक प्रशासन, आर0बी0एस0ए0 पब्लिशर्स, जयपुर, 1985
2. सुरेन्द्र कटारिया, कार्मिक प्रशासन, आर0बी0एस0ए0 पब्लिशर्स, जयपुर, 2006
3. ओ0 ग्लीन स्टाल, पब्लिक पर्सोनल एडमिनिस्ट्रेशन, ऑक्सफोर्ड एण्ड आरईवीएच पब्लिशिग क0 दिल्ली, 1970
4. स्टिवन डबल्यू हाल्यल एण्ड रिचार्ड सी0 केनी (सम्पा.), पब्लिक पर्सनेल एडमिनिस्ट्रेशन, प्रिन्टिस हॉल, न्यूजर्सी, 1990
5. एस0आर0 माहेश्वरी, मेजर सिविल सिस्टम इन द वर्ल्ड, 2002
6. श्रीराम, माहेश्वरी, हायर सिविल इन ग्रेट ब्रिटेन, कॉनसेप्ट पब्लिशिंग कं0, नई दिल्ली, 1976
7. श्रीराम माहेश्वरी, हायर सिविल सर्विस इन फ्रांस, ऐमाइड पब्लिशर्स, नई दिल्ली
8. अमरेश्वर अवस्थी और आनन्द प्रकाश अवस्थी, भारतीय प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2004
9. सुरेन्द्र कटारिया, कार्मिक प्रशासन, आर0बी0एस0ए0पब्लिशर्स, जयपुर, 2005

19.11 सहायक/उपयोगी अध्ययन सामग्री

1. वी0एम0 सिन्हा, कार्मिक प्रशासन, आर0बी0एस0ए0 पब्लिशर्स, जयपुर, 1985
2. सुरेन्द्र कटारिया, कार्मिक प्रशासन, आर0बी0एस0ए0 पब्लिशर्स, जयपुर, 2006

3. अमरेश्वर अवस्थी और आनन्द प्रकाश अवस्थी, भारतीय प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2004
4. सुरेन्द्र कटारिया, कार्मिक प्रशासन, आर0बी0एस0ए0पब्लिशर्स, जयपुर, 2005

19.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. संयुक्त राज्य अमेरिका की प्रशासनिक व्यवस्था के प्रमुख लक्षणों की व्याख्या कीजिए। अमेरिका तथा फ्रांस की प्रशासनिक व्यवस्था में समानता के दो बिन्दु प्रस्तुत कीजिए।
2. फ्रांस की प्रशासनिक व्यवस्था की मुख्य विशेषताओं की विस्तार से विवेचना कीजिए।

इकाई- 20 पदोन्नति और सेवानिवृत्ति लाभ

इकाई की संरचना

20.0 प्रस्तावना
20.1 उद्देश्य
20.2 पदोन्नति का अर्थ एवं महत्व
20.3 सिविल सेवाओं में पदोन्नति की आवश्यकता
20.4 पदोन्नति के प्रकार
20.5 पदोन्नति के सिद्धान्त
    20.5.1 वरिष्ठता का सिद्धान्त
    20.5.2 योग्यता या अर्हता सिद्धान्त
    20.5.3 वरिष्ठता-सह-अर्हता सिद्धान्त
20.6 पदोन्नति के लिए अर्हता जाँच पद्धतियां
    20.6.1 लिखित और मौखिक परीक्षा
    20.6.2 कार्यकुशलता की श्रेणी
    20.6.3 संगठन के अध्यक्ष का व्यक्तिगत निर्णय
20.7 श्रेष्ठ पदोन्नति नीति की आवश्यक शर्तें
20.8 भारत में पदोन्नति पद्धति
20.9 सेवानिवृत्ति का अर्थ एवं महत्व
20.10 सेवानिवृत्ति लाभ का औचित्य एवं उपयोगिता/आवश्यकता
20.11 कर्मचारियों को उपलब्ध सेवानिवृत्ति लाभ
20.12 सेवानिवृत्ति लाभ-पेंशन एवं भविष्यनिधि
20.13 पेंशन योजना
20.14 पेंशन के प्रकार
20.15 भविष्यनिधि योजनाऐं
20.16 सेवोपहार
20.17 पेंशन का विनिमयकरण
20.18 सारांश
20.19 शब्दावली
20.20 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
20.21 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
20.22 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
20.23 निबंधात्मक प्रश्न

20.0 प्रस्तावना

किसी भी संगठन मे कार्यरत कार्मिकों की कार्य कुशलता, उनकी संतुष्टि तथा मनोबल के स्तर से भी प्रभावित होती है। निकृष्ट तथा अनुत्तरदायित्वपूर्ण कार्य करने वाले कार्मिकों को दण्डित करने के साथ-साथ योग्य तथा कर्त्तव्यनिष्ट कार्मिकों को पुरस्कृत किया जाना भी संगठन एवं कार्मिक दोनों के हित में है। पदोन्नति अच्छे कार्य का पुरस्कार है। सरकारी सेवाओं में रिक्त पदों को दो प्रकार से भरा जा सकता है- बाहरी अभ्यर्थियों के प्रत्यक्ष

भर्ती के द्वारा तथा पहले से ही सेवारत कर्मचारियों की पदोन्नति कर अप्रत्यक्ष भर्ती के द्वारा। भर्ती करने के इस अप्रत्यक्ष विधि को पदोन्नति-पद्धति कहा जाता है। प्रायः सभी देशों में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों विधियों को अपनाया जाता है। भारत में भी पदोन्नति के लिए अपनाया जाता है। दोनों सिद्धान्तों के कुछ सकारात्मक तथा नकारात्मक पहलू भी है। अर्हता-सिद्धान्त को वरिष्ठता सिद्धान्त के साथ संयुक्त कर अर्हता-सह-वरिष्ठता के आधार पर पदोन्नति करने की विधि सर्वोत्तम विधि है।

भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के प्रारंभिक काल से ही सरकारी कर्मचारियों को पदोन्नतियां दी जा रही थीं। प्रारम्भ में वरिष्ठता को ही विशेष महत्व दिया जाता था, किन्तु बाद में अर्हता-सिद्धान्त को भी अपनाया गया। आजकल भी देश में वरिष्ठता-सह-अर्हता सिद्धान्त को अपनाया जाता है।

लोक सेवकों द्वारा पूरी क्षमता और शक्ति के साथ दायित्वों का निर्वाह किया जाता है। इसके बदले सरकार द्वारा उनके भरण-पोषण के लिए समुचित वेतन की व्यवस्था की जाती है। प्रश्न यह है कि वृद्धावस्था में जब लोक सेवक कार्य करने में अक्षम होगा अथवा किसी दुर्घटना या लम्बी बीमारी के कारण वह अपनी सेवाएँ प्रदान नहीं कर सकेगा तो उसके भरण-पोषण की क्या व्यवस्था की जाएगी? इस प्रश्न के समाधान के लिए विभिन्न देशों में लोक सेवकों के लिए सेवानिवृत्ति लाभों की व्यवस्था की जाती है। उनकी मात्रा, समय और स्वरूप विभिन्न देशों में विभिन्न पदों के लिए अलग-अलग होता है। सेवा-निवृत्ति की व्यवस्था योग्यता प्रणाली के प्रभाव का तरीका है, तद्नुसार शारीरिक व बौद्धिक क्षमता घटने के साथ ही वृद्ध लोक-सेवकों को सेवा से पृथक किया जाना चाहिए। यह कार्य लोक सेवक को नौकरी से निकालना नहीं है, वरन् यह नियमित सेवा से नियमित अवकाश प्राप्ति है।

20.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- पदोन्निति और सेवानिवृत्ति के अर्थ एवं महत्व को समझ पायेंगे।
- पदोन्निति के प्रकार और सिद्धान्तों के विषय में जान पायेंगे।
- श्रेष्ठ पदोन्निति की आवश्यक शर्तें क्या हैं, इस संबंध में जान पायेंगे।
- कर्मचारियों को उपलब्ध सेवानिवृत्ति लाभ एवं सेवानिवृत्ति के लाभ एवं औचित्य से अवगत हो पायेंगे।
- पेंशन योजना और भविष्यनिधि योजना के संबंध में जान पायेंगे।

20.2 पदोन्नति का अर्थ एवं महत्व

पदोन्नति अर्थात् पद की उन्नति, आधुनिक कार्मिक प्रशासन का महत्वपूर्ण आयाम है। अंग्रेजी शब्द 'प्रोमोशन' का क्रिया रूप 'प्रोमोट' है, जो मूलतः लेटिन शब्द 'प्रेमोवीर' से बना है जिसका मूल अर्थ, आगे बढना है। इस प्रकार पदोन्नति- पद, स्तर, सम्मान में वृद्धि करने या योग्यता के आधार पर आगे बढने से सम्बद्ध है। पदोन्नति के अर्थ को दो तरह से समझा जा सकता है। सरकार के लिए पदोन्नति अप्रत्यक्ष भर्ती की एक पद्धति है, यानि पूर्व से ही सेवारत लोगों में से योग्य एवं प्रतिभावान लोगों के चयन द्वारा उच्चस्तरीय रिक्त पदों को भरना है। सरकारी कर्मचारियों के लिए पदोन्नति निम्नस्तरीय पद, वर्ग या सेवा से उच्च कार्य, अधिकार एवं उत्तरदायित्व सहित उच्चस्तरीय पद, वर्ग या सेवा में एकाएक तरक्की है। इसका अर्थ कर्मचारियों के लिए पद, प्रतिष्ठा तथा वेतन में वृद्धि से भी है। मात्र वेतन में ही वृद्धि पदोन्नति नहीं है। सिविल सेवा में पद में तरक्की पाना, प्रतिष्ठा, कर्त्तव्य, अधिकार, उत्तरदायित्व एवं वेतन में वृद्धि को भी पदोन्नति माना जाता है। पदोन्नति कर्मचारी के पद, ओहदा, प्रतिष्ठा तथा वेतन में परिवर्तन लाती है। जब एक कनिष्ठ सहायक वरिष्ठ सहायक, उप-

सचिव सचिव तथा द्वितीय श्रेणी का अधिकारी प्रथम श्रेणी का अधिकारी बनता है, तब यह पदोन्नति कहलाती है। पदोन्नति का अर्थ कर्मचारी के श्रेणी में परिवर्तन भी हो सकता है। यानि एक ही वर्ग में निम्नस्तरीय पद से उच्चस्तरीय पद पर पदोन्नति। निम्नस्तरीय श्रेणी से उच्चस्तरीय श्रेणी में यानि द्वितीय श्रेणी से प्रथम श्रेणी में पदोन्नति हो सकती है। एक सेवा से दूसरी उच्चस्तरीय सेवा में भी पदोन्नति हो सकती है, यानि राज्य सेवा से अखिल भारतीय सेवा में। इस प्रकार यह पूर्ण रूप से स्पष्ट है कि निम्न श्रेणी से उच्च श्रेणी में, निम्न स्तरीय सेवा से उच्च स्तरीय सेवा में पदोन्नति हो सकती है।

हमें यह याद रखना चाहिए कि समान पद या उत्तरदायित्व वाली सेवा में एक पद से दूसरे पद पर स्थानान्तरण को पदोन्नति नहीं कहा जा सकता है। इसी तरह वेतन में वार्षिक वृद्धि भी पदोन्नति नहीं हैं। पदोन्नति का अर्थ, पद एवं वेतनमान दोनों में ही बढोत्तरी से है।

पदोन्नति प्रक्रिया की उपयोगिता निर्विवाद रूप से महत्वपूर्ण है। पदोन्नति के कारण संगठन की जीवंतता बनी रहती है, तो दूसरी ओर कर्मचारियों की महत्वकांक्षाओं की पूर्ति भी होती है। सरकारी कर्मचारी के निष्ठापूर्वक तथा कठिन परिश्रम से कार्य करने के लिए पदोन्नति एक पुरस्कार के रूप में दी जाती है। यदि किसी कर्मचारी के लिए पदोन्नति के अवसर नही होंगे तो वह कठिन परिश्रम नहीं करेगा तथा वह इससे बाहर अधिक लाभप्रद सेवा की तलाश करेगा एवं मिलते ही जितनी जल्दी संभव होगा वर्तमान सेवा को त्याग देगा। अनेक कर्मचारियों के लिए तो सरकारी सेवा आजीवन सेवा है। वे अपनी युवावस्था में इस सेवा में आते हैं, सेवा को प्रारम्भ करते हैं तथा सेवानिवृत्ति के समय तक निरन्तर कार्य करते रहते हैं। अतः पदोन्नति की व्यवस्था करके ही उन लोगों को सेवा में स्थिर रखा जा सकता है। पदोन्नति के बिना सिविल सेवा को जीवन-वृति सेवा नहीं कहा जा सकता है। सर्वोतम प्रतिभाशाली लोगों को हम बिना पदोन्नति के सरकारी सेवाओं में आने के लिए आकर्षित नहीं कर सकते। इसके बिना हम योग्यतम एवं क्षमतावाले लोगों को सेवा में स्थिर नहीं रख सकते। साथ ही, पदोन्नति के अभाव में हम देश एवं सेवा के लिए कर्मचारियों का सर्वोत्तम योगदान नहीं पा सकते। यह स्पष्ट है कि बिना पदोन्नति के हम देश में कार्यकुशल, सुयोग्य एवं संतुष्ट सिविल सेवा कर्मचारी को नहीं पा सकते। जीवन में प्रगति एवं विकास करने की कर्मचारियों की स्वाभाविक मानवीय लालसा को पदोन्नति ही पूरा कर सकती है। यह सरकारी कर्मचारी की नैतिकता को भी प्रोत्साहित करती है।

20.3 सिविल सेवाओं में पदोन्नति की आवश्यकता

सिविल सेवा एक जीवन-वृति सेवा है। जो सिविल सेवा में आते हैं, वे प्रायः अपना जीवन काल इसी में बिताते हैं। वे समय के बदलते क्रम में सेवा में उन्नति एवं विकास करते हैं। एक युवक के रूप में सिविल सेवा में कर्मचारी की भर्ती एवं एक वृद्ध के रूप में उनकी सेवानिवृति के काल तक यह केवल पदोन्नति के ही अवसर हैं, जो उन्हें सेवा में निरन्तर स्थिर रखता है। इस प्रकार पदोन्नति जीवन-वृति सेवा का अभिन्न अंग है। पदोन्नति की केवल एक विशेष योजना ही सिविल सेवा को आकर्षक सेवा बना सकती है तथा श्रेष्ठ प्रतिभाशाली लोगों को इस सेवा में आने के लिए आकर्षित कर सकती है।

पदोन्नति कर्मचारियों को एक पुरस्कार के रूप में भी दी जा सकती है। कार्य कुशलता, कठिन श्रम एवं निष्ठापूर्वक तथा परिश्रम से कार्य करने के लिए पदोन्नति एक संभावित पुरस्कार है। संभावित पदोन्नति के लिए सरकारी कर्मचारी कठिन परिश्रम करेंगे। इसका अर्थ यह हुआ कि पदोन्नति सिविल सेवा के कार्य कुशलता तथा सन्तुष्टि में वृद्धि करता है। कार्मिक प्रशासन में सर्वोत्तम लोगों को भर्ती करना प्रथम एवं प्रमुख सोपान है। लेकिन प्रतिभाशाली लोगों को सेवा में स्थिर रखना भी समान रूप से महत्वपूर्ण है। पदोन्नति के अवसर से ही उत्तम, योग्य एवं कार्यकुशल लोगों को सिविल सेवा में रखना संभव है, अन्यथा वे सिविल सेवा छोड़कर चले जायेंगे।

मनुष्य एक विकासशील प्राणी है। प्रत्येक व्यक्ति जीवन में प्रगति और विकास करना चाहता है तथा दूसरों में अपनी पहचान बनाना चाहता है। कर्मचारियों के विकास और पहचान की इन आधारभूत मानवीय लालसाओं की पूर्ति उन संगठनों के द्वारा की जानी चाहिए, जहाँ वह कार्य करता हैं। अन्यथा वह अपने कार्य से संतुष्ट नहीं होगा तथा कार्य परिवर्तित करना चाहेगा, जो सिविल सेवा के लिए कठिनाई पैदा कर सकती है। विकास और पहचान की इन दो आधारभूत मानवीय लालसाओं की पूर्ति पदोन्नति के साधन द्वारा ही की जा सकती है। पदोन्नति की एक अच्छी पद्धति कर्मचारियों में अपनी सेवा के प्रति लगाव की भावना को बढाती है। यह संगठन की नीतियों एवं कार्यक्रमों कोनिरन्तरता बनाये रखने में योगदान करती है। सिविल सेवा में एक अच्छी प्रथा एवं परम्परा का निर्माण करने के लिए तथा सरकार की सद्-भावनाओं से जुड़ने में पदोन्नति-पद्धति नेतृत्व करती है।

उच्चस्तरीय सरकारी सेवाओं में भी यदि पदोन्नति के पर्याप्त अवसर होंगें, तभी निम्नस्तरीय सेवाओं में भी प्रतिभाशाली लोग आने को तैयार होंगे। इससे प्रशासन की कार्यकुशलता में वृद्धि होगी।

समय के साथ-साथ लोग सरकारी सेवाओं में नवीनतम व्यावहारिक अनुभव प्राप्त करते जाते हैं। सेवा में उनकी निरन्तरता उनको उच्च से उच्च उत्तरदायित्व निभाने के योग्य बना देती है। सिविल सेवा कर्मचारियों के द्वारा प्राप्त किये गये अनुभव एवं क्षमता का उपयोग उन्हें उच्चस्तरीय तथा अधिक उत्तरदायित्व पूर्ण पदों पर पदोन्नत करने के लिए किया जाता है। मानव शक्ति का सर्वोत्तम उपयोग मात्र पदोन्नति की पद्धति द्वारा ही संभव है।

जैसे-जैसे कर्मचारियों की अवस्था बढती जाती है, उनका पारिवारिक उत्तरदायित्व भी बढता जाता है। उनको अधिक पैसे की भी आवश्यकता होती है। पदोन्नति उनकी बढती हुई भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने का सुअवसर प्रदान करती हैं तथा कर्मचारी इसके बदले सेवा में अपना सर्वोत्तम योगदान देते हैं। पदोन्नति सेवाओं में कदाचार एवं भ्रष्टाचार की घटनाओं को भी कम करने में सहायक होती है। पदोन्नति के कारण सरकारी कर्मचारी सरकार के विरूद्ध शिकायत भी नहीं करेंगे। वे सरकार के कार्यो को अत्यधिक ईमानदारी, निपुणता एवं निष्ठा से करेंगे। इससे सिविल सेवा कर्मचारियों में अनुशासन एवं उच्च नैतिकता आ सकेगी।

20.4 पदोन्नति के प्रकार

पदोन्नति के निम्नलिखित तीन प्रकार या श्रेणियां हैं-

1. एक ही वर्ग में निम्न श्रेणी से उच्च श्रेणी में पदोन्नति। (कनिष्ठ सहायक से वरिष्ठ सहायक के पद पर, या कनिष्ठ लिपिक से वरिष्ठ लिपिक या सहायक के पद पर, या एक अधीक्षक के पद पर से दूसरे अधीक्षक के पद पर पदोन्नति करना)
2. निम्नवर्ग से उच्चवर्ग में पदोन्नति अर्थात् द्वितीय श्रेणी से प्रथम श्रेणी में या लिपिक-वर्ग से कार्यकारी-वर्ग में पदोन्नति करना।
3. निम्नस्तरीय सेवा से उच्चस्तरीय सेवा में पदोन्नति, अर्थात् राज्य सेवा से अखिल भारतीय सेवा में पदोन्नति करना।

20.5 पदोन्नति के सिद्धान्त

किसी भी सरकारी सेवा में पदोन्नति के अवसर सीमित होने के कारण हमें पदोन्नति के सिद्धान्तों की आवश्यकता पड़ती है। उच्चस्तरीय पदों में तो केवल सीमित संख्या में ही (पदोन्नति के लिए) स्थान रिक्त होते हैं। कभी-कभी तो इन पदों में भी नियमित अन्तराल पर स्थान रिक्त नहीं होते हैं। निम्नस्तरीय कर्मचारी को इन पदों में रिक्त स्थान होने की प्रतीक्षा करनी पड़ती है। पदोन्नति पाने की प्रत्येक की अभिलाषा रहती है। किन्तु सभी चाहने वालों को पदोन्नति देना व्यावहारिक रुप से असंभव है। वास्तव में उनमें से कुछ लोगों को ही उच्चस्तरीय पदों पर पदोन्नति दी जाती है और बहुत सारे कर्मचारियों को इससे वंचित रखा जाता है। यद्यपि यह अच्छा नहीं है।

किन्तु, अपरिहार्य है, क्योंकि प्रशासन की संरचना एक पिरामिड के समान है। निम्नलिखित पदों की संख्या बहुत बड़ी होती है। जैसे-जैसे हम ऊपर उठते जाते हैं, पदों की संख्या वैसे-वैसे कम होती जाती है।

प्रशासन की संरचना के कारण पदोन्नति के समय संघर्ष अवश्यंभावी हो जाता है। जिनको पदोन्नति नहीं मिल पाती है, वे निराश हो जाते हैं तथा कार्य में उनकी रुचि प्रायः समाप्त हो जाती है। यदि पदोन्नति मनमाने ढंग से की जाती है तो यह कर्मचारियों में उदासीनता, अकुशलता तथा अपमान की भावना को जगाता है। इसलिए यह आवश्यक है कि पदोन्नति पूर्ण परिभाषित एवं मान्यता प्राप्त सिद्धान्तों पर ही आधारित होनी चाहिए।पदोन्नति के सिद्धान्त निम्नलिखित हैं, जिन्हें एक विकल्प या संयुक्त रुप में अपनाया जाता है।

20.5.1 वरिष्ठता का सिद्धान्त

वरिष्ठता पर आधारित पदोन्नति एक परम्परागत तथा सरल प्रणाली है। वरिष्ठता सिद्धान्त का अर्थ किसी विशेष पद, श्रेणी या वेतनमान में सेवा की अवधि(Length of service) से है। यह एक सामान्य सिद्धान्त है। इसमें मात्र सेवा की अवधि या वरिष्ठता ही पदोन्नति का आधार है। इसके अनुसार, दीर्घ सेवा की अवधि वालों को ही पदोन्नति दिया जाना चाहिए। वरिष्ठता क्रम में ऊपर आने वाले लोग ही सबसे पहले पदोन्नति के योग्य हैं। वरिष्ठता की एक सूची बनयी जाती है तथा उम्र और अनुभव के अनुसार अग्रता-क्रम का(Precedence) निर्धारण किया जाता है।

वरिष्ठता सिद्धान्त को लागू करना बहुत आसान है। यह बहुत ही वस्तुनिष्ठ है। यह पक्षपात एवं भाई-भतीजावाद के लिए कोई अवसर नहीं छोड़ता है। यह उम्र और अनुभव को महत्व देता है। यह समाज में स्थापित प्रथा के अनुसार है। एक युवक अपने से उम्र में ज्येष्ठ एवं अनुभवी लोगों का स्वामी नहीं बन सकता है। यह अधिक प्रजातांत्रिक है, क्योंकि यह अर्हता इत्यादि की अपेक्षा किये बगैर सबको पदोन्नति देने का अवसर उपलब्ध कराता है। प्रत्येक व्यक्ति प्रतिभाशाली नहीं हो सकता है, किन्तु समय के साथ-साथ इसमें सभी वरिष्ठ होने के लिए प्रतिबद्ध है। यह सभी कर्मचारियों के लिए सुरक्षित है। इसलिए स्टाफ के द्वारा अर्हता सिद्धान्त के विरुद्ध वरिष्ठता सिद्धान्त को सहर्ष स्वीकार किया गया है।

लेकिन वरिष्ठता सिद्धान्त में भी बहुत सी कमियां हैं। जो वरिष्ठ है, वे आवश्यक रुप से पदोन्नति के लिए उपयुक्त हो, यह जरुरी नहीं है। मात्र सेवा की अवधि ही पदोन्नति हेतु उपयुक्तता का मापदण्ड नहीं है। सेवा शुरु करने के प्रारम्भिक कुछ वर्षों में ही लोगों के द्वारा अनुभव प्राप्त किया जाता है। इसके बाद यह आवश्यक नहीं कि उनकी सेवा की अवधि के साथ उनके अनुभव में भी वृद्धि हो। यह कहा जाता है कि दस वर्ष का अनुभव और कुछ नहीं अपितु एक वर्ष के अनुभव की ही पुनरावृति है, इसलिए पदोन्नति के लिए अनुभव तथा वरिष्ठता युक्तिमूलक मापदण्ड नहीं है। एक ही श्रेणी के सभी लोग पदोन्नति के लिए उपयुक्त नहीं होते हैं। पदोन्नति की संख्या बहुत कम है, इसलिए सभी लोगों को पदोन्नति नहीं मिल पाती है। पदोन्नति आवश्यक रुप से उम्र के अनुरुप नहीं होती है। देर से सेवा प्रारम्भ करने वाले की तुलना में वह युवा अधिकारी वरिष्ठ हो सकता है जो अपने जीवन के प्रारंभिक काल में ही सेवा शुरु किये थे। वरिष्ठता सिद्धान्त यह सुनिश्चित नहीं करता है कि अतिउपयुक्त लोग ही उच्चस्तरीय पदों पर पदस्थापित किये जायेंगे।

इसके विपरीत, सरकारी कर्मचारियों के कार्य पर पूर्णरुपेण प्रतिकूल प्रभाव डालते हुए अकुशल एवं दकियानूसी लोगों को भी उच्चस्तरीय पदों पर पदोन्नति दी जा सकती है। अतः वरिष्ठता सिद्धान्त विवेकपूर्ण एवं न्यायसंगत नहीं है। इसमें उद्यमी युवक, कर्मचारियों का कठिन परिश्रम, कार्यकुशलता तथा नेतृत्व का गुण पुरस्कृत नहीं हो पाता है। दूसरी तरफ जहाँ पर कि कठिन परिश्रम करने वाले, सजग तथा उद्यमी लोगों की आवश्यकता है, वहाँ शारीरिक रुप से कमजोर, वृद्ध और कम उद्यमी लोगों को उच्चस्तरीय पदों पर पदोन्नति दी जाती है।

20.5.2 योग्यता या अर्हता सिद्धान्त

योग्यता या अर्हता सिद्धान्त पर आधारित पदोन्नति व्यवस्था को अब धीरे-धीरे मान्यता मिल रही है। अर्हता सिद्धान्त, वरिष्ठता-सिद्धान्त के विपरीत है। यह सिद्धान्त उच्चस्तरीय पदों पर पदोन्नति के लिए अत्यधिक योग्य, प्रतिभावान तथा सबसे अधिक सक्षम लोगों के चयन का समर्थन करता है। सिविल सेवा में उच्चस्तरीय पद का अर्थ है- अधिक अधिकार एवं उत्तरदायित्व तथा इसमें अत्यधिक सक्षम एवं कठिन श्रम करने वाले लोगों की आवश्यकता। इसलिए जिनके पास अर्हता एवं योग्यता है, उन्हें उच्चस्तरीय पद पर पदोन्नत किया जाना चाहिए। अतः पदोन्नति के लिए केवल अर्हता का मापदण्ड होना चाहिए। अर्हता सिद्धान्त को इसलिए स्वीकार किया गया, क्योंकि केवल योग्य एवं समर्थ लोग ही पदोन्नति के योग्य हैं तथा असक्षम लोगों को पीछे छोड़ा जाना चाहिए।

प्रशासन में उच्चस्तरीय पदों पर केवल निपुण, परिश्रमी तथा योग्य लोगों की आवश्यकता है। अर्हता सिद्धान्त पदोन्नति के लिए अति उपयुक्त लोगों का चयन करता है। अर्हता सिद्धान्त के द्वारा उद्यमी, कठिन श्रम करने वाले तथा नेतृत्व का गुण रखने वाले लोगों को पुरस्कृत किया जाता है। यह प्रशासन में कार्यकुशलता एवं प्रतियोगी उत्साह को भी बढ़ाता है। यह निम्नस्तरीय कर्मचारियों को अपने कार्य में अभिरुचि लेने तथा परिश्रम के साथ कार्य करने के लिए प्रेरित करता है।

लेकिन पदोन्नति के अर्हता सिद्धान्त को यथार्थ में लागू करना कठिन है। अर्हता एक जटिल अवधारणा है। यह अपने में व्यक्तित्व, चरित्र बल, नेतृत्व की क्षमता, बौद्धिक योग्यता इत्यादि को सम्मिलित किये हुए है। वास्तव में अर्हता को मापना आसान नहीं है। पदोन्नति का अर्हता सिद्धान्त, वरिष्ठ एवं अनुभवी लोगों को उन्नति के प्रतियोगी अवसर से वंचित कर देता है। इसके द्वारा उम्र, अनुभव तथा वरिष्ठता को एक तरफ कर दिया जाता है।

20.5.3 वरिष्ठता-सह-अर्हता सिद्धान्त

हम लोग देख चुके हैं कि वरिष्ठता एवं अर्हता दोनों सिद्धान्तों के कुछ गुण-दोष भी हैं। अतः व्यवहार में पदोन्नति करने के लिए एक तीसरी विधि को अपनाया जाता है, जिसमें वरिष्ठता एवं अर्हता सिद्धान्त का संयोजन किया जाता है, (वरिष्ठता-सह-अर्हता सिद्धान्त)। उदाहरण के लिए, न्यूनतम सेवा की अवधि (वरिष्ठता) को निश्चित किया जाता है और तब उनमें से सबसे उपयुक्त एवं योग्य लोग, जिन्हें न्यूनतम अनुभव रहता है, उनका पदोन्नति के लिए चयन किया जाता है। इसका अर्थ यह हुआ कि वरिष्ठ लोगों में से ही सबसे उपयुक्त लोगों को पदोन्नति के लिए चयन किया जाता है। इन दोनों सिद्धान्तों को संयोजित करने की दूसरी विधि है, न्यूनतम योग्यता एवं सक्षमता की जाँच करना तथा तब उनमें से वरिष्ठतम लोगों को पदोन्नति हेतु चयन में प्राथमिकता देना। इसका अर्थ यह हुआ कि योग्य लोगों में वरिष्ठ लोगों को पदोन्नति के लिए चयन किया जाता है। भारत सहित प्रायः सभी देशों में पदोन्नति करने के लिए अपनायी जाने वाली सामान्य पद्धति निम्नांकित बिन्दुओं पर आधारित होती है।

- उच्चस्तरीय पदों पर पदोन्नति केवल अर्हता सिद्धान्त के आधार पर की जाती है।
- मध्यम स्तरीय पदों पर पदोन्नति वरिष्ठता-सह-अर्हता सिद्धान्त के आधार पर की जाती है।
- निम्नस्तरीय पदों पर पदोन्नति वरिष्ठता सिद्धान्त के आधार पर की जाती है, लेकिन यहाँ भी अपवाद स्परुप अर्हता सिद्धान्त को पुरस्कृत किया जाता है।

20.6 पदोन्नति के लिए अर्हता जाँच पद्धतियां

हम देख चुके है कि सरकारी सेवाओं में पदोन्नति के लिए अनुभव की अपेक्षा अर्हता को अधिक महत्वपूर्ण घटक माना जाता है। अब प्रश्न यह है कि उच्चस्तरीय पदों पर पदोन्नति के लिए अर्हता की जाँच कैसे की जाय? भर्ती पर आधारित इससे पूर्व की इकाई में सिविल सेवा में प्रत्यक्ष भर्ती के लिए अर्हता-जाँच की विभिन्न विधियों का हमने अध्ययन किया है, परन्तु पदोन्नति हेतु अर्हता-जाँच करने के लिए उपरोक्त विधियां उपयुक्त नहीं है। यहाँ पर

यह ध्यान देना चाहिए कि हमें पहले से सेवारत लोगों की अर्हता-जाँच करनी है। उन्हें सेवा में भर्ती होने के लिए न्यूनतम शैक्षणिक योग्यता की आवश्यकता होती है। वे तो अपने भर्ती के समय ही लिखित तथा मौखिक परीक्षा पास किये रहते हैं। इस समय तो उच्चस्तरीय पदों पर पदोन्नति करने के लिए केवल उनकी अर्हता की जाँच की जानी है, जो बहुत नाजुक एवं कठिन कार्य है।

युवा एवं वृद्ध, अनुभवी तथा अनुभवहीन, वरिष्ठ तथा कनिष्ठ कर्मचारी जो एक ही संगठन में समान पद पर बहुत वर्षों से साथ-साथ कार्य करते रहते हैं, उनको उच्चस्तरीय पदों पर पदोन्नति पाने की अभिलाषा रहती है। प्रायः उच्चस्तरीय पदों में रिक्त स्थान बहुत कम होते हैं। उच्चस्तरीय पदों पर पदोन्नति के लिए उनमें से प्रत्येक अपने को सबसे योग्य एवं उपयुक्त अभ्यर्थी मानता है। इस प्रकार की स्थिति में उच्चस्तरीय पदों पर पदोन्नति करने के लिए उनकी अर्हता की जाँच करना बहुत कठिन कार्य हो जाता है। पदोन्नति हेतु अर्हता जाँच करने के लिए सामान्यतया निम्नलिखित तीन विधियों को प्रयोग में लाया जाता है-

20.6.1 लिखित और मौखिक परीक्षा

बहुत से देशों में तो पदोन्नति के लिए लिखित परीक्षा ली जाती है। लिखित और मौखिक परीक्षा अर्हता-जाँच करने की एक वस्तुनिष्ठ पद्धति है। यह सभी प्रकार के पक्षपात और भाई-भतीजावाद को दूर कर देता है। यह अधिकारियों को किसी विशेष कर्मचारी के बारे में पदोन्नति संबंधी फैसला करने जैसे कठिन कार्य से भी मुक्त कर देता है। यह कर्मचारियों को नये विकास के प्रति आधुनिकतम बनाता है। उच्चस्तरीय पदों पर पदोन्नति हेतु आकांक्षा करने एवं सफल होने के लिए प्रतिस्पर्धा में भाग लेनेके लिए यह प्रत्येक कर्मचारी को समान अवसर प्रदान करता है। यह तब अच्छा होता है, जब उच्चस्तरीय पदों के लिए विशिष्ट ज्ञान की आवश्यकता होती है या पदोन्नति चाहने वालों की संख्या बहुत अधिक होती है। बहुत से देशों में तो इसके लिए विभागीय परीक्षाएं आयोजित की जाती हैं। पदोन्नति चाहने वाले प्रत्येक को विभागीय अर्हकारी परीक्षा पास करनी होती है। भारत में तो विभागीय अर्हकारी परीक्षा, सिविल सेवा के समान ही बैंकिंग सेवा में भी है। परिश्रमी और प्रतिभाशाली कर्मचारी इन परीक्षाओं को पास कर शीघ्र ही पदोन्नति पाकर उच्च से उच्च पद पर पहुँच जाते हैं। पदोन्नति के लिए ली जाने वाली लिखित परीक्षा पद्धति की कुछ कमियां भी हैं। पहले से ही परीक्षकों को परीक्षा की तैयारी में उलझे रहने के कारण कर्मचारी अपने नियमित प्रशासनिक कार्यों की उपेक्षा करते रहते हैं। इनमें निष्ठावान और समर्पित कर्मचारी अपने को उपेक्षित पाते हैं। वृद्ध एवं अनुभवी कर्मचारी हेतु समुचित रुप से पढ़ नहीं पाते हैं। युवा और कम अनुभवी कर्मचारी जो हाल में ही कालेजों से पढ़कर निकले हैं, अपने से वृद्ध एवं अनुभवी सहकर्मियों की तुलना में लिखित परीक्षा में सामान्यतया अधिक अंक पा जाते हैं। इसलिए अनुभवी कर्मचारियों के मध्य लिखित परीक्षाएं विशेष लोकप्रिय नहीं है।

पदोन्नति के लिए ये परीक्षाएं यद्यपि प्रतियोगितात्मक हैं, किन्तु एक प्रकार से ये घिरी हुई हैं, यानि ये पहले से ही सेवारत लोगों तक ही सीमित हैं। जिसके फलस्वरुप यह सुयोग्य प्रतियोगियों के बीच बहुत प्रकार के ईर्ष्या-द्वेष को उत्पन्न करता है।

लिखित परीक्षा की इन कमियों को दूर करने के लिए बहुत से देशों में अभ्यर्थियों का लिखित परीक्षा पास करने के बाद मौखिक परीक्षा या साक्षात्कार लिया जाता है। साक्षात्कार के माध्यम से अभ्यर्थियों के व्यक्तित्व, मनोवृत्ति तथा आचार-व्यवहार इत्यादि को पूर्ण रुप से आंका जाता है। पर साक्षात्कार के समय उनके कार्य के पूर्व अनुभव एवं रिकार्ड पर विचार किया जाता है।

कोई अभ्यर्थी उच्चस्तरीय पद पर पदस्थापित करने के योग्य है या नहीं एवं उसका व्यक्तित्व उस पद के लिए उपयुक्त है या नहीं मौखिक परीक्षा के समय इन सब पर भी विचार किया जाता है।

20.6.2 कार्यकुशलता की श्रेणी

सिविल सेवा में प्रत्येक कर्मचारी के सेवा रिकार्ड को रखना एक पुरानी एवं सार्वदेशिक प्रथा है। ये सेवा रिकार्ड, गोपनीय-रिपोर्ट, सर्विस बुक(सेवा पुस्तिका), व्यक्तिगत रिकार्ड या व्यक्तिगत फाइल इत्यादि विभिन्न नामों से जाने जाते हैं। पहले इन रिकार्डों का उपयोग प्रायः किसी के बुरे रिकॉर्ड का पता लगाने एवं उन्हें पदोन्नति से दूर रखने के लिए किया जाता था। लेकिन अब इन सर्विस रिकॉर्डों का उपयोग पदोन्नति करने के उद्देश्य से कर्मचारी के सापेक्षिक अर्हता मूल्यांकन के लिए किया जाता है। पदोन्नति के उद्देश्य से कर्मचारियों की आपेक्षिक योग्यता एवं अर्हता निर्धारण के लिए अपेक्षाकृत यह नई विधि है। जिसे सबसे पहले अमेरिका में अपनाया गया।

सेवा(Service) रिकार्ड का रखरखाव अपने आप में कार्यक्षमता निर्धारण नहीं है। सेवा रिकार्ड आवश्यक आंकड़ा प्रस्तुत करता है, जिसके आधार पर मूल्यांकन या निर्धारण किया जा सकता है। बड़े संगठनों में बहुत सी शाखाएं, प्रशाखाएं एवं खण्ड होते हैं, जिनमें कर्मचारियों की संख्या बहुत बड़ी होती है। प्रत्येक खण्ड, शाखा या विभाग में संबंधित विभागाध्यक्ष, अधीक्षक या वरिष्ठ अधिकारी के द्वारा प्रत्येक कर्मचारी की सब तरह से पूर्ण सेवा (रिकॉर्ड सर्विस) की एक गोपनीय रिपोर्ट(Confidential Report) तैयार कर रखी जाती है, पदोन्नति करने के समय इन रिकॉर्डों का उपयोग कार्यकुशलता का निर्धारण करने के लिए किया जाता है। पदोन्नति करने के लिए कार्यकुशलता निर्धारण की इस पद्धति को अब व्यापक रुप से अपनाया जाता है।

पदोन्नति के लिए योग्यतम एवं सर्वाधिक कार्यकुशल लोगों को पाने में कार्यकुशलता निर्धारण पद्धति सबसे अधिक उपयोगी है। सर्वाधिक कार्यकुशल लोगों को पुरस्कृत करने के लिए तथा अपेक्षाकृत कम योग्य लोगों को छांटने के लिए यह एक न्यायपूर्ण एवं विश्वसनीय पद्धति है। यह न केवल योग्य लोगों को ही, अपितु निष्ठा एवं सावधानीपूर्वक कार्य करने वाले लोगों को भी पुरस्कृत करती है। यह कर्मचारियों को सतर्क एवं आधुनिकतम रखती है। उपलब्ध स्टाफ में से योग्यतम कर्मचारियों को यह पदोन्नति की गारंटी देती है। यद्धपि कार्यकुशलता निर्धारण पद्धति के कुछ सकारात्मक बिन्दु हैं, किन्तु इसके बहुत नकारात्मक पहलू भी हैं। यह वास्तविक नहीं है। यह सेवा रिकॉर्ड तैयार करने वाले वरिष्ठ अधिकारियों एवं श्रेणी बनाने वाले अधिकारियों के आत्मपरक निर्णय पर निर्भर करता है। प्रभावी रुप से श्रेणी बनाने के लिए आवश्यक सभी गुणों, विशेषता या मापदण्डों को अपने में समाविष्ट कर लेने वाले अच्छे श्रेणी प्रारुप को तैयार करना एक कठिन कार्य है।

इस पद्धति के कारण भावुक कर्मचारी उत्तेजित एवं संकोची हो जाते हैं और उनका मनोबल टूट जाता है। यह श्रेणी पद्धति श्रेणी बनाने वाले अधिकारी के उपेक्षा, बेइमानी और व्यक्तिपरक निर्णय के लिए अवसर प्रदान करता है। तुलनात्मक श्रेणी के लिए किन गुणों एवं विशेषताओं को लिया जाना चाहिए तथा विभिन्न गुणों या विशेषताओं से संबंधित निर्णयों को एक अन्तिम निर्णय से किस प्रकार जोड़ा जाना चाहिए, पदोन्नति को अन्तिम रुप देने से पूर्व ये सभी प्रश्न बहुत सारी कठिनाइयों को पैदा करते है। इसलिए यह श्रेणी पद्धति पदोन्नति का कोई स्वतः चालित आधार नहीं होती है। अतः पदोन्नति सम्बन्धी अन्तिम निर्णय पदोन्नति करने वाले अधिकारी को लेना पड़ता है

इस विधि में सेवा (सर्विस) रिकार्ड के आधार पर योग्यता/निपुणता का निर्धारण किया जाता है। इसलिए सभी कर्मचारियों से संबंधित रिकार्ड को रखा जाता है। कुछ गुण, विशेषता, कार्य निष्पादन, उत्पादन रिकार्ड, साक्ष्य या चेक लिस्ट इत्यादि के आधार पर आंकने का कार्य किया जाता है। गुण या विशेषताऐं जैसे कार्य का ज्ञान, व्यक्तित्व, निर्णय पहलशक्ति, यथार्थता, उत्तरदायित्व लेने की तत्परता, स्वच्छता, समय की पाबन्दी, संगठन क्षमता, इत्यादि या कर्मचारी के उत्पादन को निम्नांकित प्रकार से निर्धारित किया जा सकता है:

(अ) सामान्य के ऊपर (Above Average)

(ब) सामान्य(Average)

(स) सामान्य से नीचे(Below Average)

या इन्हें इस तरह से निर्धारित किया जा सकता है। (यथा भारत और ब्रिटेन में)

(क) अति उत्कृष्ट(Outstanding)

(ख) बहुत अच्छा (Very good)

(ग) संतोषजनक (Satisfactory)

(घ) साधारण (Indifferent)

(ड़) कमजोर (Poor)

कभी-कभी इसे इस प्रकार से भी निर्धारित किया जाता है। (जैसे - अमेरिका में)

(अ) अत्यधिक संभावना(Highest Possible)	(अ) असाधारण(Extraordinary)
(आ) बहुत अच्छा(Very Good)	(आ) संतोषजनक(Satisfactory)
(इ) निम्न(Bad)	(इ) अत्यधिक असंतोषजनक(Unsatisfactory)
(ई) अति निम्न/बहुत खराब(Very Bad)	

कभी-कभी विभिन्न श्रेणियां देकर भी निर्धारण का कार्य किया जाता है। जैसे- अ + आ, अ, ब, स इत्यादि या अंक अर्थात् नम्बर देकर।

20.6.3 संगठन के अध्यक्ष का व्यक्तिगत निर्णय

इस पद्धति में अर्हता का निर्धारण संगठन के अध्यक्ष द्वारा किया जाता है। संगठन के अध्यक्ष को सभी के विषय में जानकारी रहती है। उनके अधीन कार्य करने वाले प्रत्येक कर्मचारी के पूर्ण रुप से कार्य-निष्पादन के विषय में उनका व्यक्तिगत निर्णय होता है। इसलिए पदोन्नति करने के समय वह अपने निर्णय के अनुसार पदोन्नति करता है तथा अपने रुचि के अनुकूल लोगों की पदोन्नति करता है। यह पद्धति पक्षपात और भाई-भतीजावाद पर आधारित है। एक प्रकार से यह पुरस्कार पद्धति के समान है। यह निरंकुश प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करता है। यह प्रशासन में राजनीति एवं चाटुकारिता को बढ़ावा देता है। चाटुकार लोग कार्यालय के प्रधान को चारों तरफ घेरे रहते हैं एवं वे उन्हें अभिमानी एवं उच्छलबना देते हैं। फलस्वरुप कर्मचारियों में बहुत ही अनिपुणता, असुरक्षा तथा अनिश्चितता बनी रहती है।

इस प्रकार पक्षपातपूर्ण पदोन्नति कर्मचारियों के मनोबल को घटाती है। इस पद्धति में केवल जी-हुजूरी करने वाले तथा चापलूसों के लिए पदोन्नति का अच्छा अवसर उपलब्ध रहता है।

इस पद्धति में पदोन्नति का निर्णय संगठन के अध्यक्ष के ऊपर रहता है तथा इसको प्रायः व्यावसायिक या औद्योगिक प्रतिष्ठानों में अपनाया जाता है। यह पद्धति सिविल सेवा में अधिक प्रचलित नहीं है। फिर भी, कुछ उच्चस्तरीय कार्यकारी पदों पर इस पद्धति के अनुसार पदोन्नति की जाती है। केवल छोटे-छोटे संगठनों में ही विभिन्न कर्मचारियों के बारे में व्यक्तिगत जानकारी संभव है। विवेक एवं निर्णय का सही उपयोग संबंधित विभागाध्यक्ष के ईमानदारी एवं निष्पक्षता के ऊपर निर्भर करता है। वस्तुतः व्यवहार में पदोन्नति करने वाले अधिकारी(प्राधिकारी) का वास्तविक निर्णय संबंधित कर्मचारी के सेवा(सर्विस) रिकार्ड पूर्व कार्य निष्पादन एवं कार्यकुशलता निर्धारण के द्वारा प्रभावित होता है। फिर भी, अन्तिम रुप से किसी कर्मचारी के चयन करने में संगठन के अध्यक्ष का व्यक्तिगत निर्णय तो अपना प्रमुख स्थान रखता ही है। इस तरह, पदोन्नति हेतु जाँच की विभिन्न विधियों की हम लोगों ने चर्चा की है। सिविल सेवा में विभिन्न स्तरों पर ये सभी विधियां सुविधानुकूल अपनायी जाती है। साधारणतया परीक्षा एवं कार्यकुशलता निर्धारण के आधार पर निम्न और मध्यमस्तरीय रिक्त पदों को भरा जाता है। किन्तु उच्चस्तरीय रिक्त पदों को कार्यकारी अध्यक्ष के व्यक्तिगत रुचि के आधार पर भरा जाता है।

वास्तव में, पदोन्नति के द्वारा रिक्त पदों को भरने के लिए इन विधियों को उचित रुप से संयुक्त किया जाता है। इन विधियों को संयुक्त करने की विधियां विभिन्न प्रकार की है।

20.7 श्रेष्ठ पदोन्नति नीति की आवश्यक शर्तें

सिविल सेवा एक जीवन-वृत्ति है। यह प्रतिभाशाली लोगों के लिए आजीवन जीविका प्रस्तुत करता है। यह उनके उन्नति एवं विकास के लिए अवसर प्रदान करता है। यह सब पदोन्नति की केवल अच्छी नीति से ही संभव हो सकता है।

साथ ही बिना किसी गड़बड़ी के पदोन्नति की स्वच्छ नीति ही उच्चस्तरीय रिक्त पदों को भरने के लिए योग्य एवं सक्षम लोगों को लाने का कार्य कर सकती है। सिविल सेवा जैसी जीवन-वृति सेवा की सफलता के लिए पदोन्नति की एक श्रेष्ठ नीति की नितान्त आवश्यकता है। एक श्रेष्ठ पदोन्नति नीति की आवश्यक शर्तें निम्नलिखित है-

1. पदोन्नति की नीति को पहले से ही सुनिश्चित होना चाहिए।
2. सिविल सेवा का स्वच्छ एवं सही वर्गीकरण होना चाहिए।
3. प्रत्येक सेवा या वर्ग में पद या श्रेणी पदानुक्रम ढंग से व्यवस्थित होना चाहिए।
4. पदोन्नति की रेखा और नियम पहले से ही रखा/प्रस्तुत/ज्ञात होना चाहिए।
5. पदोन्नति करने का कार्यभार किसी एक व्यक्ति के बदले एक बोर्ड या समिति को देना चाहिए।
6. पदोन्नति की सुव्यवस्थित रुप से स्वीकृत विधि का सही अर्थ में पालन होना चाहिए।
7. कर्मचारी की पदोन्नति के लिए रिक्त स्थान के बारे में यह जानना चाहिए कि पदोन्नति एक सुअवसर है, न कि अधिकार। उसे दूसरों के साथ प्रतियोगिता में भाग लेकर ही पदोन्नति प्राप्त करनी चाहिए।
8. वरिष्ठता को अत्यधिक महत्व नहीं दिया जाना चाहिए। वरिष्ठता, अर्हता एवं कार्यक्षमता के सिद्धान्त का मिश्रण होना चाहिए। उच्चस्तरीय पदों के उत्तरदायित्व को ग्रहण करने में अभ्यर्थियों के पूर्व कार्य निष्पादन, सेवा रिकार्ड एवं योग्यता को निर्णायक तत्व के रुप में होना चाहिए। पदोन्नति हेतु अर्हता-जाँच के लिए योग्यता, कार्यकुशलता निर्धारण, परीक्षा साक्षात्कार इत्यादि के समान अनेक उपयुक्त साधनों को अपनाना चाहिए।

20.8 भारत में पदोन्नति पद्धति

भारत में पदोन्नति के मामले पर सर्वप्रथम चर्चा ब्रिटिश राज के समय 1669 ई0 में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के द्वारा पदोन्नति के लिए वरिष्ठता सिद्धान्त को स्वीकार किया गया। सिविल सेवा में 1793 के चार्टर एक्ट में स्पष्ट रुप से पदोन्नति के लिए वरिष्ठता सिद्धान्त को स्वीकार किया गया था। यह सिद्धान्त 1861 के भारतीय सिविल सेवा ऐक्ट के लागू होने तक प्रचलित रहा। यद्यपि, वरिष्ठता सिद्धान्त लागू था, किन्तु अर्हता, योग्यता, सक्षमता एवं सत्यनिष्ठा इत्यादि पर भी पदोन्नति के समय विचार किया जाता था। पदोन्नति के लिए वरिष्ठता-सह-अर्हता का सूत्र (फार्मूला) 1947 तक अपनाया गया।

स्वतंत्र भारत में 1947 में ही पदोन्नति के मामले में लोगों का ध्यान आकर्षित किया गया। सिविल सेवा में रिक्त पदों को भरने के लिए प्रथम वेतन आयोग(1947) ने भर्ती एवं पदोन्नति की पद्धति को संयुक्त किये जाने की अनुशंसा की। इसके अनुसार, वरिष्ठता सिद्धान्त को उन रिक्त पदों को भरने के लिए अपनाया जाना चाहिये जो कार्यालयी कार्यों की अच्छी जानकारी की शर्त को आवश्यक रुप से पूरा करता हो। उच्चस्तरीय रिक्त पदों को अर्हता सिद्धान्त के आधार पर तथा मध्यमस्तरीय रिक्त पदों को वरिष्ठता-सह-अर्हता सिद्धान्त के आधार पर भरा जाना चाहिए।

द्वितीय वेतन आयोग (1969) ने भी प्रशासन में उच्चस्तरीय रिक्त पदों को ‘अर्हता सिद्धान्त’ के आधार पर तथा मध्यम एवं निम्नस्तरीय रिक्त पदों को ‘वरिष्ठता-सह-उपयुक्त सिद्धान्त’ के आधार पर भरने की अनुशंसा की। प्रशासनिक सुधार आयोग ने भी पदोन्नति के लिए वरिष्ठता-सह-अर्हता सिद्धान्त की अनुशंसा की। विगत

चालीस वर्षो से भारत में पदोन्नति के लिए शासकीय सिद्धान्त, वरिष्ठता-सह-अर्हता का सिद्धान्त प्रचलित है। वरिष्ठता एवं अर्हता पदोन्नति के दो घटकों के प्रासंगिक महत्व विभिन्न सेवाओं में परिवर्तन होते रहते हैं।

भारत में केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकारों के द्वारा विभागाध्यक्ष की अनुशंसा पर तथा कभी-कभी तो केन्द्रीय लोक सेवा आयोग या राज्य लोक सेवा आयोग के अनुमोदन के आधार पर भी पदोन्नति की जाती है। कुछ पदों पर पदोन्नति के लिए वित्त-विभाग की मंजूरी आवश्यक है तथा कुछ उच्चस्तरीय पदों पर पदोन्नति के लिए तो प्रधानमंत्री या मुख्यमंत्री का अनुमोदन आवश्यक है।

बहुत से विभागों में तो पदोन्नति के उद्देश्य से विभागीय समिति (Departmental Promotional Committee) भी होते हैं। इसमें वरिष्ठता क्रम के अनुसार गोपनीय रिपोर्ट के आधार पर पदोन्नति की जाती है। सहायक, वरिष्ठ सहायक, अनुभाग अधिकरी, अधीक्षक इत्यादि जैसे माध्यम एवं निम्नस्तरीय पदों पर पदोन्नति के लिए वरिष्ठता-सह-कार्यकुशलता के सिद्धान्त को निरपवाद रुप से निरन्तर अपनाया गया। कुछ मामलों में इस व्यवहार के अतिरिक्त पदोन्नति के लिए ली जाने वाली प्रतियोगिता परीक्षाओं में कर्मचारियों को सम्मिलित होने की अनुमति दी जाती है। उच्चस्तरीय पदों पर पदोन्नति करने के लिए विभागीय पदोन्नति समिति सभी प्रकार से वरिष्ठता को उचित स्थान देते हुए अर्हता एवं उपयुक्त के आधार पर बनाई गई सूची से हटकर, पदोन्नति करती है। भारत में सेवाओं तथा विभिन्न श्रेणियों में पदोन्नति की पद्धति परिवर्तित होती रहती है। वर्तमान भारतीय पदोन्नति का विवेचनात्मक मूल्यांकन करने के बाद हम पाते हैं कि इसमें कुछ कमियां भी हैं जो निम्नलिखित हैं-

1. विभागाध्यक्ष जानबूझकर संभावित प्रतियोगियों की सूची में से कुछ लोगों के नाम निकाल देते हैं।
2. कार्मिकों के व्यक्तिगत सेवा (सर्विस) रिकार्डों को निष्पक्षता एवं यथेष्ठता से नहीं रखा जाता है।
3. पदोन्नति के द्वारा भरे जाने वाले रिक्त पदों के बारे में कर्मचारियों को सूचित नहीं किया जाता है।
4. अर्हता के बदले वरिष्ठता को अत्यधिक महत्व दिया जाता है।
5. पदोन्नति की सुव्यवस्थित मशीनरी के अभाव में अनुचित, मनमाने और अव्यवस्थित ढंग से पदोन्नति की जाती है।
6. पदोन्नति में अन्याय होने की स्थिति में इसके विरूद्ध अपील करने की कोई प्रभावकारी पद्धति नहीं है।

इन कमियों को दूर करने के लिए यह सुझाव दिया गया है कि एक उपयुक्त एवं सुव्यस्थित पदोन्नति की नीति को अपनाया जाना चाहिए। कर्मचारियों के सेवा(सर्विस) रिकार्डों को निष्पक्ष भाव से रखा जाना चाहिए। मूल्यांकन एवं अपील करने के लिए एक प्रभावशाली मशीनरी की स्थापना करनी चाहिए। सभी सरकारी सेवाओं में सभी स्तरों पर पदोन्नति करने के लिए बोर्ड या समितियों की स्थापना की जानी चाहिए। पदोन्नति करने के लिए मध्यमस्तरीय पदों से ही अर्हकारी परीक्षा तथा साक्षात्कार को प्रारम्भ किया जाना चाहिए।

20.9 सेवानिवृत्ति का अर्थ एवं महत्व

सरकारी कर्मचारी प्रायः कहते है ''अपाइंटमेंट इज रिटायरमेंट'' अर्थात् सेवा में नियुक्ति हुई है तोसेवानिवृत्ति भी अवश्यम्भावी है। सामान्यतः लोक सेवाओं में नवयुवक/युवतियां प्रवेश करते हैं तथा एक लम्बी अवधि तक सेवा करते-करते वृद्वावस्था की ओर अग्रसर होने लगते हैं, ऐसी स्थिति में शारीरिक तथा मानसिक रूप से क्षमताऐं स्वतः ही कम होने लगती है। वरिष्ठ कर्मचारी को विश्राम देने तथा उसे परिवार सहित सुखमय जीवन बिताने देने, संगठन की कार्यकुशलता बनाये रखने के लिए नौजवानों को प्रवेश देने तथा पदोन्नति की प्रतिक्षा में बैठे अधीनस्थ कार्मिकों को अवसर प्रदान करने के लिए लोक सेवकों की सेवानिवृत्ति (रिटायरमेंन्ट) आवश्यक होती है। यही सेवानिवृत्ति है।

सेवानिवृत्ति अथवा अवकाश ग्रहण करने की आयु अलग-अलग देशों में अलग-अलग है। इस आयु के निश्चय पर देश की जलवायु तथा जनता की औसत आयु का प्रभाव पड़ता है। अमेरिका में यह आयु 65 से 70 के बीच, ब्रिटेन में 60 से 65 के बीच तथा भारत में 55 से 60 के बीच है। ग्रेट ब्रिटेन में लोक सेवक 60 वर्ष का होने पर स्वेच्छा से अवकाश ग्रहण कर सकता है, किन्तु 65 वर्ष की आयु पुरी होने पर अवकाश अनिवार्य है। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद यह व्यवस्था की गई है कि किसी प्रकार की अयोग्यता होने पर 50 वर्ष में भी अवकाश ग्रहण किया जा सकता है।

भारत से सेवानिवृत्ति के लिए आयु अपेक्षाकृत कम रखी गई है। कारण यह है कि यहाँ की उच्च सेवाओं में पहले यूरोपवासियों की संख्या अधिक थी तथा वे यहाँ की जलवायु में शीघ्र ही थक जाते थे। इसी कारण यहाँ कर्मचारियों एवं अधिकारियों के लिए 58 वर्ष तथा अन्य कर्मचारियों के लिए 60 वर्ष की आयु सेवानिवृत्ति के लिए निर्धारित की गई।

अवकाश प्राप्ति की आयु सीमा के सम्बन्ध में दो विरोधी मत है। पहला, जनता एवं कर्मचारियों की दृष्टि से अनुभवी और प्रशिक्षित सेवीवर्ग की सेवाओं का लाभ उठाने के लिए यह आयु सीमा अधिकाधिक ऊँची रखी जानी चाहिए। दूसरा, नवागन्तुक कर्मचारियों के अनुसार ऐसा करने से पदोन्नति के अवसर घट जाऐंगे तथा नए लोगों की सेवा में प्रवेश प्राप्ति नहीं हो सकेगी।

20.10 सेवानिवृत्ति लाभ का औचित्य एवं उपयोगिता/आवश्यकता

प्रायः सभी देशों में वृद्धावस्था के कारण सेवानिवृत हुए लोगों के भरण-पोषण के लिए व्यवस्था की जाती है। उनको या तो मासिक पेंशन दी जाती है अथवा एक ही बार में भविष्यनिधि (Provident Fund) का भुगतान किया जाता है। अवकाश प्राप्ति के समय यदि व्यवस्था न की जाए तो इसके दो परिणाम हो सकते हैं, पहला- लोक सेवकों को आजीवन कार्य पर रखना होगा, जिसके कारण वृद्ध तथा अक्षम कार्यकर्ताओं की भरमार हो जएगी, अथवा दूसरा- अपने भूतपूर्व लोक सेवक कटी पतंग की भाँति निरावलम्ब होकर कष्ट का जीवन व्यतीत करेंगे। दोनों स्थितियाँ प्रशासनिक कार्यकुशलता एवं मानवीय दृष्टि से गलत हैं। अतः सेवानिवृत्ति काल में सरकार की ओर से आर्थिक सहयोग का प्रावधान औचित्यपूर्ण है।

इस औचित्य के सम्बन्ध में मुख्यतः चार सिद्धान्त प्रचलित हैं, 1. यह वृद्ध लोक सेवकों के प्रति सरकार की उदारता का प्रतीक है; 2. यह लोक सेवा के अच्छे कार्य का पुरस्कार है; 3. यह सामाजिक संरक्षण की एक योजना है; 4. यह लोक सेवकों का रूका हुआ वेतन है, जिसके वे अधिकारी हैं। ये चारों सिद्धान्त अलग-अलग समय की राजनीतिक विचारधारा के परिणाम हैं। इनमें से किसी को पूर्ण सत्य अथवा पूर्ण असत्य नहीं कहा जा सकता। विभिन्न देशों में वहाँ के संविधान तथा कानून द्वारा अलग-अलग व्यवस्थाएँ की गई हैं। सभी के पेंशन सम्बन्धी नियम भी अलग-अलग हैं। कुछ देशों में पेंशन सम्बन्धी नियम कानूनबद्ध हैं तथा न्यायपालिका द्वारा उनको लागू किया जाता है।

20.11 कर्मचारियों को उपलब्ध सेवानिवृत्ति लाभ

सेवानिवृत्ति व्यवस्थाएँ तीन प्रकार की हैं, पहला- गैर-अंशदायी, दूसरा- आंशिक रूप से अंशदायी तथा तीसरा- पूर्णतः अंशदायी। पहली व्यवस्था के अंतर्गत सेवानिवृत्ति भत्तों का पूरा व्यय सरकार वहन करती है। कर्मचारियों को सेवानिवृत्ति निधि में कुछ भी नहीं देना होता है। द्वितीय व्यवस्था के अंतर्गत सेवानिवृत्ति व्यय आंशिक रुप से सरकार द्वारा और आंशिक रुप से कर्मचारियों द्वारा वहन किया जाता है। कर्मचारियों का अंशदान उनके वेतन से अनिवार्यतः ले लिया जाता है और इसे सरकार के अंशदान सहित भविष्यनिधि खाते में जमा कर दिया जाता है। तीसरी व्यवस्था के अंतर्गत पूरा व्यय कर्मचारियों द्वारा अपने वेतन से किए गए कटौती के माध्यम से वहन किया जाता है।

इन व्यवस्थाओं में प्रत्येक के अपने-अपने गुण हैं। बहुत से लोग पहली व्यवस्था स्वीकार करने के अनिच्छुक होते हैं। उनका कहना है कि बचत द्वारा अपनी भविष्य की आवश्यकताओं के लिए प्रावधान करने का दायित्व सरकारी कर्मचारी का भी उतना ही है, जितना कि निजी(प्राइवेट) नौकरी में लगे व्यक्तियों का है। वे पूर्णतः अंशदायी व्यवस्था की वकालत करते हैं। दूसरी ओर कुछ लोगों की धारणा है कि पूरा व्यय सरकार द्वारा वहन किया जाना चाहिए। जैसे सरकार कर्मचारियों के वेतन का भुगतान करती है, ठीक उसी तरह उनके सेवानिवृत्ति भत्तों का भुगतान भी सरकार द्वारा किया जाना चाहिए और इन भत्तों को उनके वेतन का ही भाग माना जाना चाहिए। औचित्य की दृष्टि से भी इस व्यवस्था से अन्य ऐसे लोग भी हैं जो इसे संयुक्त जिम्मेदारी मानते हैं तथा आंशिक अंशदायी व्यवस्था की वकालत इस आधार पर करते हैं कि यह गैर-अंशदायी तथा पूर्णतः अंशदायी दो चरम सीमाओं के बीच मध्यमार्गी व्यवस्था है। यह तर्क भी दिया जाता है कि इस व्यवस्था से किसी एक पर अनावश्यक भार नहीं पड़ेगा तथा यह कर्मचारियों में त्याग की भावना जागृत करेगी। भारत में केन्द्रीय सरकार के कर्मचारियों के लिए सेवानिवृत्ति लाभ की दो योजनाएँ यथा पेंशन योजना तथा अंशदायी भविष्य-निधि योजना है।

20.12 सेवानिवृत्ति लाभ- पेंशन एवं भविष्यनिधि(Retirement Benefits & Pension and Provident Fund)

एक निर्धारित उम्र पर सेवानिवृत्त होने वाले लोक सेवक को दो प्रकार की सुविधाएँ प्रदान की जाती है- पेंशन और भविष्य निधि। पेंशन सेवानिवृत्त लोक सेवक को मासिक या वार्षिक रूप से आजीवन दी जाती है। कभी-कभी यह लोक सेवक के मरणोपरान्त भी उसके आश्रितों को प्रदान की जाती है। भविष्यनिधि का भुगतान एक ही बार में किया जाता है। इस राशि में लोक सेवक के वेतन से काटी गई राशि भी शामिल होती है।

सेवा-निवृत्ति लाभ के इन दोनों रूपों की तुलनात्मक उपयोगिता का विवेचन किया जा सकता है। पेंशन की व्यवस्था का लाभ यह है कि इसका भुगतान जीवनपर्यन्त मिलता रहता है। सरकार की दृष्टि से भी यह व्यवस्था उपयोगी है, क्योंकि उसे थोड़ी-थोड़ी राशि प्रतिमाह देनी पड़ती है। इसके अतिरिक्त पेंशन व्यवस्था में सरकार लोक सेवक पर समुचित नियन्त्रण रख पाती है। पेंशन लोक सेवक के लिए अपेक्षाकृत अधिक आर्थिक सुरक्षा का प्रतीक है क्योंकि उसकी न्यूनतम आवश्यकताएँ नियमित रूप से जीवनपर्यन्त पूरी होती रहेगी। इसमें किसी प्रकार की हानि या कठिनाई की आंशका नहीं रहती। भविष्यनिधि के रूप में प्राप्त होने वाली एक बड़ी रकम को सुरक्षित रखने तथा लाभ पर लगाने की गम्भीर चिन्ता बनी रहती है। असावधानी या फिजूलखर्ची के कारण कभी-कभी यह राशि शीघ्र समाप्त हो जाती है तथा लोक सेवक और उसके परिवार का शेष जीवन परेशानी में व्यतीत होता है, अतः पेंशन व्यवस्था अधिक उपयोगी मानी जाती है।

भविष्यनिधि का लाभ यह है कि इसके रूप में एक बड़ी राशि एक ही बार में प्राप्त हो जाती है, जिसकी सहायता से सेवानिवृत लोक सेवक कोई नया उद्यम या व्यवसाय प्रारम्भ कर सकता है, जो उसके तथा उसके परिवार की खुशहाली का प्रतीक बन जाए। पेंशन की व्यवस्था उस कर्मचारी के स्वजनों के लिए हानिकारक होती है, जिसकी सेवानिवृत्ति के कुछ समय पहले अथवा तुरन्त बाद मृत्यु हो जाए। ऐसी स्थिति में भविष्यनिधि का परिवारजनों को भुगतान किया जाता है। भविष्यनिधि की व्यवस्था में लोक सेवक आवश्यकता के समय जब चाहे तभी निवृत्ति पा सकता है, किन्तु पेंशन व्यवस्था में लाभ का भूत उसे अधिक समय तक सेवा में बनाए रखता है। पेंशन लम्बी तथा अच्छी सेवा का पुरस्कार है, इसलिए विवश होकर लोक सेवक अधिकतम काल तक सेवा में बने रहना चाहता है। भविष्यनिधि की व्यवस्था में कर्मचारी स्वतन्त्रता और आत्मसम्मान के साथ कार्य करता है तथा उसे उच्च अधिकारियों के अनावश्यक अंक में नही रहना चाहता।

स्पष्ट है कि पेंशन एवं भविष्यनिधि दोनों व्यवस्थाओं के अपने-अपने लाभ तथा हानियाँ हैं। अतः आजकल सेवानिवृत्ति लाभ के रूप में मिश्रित विधि का विधान किया जाता है, तदनुसार पेंशन का एक भाग भविष्यनिधि में जमा करा दिया जाता है तथा उसका भुगतान मृत्यु अथवा सेवानिवृत्ति के समय एकमुश्त कर दिया जाता है। इसी प्रकार भविष्यनिधि की राशि वार्षिक दान के रूप में परिवर्तित कर दी जाती है तथा लोक सेवक को थोड़ी-थोड़ी राशि का भुगतान नियमित रूप से होता रहता है।

20.13 पेंशन योजना

पेंशन योजना में सेवानिवृत कर्मचारी को निश्चित मासिक राशि का भुगतान निहित है। पेंशन योजना कर्मचारियों को जब तक वे जीवंत रहें, तब तक उन्हें सुरक्षित जीवन की गारंटी देती है। दूसरे, पेंशन योजना सरकार को कर्मचारियों पर उनकी सेवानिवृत्ति के बाद भी काफी नियंत्रण बनाए रखने की सामर्थ्य देती है। जब भी सरकार को ऐसा प्रतीत हो कि पेंशन राशि राज्य के विरूद्व विद्रोही कार्यों में संलग्न है अथवा अन्य प्रकार सरकार की प्रतिष्ठा के विरूद्व कार्यरत हैं, तो उसकी पेंशन किसी भी समय रोकी जा सकती है। पेंशन को अधिकार या हक के रूप में अभ्यर्थित नहीं किया जा सकता है। यह संतोषजनक तथा मान्य सेवा के आधार पर अर्जित की जाती है और भविष्य में अच्छा आचरण प्रत्येक पेंशन धारक की एक अंतर्निहित शर्त है।

परन्तु पेंशन योजना में यदि कठोर प्रकरणों के लिए स्पष्ट रूप से अनुकूल प्रावधान न किए गए हों तो इस योजना में उस सरकारी कर्मचारी के परिवार को कठिनाई का सामना करना पड़ता है, जिसकी सेवा में रहते हुए अथवा सेवानिवृत्ति के तुरन्त बाद अथवा पेंशन लाभ प्राप्त करने के कुछ ही वर्षो बाद अकाल मृत्यु हो गई हो। इसके अलावा सरकारी कर्मचारी अर्हकारी(क्वालीफाईंग) सेवा अवधि पूरी किए बिना पेंशन पर सेवानिवृत नहीं हो सकता है।

20.14 पेंशन के प्रकार

पेंशन अंशदायी(Contributory) तथा गैर-अंशदायी दोनों प्रकार की होती है। अंशदायी पेंशन में सरकार तथा लोक सेवक दोनों का अंशदान होता है तथा इस प्रकार संचित राशि में से पेंशन दी जाती है। यह व्यवस्था लोक सेवक के आत्मसम्मान के अनुकूल है तथा उसमें अपनेपन तथा अधिकार की भावना भी जाग्रत होती है। इस व्यवस्था में लोक सेवक कुछ कहने का अधिकारी भी बन जाता है।

पेंशन प्रदान करने की परिस्थितियों के अनुसार इसे सामान्य तथा असामान्य दो रूपों में विभाजित किया जाता है। सामान्य पेंशन को पाँच भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है। 1. वृद्धावस्था पेंशन- यह उस लोक सेवक को दी जाती है, जो एक निश्चित आयु प्राप्त करने के बाद (जैसे 58 से 60 वर्ष) सेवानिवृत्ति किया गया हो; 2. अवकाश पेंशन- यह उस लोक सेवक को दी जाती है, जो एक निश्चित समय तक काम करने के बाद स्वयं ही सेवानिवृत होने की इच्छा प्रकट करता है; 3. अशक्तता पेंशन- यह उस लोक सेवक को दी जाती है, जो शारीरिक या मानसिक असमर्थता के कारण काम करने में अयोग्य हो जाता है; 4. क्षतिपूर्ति पेन्शन- यह उस लोक सेवक को प्रदान की जाती है, जिसका पद समाप्त किया जा चुका है किन्तु उसके बराबर का पद दिया नही जा सकता है; 5. सदस्यता पेन्शन- यह उस लोक सेवक को दी जाती है जो दुराचार या अकार्यकुशलता के कारण सेवानिवृत किया गया है, किन्तु सहानुभूतिवश जिसे पोषणवृत्ति प्रदान की जाती है।

असामान्य पेन्शन ऐसे लोक सेवक को दी जाती है, जो अचानक ही मृत्यु का ग्रास बन गया हो। इसका लक्ष्य लोक सेवक की विधवा पत्नी एवं बच्चों का पालन-पोषण करना होता है। यदि मृत लोक सेवक के माता-पिता बेसहारा रह जाएँ तो उन्हें भी इस प्रकार की पेन्शन उपलब्ध कराई जाती है।

वैधानिक रूप से लोक सेवक को पेन्शन का अधिकार प्राप्त नहीं होता। सरकार द्वारा पेन्शन को कभी भी रोका जा सकता है। जब भी सरकार यह अनुभव करे कि सम्बन्धित लोक सेवक राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेने लगा

है या उसने विदेशी नागरिकता प्राप्त कर ली है या वह सरकार के सम्मान तथा हितों को हानि पहुँचा रहा है या लोक सेवक अपराध एवं दुराचार का दोषी पाया गया है तो सरकार द्वारा उसकी पेन्शन रोकी जा सकती है। ग्रेट ब्रिटेन में ऐसे विवादों का अन्तिम निर्णय करने की शक्ति वहाँ के राजकोष को प्राप्त है।

स्पष्ट है कि पेन्शन की मांग लोक सेवक द्वारा अधिकार रूप में नहीं की जाती वरन् यह राज्य द्वारा सशर्त रूप से प्रदान की जाती है। इसकी मुख्य शर्तें है -

- यह तभी प्रदान की जाती है, जबकि सम्बन्धित लोक सेवक का कार्य पूर्णतः सन्तोषजनक रहा हो;
- असन्तोषजनक कार्य होने पर पेन्शन की राशि में सरकार द्वारा इच्छानुकूल कमी की जा सकती है;
- सम्बन्धित लोक सेवक की नियुक्ति नियमानुसार की गई हो तथा वह नियमित कर्मचारी रहा हो;
- लोक सेवक राज्य का पूर्णकालीन (Full time) कार्यकर्ता रहा हो;
- लोक सेवक का वेतन पूर्णरूप से सरकारी कोष से मिलता रहा हो;
- लोक सेवक ने कुछ न्यूनतम वर्षों तक राज्य सेवा ही हो;
- लोक सेवक पेन्शन की उम्र तक पहुँच चुका हो अथवा उतनी उम्र तक न पहुँचा हो तो मानसिक या शारीरिक दृष्टि से कार्य करने में असमर्थ हो।

पेन्शन के सम्बन्ध में कुछ मूलभूत प्रश्न उत्पन्न होते हैं, जिनका समाधान विभिन्न देशों में अलग-अलग प्रकार से किया जाता है। ये प्रश्न निम्नलिखित है -

1. पेन्शन अधिकार के लिए न्यूनतम सेवाकाल भारत में 58 वर्ष तथा 60 वर्ष है। इस उम्र वाले लोक सेवक भी तभी पेन्शन पाने के अधिकारी होंगे, जबकि वे दस वर्ष तक राज्य-सेवा में रह चुके हों। इससे कम अवधि में सेवानिवृत्ति होने के बाद लोक सेवक को सहायता राशि दी जाती है, जो प्रत्येक वर्ष के एक माह के वेतन के बराबर होती है। यदि 58 या 60 वर्ष की उम्र पूरी होने से पहले ही लोक-सेवक की 30 वर्ष की सेवा पूरी हो जाने पर भी उसे आर्थिक या प्रशासनिक आवश्यकता के कारण सेवानिवृत्ति किया जा सकता है। अकार्यकुशल लोक सेवक भी अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्ति किए जा सकते हैं।
2. क्या अस्थाई सेवाकाल की गणना की जाए? सामान्यतः वही पदाधिकारी पेन्शन पाने का अधिकारी होता है, जो स्थाई पद पर स्थाई रह कर सरकार से वेतन प्राप्त करते हुए निश्चित कार्यकाल तक सेवा कर चुका हो। विशेष नियमों के अनुसार, यदि अस्थायी लोक सेवक बाद में स्थाई हो जाए तो, उसका अस्थाई सेवाकाल का आधा समय विहित काल में गिन लिया जाता है।
3. वेतन क्रम(Pay Scale) तथा पेन्शन का अनुपात क्या रखा जाए? इस सम्बन्ध में केन्द्रीय वेतन आयोग की सिफारिशों पर 1 अप्रैल 1950 से यह व्यवस्था की गई कि सेवाकाल के प्रत्येक वर्ष के औसत वेतन का 80वाँ भाग जोड़ा जाता है। 30 वर्ष या 25 वर्ष की सेवा कर चुकने वालों की औसत वेतन का अर्द्धांश-वेतन पेन्शन के रूप में प्रतिमाह आजीवन मिलता रहता है। अब लोक सेवकों को मृत्यु एवं सेवानिवृत्ति सहायता तथा परिवार पेन्शन देने की भी व्यवस्था की गई है।
4. यदि सेवाकाल में लोक सेवक का देहावसान हो जाए तो उसे सहायता के रूप में कुछ राशि प्रदान की जाती है। जो उसके उस समय के वेतन का अधिक से अधिक 12 गुना भाग हो सकती है। यदि सेवानिवृत लोक सेवक की कुछ समय बाद मृत्यु हो जाए तो जो राशि वह पेन्शन के रूप में ले चुका है, यदि वह अन्तिम वर्ष के वेतन के बारह गुने से कम है, तो शेष राशि उसके परिवार वालों को दे दी जाएगी।

5. परिवार पेन्शन का नियम यह है कि यदि 25 वर्ष की सेवा के बाद, किन्तु नियमित सेवानिवृत्ति से पूर्व कर्मचारी की मृत्यु हो जाए तो उसके परिवार को पांच वर्ष तक उसे दी जाने वाली पेन्शन का अर्द्धांश प्राप्त होता रहता है।

20.15 भविष्य निधि योजनाएँ (Provident Fund Schemes)

सेवानिवृत्त लोक सेवकों के लिए पेन्शन के अतिरिक्त बीमा अथवा भविष्यनिधि जैसे लाभ भी प्रदान किए जाते हैं। ये पेन्शन योजना से दो बातों से भिन्न है। पहला- ये प्रायः अंशदायी होते हैं। सरकार तथा कर्मचारी दोनों ही प्रतिमाह आधा-आधा जमा कराते रहते हैं। बीमा योजनाएँ तो पूर्णतः अंशदायी होती हैं इनका पूरा धन लोक सेवक की ओर से ही कटता है तथा सरकार द्वारा केवल इसकी व्यवस्था हेतु ही व्यय किया जाता है। दूसरा- ये लाभ सेवानिवृत्ति के बाद प्रतिमाह अदा नहीं किए जाते, वरन् इनको एक ही बार में अदा कर दिया जाता है।

भारत में अप्रैल 1950 से लोक सेवकों के लिए बीमा योजना एवं भविष्यनिधि योजनाएँ प्रारम्भ की गई बीमा योजना से भी लोक सेवकों को सुरक्षा प्राप्त होती है। सरकार की सेवाओं के अतिरिक्त रेलवे, विश्वविद्यालयों, आदि की सेवाओं में पेंशन के स्थान पर भविष्यनिधि की व्यवस्था की जाती है। इसमें कर्मचारी को प्रति वर्ष अपने वेतन का लगभग 10 प्रतिशत अंश कटवाकर प्रति मास अपनी भविष्यनिधि में जमा कराना होता है। सरकार इस निधि में अपनी ओर से अंशदान करती है। कर्मचारी के अवकाश ग्रहण करने पर उसे यह धनराशि ब्याज सहित उपलब्ध हो जाती है।

20.16 सेवोपहार(Gratuity)

सेवोपहार का तात्पर्य है, किसी व्यक्ति को उसके सेवाकाल के लिए एक प्रकार का उपहार या उपदान। इसमें एक व्यक्ति को उसके सेवा के वर्षों की संख्या के अनुसार मासिक वेतन दिया जाता है मान लीजिए किसी व्यक्ति ने 9 वर्ष की सेवा करने के बाद 400 रू प्रति मास के वेतन पर अवकाश ग्रहण किया है तो उसे 400 रू प्रति मास का सेवोपहार दिया जायेगा। पूरी पेंशन पाने के लिए 25-30 वर्ष की सेवा करना आवश्यक है।

20.17 पेंशन का विनिमयकरण(Commutation)

पेंशन पर मिलने वाली राहत राशि को छोडकर पेंशन का अधिकतम 1/3 एक तिहाई चिकित्सा प्रमाण-पत्र पर अथवा उसके बिना भी विनियियत किया जा सकता है और इसके बदले एकमुश्त धनराशि प्राप्त की जा सकती है। परिवार पेंशन को विनिमयित(कम्यूट) नहीं किया जा सकता है। मेडीकल परीक्षण के बिना सेवानिवृति/रिटायरिंग पेंशन का विनिमयकरण(कम्यूटेशन) किया जा सकता है, बशर्ते प्रार्थनापत्र सेवामुक्ति की तिथि से एक वर्ष के अंदर दिया गया हो।

विनिमय मूल्य की संगणना विनिमय हेतु समर्पित पेंशन की राशि, समर्पण मूल्य तालिका के गुणक तथा पेंशनभोगी की आगामी जन्म तिथि पर आयु के आधार पर की जाती है।

प्राप्य एकमुस्त धनराशि = विनिमय हेतु समर्पित पेंशन राशि X 12 X आगामी जन्म तिथि पर आयु के अनुरूप समर्पण तालिका में गुणक

विनिमयकरण की सीमा तक पेंशन की राशि कम कर दी जाएगी। तथापि सेवामुक्ति के 15 वर्ष के बाद मूलतः विनिमयित पेंशन का भाग पेंशनर को फिर से दिया जाना चालू कर दिया जाएगा।

अभ्यास प्रश्न-

1. कर्मचारियों को पदोन्नति किस रूप में दी जाती है?
2. पदोन्नति की कितनी श्रेणियां या प्रकार हैं?
3. सिविल सेवा में उच्चस्तरीय पद का क्या अर्थ है?
4. भारत में ब्रिटिश राज में पदोन्नति के लिए किस सिद्धान्त को अपनाया गया?

5. पदोन्नति के कितने सिद्धान्त हैं?
6. भारत में पदोन्नति के लिए कौन सा सिद्धान्त प्रचलित है?
7. सेवानिवृत होने वाले लोक सेवक को कितने प्रकार की सुविधाऐं दी जाती हैं?
8. भविष्यनिधि का भुगतान लोक सेवक को कैसे किया जाता है?
9. पेंशन कितने प्रकार की होती है?
10. सेवोपहार(Gratuity) क्या है?

20.18 सारांश

पदोन्नति और कुछ नहीं, बल्कि सेवारत लोगों के मध्य से ही रिक्त स्थानों को अप्रत्यक्ष रुप से भरने की एक प्रक्रिया है। पदोन्नति जीवन-वृति सेवा का एक अनिवार्य अंग है। यह सक्षम कर्मचारी को सेवा में सर्वोच्च पद पर पहुँचने में सहायता प्रदान करती है। यह सरकार को पहले से ही सेवारत कार्मिकों के सर्वोत्तम प्रतिभा एवं अनुभव का उपयोग करने में भी सहायता करती है। विश्व के बहुत से देशों में पदोन्नति के अर्हता-सिद्धान्त को स्वीकार किया गया है, लेकिन साथ ही, वरिष्ठता को भी उचित स्थान दिया गया है। इस इकाई में हमने पदोन्नति के अर्थ, महत्व, प्रकार एवं आवश्यकता की चर्चा की है। हमने पदोन्नति के इन दो सिद्धान्तों से सम्बद्ध गुण-दोषों का भी परीक्षण किया है, अर्थात् वरिष्ठता एवं अर्हता तथा पदोन्नति के लिए अर्हता-जाँच की विभिन्न विधियों का भी परीक्षण किया है। अंत में हमने भारतीय पदोन्नति पद्धति का भी आलोचनात्मक मूल्यांकन किया है।

सामान्यतः यह कहा जा सकता है कि भारत में सरकारी कर्मचारियों के वेतनमान निजी(Private) नौकरियों के वेतनमानों से संतोषजनक रूप से तुलनात्मक है। संगठित शिल्पकर्म के लिए लोक सेवा में भुगतान की दरें वहीं हैं, जो निजी सेवा में है। लिपिकीय तथा निम्न-वर्ग की अन्य सेवाओं के लिए सरकारी वतनमान सामान्यतः निजी नौकरियों के वेतनमानों से बेहतर है। मध्यवर्गी पदों के लिए वेतनमान वहीं है जो निजी व्यवसाय या उद्योग में है। उच्चतर, विशेषकर उच्चतम पदों का पारिश्रमिक सामान्यतया निजी नौकरी में प्राप्त पारिश्रमिक से कम है।

यह अपरिहार्य तथ्य है कि कोई भी प्रतिकार योजना अथवा वेतन ढांचा सभी घटकों को संतुष्ट नहीं कर सकता है। वस्तुतः प्रशासकीय व्यवस्था की दक्षता केवल असैनिक सेवा (सिविल सर्विस) की निष्ठा एवं समर्पण से ही बढाई जा सकती है। प्रोत्साहन अच्छे औद्योगिक संबंधों, बेहतर कार्य आयोजन तथा वैज्ञानिक प्रबंधक का स्थान नहीं ले सकते। जैसा कि पंडित नेहरू ने कहा था ''नए भारत की सेवा ऐसे उत्साही, दक्ष कार्यकर्त्ताओं द्वारा की जाना चाहिये, जिनका उन उद्देश्यों में प्रचंड विश्वास है जिनके लिये वे सेवारत है, जिन्हें प्राप्त करने के लिये वे दृढ प्रतिज्ञ हैं तथा जो उच्च वेतन के आकर्षण हेतु नहीं, प्रत्युत काम और उसके गौरव के लिये कार्य करते हैं। मुद्रा प्रेरणा को न्यूनतम स्तर तक घटाया जाना चाहिये।''

20.19 शब्दावली

जीवन-वृति सेवा- एक सेवा जिसे व्यक्ति युवावस्था से प्रारम्भ कर अपने सेवानिवृति के समय तक आजीवन उसी सेवा में काम करता है।

वरिष्ठता- सेवा प्रारम्भ करने की तिथि से लेकर गणना की गई सेवा की अवधि।

कार्यकुशलता स्तर- पूर्व सेवा (सर्विस) रिकार्ड के आधार पर किसी कर्मचारी के कार्य का तुलनात्मक रूप से मूल्यांकन करना।

सेवा(सर्विस) रिकार्ड- किसी कर्मचारी के बारे में कार्यालय के द्वारा रखा गया उसका व्यक्तिगत सेवा(सर्विस) रिकार्ड।

पारितोषिक- पेंशन का एक भाग सेवानिवृति पर एकमुश्त धनराशि में दिया जाता है।

प्रोत्साहन- कर्मचारियों को उनके वेतन के अतिरिक्त दिये जाने वाले आर्थिक और गैर-आर्थिक लाभ।

आदर्श नियोजन- सेवा नियुक्ति देने वाले आदर्श नियोजक।

पेंशन- सेवानिवृत्ति के उपरान्त जब तक कर्मचारी जीवित रहे तब तक प्रतिमाह भुगतान की जाने वाली निश्चित राशि।

भविष्य निधि- सेवा निवृत्ति के उपरान्त देय एकमुश्त धन राशि।

20.20 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. पुरस्कार के रूप में, **2.** तीन, **3.** अधिक अधिकार एवं उत्तरदायित्व, **4.** वरिष्ठता सिद्धान्त, **5.** तीन, **6.** वरिष्ठता-सह-अर्हता सिद्धान्त, **7.** दो प्रकार की(पेंशन और भविष्य निधि), **8.** एकमुस्त(राशि), **9.** दो प्रकार की(अंशदायी और गैर-अंशदायी), **10.** एक प्रकार का उपहार

20.21 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भट्टाचार्य, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, वर्ल्ड प्रेस, कलकत्ता 1987
2. अवस्थी और माहेश्वरी, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, लक्ष्मी नारायण, आगरा, 1982
3. शरण, माडर्न पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन थ्योरी एण्ड प्रैक्टिस,किताब महल, इलाहाबाद, 1988
4. इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली की पाठ्य पुस्तक एम.एस.-22, कम्परेटिव एच0आर0डी0 एक्सपीरियेन्सेज, 1992
5. डॉ0 देवेन्द्र प्रताप नारायण सिंह,कार्मिक प्रबन्ध, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, 1973
6. पी0एस0 भटनागर, मोरेल इन द सिविल सर्विस, इन्डियन सोसायटी फॉर पब्लिक अफेयर्स, जयपुर 1984
7. पी0डी0 दास, सर्विस रोल ऑफ हाई सिविल सर्विस इन ईंडिया।
8. वी0एम0 सिन्हा, पर्सनल एडमिनिस्ट्रेसन।
9. वी0ए0 पेनादीकर, पर्सनल सिस्टम फोर डेवल्पमेंट एडमिनिस्ट्रेसन।

20.22 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. भट्टाचार्य, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, वर्ल्ड प्रेस, कलकत्ता 1987
2. अवस्थी और माहेश्वरी, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, लक्ष्मी नारायण, आगरा, 1982
3. इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली की पाठ्य पुस्तक एम0एस0-22, कम्परेटिव एच0आर0डी0 एक्सपीरियेन्सेज, 1992
4. वी0एम0 सिन्हा, पर्सनल एडमिनिस्ट्रेसन।
5. वी0ए0 पेनादीकर, पर्सनल सिस्टम फोर डेवल्पमेंट एडमिनिस्ट्रेसन।

20.23 निबंधात्मक प्रश्न

1. पदोन्नति का अर्थ बताते हुए उसके सिद्वान्तों की विवेचना कीजिए।
2. पदोन्नति के महत्व पर प्रकाश डालिये।
3. सेवानिवृति लाभ क्या हैं? समझाइए।
4. सेवानिवृति लाभ की औच्छिता क्या है? समझाइए।

इकाई- 21 लोक सेवाओं का तुलनात्मक अध्ययन

इकाई की संरचना

21.0 प्रस्तावना
21.1 उद्देश्य
21.2 लोकसेवा का अर्थ और विशेषताऐं
21.3 लोकसेवा के स्रोत
21.4 लोकसेवा सुधार हेतु समितियों का गठन
21.5 लोक सेवकों के राजनीतिक अधिकार
 21.5.1 मतदान का अधिकार
 21.5.2 चुनाव लड़ने का अधिकार
 21.5.3 विचार व्यक्त करने का अधिकार
 21.5.4 संघ बनाने का अधिकार
 21.5.5 हड़ताल करने का अधिकार
 21.5.6 राजनीतिक तटस्थता
21.6 आंचार संहिता और अनुशासन
 21.6.1 ग्रेट ब्रिटेन में लोकसेवकों के लिए आचार-संहिता और अनुशासन
 21.6.2 फ्रांस में लोकसेवकों के लिए आचार-संहिता और अनुशासन
 21.6.3 अमेरिका में लोकसेवकों के लिए आचार-संहिता और अनुशासन
 21.6.4 भारत में लोकसेवकों के लिए आचार-संहिता और अनुशासन
21.7 सारांश
21.8 शब्दावली
21.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
21.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
21.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
21.12 निबंधात्मक प्रश्न

21.0 प्रस्तावना

भारत में लोक सेवाओं का विकास न तो आधुनिक भारत का परिणाम है, और न ही यह जैसा कि सोचा जाता है, पूरी तरह से भारत में ब्रिटिश शासन का ही योगदान है। प्राचीन भारत में लोकसेवा संगठन के ऐतिहासिक प्रमाण हैं, किन्तु उस समय इसकी कुशल संरचनात्मक संस्थागत व्यवस्था नहीं थी। साथ ही उस समय लोक सेवाओंमें निरन्तरता का अभाव था, क्योंकि शासन व्यवस्था में परिवर्तनों से लोक सेवाऐं भी बदल जाती थी। जैसा कि हम जानते हैं लोकसेवा शब्द तथा वर्तमान में इसकी जो व्यवस्था दिखाई देती है, सर्वप्रथम अंग्रेजों ने स्थापित की थी। इस इकाई में लोक-सेवकों/सेवाओं का अध्ययन करने का प्रयास किया गया है जो सरकार के दैनिक कार्यपालिका कार्यों को सम्पन्न करने में सहायता प्रदान करते हैं। यह सर्वविदित है कि सरकार राज्य के कार्यों को पूर्ण करने में एक इकाई के रूप में कार्य करती है। लोकसेवा कैसे निर्मित होती है, इसका कोई विश्वव्यापी स्पष्टीकरण नहीं है। जैसा कि भारत और ब्रिटेन में लोक सेवकों की कोई कानूनी परिभाषा नहीं है। फ्रांस में, महाविद्यालय के प्राध्यापकों और विद्यालय के शिक्षकों को लोक सेवक की सूची में सम्मिलित किया गया है। भारत और अमरीका में केन्द्रीय लोक सेवक हैं, साथ में राज्यों के अलग से लोक सेवक होते हैं। इन देशों में स्वतंत्र अथवा अर्द्ध-स्वतंत्र शासकीय

इकाइयाँ होती हैं, जो लोक सेवकों की भर्ती करती है। जैसे- लोकसेवा आयोग(ब्रिटेन), इकोल नेशनल एडमिनिस्ट्रेशन(फ्रांस), कार्यपालिका कार्मिक विभाग(EPD)(अमरीका), संघीय लोकसेवा आयोग(भारत)। भारत और अमरीका में राज्य लोक सेवकों की भर्ती के लिए राज्य लोकसेवा आयोग होते हैं। इन देशों की लोकसेवा में भर्ती, सेवा-शर्तों आदि में विभिन्नता है।

21.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- लोकसेवा क्या है, तथा लोकसेवा की विशेषताओं के सम्बन्ध में जान पायेंगे ।
- लोकसेवा के स्रोत और लोकसेवा के सुधार हेतु गठित समितियों के सम्बन्ध में जान पायेंगे।
- लोक सेवकों के राजनीतिक अधिकारों को समझ पायेंगे।

21.2 लोकसेवा का अर्थ और विशेषताऐं

परम्परागत राजनीतिशास्त्र विषय में नीति-निर्माण और उसे लागू करने में अन्तर किया गया है। सरकार के दो मुख्य उत्तरदायित्व हैं- नियम बनाना और उन्हें लागू करना। राजनीतिक कार्यपालिका और व्यावसायिक प्रशासन में अन्तर होता है। राजनीतिक कार्यपालिका अव्यवसायी प्रशासक तथा लोकसेवक व्यावसायिक प्रशासक होते हैं। इसके अलावा, लोकतान्त्रिक देशों में राजनीतिक कार्यपालिका संसद के प्रति जवाबदेह होती है और लोक-सेवक राजनीतिक कार्यपालिका के प्रति जवाबदेह होती है। राजनीतिक कार्यपालिकाएँ लोक-सेवकों के समान स्थायी नहीं होती है। संसद, मंत्रीमण्डल तथा दूसरे राजनीतिक कार्यकर्ता समय-समय पर बदलते रहते हैं, किन्तु लोक सेवाएँ स्थायी रूप से शासन संचालन में भाग लेती हैं।

'लोकसेवा' शब्द का प्रचलित अर्थ राज्य की प्रशासकीय सेवा की लोक शाखाएँ (असैनिक) है। लोक सेवाएँ प्रशासकीय संगठन का एक ऐसा माध्यम है, जिसके द्वारा सरकार अपने लक्ष्यों को प्राप्त करती है। भारत, इंग्लैण्ड और अमरीका में लोकसेवा का राजनीतिक सम्बन्ध अपेक्षाकृत कम है। इन राजनीतिक सम्बन्धों के होते हुए भी लोकसेवा व्यवस्था में अग्रलिखित विशेषताएँ पायी जाती हैं-

1. राजनीतिक तटस्थता;
2. कार्य संचालन में कठोर एवं व्यवस्थित अनुशासन एवं नियन्त्रण रहता है;
3. स्थायित्वपन अर्थात् स्थायी कार्यकाल;
4. नियमानुसार एवं लिखित प्रक्रिया द्वारा कार्य सम्पन्न होता है;
5. प्रशिक्षित कार्यकर्ता। सामान्य और विशिष्ट कार्य करने में सक्षम;
6. जीवनवृत्ति के रूप में अर्थात् लोकसेवा एक पेशा है;
7. उत्तरदायित्व की भावना एवं सेवाभाव से कार्य सम्पन्न;
8. वेतनभोगी कार्यकर्ता;
9. पदसोपान सिद्धान्त के आधार पर कार्य; और
10. सामाजिक प्रतिष्ठा तथा कुछ विशेषाधिकार प्राप्त होते हैं।

उपर्युक्त मानदण्डों के आधार पर तुलनात्मक अध्ययन सम्भव है। देशों की विभिन्न ऐतिहासिक राजनीतिक असमानता के कारण लोकसेवा व्यवस्था में अन्तर देखने को मिलता है। साथ में लोकसेवा में निरन्तर परिवर्तन होता रहता है और इस परिवर्तन के विभिन्न देषों में विभिन्न कारण होते हैं। अतः लोक सेवाओं का विश्लेषण करने में समय का विशेष महत्व होता है। इसके अतिरिक्त लोकसेवा के संगठनात्मक सिद्धान्तों की विशेषताओं का भी

तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है। इस प्रकार तुलनात्मक अध्ययन द्वारा ही लोकसेवा की भूमिका को सही परिप्रेक्ष्य में समझा जा सकता है।

21.3 लोकसेवा के स्रोत(Sources of Civil Service)

लोकसेवा का प्रारम्भ अत्यन्त प्राचीनकाल में राजाओं द्वारा अपने शासन का कार्य चलाने के लिए कर्मचारी रखने की पद्धति से शुरू हुआ। प्राचीन भारत में इसका विस्तृत विवरण चाणक्य के अर्थशास्त्र में मिलता है। चीन में भी राजाओं द्वारा शासकीय कार्य चलाने के लिए लोकसेवा का गठन किया। यद्यपि लोकसेवा की पद्धति प्राचीन है फिर भी इसका नामकरण 150 वर्ष पूर्व हुआ है। इसका प्रयोग सर्वप्रथम भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के प्रशासन में उन कर्मचारियों के लिए किया जाता था, जो उसकी सैनिक सेवा में नहीं होते थे, किन्तु कर वसूली, आदि के दीवानी और असैनिक कार्यों में लगे होते थे। दीवानी कार्यों में लगे होने के कारण इन्हें 'सिविल सेवा' के कर्मचारी कहा जाता था। इंलैण्ड में सर राबर्ट पोल ने सन् 1841-42 में इसका पहली बार प्रयोग किया। किन्तु इसे लोकप्रिय बनाने का श्रेय सर चार्ल्स ट्रेवेलियन को है, उन्होंने 1854 में नॉर्थकोट के साथ मिलकर इंलैण्ड में सरकारी कर्मचारियों की भर्ती के सम्बन्ध में लिखी रिपोर्ट में इस शब्द का प्रयोग किया। उन्होनें रिपोर्ट में यह अनुशंसा की कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी की भाँति इंग्लैण्ड में भी प्रतियोगिता परीक्षा के परिणाम के आधार पर 'सिविल सर्विस' में सरकारी कर्मचारियों की भर्ती की जाय। अमरीका में 'लोकसेवा' शब्द का पहली बार प्रयोग वर्ष 1883 में हुआ। प्रशा में सर्वप्रथम लोकसेवा का विकास किया गया, अतः इसे आधुनिक लोकसेवा का जन्मदाता माना जाता है।

ब्रिटेन में लोकसेवा का आधुनिक रूप सौ वर्षों से अधिक के क्रमिक विकास का परिणाम है। सामान्य मान्यता के अनुसार आधुनिक ब्रिटिश लोकसेवा का प्रारम्भ 1853 से माना जाता है। 1854 में चार्ल्स ट्रेवेलियन तथा नॉर्थकोट के प्रस्तावों के आधार पर ब्रिटिश लोकसेवा में सुधार एवं पुनर्गठन किया गया, उनका आज भी महत्व है। 1914-1918 के प्रथम विश्वयुद्ध में लोकसेवा के दायित्व भारी मात्रा में बढ़ गये। बदलती हुई परिस्थितियों के अनुकूल बनाने के लिए राजकोष द्वारा 1917 में जॉन ब्रेडबरी तथा 1918 में ग्लैडस्टोन की अध्यक्षता में समितियाँ नियुक्त की गयी। लोकसेवा के विभिन्न वर्गों के संगठन पर विचार करने का कार्य राष्ट्रीय हिटले परिषद की समिति को सौंपा गया। इस समिति ने लोकसेवाओं के वर्गों का उल्लेख किया। सन् 1931 में 'कारपेण्टर समिति' की सिफारिश पर सरकार ने वैज्ञानिक अधिकारियों के वर्ग स्थापित किये। द्वितीय विश्वयुद्ध ने भी लोक सेवाओं के सामने अनेक नवीन उलझनें तथा चुनौतियाँ उपस्थित कर दी। युद्ध के बाद लोकसेवा की संरचना में कुछ परिवर्तन किये गये। 1946 में सामान्य व्यावसायिक वर्गों की श्रृंखलाएँ प्रारम्भ की गयी। लोक सेवाओं में किये गये परिवर्तन केवल संरचना तक ही सीमित नहीं थे। इनमें कुछ अन्य महत्वपूर्ण विकास भी हुए जो मुख्यतः ये हैं- एशेटन समिति (1943) के अनुसार प्रशिक्षण के लिए नियोजित कार्यक्रम प्रारम्भ हुए; संगठन एवं प्रविधि कार्य का विकास; वेतन तथा सेवा की अन्य शर्तों की पुनरीक्षा के लिए स्वतंत्र निकायों की स्थापना हुई; कर्मचारियों की संख्या के सम्बन्ध में राजकोष द्वारा विभागों को सत्ता का अधिक प्रत्यायोजन किया गया।

सन् 1966 में फुल्टन की अध्यक्षता में एक समिति गठित की गयी। इस समिति ने 1968 में लोकसेवा की भर्ती, संरचना, प्रबन्ध तथा प्रशिक्षण में सम्बन्धित महत्वपूर्ण परिवर्तन के सुझाव दिये थे। फुल्टन समिति की अनुशंसा पर 1968 में सिविल सर्विस विभाग तथा 1970 में लोकसेवा महाविद्यालय की स्थापना की गयी। आज यही सभी सेवाओं के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किये जा रहे हैं। जनवरी, 1971 से प्रशासकीय कार्यकारी तथा लिपिकीय वर्ग की अलग श्रेणियों को समाप्त करके एक ही सामान्य वर्ग बना दिया गया। इस प्रकार ब्रिटेन में लोकसेवा अपने परम्परागत ढाँचे से धीरे-धीरे विकसित होकर वर्तमान स्वरूप तक पहुँची है।

लोकसेवा के विकास के सम्बन्ध में अमरीका का अनुभव ब्रिटेन के विकास से भिन्न है। अमरीका में लोकसेवा सार्वजनिक सेवा में कार्यकुशलता बढ़ाने तथा राष्ट्रपति के कार्यों को सशक्त करने के रूप में प्रारम्भ हुई। लोकसेवा

की स्थापना अमरीका में वर्ष 1883 में हुई। परन्तु ऐसा नहीं कि अमरीकी प्रशासनिक व्यवस्था यकायक 1883 में परिवर्तित हुई हो, बल्कि इसके पूर्व 1877 से न्यूयार्क लोकसेवा सुधार संगठन तथा 1881 में राष्ट्रीय लोकसेवा लीग की स्थापना हुई। 1883 में अमरीकी कांग्रेस ने एक अत्यन्त महत्वपूर्ण 'सिविल सेवा अधिनियम' पारित किया जो 'पेण्डलेटन अधिनियम' के नाम से जाना जाता है। इस अधिनियम में ब्रिटिश लोकसेवाओं में प्रवर्तित प्रतियोगी परीक्षाओं द्वारा भर्ती, सेवाकाल की सुरक्षा तथा राजनीतिक तटस्थता को सम्मिलित किया गया था। लोकप्रशासन को बौद्धिक विकास और नवनिर्माण की देन अमरीकी अनुभवों का परिणाम है। अमरीका में प्रशासन मशीनरी की पहल 1887 में वुडरो विल्सन के लेख 'The Study of Administration' के प्रकाशन से प्रारम्भ हुई। अमरीका में समय-समय पर लोक सेवाओं से सम्बन्धित अन्य महत्वपूर्ण पहलुओं पर कानून निर्मित होते रहे है, जिनमें से मुख्य निम्न हैं- सेवानिवृत्ति अधिनियम, 1920; पदस्थिति का वर्गीकरण, 1923/1949; प्रथम और द्वितीय हूवर आयोग, 1937/1949; राम्पसैक अधिनियम, 1940 (योग्यता आधारित भर्ती के पदों का दायरा बढ़ाने हेतु); हेच अधिनियम, 1936, 1939, 1940 (राजनीतिक हस्तक्षेप से सुरक्षा); वरिष्ठ नागरिक/पूर्व सैनिक वरीयता अधिनियम, 1944; शासकीय कर्मचारी प्रशिक्षण अधिनियम, 1958; स्वास्थ्य बीमा अधिनियम, 1959; वेतन सुधार अधिनियम, 1962; और सामान्य रोजगार अवसर अधिनियम, 1972; आदि।

किन्तु 1978 में राष्ट्रपति जिमी कार्टर के शासनकाल में प्रथम बार लोकसेवा में महत्वपूर्ण परिवर्तन किये गये। लोकसेवाओं में कार्यकुशलता को बढ़ाने के लिए यह अधिनियम 'योग्यता प्रणाली' के प्रमुख सिद्धान्तों की स्पष्ट व्याख्या करता है और 'लूट प्रणाली' पर अधिक अंकुश लगाता है। इस अधिनियम के द्वारा संघीय लोकसेवा को समाप्त कर दिया गया। अब निम्न अभिकरण इसके कार्यों को सम्पन्न करते हैं- (अ) ऑफिस ऑफ पर्सोनेल मैनेजमेण्ट; (ब) मेरिट सिस्टम प्रोटेक्शन बोर्ड; (स) फेडरल लेबर रिलेशन अथॉरिटी; तथा (द) ईक्वल एम्प्लायमेण्ट अपौरचुनिटी कमीशन। वर्तमान में अमरीका की लोकसेवा पद वर्गीकरण, योग्यता, कार्यक्षमता, प्रबन्धकीय दृष्टिकोण के कारण इसे ब्रिटेन तथा फ्रांस की तुलना में विशिष्ट स्थान प्रदान करती है।

अमेरीका, ब्रिटेन तथा भारत में लोकसेवा में भर्ती खुली प्रतियोगिता द्वारा होती है, परन्तु फ्रांसीसी व्यवस्था कुछ अलग है। फ्रांस में नौकरशाही की प्रमुख विशेषताएँ क्रान्ति के बाद ही विकसित हुई है। पुराने समय के परम्परावादी एवं जटिल संगठन को समाप्त करके एक नवीन रूपरचना की स्थापना की।

फ्रांस में लोकसेवाओं को सेवा की अपेक्षा 'कोर्प्स' कहा जाता है। वैसे वित्त, राजस्व आदि से सम्बन्धित कोर्प्स की शुरूआत तो लुई चौदहवें के शासनकाल में हो गयी थी परन्तु कोर्प्स का विधिवत प्रसार नेपोलियन बोनापोर्ट ने किया था। स्वयं नेपोलियन तथा उसके बाद के शासकों के काल में लोकसेवाएँ अव्यवस्था तथा शोषण का शिकार होती रही। ब्रिटेन की तरह के विधिसम्मत सेवा नियमों के अभाव में फ्रांस के लोकसेवक राजनीतिक गतिविधियों तथा अनियमितताओं से लिप्त हो गये। लोकसेवाओं में व्याप्त दोषों का निराकरण करने के लिए तृतीय गणराज्य से पूर्व की विधायिका ने सुधार के लिए अनेक प्रयास किये, किन्तु असफल रहे। मनमानी पूर्वक सेवकों का चयन करने के स्थान पर योग्यता को महत्व दिया जाने लगा तथा मन्त्रियों की स्वेच्छा से होने वाली नियुक्तियाँ समाप्त हो गयी।

फ्रांस में लोक सेवाओं का वर्गीकरण 1915 के अधिनियम द्वारा किया गया। इस वर्गीकरण के अन्तर्गत लोक सेवाएँ पाँच वर्गों- उच्च प्रशासकीय वर्ग, निष्पादक वर्ग, अधीनस्थ वर्ग, श्रमिक वर्ग तथा तकनीकी या व्यावसायिक सेवा वर्ग में विभक्त कर दी गयीं। लोकसेवा सम्बन्धी नियमों का पहला संहिताकरण विची(Vichy) सरकार द्वारा 1941 में किया गया, किन्तु यह बाद में रद्द कर दिया गया। इसके स्थान पर एक नया प्रारूप 1946 में बनाया गया। 1946 में संसद ने 'Statue General des Functionnaires' स्वीकार किया, जो लोकसेवा के लिए अधिकार-पत्र माना जाता है। सन् 1946 में, पेरिस में 'लोकसेवा सम्भाग' तथा 'प्रशासन का विद्यालय' (ईकोल नेशनल डी एडमिनिस्ट्रेशन) स्थापित किये गये। प्रधानमंत्री के प्रत्यक्ष नियन्त्रण में स्थापित लोकसेवा

सम्भाग मुख्यतः कार्मिक नीति-निर्माण, लेखा संधारण, विधायी कार्य तथा सेवा नियमों के क्रम में सुधार देने का कार्य करने लगा। प्रशासन का विद्यालय(ई0एन0ए0) लोकसेवकों की भर्ती तथा प्रशिक्षण दोनों कार्य करता है जो आज अपनी गुणवत्ता के लिए विश्व प्रसिद्ध है। फ्रांस की लोक सेवाएँ भारत की तरह 'ए', 'बी', 'सी' तथा 'डी' चार वर्गों में विभाजित है। वर्तमान लोकसेवा व्यवस्था का संचालन 1959 में निर्मित संविधान द्वारा होता है।

21.4 लोकसेवा सुधार हेतु समितियों का गठन

स्वतन्त्रता के पश्चात लोकसेवा तथा प्रशासन के विभिन्न अंगों में सुधार हेतु अनेक समितियों का गठन किया गया जिनमें प्रमुख अग्रलिखित हैं- गिरजाशंकर बाजपेयी समिति, 1947; आयंगर समिति, 1948; ए0डी0 गोरवाला आयोग, 1951; पॉल ऐपल्बी रिपोर्ट, 1953, 1956; सन्थानम समिति, 1964; प्रशासनिक सुधार आयोग, 1966 (सर्वाधिक महत्वपूर्ण)।

प्रशासनिक सुधार आयोग को ऐसे उपायों तथा साधनों पर विचार करने के लिए कहा गया, जिनके द्वारा लोकसेवकों में कार्यकुशलता और निष्ठा के उच्चतर स्तर प्राप्त किये जा सके और लोकप्रशासन को ऐसा उपयोगी तन्त्र बनाया जा सके, जिसके माध्यम से सरकार की आर्थिक और सामाजिक नीतियों को लागू करके विकास के आर्थिक एवं सामाजिक उद्देश्यों को पूर्ण किया जा सके। साथ में आयोग को निम्नलिखित बातों पर विशेष रूप से विचार करने के लिए कहा गया था- भारत सरकार का प्रशासनिक संगठन तथा उसकी कार्य करने की प्रणाली, प्रत्येक स्तर पर योजना का संगठन, केन्द्र-राज्य सम्बन्ध, वित्तीय प्रशासन, सेवीवर्ग प्रशासन, आर्थिक प्रशासन, राजस्व प्रशासन, कृषि प्रशासन, जिला प्रशासन और नागरिकों की शिकायतों के निवारण की समस्या आदि। इस प्रकार आयोग का क्षेत्राधिकार काफी व्यापक था। आयोग ने 20 प्रतिवेदन तथा 578 सुझाव प्रस्तुत किये थे। इस आयोग ने सेवीवर्ग प्रशासन के सम्बन्ध में विस्तार से अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया था। परीक्षार्थियों की बढ़ती हुई संख्या को सीमित करने तथा भर्ती और चयन के सम्बन्ध में उपाय सुझाने हेतु कोठारी समिति(1975) गठित की गयी, जिसने अपना प्रतिवेदन 1976 में प्रस्तुत किया। आजकल लोकसेवा (अखिल भारतीय सेवा और केन्द्रीय सेवाओं) की परीक्षा इसी समिति के सुझावों पर संचालित होती है। लोकसेवा परीक्षा के पुनरीक्षण तथा मूल्यांकन करने के लिए सतीशचन्द्र (1988) समिति गठित की गयी, जिसने अपनी सिफारिशें (1989) में प्रस्तुत कीं, जिसे स्वीकार कर लिया गया है। 1993 की परीक्षा से यह सिफारिशें लागू हो गयी हैं। इस प्रकार उपनिवेश प्रशासन से प्राप्त लोकसेवा के समस्त क्षेत्रों में सुधार के प्रयास किये गये हैं, जिससे स्वतन्त्रता के पश्चात निर्धारित सामाजिक और आर्थिक विकास सम्भव हो सके तथा कल्याणकारी राज्य की स्थापना सुनिश्चित की जा सके। अतः भारतीय लोकसेवा को नवीन चुनौतियों का सामना करने के लिए तैयार किया जा रहा है। अभी इस दिशा में और प्रयास अपेक्षित है।

संक्षेप में, अमरीकी लोकसेवा की पृष्ठभूमि प्रबन्धात्मक है जो वैज्ञानिक प्रबन्ध आन्दोलन में फली-फूली है। ब्रिटिश लोकसेवा व्यवस्था सामान्यता विकास में विकासवादी रही है और जिसका दृष्टिकोण रूढ़िवादी है। फ्रांस की कार्यकुशलता लोकसेवा वहाँ की राजनीतिक अस्थिरता के फलस्वरूप दुर्बल राजनीतिक व्यवस्था की क्षतिपूर्ति के रूप में स्थापित हुई। इसके विपरीत, भूतपूर्व सोवियत संघ की लोकसेवा क्रान्ति की उपज थी और वर्गविहीन समाज की स्थापना की पक्षधर थी। यह वर्गहीन समाज मार्क्स-लेनिन के आदर्शों पर स्थापित था। उपरोक्त देशों की तुलना में भारत की स्थिति निम्न कारणों से भिन्न रही है-

- स्वतन्त्र देश के रूप में नवीन चुनौतियों का सामना करने की आवश्यकता;
- उपनिवेशवादी लोकाचार से ग्रसित लोकसेवा में सुधार करके उसे अधिक उत्तरदायी बनाना; और
- विकसित देशों में विकास कार्यक्रमों से परिचित करना।

विकसित देशों के विपरीत भारत की लोकसेवा को उपनिवेशवाद शासन की अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ा। ऐसी समस्याएँ विकसित देशों के लिए नगण्य हैं। लोकसेवा का ऐतिहासिक विकास, सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियाँ भी दूसरे देशों की लोकसेवा से भिन्नता का कारण है।

21.5 लोकसेवकों के राजनीतिक अधिकार (Political Rights of Civil Servants)

आधुनिक समय में प्रशासन के इस पहलू ने सबसे अधिक राजनीतिक विवाद उत्पन्न किया है कि लोकसेवकों को कुछ राजनीतिक अधिकार दिये जाये या नहीं। लोकसेवकों को विभिन्न देशों में अलग-अलग प्रकार और मात्रा में राजनीतिक अधिकार प्राप्त है। लोकसेवकों को प्राप्त राजनीतिक अधिकारों का तुलनात्मक अध्ययन करने से न केवल ज्ञान की वृद्धि होती है अपितु उनके आनुपातिक लाभ और हानि की जानकारी भी प्राप्त होती है। लोक सेवकों को प्राप्त राजनीतिक अधिकार उनकी संगठित शक्ति के परिचायक हैं, जो वे विधायिका और कार्यपालिका पर डालते हैं। तुलनात्मक दृष्टि से निम्नलिखित अधिकारों की चर्चा करने का प्रयास किया गया हैं- चुनाव में मतदान का अधिकार; चुनाव लड़ने का अधिकार; विचार व्यक्त करने का अधिकार; संघ बनाने का अधिकार; हड़ताल का अधिकार; और राजनीतिक तठस्थता।

सामान्यता लोकतान्त्रिक देशों में जनता के उपर्युक्त अधिकार संविधान द्वारा सुरक्षित होते हैं, किन्तु लोकसेवकों के उपर्युक्त अधिकारों पर कुछ प्रतिबन्ध लगे होते हैं, जिससे वे तटस्थ तथा निष्पक्ष रूप से सार्वजनिक सेवाएँ सम्पन्न कर सकें तथा साथ में प्रशासन सुचारू रूप तथा बिना किसी व्यवधान के चलता रहे। लोकसेवकों के राजनीतिक अधिकारों की स्थिति अलग-अलग देशों में विभिन्न प्रकार की होती है।

21.5.1 मतदान का अधिकार

लोकतान्त्रिक ढाँचे के अन्तर्गत फ्रांस, ब्रिटेन, अमरीका तथा भारत में लोकसेवकों को मत देने का अधिकार प्राप्त है। विश्व के विकसित तथा अन्य देशों की तुलना में फ्रांस के लोकसेवकों को सर्वाधिक राजनीतिक अधिकार प्राप्त है। सन् 1946 में लोकसेवकों के कर्तव्य तथा अधिकार विस्तृत रूप से स्पष्ट किये गये तथा वर्तमान स्थिति निम्न है- किसी भी राजनीतिक दल का सदस्य हो सकता है; किसी भी दल की मान्यताओं का समर्थन कर सकता है; राजनीतिक दल में कोई पद ग्रहण कर सकता है; राजनीतिक सभाओं में भाषण कर सकता है; राजनीतिक लेख आदि लिख सकता है; चुनावों में प्रत्याशी के रूप में खड़ा हो सकता है, परन्तु सेवा से त्यागपत्र देना होता है तथा पद को पुनः प्राप्त कर सकता है अथवा लोकसेवा में फिर से जा सकता है। ड्यूटी पर रहते हुए राजनीतिक प्रचार नहीं कर सकते हैं, अन्यथा छूट प्राप्त है।

इस प्रकार के राजनीतिक अधिकार ब्रिटेन, भारत और अमरीका के लोकसेवकों को नहीं प्राप्त हैं। फ्रांस के समान जर्मनी में संघीय विधान-मण्डल के लिए चुने जाने पर लोकसेवक को पद से त्यागपत्र देना पड़ता है (भारत में यही स्थिति है)। त्यागपत्र देने के बाद ही चुनाव लड़ सकता है एवं चुनाव अभियान में भाग ले सकता हैऔर पराजित हो जाने पर पुनः पद ग्रहण कर सकता है। चुने जाने पर वह पेन्शन पर सेवानिवृत्त हो सकता है और हारने पर वह अपने पद पर लौटने के लिए प्रार्थना कर सकता है। इसके विपरीत राष्ट्रमण्डलीय देशों में लोकसेवकों के राजनीतिक अधिकारों पर कड़े बन्धन हैं। कनाडा में उनके लिए राजनीति में भाग लेना वर्जित है।

अमरीका में लोकसेवकों को जनसेवक माना जाता है और उन पर राजनीतिक प्रतिबन्ध लगे हैं। आम नागरिकों के समान लोकसेवकों को मताधिकार की स्वतन्त्रता प्राप्त है। लोकसेवक गैर-राजनीतिक प्रकृति की संस्थाओं मे भाग ले सकते हैं, किन्तु उन्हें जन-विवाद अथवा प्रचार के कार्यों में नहीं उलझना चाहिए। अमरीकी लोकसेवकों की राजनीतिक गतिविधियों पर रोक लगायी गयी है। यह रोक हेच अधिनियम(Hatch Act) 1939 और 1940 द्वारा लगायी गयी है। 1939 और 1940 में पारित हेच अधिनियमों ने क्रमशः सभी संघीय कर्मचारियों तथा संघीय कोष से सहायता प्राप्त लाखों राज्य एवं नगरपालिका कर्मचारियों को राजनीतिक गतिविधियों से अलग रखने की

व्यवस्था की। मुख्य प्रतिबन्धित राजनीतिक गतिविधियाँ थीं- किसी राजनीतिक सम्मेलन में प्रतिनिधि बनाना; दलीय अधिकारी या दल की समिति के सदस्य के रूप में कार्य करना; राजनीतिक रैलियों का संगठन एवं आयोजन; राजनीतिक भाषणबाजियां; दल के लिए चन्दा माँगना एवं मत माँगना; किसी दल या प्रत्याशी के पक्ष या विरोध में वक्तव्य प्रकाशित करना; राजनीतिक साहित्य का विवरण। कुछ अन्य प्रतिबन्ध भी निम्न हैं- कोई भी लोकसेवक दलीय कार्य के लिए धन एकत्र नहीं कर सकता; न तो चुनाव लड़ सकता है और न चुनाव प्रचार में हिस्सा ले सकता है; राजनीतिक संगठन के सदस्य नहीं हो सकते; और प्रत्याशी के पक्ष में मत नहीं माँग सकते।

अमरीकी संविधान के प्रथम और चौदहवें संशोधन के अनुसार जनसेवकों के संवैधानिक अधिकारों को सीमित किया गया है। अमरीकी कांग्रेस को लोकसेवकों की राजनीतिक भूमिका पर नियन्त्रण लगाने की शक्ति प्राप्त है। उच्चतम न्यायालय ने ऐसे प्रतिबन्धों के संवैधानिक औचित्य को स्वीकृति प्रदान की है। हाल के अनेक न्यायिक घोषणाओं ने लोकसेवकों के कुछ महत्वपूर्ण राजनीतिक अधिकारों को सुरक्षित रखा है, विशेषकर अभिव्यक्ति, संगठन और सोचने की स्वायत्ता को। वर्तमान में सबसे महत्वूपर्ण विवाद जो लोक कर्मचारियों के विचार व्यक्त करने की स्वतन्त्रता को सुनिश्चित करता है- Pickering Vs. Illinois (1968)।

ब्रिटेन में, भारत और अमरीका के लोकसेवकों की अपेक्षा अधिक राजनीतिक अधिकार प्राप्त हैं। भारत का लोकसेवक मत देने में स्वतन्त्र हैं। अमरीका और ब्रिटेन की भाँति भारतीय लोकसेवकों पर निम्नलिखित राजनीतिक प्रतिबन्ध हैं-

1. लोकसेवक किसी राजनीतिक दल या संगठन का सदस्य नहीं हो सकता।
2. लोकसेवक राजनीतिक दल या संगठन की कार्यवाही में हिस्सा नहीं ले सकता।
3. दल में कोई पद ग्रहण नहीं कर सकता।
4. राजनीतिक दलों की सभा में भाषण नहीं दे सकता, लेख नहीं लिखा सकता।
5. चुनाव में किसी प्रत्याशी के पक्ष या विपक्ष में प्रचार नहीं कर सकता।
6. राजनीतिक दल की रैलियों में और उसके आयोजन में हिस्सा नहीं ले सकता।
7. चुनाव में एजेण्ट के रूप में कार्य नहीं कर सकता।

सारांश में, भारत में लोकसेवकों पर कठोर राजनीतिक प्रतिबन्ध लगे हैं। इस प्रकार जहाँ तक राजनीतिक अधिकारों का सम्बन्ध है भारत, इंग्लैण्ड और अमरीका की लोकसेवकों की तुलना में फ्रांस के लोकसेवकों को सर्वाधिक राजनीतिक अधिकार प्राप्त है।

21.5.2 चुनाव लड़ने का अधिकार

लोकसेवकों के चुनाव लड़ने के अधिकार के सम्बन्ध में विभिन्न देशों में विविधता है। इस सम्बन्ध में सबसे अधिक उदार चुनाव नियम फ्रांस में देखने को मिलते है। फ्रांस में राज्य कर्मचारियों को राजनीतिक गतिविधियों की अधिकतम स्वतन्त्रता प्राप्त है। फ्रांस के लोकसेवकों को चुनाव लड़ने की पूर्ण छूट है। इसके अतिरिक्त वहाँ लोकसेवक अपने पद को पुनः प्राप्त कर सकता है। यदि वह चुनाव हार जाता है या संसदीय पद से त्यागपत्र दे देता है तो उसकी पदोन्नति तथा निवृत्ति वेतन सम्बन्धी अधिकार ज्यों के त्यों बने रहते है। परन्तु अमरीका में, स्थानीय स्तर पर लोकसेवकों को चुनाव लड़ने की पात्रता है, बशर्ते इससे उनकी कार्यक्षमता प्रभावित नहीं होती हो। इसके विपरीत भारत का लोकसेवा आचरण नियम किसी भी लोकसेवक को चुनाव लड़ने की अनुमति प्रदान नहीं करता है। पद से त्यागपत्र देकर लोकसेवक चुनाव लड़ सकते हैं। 1947 से 1960 तक केन्द्रीय सरकार ने स्थानीय स्तर पर चुनाव लड़ने की अनुमति लोकसेवकों को प्रदान की थी, परन्तु इसे भी समाप्त कर दिया गया है। ब्रिटेन में लोकसेवक वैध राजनीतिक दलों की सदस्यता प्राप्त कर सकते हैं। लोकसेवकों को जो राजनीतिक अधिकार दिये जाते हैं, वे उनके वंर्ग या स्तर के अनुसार अलग-अलग है -

1. प्रशासकीय, निष्पादक तथा व्यावसायिक सेवाओं के लोकसेवक राजनीतिक गतिविधियों में भाग नहीं ले सकते हैं। यदि विभागाध्यक्ष चाहे तो उन्हें केवल स्थानीय निकायों के चुनाव लड़ने की अनुमति दे सकता है, बशर्ते कि वे संयम, विवेक तथा निष्पक्ष होकर राष्ट्रीय चिन्तन को महत्व दें, न कि स्थानीय राजनीति में उलझे रहें।
2. लिपिकीय तथा अधीक्षक वर्ग के सेवक संसद के अतिरिक्त अन्यत्र चुनाव लड़ने के लिए स्वतन्त्र है।
3. निम्न स्तरीय तथा औद्योगिक कार्मिकों को अधिक राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्त है। वे संसद हेतु चुनाव लड़ सकते हैं लेकिन पद से त्यागपत्र देना पड़ता है। चुनाव में पराजय के बाद या संसद का कार्यकाल पूरा करके एक निश्चित अवधि में पुनः उसी पद पर वापस आ सकते है।

21.5.3 विचार व्यक्त करने का अधिकार

भारत और ब्रिटेन में लोकसेवकों को विचार व्यक्त करने की स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं है। वे आमसभा में भाषण नहीं दे सकते, लेख नहीं लिख सकता आदि। यहाँ तक कि पुस्तक अथवा लेख लिखने की अधिकृत अधिकारी से पूर्व अनुमति लेनी पड़ती है। अमरीका में संघीय कर्मचारियों को व्यक्तिगत रूप से ना कि शासकीय कर्मचारी के रूप में राजनीतिक विषयों पर विचार व्यक्त करने की स्वतन्त्रता प्राप्त है। इन देशों के विपरीत, फ्रांस में लोकसेवक ना केवल लेख लिख सकते हैं, राजनीतिक भाषण भी दे सकते हैं अपितु सरकारी नीतियों और क्रियान्वयन व्यवस्था की आलोचना भी कर सकते हैं। यह कार्य वह नौकरी के अतिरिक्त समय में कर सकता है।

21.5.4 संघ बनाने का अधिकार

इस अधिकार में तीन समस्याएँ अन्तर्निहित हैं- 1. क्या लोकसेवक अपना समुदाय या संघ बना सकते हैं? 2. क्या ये संघ शासन के बाहर के ट्रेड यूनियनों से सम्बद्ध हो सकते हैं? तथा 3. क्या ये संघ किसी राजनीतिक दल में सम्मिलित हो सकते हैं? इस विषय में प्रत्येक देश में अलग-अलग मान्यताऐं एवं रिवाज है।

ब्रिटेन में संघ बनाने के लिए लोक कर्मचारी सर्वथा स्वतन्त्र हैं और वे उनके सदस्य रह सकते हैं, चाहे सरकार ने उन संघों को मान्यता दी हो या न दी हो अथवा यही नहीं, कोई भी ऐसा संघ अपने वार्षिक अधिवेशन में प्रस्ताव पारित करके या अपने सदस्यों के मतदान द्वारा स्वीकृत करने पर किसी भी बड़े ट्रेड यूनियन आन्दोलन का भागीदार बन सकता है। लेकिन 1927 तथा 1946 के बीच व्यापार विवाद अधिनियम(Trade Disputes Act) ने स्थायी लोक कर्मचारी को किसी ऐसे संघ से सम्बन्ध रखने का निषेध कर दिया था, जिसका कोई भी सम्बन्ध किसी बाहरी ट्रेड यूनियन या किसी राजनीतिक दल से है। 1945 की मजदूर सरकार ने 1946 में यह अधिनियम रद्द कर दिया था। तत्पश्चात कुछ लोकसेवक संघों(Civil Service Unions) ने ट्रेड यूनियन कांग्रेस(Trade Union Congress) से पुनः सम्बन्ध स्थापित कर लिये। इन संघों में डाक विभाग के लिपिक-वर्ग तथा ऐसे ही अन्य कर्मचारियों का प्रतिनिधित्व करने वाले बड़े संघ सम्मिलित थे। किन्तु व्यावसायिक, निष्पादकीय तथा प्रशासकीय लोक कर्मचारियों का प्रतिनिधित्व करने वाले समुदाय या संघ इनसे पृथक रहे। जहाँ तक राजनीतिक दलों से सम्बन्धित होने का प्रश्न है, वहाँ केवल डाक विभाग के कर्मचारियों का संघ ही मजदूर संघ से सम्बद्ध है। अन्य कोई संघ किसी दल से सम्बद्ध नहीं है।

संयुक्त राज्य अमरीका में संघीय कर्मचारियों को किसी भी सेवा संगठन या संघ का सदस्य बनने का इस शर्त पर अधिकार है कि उनका वह संगठन या संघ अपने सदस्यों को सरकार के विरूद्ध हड़ताल के लिए बाध्य नहीं करेगा। यह अधिकार संशोधित 'लॉयड-ला फॉलेट अधिनियम, 1912' के अन्तर्गत दिया गया है।

भारत में वर्तमान स्थिति यह है कि लोकसेवक किसी भी ऐसे सेवा संघ में सम्मिलित नहीं हो सकता और न सदस्य ही हो सकता है, जिसे अस्तित्व में आने के छह माह के भीतर ही सरकार द्वारा मान्यता प्रदान कर दी गयी हो, या मान्यता देना अस्वीकार कर दिया हो, या मान्यता वापस ले ली हो। इन संघों को मान्यता निम्नलिखित शर्तों के आधार पर दी जाती हैं-

1. कोई ऐसा व्यक्ति जो सरकारी कर्मचारी नहीं है, संघ के मामलों से सम्बन्धित नहीं होना चाहिए;
2. संघ के पदाधिकारियों को केवल सदस्यों में से ही नियुक्त किया जाना चाहिए;
3. संघ किसी एक ही सरकारी सदस्य के हित का पोषण या समर्थन नहीं करेगा; तथा
4. संघ को कोई राजनीतिक निधि नहीं रखनी चाहिए और न किसी राजनीतिक दल या राजनीतिज्ञ के विचारों का प्रचार करना चाहिए। गैर-रेलवे औद्योगिक कर्मचारियों तथा रेलवे कर्मचारियों के सम्बन्ध में (जो केन्द्रीय सरकार के अन्तर्गत कुल कर्मचारियों के 70 प्रतिशत है) यह नियम अधिक उदार है। उदाहरण के लिए, उनके संघों को राजनीतिक निधि रखना निषिद्ध नहीं है।

21.5.5 हड़ताल का अधिकार

लोक कर्मचारियों द्वारा सरकार के विरूद्ध हड़ताल करने या हड़ताल में सहायता पहुँचाने के अधिकार के प्रश्न पर हमारे देश में विचार हुआ है। प्रशासकीय सुधार आयोग ने अपनी रिपोर्ट में, जो 1969 में प्रस्तुत की गयी थी, सरकारी कर्मचारियों की हड़ताल पर कानूनी रोक लगाने की सिफारिश की थी। इस सम्बन्ध में प्रत्येक देश की स्थिति भिन्न है।

ब्रिटेन में ऐसा कोई कानून नहीं है जो लोक कर्मचारियों के प्रदर्शन या हड़ताल करने पर प्रतिबन्ध लगाता हो, या उनका निषेध करता हो। दूसरे शब्दों में, यदि कोई लोक कर्मचारी वहाँ हड़ताल करता है तो वह दण्डनीय अपराध नहीं माना जाता। लेकिन हड़ताल करना अनुशासनात्मक अपराध है, और सरकार हड़ताल की स्थिति में उसके अनुरूप कोई भी अनुशासनात्मक कार्यवाही करने के लिए पूर्ण स्वतंत्र है। वैसे ब्रिटेन में लोक कर्मचारी न तो हड़ताल करते हैं और न ही हड़ताल करने की धमकी देते हैं।

संयुक्त राज्य अमरीका में लोक कर्मचारियों का हड़ताल में भाग लेना यहाँ कानून द्वारा निषिद्ध है। 'श्रम प्रबन्ध सम्बन्ध (टफ्ट हार्टले) अधिनियम, 1947' द्वारा संयुक्त राज्य की सरकार के कर्मचारियों या सरकार के किन्हीं अभिकरणों के कर्मचारियों द्वारा जिनमें सरकारी निगम भी सम्मिलित हैं, सरकार के विरूद्ध हड़ताल करना अवैध घोषित किया गया है। कानून के उल्लंघनकर्ता को दण्डस्वरूप सेवा से पृथक किया जा सकता है, लोक कर्मचारी का स्तर छीना जा सकता है और तीन वर्ष पुनः नौकरी करने के अयोग्य घोषित किया जा सकता है। 1955 में 48वीं कांग्रेस द्वारा पारित एक कानून (पब्लिक लॉ- 330) द्वारा यह प्रतिबन्ध और भी अधिक कठोर बना दिये गये हैं और यह व्यवस्था की गयी है कि "ऐसा कोई भी व्यक्ति संयुक्त राज्य की सरकार या उसके किसी अभिकरण या सरकार के किसी निगम में कोई पद स्वीकार नहीं करेगा जो, किसी हड़ताल में भाग लेता है या संयुक्त राज्य की सरकार या उसके किसी अभिकरण के विरूद्ध हड़ताल करने के अधिकार का दावा करता है, या सरकारी कर्मचारियों के किसी ऐसे संगठन का सदस्य है जो ऐसी हड़ताल करने के अधिकार का दावा करता है।" इस प्रावधान का अतिक्रमण करना घोर अपराध है और इसके लिए आर्थिक दण्ड और/या कैद की सजा दी जा सकती है।

भारत की स्थिति ब्रिटेन जैसी है। यहाँ सरकारी कर्मचारियों का हड़ताल करना कानून द्वारा निषिद्ध नहीं है। परन्तु भारत में कर्मचारी द्वारा हड़ताल करना केवल अनुशासन का उल्लंघन मात्रा माना जाता है। इस प्रकार, केन्द्रीय लोकसेवा (आचरण) नियम, 1955 द्वारा प्रत्येक सरकारी सेवक को अपनी सेवा की शर्तों सम्बन्धी किसी मामले को लेकर किसी प्रदर्शन में भाग लेने या किसी प्रकार की हड़ताल करने का निषेध किया गया है। यह प्रावधान गैर-औद्योगिक कर्मचारियों पर भी लागू होता है, जिनकी संख्या केन्द्रीय सरकार की कर्मचारी वर्ग की संख्या का लगभग 30 प्रतिशत है। फिर भी ऐसे प्रतिबन्ध रेलवे तथा रेलवे कर्मचारियों, औद्योगिक और अनौद्योगिक प्रतिबन्ध को छोड़कर अन्य औद्योगिक कर्मचारियों पर लागू नहीं होते।

आस्ट्रेलिया, जापान तथा स्विट्जरलैण्ड में सरकारी कर्मचारियों की हड़ताल अवैध है। आस्ट्रेलिया में इस विधि के उल्लंघनकर्ता को दण्डस्वरूप सेवा से तुरन्त हटा दिया जाता है। कनाडा में स्थिति को स्पष्ट नहीं किया गया है।

कनाडा की इस व्यवस्था का कि ट्रेड यूनियन विधि संघीय कर्मचारियों पर लागू नहीं होती, यह अर्थ लगाया जा सकता है कि अधिकारों के जिस वैध संरक्षण की गारण्टी श्रमिकों को दी गयी है, वह सरकारी सेवकों को प्राप्त नहीं है। क्यूबेक प्रान्त में सभी परिस्थितियों में सरकारी कर्मचारियों की हडताले पूर्णरूपेण निषिद्ध है। फ्रांस ही पश्चिमी जगत का एक ऐसा प्रमुख देश है जो हड़ताल करने के अधिकार की आज्ञा एवं अनुमति देता है।

अतः यह स्पष्ट है कि संसार भर का लोकमत लोक कर्मचारियों की हड़ताल को निषिद्ध करने के पक्ष में है। अतः प्रश्न यह है कि क्या हड़तालों पर कोई कानूनी रोक लगायी जाये या सरकारी कर्मचारियों के आचरण सम्बन्धी नियमों के अन्तर्गत प्रतिबन्ध से ही काम चल जायेगा? पिछली हड़ताल से सरकार ने एक कटु शिक्षा ग्रहण की है और हड़तालों पर कानूनी रोक लगाने के लिए शासन ने आवश्यक कद उठाये हैं, किन्तु अभी तक ऐसे किसी विधान का निर्माण नहीं किया गया है। कदाचित् इस विषय पर सरकार पुनर्विचार कर रही हो। द्वितीय वेतन आयोग की राय थी कि वर्तमान कानूनी स्थिति में परिवर्तन करने की कोई आवश्यकता नहीं है, "हम विधि में संशोधन करने का सुझाव नहीं दे रहे हैं। हमारा तो विचार यह है कि कर्मचारियों को स्वयं ही हड़ताल या प्रदर्शन का प्रश्रय न लेने का निश्चय करके स्थिति में स्वयं (आवश्यक) परिवर्तन कर लेना चाहिए।"

केन्द्रीय शासन द्वारा गठित प्रशासकीय सुधार आयोग (1966-70) ने अपने प्रतिवेदन में लोकसेवकों द्वारा हड़ताल पर पूर्ण निषेध का प्रस्ताव किया।

21.5.6 राजनीतिक तटस्थता (Political Neutrality)

लोकसेवा का परम्परागत गुण तटस्थता(neutrality) रहा है। मास्टरमैन समिति(Masterman Committee) के शब्दों में, निष्पक्षता या तटस्थता ब्रिटिश प्रशासन का गुण रही है एवं उसकी एक विशिष्ट विशेषता है। तटस्थता का अर्थ यह है कि एक लोक प्रशासक अपने सार्वजनिक जीवन में राजनीतिक विचारों या धारणाओं से पूर्ण मुक्त रहता है। लोकसेवा की तटस्थता सम्बन्धी ब्रिटिश अवधारणा के मुख्य तथ्य निम्न है- 1. जनता को यह विश्वास होना चाहिए कि लोकसेवा सभी प्रकार के राजनीतिक पक्षपात से मुक्त हो, 2. मन्त्रियों को यह विश्वास होना चाहिए कि चाहे कोई भी दल सत्तारूढ़ हो, लोकसेवक की निष्ठा उन्हें प्राप्त होती रहेगी, 3. कर्मचारी-वर्ग मे नैतिक साहस का आधार यह विश्वास है कि पदोन्नति तथा अन्य पुरस्कार राजनीतिक दृष्टिकोण या पक्षपातपूर्ण कार्यों पर निर्भर नहीं करते, बल्कि गुण मात्र पर निर्भर करते है।

लोकसेवा की तटस्थता के विषय में हूवर आयोग द्वारा व्यक्त अमरीकी अवधारणा इस प्रकार है, "उन्हें समस्त राजनीतिक क्रियाकलापों से दूर रहना चाहिए तथा नीति सम्बन्धी मामलों में भी अपनी तटस्थता बनाये रखनी चाहिए।

"इसका अर्थ यह है कि उन्हें प्रशासन की नीतियों के प्रति ऐसे भावनात्मक लगाव से बचना चाहिए कि वे किसी परिवर्तन या नवीन नेताओं के साथ सामंजस्यपूर्वक काम नहीं कर सकते ....।

"वरिष्ठ लोकसेवकों को अनिवार्यतः ऐसे सभी राजनीतिक क्रियाकलापों से दूर रहना चाहिए, जिनका ठीक ढंग से काम करने की उनकी योग्यता पर विपरीत प्रभाव पड़ता हो और जिससे ऐसा ज्ञात होने लगे कि वे किसी राजनीतिक दल या उसकी राजनीति से सम्बन्ध रखते हों।

"वरिष्ठ लोकसेवकों को केवल औपचारिक वक्तव्य ही प्रेस को देने चाहिए, सार्वजनिक या निजी वक्तव्य नहीं देने चाहिए। उन्हें राजनीतिक या विवादास्पद ढंग के सार्वजनिक भाषण नहीं देने चाहिए।"

ग्रेट ब्रिटेन में लोक कर्मचारियों को राजनीतिक कार्यों में भाग लेने की सम्भवतः सबसे अधिक सुविधाएँ प्राप्त हैं। यहाँ अनौद्योगिक सेवाओं को निम्नलिखित तीन प्रवर्गो में बाँटा गया है-

1. सभी प्रकार की राजनीतिक गतिविधियों का एक 'स्वतन्त्र' क्षेत्र निर्धारित किया गया है, जिससे 'लोक विश्वास का उल्लंघन' न हो। इस क्षेत्र में 62 प्रतिशत लोकसेवक होते हैं, जैसे- औद्योगिक लोकसेवक, कार्यकाल में प्रहस्तनीय और कुछ निम्न श्रेणी के कर्मचारी, जैसे सन्देशवाहक तथा सफाई करने वाले।

2. एक 'अन्तर्वर्ती'(Intermediate) प्रवर्ग, जिसे संसद के लिए चुनाव लड़ने के अतिरिक्त सभी प्रकार की राजनीतिक क्रियाओं में भाग लेने की अनुमति प्राप्त होती है। फिर भी राजनीतिक विषयों पर सार्वजनिक रूप से बोलते समय उन्हें कुछ बातों का ध्यान रखना पड़ता है। इस प्रवर्ग में 22 प्रतिशत लोकसेवक हैं और मोटे तौर पर मध्यम श्रेणी के सेवा कर्मचारी, जैसे- मुद्रालेखक, सहायक, डाकखाने के प्रहस्तनीय पर्यवेक्षक अधिकारी इत्यादि है।
3. 'सीमित'(restricted) प्रवर्ग के लोकसेवक मत देने तथा दल की सदस्यता को छोड़कर सभी प्रकार के राजनीतिक अधिकारों से वंचित हाते हैं। इतने पर भी उन्हें स्थानीय शासन तथा स्थानीय क्षेत्र में राजनीतिक क्रियाओं में भाग लेने की अधिकतम सम्भाव्य सीमा तक छूट दी गयी है। इन पर केवल इतना प्रतिबन्ध है कि उन्हें स्वविवेक तथा संयम से काम लेना चाहिए और इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि स्थानीय महत्व की अपेक्षा राष्ट्रीय महत्व के राजनीतिक प्रतिवाद के मामलों में वे अपने आपको न फँसाये। इस प्रवर्ग में केवल 16 प्रतिशत उच्च लोक अधिकारी आते हैं।
4. जहाँ तक औद्योगिक कर्मचारियों का सम्बन्ध है, उन पर किसी प्रकार का कोई बन्धन नहीं होता है और वे लोक निगमों में कर्मचारियों के रूप में भाग लेने के लिए स्वतन्त्र होते हैं। लोकसेवा के विनियम उन पर लागू नहीं होते हैं। निगमों ने भी अपने कर्मचारियों के राजनीतिक अधिकारों पर कोई बन्धन नहीं लगाये हैं।

संयुक्त राज्य अमरीका में ग्रेट ब्रिटेन के विपरीत लोकसेवकों के राजनीतिक कार्यों पर कठोर बन्धन लगाये गये हैं। अमरीका में संघीय कानून द्वारा संघीय कर्मचारियों पर किसी चुनाव में हस्तक्षेप करने या उसके परिणाम को प्रभावित करने से रोकने के लिए सत्ता एवं पद का प्रयोग सम्बन्धी प्रतिबन्ध ही नहीं लगाया जाता, अपितु उन्हें राजनीतिक प्रबन्ध या राजनीतिक अभियानों में सक्रिय भाग लेने से भी रोका जाता है। निस्सन्देह, राज्य कर्मचारियों को सभी राजनीतिक विषयों तथा उम्मीदवारों के विषयों पर राय प्रकट करने की स्वतन्त्रता होती है, परन्तु इस अधिकार पर भी बहुत से बन्धन होते हैं। उच्चतम न्यायालय के जज जस्टिस ब्लैक ने 'UPWA vs. Michel' विवाद में विपरीत राय प्रकट करते हुए कहा था कि "सरकारी कर्मचारियों को प्राप्त राजनीतिक विशेषाधिकार सारांश में यह है कि वे मौन रूप से मतदान कर सकते हैं तथा सावधानी से एवं शान्तिपूर्वक वे कोई भी राजनीतिक विचार स्वयं को संकट में डालकर ही प्रकट कर सकते हैं और चुनाव अभियान की सभाओं में वे (केवल) दर्शक मात्र होते हैं।" इन बन्धनों का लोकसेवा आयोग द्वारा बनाये गये नियमों से अनुमोदन ही नहीं किया गया है, बल्कि कांग्रेस के 1939 के हैच अधिनियम द्वारा भी इनका अनुमोदन होता है। इन नियमों का उल्लंघन करने पर कठोर दण्ड दिया जाता है। उदाहरण के लिए, कर्मचारी को कम से कम 90 दिन के लिए बिना वेतन के मुअतिल किया जा सकता है। सेवा से पदच्युत करने का अधिकतम दण्ड दिया जा सकता है। ये बन्धन सभी विभागों, अभिकणों तथा संघीय सरकार के निगमों में कार्यरत व्यावसायिक लोकसेवा के अधिकांश प्रवर्गों द्वारा लागू होते हैं तथा किसी राज्य या स्थानीय अभिकरण के उन कर्मचारियों पर भी लागू होते हैं, जिनका मुख्य कार्य किसी ऐसी प्रक्रिया से सम्बन्धित होता है जिसका पूर्ण या आंशिक व्यय संघीय सरकार से प्राप्त ऋणों या अनुदानों से चलता है। ये बन्धन उन लोक अधिकारियों के सम्बन्ध में भी लागू होते हैं जो अन्य व्यक्तियों के गुप्त या प्रकट सहयोग से कम काम करते हैं।

अभिकरणों के प्रधान तथा सहायक प्रधान, हाइट हाउस स्टाफ के सदस्य तथा राष्ट्रीय नीति को निर्धारित करने वाले अधिकारी जिनकी नियुक्ति सीनेट की सहमति से राष्ट्रपति द्वारा की जाती है, इन नियमों के कुछ विशिष्ट अपवाद होते हैं। संघीय सरकार के उन कर्मचारियों को आंशिक छूट होती है जो देश की राजधानी के समीप के समुदायों में और उन अन्य समुदायों में रहते हैं, जिनके अधिकांश मतदाता संघीय सरकार की सेवा में होते हैं। राजनीतिक कार्य के मामलों में यह कर्मचारी अपने अभिकरण के प्रधान के अधिकार क्षेत्र के अधीन आते हैं।

पश्चिमी यूरोप तथा स्केण्डिनेवियन देशों में लोकसेवक राजनीतिक क्रियाकलापों में भाग लेने के लिए स्वतन्त्र होते हैं। इसी प्रकार बेल्जियम तथा स्विट्जरलैण्ड में लोकसेवक संसदीय चुनावों में भाग लेने के लिए स्वतन्त्र हैं, किन्तु चुने जाने पर उन्हें अपने पद से हटाना पड़ता है। फ्रांस इससे भी आगे बढ़ा हुआ है। वहाँ लोकसेवक अपने पद को पुनः प्राप्त कर सकता है। यदि वह चुनाव हार जाता है या संसदीय पद से त्यागपत्र दे देता है तो उसकी पदोन्नति तथा निवृति वेतन सम्बन्धी अधिकार ज्यो की त्यों बने रहते हैं। इसी प्रकार, पश्चिमी जर्मनी में संघीय विधानमण्डल के लिए चुने जाने पर लोकसेवक को त्यागपत्र देना पड़ता है। तभी वह चुनाव लड़ सकता है एवं चुनाव अभियान में भाग ले सकता है और पराजित हो जाने पर पुनः अपना पद ग्रहण कर सकता है। चुने जाने पर वह पेंशन पर सेवानिवृत्त हो सकता है और संघीय विधानमण्डल की सदस्यता से वंचित होने पर वह अपने पद पर लौटने के लिए प्रार्थना कर सकता है।

इसके विपरीत, राष्ट्रमण्डलीय देशों में लोकसेवकों के राजनीतिक अधिकारों पर कड़े बन्धन हैं। कनाडा में उनके लिए राजनीति में भाग लेना वर्जित है। आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड में लोकसेवकों को चुनाव लड़ने की कुछ स्वतन्त्रता होती है, लेकिन राजनीतिक मामलों में उनकी निष्पक्षता तथा तटस्थता पर बहुत बल दिया जाता है।

भारत में लोकसेवा सम्बन्धी आचरण के नियमों के अनुसार सरकारी कर्मचारियों पर राजनीतिक कार्यों में क्रियात्मक रूप से भाग लेने पर पूर्ण प्रतिबन्ध है। उदाहरण के लिए, केन्द्रीय लोकसेवा (आचरण) नियम, 1955 के नियम-4 द्वारा किसी भी सरकारी सेवक को किसी राजनीतिक संगठन का सदस्य होने तथा किसी राजनीतिक आन्दोलन या कार्य में भाग लेने या उसके लिए चन्दा देने या उसे किसी प्रकार की सहायता देने का निषेध किया गया है। विधानमण्डल या स्थानीय शासन के किसी चुनाव में भाग लेना भी उसके लिए निषिद्ध है। इन कठोर बन्धनों में केवल यही अपवाद है कि वह चुनाव में मत दे सकता है। नियम 05 तथा 06 तो अधिकारी को साहित्यिक, कला सम्बन्धी या वैधानिक मामलों को छोड़कर अन्य सभी मामलों पर विचार प्रकट करने तक की स्वतन्त्रता प्रदान नहीं करते। ऐसे ही प्रावधान रेलवे सेवा (आचरण) नियम, 1956 तथा अखिल भारतीय सेवा (आचरण) नियम, 1954 में भी हैं। राज्य सरकारें तथा लोक निकाय भी केन्द्रीय सरकार के मार्ग का अनुगमन करते हैं। हाल ही में बहुत से स्थानीय निकायों और विश्वविद्यालय जैसी शैक्षणिक संस्थाओं तक ने नियम बनाये हैं कि उनके कर्मचारी किसी विधानमण्डल के निर्वाचन के लिए खड़े नहीं हो सकते। लोक-उद्यमों के विषय में सरकार की नीति उनके कर्मचारियों के साथ इस सम्बन्ध में सरकारी अधिकारियों के समान ही व्यवहार करने की है। इस प्रकार गुप्त मतदान के सीमित अधिकार के अतिरिक्त कोई भी सरकारी कर्मचारी किसी भी प्रकार किसी भी राजनीतिक आन्दोलन या कार्य में अथवा चुनाव अभियान में भाग नहीं ले सकता। वह किसी भी राजनीतिक दल का सदस्य नहीं हो सकता और न उसके कोष में वित्तीय सहायता दे सकता है। वह राजनीतिक में खड़ा ही हो सकता है। हाँ, सरकार की पूर्वानुमति पर एक अधिकारी किसी स्थानीय पद के लिए चुनाव लड़ सकता है। किन्तु व्यवहार में यह प्रावधान सिर्फ कागजी ही है।

उपर्युक्त वर्णन में यह स्पष्ट है कि लोक कर्मचारियों के सम्बन्ध में कोई एकसमान पद्धति नहीं है। जहाँ फ्रांस तथा जर्मनी जैसे कुछ देष अति उदार हैं और कदाचित् ही कोई बन्धन है, वहीं संयुक्त राज्य अमरीका जैसे देश में मताधिकार के अतिरिक्त अन्य कोई अधिकार प्रदान नहीं किये गये हैं। भारत, अमरीका की श्रेणी में आता है। चुनाव लड़ने तथा अन्य राजनीतिक अधिकारों को उदारतापूर्वक प्रदान करने में पक्ष में दो मुख्य तर्क दिये जाते हैं। प्रथम तर्क यह है कि प्रजातन्त्र में राजनीतिक गतिविधियों में प्रत्येक नागरिक को भाग लेने का अधिकार होता है। द्वितीय तर्क, कोई भी विचारशील व्यक्ति लोकसेवकों की राजनीतिक तटस्थता एवं निष्पक्षता बनाये रखने के महत्व तथा आवश्यकता से इन्कार नहीं कर सकता। मास्टरमैन समिति भी जो सामान्यतः विद्यमान प्रतिबन्धों को अमान्य ठहराती है, यह स्वीकार करती है कि ''लोकमत एक ऐसे संवेदनशील बैरोमीटर की भाँति है, जिसमें लोकसेवा की परम्परागत निष्पक्षता के किसी भंग रूप में भी होने पर तीक्ष्ण प्रतिक्रिया आरम्भ हो जाती है।''

21.6 आचार संहिता और अनुशासन (Code of Conduct & Discipline)

प्रशासकीय कार्य में कुशलता लाने के लिए और प्रशासकीय व्यवहार के सफल संचालन हेतु किसी भी संगठन में अनुशासन का होना अत्यन्त आवश्यक है। अगर प्रशासन अपने कर्मचारियों को वेतन और अच्छी सेवा-शर्तें प्रदान करता है, तो वह उन कर्मचारियों से इस बात की अपेक्षा भी करता है कि वे अनुशासित रहें। प्रशासकीय संगठनों में सेवीवर्ग के व्यवहार को उचित ढंग से संचालित करना आवश्यक हो जाता है। यदि कर्मचारियों में नियमों और आज्ञाओं के पालन के प्रति निष्ठा और विश्वास है, तो अनुशासन की समस्या ज्यादा गम्भीर नहीं हो सकती है। फिर भी अनुशासनहीनता को रोकने के लिए विभिन्न तरीकों का उपयोग किया जाता है। साथ में कर्मचारियों के व्यवहार को नियमित और नियन्त्रित करने के लिए आचार-संहिता की रचना की जाती है। यह सर्वविदित है कि अनुशासन सफलता की कुंजी है। अनुशासन के लिए अनुशासनात्मक कार्यवाही भी आवश्यक है। प्रो0 हाइट ने अनुशासनात्मक कार्यवाहियों को इस प्रकार इंगित किया है- अकार्यकुशलता का प्रदर्शन, कानूनों और नियमों का उल्लघन करना, अनैतिकता, भ्रष्टाचार, बेईमानी को प्रोत्साहन, कर्तव्यपालन के प्रति उदासीनता और असावधानी, आदि। इन परिस्थितियों के अतिरिक्त और भी अन्य प्रकार की परिस्थितियाँ हो सकती हैं। इस सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न देशों की सरकारें भिन्न-भिन्न प्रकार के तरीकों का प्रयोग करती है। अनुशासनात्मक कार्यवाही औपचारिक और अनौपचारिक दोनों प्रकार की होती है। तो कुछ लिखित और मौखिक प्रकार की हो सकती है।

अनुशासन के साथ आचार-सांहिता अर्थात् आचरण नियमों की आवश्यकता होती है। इन आचरण नियमों के पालन की अपेक्षा कर्मचारियों से की जाती है। आचार-संहिता का सर्वप्रथम विकास जर्मनी में हुआ। ब्रिटेन में परम्पराओं और अभिसमयों के आधार पर यह प्रशासकीय नियमों का वह समूह है जो कर्मचारियों को अनुशासित रखने के लिए उनके आचार-व्यवहार के सम्बन्ध में सरकार द्वारा बनाये जाते हैं।

21.6.1 ग्रेट ब्रिटेन में लोकसेवकों के लिए आचार-संहिता और अनुशासन

ग्रेट ब्रिटेन में लोकसेवकों के लिए जो आचार-संहिता(Code of Conduct) के नियम हैं, संक्षेप में निम्न है -

1. लोकसेवकों से अपेक्षा की जाती है कि वे सरकार के प्रति पूर्ण निष्ठा और ईमानदारी प्रदर्शित करें।
2. कार्यालयीय गोपनीय कानून का पालन करें और उसकी सूचनाएँ अवांछित व्यक्तियों को न दें।
3. तटस्थ-निष्पक्ष व्यवहार जनता से करें।
4. अपने कर्तव्यों का पालन सरकारी हित में करें न कि व्यक्तिगत हित में।
5. उच्चाधिकारियों के आदेशों का पालन और सम्मान करना।
6. जुआ, सट्टा, शराब तथा नशे की प्रवृतियाँ वर्जित हैं।
7. पद का सार्वजनिक जीवन से दुरूपयोग न करना।
8. अपने पारिवारिक तथा सामाजिक स्तर को सम्मानीय बनाना तथा पद प्रतिष्ठा के प्रतिकूल कार्य न करना।
9. लोकसेवक अन्य धन्धा या व्यवसाय कर सकता है, किन्तु उससे उसकी नौकरी तथा विभाग किसी भी तरह प्रभावित न हो।
10. लोकसेवक केवल विभागाध्यक्ष से ही शिकायत या अपील कर सकते हैं। दण्डित लोकसेवक न्यायालय की शरण नहीं ले सकते हैं।

ब्रिटेन में लोक-सेवक राजा/रानी के प्रसादपर्यन्त सरकारी नौकरी बने रहते है और उन्हें राजा/रानी द्वारा दण्डित किया जाता है। वहाँ कर्मचारियों का वार्षिक प्रतिवेदन उसके विभागाध्यक्ष द्वारा तैयार किया जाता है। इसमें कर्मचारियों के कार्यों का मूल्यांकन होता है। कार्य की अवहेलना अथवा दुराचरण के लिए चेतावनी दी जाती है। इसके अतिरिक्त दण्ड भी दिया जाता है, जैसे- वार्षिक वेतन वृद्धि रोकना, निलम्बित, डाँट-फटकार, पदच्युत करना, सेवानिवृत्ति लाभों से वंचित करना, आदि।

21.6.2 फ्रांस में लोकसेवकों के लिए आचार-संहिता और अनुशासन

फ्रांस में आचरण के नियम शासन द्वारा बनाये गये हैं, जिनका पालन लोकसेवकों के लिए अनिवार्य हैं। इसमें मुख्य बातें निम्न हैं-

1. सेवा में रहते हुए अन्य कोई लाभ का पद ग्रहण नहीं कर सकता;
2. ऐसा कोई कार्य नहीं करेगा, जिससे विभाग या सरकार की प्रतिष्ठा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता हो;
3. उच्चाधिकारियों के आदेशों का पालन तथा सम्मान करना;
4. पूर्ण निष्पक्षता एवं तटस्थता से कार्य करें;
5. सरकारी सूचनाओं, दस्तावेजों आदि को गोपनीय रखें;
6. सरकार को उच्चतर स्तर की सेवाएँ प्रदान करें।

फ्रांस में भी लोकसेवकों से सरकार के प्रति निष्ठा, प्रतिबद्धता, ईमानदारी की अपेक्षा के लिए कुछ आचरण नियम बनाये गये हैं। फ्रांस में कर्मचारियों द्वारा कार्य की अवहेलना अथवा अनुचित कार्य-सम्पादन के लिए उनके विरूद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही की जा सकती है। भारत के समान फ्रांस में भी डाँटने-फटकारने, चेतावनी देने, वेतन रोकने, वरिष्ठता में कमी करने, पदोन्नति सूची से नाम हटाने, पदावन्नति करने, स्थानान्तरित करने, सेवा से हटाने, आदि दण्ड दिये जाते हैं। किसी भी प्रकार का दण्ड देने से पूर्व संयुक्त प्रशासनिक आयोग से परामर्श लिया जाना अनिवार्य है। फ्रांस की अनशासनात्मक कार्यवाही की प्रक्रिया ब्रिटेन और भारत के समान ही है। दोषी कर्मचारी के विरूद्ध आरोप की तैयारी उच्च अधिकारी द्वारा की जाती है। दण्ड के विरूद्ध कर्मचारी लोकसेवाओं की उच्च परिषद् में अपील कर सकते हैं। अनुशासनात्मक कार्यवाही की सम्पूर्ण प्रक्रिया से यदि लोकसेवक असन्तुष्ट हों तो वे प्रशासनिक न्यायाधिकरण में अपील कर सकता है जिनके निम्न आधार हो सकते हैं- अक्षम अधिकारी द्वारा दिया गया दण्ड; प्रक्रिया सम्बन्धी त्रुटियाँ; मूल कानूनों का उल्लंघन; और प्राप्त शक्ति का दुरूपयोग।

21.6.3 अमेरिका में लोकसेवकों के लिए आचार-संहिता और अनुशासन

ब्रिटेन, भारत और फ्रांस के समान अमरीका में लोकसेवकों के लिए आचार-संहिता के प्रमु प्रावधान निम्न है - संघीय एवं राज्य सेवक राजनीतिक दलों के प्रचार या उनकी गतिविधियों से सम्बद्ध नहीं रह सकता है;

1. हड़ताल या शासकीय कार्यों में बांधा डालने वाले संघों की सदस्यता ग्रहण नहीं कर सकता;
2. लोकसेवक शराब, जुआ, सट्टा, चोरी, बेईमानी आदि से दूर रहे;
3. रिश्वत लेना दण्डनीय अपराध है;
4. सरकारी दस्तावेजों को चुराना या सूचनाएँ अनधिकृत व्यक्ति या संस्था को देना दण्डनीय है;
5. सरकारी वाहनों का सरकारी कार्यों के अतिरिक्त प्रयोग करना वर्जित है;
6. उच्च अधिकारी के आदेशों, सरकारी कानूनों, नीतियों आदि को न मानना आचरण के विरूद्ध है;
7. निष्पक्षता एवं ईमानदारी से कार्य करना। भ्रष्टाचार प्रवृत्तियाँ दण्डनीय है;
8. कार्य के दौरान शराब आदि का नशा करना वर्जित है।

अमरीका में लोकसेवकों के लिए निर्धारित सेवानियमों तथा आचरण संहिता का उल्लंघन करने वाले सेवकों को नियमानुसार, अनुशासनात्मक कार्यवाही का सामना करना पड़ता है। इस क्रम में निम्न प्रावधान है- आरोपों की लिखित सूचना दी जाती है; कार्यवाही के पूर्व अग्रिम सूचना दी जाती है; बचाव के लिए पर्याप्त समय तथा अवसर दिया जाता है; कार्यवाही के विरूद्ध सक्षम अधिकारी के समक्ष अपील की जा सकती है।

अमेरिका की अनुशासनात्मक कार्यवाही की प्रक्रिया भारत से मिलती-जुलती है। दण्ड के रूप में डॉट-फटकार, चेतावनी, ड्यूटी बदलना, आर्थिक जुर्माना तथा पदच्युति, कार्य का मूल्यांकन कम करना, वेतनहीन निलम्बन, कम महत्वूपर्ण कार्य सौंपना, आदि। अमरीका में पदच्युत करने की दो पद्धतियाँ प्रचलित हैं- पहला, ओपन बैकडोर पेण्डलटन अधिनियम- 1883, से संघीय सेवकों के लिए बैकडोर पद्धति शुरू हुई जिसके अन्तर्गत सेवकों को

अकार्यकुशलता के आधार पर नियुक्तिकर्ता अधिकारी द्वारा हटाया जा सकता है, किन्तु वह केन्द्रीय कार्मिक अभिकरण में नहीं जा सकता तथा पुनः सेवा में लेने में कठिनाई होती है। दूसरा- क्लोजड बैकडोर पद्धति में चाहे किसी भी आधार पर कार्मिक पदच्युत हुआ हो उसे कार्मिक अभिरकण के आदेशों पर पुनः सेवा में लिया जा सकता है।

कर्मचारी को दण्डित कार्यवाही के विरूद्ध अपील बोर्ड में अपील करने का अधिकार है। विभागीय अपील बोर्डों के अतिरिक्त केन्द्रीय अपील बोर्ड भी है जो ऑफिस ऑफ पर्सोनेल मैनेजमेण्ट तथा मेरिट सिस्टम प्रोटेक्शन बोर्ड से सम्बद्ध रहकर कार्य करता है।

21.6.4 भारत में लोकसेवकों के लिए आचार-संहिता और अनुशासन

भारत में लोकसेवकों के आचरण को अनुशासित करने के लिए अनेक प्रावधान, सम्बन्धित सेवा के नियमों में किये जाते हैं। जैसे- अखिल भारतीय सेवाएँ (आचरण) नियम, 1954; केन्द्रीय लोकसेवा (आचरण), 1955; आदि। सामान्यतया भारत में सभी आचार संहिताओं के आचरण सम्बन्धी नियम प्रायः एक से है। उदाहरण के लिए, राजनीतिक गतिविधियों पर प्रतिबन्ध; संविधान और कानून का पालन; सरकार की आलोचना पर प्रतिबन्ध; उच्चाधिकारियों का सम्मान तथा आदेश का पालन; ईमानदारी, निष्पक्षता एवं कर्तव्यनिष्ठा; गोपनीयता; उपहार एवं चन्दा लेने पर प्रतिबन्ध; निजी व्यापार व धन्धे पर रोक; दूसरे विवाह पर प्रतिबन्ध; समाचार-पत्र, रेडियो तथा दूरदर्शन पर पूर्व अनुमति के बिना विचार व्यक्त करने पर रोक; आतिथ्य स्वीकार न करना; नशा, चोरी, सरकारी सम्पत्ति की हेरा-फेरी आदि अवैध है।

42वें संविधान संशोधन अधिनियम (1976) के अनुशासन मूल कर्तव्यों का पालन करना जो निम्न हैं- संविधान, राष्ट्रध्वज तथा राष्ट्रगान का आदर; देश की प्रभुता, एकता और अखण्डता की रक्षा करना; संविधान के आदर्शों का सम्मान और पालन; आवश्यकता पर सेना में भर्ती होकर देश की रक्षा करना; भ्रातृत्व व समरसता का निर्माण करना; महिलाओं की गरिमा को ठेस पहुँचाने वाली प्रथाओं का त्याग; भारत की संस्कृति की रक्षा; सार्वजनिक सम्पत्ति की रक्षा; प्राकृतिक पर्यावरण की रक्षा; वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद, ज्ञानार्जन तथा देश के विकास में सहयोग देना।

अन्य देशों की भाँति भारत में भी अनुचित आचरण करने वाले अथवा अपने दायित्वों को पूरा न करने वाले कर्मचारियों के विरूद्ध अनेक प्रकार की अनुशासनात्मक कार्रवाइयाँ की जाती है। इनकी प्रकृति सुधारात्मक की अपेक्षा प्रतिरोधात्मक अधिक है। दण्ड का निश्चय अपराध की प्रकृति के आधार पर किया जाता है। बिना किसी कारण अथवा केवल शंका-मात्र से किसी को दण्ड नहीं दिया जा सकता है। भारत में अनुशासनात्मक कार्यवाही द्वारा दण्ड देने पर दो मुख्य परम्पराओं का अनुशीलन किया जाता है, पहला- दण्ड देने वाला अधिकारी नियुक्ति करने वाले अधिकारी के समान स्तर का होना चाहिए, उससे कम पद का नहीं; तथा दूसरा- दण्ड देने से पूर्व नियोक्ता अधिकारी से राय ली जानी चाहिए। लोकसेवकों के विरूद्ध निम्न तरीकों का उपयोग किया जाता है- निन्दा करना, पदोन्नति तथा वेतन वृद्धि रोकना, पद से निलम्बित, सेवा से हटा देना, हर्जाने के रूप में शासकीय आर्थिक क्षति की पूर्ति करना आदि।

भारत में अनुशासनीय कार्यवाही करने का अधिकार विभागीय अध्यक्ष को दिया गया है, परन्तु अधीनस्थों की बड़ी संख्या के कारण व्यवहार में यह अधिकार अन्य अधीनस्थों को प्रदत्त कर दिया जाता है। लोकसेवकों को दण्ड के निर्णय के विरूद्ध न्याय प्राप्ति हेतु अपील करने का अधिकार है। राष्ट्रपति द्वारा की गयी अनुशासनात्मक कार्यवाही के विरूद्ध अपील नहीं की जा सकती। नियमानुसार केवल अधीनस्थ अनुशासन अधिकारी के निर्णय के विरूद्ध उससे उच्चतर अधिकरी के समक्ष अपील की जाती है। प्रथम श्रेणी की सेवाओं के सदस्य राष्ट्रपति से नीचे के अधिकारियों द्वारा दण्डित होने पर राष्ट्रपति से अपील कर सकते हैं। समस्त प्रकार की अपीलें, दण्डादेष प्राप्त होने के बाद तीन माह के अन्दर प्रस्तुत की जानी चाहिए।

सेवा सम्बन्धी कुछ सामान्य शर्तें इंग्लैण्ड, फ्रांस, अमरीका और भारत में एक जैसी हैं, जो निम्न हैं-

1. सप्ताह में पाँच दिवस कार्य;
2. निम्न कर्मचारियों के लिए फ्रांस, अमरीका और ब्रिटेन में निर्धारित समय से अधिक समय तक कार्य करने की अनुमति है, जबकि भारत में यह समाप्त कर दिया गया है;
3. सार्वजनिक अवकाश, विशेष अवकाश वेतन सहित;
4. बीमार अवकाश (वैतनिक और अवैतनिक);
5. फ्रांस, अमरीका, ब्रिटेन में सरकार द्वारा बीमा संरक्षण;
6. महिलाओं के सवैतनिक प्रसूति अवकाश;
7. लोकसेवा में अल्पसंख्यकों (अमरीका, ब्रिटेन) में रोजगार के समान अवसर। भारत में अनुसूचित जाति और जनजाति के लिए आरक्षण। अब अन्य पिछड़ी जातियों के लिए भी आरक्षण की सुविधा उपलब्ध है। यह मण्डल आयोग रिपोर्ट के बाद प्रारम्भ हुई। सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के अनुसार 50 प्रतिशत से अधिक आरक्षण सेवा में नहीं दिया जा सकता।

भारत में उच्च लोकसेवकों की सेवा का मूल्यांकन वरिष्ठता, योग्यता और वार्षिक गोपनीय प्रतिवेदन के आधार पर किया जाता है। इस कार्य में संघीय लोकसेवा आयोग की मदद ली जाती है। पदोन्नति की तैयार सूची में से मन्त्री लोकसेवकों का चयन करते हैं। परन्तु फ्रांस और ब्रिटेन में क्षमता और योग्यता को ध्यान में रखकर विभाग के प्रमुख द्वारा प्रत्याशियों का चयन किया जाता है। अमरीका लोकसेवकों का मूल्यांकन करने में अन्य देशों से आगे है। वहाँ वैज्ञानिक प्रबन्ध आन्दोलन(1920) के परिणामस्वरूप 'कुशलता निर्धारण व्यवस्था'(Efficiency Rating System) का उपयोग किया जाता है। यह कर्मचारियों के बीच उनके कार्य-स्तर के अन्तर को जानने, विश्लेषण और वर्गीकृत करने के लिए किया जाता है।

अभ्यास प्रश्न-

1. लोकसेवा का परम्परागत गुण क्या है?
2. लोकसेवा शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम कब और कहाँ हुआ?
3. भारत में लोकसेवा शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम कब हुआ?
4. आधुनिक लोकसेवा का जन्मदाता किस देश को माना जाता है?
5. अमेरिकी कांग्रेस द्वारा पारित किये गये महत्वपूर्ण सिविल सेवा अधिनियम को किस नाम से जाना जाता है?
6. 'दि स्टडी आफ एडमिनिस्ट्रेशन' किसके द्वारा लिखी गयी?
7. फ्रांस में लोक सेवाओं को सेवा के स्थान पर किस नाम से जाना जाता है?
8. भारत में लोक सेवाओं के सुधार के लिए गठित सर्वाधिक महत्वपूर्ण समिति कौन सी है?

21.7 सारांश

लोक सेवाऐं, यद्यपि संगठित रूप में नहीं किन्तु प्राचीन समय से ही विद्यमान रही हैं। इस इकाई के अन्तर्गत लोक सेवाओं की प्राचीन तथा मध्ययुगीन स्थिति का विवेचन किया गया है। तत्पश्चात, ईस्ट इन्डिया कम्पनी के उद्-गम के साथ लोकसेवा व्यक्तियों के एक समूह के रूप में संगठित हुई, जिन्हें ''फैक्टर'' कहा जाता था तथा जो कम्पनी के व्यापारिक कार्यों को संपादित करते थे। धीरे-धीरे जब कम्पनी का कार्य वाणिज्य एवं व्यापार से बदलकर शासन एवं प्रशासन करना हो गया तो लोकसेवा भी प्रशासनिक कार्य सम्बन्धी भूमिका ग्रहण करने लगी।

उपरोक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि विभिन्न देशों में लोकसेवकों की सेवा-शर्तों, आचार संहिता, अनुशासन आदि में अन्तर देखने को मिलता है। तुलनात्मक अध्ययन हमें यह सुअवसर प्रदान करता है कि हम दूसरे देशों के आधुनिक उपायों को अपनी लोकसेवा में सुधार के लिए अपनाने का प्रयास करें, बशर्ते वे हमारे लिए वांछनीय हो।

21.8 शब्दावली

प्रान्तीय स्वायत्तता- भारत सरकार अधिनियम 1935 के अन्तर्गत प्रान्तों को पृथक कानूनी आधार प्रदान कर इन्हें उल्लिखित विषय प्रदान किये गये तथा प्रान्तों का केन्द्र के साथ संघीय सम्बन्ध स्थापित कर दिया गया।

आरक्षित एवं स्थानान्तरित विषय- भारत सरकार अधिनियम, 1919 द्वारा प्रान्तों में द्विस्तरीय शासन व्यवस्था का सूत्रपात किया गया, जिसके अन्तर्गत विषयों को आरक्षित एवं स्थानान्तरित वर्गों में विभाजित किया गया। स्थानान्तरित विषयों को नव-निर्वाचित मंत्रियों के नियंत्रण में रखा गया, जो प्रान्तीय व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी थे। आरक्षित विषयों पर पूर्व की भांति गवर्नर तथा उसकी परिषद का नियंत्रण रखा गया।

सांविधिक लोक सेवा- 1879 में लोकसेवा की एक नई पद्धति विकसित की गई, जिसके अन्तर्गत सांविधिक लोकसेवा की व्यवस्था थी। इसमें भारतीय लोकसेवा में भारत राज्य सचिव द्वारा की गई कुल नियुक्तियों में से अधिक से अधिक 20 प्रतिशत (1/5 भाग) पदों पर स्थानीय सरकारों के माध्यम से भारतीयों की नियुक्ति किये जाने की व्यवस्था थी।

भारत के सांविधिक मूल निवासी- इस वर्ग में भारतीय तथा भारत निवासी समुदाय के सदस्य जो पूर्व में यूरेशियन तथा अब ऐंग्लों इन्डियन कहलाते हैं, सम्मिलित किये गये हैं।

21.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. तटस्थता, **2.** ईस्ट इण्डिया कम्पनी के प्रशासन में, **3.** 1883 में, अमेरिका में, **4.** प्रशा, **5.** पेण्डलेटन अधिनियम, **6.** वुडरो विल्सन, **7.** कोर्प्स, **8.** प्रशासनिक सुधार आयोग 1966

21.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. महेश्वरी, एस0आर0, 1970, इवोलुशन आफ इन्डियन एडमिनिस्ट्रेशन, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा।
2. माथुर, पी0एन0, 1977, दि सिविल सर्विस आफ इन्डिया (1731-1894), डी0 के0 पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
3. मिश्रा, बी0बी0, 1977, दि ब्यूरोक्रेसी इन इन्डिया ए हिस्टोरीकल एनालिसिस आफ डवलपमेन्ट अप टू 1947, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली।
4. ओ मैली, एल0एस0एस0, 1965, दि इन्डियन सिविल सर्विस (1601-1930), फ्रैंक केस ऐन्ड क0 लिमिटेड: लन्दन।
5. पुरी, बी0एन0, 1980, दि सिविल सर्विसेज इन इन्डिया (1858-1947) (ए हिस्टोरीकल स्टडी), आत्माराम ऐन्ड सन्स, नई दिल्ली।
6. सिन्हा, वी0एम0, 1986, पर्सनेल एडमिनिस्ट्रेशन कनसेप्ट्स एन्ड कम्परेटिव पर्सपेक्टिव, आर0बी0एस0ए0 पब्लिशर्स, जयपुर।
7. शुक्ला, जे0डी0, 1982 इन्डियनाइजेशन आफ आल इन्डिया सर्विसेज, एलाइड पब्लिशर्स प्राइवेट लि0, नई दिल्ली।

21.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. महेश्वरी, एस0आर0, 1970, इवोलुशन आफ इन्डियन एडमिनिस्ट्रेशन, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा।
2. माथुर, पी0एन0, 1977, दि सिविल सर्विस आफ इन्डिया (1731-1894), डी0 के0 पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।

3. शुक्ला, जे0डी0, 1982 इन्डियनाइजेशन आफ आल इन्डिया सर्विसेज, एलाइड पब्लिशर्स प्राइवेट लि0, नई दिल्ली।

21.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. लोकसेवा के अर्थ को स्पष्ट करते हुए लोकसेवा के स्रोतों पर विस्तार से चर्चा कीजिए।
2. लोकसेवा के सुधार के लिए गठित समितियों को स्पष्ट कीजिए।
3. लोकसेवा के राजनीतिक अधिकारों का तुलनात्मक अध्ययन कीजिए।
4. लोकसेवकों के लिए तय किये गये आचार-संहिता और अनुशासन को स्पष्ट कीजिए।

इकाई- 22 ओम्बुड्समैन का अर्थ- स्वीडन में ओम्बुड्समैन, अमेरिका में जन-शिकायत

इकाई की संरचना

22.0 प्रस्तावना

22.1 उद्देश्य

22.2 ओम्बुड्समैन का अर्थ एवं परिभाषा

22.3 स्वीडिश ओम्बुड्समैन की संगठनात्मक संरचना

  22.3.1 संगठन तथा चयन प्रक्रिया

  22.3.2 कार्यकाल

  22.3.3 स्वतंत्रताऐं

22.4 स्वीडिश ओम्बुड्समैन की शक्तियाँ एवं कार्य

22.5 स्वीडिश ओम्बुड्समैन की कार्यप्रणाली

22.6 अमेरिका में जन-शिकायत निवारण की संस्था

22.7 प्रांतीय सरकारों के लिए मॉडल ओम्बुड्समैन अधिनियम

  22.7.1 संगठनात्मक संरचना

  22.7.2 योग्यताऐं

  22.7.3 निर्बन्धन

  22.7.4 कार्यकाल

  22.7.5 स्वतंत्रताऐं

22.8 ओम्बुड्समैन का क्षेत्राधिकार

22.9 ओम्बुड्समैन की शक्तियाँ एवं दायित्व

22.10 ओम्बुड्समैन की कार्यप्रणाली

22.11 सारांश

22.12 शब्दावली

22.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

22.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

22.15 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

22.16 निबंधात्मक प्रश्न

22.0 प्रस्तावना

ओम्बुड्समैन संस्था वर्तमान वैश्वीकरण के दौर में वैश्विक प्रजातांत्रिक व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण अंग बन गया है। यह शासन तथा प्रशासन में कार्यरत लोक सेवकों के कार्यों से उत्पन्न जनता की शिकायतों को सुनने तथा उसका निवारण करने का साधन है। हम देखते हैं कि जब से लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा का उद्-भव हुआ है, शासन तथा प्रशासन के दायित्वों में वृद्धि हुई है। इन दायित्वों की पूर्ति हेतु प्रशासन की कार्यात्मक शक्तियों तथा स्वविवेकी शक्तियों में भी वृद्धि हुई है। परिणामस्वरूप, शासन तथा प्रशासन की बढ़ती शक्तियों के दुरूपयोग की संभावना भी प्रबल हुई है। प्रायः यह देखा जाता है कि प्रशासन द्वारा सार्वजनिक हित के नाम पर जनता के हितों की अवहेलना की जाती है।

उपरोक्त बातों के दृष्टिगत विश्व के अधिकांश देशों में यह महसूस किया जा रहा था कि सरकार तथा प्रशासन की इन बढ़ी शक्तियों का प्रयोग उचित तरीके से किया जाए और सरकार, प्रशासन एवं जनता के अधिकारों के बीच

संतुलन बनाया जाए। क्योंकि शासन व प्रशासन को जितनी अधिक शक्तियाँ प्राप्त होंगी, उसके सापेक्ष उतनी ही जनता के अधिकारों के रक्षा की ज़रूरत भी होगी। सरकार तथा प्रशासन के विरूद्ध शिकायतों को दूर करने के लिए वर्तमान समय में कई संस्थाएं तो हैं किन्तु इनकी अपर्याप्तता, अत्यधिक खर्चीला होना और सर्वसुलभ न होने के कारण जन शिकायतों का प्रभावी तरीके से निवारण नहीं हो पा रहा था। परिणामस्वरूप उक्त कमियों की पूर्ती हेतु स्कैण्डेनिवियाई देशों में 'ओम्बुड्समैन' संस्था को जन्म दिया।

ओम्बुड्समैन की स्थापना सबसे पहले 1809 में स्वीडन में हुई। स्वीडन के बाद 1919 में फिनलैण्ड, 1933 में डेनमार्क, 1963 में नार्वे, 1962 में न्यूजीलैण्ड तथा 1967 में अमेरिका के हवाई प्रांत में स्वीकार किया गया। ओम्बुड्समैन संस्था को विश्व के अधिकांश देशों ने स्वीकार किया है। यह सही है कि ओम्बुड्समैन के सन्दर्भ में सभी देशों में इसके नाम, प्रावधानों और शक्तियों में एकरूपता नहीं देखने को मिलती। सभी देश अपने राजनीतिक परिवेश के अनुसार ही इसका गठन करते हैं किन्तु इन देशों में ओम्बुड्समैन की स्थापना का उद्देश्य एक है- सरकार के प्रशासनिक तंत्र के दुरूपयोग को रोकना, शासन तथा प्रशासन के मनमानेपन पर रोक लगाना, नागरिक अधिकारों की रक्षा करना और जन-शिकायतों का उचित समाधान करना।

इस इकाई में हम ओम्बुड्समैन का अर्थ एवं स्वीडन में ओम्बुड्समैन के संगठनात्मक संरचना, कार्य एवं शक्तियों के साथ ही अमेरिका में जन-शिकायत निवारण हेतु गठित संस्था के बारे में विचार करेंगे।

22.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- ओम्बुड्समैन के अर्थ एवं इसके उद्देश्यों को जान सकेंगे।
- स्वीडिश ओम्बुड्समैन की संगठनात्मक संरचना, शक्तियों तथा कार्यों का वर्णन कर सकेंगे।
- अमेरिका में जन-शिकायत निवारण की संस्था के बारे में जान सकेंगे।
- अमेरिका में जन-शिकायत निवारण की संस्था के प्रमुख प्रावधानों का वर्णन करने में सक्षमहो सकेंगे।

22.2 ओम्बुड्समैन का अर्थ एवं परिभाषा

ओम्बुड्समैन स्वीडिश भाषा के शब्द 'ओम्बड' से बना है, जिसका शब्दिक अर्थ प्रतिनिधि अथवा वकील है। अर्थात ओम्बड का मतलब एक ऐसे व्यक्ति से है जो किसी अन्य व्यक्ति का प्रतिनिधि अथवा प्रवक्ता हो। स्वीडन के कानून में ओम्बुड्समैन का मतलब एक ऐसे आदमी से है जिसे प्रशासन के कार्यों की निगरानी के लिए 'रिक्सडग' ने नियुक्त किया है। स्वीडश संसद को 'रिक्सडग' नाम से जाना जाता है।

ब्रिटेनिका विश्व कोश में ओम्बुड्समैन को ''नौकरशाही की शक्तियों के दुरूपयोग के संबंध में नागरिकों द्वारा की गई शिकायतों की खोज करने हेतु व्यवस्थापिका का आयुक्त'' कहा गया है। इस परिभाषा के अनुसार हम कह सकते हैं कि यह व्यवस्थापिका का एक प्राधिकृत प्रतिनिधि है, जो सरकार एवं प्रशासनिक अधिकारियों के समस्त प्रशासकीय कार्यों पर नजर रखता है। इसका कार्य लोक सेवकों के विरूद्ध भ्रष्टाचार, पक्षपात, भाई-भतीजावाद, शक्तियों तथा सरकारी मशीनरी के दुरूपयोग इत्यादि के संबंध में जन-शिकायतों को सुनना एवं उसका उचित समाधान करना है।

प्रो0 डोनाल्ट रोवट ने ओम्बुड्समैन को संयुक्त राज्य अमेरिका केसन्दर्भ में इस प्रकार से परिभाषित किया है, ''यह व्यवस्थापिका का एक स्वतंत्र और राजनीतिक रूप से तटस्थ अधिकारी है। प्रायः इसका संविधान में उल्लेख होता है। यह प्रशासनिक कार्यों के विरूद्ध जनता की शिकायतें सुनता और जाँच करता है। वह प्रशासनिक कार्यों की आलोचना कर सकता है तथा उसे जनता में प्रचारित कर सकता है, किन्तु बदल नहीं सकता।''

स्वीडन तथा अन्य स्कैंडीनेवियन देशों में ओम्बुड्समैन की लोकप्रियता एवं सफलता को देखते हुए विश्व के अन्य देशों ने जन-शिकायतों का निवारण करने वाले प्रावधानों को कई देशों में ओम्बुड्समैन नाम दिया जाने लगा। इसको देखते हुए अंतर्राष्ट्रीय बार एसोसिएशन ने 1974 में 'ओम्बुड्समैन' शब्द का एक मानक परिभाषा दी, ''संविधान द्वारा या विधायिका या संसद के कार्यों द्वारा प्रदान किया गया एक कार्यालय जिसका नेतृत्व एक उच्च-स्तरीय सार्वजनिक अधिकारी करता है और वह विधायिका या संसद के प्रति उत्तरदायी होता है और वह पीड़ित व्यक्तियों से सरकारी एजेन्सियों, अधिकारियों और कर्मचारियों के विरूद्ध या खुद ही से शिकायत प्राप्त करता है और उसे जाँच करने, निदान करने तथा रिर्पोट ज़ारी करने का अधिकार है।''

22.3 स्वीडिश ओम्बुड्समैन की संगठनात्मक संरचना

स्वीडिश राष्ट्रीय संसदीय ओम्बुड्समैन संस्था को''जस्टीशियेओम्बुड्समैन (Justitieombudsman)'' कहा जाता है जिसे संसद का सामान्य जनादेश प्राप्त होता है। स्वीडेन में इस संस्था के समकक्ष क्षेत्रीय व स्थानीय स्तर पर कोई निकाय नहीं है। सन् 1980 के दशक से कुछ विशेषीकृत ओम्बुड्समैन संस्थाओं का गठन किया गया था, जिनका उद्देश्य किसी विशिष्ट कानून के क्रियान्वयन से होता था और मुख्य रूप से उन क्षेत्रों में जहाँ भेदभाव की संभावना होती थी। इन पदाधिकारियों की नियुक्ति सरकार के द्वारा होती है किन्तु ये सरकार के हस्तक्षेप से पूर्णतः स्वतंत्र होते हैं। इस प्रकार की संस्थाओं में मुख्यतः सन् 1980 का समान अवसर ओम्बुड्समैन, सन् 1986 का नृजातीय भेदभाव के विरूद्ध ओम्बुड्समैन, सन् 1994 का विकलांगता ओम्बुड्समैन तथा सन् 1999 का लैंगिक भेद-भाव के विरूद्ध ओम्बुड्समैन का नाम उल्लेखनीय है। इन सभी ओम्बुड्समैन में व्यक्तिगत शिकायतों को भी स्वीकार किया जाता है परन्तु इनके विपरीत सन् 1993 में गठित बच्चों के लिए ओम्बुड्समैन में व्यक्तिगत् शिकायतों को स्वीकार नहीं किया जाता है। उपरोक्त सभी विशेषीकृत ओम्बुड्समैन संस्थाओं का सूक्ष्म परीक्षण संसदीय ओम्बुड्समैन के द्वारा किया जाता है।

अब हम स्वीडिश ओम्बुड्समैन की संगठनात्मक संरचना पर विचार करेंगे। इसके अंर्तगत हम स्वीडन में ओम्बुड्समैन की चयन प्रक्रिया, योग्यताएं, कार्यकाल तथा उसे प्राप्त स्वतंत्रताओं पर विचार करेंगे।

22.3.1 संगठन तथा चयन प्रक्रिया

स्वीडन में संसद द्वारा प्रत्यक्ष रूप से चार ओम्बुड्समैन को निर्वाचित कर नियुक्त किया जाता है, जिसमें से एक मुख्य ओम्बुड्समैन होता है जिसे मुख्य संसदीय ओम्बुड्समैन कहा जाता है। ओम्बुड्समैन की नियुक्ति के लिए लिखित रूप से कोई सामान्य अथवा विशेष योग्यता निर्धारित नहीं है, परन्तु व्यवहार में इस पद पर नियुक्त होने वाला व्यक्ति उच्च योग्यताधारक कानून का जानकार होना चाहिए। इसलिए विख्यत् और अनुभवि एवं स्वच्छ छवि वाले न्यायाधीशों को ही इस पद पर नियुक्त किया जाता है। मुख्य संसदीय ओम्बुड्समैन का यह दायित्व होता है कि वह अन्य ओम्बुड्समैन के प्रशासनिक क्षेत्रों का निर्धारण करे। मुख्य संसदीय ओम्बुड्समैन अन्य ओम्बुड्समैन के कार्यक्षेत्र में हस्तक्षेप नहीं करता परन्तु उनके कार्यों का पर्यवेक्षण अवश्य कर सकता है। प्रत्येक ओम्बुड्समैन अपने दायित्वों तथा कार्यों के लिए सीधे तौर पर संसद के प्रति उत्तरदायी होता है। मुख्य संसदीय ओम्बुड्समैन इस कार्यालय का प्रशासकीय निदेशक होता है। उसकी अनुपस्थिति में उसका सबसे वरिष्ठ सहयोगी उसके कार्यों की देख-रेख करता है।

संसद को यह अधिकार है कि वह एक या एक से अधिक उप-ओम्बुड्समैन की नियुक्ति कर सकता है। जब कभी मुख्य संसदीय ओम्बुड्समैन अपने दायित्वों का निर्वाह करने में किसी कारणवश सक्षम न हो तो, संसद उस समयावधि के लिए उप-ओम्बुड्समैन की नियुक्ति कर सकती है। उप-ओम्बुड्समैन का कार्यकाल दो वर्षों के लिए होता है, परन्तु मुख्य संसदीय ओम्बुड्समैन को यह अधिकार है कि वह इन्हें ओम्बुड्समैन के रूप में कार्य करने की

स्वीकृति दे सकता है। उपरोक्त के अलावा इस कार्यालय में इनके कार्यों में सहायता देने के लिए एक सहयोगी तथा छः विधिवेत्ता एवं कार्यालय सहायक भी नियुक्त किए जाते हैं।

22.3.2 कार्यकाल

स्वीडन में ओम्बुड्समैन का कार्यकाल चार वर्ष का होता है। वह कार्यकाल समाप्त होने पर पुनः नियुक्त हो सकता है। वह स्वीडिश संसद के प्रति उत्तरदायी होता है। वह प्रति वर्ष अपना वार्षिक रिर्पोट संसद के समक्ष प्रस्तुत करता है, जिसमें उसके द्वारा एक वर्ष के दौरान की गई कार्यवाहियों का विवरण होता है। इसके वार्षिक प्रतिवेदन पर एक संसदीय समिति विचार एवं विश्लेषण करती है। यदि संसदीय समिति उसके कार्यों से संतुष्ट नहीं होती है अथवा वह संसद का विश्वास खो देता है तो संसद की संवैधानिक समिति उसे हटाने की सिफारिश रिक्सडग(स्वीडिश संसद) से करती है। इस समिति की सिफारिश के आधार पर संसद उसे कार्यकाल से पहले पद्च्युक्त कर सकती है। स्वीडन में अभी तक किसी भी ओम्बुड्समैन को पद्च्युक्त नहीं किया गया है। इसके विरूद्ध किसी भी मामले की सुनवाई सीधे तौर पर उच्चतम् न्यायालय में ही की शुरू की जा सकती है।

22.3.3 स्वतंत्रताऐं

स्वीडिश ओम्बुड्समैन एक संवैधानिक संस्था है। इसे कार्यपालिका, व्यवसथापिका तथा न्यायपालिका से स्वतंत्र रखा गया है। यहाँ गौर करने वाली बात यह है कि इसकी नियुक्ति व्यवस्थापिका के द्वारा की जाती है, किन्तु यहाँ पर इसे व्यवस्थापिका से भी स्वतंत्र रखा गया है। इसके कार्यो में कोई भी संस्था अनावश्यक हस्तक्षेप नहीं कर सकती। इसकी नियुक्ति तथा पद्च्युक्त करने की शक्ति रिक्सडग है। इसका कार्यकाल समाप्त होने से पूर्व इसे पद्च्युक्त करने की जो व्यवस्था दी गई है उसके अंतर्गत केवल संसद की संवैधानिक समिति की सिफारिश पर ही संसद हटा सकती है। अन्य किसी संस्था को इस प्रकार की कार्यवाही अथवा सिफारिश करने का अधिकार नहीं है। उसके वेतन व भत्ते देश की संचित निधि पर भारित होते हैं। उसकी नियुक्ति के पश्चात उसके कार्यकाल के दौरान वेतन, भत्तों व सेवाशर्तों में किसी प्रकार का अलाभकारी परिवर्तन नहीं किया जा सकता। उसे स्वीडन के उच्चतम् न्यायालय के न्यायधीश के बराबर वेतन मिलता है।

22.4 स्वीडिश ओम्बुड्समैन की शक्तियाँ एवं कार्य

स्वीडन में ओम्बुड्समैन का कार्य बहुमुखी प्रकृति का है तथा इसे व्यापक शक्तियाँ प्राप्त हैं। स्वीडन में यह पद सम्मान एवं प्रतिष्ठा का पद है। इसके अधिकार क्षेत्र में कार्यपालिका, न्यायपालिका तथा स्थानीय निकाय आदि के समस्त लोक सेवक आते हैं। यहाँ ध्यान देने वाली बात यह है कि अन्य देशों के समान स्वीडन में न्यायपालिका तथा न्यायधीशों को ओम्बुड्समैन के अधिकार क्षेत्र से बाहर नहीं रखा गया है। यह सभी लोक सेवकों का निरीक्षण करता है। वह इन लोक सेवकों तथा सरकार की कार्यप्रणाली पर पैनी नजर रखता है कि प्रशासन कानून एवं संविधान के अनुसार चलाया जा रहा है अथवा नहीं, लोक सेवक न तो अपनी शक्तियों का दुरूपयोग करें और न ही कानून के दायरे से बाहर जा कर उसका प्रयोग करें, न्यायालयों की कार्यप्रणाली उचित हो तथा न्याय निष्पक्ष ढ़ंग से हो और साथ ही नागरिकों के अधिकारों का उल्लंघन न हो। यह मुख्य रूप से निर्णय निर्माण करने वाली संस्थाओं तथा प्राधिकारियों पर ध्यान केन्द्रित करता है। ओम्बुड्समैन को यह अधिकार है कि वह किसी भी प्रशासनिक कार्यालयों और न्यायालय द्वारा किये जा रहे कार्यवाहियों में उपस्थित रह सकता है। स्वीडिश ओम्बुड्समैन न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय का पुनरावलोकन नहीं कर सकता, परन्तु किसी मुकद्दमें के संबंध में उसे न्यायधीशों की कार्यप्रणाली एवं उनके व्यवहार की जाँच करने का अधिकार है। किसी मामले की जाँच करने हेतु आवश्यक सूचनाएँ एवं रिकार्ड्स आदि प्राप्त करने का अधिकार है। कोई भी कार्यालय इसके द्वारा मांगी गई सूचनाओं को देने से मना नहीं कर सकता। यह किसी भी माध्यम से प्राप्त शिकायतों की जाँच करता है साथ ही समाचार पत्रों आदि के माध्यमों द्वारा उठाए गए किसी मामले पर स्वयं संज्ञान लेते हुए जाँच कर सकता है। जब उसे

यह स्पष्ट हो जाता है कि शिकायत निराधार अथवा गलत है तो ऐसी शिकायतों को तुरन्त रद्द कर सकता है। ओम्बुड्समैन उन मामलों को पुनः प्रारम्भ कर सकता है जिनमें कोई निर्णय नहीं हुआ है बशर्ते ऐसे मामले दो या दो से अधिक वर्ष पुराने नहीं होने चाहिए। इसे यह भी अधिकार है कि वह भ्रष्टाचार में संलिप्त किसी अधिकारी अथवा न्यायाधीश के विरूद्ध मुकद्दमा चला सकता है अथवा जुर्माना लगा सकता है। जब किसी अधिकारी द्वारा अपने दायित्वों के निर्वहन में गंभीर लापरवाही सिद्ध होने पर उसे पद से हटाने के लिए उसके विरूद्ध विभागीय कार्यवाही की सिफारिश कर सकता है।

संसद के सदस्यों एवं समितियों को इसके अधिकार क्षेत्र से बाहर रखा गया है। ऐसा इसलिए किया गया है ताकि यह संस्था राजनीतिक विवादों से दूर रहे। मंत्रियों तथा सरकारी निगमों को भी इसके अधिकार क्षेत्र में नहीं रखा गया है क्योंकि स्वीडन के कानून के अंतर्गत सरकारी निगम को सरकार का अंग नहीं माना जाता है। स्वीडन में मंत्रियों की स्थिति संसदीय प्रणाली वाले देशों के मंत्रियों से भिन्न होती है। स्वीडन में मंत्री की निर्णय निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका नहीं होती है, बल्कि मात्र सलाहकारी भूमिका ही होती है। स्वीडन में राजा स्वयं निर्णय लेता है। सभी मंत्री संसद के प्रति उत्तरदायी होते हैं और संसद ही मंत्रियों पर कठोर नियंत्रण रखती है।संसद अविश्वास प्रस्ताव ला कर इन्हें हटा सकती है। सेना एवं सेना के अधिकारी भी संसदीय ओम्बुड्समैन के अधिकार क्षेत्र से बाहर हैं। स्वीडन में सेना संबंधी मामलों के लिए अलग से सेना ओम्बुड्समैन होता है, जो सेना संबंधी शिकायतों का समाधान करता है, जिसे सेना मामले का कमिश्नर कहा जाता है। इस पद पर सेकैंड लेफटिनेन्ट अथवा समकक्ष पद अथवा उससे उच्च अधिकारी ही नियुक्त हो सकता है।

कुल मिला कर हम कह सकते हैं कि इसका कार्य नागरिक अधिकारों की रक्षा करना, लोक अधिकारियों, कर्मचारियों और न्यायधीशों के द्वारा कानूनों, नियमों, उप-नियमों का पालन कराना है, साथ ही सरकार को इच्छा के अनुसार कानून की अनदेखी करने से रोकना है। ओम्बुड्समैन उपरोक्त कार्यों को बखूबी निभाता है और इनका उल्लंघन न होने पाए इसके लिए वह सरकार, सरकार की संस्थाओं तथा लोक अधिकारियों के ऊपर अपनी पैनी नजर रखता है।

22.5 स्वीडिश ओम्बुड्समैन की कार्यप्रणाली

स्वीडिश ओम्बुड्समैन प्राप्त शिकायतों की खोजबीन करने में कोई भी समुचित प्रक्रिया अपनाने के लिए स्वतंत्र होता है, किन्तु खोजबीन करने की कार्यवाही न्यायालयों के समान नहीं होती। कोई भी व्यक्ति अपने मामले की पैरवी स्वयं कर सकता है, इसके लिए उसे किसी वकील की आवश्यकता नहीं है। सामान्यतः ओम्बुड्समैन किसी प्रकरण की जाँच में अनौपचारिक प्रक्रियाओं को अपनाता है। यह स्वतः ही किसी मामले का संज्ञान लेते हुए कार्यवाही शुरू कर सकता है। यह दो वर्ष या उससे अधिक पुराने मामले की जाँच स्वतः प्रारम्भ करने के लिए सामान्यतः स्वतंत्र नहीं है, परन्तु विशेष मामलों में वह ऐसा कर सकता है। ओम्बुड्समैन को की गई शिकायतें लिखित होनी चाहिए तथा उस शिकायत में कुछ महत्वपूर्ण बातें स्पष्ट होनी चाहिए जैसे- वह किस संस्था अथवा सत्ता से संबंधित है, किस कार्यवाही के विरूद्ध शिकायत की गई है; कार्यवाही की तिथि; तथा शिकायतकर्ता का नाम और पते का भी उल्लेख किया जाना चाहिए। जैसे ही ओम्बुड्समैन को कोई शिकायत प्राप्त होती है, तो ओम्बुड्समैन अविलम्ब उस शिकायतकर्ता को उसके शिकायत की स्थिति से अवगत कराता है कि उसकी शिकायत को स्वीकार कर लिया गया है अथवा निरस्त कर दिया गया है अथवा किसी अन्य एजेन्सी को सौंप दिया गया है अथवा उस शिकायत को जाँच सूची में शामिल कर लिया गया है। यह जाँच कार्यवाही के दौरान किसी भी व्यक्ति अथवा संस्था को उपस्थित होने अथवा दस्तावेज अथवा अन्य अभिलेख प्रस्तुत करने पर बाध्य कर सकता है। यदि कोई व्यक्ति अथवा संस्था ओम्बुड्समैन की कार्यवाही में सहयोग नहीं करता है अथवा बाधा उत्पन्न करता है, तो उस स्थिति में ओम्बुड्समैन उसे विधि के अनुसार दण्डित कर सकता है।

किसी मामले की जाँच के पश्चात वह अपने जाँच रिर्पाट को संबंधित शिकायतकर्ता को प्रेषित कर देता है तथा विभाग को इस आशय से प्रेषित कर देता है कि विभाग राहत अथवा प्रतिकार की समुचित कार्यवाही करे। यदि किसी प्रकरण की जाँच के दौरान उसे विश्वास हो जाता है कि सम्बन्धित प्रशासनिकतंत्र दोषी है तो वह अपनी रिर्पोट में इस सन्दर्भ में टिप्पणी करता है।

22.6 अमेरिका में जन-शिकायत निवारण की संस्था

स्वीडन की भाँति ही अमेरिका में भी जन-शिकायतों के निवारण के लिए ओम्बुड्समैन संस्था की व्यवस्था की गई है, किन्तु अमेरिका में अन्य देशों के तरह से संघीय स्तर पर ओम्बुड्समैन जैसी कोई संस्था नहीं है। बल्कि वहाँ विभागीय, सेवा, स्थानीय तथा प्रांतीय स्तर पर इस प्रकार की संस्था का गठन किया जाता है। अमेरिका में ओम्बुड्समैन की संकल्पना पर 60 के दशक के मध्य ध्यान दिया जाने लगा जब सरकार के कई दस्तावेज सार्वजनिक हो गए और कई घोटाले भी सामने आए। इसके अतिरिक्त नागरिक अधिकारों को लेकर कई आंदोलन भी शुरू हुए जिसने निवर्तमान राजनीतिक परिवेश को इस संस्था के गठन के लिए उपयुक्त बना दिया। सर्वप्रथम 1967 में अमेरिका के हवाई प्रांत में इसका गठन किया गया, जिसे लोक क्षेत्र कार्यालय का नाम दिया गया। इसके बाद, कई प्रांतों, नगरीय स्थानीय शासन, विभागों तथा अभिकरणों में इस प्रकार की संस्था का गठन किया जाने लगा। स्वीडिश ओम्बुड्समैन प्रतिमान के समान ही अमेरिका में ओम्बुड्समैन के गठन के लिए कई आंदोलन चलाए गए। अमेरिका में गठित इस प्रकार की संस्थाओं में एकरूपता देखने को नहीं मिलती, इनके क्षेत्राधिकार, कार्य एवं शक्तियों में अलग-अलग प्रांतों में भिन्नता देखने को मिलती है। किन्तु इनकी नियुक्ति के सन्दर्भ में समानता देखी जा सकती है क्योंकि प्रांतीय स्तर पर इनकी नियुक्ति गवर्नर के द्वारा एवं स्थानीय स्तर पर मेयर के द्वारा की जाती है।

सन् 1994 में 'संयुक्त राज्य अमेरिका ओम्बुड्समैन एसोसिएशन'(USOA, United States Ombudsman Association) के निदेशक मण्डल के द्वारा राज्यों में ओम्बुड्समैन के सन्दर्भ में एकरूपता लाने हेतु राज्य सरकारों के लिए एक मॉडल अधिनियम बनाया जिसे 1997 में स्वीकृति दी गई। अप्रैल 2004 में इस अधिनियम में कुछ संशोधन करते हुए इसे पुनःसंरचित किया गया। हालांकि इस अधिनियम के मूल स्वरूप एवं भाषा में कोई परिवर्तन नहीं किया गया। इस मॉडल अधिनियम को अमेरिका के सभी प्रांतों के लिए एक आदर्श प्रतिमान के रूप में बनाया गया था। अमेरिकी प्रांतों से अपेक्षा की गई कि प्रत्येक प्रांत इस प्रतिमान को आधार बनाते हुए अपने यहाँ ओम्बुड्समैन का गठन करने के लिए अधिनियम बनाएंगे। यह अधिनियम राज्य सरकारों के लिए बनाया गया था, परन्तु यह भी व्यवस्था की गई थी कि स्थानीय निकाय भी इस अधिनियम को अपना सकते हैं। इस मॉडल अधिनियम को अमेरिका के सभी प्रांतों को इस आशय से भेजा गया था कि वे इसमें उपयुक्त सुधार संबंधी सुझाव प्रदान करें। अनेक प्रांतों ने भी इस पर रूचि दिखाते हुए कई सुधारात्मक सुझाव दिए जिसमें से कुछ सकारात्मक सुझावों को स्वीकार करते हुए इस मॉडल अधिनियम में शामिल कर लिया गया।

अब हम संयुक्त राज्य अमेरिका के ओम्बुड्समैन एसोसिएशन के द्वारा प्रांतीय सरकारों के लिए मॉडल ओम्बुड्समैन अधिनियम में दिए गए प्रावधानों के विषय में विचार करेंगे।

22.7 प्रान्तीय सरकारों के लिए मॉडल ओम्बुड्समैन अधिनियम

इकाई के इस भाग के अंतर्गत हम ओम्बुड्समैन अधिनियम में किए गए प्रावधानों यथा ओम्बुड्समैन का संगठन एवं उसकी नियुक्ति, योग्यताएं, कार्यकाल, पदच्युक्त करने की प्रक्रिया, स्वतंत्रताएं, आदि पर एक-एक करके विचार करेंगे।

22.7.1 संगठनात्मक संरचना

अमेरिका में ओम्बुड्समैन सरकार की शाखा-विधायिका का नियुक्त अधिकारी होता है। ओम्बुड्समैन निर्वाचन व्यवस्थापिका के दोनों सदनों के उपस्थित एवं मत देने वाले सदस्यों के दो तिहाई बहुमत द्वारा होता है। यह व्यवस्था इसलिए की गई है क्योंकि यदि ओम्बुड्समैन कार्यपालिका के प्रति उत्तरदायी बना दिया जाता तो वह इसके कार्यों की आलोचना नहीं कर पाता। ओम्बुड्समैन को स्वतंत्र रूप से कार्यों का सम्पादन करने हेतु यह अधिकार प्राप्त है कि वह किसी भी व्यक्ति को उप-ओम्बुड्समैन के रूप में चयनित अथवा नियुक्त कर सकता है। इस संस्था में उप-ओम्बुड्समैन की नियुक्ति करना ओम्बुड्समैन के लिए अनिवार्य है, किन्तु सहायक ओम्बुड्समैन की नियुक्ति करना उसके लिए अनिवार्य नहीं है, बल्कि वह आवश्यकतानुसार इसकी नियुक्ति कर सकता है। उसे यह भी अधिकार है कि इस अधिनियम के तहत इसे दिए गए कार्यों के निवर्हन के लिए आवश्यकतानुसार अन्य अधिकारियों एवं कर्मचारियों की नियुक्ति कर सकता है। ओम्बुड्समैन को अपने कार्यालय के कर्मचारियों की नियुक्ति का अधिकार इसलिए दिया गया है ताकि वह राजनीतिक एवं सिविल सेवा के हस्तक्षेप से स्वतंत्र रह कर कार्य कर सकें। इस संस्था के समस्त अधिकारी एवं कर्मचारी ओम्बुड्समैन के प्रसाद पर्यन्त ही पद धारण करते हैं। ओम्बुड्समैन ही अपनी संस्था से सम्बन्धित सभी अधिकारियों एवं कर्मचारियों को पद और गोपनीयता का शपथ दिलाता है।

ओम्बुड्समैन अपने स्टाफ के सदस्यों को कोई भी सत्ता, शक्ति अथवा दायित्व प्रत्यायोजित कर सकता है, परन्तु वह ओम्बुड्समैन की कोई भी रिर्पोट बनाने से सम्बन्धित अपनी सत्ता या दायित्व को प्रत्यायोजित नहीं कर सकता। ओम्बुड्समैन, उप-ओम्बुड्समैन को अपने पद से सम्बन्धित कार्य को करने के लिए कुछ परिस्थितियों में अधिकृत कर सकता है, यदि वह बीमार हो अथवा अवकाश पर हो अथवा किसी विकलांगता का शिकार हो गया हो अथवा किसी मामले पर उसे ऐसा प्रतीत होता है कि वह अपने दायित्वों का निर्वहन हितों के टकराव के कारण करने में सक्षम नहीं है। इस संस्था द्वारा बनाए जाने वाले प्रत्येक प्रतिवेदन का उत्तरदायित्व ओम्बुड्समैन की होती है। यदि ओम्बुड्समैन के रूप में उप-ओम्बुड्समैन कार्य कर रहा है तो उसके द्वारा दिए गए रिर्पोट की जिम्मेदारी उसकी होगी।

ओम्बुड्समैन तथा उसके संगठन के समस्त कार्मिकों को प्रांतीय सरकार के कर्मचारियों के समान ही सभी लाभ प्रदान किए जाएंगे जैसे- सेवानिवृत्ति योजना तथा कर्मचारी कल्याण से सम्बन्धित अन्य सुविधाएं। अपने कार्यालय से सम्बन्धित कर्मचारियों का वेतन, भत्ते एवं अन्य सेवा-शर्तों का निर्धारण ओम्बुड्समैन करता है।

22.7.2 योग्यता

अमेरिका में ओम्बुड्समैन की नियुक्ति के लिए कोई विशेष योग्यता का निर्धारण नहीं किया गया है, बल्कि इस पद पर किसी भी ऐसे व्यक्ति को नियुक्त किया जा सकता है जो न्यायपूर्ण, सत्यनिष्ठ, वस्तुनिष्ठ, विशेषज्ञ एवं जिस पर जनता का विश्वास हो। वह कानून, प्रशासन तथा लोक नीति की समस्याओं का विश्लेषण कर सके। इस पद के लिए योग्य माना जाएगा।

22.7.3 निर्बन्धन

ओम्बुड्समैन के रूप में काम करने वाले व्यक्ति पर कुछ निर्बन्धन लगाए गए हैं, जो निम्नलिखित हैं-

1. राजनीतिक गतिविधियों में सक्रिय भागीदारी तथा उनका प्रचार-प्रसार नहीं कर सकता है और न ही किसी राजनीतिक दल अथवा राजनीतिक व्यक्ति के लिए चंदा दे सकता है और न ही एकत्र सकता है।
2. वह किसी भी ऐसे सार्वजनिक पद को ग्रहण नहीं कर सकता है, जिसे चुनाव या नियुक्ति द्वारा ग्रहण किया जाता है।
3. वह कोई व्यवसाय, व्यापार तथा पेशा नहीं कर सकता, जिससे की ओम्बुड्समैन के रूप में उसके कार्य किसी भी प्रकार से प्रभावित हों।

अमेरिका के कुछ प्रांतों ने जैसे- एरिजोना, हवाई और नेब्रास्का ने ओम्बुड्समैन को राजनीति से दूर रखने के लिए यह व्यवस्था की है कि ओम्बुड्समैन के रूप में नियुक्त होने वाला व्यक्ति एक अथवा दो वर्ष पहले विधायिका के सदस्य के रूप में कार्य न किया हो।

22.7.4 कार्यकाल

ओम्बुड्समैन के पद की गरिमा एवं प्रतिष्ठा को देखते हुए एवं इसके द्वारा किए जाने वाले कार्यों की गंभीरता को ध्यान में रखते हुए, राजनीति से स्वतंत्र रखने हेतु, उसका एक लम्बा कार्यकाल होना चाहिए, जैसे- 15 वर्ष। कार्यकाल के सम्बन्ध में प्रांतों को अधिकार प्राप्त है कि वह अपने अनुसार अपने ओम्बुड्समैन अधिनियम में इसका निर्धारण कर सकते हैं। अमेरिका के प्रांतों में इसके कार्यकाल में एकरूपता स्थापित करने के लिए यह व्यवस्था की गई है कि किसी भी परिस्थिति में 05 वर्ष से कम नहीं होना चाहिए, इससे अधिक हो सकता है। ओम्बुड्समैन अपने पद पर अपने कार्यकाल तक बना रहता है। कार्यकाल समाप्त होने के पश्चात इस पद पर नई नियुक्ति होने तक बना रह सकता है। इस पद पर कार्यरत किसी भी व्यक्ति को पुनर्नियुक्त किया जा सकता है।

व्यवस्थापिका प्रस्ताव ला कर ओम्बुड्समैन को पदच्युक्त कर सकती है। प्रत्येक सदन में उपस्थित एवं मत देने वाले सदस्यों की दो तिहाई बहुमत द्वारा प्रस्ताव पारित कर इसे हटाया जा सकता है। इसे निम्न कारणों के आधार पर ही पदच्युक्त किया जा सकता है- ज बवह मानसिक तथा शारीरिक रूप से अपने दायित्वों का निर्वहन करने में असमर्थ हो अथवा जिस प्रान्तों के संविधानिक प्रावधानों के अनुसार न्याधीशों को पदच्युक्त करने के जो आधार हैं, केवल उसी आधार पर इसे पद से हटाया जा सकता है। जब भी यह पद रिक्त होगा, तो उस स्थिति में केवल शेष बचे हुए कार्यकाल के लिए नियुक्ति की अपेक्षा पूरे कार्यकाल के लिए नए ओम्बुड्समैन की नियुक्ति को श्रेष्ठ माना गया है।

22.7.5 स्वतंत्रताऐं

ओम्बुड्समैन को कुछ स्वतंत्रताएं प्रदान की गई हैं ताकि वह बिना किसी दबाव अथवा भय के किसी जन शिकायत का निष्पक्षता से जाँच करके उचित निर्णय ले सके। ओम्बुड्समैन को निम्नलिखित स्वतंत्रताऐं प्राप्त हैं-

1. ओम्बुड्समैन के द्वारा किसी भी जन शिकायत की जाँच के निष्कर्षों, सुझावों और उसके प्रतिवेदनों आदि पर न्यायलय में पुनर्विचार नहीं किया जा सकता।
2. जिस प्रकार से प्रांतों के जजों को किसी भी दीवानी तथा फौजदारी मुकद्दमों से छूट है, ठीक उसी प्रकार ओम्बुड्समैन तथा उसके स्टाफ को भी छूट दी गई है।
3. ओम्बुड्समैन संस्था के कार्यालय द्वारा किसी मामले की कार्यवाही से संबंधित दस्तावेजों को किसी न्यायालय अथवा प्रशासनिक सुनवाई में प्रस्तुत करने के लिए ओम्बुड्समैन एवं उसके स्टाफ को बाध्य नहीं किया जा सकता। ऐसा इसलिए किया गया है ताकि गोपनीयता को बनाए रखा जा सके जिससे शिकायतकर्ता अथवा किसी मामले से संबंधित गवाह पर किसी प्रकार का दबाव न बनाया जा सके और वे उस मामले की जाँच में ओम्बुड्समैन को सहयोग कर सकें।
4. ओम्बुड्समैन अपने कार्यालय के बजट को स्वयं बनाता है तथा उसका प्रबंधन करता है, ताकि राज्य सरकार एवं अन्य संस्थाओं के दबाव से मुक्त रहकर कार्य कर सके।

22.8 ओम्बुड्समैन का क्षेत्राधिकार

ओम्बुड्समैन के क्षेत्राधिकार के अंतर्गत कार्यपालिका के समस्त विभागों में कार्यरत सभी प्रशासकीय अधिकारी एवं कर्मचारी आते हैं। इसके क्षेत्राधिकार में न्यायिक शाखा के प्रशासनिक एवं मंत्रालयी कार्य करने वाले कर्मचारी भी आते हैं। न्यायधीश को इसके क्षेत्राधिकार से बाहर रखा गया है, किन्तु प्रशासकीय न्यायाधिकरण और प्रशासकीय कानून इसके क्षेत्राधिकार में आते हैं। ओम्बुड्समैन किसी भी न्यायिक निर्णय, न्यायपालिका के आदेश

या मत की जाँच नहीं कर सकता। परन्तु न्यायिक प्रक्रिया की जाँच कर सकता है। विधायिका तथा उसकी समितियों तथा इसके स्टाफ जो सीधे तौर पर विधि निर्माण से जुड़े है, उन पर ओम्बुड्समैन को अधिकारिता प्राप्त नहीं है। निर्वाचित संवैधानिक राज्य पदाधिकारी जैसे लेफ्टिनेन्ट गवर्नर, कोषाध्यक्ष तथा उनके निजी स्टाफ को ओम्बुड्समैन के क्षेत्राधिकार से बाहर रखा गया है। इसका अभिप्राय यह है कि राज्य के अन्य निर्वाचित पदाधिकारी इसके जाँच के दायरे में रखे जाएंगे, जो कि निर्णय निर्माण की अपेक्षा प्रशासकीय कार्यों में संलिप्त हों। राज्य अपने स्तर पर यह निर्णय ले सकते हैं कि किन निर्वाचित अधिकारियों को इसके अधिकार क्षेत्र में शामिल करना है अथवा नहीं।

22.9 ओम्बुड्समैन की शक्तियाँ एवं दायित्व

ओम्बुड्समैन को व्यापक शक्तियाँ तथा दायित्व प्रदान किए गए हैं। अमेरिका के प्रांतों में इसकी शक्यिों तथा दायित्वों में अंतर देखने को मिलता है। किन्तु सामान्य तौर पर सभी प्रांतों में ओम्बुड्समैन को यह शक्ति दी गई है कि वह भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद, कार्य में नियमों का उल्लंघन, किसी अभिकरण के प्रशासकीय कार्यों की जाँच कर सकता है। यह किसी शिकायत के आधार पर किसी भी माध्यम से उठाये गये मामले पर स्वयं संज्ञान लेते हुए भी कार्यवाही कर सकता है। सामान्य तौर पर ओम्बुड्समैन का समय जन शिकायतों के निवारण में ही जाता है, किन्तु वह अपनी कार्य पद्धति में सुधार हेतु एवं आपत्तिजनक प्रशासनिक कार्यवाही को रोकने के दृष्टिगत संगोष्ठियों, जाँचों, बैठकों और अध्ययनों में प्रतिभाग कर सकता है, सहायोग कर सकता है अथवा इनका आयोजन कर सकता है। वह अपने दायित्वों के निर्वहन हेतु आवश्यकता पड़ने पर किसी भी अभिकरण अथवा व्यक्ति से सूचनाएं एवं सहयोग प्राप्त कर सकता है। कोई भी अभिकरण अपने कर्मचारियों को ओम्बुड्समैन की सहायता करने से रोक नहीं सकता। वह बिना कोई पूर्व सूचना दिए किसी भी अभिकरण के परिसर में प्रवेश कर सकता है और उसका निरीक्षण भी कर सकता है। ओम्बुड्समैन को अधिकार है कि वह जाँच से संबंधित आवश्यक रिकॉर्डों को किसी व्यक्ति अथवा संस्था से प्राप्त कर सकता है। वह जाँच से जुड़े किसी व्यक्ति को प्रस्तुत होने के लिए सम्मन जारी कर सकता है। कोई संस्था अथवा विभाग अथवा प्रशासकीय कार्यालय उसके द्वारा मांगे गए आवश्यक सूचनाओं को देने से मना नहीं कर सकता। यहाँ तक कि ओम्बुड्समैन को ऐसे सभी दस्तावेजों को प्राप्त करने तथा उनका परीक्षण करने का अधिकार है जिसे राज्य के कानून द्वारा गोपनीय माना गया हो। परन्तु इस सन्दर्भ में यह प्रावधान किया गया है कि ओम्बुड्समैन इन गोपनीय दस्तावेजों को सार्वजनिक नहीं कर सकता। ऐसा करने की स्थिति में उसके विरूद्ध वही कार्यवाही होगी, जो उस दस्तावेज के वैधानिक संरक्षक के विरूद्ध करने का जो प्रावधान होगा।

ओम्बुड्समैन अपने कार्यालय से संबंधित समस्त नियम तथा विनियम बना सकता है, किन्तु शिकायतों की जाँच हेतु कोई शुल्क नहीं ले सकता। वह अपने कार्यालय के बजट को बनाता है तथा उसका प्रबंधन करता है। ऐसा इसलिए किया गया है कि राज्य तथा सरकार के किसी अन्य अभिकरण का हस्तक्षेप न हो सके। वह अपने कर्तव्यों के निर्वहन में तथा किसी शिकायत के जाँच के मामले में पूर्ण गोपनीयता बनाए रखता है। इसके अंतर्गत शिकायतकर्ता तथा गवाहों की गोपनीयता भी शामिल है। वह किसी अधिनियम के किसी प्रावधान को लागु करने के लिए न्यायालय तथा अन्य संस्थाओं से आग्रह कर सकता है। अमेरिका में ओम्बुड्समैन को मात्र सिफारिश करने का अधिकार है। स्वीडन के समान दण्डात्मक कार्यवाही करने का अधिकार नहीं है। वह समय-समय पर तथा अपना वार्षिक रिर्पोट गर्वनर, विधायिका अथवा उसके किसी समिति के समक्ष प्रस्तुत करता है।

22.10 ओम्बुड्समैन की कार्यप्रणाली

इस संस्था की स्थापना जनता की शिकायतों को दूर करने की परम्परागत संस्थाओं के होते हुए भी एक विकल्प के रूप में स्थापित किया गया है। जनता की शिकायतों का निवारण जब किसी संस्था से नहीं होता तो वह व्यक्ति

ओम्बुड्समैन के पास शिकायत कर सकता है। ओम्बुड्समैन ही अपनी कार्य करने के तौर-तरीकों का निर्धारण करता है। ओम्बुड्समैन शिकायतों की जाँच गोपनीय तरीके से करता है। वह प्राप्त सभी शिकायतों की जाँच करे यह आवश्यक नहीं है। वह प्राप्त शिकायतों में से अथवा स्वयं संज्ञान लेकर उन्हीं मामलों की जाँच करता है, जब उसे विश्वास हो जाए कि कोई कार्य- कानून एवं विनियम के विपरीत किया गया है; किया गया कार्य गलत तथ्यों पर आधारित है; किए गए कार्य के समर्थन में कोई पर्याप्त कारण नहीं है; अथवा मनमाने तरीके से किया गया है, अन्यायपूर्ण रूप से किया गया कार्य हो या त्रुटिपूर्ण हो।

ओम्बुड्समैन किसी शिकायत अथवा मामले की जाँच न करने का निर्णय ले सकता है और उसे निरस्त कर सकता है, यदि उसे विश्वास हो जाए कि शिकायतकर्ता किसी अन्य माध्यम से भी अपनी शिकायत दूर कर सकता है; शिकायतकर्ता की मंशा साफ न हो अथवा विद्वेषपूर्ण हो; यदि कोई मामला लम्बे समय तक लम्बित रखा गया हो ताकि यह दर्शाया जा सके कि उसकी जाँच ओम्बुड्समैन के द्वारा ही सम्भव है; यदि शिकायतकर्ता से व्यक्तिगत रूप से संबंधित न हो; यदि जाँच करने हेतु पर्याप्त संसाधन न हो; यदि अन्य शिकायतें उस शिकायत की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण हो। यहाँ यह स्पष्ट करना उचित होगा कि ओम्बुड्समैन द्वारा किसी शिकायत को निरस्त करने का यह तात्पर्य नहीं है कि वह स्वयं किसी प्रशासकीय कार्य के विरूद्ध जाँच प्रारम्भ नहीं कर सकता।

शिकायतकर्ता द्वारा शिकायत मिलने पर ओम्बुड्समैन के द्वारा यह निर्धारित करने के पश्चात कि शिकायत जाँच हेतु स्वीकार किया गया है अथवा नहीं, शिकायतकर्ता को इसकी सूचना देनी होती है। शिकायतकर्ता के अनुरोध पर ओम्बुड्समैन उसके प्रकरण में चल रही जाँच की स्थिति से तथा जाँच पूर्ण होने के पश्चात जाँच के निष्कर्षों से उसे अवगत कराता है और स्पष्ट करता है कि उसके मामले में क्या और किसके द्वारा कार्यवाही की जानी है। किसी व्यक्ति द्वारा की गई शिकायत गोपनीय रूप से ओम्बुड्समैन पहुँचाई जाएगी, ठीक उसी प्रकार ओम्बुड्समैन द्वारा भेजे गए पत्र भी उस व्यक्ति तक पहुँचाए जाएंगे। ओम्बुड्समैन तथा शिकायतकर्ता के बीच व्यक्तिगत् तथा दूरभाष से संपर्क को रोका अथवा उसका अनुश्रवण नहीं किया जाएगा। यहाँ गौर करने वाली बात यह है कि सेवारत शिकायत करता के विरूद्ध उसके द्वारा की गई शिकायत के सम्बन्ध में उसके कार्यालय द्वारा किसी प्रकार का कोई दुर्भावनापूर्ण कार्यवाही जैसे नौकरी से निकालना, किसी अधिकार, सेवा अथवा सुविधा से वंचित करना आदि, नहीं किया जा सकता। जिस संस्था अथवा कार्यालय के सम्बन्ध में शिकायत की गई है, जाँच के दौरान ओम्बुड्समैन उस संस्था को सुनवाई का अवसर प्रदान करता है। सुनने केपश्चात अपने निष्कर्षों से संबंधित संस्था को इस आशय से भी अवगत कराता है कि वह निर्धारित अवधि में उस पर उचित कार्यवाही कर उसे सूचित करे। यदि निर्धारित अवधि समाप्त हो जाती है और उसके निर्णयों पर कोई कार्यवाही नहीं की गई है तो ओम्बुड्समैन अपने निष्कर्षों को विधायिका, गवर्नर, जूरी अथवा उचित सत्ता के समक्ष प्रस्तुत करता है।

यदि किसी जाँच के दौरान ओम्बुड्समैन को यह स्पष्ट हो जाता है कि किसी अभिकरण का कोई अधिकारी अथवा कर्मचारी किसी अपराधिक मामले में संलिप्त है तो बिना उस कर्मचारी को सूचित किए वह सीधे उचित सत्ता को शिकायत कर सकता है।

अभ्यास प्रश्न-

1. ओम्बुड्समैन की स्थापना करने वाला विश्व का पहला देश कौन है?
2. अमेरिका के किस प्रांत ने सबसे पहले अपने यहाँ ओम्बुड्समैन की स्थापना की थी?
3. स्वीडन में ओम्बुड्समैन का कार्यकाल कितने वर्ष का होता है?
4. अमेरिका के प्रांतो के लिए मॉडल ओम्बुड्समैनअधिनियम कब बनाया गया?

22.11 सारांश

इस इकाई में हमने देखा कि स्वीडन में सर्वप्रथम ओम्बुड्समैन संस्था की स्थापना की गई थी। स्वीडन में ओम्बुड्समैन को व्यापक शक्तियाँ तथा दण्डात्मक कार्यवाही का अधिकार प्राप्त है। वह स्वतंत्र संस्था के रूप में कार्य कर रहा है। स्वीडन के साथ ही अन्य देशों में इसकी स्थापना का उद्देश्य एक ही है कि संस्थाएं तथा उसमें कार्यरत लोक सेवक नियमों, विनियमों तथा विधिक प्रक्रिया के अनुसार ही कार्य करें, जिससे नागरिकों के अधिकारों को सुरक्षित रखा जा सके। इस इकाई में हमने अमेरिका में जन शिकायत निवारण की संस्था के रूप में स्थापित ओम्बुड्समैन के बारे में जाना है। अमेरिका में स्वीडन के समान केन्द्रीय स्तर पर ओम्बुड्समैन की कोई व्यवस्था नहीं है, बल्कि प्रांतीय, स्थानीय, सेवा तथा विभाग स्तर पर इसकी स्थापना का प्रावधान किया गया है। अमेरिका में ओम्बुड्समैन शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त के आधार पर अपना कार्य स्वतंत्रतापूर्वक करता है। स्वीडन तथा अमेरिका के ओम्बुड्समैन में एक समानता यह है कि इसकी नियुक्ति व्यवस्थापिका द्वारा निर्वाचन के माध्यम से किया जाता है तथा यह व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी होता है। स्वीडन में उप-ओम्बुड्समैन की नियुक्ति स्वीडिश संसद द्वारा की जाती है परन्तु अमेरिका में उप ओम्बुड्समैन की नियुक्ति स्वयं ओम्बुड्समैन करता है। स्वीडन में ओम्बुड्समैन को स्वीडिश संसद की संवैधानिक समिति की सिफारिश पर संसद द्वारा हटाया जा सकता है, जबकि अमेरिका में अक्षमता अथवा जिन आधारों पर प्रांतों के न्यायधीश को हटाया जाता है, उसी आधार पर व्यवस्थापिका विशेष बहुमत से प्रस्ताव पारित करके हटा सकती है। कुल मिला कर हम कह सकते हैं कि ओम्बुड्समैन की स्थापना ने जनता को अपने शिकायतों के निवारण हेतु एक बेहतर विकल्प प्रदान किया है, ताकि जब किसी व्यक्ति को परम्परागत जन शिकायत निवारण की संस्थाओं से उसकी शिकायतों का उचित समाधान नहीं हो पाता है तो वह व्यक्ति ओम्बुड्समैन के पास अपनी शिकायतों का निवारण करने की अपील कर सकता है। इसकी गोपनीय कार्यप्रणाली तथा निष्पक्षता की वजह से यह जनता में विश्वास बहाल करने में समर्थ हो सका है।

22.12 शब्दावली

निर्बन्धन- नियंत्रण, रिक्सडक- स्वीडन की संसद का नाम, तटस्थ- एक स्थान पर या किसी का भी पक्ष ना लेने वाला

22.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. स्वीडन, **2.** हवाई प्रान्त, **3.** चार वर्ष, **4.** 1997

22.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मॉडल ओम्बुड्समैन एक्ट फॉर स्टेट गवर्नमेन्ट्स, युनाइटेड स्टेट्स ओम्बुड्समैन एसोसिएशन, डायटन, 2004
2. सिंह, एम0पी0 तथा राय हिमांशु (सम्पादित), 'भारतीय राजनीतिक प्रणाली संरचना, नीति और विकास', हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, नई दिल्ली, 2013
3. सिंह, अजय तथा मल्ल, विजय प्रताप, 'लोक प्रशासन', अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा, 2015
4. शर्मा, पी0डी0 तथा शर्मा, हरिशचन्द्र, 'लोक प्रशासन- सिद्धान्त एवं व्यवहार', कालेज बुक डिपो, जयपुर, 2006
5. अल, वहाब, 'द स्वीडिश इंस्टीट्युशन ऑफ ओम्बुड्समैः एन इन्ट्रूमेन्ट आफ ह्युमैन राइट्स', लिबरफारलैग, 1979
6. विस्लैन्डर, बी0, 'द पार्लियामेन्ट्री ओम्बुड्समैन इन स्वीडन', फिंगराफ, सोड्रतालजे, 1999

22.15 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. मॉडल ओम्बुड्समैन एक्ट फॉर स्टेट गवर्नमेन्ट्स, युनाइटेड स्टेट्स ओम्बुड्समैन एसोसिएशन, डायटन, 2004
2. सिंह, एम0पी0 तथा राय हिमांशु, 'भारतीय राजनीतिक प्रणाली संरचना, नीति और विकास', हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, नई दिल्ली, 2013
3. सिंह, अजय तथा मल्ल, विजय प्रताप, 'लोक प्रशासन', अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा, 2015
4. लिंडा, सी0 रीफ, 'द इन्टरनेशनल ओम्बुड्समैन इयरबुक2002', मार्टीनश निझौफ पब्लिसर्श, 2004

22.16 निबन्धात्मक प्रश्न

1. स्वीडिश ओम्बुड्समैन की संगठनात्मक संरचना का वर्णन कीजिए।
2. स्वीडिश ओम्बुड्समैन के कार्य एवं शक्तियों का वर्णन कीजिए।
3. अमेरिका में ओम्बुड्समैन की स्थिति की विवेचना कीजिए।
4. अमेरिका में ओम्बुड्समैन की कार्य प्रणाली पर प्रकाश डालिए।

इकाई- 23 भारत में लोकपाल एवं लोकायुक्त

इकाई की संरचना

23.0 प्रस्तावना
23.1 उद्देश्य
23.2 भारत में लोकपाल एवं लोकयुक्त की आवश्यकता
23.3 भारत में लोकपाल हेतु किए गए प्रयास
23.4 लोकपाल
23.4.1 लोकपाल की संगठनात्मक संरचना
23.4.2 चयन समिति
23.4.3 पदावधि
23.4.4 वेतन, भत्ते एवं सेवा-शर्तें
32.4.5 निर्बन्धन
23.4.6 लोकपाल का क्षेत्राधिकार
32.4.7 लोकपाल की शक्तियां
23.5 राज्यों में लोकायुक्त की स्थिति
23.6 लोकायुक्त
23.6.1 लोकायुक्त की संरचना
23.6.2 नियुक्ति
23.6.3 वेतन, भत्ते एवं सेवा-शर्तें
23.6.4 पदावधि
23.6.5 अधिकार क्षेत्र एवं शक्तियां
23.7 सारांश
23.8 शब्दावली
23.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
23.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
23.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
23.12 निबंधात्मक प्रश्न

23.0 प्रस्तावना

समकालीन सामाज के सामाजिक-अर्थिक विकास में राज्य की महत्वपूर्ण भूमिका है। भारत एक लोकंतांत्रिक देश है। लोकतंत्र एवं विकास की सफलता अथवा विफलता प्रमुख रूप से सरकार के तंत्रोंकी कार्यकुशलता पर निर्भर करता है। सरकार के बढ़ते हुए कार्यों को पूरा करने हेतु उसे व्यापक शक्तियाँ मिली हुई हैं जिसका ठीक ढंग से प्रयोग न किए जाने से जन शिकायत एवं भ्रष्टाचार का जन्म होता है। जनता की शिकायतों के निपटारे हेतु व्यवस्थाएं हैं, किन्तु प्रभावक नहीं है। अतः एक ऐसी संस्था की मांग उठने लगी जो सरकार तथा उसकी मशीनरी के खिलाफ जन शिकायातों का उचित निपटारा कर सके। उक्त उद्देश्यों हेतु स्कैण्डेनिवियाई देशों में ओम्बुड्समैन नामक संस्था की स्थापना की गई है, जिसके बारे में ईकाई 23 में जान चुके हैं। ओम्बुड्समैन जैसी संस्था जो भारत में लोकपाल एवं लोकायुक्त के नाम से प्रचलित है, जिसके बारे में विचार करेंगे। इस इकाई में लोकपाल तथा लोकायुक्त की आवश्यकता एतिहासिक पृष्ठभूमि, विशेषताओं तथा स्थिति के बारे में विस्तार से अध्ययन करेंगें।

इसके साथ ही लोकपाल एवं लोकायुक्त अधिनियम, 2013 में किए गए प्रावधानों पर भी विचार करेंगे। यहाँ यह बताना आवश्यक है कि भारत में यह आम धारणा है कि ओम्बुड्समैन भ्रष्टाचार रोकने का साधन है, जब कि विश्व के अन्य देशों में ओम्बुड्समैन का मुख्य कार्य व्यक्ति की शिकायत को दूर करना तथा प्रशासनिक व्यवस्था को दुरस्त करना है।

23.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- लोकपाल तथा लोकायुक्त की आवश्यकता को बता सकेंगें।
- लोकपाल तथा लोकायुक्त की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का वर्णन कर सकेंगे।
- राज्यों में लोकायुक्त की स्थिति की व्याख्या कर सकेंगे।
- लोकपाल तथा लोकायुक्त की विशेषताओं, कार्यो तथा शक्तियों आदि के बारे में विवेचना कर सकेंगे।

23.2 भारत में लोकपाल एवं लोकायुक्त की आवश्यकता

भारत में लोकपाल तथा लोकायुक्त नामक संस्था की स्थापना, समय की जरूरत तथा अविलम्ब आवश्यकता है। जब से लोककल्याणकारी राज्य की अवधारण का विकास हुआ है तब से सरकार के कार्यों में दिनों-दिन वृद्धि हो रही है और इसके प्रबन्धन में राज्य की भूमिका बढ़ती जा रही है। आज स्थिति यह हो गई है कि व्यक्ति का कोई भी क्षण प्रशासन के प्रभाव से अछूता नहीं है, अर्थात व्यक्ति जन्म से लेकर मृत्यु तक कि किसी न किसी रूप में प्रशासन से सम्बद्ध रहता है। जनता की बढ़ती अपेक्षाओं को पूरा करना राज्य तथा उसकी मशीनरी का दायित्व है, वहीं नागरिक भी अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति हेतु सरकार तथा उसकी मशीनरी पर आश्रित होता जा रहा है। परिणाम स्वरूप शिकायतें भी बढ़ती जा रही है। भारत में प्रशासनिक मनमानी, कार्यों में विलम्ब, लालफिताशाही, प्रशासनिक अधिकारियों के ढुलमुल रवैया, भ्रष्टाचार आदि प्रवृत्ति देखने को मिलती है। ऐसी स्थिति में यह कहा जाने लगा कि सरकार तथा उसकी मशीनरी के विरूद्ध जनशिकायतों को सुनने वाली वर्तमान संस्थाए जैसे-न्यायपालिका, व्यवस्थापिका तथा उसकी सामितियाँ आदि अनुपयुक्त है अथवा सर्वसुलभ नहीं है, कि एक आम आदमी के पहुँच से बाहर है अत्यधिक खर्चीली तथा अनावश्यक समय खर्च होता है। अतः भारत में जन शिकायत निवारण हेतु नवीन संस्था के विकास की आवश्यकता है, जो कम खर्चीली, कम औपचारिक तथा जल्द न्याय दिलाए। साथ ही, प्रभावी व निष्पक्ष होना चाहिए, ताकि प्रशासन और जनता के बीच की खई को कम करते हुए जनता में विश्वास उत्पन्न कर सके। ऐसे में लोकपाल एवं लोकायुक्त दो तरह से प्रशासन की सहायता कर सकता है। पहला, यदि किसी शिकायत की जाँच करने पर पता चलता है कि शिकायत में सत्यता नहीं है, तो प्रशासन की छवि सुधरती है। दूसरा, जब प्रशासन से सम्बद्ध लोग लोकपाल एवं लोकायुक्त के कारण अधिक पारदर्शी नियमानुसार कार्य करते हैं तथा भेदभाव से बचते हैं तो जनता में प्रशासन के प्रति विश्वास को बहाल करता है। हमारा संविधान विधि का शासन, विधि के समक्ष समानता और सामाजिक न्याय की प्रतिबद्धता जाहिर करता है। इसके साथ ही यह भी आवश्यक है कि किसी के साथ किसी प्रकार का अन्याय न हो और केवल न्यायपूर्ण व्यवस्था ही नहीं बल्कि न्याय भी होना चाहिए। अतः संविधान के उक्त गारण्टी का पालन सुनिश्चित करने तथा सभी के साथ न्याय एवं जन शिकायतों का उचित निवारण हेतु अन्य संस्थाओं के साथ-साथ केन्द्र स्तर पर लोकपाल तथा राज्य स्तर पर लोकायुक्त जैसी संस्था का होना आवश्यक है, तभी यह सब सम्भव हो सकता है।

23.3 भारत में लोकपाल हेतु किए गए प्रयास

हमारे संविधान में गतिरोध एवं संतुलन की अवधारणा को अपनाते हुए न्यायपालिका, व्यवस्थापिका तथा कार्यपालिका को जनमानस की शिकायतों को दूर करने तथा उनकी आकांक्षाओं को पूरा करने का दायित्व सौंपा

गया है। किन्तु इन संस्थाओं ने विभिन्न कारणों से अपने दायित्वों का ससमय निर्वहन न कर पाने अथवा सर्वसुलभ न होने की वजह से ओम्बुड्समैन जैसी संस्था की स्थापना की माँग तीव्रता से की जाने लगी ताकि जनता की शिकायतों का निवारण आसानी से सस्ता एवं शीघ्र हो सके।

भारत में ओम्बुड्समैन जैसी संस्था की माँग सबसे पहले 1960 में सांसद के0 एम0 मुंशी ने की थी, इसके पश्चात इस माँग का समर्थन तात्कालीन अटार्नी जनरल एम0 सी0 सीतेलवाड एवं भारत का मुख्य न्यायधीश ने किया था। 1963 में लोकसभा के निर्दलीय सदस्य एल0 एम0 सिंघवी ने एक प्रस्ताव पेशकर इस वियष को लोकसभा में उठाया, किन्तु सदन ने इसमें रूचि नहीं दिखाई। उन्होंने पुनः 1965 में प्रस्ताव पेश किया और अपनी माँग को दोहराते हुए कहा कि एक जाँच मशीनरी बनाई जाए जो जनता की शिकायतों को दूर करे। सिंघवी ने अपने प्रस्ताव में ओम्बुड्समैन को “पीपुल प्रोक्यूरेटर” नाम से सम्बोधित किया था। 1963 में ही राजस्थान प्रशासनिक सुधार समिति ने भी अपनी रिपोर्ट में ओम्बुड्समैन जैसी संस्था को स्थापित करने की सिफारिश की। सन् 1967 में भारत का प्रथम प्रशासनिक सुधार आयोग ने अपनी रिपोर्ट ओम्बुड्समैन जैसी संस्था के रूप में दो संस्थाओं केन्द्र स्तर पर लोकपाल तथा राज्य स्तर पर लोकायुक्त को स्थापित करने की सिफारिश की। आयोग ने रिपोर्ट में इन संस्थओं हेतु एक विधेयक का मसौदा भी प्रस्तुत किया और कहा कि उक्त संस्थाओं को कार्यपालिका, व्यवस्थापिका तथा न्यायपालिका से पूर्णतः स्वतंत्र रखा जाए।

प्रथम, प्रशासनिक सुधार आयोग की सिफारिशों का ध्यान में रखते हुए तत्कालीन सरकार नें 1968 में पहली बार संसद में लोकपाल विधेयक प्रस्तुत किया, जिसे संसद की संयुक्त समिति को भेजा गया। संयुक्त समिति ने1969 में अपनी रिर्पोट प्रस्तुत की तत्पश्चात लोक सभा ने विधेयक को पारित कर दिया और इस विधेयक को राज्य सभा को भेजा गया। जब तक राज्यसभा विधेयक को पारित करती उससे पूर्व लोकसभा भंग हो गयी और विधेयक व्यपगत हो गया। 1971 में एक नया विधेयक लोकसभा में पेश किया गया किन्तु यह विधेयक भी लोक सभा भंग होने से पारित न हो सका। 1977 में फिर लोकपाल विधेयक पेश किया गया जिसकी दो खास विशेषताएं थीं, एक- पहली बार इस विधेयक में प्रधानमंत्री को लोकपाल के क्षेत्राधिकार में रखा गया। दूसरी- जाँच हेतु लोकपाल की अपनी स्वंय की प्रशासनिक व्यवस्थ होगी अर्थात् जाँच करने के लिए लोकपाल अन्य प्रशासनिक-तंत्र पर निर्भर नहीं होगा। यह विधेयक लोकसभा में पारित होने से पहले ही सदन भंग हो गया। राजीव गाँधी जब प्रधानमंत्री बने उसके पश्चात 1985 में पुनः लोकपाल विधेयक लोकसभा में रखा गया किन्तु इस विधेयक को 1988 में इसलिए वापस ले लिया गया कि एक नया सशक्त विधेयक लाया जाएगा। 1989 में वी0 पी0 सिंह के नेतृत्व वाली राष्ट्रीय मोर्चा सरकार ने भी लोकसभा में लोकपाल विधेयक पेश किया, जो लोकसभा भंग हो जाने के कारण पारित नहीं हो सका। 1996 में एच0 डी0 देवेगौड़ा की सरकार ने फिर एक नया विधेयक लोकसभा में पेश किया, जिस पर कुछ अंतिम निर्णय हो पाता, इससे पूर्व ही लोक सभा का विघटन हो गया। इसी तरह से पुनः नया विधेयक 1998 तथा 2001 में प्रस्तुत किया गया किन्तु अपने अंतिम मुकाम पर नहीं पहुँच सका। कुल मिलाकर हम कह सकते हैं कि विभिन्न करणों के साथ ही दृढ़ राजनीतिक इच्छा शक्ति के अभाव की वजह से चार दशकों से अधिक समय के पश्चात लोकपाल स्थापित नहीं हो सका। सरकारों पर बहुत जन दबाव तथा समाजसेवी अन्ना हजारे के नेतृत्व में राष्ट्रव्यापी जन आन्दोलन के कारण सरकार न चाहते हुए भी फिर नया लोकपाल तथा लोकायुक्त विधेयक, 2011 लोकसभा में 22 दिसम्बर, 2011 को प्रस्तुत किया गया, जिसे 27 दिसम्बर, 2011 को सदन द्वारा पारित किया गया । विधेयक को बाद में 29 दिसम्बर, 2011 को राज्यसभा में रखा गया। राज्यसभा ने इस विधेयक में कुछ संशोधनों करने के पश्चात 17 दिसम्बर, 2013 को तथा 18 दिसम्बर, 2013 को लोकसभा में पारित किया गया और अन्त में 01 जनवरी, 2014 को राष्ट्रपति की स्वीकृति प्राप्त हुई। आखिरकार कई दौर के प्रयास तथा लम्बे इन्ततार के बाद लोकपाल और लोकायुक्त अधिनियम, 2013 अस्तित्व में आ गया। अब हम लोकपाल के गठन, क्षेत्राधिकार आदि के बारे में विचार करेंगे।

23.4 लोकपाल

अब हम यहाँ पर लोकपाल और लोकायुक्त अधिनियम, 2013 में किए गए प्रावाधानों के दृष्टिगत लोकपाल की विशेषताओं का उल्लेख के साथ ही सबसे पहले लोकपाल संस्था की संगठनात्मक संरचना तत्पश्चात्त कार्य एवं शक्तियों तथा क्षेत्राधिकार पर विचार करेंगे।

23.4.1 लोकपाल की संगठनात्मक संरचना

भारत में लोकपाल बहुसदस्यी संस्था है। लोकपाल, एक अध्यक्ष तथा अधिक से अधिक आठ सदस्यों से मिलकर बनेगा। लोकपाल के आठ सदस्यों में से पचास प्रतिशत न्यायिक सदस्य होंगे। न्यायिक सदस्य के रूप में नियुक्ति के लिए वही व्यक्ति पात्र होगा जो उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश है या रहा है या किसी उच्च न्यायालय का न्यायमूर्ति है या रहा है। शेष पचास प्रतिशत अन्य सदस्य होगें जिनके लिए अर्हता है कि- निर्दोष, सत्यनिष्ठा, उत्कृष्ट योग्यता, प्रतिष्ठित व्यक्ति जिसके पास भ्रष्टाचार विरोधी नीति, लोक प्रशासन, सतर्कता, वित्त के साथ बीमा एवं बैंककारी, विधि और प्रबन्ध से संबंधित विषयों में विशेष ज्ञान और कम से कम 25 वर्ष की विशेषज्ञता है। यह भी ध्यान देने वाली बात है कि इन आठ सदस्यों में कम से कम पचास प्रतिशत सदस्य अनुसचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़ा वर्ग, अल्पसंख्य वर्ग तथा महिलाओं में से होगें। लोकपाल का अध्यक्ष, वही व्यक्ति बन सकता है जो भारत का मुख्य न्यायधीश है या रहा हो अथवा उच्चतम न्यायालय का सेवारत या रिटायर्ड न्यायधीश अथवा कोई विख्यात व्यक्ति जिसे उपरोक्त वर्णित क्षेत्रों में विशेष ज्ञान रखता हो।

लोकपाल का एक सचिव होगा, जो भारत सरकार के सचिव के समकक्ष होगा। इसकी नियुक्ति लोकपाल अध्यक्ष द्वारा केन्द्र सरकार से भेजे गए नामों के पैनल में से किया जाएगा। लोकपाल अध्यक्ष एक जाँच निदेशक तथा एक अभियोजन निदेशक की नियुक्ति भी करता है, जो कम से कम भारत सरकार के अवर सचिव या उसके समकक्ष का अधिकारी हो। लोकपाल के अन्य अधिकारियों तथा कर्मचारियों की नियुक्ति लोकपाल अध्यक्ष या ऐस सदस्य या अधिकारी द्वारा की जाएगी, जिसे अध्यक्ष निर्देश दे।

लोकपाल अध्यक्ष और सदस्य के रूप में निम्नलिखित व्यक्ति नियुक्त नहीं हो सकता-

1. संसद सदस्य या किसी राज्य या केन्द्रशासित प्रदेश की विधानमण्डल का सदस्य।
2. ऐसा व्यक्ति जो किसी भी प्रकार के नैतिक भ्रष्टाचार का दोषी पाया गया हो।
3. ऐसा कोई व्यक्ति जिसकी आयु अध्यक्ष या सदस्य के रूप में पद ग्रहण करने की तिथि तक 45 वर्ष का न हो।
4. किसी पंचायत अथवा नगरपालिका अथवा निगम का सदस्य।
5. ऐसा व्यक्ति जिसे राज्य या केन्द्र सरकार की नौकरी से हटा या पदच्युक्त किया गया हो।

यदि कोई व्यक्ति लोकपाल अध्यक्ष अथवा सदस्य नियुक्त होते समय किसी लाभ का पद धारण करता है, कोई व्यवसाय या कारोबार चलाता है तो उसे नियुक्ति के पश्चात लाभ के पद से त्याग पत्र देना होगा, व्यवसाय और कारोबार तथा उसके प्रबन्धन आदि से सम्बन्ध समाप्त करना होगा या छोड़ना होगा।

23.4.2 नियुक्ति

लोकपाल के अध्यक्ष तथा सदस्यों की नियुक्ति राष्ट्रपति के द्वारा की जाती है। राष्ट्रपति, अध्यक्ष तथा सदस्यों की नियुक्ति प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में गठित एक चयन समिति द्वारा सुझाए गए नामों के पैनल में से करता है। चयन समिति- प्रधानमंत्री, लोकसभा अध्यक्ष, लोकसभा में विपक्ष का नेता, भारत का मुख्य न्यायधीश या उसके द्वारा नामित उच्चतम न्यायालय का एक न्यायधीश, राष्ट्रपति द्वारा नामित कोई प्रतिष्ठित व्यक्ति से मिलकर बनती है। चयन समिति का अध्यक्ष, प्रधानमंत्री तथा शेष सदस्य के रूप में होते हैं। यहाँ स्पष्ट करना आवश्यकता है कि यदि लोकपाल अध्यक्ष या किसी सदस्य की नियुक्ति इसलिए अवैध नहीं होगी कि चयन समिति में कोई पद रिक्त है।

23.4.3 पदावधि

सामान्य तौर पर लोकपाल अध्यक्ष तथा सदस्यों की पदावधि 05 वर्ष अथवा 70 वर्ष आयु प्राप्त करने तक पद पर रहेगा। इस अवधि से पूर्व भी राष्ट्रपति को सम्बोधित कर अपना त्याग पत्र दे सकता है अथवा साबित कदाचार तथा अक्षमता के आधार राष्ट्रपति इन्हें पद से हटा सकता है। अध्यक्ष या सदस्य की पदावधि समाप्ति के कम से कम तीन माह पूर्व नए अध्यक्ष और सदस्यों की नियुक्ति के लिए राष्ट्रपति आवश्यक उपाय करेगा अथवा कराएगा। यदि लोकपाल अध्यक्ष का पद मृत्यु, अथवा त्यागपत्र अथवा अनुपस्थिति आदि कारणों से खाली रहता है, तो ऐसी स्थिति में राष्ट्रपति लोकपाल संस्था के वरिष्ठतम् सदस्य को अध्यक्ष के रूप में कार्य करने के लिए प्राधिकृत करता है, जब तक नया अध्यक्ष नियुक्त नहीं हो जाता तथा अवकाश की दशा में पुनः दायित्व ग्रहण नहीं कर लेता, अध्यक्ष के समस्त कार्यो का निर्वहन करेगा।

23.4.4 वेतन, भत्ते एवं सेवा-शर्तें

लोकपाल के समस्त व्यय, जिसमें लोकपाल के अध्यक्ष, सदस्यों, लोकपाल सचिव अन्य अधिकारियों तथा कर्मचारियों के वेतन, भत्ते और पेंशन भारत की संचित नीधि पर भारित होता है। लोकपाल के अध्यक्ष का वेतन, भत्ते तथा सेवा शर्तें भारत के मुख्य न्यायधीश के समान ही है। लोकपाल के अन्य सदस्यों के वेतन, भत्ते व सेवा शर्तें वहीं हैं जो उच्चतम न्यायालय के न्यायधीश की है। यदि लोकपाल अध्यक्ष अथवा सदस्य नियुक्ति के समय भारत सरकार या किसी राज्य सरकार के अधीन दिए गए पूर्व सेवा हेतु पेंशन प्राप्त करता है तो अध्यक्ष व सदस्य के वेतन से पेंशन की रकम को घटाकर दिया जाएगा। इनकी नियुक्ति के पश्चात वेतन, भत्ते तथा सेवा शर्तो में कोई अलाभकारी परिवर्तन नहीं किया जाएगा।

23.4.5 निर्बन्धन

लोकपाल अध्यक्ष तथा लोकपाल के सदस्यों पर कुछ निर्बन्धन(प्रतिबन्ध) लगाया गया है कि पदमुक्ति अथवा अध्यक्ष व सदस्य, पद पर न रहने के पश्चात-

1. लोकपाल अध्यक्ष या सदस्य के रूप में पुनर्नियुक्ति नहीं हो सकती। किन्तु कोई लोकपाल सदस्य अध्यक्ष के रूप में नियुक्त किया जा सकता है, यदि सदस्य एवं अध्यक्ष के रूप में उसकी पदावधि 05 वर्ष से अधिक नहीं है।
2. इन्हें कोई राजनयिक जिम्मेदारी नहीं दी जा सकती और न ही केन्द्रशासित प्रदेश के प्रशासक के रूप में नियुक्ति हो सकती है।
3. भारत सरकार अथवा राज्य सरकार के अधीन लाभ के पद पर नियुक्ति नहीं की जा सकती।
4. इनके पद छोड़ने की तिथि से 05 वर्ष तक ये राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति, संसद के किसी सदन या किसी राज्य विधान मण्डल के किसी सदन का सदस्य, नगर निगम या नगरपालिका या पंचायत का चुनाव नहीं लड़ सकते।

उक्त सभी प्रावधान इसलिए किए गए हैं ताकि लोकपाल संस्था कार्यपालिका, विधायिका से स्वतंत्र रहकर तथा पारदर्शिता के साथ अपने दायित्वों का निर्वहन कर सकें।

23.4.6 लोकपाल का क्षेत्राधिकार

लोकपाल के क्षेत्राधिकार में वर्तमान एवं पूर्व प्रधानमंत्री, वर्तमान तथा पूर्व मंत्री, संसद के किसी सदन का वर्तमान तथा पूर्व सदस्य, केन्द्र सरकार के समूह क, ख, ग, घ के पदाधिकारी जो सेवारत है या जिसने सेवा की है। संसद द्वारा स्थापित या सरकार द्वारा पूर्णतः या भागतः वित्त पोषित निकाय अथवा बोर्ड, अथवा निगम या प्राधिकरण या न्यास या स्वतंत्र निकाय का अध्यक्ष, सदस्य, निदेश, प्रबन्धक, सचिव है अथवा रहा है इत्यादि पर इसे अधिकारिता प्राप्त है। लोकपाल उक्त प्राधिकारी के सम्बन्ध में किसी शिकायत की जाँच कर सकता है। प्रधानमंत्री के विरूद्ध भ्रष्टाचार के किसी मामले की जाँच विशेष प्रक्रिया के द्वारा बंद कमरे में की जाएगी। प्रधानमंत्री के

विरूद्ध आरोपों की जाँच शरू करने के लिए आवश्यक है कि लोकपाल के कुल संख्या का दो तिहाई सदस्य जाँच हेतु अनुमोदन करें। यदि लोकपाल यह निर्णय लेता है कि शिकायत खारिज कर दिया जाए तो जाँच के अभिलेख प्रकाशित नहीं किए जाएगें और न ही किसी को उपलब्ध कराया जाएगा।

23.4.7 लोकपाल की शक्तियाँ

लोकपाल को कोई प्रारम्भिक जाँच या अन्वेषण करने के लिए केन्द्र सरकार अथवा राज्य सरकार के अधिकारियों, संगठन तथा अन्वेषण अभिकरणों की सेवाओं का उपयोग करने का अधिकार प्राप्त है। कुछ मामलों में इसे दीवानी न्यायालय की शक्ति प्राप्त है, जिसके तहत वह किसी व्यक्ति को समन जारी कर सकता है, उसे हाजिर कराने तथा अन्य कार्यालयों से दस्तावेज प्राप्त करने की शक्ति प्राप्त है। इसे भ्रष्ट तरीके से कमाई गई सम्पत्ति, आय अथवा फायदों को जब्त करने तथा कुर्की कराने का अधिकार है। भ्रष्टाचार के आरोप वाले लोक सेवक के स्थानान्तरण या निलम्बन हेतु केन्द्र सरकार से सिफारिश कर सकता है, जब उसे विश्वास हो जाए कि आरोपी लोक सेवक जाँच को प्रभावित कर सकता है या साक्ष्य को नष्टकर सकता है या छेड़-छाड़ या साक्षियों को प्रभावित कर सकता है। वह किसी ऐसे लोक सेवक को, जिसे किसी अभिलेख या दस्तावेज को तैयार या सुरक्ष रखने का कार्य सौपा गया है, तो उस लोक सेवक को निर्देश दे सकता है कि प्रारम्भिक जाँच के समय उपलब्ध रिकार्ड को नष्ट होने से बचाए। केन्द्र सरकार को भ्रष्टाचार के मामलों की सुनवाई के लिए उतने विशेष अदालतों का गठन करना होगा, जितने लोकपाल सिफारिश करे। विशेष अदालतों को मामला दायर होने के एक वर्ष के अन्दर उसकी सुनवाई पूरी करना सुनिश्चित करना होगा। यदि एक वर्ष की अवधि में सुनवाई नहीं पूरी हो पाती है तो उसका कारण लिखना होगा और सुनवाई को तीन माह में पूरी करनी होगी, फिर भी सुनवाई पूरी नहीं हुई तो तीन-तीन माह के हिसाब से और अधिकतम दो वर्ष के भीतर सुनवाई को पूर्ण करना होगा। लोकपाल अध्यक्ष का यह भी दायित्व होगा कि वह लोकपाल द्वारा किए गए कार्यों के बारे में एक वार्षिक रिपोर्ट राष्ट्रपति को प्रस्तुत कारेगा। रिपोर्ट प्राप्त होने पर राष्ट्रपति उस रिपोर्ट की एक प्रति उन मामलों के सम्बन्ध में यदि कोई हो, सम्बन्धित को भेजेगा। जहाँ लोकपाल की सलाह को स्वीकार नहीं किया गया है, तो अस्वीकृति के कारणों सहित एक स्पष्टीकरण ज्ञापन के साथ राष्ट्रपति संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष रखवाएगा। लोकपाल अध्यक्ष को अधिकर है कि संसद की विधि के अधीन रहते हुए अपने संस्था के सचिव, अधिकारियों तथा कर्मचारियों की सेवा शर्तों, छुट्टी, भत्ता आदि के सम्बन्ध में विनियम बना सकता है, किन्तु इन विनियमों पर राष्ट्रपति का अनुमोदन प्राप्त करना आवश्यक है।

23.5 राज्यों में लोकायुक्त की स्थिति

हम जान चुके हैं कि प्रथम प्रशासनिक सुधार आयोग की सिफारिशों के आधार पर केन्द्र स्तर पर लोकपाल की स्थापना विभिन्न कारणों तथा दृढ़ राजनीतिक इच्छा शक्ति के अभाव की वजह से लम्बे समय तक स्थापित नहीं हो सका किन्तु व्यापक जन दबाव एवं जन आन्दोलन के परिणाम स्वरूप 2013 में लोकपाल कानून बनाया गया। राज्यों में लोकायुक्त की स्थापना के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि प्रथम प्रशासनिक सुधार आयोग की सिफारिशों को ध्यान में रख कर राज्यों ने उत्साह का परिचय देते हुए लोकायुक्त संस्था की स्थापना के साथ ही लोकायुक्त की नियुक्ति भी की। अब तक हमारे देश के लगभग दो-तिहाई राज्यों में लोकायुक्त की स्थापना की जा चुकी है। जिन राज्यों में लोकायुक्त की व्यवस्था नहीं है वहाँ इसकी स्थापना के प्रयास किए जा रहे हैं।

उड़ीसा के देश का पहला राज्य है जिसने सबसे पहले 1970 में लोकायुक्त अधिनियम पारित किया । यहाँ बताना आवश्यक है कि उड़ीसा पहला राज्य है जिसने लोकायुक्त की अधिकारिता में मुख्यमंत्री को भी शामिल किया था किन्तु बाद में मुख्यमंत्री को इसके क्षेत्रधिकार से बाहर कर दिया गया। हद तो तब हो गई कि इसी राज्य ने एक समय (बीजू पटनायक के समय) इस संस्था को अनावश्यक बताते हुए समाप्त कर दिया था। महाराष्ट्र ने 1971 में लोकायुक्त कानून बनाया। महाराष्ट्र लोकायुक्त की नियुक्ति करने वाला देश का पहला राज्य है। बिहार तथा

राजस्थान 1973, तमिलनाडु 1974, उत्तर प्रदेश एवं जम्मू-कश्मीर 1975, मध्य प्रदेश 1981, आन्ध्र प्रदेश और केरल 1983 तथा दिल्ली 1996 में अधिनियम पारित किया। देश के अधिकांश राज्यों में लोकायुक्त एवं उप-लोकायुक्त नाम से अधिनियम पारित किया गया है।

देश के सभी राज्यों में लोकायुक्त के संदर्भ में समानता नहीं है। सभी राज्य अपने-अपने ढंग से तथा इच्छा शक्ति के अनुसार लोकायुक्त और उप लोकायुक्त का प्रावधान किए हुए है। व्यवहारिक तथा सैद्धान्तिक रूप से देखा जाए तो किसी राज्य के लोकायुक्त संस्था के क्षेत्राधिकार में मुख्यमंत्री रख गया है तो किसी राज्य ने मुख्यमंत्री को इसके क्षेत्राधिकार से बाहर रख है। किसी राज्य में लोकायुक्त सर्वोच्च न्यायालय के वर्तमान या सेवानिवृत्त न्यायधीश तथा उप-लोकायुक्त उच्च न्यायालय के वर्तमान या सेवानिवृत्त न्यायधीश होता है, तो किसी राज्य में दोनों पद उच्च न्यायालय के न्यायाधीश से भरे जाते हैं। किसी राज्य में पदावधि 05 वर्ष तो किसी में 03 वर्ष देखने को मिलता है। लोकायुक्त तथा उप-लोकायुक्त की शक्तियों को लेकर भी राज्यों में भिन्नता देखने को मिलती है। किसी राज्य में इसे व्यापक शक्तियाँ देते हुए उसे दण्ड देने तक का अधिकार प्रदान किया है, तो किन्ही राज्यों में मात्र सिफारिश करने तक ही सीमित रखा गया है। किसी राज्य में उप-लोकायुक्त का प्रावधान है तो किसी राज्य में नहीं। अधिकांश राज्यों में शिकायतकर्ता को लोकायुक्त के पास आरोपों की शिकायत करने के लिए एक निश्चित धनराशि जमा करनी पड़ती है, तो कुछ राज्यों में ऐसे प्रावधान नहीं है।

राज्यों में लोकायुक्त की नियुक्ति में हिला-हवाली करने की प्रवृति की देखी जा सकती है। जिसका उदाहरण, उत्तर प्रदेश के पूर्व मुख्यमंत्री अखिलेश यादव के नेतृत्व वाली समाजवादी दल के शासन काल में देखा गया कि तत्कालीन लोकायुक्त का कार्यकाल बढ़ाते रहे, नए लोकायुक्त की नियुक्ति हेतु कई दौर की वार्ता असफल रही और चयन समिति में किसी एक नाम पर सहमति नहीं हो पा रही थी तो अंत में सर्वोच्च न्यायालय के हस्तक्षेप के उपरान्त लोकायुक्त नियुक्त किया गया। कुछ ऐसा ही उत्तराखण्ड में अधिनियम बनने के बावजूद भी नियुक्ति नहीं हुई है। तत्कालीन मुख्यमंत्री हरीश रावत के कार्यकाल में देखा गया कि लोकायुक्त की नियुक्ति नहीं हो पा रही थी, तो उच्च न्यायालय को हस्तक्षेप कर सरकार को निर्देश देना पड़ा कि लोकायुक्त की नियुक्ति करें। इस आदेश के बाद भी अप्रैल 2017 के अंत तक लोकायुक्त की नियुक्ति नहीं हो पाई।कई बार लोक सेवकों पर अपराध सिद्ध हो जाने के बाद भी लोकायुक्त की सिफारिश पर राज्य सरकार उचित कार्यवाही नहीं करती। राज्यों की यह प्रवृति दुर्भाग्यपूर्ण ही कही जा सकती है।

राज्यों में कार्यरत लोकायुक्त संस्था की कार्यप्रणाली का विश्लेषण करने से पता चलता है कि इस संस्था की कार्य प्रक्रिया व्यवस्थित तथा संतोषजनक नहीं है। अधिकांश राज्यों में लोकायुक्त प्रभावहीन हैं। विभिन्न राज्यों में लोकायुक्त सम्बन्धी विधि में एकरूपता का अभाव पाया जाता है। इसीलिए देश के सभी राज्यों में लोकायुक्त के सम्बन्ध में एकरूपता लाने के लिए ही केन्द्र सरकार ने लोकपाल और लोकायुक्त अधिनियम 2013 पारित किया। राज्यों से अपेक्षा की गई है कि इस अधिनियम के अनुसार ही अपने-अपने विधानमण्डल से अधिनियम पारित कर लोकायुक्त की नियुक्ति करेगें।

23.6 लोकयुक्त

भारत के विभिन्न राज्यों में गठित लोकायुक्त संस्था में एकरूपता नहीं है, जिसके बारे में हम जान चुके हैं। इस संस्था के गठन में सभी स्तरों पर एकरूपता लोने के लिए केन्द्र सरकार ने लोकपाल विधेयक में ही लोकायुक्त को शामिल करते हुए लोकपाल एवं लोकायुक्त अधिनियम 2013 बनाया। इस अधिनियम के भाग- 03 और धारा-63 में लोकायुक्त की स्थापना की व्यवस्था है, जिसमें कहा गया है कि प्रत्येक राज्य इस अधिनियम के प्रारम्भ होने की तारीख से एक वर्ष के अन्दर इस संस्था की स्थापना करेगें, यदि इस निकाय को राज्य विधानमण्डल द्वारा बनाई गई विधि द्वारा स्थापित या नियुक्त नहीं किया गया है। अब हम यहाँ पर उक्त अधिनियम के अधीन रहते हुए

लोकायुक्त की संगठनात्मक संरचना, कार्य, शक्तियाँ, वेतन-भत्ते आदि पर विचार करेंगे। लोकपाल और लोकायुक्त में सन्दर्भ का अन्तर है। लोकपाल केन्द्र के स्तर पर और लोकायुक्त राज्य स्तर पर स्थित है, प्रक्रिया समान है, फिर भी यहाँ पर विद्यार्थियों की सुविधा के लिए लोकायुक्त के विषय में संक्षेप में बताया जाना उचित होगा।

23.6.1 लोकायुक्त की संरचना

राज्यों के लोकायुक्त संस्था को लोकपाल के समान बहुसदस्यी बनाया गया है। लोकायुक्त संस्था का एक अध्यक्ष होगा जो राज्य के उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायधीश या उच्च न्यायालय का सेवानिवृत न्यायधीश या कोई विशेष क्षेत्र में विशेषज्ञता रखने वाला तथा ख्याति प्राप्त व्यक्ति हो सकता है। लोकायुक्त में अधिकतम आठ सदस्य हो सकते हैं, जिनमें से कम से कम आधे न्यायिक सदस्य होगे तथा शेष अन्य सदस्य होंगे। इसके साथ ही यह भी प्रावधान है कि उक्त आठ सदस्यों में से कम से कम पचास प्रतिशत सदस्य अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, पिछड़ी जाति, अल्पसंख्यक वर्ग तथा महिलाओं में से होने चाहिए।

न्यायिक सदस्य के रूप मे नियुक्ति के लिए आवश्यक है वह व्यक्ति उच्च न्यायालय का न्यायधीश है या रहा है अन्यथा अपात्र समझा जाएगा। न्यायिक सदस्य के अलाव अन्य सदस्य के लिए आवश्यक है कि वह ईमानदार, सत्यनिष्ठा, भ्रष्टाचार निरोधी नीति, लोक प्रशासन, बैकिंग तथा बीमा, कानून एवं प्रबन्ध के विषय में कम से कम 25 वर्षों का अनुभव, विशेष ज्ञान तथा विशेषज्ञता प्राप्त हो। लोकायुक्त संस्था हेतु एक सचिव होगा जो राज्य सरकार में सचिव के समकक्ष का अधिकारी होगा। इस की नियुक्ति लोकायुक्त अध्यक्ष, राज्य सरकार द्वारा उपलब्ध नामों के पैनल में से करेगा। लोकायुक्त अध्यक्ष एक जाँच निदेशक तथा एक अभियोजन निदेशक की नियुक्ति करता है, जो राज्य सरकार के अतिरिक्त सचिव से नीचे पद का अधकारी नहीं होगा। इसका चयन राज्य सरकार द्वारा सुझाए गए नामों की सूची में से ही लोकायुक्त अध्यक्ष द्वारा किया जाता है।

23.6.2 नियुक्ति

लोकायुक्त के अध्यक्ष तथा सदस्यों की नियुक्ति राज्य का राज्यपाल करता है। राज्यपाल इनकी नियुक्ति चयन समिति द्वारा सुझाए गए नामों की सूची में से करता है। चयन समिति में सम्बन्धित राज्य का मुख्यमंत्री शामिल है जो चयन समिति का अध्यक्ष होता है तथा सदस्य के रूप में विधानसभा अध्यक्ष, विधानसभा में विपक्ष का नेता, उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायधीश या उसके द्वारा नामित उच्च न्यायालय का एक न्यायधीश, राज्यपाल द्वारा नामित कोई व्यक्ति होते हैं।

कुछ ऐसे लोग है जो लोकायुक्त संस्था में अध्यक्ष तथा सदस्य के रूप में नियुक्ति के अयोग्य समझे जाएगे अर्थात् ऐसे लोगों की नियुक्ति नहीं हो सकती- संसद सदस्य अथवा किसी राज्य या केन्द्र शासित प्रदेश की विधान सभा सदस्य, भ्रष्टाचार का दोषी पाया गया व्यक्ति, पद ग्रहण करते समय तक 45 साल से कम आयु का है, राज्य सरकार अथवा केन्द्र सरकार की नौकरी से हटाया या बर्खास्त किया गया हो, किसी पंचायत या निगम का सदस्य या अध्यक्ष है या रहा है, किसी राजनीतिक दल से सम्बद्ध हो, व्यापार करता हो, पेशेवर के रूप में सक्रिय हो इत्यादि।

23.6.3 वेतन, भत्ते एवं सेवा-शर्तें

इस सम्बन्ध में राज्य विधान मण्डल को अधिकार है कि समय-समय पर इसका निर्धारण कर सकती है। परन्तु लोकायुक्त अध्यक्ष तथा सदस्यों के पद पर नियुक्ति के पश्चात इनके वेतन भत्ते में कोई अलाभकारी परिर्वतन नहीं किया जा सकता। इस संस्था के समस्त व्यय जिसमें वेतन भत्ते आदि शामिल हैं राज्य की संचित नीधि पर भारित होगा। लोकायुक्त अध्यक्ष का वेतन-भत्ते और सेवा शर्तें आदि राज्य के उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायधीश के बराबर है। लोकायुक्त के सदस्यों के वेतन, भत्ते, पेंशन तथा सेवा शर्तें इत्यादि उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के समान ही है।

23.6.4 पदावधि

लोकायुक्त के अध्यक्ष तथा सदस्य अपने पद ग्रहण की तिथि से 05 वर्ष या 65 वर्ष की आयु तक पद पर बने रहेंगे। इस अवधि से पहले भी राज्यपाल को सम्बोधित स्वंय के हस्ताक्षर से त्याग पत्र दे कर पद छोड़ सकते हैं या साबित कदाचार या अक्षमता के आधार पर राज्यपाल द्वारा पद से हटाया जा सकता है। यदि लोकायुक्त अध्यक्ष का पद किसी कारण से रिक्त होता है तो ऐसी स्थिति में राज्यपाल, लोकायुक्त के वरिष्ठतम सदस्य को अध्यक्ष के रूप में कार्य एवं दायित्वों के निवर्हन हेतु प्रधिकृत कर सकता है जब तक कोई नया अध्यक्ष अपना पद ग्रहण नहीं कर लेता।

लोकायुक्त के अध्यक्ष तथा सदस्यों के लिए कुछ निर्बन्धन भी लगाए गए है कि- वह पद छोड़ने के कम से कम पाँच वर्ष तक केन्द्र अथवा राज्य सरकार में कोई लाभ का पद ग्रहण नहीं कर सकता और न ही किसी पद या सदस्यता हेतु चुनाव लड़ सकता है। इनकी पुनर्नियुक्ति नहीं हो सकती, परन्तु लोकायुक्त सदस्य को अध्यक्ष के रूप में नियुक्त किया जा सकता है। यद्यपि सदस्य और अध्यक्ष के रूप में उसका कार्यकाल 05 वर्ष से अधिक नहीं हो सकता।

23.6.5 अधिकार क्षेत्र एवं शक्तियाँ

लोकायुक्त का क्षेत्राधिकार राज्य सरकार की शक्तियों के विस्तार तक शामिल है। लोकायुक्त भ्रष्टाचार के आरोप लगने पर किसी भी मामले की जाँच कर सकता है या करवा सकता है। लोकायुक्त सदस्य को वर्तमान तथा पूर्व मुख्यमंत्री, राज्य सरकार का वर्तमान तथा पूर्व मंत्री, राज्य विधान मण्डल के वर्तमान एवं पूर्व सदस्य, राज्य सरकार के समस्त अधिकारी-कर्मचारी (समूह क, ख, ग, घ) राज्य सरकार के निगम, प्राधिकरण तथा अर्द्धस्वायत्त संस्थाएं जिन पर राज्य सरकार का पूर्ण या आंशिक रूप से नियंत्रण या वित्त पोशित हों तथा कोई ऐसी सोसाइटी या एसोसिएशन का निदेशक, प्रबन्धक, सचिव या कोई अन्य पदाधिकारी हो जो पूर्णतः या आंशिक रूप से राज्य सरकार द्वारा वित्तपोषित या अनुदान प्राप्त करता हो, अन्य गैर-सरकारी संगठन जिनका सरकार द्वारा निर्धारित वार्षिक आय से अधिक है तो ऐसे संगठन के समस्त पदाधिकारी तक अधिकारिता प्राप्त है। उपरोक्त सभी से सम्बन्धित भ्रष्टाचार के आरोपों की जाँच लोकायुक्त कर सकता है।

लोकायुक्त किसी मामले की जाँच के लिए राज्य सरकार के अधिकारियों तथा अभिकरणों का प्रयोग कर सकता है। इस दिवानी न्यायालय की शक्तियाँ प्राप्त है। साक्ष्यों को सुरक्षित रखने के लिए निदेश दे सकता है। आरोपी लोक सेवक को स्थानान्तरण या निलम्बन की सिफारिश कर सकता है। इनके दायित्वों के निर्वहन हेतु जो भी आवश्यक होगा राज्य सरकार उपलब्ध कराएगा। लोकायुक्त अपने कार्य के सम्बन्ध में वार्षिक रिपोर्ट राज्य के राज्यपाल के समक्ष प्रस्तुत करता है, जिसे राज्यपाल इसकी सिफारिशें लागू न होने के कारणों सहित रिर्पोट को राज्य विधान मण्डल में रखवाता है।

अभ्यास प्रश्न-

1. लोकपाल विधेयक संसद में पहली बार किस वर्ष प्रस्तुत किया गया था?
2. लोकपाल अध्यक्ष तथा सदस्यों की नियुक्ति कौन करता है?
3. लोकायुक्त अधिनियम पारित करने वाला भारत का पहला राज्य कौन था?
4. लोकायुक्त अपनी वार्षिक रिर्पोट किसके समक्ष प्रस्तुत करता है?

23.7 सारांश

भारत में लोकपाल के गठन में राजनैतिक दलों के अरूचि की वजह से लम्बे समय तक स्थापित नहीं हो सका, किन्तु राज्यों ने लोकयुक्त की स्थापना में अति उत्साह का परिचय दिया। जन दबाव तथा राष्ट्रव्यापी आन्दोलन तथा कई दौर की वार्ता के बाद सरकार ने लोकपाल और लोकायुक्त कानून बना तो दिया, किन्तु कानून बनने के

तीन वर्ष से अधिक समय बीत जाने के बाद भी केन्द्र स्तर पर लोकपाल अध्यक्ष तथा सदस्यों की नियुक्ति अप्रैल 2017 तक नहीं हो पाई है। इसी से सरकार की इच्छा शक्ति का अन्दाजा लगाया जा सकता है। हाली में सर्वोच्च न्यायालय ने लोकपाल की नियुक्ति के सम्बन्ध में केन्द्र सरकार से पूछा तो सरकार ने अभी इनकी नियुक्ति में असमर्थता जाहिर की है। ध्यान देने वाली बात यह है कि यह दोनों संस्थाए पूर्णतः स्वतंत्र है किन्तु इनके पास स्वंय की जाँच अभिकरण नहीं है, बल्कि लोकपाल केन्द्र की वर्तमान जाँच अभिरणों का तथा लोकायुक्त राज्य के अभिकरणों का प्रयोग करेगी अर्थात इन्हें जाँच हेतु सरकारी अभिकरणों पर निर्भर रहना पड़ेगा। हाँ, इतना जरूर है कि इन जाँच अभिकरणों का कोई अधिकारी लोकपाल से जुडे किसी मामले की जाँच कर रहा हो तो सरकार उसका स्थानातरण नहीं कर सकती है। आने वाले समय में इनकी कार्यक्षमता तथा प्रभावकारिता का मूल्यांकन किया जा सकता है जब वह वास्तविक रूप से कार्य करना प्रारम्भ करें। ऐसी संस्थाओं के लिए कानून का बन जाना उपलब्धि तो है, किन्तु इसे वास्तविक धरातल पर लागू करना भी अति महत्वपूर्ण है। कानून बना देने मात्र से जन-शिकायतों का निपटारा नहीं होगा, बल्कि उन पदों पर नियुक्ति के साथ ही समस्याओं का निपटारा हो सकता है। शासन तथा प्रशासन में पायी जाने वाली अनियमितता एवं भ्रष्टाचार को रोकने में इन संस्थाओ की महति भूमिका हो सकती है। दुनिया के सभी देशों का अनुभव रहा है कि जहाँ ओम्बुड्समैन या इसकी जैसी संस्था कार्यरत हैं वहाँ प्रशासनिक दक्षता, कार्यकुशलता मे वृद्धि हुई है। अतः हम कह सकते हैं कि इन संस्थाओं के माध्यम से व्यापक भ्रष्टाचार मे कमी, शासन-प्रशासन मे जनता का विश्वास बहाली, प्रशासनिक दक्षता तथा कार्यकुशलता में अवश्य ही वृद्धि होगी।

23.8 शब्दावली

ढुल-मुल- ढीला या लचीला, विधि का शासन- कानून का शासन, अर्थात् कानून की नजर में सभी व्यक्ति एक समान है, निर्बन्धन- प्रतिबन्ध, पदमुक्ति- पद पर न रहना, अधिकारिता- क्षेत्राधिकार, कार्य करने का अधिकार क्षेत्र, पदावधि- कार्यकाल।

23.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. 1968, **2.** राष्ट्रपति, **3.** उड़िसा, **4.** राज्यपाल

23.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. शर्मा, एम0पी0 एवं सड़ाना बी0एल0, ''लोक प्रशासन सिद्धान्त एवं व्यवहार'', किताब महल इलाहाबाद, 2003
2. यादव, सुषमा एवं चौहान, बलवान, (सम्पादित)''लोक प्रशासन सिद्धान्त एवं व्यवहार'', ओरियंट ब्लैकस्वॉन्, दिल्ली, 2015
3. लोकपाल और लोकायुक्त अधिनियम, 2013
4. अवस्थी, ए0 तथा अवस्थी, ए0,''भारतीय प्रशासन'', लक्ष्मीनारायण, आगरा, 2013

23.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. बिस्वाल, तपन, ''गर्वनेन्स एण्ड सिटिजनशिप'', विवा बुक प्राइवेट लि0, नई दिल्ली, 2015
2. सिंह, होशियार एवं सिंह, पंकज, ''भारतीय प्रशासन'', पीयर्सन, नई दिल्ली, 2011
3. अरोरा, आर0के0 एवं गोयल, रजनी, ''इण्डियन पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन'', न्यू एज इन्टरनेशनल प्रा0 लि., पब्लिशर्स, न्यू दिल्ली, 2013
4. महेश्वरी, श्रीराम, ''भारतीय प्रशासन'', ओरियंट ब्लैकस्वॉन, नई दिल्ली, 2013

23.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. भारत में लोकपाल के ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का वर्णन कीजिए।
2. लोकपाल का गठन एवं शक्तियों की विवेचना कीजिए।
3. लोकायुक्त की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
4. राज्यों में लोकायुक्त की स्थिति की विवेचना कीजिए

इकाई- 24 बजट निर्माण प्रक्रिया- भारत, अमेरिका

इकाई की संरचना

24.0 प्रस्तावना
24.1 उद्देश्य
24.2 बजट के ऐतिहासिक पक्ष
24.3 बजट निर्माण के सिद्धान्त
  24.3.1 संतुलित बजट सिद्धान्त
  24.3.2 कार्यपालिका के दायित्व का सिद्धान्त
  24.3.3 वार्षिकता का सिद्धान्त
  24.3.4 अवसान का नियम
  24.3.5 नगद आधार का सिद्धान्त
  24.3.6 एकल बजट का सिद्धान्त
  24.3.7 शुद्धता का सिद्धान्त
  24.3.8 बजट प्रचार-प्रसार का सिद्धान्त
  24.3.9 स्पष्टता का सिद्धान्त
  24.3.10 व्यापकता का सिद्धान्त
24.4 भारत में बजट निर्माण प्रक्रिया
  24.4.1 बजट का प्रशासकीय विभागों द्वारा निर्माण
  24.4.2 बजट का महालेखापाल कार्यालय में जाँच एवं सुझाव
  24.4.3 वित्त मंत्रालय द्वारा अनुमानों की समीक्षा तथा समेकन
24.5 अमेरिका में बजट व्यवस्था
24.6 प्रबन्ध एवं बजट कार्यालय के कार्य
24.7 अमेरिका में बजट निर्माण प्रक्रिया
24.8 सारांश
24.9 शब्दावली
24.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
24.11सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
24.12 सहायक एवं उपयोगी पाठ्य सामग्री
24.13 निबंधात्मक प्रश्न

24.0 प्रस्तावना

बजट वित्त प्रशासन का सबसे महत्वपूर्ण अंग है। बजट सभी प्रकार की शासन प्रणालियों का आधारशिला तथा जीवनधारा है। इसके अभाव में शासन तथा प्रशासन तंत्र का परिचालन असम्भव है, क्योंकि सरकार की प्रत्येक योजना के लिए पर्याप्त धन की आवश्यकता होती है। सरकार की अच्छी से अच्छी नीतियाँ तथा योजनाऐं आवश्यकतानुसार बजट की अनुपलब्धता की वजह से क्रियान्वित नहीं हो पाने से निरर्थक साबित हो जाती हैं। जिस प्रकार से कोई मोटरकार बिना ईंधन के चल नहीं सकती उसी तरह से सरकार भी बिना वित्त के चल नहीं सकती। कौटिल्य ने भी कहा है कि ''सभी संगठन वित पर निर्भर करते हैं, अतः सबसे ज्यादा ध्यान खजाने पर दिया जाना चाहिए।'' बजट आधुनिक राज्यों में राष्ट्र की आर्थिक नीतियों को चलाने और नियंत्रित करने का

साधन भी है। बजट से केवल सरकार के आय-व्यय एवं लेखा-जोखा का ही पता नहीं चलता, बल्कि इसमें सरकार की नीतियों तथा राष्ट्र की आर्थिक स्थिति के साथ ही सरकार की प्राथमिकताऐं भी प्रतिबिम्बित होती है।
बजट को अभी तक सर्वमान्य रूप से परिभाशित नहीं किया जा सका है। सभी विद्वानों ने बजट को अपने-अपने ढंग से परिभाषित करने का प्रयास किया है। कुछ विद्वानों ने बजट को अनुमानित आमदनियों तथा खर्चों के विवरण मात्र के रूप में परिभाषित किया है। यह अवधारणा सामान्य रूप से अमेरिकी विद्वानों में देखने को मिलती है। कुछ विद्वानों ने बजट को राजस्व तथा 'विनियोग अधिनियम' का पर्यायवाची माना है। यह अवधारणा यूरोपियन विद्वानों में देखी जाती है। बजट की विभिन्न परिभाषाओं को देख कर हमें निम्नलिखित बातों का पता चलता है- बजट अनुमानित आय एवं व्यय का विवरण है, यह एक निश्चित समय के लिए होता है, बजट नियंत्रण से मुक्त नहीं है, बजट को स्वीकृति हेतु एक संस्था व्यवस्थापिका होती है, इसमें सरकार की नीतियों तथा इसे पूरा करने की कार्य योजना होती है, धन कहाँ से आयेगा तथा कहाँ व्यय होगा इसका विवरण होता है। अतः संक्षेप में कहा जाए तो बजट में उत्पादन, वितरण, आय-व्यय, आयात-निर्यात, क्रय-विक्रय, कराधान, कल्याणकारी एवं विकासात्मक योजनाओं इत्यादि का समावेश होता है। बजट क्रियान्वित होने से पहले कई चरणों से होकर गुजरता है- बजट निर्माण, स्वीकृति तथा क्रियान्वयन। इस इकाई में हम बजट के ऐतिहासिक पक्ष, बजट निर्माण प्रक्रिया तथा इसके प्रमुख सिद्धान्तों के बारे में चर्चा करेंगे।

24.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- बजट के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को जान सकेंगे।
- बजट निर्माण के सिन्द्धान्तों की चर्चा कर सकेंगे।
- अमेरिका में बजट व्यवस्था का वर्णन कर सकेंगे।
- भारत तथा अमेरिका में बजट निर्माण प्रक्रिया को जान सकेंगे।

24.2 बजट के ऐतिहासिक पक्ष

बजट बनाने की परम्परा तो प्राचीन काल से ही चली आ रही है जिसका विवरण प्राचीन कालीन ग्रन्थों - महाभारत एवं कौटिल्य के अर्थशास्त्र में मिलता है। आधुनिक समय में इसका प्रारम्भ 1733 से माना जा सकता है। ''बजट'' शब्द की उत्पत्ति फ्रेंच भाषा के ''बूजट'' शब्द से हुई है, जिसका शाब्दिक अर्थ 'चमड़े का थैला' है। बजट शब्द का प्रयोग सबसे पहले उस समय किया गया जब 1733 में तत्कालीन वित्तमंत्री राबर्ट वालपोल ने संसद में वित्तीय विवरण प्रस्तुत करने हेतु चमड़े के थैले से वित्तीय विवरण की प्रति निकाला तो सदस्यों ने व्यंगात्मक रूप में कहा कि 'बजट खोला गया'। उसी समय से इस शब्द का प्रयोग सरकार के आय-व्यय के विवरण के लिए किया जाने लगा। जहाँ तक भारत की बात है तो हमारे संविधान में 'बजट' शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है। बल्कि संविधान के अनुच्छेद 112 में 'वार्षिक वित्तीय विवरण' शब्द का प्रयोग किया गया है।
आधुनिक समय में भारत में बजट की शुरूआत भारत के प्रथम वाइसराय लार्ड केनिंग के कार्यकाल में हुआ। सन् 1857 के राष्ट्रीय आन्दोलन के पश्चात 18 फरवरी 1860 में वाइसराय की कार्यकारिणी परिषद् के वित्त सदस्य जेम्स विल्सन ने वाइसराय की परिषद् में पहली बार बजट प्रस्तुत किया। उसी समय से प्रत्येक वर्ष वाइसराय की परिषद् में बजट रखा जाने लगा, यह स्थिति थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व तक चलती रही। जेम्स विल्सन को भारत में बजट पद्धति का जनक कहा जाता है। भारत के स्वतंत्र होने के पश्चात स्थिति में परिवर्तन आया और बजट पर व्यवस्थापिका के नियन्त्रण का अधिकार प्राप्त हुआ।

यहाँ इस बात को जान लेना आवश्यक है कि सम्पूर्ण भारत के लिए एक ही बजट नहीं होता बल्कि कई बजट होते हैं। संघ सरकार पूरे देश के लिए एक बजट बनाती है तथा प्रत्येक राज्य अपने लिए अलग-अलग बजट बनाते हैं। एक्वर्थ समिति की सिफारिश (1921) के आधार पर 1924 से संघीय स्तर पर सामान्य बजट से रेल बजट को अलग कर दिया गया था। तब से संघीय स्तर पर दो बजट- सामान्य बजट, जिसे वित मंत्री संसद में प्रस्तुत करता है। रेल बजट, जिसे रेलमंत्री प्रस्तुत करता है। वर्तमान प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व वाली भारतीय जनता पार्टी की सरकार ने 1921 से चली आ रही संघीय स्तर पर दो बजट की परम्परा को तोड़ते हुए रेल बजट को सामान्य बजट में शामिल करते वित्तीय वर्ष 2017-18 के लिए एक ही बजट, वित्तमंत्री द्वारा संसद में प्रस्तुत किया गया।
बजट निर्माण के आधार पर देखा जाए तो विश्व में बजट के तीन प्रकार प्रचलित हैं- विधायी प्रणाली का बजट, कार्यपालिका प्रणाली का बजट और मण्डल या आयोग प्रणाली का बजट। इस प्रणाली में बजट का निर्माण किसी मण्डल या आयोग के द्वारा किया जाता है, जिसमें केवल प्रशासनिक अधिकारी अथवा कुछ प्रशासनिक तथा विधायी सदस्य दोनों मिलकर करते हैं। इस प्रणाली का बजट अमेरिका के कुछ राज्यों के स्थानीय शासन में देखने को मिलता है। विधायी प्रणाली के बजट में विधायिका का प्रभुत्व पाया जाता है। बजट निर्माण में विधायिका महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है और उसे व्यापक शक्तियाँ प्राप्त हैं, कुछ ऐसी ही व्यवस्था अमेरिका में रही है। कार्यपालिका प्रणाली का बजट सर्वाधिक प्रचलित है तथा विश्व के अधिकांश देशों में यह पाई जाती है। इस प्रणाली में कार्यपालिका का ही बजट तैयार करती है तथा व्यवस्थापिका के अनुमोदन के पश्चात क्रियान्यवयन का दायित्व भी कार्यपालिका का ही होता है। भारत, इंग्लैण्ड आदि देशों में यह प्रणाली देखने को मिलती है, किन्तु 1921 के अधिनियम के पश्चात अमेरिका में भी बजट बनाने में कार्यपालिका प्रणाली का प्रयोग किया जाने लगा।
बजट सामान्य तौर पर एक वर्ष के लिए बनता है, किन्तु दीर्घकालीन बजट भी बनाये जा सकते हैं। भारत में बजट एक वर्ष के लिए बनाया जाता है, किन्तु अमेरिका के अनेक विभागों में दो-दो वर्ष के लिए बजट बनते हैं। अलग-अलग देशों में वित्तीय वर्ष में भिन्नता देखने को मिलती है। भारत, इग्लैण्ड तथा अन्य राष्ट्रमण्डल देशों में वित्तीय वर्ष 01 अप्रेल से प्रारम्भ होकर अगले वर्ष 31 मार्च तक होता है। इसी वित्तीय वर्ष को भारत के सभी राज्यों ने स्वीकार किया है। अमेरिका, आस्ट्रेलिया, इटली आदि देशों में वित्तीय वर्ष 01 जुलाई से 30 जून तक तथा फ्रांस के साथ कुछ अन्य यूरोपीय देशों में वित्तीय वर्ष 01 जनवरी से 31 दिसम्बर तक होता है। जहाँ तक भारत के वित्तीय वर्ष का प्रश्न है, इसको लेकर विद्वानों ने तथा कई समितियों एवं आयोगों ने आलोचना करते हुए कहा कि वर्तमान वित्तीय वर्ष हमारे देश के अनुकूल नहीं है, क्योंकि हमारी अर्थव्यवस्था मिश्रित प्रकार की है, अधिकांश उद्योग-धन्धे कृषि आधारित हैं। बजट बनाते समय सही आकलन लगाना कठिन होता है, क्योंकि मानसून का बजट पर प्रभाव दिखाता है और मानसून को देखते हुए वित्तीय वर्ष नवम्बर से दिसम्बर या 01 जनवरी से 31 दिसम्बर तक माना जाना उचित होगा। हमारे देश में व्यापारिक वर्ग दिवाली से ही अपना नया लेखा-जोखा प्रारम्भ करता है। हाल ही में देश का पहला राज्य मध्य प्रदेश ने अपना वित्तीय वर्ष 01 जनवरी से 31 दिसम्बर तक रखने की बात कही है।
समय एवं परिस्थितियों के अनुसार जिस प्रकार शासन प्रणालियों में समय के साथ परिवर्तन किया जाता है ताकि सुदृढ़ शासन संचालन हो सके। यह बात बजट के सम्बन्ध में भी लागू होती है। बदलते समय के साथ प्राप्त नए अनुभवों तथा नवीन खाजों के आधार पर बजट प्रक्रिया में संशोधन किये जाते रहे हैं, जिसके परिणामस्वरूप बजट निर्माण के तौर-तरीके भी बदलते रहे हैं। इस समय अधिकांश देशों में कार्य निष्पादन बजट अपनाया जाता है या अपनाने हेतु प्रयास किया जा रहा है। बजट निर्माण के लिए पहले लाइन-आइटम बजट के आधार पर बजट बनाया जाता था, जिसमें व्यय का मदवार विवरण होता था, जिसे व्यस्थापिका स्वीकार कर ले तो उसमें परिवर्तन कार्यपालिका नहीं कर सकती। इसे परम्परागत बजट भी कहा जाता है। यह वस्तुनिष्ठ प्रकार का बजट था, जिस मद में पैसा मिला है, उसी मद में खर्च होगा अन्य मद में नहीं। इसके बाद एकमुश्त बजट, भारत तथा अमेरिका में बजट

निर्माण में इस रूप का प्रयोग किया जाता था। इसमें जरूरत पड़ने पर एक उद्देश्य की राशि को दूसरे उद्देश्य में हस्तांतरित की जा सकती थी। इसके बाद कार्य निष्पादन बजट को अपनाया गया। कार्य निष्पादन बजट की शुरूआत अमेरिका के नगर प्रशासन में किया गया। कार्य निष्पादन बजट शब्द का सबसे पहले प्रयोग 1949 में हुवर आयोग ने किया था। इस बजट में लक्ष्य के बजाये कार्यक्रम के आधार पर बजट तैयार किया जाता है तथा नियन्त्रण के बजाए प्रबन्धन पर अधिक ध्यान दिया जाता है। इस बजट से स्पश्ट होता है कि व्यय के पश्चात क्या प्राप्त हुआ। भारत ने इसे अपनाने की सिफारिश पहले 1957-58 में अनुमान समिति तथा फिर प्रथम प्रशासन सुधार आयोग ने भी की और अब अधिकांश विभागों द्वारा बजट निर्माण में इसे अपनाया जाता है। इसके पश्चात अमेरिका में नियोजन-कार्यक्रम-बजट व्यवस्था को 1965 में अमेरिका में स्वीकार किया गया, किन्तु 1971 में त्याग दिया गया। सन् 1972-77 के बीच एक नई अवधारणा लक्ष्य आधारित बजट (Budgeting by Objective) को अपनाया गया। इसके पश्चात शून्य आधारित बजट जिसे पीटर पीर्हर (Peter Pyhrr) ने विकसित किया। यह बजट प्रणाली अमेरिका के निजी व्यवसायिक उपक्रमों में अपनाया गया, सरकार के स्तर पर प्रथम बार जार्जिया के गर्वनर जिमी कार्टर ने 1973 के वित्तीय वर्ष के बजट तैयार करने हेतु अपनाया, जब राष्ट्रपति बने तो संघी स्तर पर भी शून्य आधारित बजट पेश किया, किन्तु राजनीतिक कारणों से बाद में छोड़ दिया गया। शून्य आधारित बजट में सभी व्ययों को नए सिरे से औचित्य को बताना पड़ता है, जो समय साध्य और खर्चीली भी है। भारत में भी इसे अपनाने हेतु 1986 के तत्कालीन वित्तमंत्री वी0पी0 सिंह ने घोषणा की कि वित्तीय वर्ष 1987-88 से शून्य आधारित बजट प्रक्रिया को अपनाया जायेगा और इस बजट में इसे अपनाने का प्रयास भी किया किन्तु भारत में भी राजनीति कारणों से ही यह आगे के वर्षों में लागू नहीं हो सका। अमेरिका में शून्य आधारित बजट के बाद 1981 में नव-नियुक्त राष्ट्रपति रोनाल्ड रिगन ने लक्ष्य आधारित बजट को अपनाया। फिर सन् 1993 में निष्पादन आधारित बजट को अपनाया गया जो वर्तमान समय में भी अमेरिका तथा भारत के बजट व्यवस्था में लागू है।

24.3 बजट निर्माण के सिद्धान्त

बजट निर्माण के कुछ सिद्वान्त होते हैं, जिनका अनुसरण करके बजट बनाया जाए तो बेहतर बजट बन सकता है। बजट के जो भी सिद्धान्त हैं, उसके सन्दर्भ में यह दावा नहीं किया जा सकता कि प्रत्येक परिस्थितियों में बेहतर ही परिणाम देंगे, बल्कि परिस्थितिवश उसमें संशोधन भी किया जा सकता है। इन सभी सिद्धान्तों का पालन विश्व के सभी देशों में समान रूप से किया जाता है, परन्तु यह आवश्यक नहीं है। बजट के जो सिद्धान्त हैं वह विश्व के प्रमुख देशों के दीर्घकालीन अनुभव के आधार पर बनाए गए हैं। एक अच्छे बजट निर्माण के लिए इन सिद्धान्तों का पालन अति आवश्यक है। बजट के सिद्धान्तों में से कुछ प्रमुख निम्नलिखित हैं-

24.3.1 संतुलित बजट का सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के अनुसार आय तथा व्यय में सन्तुलन होना चाहिए। अनुमानित व्यय, अनुमानित आय तथा राजस्व से ज्यादा नहीं होना चाहिए। जब बजट में व्यय तथा आय बराबर या लगभग समान हो तो उसे संतुलित बजट कहते हैं। यदि व्यय से आय अधिक अनुमानित है तो लाभ का बजट कहा जाता है। जब बजट का व्यय भाग, आय भाग से अधिक होता है, तो ऐसा बजट घाटे का बजट कहलाता है। कुछ नवीन अर्थशास्त्रियों ने घाटे के बजट को उपयोगी कहने लगे हैं। यहाँ यह बताना आवश्यक है कि घाटे का बजट विशेष परिस्थितियों में ही अपनाया जा सकता। यदि इसे निरन्तर अपनाया जाए तो वित्तीय शाखा को धक्का लगता है और दिवालिया होने की सम्भवना प्रबल होती है। न तो घाटे का बजट और न ही लाभ के बजट को निरन्तर प्रयोग में लाया जाना ठीक होगा बल्कि संतुलित बजट के सिद्धान्त को अपनाया जाना उचित होगा। सामान्यतः विश्व के अधिकांश देश बजट निर्माण में इस सिद्धान्त को अपनाते हैं। अमेरिका में कांग्रेस ने 1997 में संतुलित बजट अधिनियम बनाया, तत्पश्चात् संतुलित

बजट बनाया जाने लगा। अमेरिका में शुरूआती दौर में लाभ का बजट बनाने की परम्परा थी, परन्तु बाद में घटे के बजट बनाए जाने लगे थे जिससे राजकोषीय घटा बहुत बढ़ गया था। राजकोषीय घटे को कम करने के लिए ही कांग्रेस ने संतुलित बजट अधिनियम पारित किया।

24.3.2 कार्यपालिका के दायित्व का सिद्धान्त

बजट निर्माण का दायित्व कार्यपालिका का ही होना चाहिए क्योंकि कार्यपालिका पर ही प्रशासन की जिम्मेदारी होती है। अतः वही बता सकता है कि शासन एवं प्रशासन को सही से चलाने के लिए कितने धन की आवश्यकता है। चूँकि बजट बनाना जटिल प्रक्रिया के साथ तकनीकि प्रकृति का होता है, इसीलिए कार्यपालिका बजट निर्माण में विशेषज्ञ संस्थाओं की सहायता लेता है। ''कार्यपालिका की सिफारिश के बिना कोई भी माँग मंजूरी के लिए व्यवस्थापिका में प्रस्तुत नहीं की जा सकती'' की धारणा इस सिद्धान्त को और भी बल प्रदान करता है। भारत में वित्त मंत्रालय, ब्रिटेन में राजकोष तथा अमेरिका में प्रबंध एवं बजट कार्यालय बजट निर्माण में कार्यपालिका को सहयोग प्रदान करते हैं।

24.3.3 वार्षिकता का सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के अनुसार बजट एक वित्तीय वर्ष के लिए बनाया जाता है। यदि किसी वजह से सम्बन्धित विभाग वित्तीय वर्ष में व्यय के लिए स्वीकृत राशि को खर्च नहीं कर पाता है, तो दूसरे वर्ष खर्च करने के लिए विधान मण्डल की अनुमति लेना पड़ेगा, अन्यथा बचे पैसे को खर्च नहीं कर सकता। इस सिद्धान्त के पालन से एक वर्ष के लिए आय-व्यय का अनुमान लगाना अपेक्षाकृत आसान होता है। भारत सहित विश्व के अधिकांश देशों ने इसे स्वीकार कर लिया है। अमेरिका के कुछ ही राज्यों में बजट दो वर्ष के लिए बनाया जाता है।

24.3.4 अवसान का नियम

इसका आशय यह है कि वित्तीय वर्ष के लिए स्वीकृत राशि को उसी वित्तीय वर्ष में खर्च किया जा सकता है, भविष्य में व्यय करने हेतु बचाकर सुरक्षित नहीं रखा जा सकता। यदि कोई स्वीकृत धन वित्तीय वर्ष में खर्च नहीं हो पाता है तो वित्तीय वर्ष की समाप्ति पर शेष बची धनराशि को सरकार को वापस राजकोष में लौटाना होता है, किन्तु कुछ खर्च ऐसे होते हैं जो निरन्तर किये जाने जरूरी होते हैं तो ऐसी राशि को वापस नहीं करनी पड़ती बल्कि औपचारिक अनुमति ले ली जाती है।

24.3.5 नकद आधार का सिद्धान्त

बजट के नगद आधार का अर्थ यह है कि वित्तीय वर्ष में जो आय तथा व्यय हो, उसे उसी वर्ष के बजट में सम्मिलित किया जाता है। यदि कोई कर वर्तमान वित्तीय वर्ष में लगाया गया, परन्तु कर की वसूली इस वित्तीय वर्ष में न होकर अगामी वित्तीय वर्ष में होता है तो जिस वित्तीय वर्ष में कर वसूली होती है, उसे उसी वित्तीय वर्ष के आय में शामिल किया जाता है। जैसे- 2015-16 का कोई कर इस वित्तीय वर्ष में वसूल न होकर 2016-17 में वसूला गया तो वह 2016-17 के आय में दिखाया जाएगा न कि 2015-16 के आय में। इसी प्रकार कोई व्यय राशि 2016-17 में निर्धारित किया गया किन्तु 2016-17 में व्यय किया गया तो वह व्यय धनराशि 2016-17 के बजट के व्यय राशि में दिया जाएगा। इस सिद्धान्त का पालन ब्रिटेन, अमेरिका तथा भारत में समान रूप से बजट निर्माण में किया जाता है। इसके विपरीत फ्रांस के साथ कुछ अन्य यूरोपीय देशों में इस सिद्धान्त के आधार पर बजट नहीं बनाए जाते। इन देशों में आय-व्यय को जो राशि जिस वित्तीय वर्ष में निर्धारित होता है वह उसी वर्ष के बजट में दर्शाया जाता है भले ही वह राशि अगले वर्ष वसूला गया हो या व्यय किया गया हो।

24.3.6 एकल बजट का सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के अनुसार देश के लिए एक ही बजट बनाया जाना चाहिए, एक से अधिक नहीं। शासन के सभी विभागों के आय तथा व्यय एक ही बजट में होना चाहिए। एक बजट होने से देश के वित्तीय स्थिति को जानने में आसानी होती है। भारत में 1924 से लेकर वित्तीय वर्ष 2016-17 तक दो बजट सामान्य तथा रेल बजट की

परम्परा थी, किन्तु वित्तीय वर्ष 2017-18 के बजट में एकल बजट सिद्धान्त को अपनाते हुए संघ स्तर पर एक बजट बनाया गया।

24.3.7 शुद्धता का सिद्धान्त

बजट के अनुमान यथा सम्भव सही होना चाहिए। जिन आँकड़ों के आधार पर बजट प्राक्कलन तैयार किये जाते हैं, वह शुद्ध तथा प्रमाणित हो। बजट में जो आय-व्यय अनुमानित है, वह वास्तविक रूम में भी लगभग उसके अनुरूप हो। जानबूझ कर आय तथा व्यय को कम अथवा अधिक नहीं दर्शाना चाहिए।

24.3.8 बजट प्रचार-प्रसार का सिद्धान्त

चूँकि बजट जनता के लिए बनाया जाता है और जनता उससे प्रभावित भी होती है। अतः इसका जनता तक प्रचार-प्रसार किया जाना चाहिए, ताकि जनता जान सके कि बजट में क्या प्रावधान हैं और कौन-कौन सी नई योजनाऐं प्रस्तावित हैं। प्रचार से जनता की प्रतिक्रिया तथा सुझाव प्राप्त हो जाते हैं, जिसे बजट में शामिल कर जनता की आकांक्षाओं के अनुसार बेहतर बजट बनाया जा सके।

24.3.9 स्पष्टता का सिद्धान्त

बजट का प्रारूप स्पष्ट तथा सरल हो, जिसे एक आम नागरिक भी समझ सके। बजट में सरल शब्दों को प्रयोग किया जाए न क्लिष्ट शब्दों का और भाषा भी स्पष्ट होनी चाहिए।

24.3.10 व्यापकता का सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के अनुसार बजट व्यापक तथा विस्तृत होना चाहिए न कि संक्षेप में कि इतना आय और इतना व्यय है। बजट में आय-व्यय का विस्तृत विवरण होना चाहिए जिसमें यह उल्लेख हो कि आय कैसे और कहाँ से होगी तथा व्यय किन-किन विषयों पर होगा।

भारत तथा अमेरिका में उपरोक्त सिद्धान्तों को बजट निर्माण में समान रूप से अपनाया जाता है। आइये अब भारत में बजट निर्माण की प्रक्रिया पर विचार करें।

24.4 भारत में बजट निर्माण प्रक्रिया

भारत में बजट बनाने से लेकर क्रियातन्वत होने तक कई चरणों से होकर गुजरता है, जो प्रमुख रूप से निम्नलिखित हैं-बजट का निर्माण, बजट को व्यवस्थापिका की स्वीकृति और बजट का क्रियान्वयन।

बजट को प्रत्येक चरण में भी कई सोपानों से होकर गुजरना पड़ता है, किन्तु हम यहाँ पर केवल बजट निर्माण की प्रक्रिया तथा इस प्रक्रिया के तहत विभिन्न भागों तथा उसमें अपनाये जाने वाले तौर-तरीकों पर विचार करेंगे।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद- 112 में कहा गया है कि राष्ट्रपति प्रत्येक वर्ष आय-व्यय का विवरण संसद में रखवाएगा। इससे स्पष्ट होता है कि बजट बनाने तथा व्यवस्थापिका में प्रस्तुत करने का दायित्व कार्यपालिका का है। ऐसा होना भी आवश्यक है, क्योंकि वही प्रशासन चलाता है इसलिए वही अच्छी तरह बताने की स्थिति में होता है कि उसे कितने धन की जरूरत है। भारत में बजट की रूपरेखा तैयार करने का उत्तरदायित्व वित्त मंत्रालय का होता है। चूँकि बजट बनाना तकनीकि एवं जटिल कार्य है, इसी वजह से इसमें अन्य कई विशेषज्ञ संस्थाओं की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

बजट निर्माण प्रक्रिया को अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से तीन भागों में बाँटा जा सकता है- बजट का प्रशासकीय विभागों द्वारा निर्माण, बजट का महालेखपाल कार्यालय में जाँच एवं सुझाव तथा वित्त मंत्रालय द्वारा अनुमानों की समीक्षा तथा समेकन। अब हम उक्त तीनों भागों पर क्रमशः एक-एक करके विचार करेंगे।

24.4.1 बजट का प्रशासकीय विभागों द्वारा निर्माण

भारत में बजट बनाने का कार्य वित्तीय वर्ष शुरू होने के करीब 7-8 माह पूर्व जुलाई-अगस्त में प्रारम्भ हो जाता है। बजट निर्माण में प्रशासकीय मंत्रालय और उसके अधीनस्थ कार्यालयों के अलावा योजना आयोग, जो योजनाओं

की प्राथमिकता के सम्बन्ध में परामर्श देता है, तथा नियंत्रक एवं महालेख परीक्षक बजट का अनुमानों को तैयार करने हेतु लेखा कौशल व आवश्यक आँकड़े उपलब्ध कराता है। बजट अनुमानों को तैयार करने हेतु सबसे पहले कार्यपालिका अपनी वित्तीय नीति को स्पष्ट करती है तत्पश्चात् वित्त मंत्रालय सभी मंत्रालयों तथा विभागों को अनुमान तैयार करने के अनुरोध के साथ निर्धारित प्रपत्र भेजता है। प्रत्येक मंत्रालय और विभाग उस प्रपत्र को अपने-अपने स्थानीय कार्यालयों तक भेज देते हैं। इस प्रपत्र को स्थानीय कार्यालयों को भरना होता है जिसमें निम्नलिखित सूचनाओं से सम्बन्धित कॉलम होते हैं-

- विनियोगों के शीर्षक तथा उपशीर्षक
- पिछले वर्ष का वास्तविक आय तथा व्यय
- चालू वर्ष के लिए स्वीकृत अनुमान
- चालू वर्ष के लिए संशोधित अनुमान
- आगामी वर्ष के बजट अनुमान
- घाटा-बढ़ी का स्पष्टीकरण

स्थानीय कर्यालय उपलब्ध कराये गये प्रपत्र को पूरी तरह से तैयार करके अपने-अपने विभागों तथा मंत्रालयों को भेज देते हैं। विभाग तथा उसका कार्यालय अपने अधीनस्थ कार्यालयों से प्राप्त अनुमानों का गहराई से जाँच करता है, तथा आवश्यकतानुसार संशोधन करता है उसके बाद अपने सभी स्थानीय कार्यालयों के अनुमानों को एकीकृत कर देता है, इस तरह यह पूरे विभाग का बजट बन जाता है। विभाग इसको सम्बन्धित मंत्रालयों को भेजता है। सम्बन्धित कार्यालय में पुनः इसकी जाँच व संशोधन की जाती है। इसके बाद मंत्रालय अपने सभी विभागों के अनुमानों को सम्मिलित करके एक अनुमान बना देती है और नवम्बर माह में एक प्रति वित्त मंत्रालय तथा दूसरी प्रति महालेखापाल कार्यालय को भेज देता है। प्रशासकीय मंत्रालय द्वारा भेजे गए बजट अनुमानों में तीन हिस्से होते हैं- प्रथम, स्थायी व्यय, जिसमें स्थाई संस्थानों के वेतन भत्ते इत्यादि व्यय शामिल होते हैं। दूसरे हिस्से में चालू योजनाओं अथवा कार्यक्रम तथा तीसरे हिस्से में नई योजनाओं अथवा कार्यक्रमों से सम्बन्धित प्राक्कलन।

24.4.2 बजट का महालेखपाल कार्यालय में जाँच एवं सुझाव

महालेखापाल कार्यालय विभागों और मंत्रालयों से प्राप्त अनुमानों की जाँच करता है। चूँकि महालेखापाल कार्यालय में सभी मंत्रालयों तथा विभागों से सम्बन्धित सारे पक्के आँकड़ें उपलब्ध रहते हैं अतः महालेखापाल इनके अनुमानों में दिए गए आँकड़ों की जाँच करता है तथा आवश्यक टिप्पणी लिखता है और सुझाव भी देता है। इसकी जाँच से प्राक्कलित अनुमानों में शुद्धता आ जाती है।

24.4.3 वित्त मंत्रालय द्वारा अनुमानों की समीक्षा तथा समेकन

जब सभी मंत्रालयों अथवा विभागों से अनुमान वित्त मंत्रालय को प्राप्त हो जाते हैं तो वित्त मंत्रालय द्वारा उसकी समीक्षा की जाती है और आवश्यकतानुसार अनुमानों में संशोधन भी किए जाते हैं। वित्त मंत्रालय की जाँच प्रशासकीय मंत्रालयों से भिन्न प्रकृति की होती है, क्योंकि जहाँ प्रशासकीय मंत्रालय और विभाग बजट प्राक्कलनों की जाँच सरकार की नीति के दृष्टिगत करते हैं, वहीं वित्त मंत्रालय मितव्यतिता लाने के उद्देश्य से करता है। वित्त मंत्रालय सूक्ष्म जाँच करते समय उपलब्ध साधनों की सीमितता तथा प्रस्तावित बजट अनुमानों की आवश्यकता को ध्यान में रखकर सभी बजट अनुमानों पर विचार करता है। वित्त मंत्रालय द्वारा नई योजनाओं के प्रस्तावों को बेहद बारीकी से समीक्षा की जाती है। वित्त मंत्रालय की सहमति के बिना बजट अनुमानों में कोई नया खर्च अथवा खर्च में वृद्धि नहीं की जा सकती है। यदि कोई प्रशासकीय मंत्रालय या विभाग अनिवार्य रूप से नया व्यय या खर्च बढ़ाना चाहता है तो उसे स्पष्ट करना होता है। जब वित्त मंत्रालय प्रशासकीय मंत्रालय या विभाग द्वारा नए खर्च से

संबंधित स्पष्टीकरण से संतुष्ट हो जाता है तो ठीक है अन्यथा यह मामला मंत्रिमण्डल के समक्ष रखा जाता है जिसका निर्णय अन्तिम होता है। सामान्यतः निर्णय वित्त मंत्री के पक्ष में होता है, क्योंकि वित्त मंत्रालय व्यय करने वाला विभाग नहीं है किन्तु इसके पास वित्त की व्यवस्था करने व वित्तीय प्रबन्धन का दायित्व होता है। वित्त मंत्रालय सभी अनुमानों की समीक्षा के पश्चात उन्हें एकीकृत करता है। बजट के ऊपर जो नियंत्रण भारत में वित्त मंत्रालय लगाता है वही अमेरिका में प्रबन्ध एवं बजट कार्यालय लगाता है।

व्यय के अनुमान तैयार होने के पश्चात राजस्व के अनुमान तैयार किये जाते हैं, यह कार्य भी वित्त मंत्रालय का है। राजस्व एकत्र करने वाले प्रमुख अभिकरण- आयकर विभाग, केन्द्रीय उत्पादन तथा सीमा शुल्क इत्यादि आगामी वित्त वर्ष हेतु संशोधित राजस्व का अनुमान लगाते हैं। आय-व्यय का अनुमान तैयार हो जाने से स्पष्ट हो जाता है कि आय-व्यय में कितना अन्तर है। बजट घाटे का होगा या लाभ का या संतुलित होगा। यदि बजट घाटे का है तो उसे पूरा करने के लिए क्या नए कर लगाए जाएं या नहीं, यदि नया कर लगाया जाए तो किस तरह का, उसकी दर क्या होगी, अथवा ऋण से। कर लगाने ऋण लेने का निर्णय अन्तिम चरण में लिए जाते हैं। नीतिगत निर्णय मंत्रीमण्डल करता है।

इस तरह से विभिन्न मंत्रालयों तथा विभागों द्वारा तैयार प्राक्कलनों, इन प्राक्कलनों पर महालेखापाल के जाँच रिर्पोट, वित्त मंत्रालय की समीक्षा व मन्त्रिपरिषद् की स्वीकृति के पश्चात सभी आय-व्यय के अनुमानों को सम्मिलित करके देश के लिए एक बजट का प्रारूप तैयार हो जाता है। वित्त मंत्री बजट प्रारूप को भारत के मुख्य कार्यपालक की ओर से लोक सभा में प्रस्तुत करता है और बजट भाषण देता है, उसके बाद व्यवस्थापिका बजट को पारित करने की कार्यवाही करती है।

24.5 अमेरिका में बजट व्यवस्था

अमेरिका में बजट व्यवस्था की परिपाटी संसदीय शासन प्रणाली वाले देशों से अलग है, क्योंकि वहाँ पर अध्यक्षीय शासन व्यवस्था है। अतः अमेरिका की बजट व्यवस्था का अध्ययन वहाँ की शासन प्रणाली के परिप्रेक्ष्य में देख कर ही समझा जा सकता है। आइये अब अमेरिका की प्रारम्भिक तथा वर्तमान बजट व्यवस्था पर विचार करें।

सन् 1921 से पहले अमेरिका में समविन्त तथा संतुलित बजट की प्रथा नहीं थी। शुरूआती दौर में यह देखने को मिलता है कि प्रत्येक विभाग अपना अलग अनुमान तैयार करता और कोश विभाग को भेज देता था। कोष विभाग सभी विभागों से प्राप्त अनुमानों को बिना जाँच-पड़ताल किए ही मिलाकर एक बजट तैयार करता था। बजट के संदर्भ में कोष विभाग का काम मात्र यह था कि अलग-अलग विभागों से प्राप्त अनुमानों को मिलाकर एक तालिका बनाना और काँग्रेस को भिजवा देना। शुरूआती दौर में अमेरिका में लाइन आइटम बजट पद्धति के आधार पर बजट बनाया जाता था। कुछ समय पश्चात वहाँ पर एकमुश्त बजट पद्धति को अपनाया गया, किन्तु 1930 के विश्वव्यापी आर्थिक मंदी एवं द्वितीय विश्व्युद्ध से उत्पन्न परिस्थितियों को देखते हुए बजट पद्धति में कुछ सुधार किया गया। हूवर आयोग ने अमेरिकी बजट की तत्कालिन पद्धति के बजाये नये तरीके से बनाने की आवश्यकता पर बल दिया और कहा- ''संघीय सरकार की पूरी बजट धारणा को योजनाओं, गतिविधियों तथा कार्यों के आधार पर बजट तैयार करने की परिपाटी को अपनाना चाहिए।'' 1993 से अमेरिका में निष्पादन बजट पद्धति को अपनाया गया। अमेरिका में पहले लाभ के बजट बनाने की प्रथा थी फिर बाद में घाटे का बजट बनाया जाने लगा। 1997 में कांग्रेस ने संतुलित बजट अधिनियम पारित किया। वर्तमान समय में संतुलित बजट के सिद्धान्त को अपनाते हुए निष्पादन बजट पद्धति के आधार पर अमेरिका में बजट तैयार किया जाता है।

अमेरिका में बजट तैयारी की प्रक्रिया से पहले, सन् 1921 में क्या बदलाव आया इस पर विचार करना आवश्यक है। अमेरिका की अव्यवस्थित बजट प्रणाली तथा प्रथम विश्वयुद्ध से उभरी परिस्थितियों के प्रभाव की वजह से

अमेरिका में 1921 में 'बजट तथा लेखांकन अधिनियम' बनाया गया। इस अधिनियम के तहत एक 'बजट ब्यूरो' की स्थापना कोष विभाग में की गई थी। इस बजट ब्यूरों के 1939 में पुनर्गठन किया गया जिसे 'प्रबन्ध एवं बजट कार्यालय' कहा जाने लगा और इसे राश्ट्रपति कार्यालय में स्थानान्तरित कर दिया गया। इसे 1921 के बजट तथा लेखांकन अधिनियम के माध्यम से अमेरिकी बजट व्यवस्था को सुव्यवस्थित करने तथा बजट निर्माण में कार्यपालिका के दायित्व के सिद्धान्त को अमल में लाने का प्रयास किया गया। अब हम प्रबन्ध एवं बजट कार्यालय के कार्यों पर विचार करेंगे।

24.6 प्रबन्ध एवं बजट कार्यालय के कार्य

प्रबन्ध एवं बजट कार्यालय के निम्नलिखित कार्य हैं-

1. वर्षिक बजट के निर्माण एवं निष्पादन में राष्ट्रपति की सहायता करना।
2. कार्यकारी आदेशों, प्रस्तावों तथा विधेयकों के संबंध मेंनियंत्रण स्थापित करना।
3. संघीय कार्यालयों में प्रबन्धकीय क्षमता बढ़ाने हेतु सुझाव देना।
4. संघीय सरकार के संख्यिकी कार्यों को समेकित करना।
5. बजट एवं मितव्यता से सम्बन्धित समीक्षाऐं प्रस्तुत करना।
6. कार्यकारी विभागों द्वारा प्रस्तावित वैधानिक प्रस्तावों को समन्वित करना।
7. राष्ट्रपति के वीटो संदेश तथा कार्यकारी आदेश जारी करने में सहायता करना।
8. विभिन्न विकासात्मक कार्यों तथा परियोजनाओं का मूल्यांकन तथा नियंत्रण करना।
9. राष्ट्रपति के निर्देशानुसार कार्यकारी विभागों को निष्पादन बजट के सम्बन्ध में मार्गदर्शन प्रदान करना।
10. वित्त प्रशासन का पर्यवेक्षण तथा बजट पर नियंत्रण करना।

प्रबन्ध एवं बजट कार्यालय के उक्त कार्यों से स्पष्ट हो जाता है कि इसका कार्य, मात्र बजट निर्माण में राष्ट्रपाति की सहायता करना नहीं है, बल्कि इसे मितव्ययिता लाने और बजट पर नियंत्रण का भी अधिकार प्राप्त है। अतः हम कह सकते हैं कि अमेरिका के वित्त प्रशासन में यह कार्यलय महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

24.7 अमेरिका में बजट निर्माण प्रक्रिया

अब हम अमेरिका में बजट अनुमान तैयार करने की प्रक्रिया के बारे में विचार करेंगे। जैसा कि आप जान चके हैं कि प्रबन्धन एवं बजट कार्यालय अमेरिकी राष्ट्रपति को बजट तैयार करने तथा क्रियान्वयन में सहायता करता है। यह कार्यालय राष्ट्रपति के निर्देशानुसार विभिन्न प्रशासकीय विभागों तथा अभिकरणों से बजट अनुमान तैयार करवाता है। अमेरिका में प्रशासनिक विभागों तथा अभिकरणों में बजट अनुमान तैयार करने की शुरूआत चालू वित्तीय वर्ष की समाप्ति से करीब दो वर्ष पूर्व ही हो जाती है। वित्तीय वर्ष समाप्ति के पूर्व सितम्बर माह के अन्त तक प्रबधन एवं बजट कार्यालय को सभी विभागों के अनुमान प्राप्त हो जाते हैं। इस तरह कहा जा सकता है कि अमेरिका में बजट निर्माण में अपेक्षाकृत अधिक समय लगता है।

अमेरिका में बजट अनुमानों की प्रारम्भिक तैयारी प्रशासनिक विभागों द्वारा किया जाता है। यहाँ ध्यान देने वाली बात यह है कि अमेरिकी शासन व्यवस्था में सरकार के व्यय हेतु साधन जुटाने, नव आय के स्रोतों की खोज करना अर्थात् कर-राजस्व से सम्बन्धित अधिकार वैधानिक रूप से काँग्रेस को प्राप्त है। अमेरिकी कानून के अनुसार, ''काँग्रस को यह अधिकार प्राप्त है कि व करों, शुल्कों, महसूलों व उत्पाद करों को आरोपित करे और उनका संग्रहण करने, ऋणों को भुगतान करने तथा संयुक्त राज्य की सामूहिक सुरक्षा एवं सामान्य कल्याण की व्यवस्था करने की शक्ति का प्रयोग करें।'' व्यवहार में काँगेस की इस सत्ता का प्रयोग वित्त मंत्रालय करता है और इसी के द्वारा देश के राजस्व सम्बन्धी शुरूआती अनुमान तैयार किये जाते हैं। इसी के आधार पर प्रबन्धन एवं बजट कार्यालय आय- व्यय सम्बन्धी व्यौरों को अंतिम रूप देता है।

अमेरिका में बजट अनुमानों की तैयारी राष्ट्रपति के नेतृत्व में प्रबन्ध एवं बजट कार्यालय के द्वारा की जाती है, किन्तु इसमें प्रशासनिक विभाग भी सहयोग करते हैं। प्रबन्ध एवं बजट कार्यालय विभिन्न प्रशासकीय विभागों तथा अभिकरणों से बजट अनुमान तैयार करने हेतु अनुरोध करता है। इसके पश्चातप्रत्येक विभाग अपना-अपना बजट अनुमान तैयार करते हैं। सभी विभाग अपना बजट अनुमान कार्य निष्पादन आधारित बजट प्रक्रिया के आधार पर तैयार करते हैं। इस प्रक्रिया के तहत प्रत्येक विभाग द्वारा अपने विभाग से सम्बन्धित उद्देश्यों का निर्धारण किया जाता है। उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए कार्यक्रमों तथा योजनाओं का निर्धारण करना होता है। साथ ही कार्यक्रमों के क्रियान्वयन की विधि, समय तथा लागत की व्याख्या करना होता है, ताकि मितव्ययिता एवं कुशलता से लागू किया जा सके। इस तरह से हम कह सकते हैं कि निष्पादन आधारित बजट में लक्ष्यों, कार्यक्रमों तथा योजनाओं के आधार पर बजट अनुमान तैयार किया जाता है।

प्रत्येक प्रशासनिक विभाग तथा अभिकरण अपना बजट अनुमान हरे पत्र पर तैयार करते हैं। इस हरे पत्र में स्थानीय कार्यालयों को पिछले वर्ष के आय-व्यय से सम्बन्धित आँकड़े, चालू वित्तीय वर्ष के आँकड़े तथा आने वाले वित्त वर्ष के लिए अनुमानित आँकड़े देने होते हैं। इसके साथ ही इस पत्र पर प्रत्येक क्षेत्रीय कार्यालय को कार्यक्रम मोमेरेण्डम भी देना होता है, जिसमें यह स्पष्ट करना होता है कि कोई योजना क्यों चुनी गयी है, तुलनात्मक रूप से यह योजना कैसे श्रेष्ठ है, इस हेतु वित्तीय व्यवस्था कहाँ से होगी, साथ ही यह भी बताना होता है कि इससे क्या लाभ होगा। विभाग बजट अनुमान बनाते समय प्रबन्ध एंव बजट कार्यालय के विशेषज्ञों से भी आवश्यकतानुसार परामर्श लिया जा सकता है। इस तरह क्षेत्रों से बजट अनुमान लगभग 06 माह में विभाग में आ जाते हैं। इसके पश्चात विभागीय स्तर पर गहन जाँच किया जाता है तथा आवश्यकतानुसार काट-छाँट करने के पश्चात विभागाध्यक्ष के समक्ष रखा जाता है। वह भी अपने स्तर पर जाँच करता है तथा संशोधित कर अन्तिम रूप से बजट अनुमान तैयार करता है और अपने विभाग के बजट अनुमान को सितम्बर माह में प्रबन्ध तथा बजट कार्यालय को भेज देता है।

प्रबन्ध एवं बजट कार्यालय को 30 सितम्बर तक सभी विभागों तथा अभिकरणों से बजट अनुमान प्राप्त हो जाते हैं। यह कार्यालय भी विभागों से आये बजट अनुमानों की विशेषज्ञ तथा अनुभवी अधिकारियों के माध्यम से गहन जाँच पड़ताल तथा आलोचनात्मक समीक्षा करता है। यह कार्यालय इन अनुमानों में आवश्यकता अनुसार संशोधन भी करता है, जिसे सम्बन्धित विभाग के प्रमुख को बता दिया जाता है। यह कार्यालय समीक्षा के बाद आवश्यकता पड़ने पर विभाग के प्रमुख को अपने बजट अनुमानों का औचित्य सिद्ध करने हेतु बुलाता है। यदि कोई विभाग प्रबन्ध एवं बजट कार्यालय के काट-छाँट से सहमत नहीं है, तो वह इसे राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत करने की प्रार्थना करता है। इस सम्बन्ध में राष्ट्रपति का जो निर्णय हो विभागाध्यक्ष को अवगत करा दिया जाता है। यदि जरूरत हुई तो सम्बन्धित विभाग अपने बजट अनुमानों को राष्ट्रपति की इच्छा के अनुसार पुनः संशोधित करता है। इस तरह से प्रबन्ध एवं बजट कार्यालय प्रशासनिक विभागों तथा अभिकरणों के बजट अनुमानों के आधार पर देश के आय-व्यय के विवरण को अन्तिम रूप देने की प्रक्रिया को पूरा करता है। यह कार्यालय बजट की तैयारी के अन्तिम चरण में सभी अनुमानों को तथा उससे सम्बन्धित प्रलेखों को मुद्रित करने के लिए भेजता है। यह कार्यालय उक्त सभी कार्य दिसम्बर माह तक हर हाल में पूरा कर लेता है, ताकि बजट अनुमानों को जनवरी में काँग्रेस में प्रस्तुत किया जा सके। राष्ट्रपति अपना बजट संदेश के साथ बजट अनुमान जनवरी में काँग्रेस के सामने भेजता है।

अभ्यास प्रश्न-

1. भारत के बजट पद्धति का जनक किसे माना जाता है?
2. भारत में वित्तीय वर्ष कब से कब तक माना जाता है?
3. अमेरिका में वित्तीय वर्ष कब से प्रारम्भ होता है?
4. अमेरिकी कांग्रेस ने किस वर्ष संतुलित बजट अधिनियम पारित किया?

24.8 सारांश

इस आधुनिक जन कल्याणकारी शासन व्यवस्था में कोई भी कार्य बिना वित्त के सम्भव नहीं है। इसीलिए कुछ विद्वानों ने वित्त को प्रशासन का हृदय तक कहा है। सरकार की अच्छी से अच्छी योजनाएं बजट के अभाव में असफल हो जाती हैं। इस इकाई में हमने देखा कि भारत में बजट बनाने और क्रियान्वित करने का दायित्व कार्यपालिका का है, किन्तु पारित करने का दायित्व व्यवस्थापिका का है। अमेरिका में भी 1921 के अधिनियम के द्वारा बजट अनुमान तैयार करने के सम्बन्ध में व्यापक परिवर्तन करते हुए सुसंगठित, समविन्त तथा व्यवस्थित करने का प्रयास किया गया है। इस इकाई में बजट के सिद्धान्तों पर विचार किया गया है, जिन्हें ध्यान में रखकर भारत तथा अमेरिका में बजट अनुमान तैयार किए जाते हैं। यह आवश्यक नहीं कि किसी देश के बजट बनाने में सभी सिद्धान्तों का पालन हो, किन्तु आमतौर पर व्यवहार में लाए जाते हैं। भारत में बजट बनाने में वित्त मंत्रालय की महत्वपूर्ण भूमिका होती है तथा इसे बजट नियंत्रण का अधिकारी प्राप्त है। कुछ इसी तरह अमेरिका के बजट निर्माण में प्रबन्ध एंव बजट कार्यालय महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है एवं इस कार्यालय को बजट पर नियंत्रण से सम्बन्धित भी कुछ अधिकार प्राप्त हैं। अतः कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि भारत में बजट के सम्बन्ध में जो भूमिका वित्त मंत्रालय की है वही भूमिका अमेरिका में प्रबन्ध एवं बजट कार्यालय की है किन्तु भारतीय संसद की अपेक्षा अमेरिकी काँग्रेस को बजट सम्बन्धी अधिक शक्ति प्राप्त है।

24.9 शब्दावली

परिचालन- संचालन या चलाना, अनुपलब्धता- उपलब्ध न होना, व्यंग- मजाक या खिल्ली उड़ाना, संतुलित बजट-जब आय और व्यय बराबर हो, प्राक्कलन- अनुमान, क्लिष्ट- कठिन या जटिल, समेकित- एकीकृत या सभी को मिलाकर एक करना।

24.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. जेम्स विल्सन, **2.** 01 अप्रैल से 31 मार्च, **3.** 01 जुलाई, **4.** 1997

24.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. कटारिया, सुरेन्द्र, 'तुलनात्मक लोक प्रशासन', आर0बी0एस0ए0 पब्लिसर्श, जयपुर, 2003
2. अवस्थी, अमेरेश्वर तथा अवस्थी, आनन्द प्रकाश, 'भारतीय प्रशासन', लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा, 2001
3. शर्मा, प्रभुदत्त एवं शर्मा, हरिशचन्द्र, 'लोक प्रशासन सिद्धान्त एवं व्यवहार', कालेज बुक डिपो, जयपुर, 2006
4. थावराज, एम0जे0के0, 'फाइनेंसियल एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ इण्डिया', सुल्तान चाँद एण्ड सन्स, नई दिल्ली, 1978
5. हेनरी, निकोलस, 'पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन एण्ड पब्लिक अफेयर्स', पी0एच0आई0 लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, 2012

24.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. भाम्भरी, सी0पी0, 'पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन', जयप्रकाश नाथ एण्ड कम्पनी, मेरठ, 2011
2. अवस्थी, अमरेश्वर एवं अवस्थी, आनंद प्रकाश, 'भारतीय प्रशासन', लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2013
3. शर्मा, एम0पी0 एवं सडाना, बी0एल0, 'लोक प्रशासन सिद्धान्त एवं व्यवहार', किताब महल, इलाहाबाद, 2003

4. चक्रवर्ती, विद्युत एवं चांद, प्रकाश, 'पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन ए ग्लोबलाइजिंग वर्लडः थियोरीज एण्ड प्रैक्टीसेज', सेज पब्लिकेशन इण्डिया प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, 2012
5. हेनरी, निकोलस, 'पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन एण्ड पब्लिक अफेयर्स', पी0एच0आई0 लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, 2012

24.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. भारत में बजट बनाने की प्रक्रिया ब्रिटिश विरासत है। स्पष्ट कीजिए।
2. अमेरिका में बजट व्यवस्था निरन्तर परिवर्तनशील रहा है। टिप्पणी कीजिए।
3. बजट निर्माण के प्रमुख सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए।
4. भारत तथा अमेरिका में बजट बनाने की प्रक्रिया का तुलनात्मक विश्लेषण कीजिए।